स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का

अनुक्रम

1. समस्याओं के ढेर...3
2. गरीबी और समाजवाद...22
3. राष्ट्रभाषा और खण्डित देश...37
4. पूंजीवाद की अनिवार्यता...53
5. भारत के भटके युवक..69
6. समाजवाद अर्थात पूर्ण विकसित पूंजीवाद...89
7. धर्म-विरोधी तथाकथित समाजवाद...103
8. पूंजीवाद की नैसर्गिक व्यवस्था...121
9. कोरा शब्दः लोकतांत्रिक समाजवाद...136 10...पूंजीवाद, समाजवाद और सर्वोदय
.... 151
11..समाजवाद क्या--सिर्फ राजनीति है!
.... 167
12...समाजवादः दासता की एक व्यवस्था
.... 182
13..पूंजीवादः ज्यादा मानवीय व्यवस्था
.... 197
14...लोकशाही समाजवादः एक भ्रांत धारणा
.... 214
15..क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया
.... 231
16..क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार
.... 249
17...प्रगतिशील कौन?
.... 263
18...धर्म और राजनीति
.... 284
19..समाज परिवर्तन के चौराहे पर
.... 297
20...आज की राजनीति
.... 312
21...भारत किस ओर
.... 324
22..नये भारत की दिशा
.... 340

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का पहला प्रवचन

समस्याओं के ढेर

भारत समस्याओं से और प्रश्नों से भरा है। और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह
है कि हमारे पास उत्तरों की और समाधानों की कोई कमी नहीं है। शायद जितने प्रश्न हैं हमारे पास, उससे ज्यादा उत्तर हैं और जितनी समस्याएं हैं, उससे ज्यादा समाधान हैं। लेकिन एक भी समस्या का कोई समाधान हमारे पास नहीं है। समाधान बहुत हैं, लेकिन सब समाधान मरे हुए हैं और समस्याएं जिंदा हैं। उनके बीच कोई तालमेल नहीं है। मरे हुए उत्तर हैं और जीवंत प्रश्न हैं। जिंदा प्रश्न हैं और मरे हुए उत्तर हैं।
मरे हुए उत्तर हैं और जीवित प्रश्न हैं। और जैसे मरे हुए आदमी और जिंदा आदमी के बीच कोई बातचीत नहीं हो सकती ऐसे ही हमारे समाधानों और हमारी समस्याओं के बीच कोई बातचीत नहीं हो सकती। एक तरफ समाधानों का ढेर है और एक तरफ समस्याओं का ढेर है। और दोनों के बीच कोई सेतु नहीं है, क्योंकि सेतु हो ही नहीं सकता। मरे हुए उत्तर जिस कौम के पास बहुत हो जाते हैं, उस कौम को नये उत्तर खोजने की कठिनाई हो जाती है।
अब प्रश्नों के साथ एक उलझन है कि प्रश्न सदा नये होते हैं। प्रश्न हमारी फिकर नहीं करते। समस्याएं हमसे पूछ कर नहीं आती हैं, आ जाती हैं। और वे रोज नई हो जाती हैं और हम अपने पुराने समाधानों को जड़ता से पकड़ कर बैठे रह जाते हैं। तब हमें ऐसा लगता है कि समाधान हमारे पास हैं और समस्याएं हल क्यों नहीं होती हैं? गुरु हमारे पास हैं और प्रश्न हल नहीं होते हैं। शास्त्र हमारे पास हैं और जीवन उलझता चला जाता है।
एक बुनियादी भूल, और वह यह है कि सब उत्तर हमारे पुराने हैं। हमने नया उत्तर खोजना बंद कर दिया है। और नये प्रश्न नये उत्तर चाहते हैं। नई समस्याएं नये समाधान मांगती हैं। नई परिस्थितियां नई चेतना को चुनौती देती हैं, लेकिन हम पुराने होने की जिद्द किए बैठे हैं। हम इतने पुराने हो गए हैं और हम पुराने होने के इतने आदी हो गए हैं कि अब हमें खयाल भी नहीं आता कि हम पुराने पड़ गए हैं।
हमारे देश के सामने इसलिए पहला जीता सवाल यह है कि हम मरे हुए उत्तरों
को विदा कब करेंगे? उनसे हम छुटकारा कब पाएंगे? उनसे हम कब मुक्त होंगे? क्या कारण है कि हमने नये प्रश्नों के नये उत्तर नहीं खोजे? यही कारण है-- अगर हमें खयाल हो कि हमारे पास उत्तर हैं ही रेडीमेड, तैयार, तो हम नये उत्तर क्यों खोजें? मन की तो सहज इच्छा होती है लीस्ट रेसिस्टेंस की; कम से कम तकलीफ उठानी पड़े। उत्तर तैयार हैं तो उसी से काम चला लें। एकबारगी हमारे देश को अपने पुराने उत्तरों से मुक्त और रिक्त हो जाना पड़ेगा तभी हम उस बेचैनी में पड़ेंगे कि हम नई समस्याओं के लिए नये उत्तर खोजें।
हमें अपने अतीत से मुक्त होना पड़ेगा तो ही अपने भविष्य के लिए निर्माण कर सकते हैं। हमें अपने शास्त्रों से मुक्त होना पड़ेगा तो ही हम चिंतन के जगत में प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा हर चीज का तैयार उत्तर हमें किताब में मिल जाता है। मुसीबत आती है, हम गीता खोल लेते हैं। मुसीबत आती है, हम कुरान खोल लेते हैं। मुसीबत आती है, हम मुर्दा गुरुओं के पास पहुंच जाते हैं पूछने कि उत्तर क्या है? हम हमेशा अतीत से पूछते हैं, बीते हुए दिनों से पूछते हैं। लेकिन दुनिया में एक बड़ी क्रांति हो गई है, वह समझ लेनी चाहिए। और अगर वह हम न समझ पाएंगे तो हमारे प्रश्न रोज बढ़ते जायेंगे और हम एक भी प्रश्न को हल न कर सकेंगे।
वह बड़ी क्रांति यह हो गई है--जीसस के मरने के बाद अठारह सौ पचास वर्ष में दुनिया में जितना ज्ञान बढ़ा, पिछले डेढ़ सौ वर्षों में उतना बढ़ा। और पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान बढ़ा उतना पिछले पंद्रह वर्षों में बढ़ा। आज हम पंद्रह वर्षों में अठारह सौ वर्ष का फासला पूरा कर रहे हैं। इतनी तीव्रता से ज्ञान बढ़ रहा है। पुरानी दुनिया को एक सुविधा थी। उसमें ज्ञान कभी बदलता ही नहीं था। और बदलता था तो इतना लंबा फासला होता था कि जिसका कोई हिसाब नहीं। हजारों वर्षों तक एक ही उत्तर काम देता था। अब

दुनिया बदल गई है। अब हर पद्रंह वर्ष में उत्तर बदल जाएंगे। हर नई पीढ़ी नये उत्तर खोजेगी। बीस साल में एक पीढ़ी बदल जाती है। आज बाप और बेटे के बीच उम्र का तो बीस साल का फासला है, लेकिन अगर हम ठीक से गिनती करें, तो बाप और बेटे की पीढ़ी के बीच अठारह सौ साल का फासला हो जाता है। क्योंकि पुरानी दुनिया में अठारह सौ साल में इतना ज्ञान बढ़ता था, जितना आज पंद्रह वर्ष में बढ़ जाता है। इसलिए पुरानी दुनिया में एक सुविधा थी, पुराने उत्तर काम देते थे। जो बाप की जिंदगी में काम दिया था वही बेटे की जिंदगी में काम देता था, वही उसके भी बेटे की जिंदगी में काम देता था। अब यह नहीं हो सकता। और हमारी आदत पुरानी है। बेटा अब भी बाप से पूछने जा रहा है। बहुत कठिन है। उत्तर बाप के पास नहीं है। बाप के पास उत्तर है, लेकिन वह समस्या नहीं रही जिसका उसके पास उत्तर है।
पुरानी दुनिया में ठीक थी यह बात, बेटा बाप से पूछता था और बाप के पास उत्तर होता भी था। सच तो यह है कि पुरानी दुनिया में बेटे के पास प्रश्न होता था, बाप के पास उत्तर होते थे। आज हालत बिल्कुल उल्टी हो गई है। बेटे के पास प्रश्न हैं, बाप के पास उत्तर हैं, लेकिन उन प्रश्नों के उत्तर हैं, जो बेटे के प्रश्न नहीं हैं। और तब दोनों के बीच एक खाई खड़ी हो गई है। क्या आपको पता है कि इधर पिछले बीस वर्षों में सारी पृथ्वी पर पिता के आदर में कमी हुई है और गुरु के आदर में कमी हुई है? और सारी दुनिया में चिंता है। हमारे मुल्क में बहुत ज्यादा चिंता है। क्योंकि हम सबसे ज्यादा पिता को पूजने वाले और गुरु को पूजने वाली कौम हैं। हमारी पूरी संस्कृति ने पिता और गुरु और माता की पूजा सिखाई है। एकदम से कमी हुई है। हम सब चिंतित हैं कि यह क्या हो गया? लेकिन कारण का हमें खयाल नहीं है।
कुछ लोग सिखाते हैं कि लड़के बिगड़ गए हैं। लड़के सदा जैसे थे वैसे ही हैं। लेकिन एक क्रांति जीवन में आ गई है। वह क्रांति यह आ गई है कि पहले पिता ज्यादा जानता था, आज बेटे ज्यादा जानने की स्थिति में हैं। और इसलिए पिता जब ज्यादा जानता था और बेटा हमेशा कम जानता था। बेटा कभी ज्यादा नहीं जानता था। क्योंकि जानना आता था अनुभव से, और अनुभव करते-करते, बूढ़ा होते- होते पिता के पास ज्ञान हो पाता था। वही ज्ञान वह बेटे को देता था। आज हालतें बिल्कुल बदल गई हैं। आज हालतें ये हैं कि बेटा बहुत कुछ जानता है जो पिता ने कभी नहीं जाना। और उसके बेटे और भी बहुत कुछ जानेंगे जिनका पिता अंदाज भी नहीं कर सकता है। तो पिता के सम्मान में अनिवार्य रूप से परिवर्तन आना था। लेकिन अगर हम समझ जाएं तो हम उस परिवर्तन को समझदारी पूर्वक व्यवस्था दे सकेंगे। न समझ पाएं तो हम मुश्किल में पड़ जाएंगे। गुरु अब भी पुराना आदर मांगे, यह संभव नहीं है। पुराना आदर अब नहीं मिल सकता, क्योंकि गुरु को जो पुराना आदर मिलता था वह ज्ञान के कारण ही मिलता था। आज अक्सर यह होता है कि क्लास में पढ़ाने वाले प्रोफेसर में और विद्यार्थी में ज्यादा से ज्यादा घंटे भर का फासला होता है। वे घंटे भर पहले तैयार करके आए होते हैं, वे घंटे भर पीछे। अब घंटे भर के फासले पर बहुत आदर नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? और अगर कोई बुद्धिमान, प्रतिभाशाली लड़का हो तो गुरु से आगे आज हो सकता है। पहले कभी नहीं हो सकता था। क्योंकि अनुभव से ज्ञान आता था। और अनुभव में जीना पड़ता था। आज हालतें एकदम बदल गई हैं।
इन बदली हुई स्थितियों में जहां ज्ञान का तीव्रता से विस्फोट हो रहा है, एक्सप्लोजन हो रहा है, वहां हमें सारे के सारे उत्तर नये खोजने पड़ेंगे। पुराने उत्तर काम नहीं दे सकते। और भी एक मजे की बात है कि हमें यह पता ही नहीं चलता क्योंकि हम प्रश्नों के संबंध में कभी गहराई से सोचते ही नहीं कि प्रश्न क्या है? जिनके पास उत्तर तैयार हैं वे प्रश्न में खोज-बीन करने की दिक्कत में नहीं पड़ते। जैसे कोई बच्चा किताब उलटा कर गणित का उत्तर पीछे देख लेता है, फिर वह प्रोसेस, विधि करने की फिकर नहीं करता, फिर वह उत्तर लिख देता है। लेकिन उत्तर महत्वपूर्ण नहीं होते, महत्वपूर्ण हमेशा विधि होती है। विधि के बिना उत्तर का कोई अर्थ नहीं है। प्रश्न पर सोचना ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि उसी से उत्तर निकलता है। लेकिन जिसके पास उत्तर तैयार हैं वह विधि पर सोचता ही नहीं, वह प्रश्न की गहराई

में नहीं जाता। हम किसी प्रश्न की गहराई में ही नहीं जाते। हमारे पास उत्तर तैयार हैं। हमने उलटा कर किताब के पीछे उत्तर देख लिए हैं। बीच की प्रोसेस और मेथड का हमें कोई सवाल ही नहीं है। अगर हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाए तो हमारे पास उत्तर तैयार है, लेकिन हम समस्या की गहराई में जाने की इच्छा नहीं रखते।
और मजा यह है कि शायद यह भी डर है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम जो उत्तर देते रहे हैं, वही हमारे प्रश्न के आधार में बुनियादी जड़ हो? जिसे हम समाधान कहते हैं कहीं वही तो हमारी समस्या को पैदा करने वाला नहीं है? अगर हिंदू-मुसलमान लड़ते हैं तो हम हिंदू को समझाते हैं कि तुम अच्छे हिंदू बनो। मुसलमान को समझाते हैं कि तुम अच्छे मुसलमान बनो। मुसलमान धर्म भी बहुत अच्छा है, हिंदू धर्म भी बहुत अच्छा है। दोनों धर्म एक से हैं। तुम अच्छे मुसलमान बनो, तुम अच्छे हिंदू बनो। तुम मस्जिद ठीक से जाओ, तुम मंदिर ठीक से जाओ। मैं कभी सोचता हूं कि जब कच्चे मुसलमान और कच्चे हिंदू इतने खतरनाक होते हैं तो सच्चे हिंदू और मुसलमान कितने खतरनाक हो सकते हैं! लेकिन हमारा खयाल यह है कि अगर हिंदू अच्छे हिंदू हो जाएं और मुसलमान अच्छे मुसलमान हो जाएं तो झगड़ा खत्म हो जाएगा।
नहीं, भ्रांति है। हमारा पुराना रटा-रटाया उत्तर है, वह हम दिए चले जा रहे हैं। वह हम कहे ही चले जा रहे हैं। हम यही समझाए चले जा रहे हैं कि अच्छे हिंदू बनो, अच्छे मुसलमान बनो। धर्म तो किसी को लड़ना नहीं सिखाता, और सब धर्मों ने लड़ना सिखाया है। असल में जो भी आदमी-आदमी के बीच फासले पैदा करता है वह लड़ना सिखाएगा ही। जो भी आदमी-आदमी के बीच खंड करता है वह लड़ना सिखाएगा ही।
राजचंद्र को गांधी जी ने कुछ पत्र लिखे थे। और गांधीजी ने एक प्रश्न में उनसे पूछा है कि आप जैन धर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं? राजचंद्र जैसे बुद्धिमान, विचारशील साधु पुरुष ने भी यही उत्तर दिया है कि जैन धर्म ही श्रेष्ठ है। इसलिए मैं श्रेष्ठ मानता हूं। गांधी जी भी हिंदू धर्म को श्रेष्ठ धर्म मानते थे और गांधीजी भी अपने को जीवन भर हिंदू कहते रहे कि मैं हिंदू हूं। अभी मैंने सुना है कि जयप्रकाश ने यहां अहमदाबाद में कहा कि मैं हिंदू हूं और हिंदू होने का मुझे गौरव है। खतरनाक लोग हैं ये। क्योंकि जो यह कहता है कि हिंदू धर्म श्रेष्ठ है, जो यह कहता है कि जैन धर्म श्रेष्ठ है, जो यह कहता है कि मैं हिंदू होने की वजह से गौरवान्वित हूं, यह उपद्रव के बीज बो रहा है--चाहे इसे पता हो और चाहे पता न हो। क्योंकि जो यह कह रहा है कि हिंदू धर्म श्रेष्ठ है वह हिंदू के अहंकार को फुसला रहा है, वह हिंदू के अहंकार को रस दे रहा है और हिंदू के अहंकार को कह रहा है कि हां, हम श्रेष्ठ हैं। और जो यह कह रहा है कि इस्लाम श्रेष्ठ है वह इस्लाम के अहंकार को फुसला रहा है। और जो जैन धर्म को श्रेष्ठ कह रहा है वह भी फुसला रहा है। और जो कह रहा है कि मैं गौरवान्वित हूं हिंदू होकर, मुझे गौरव है कि मैं हिंदू हूं, वह दूसरे लोगों को भी हिंदू होने के अभिमान से भर रहा है। और जहां हिंदू का अहंकार है, जहां मुसलमान का अहंकार है, वहां शांति नहीं हो सकती। वहां कोई शांति संभव नहीं है।
इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जब हिंदू-मुस्लिम दंगे होते हैं तो आमतौर से हम यह समझ कर कि गुंडे दंगे कर रहे हैं, गुंडों को गालियां दे लेते हैं और घरों में बैठ जाते हैं। मैं आपसे कहता हूं, बहुत समय हो गया है, गुंडों को अब ज्यादा गालियां मत दें। अब पकड़ना हो तो महात्माओं को पकड़ें, गुंडों को पकड़ने से कुछ भी नहीं हो सकता। गुंडे समस्या नहीं हैं, महात्मा समस्या हैं। लेकिन महात्मा अमन कमेटी बनाते हैं, शांति की व्यवस्था करते हैं, प्रवचन देते हैं, लोगों को समझाते हैं, लड़ो मत। तो महात्मा ऐसा समझ में आता है, वह तो बेचारा समझा रहा है, लड़ो मत। लड़ता तो गुंडा है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, बहुत पुरानी हो गई है यह बात। यह बात सही नहीं मालूम पड़ती। क्योंकि महात्माओं की कोई कमी नहीं है, शायद गुंडों से ज्यादा ही होंगे। लेकिन कोई कमी नहीं होती युद्ध-संघर्ष में, वैमनस्य में, ईर्ष्या में, घृणा में। नहीं, कहीं कुछ भूल हो रही है। गुंडे को हम व्यर्थ ही पकड़ रहे हैं। वह महात्मा की तरकीब है। वह हमें सब गुंडों की तरफ इशारा कर देता

है कि गुंडों ने गड़बड़ की। लेकिन महात्मा पकड़ में नहीं आता। और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि महात्मा जड़ में है। क्योंकि महात्मा कह रहा है कि मैं हिंदू होकर गौरवान्वित हूं। वह हिंदू के अहंकार को मजबूत कर रहा है। वह महात्मा कह रहा है कि मैं हिंदू हूं, वह महात्मा कह रहा है कि मैं मुसलमान हूं। तब फिर उपद्रव जारी है।
खान अब्दुल गफ्फार खान यहां आए, सारे मुल्क में गए। लेकिन वे पक्के मुसलमान हैं। और मैं कहना चाहता हूं, पक्का मुसलमान होना खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि आदमी को आदमी होने दो, मुसलमान और हिंदू मत बनाओ। कृपा करो, अब आदमी-आदमी ही हो जाए तो ही दंगे बंद हो सकते हैं, अन्यथा दंगे बंद नहीं हो सकते। आदमी पर लगाया गया कोई भी लेबल दंगे में सहयोगी बनता है। लेबल लड़वाते हैं। लेकिन एक पक्का मुसलमान है, एक पक्का हिंदू है और हम पक्के हिंदू और मुसलमान कभी मिल नहीं पाते। वह जो मुसलमान होना है वह हिंदू होने से कैसे मिल सकता है? वह जो जैन होना है वह मुसलमान होने से कैसे मेल खाएगा? हमारे बीच अदृश्य दीवालें खड़ी हो जाती हैं।
नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं, हिंदू-मुस्लिम एक हैं, अब इस नासमझी में पड़ने की जरूरत नहीं है। पचास साल हमने काफी भुगतान किया उस नासमझी का। अब हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई हैं, इसको भी दोहराने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि भाई-भाइयों के कारण हमने बहुत नुकसान सह लिया। बल्कि सच तो यह है कि जितना हमने जोर दिया कि हिंदू-मुसलमान भाई-भाई हैं, उसी जोर ने हिंदुस्तान, पाकिस्तान को बंटवाने का आधार रखा। क्योंकि दो भाई जब पक्के भाई हों और लड़ें और लड़ने के बाद कोई उपाय न हो, तो बंटवारे के सिवाय कोई लॉजिकल कनक्लूजन नहीं रह जाता।
मैं आपसे कहना चाहता हूं, जिन्होंने समझाया हिंदुस्तान को कि हिंदू- मुसलमान भाई-भाई हैं उन्होंने बंटवारे की नींव रख दी, क्योंकि अगर भाई आखिर में न मिल सकें तो फिर उपाय एक ही है कि बांट लो। कभी कोई देश बंटा नहीं था इस तरह, क्योंकि कभी किसी देश में भाई-भाई होने की पचास साल तक नासमझी नहीं दोहराई गई। हिंदू-मुसलमान का भाई-भाई होना हिंदुस्तान, पाकिस्तान का आधार बना, क्योंकि जब भाई आखिर में लड़ते हैं, और ध्यान रहे, भाइयों से ज्यादा खतरनाक ढंग से कोई भी नहीं लड़ सकता। जब दो भाई लड़ते हैं तो बहुत खतरनाक ढंग से लड़ते हैं। भाइयों से खतरनाक कोई भी नहीं लड़ सकता। इसलिए हिंदू-मुसलमान को भाई-भाई बनाने में खतरा है कि वे खतरनाक ढंग से लड़ भी सकते हैं। और जब दो भाई लड़ते हैं तो आखिर में बंटवारा हो जाता है, और क्या उपाय है? हिंदुस्तान बंटा। जिन्होंने भाई-भाई कह कर समझाया उन्होंने देश को बंटवाया। अब आगे यह कहने की जरूरत नहीं है। असल में यह जरूरत ही क्यों पड़ती है कि हिंदू मुसलमान भाई-भाई हैं! यह जरूरत इसलिए पड़ती है कि पहले हम स्वीकार कर लेते हैं कि एक हिंदू है और एक मुसलमान है।
नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं, ये उपद्रव बंद न होंगे। यह सांप्रदायिक जहर समाप्त न होगा। इस देश के सामने बड़े से बड़ा जीता सवाल सांप्रदायिक जहर का है, सांप्रदायिकता का है, यह समाप्त न होगा। यह समाप्त एक ही तरह से होगा कि हम लेबल अलग कर दें। और जो लोग बुद्धिमान हैं, वे कह दें कि हम सिर्फ आदमी हैं; अब हमें हिंदू और मुसलमान होने से कोई वास्ता न रहा। अभी आपने यहां सब कुछ देखा, लेकिन कितनों के मन में यह खयाल आया कि अब हम हिंदू और मुसलमान होना बंद कर दें। नहीं, किसी को खयाल नहीं आया। वह खयाल नहीं आता हमें। हमें यही खयाल आता है कि गलत हिंदू यह काम कर रहे हैं। गलत मुसलमान यह काम कर रहे हैं। हमें यह खयाल ही नहीं आता कि मुसलमान होने, हिंदू होने के भीतर ये बीज छिपे हैं इसलिए यह होता रहेगा। अगर आपको पता न हो कि आप हिंदू हैं या मुसलमान हैं, तो आप किससे लड़ने जा सकते हैं?
मैं अभी एक ट्रेन में सवार हुआ। कुछ मित्र छोड़ने आए थे। उसी बगल के मेरे कंपार्टमेंट में एक सज्जन थे, उन्होंने सोचा, कोई महात्मा होंगे। जैसे ही मैं डिब्बे के भीतर गया, वे पैर पड़े और कहा, महात्मा जी, आपसे सत्संग करना चाहता हूं। मैंने कहाः पहली तो बात यह कि मैं कोई महात्मा नहीं हूं। महात्माओं ने इतना नुकसान पहुंचाया है कि अब कोई भला आदमी महात्मा नहीं हो सकता है। तो आपने गलती से पैर पड़ लिए। अगर किसी तरकीब से

वापस ले सकते हों तो वापस ले लें। उन्होंने कहाः क्या आप महात्मा नहीं हैं? कम से कम आप हिंदू तो हैं? मैंने कहा कि हिंदू भी मैं नहीं हूं, मैं सिर्फ आदमी हूं। उन्होंने कहाः क्या मतलब आपका? आप हिंदू नहीं हैं? वे इतने बेचैन हो गए, क्योंकि पता नहीं, किसके पैर छू लिए! मुसलमान हो, ईसाई हो, पता नहीं कौन हो! अब लेकिन पैर छू लिए तो वापस लौटाने का उपाय नहीं है! अब क्या करेंगे? मैंने कहाः कोई तरह वापस ले सकते हों तो ले लें। हाथ धो सकते हों तो धो लें, साबुन मैं दिए देता हूं। उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, यह बात नहीं, लेकिन आप कौन हैं? मुसलमान हैं, ईसाई हैं, कौन हैं? मैंने कहाः अगर मैं कोई न होऊं तो क्या मुझे होने का हक नहीं है? नहीं, उन्होंने कहाः हक की कोई बात नहीं है। मैंने कहाः बैठिए। आप कहते थे, सत्संग करेंगे, सत्संग हो। उन्होंने कहाः नहीं, मैं सुबह मिलूंगा। मैंने कहाः आप बैठें। पर वे इतने बेचैन हो गए कि उस आदमी के साथ कैसे बैठें जो न हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है! हम उस आदमी से संबंध कैसे जोड़ें, दोस्ती कैसे बनाएं, दुश्मनी कैसे बनाएं? अगर मैं हिंदू होता तो दोस्ती बन जाती। अगर मैं मुसलमान होता तो दुश्मनी बन जाती। लेकिन अगर मैं निपट आदमी हूं, तो संबंध कैसे बनाएं! दो आदमी के बीच संबंध नहीं हो सकता? नहीं; हिंदू हिंदू के बीच संबंध हो सकता है, मुसलमान मुसलमान के बीच हो सकता है। और यह भी वहीं, जहां कि हिंदू-मुसलमान हैं।
जब यहां अहमदाबाद में दंगा चलता था तो मैं कश्मीर में था, पहलगाम में था। पहलगाम तो मुसलमानों की बस्ती है। हिंदू तो एकाध-दो घर होंगे। जो आदमी मेरा खाना बनाता था उससे मैंने पूछा कि तू मुसलमान है न? उसने कहाः मैं मुसलमान! नहीं। वह जो आपके कपड़े धोता है, वह मुसलमान है। मैं तो सुन्नी हूं। मैंने कहाः यह बड़ा मुश्किल सवाल है। तू सुन्नी है, मुसलमान नहीं है? उसने कहा कि नहीं, शिया मुसलमान होते हैं, हम सुन्नी हैं। उस गांव में शिया और सुन्नियों में झगड़ा है, तो दोनों एक ही लेबल लगाने को तैयार नहीं हैं। झगड़ा है शिया-सुन्नी में, तो दोनों कैसे मुसलमान हो सकते हैं? सुन्नी सुन्नी है, शिया शिया है। दोनों के बीच झगड़ा है, तनाव है। शिया-सुन्नी के बीच झगड़ा है, श्वेतांबर-दिगंबर के बीच झगड़ा है, ब्राह्मण-शूद्र के बीच झगड़ा है। फिर ब्राह्मण और ब्राह्मण के बीच भी फिरके हैं और उनके बीच झगड़ा है।
क्या हम लेबलों से कभी मुक्त न हो सकेंगे? आदमी कभी आदमी न हो सकेगा? समस्या यह है कि आदमी आदमी होकर ही ठीक हो सकता है। और हम जो समाधान खोजते हैं वे कुछ ऐसे खोजते हैं कि उनसे आदमी कभी आदमी नहीं हो पाता है। वह हिंदू हो जाता है, मुसलमान हो जाता है, ईसाई हो जाता है। और झगड़े के बीज आरोपित कर दिए जाते हैं। इस देश को अगर भविष्य की तरफ उन्मुख होना हो तो अतीत से दी गई इन बीमारियों से छुटकारा पाना होगा। आदमी होगा भविष्य में, यह निर्णय लेना होगा।
और जो बाप अपने बेटे को हिंदू बना रहा है, वह दुश्मन है अपने बेटे का। क्योंकि वह अपने बेटे को किसी की छाती में छुरा भोंकने को तैयार करवा रहा है। और जो बाप अपने बेटे को मुसलमान बना रहा है, वह भी खतरनाक बाप है। वह या तो अपने बेटे की छाती में छुरा भोंकवाएगा या अपने बेटे से किसी की छाती में छुरा भोंकवाएगा। लेकिन अब अगर बाप थोड़े समझदार हों तो अपने बेटे को सिर्फ आदमी बनाना चाहिए। पचास साल बाद इस देश में आदमी हों। हिंदू- मुसलमान खोजे से न मिलें, यह निर्णय हमें लेना पड़ेगा। अन्यथा हम सांप्रदायिकता से मुक्त नहीं हो सकते। न खान अब्दुल गफ्फार खान मुक्त कर सकते हैं, न महात्मा गांधी मुक्त कर सकते हैं, क्योंकि बुनियादी जड़ की बीमारी को वे स्वीकार करते हैं। एक हिंदू है--एक पक्का हिंदू, एक पक्के मुसलमान हैं। वे बुनियादी जड़ को इनकार नहीं करते। वे यह नहीं कहते हैं कि मस्जिद और मंदिर, हिंदू और मुसलमान बेहूदगियां हैं, एब्सर्डिटीज हैं। भगवान का कोई मंदिर हो सकता है कि कोई मस्जिद हो सकती है?
भगवान अगर है तो इस पूरे जगत में है और हर जगह मंदिर है और हर जगह मस्जिद है। और जिसे प्रार्थना करना आता है वह किसी वृक्ष के नीचे या किसी नदी के तट पर, अपने घर की छत पर भी मंदिर बना ले सकता है। कहीं अलग मंदिरों

की अब जरूरत नहीं है। अलग मंदिर बहुत महंगे पड़ गए हैं, बहुत महंगा सौदा सिद्ध हुआ है। अब नहीं मंदिर चाहिए, अब नहीं भगवान की मूर्तियां चाहिए, अब नहीं मस्जिद चाहिए, अब इनसे छुटकारा चाहिए। अब सिर्फ आदमी चाहिए। और ऐसा आदमी अगर हम पैदा नहीं कर सकते हैं तो हम अपनी समस्याओं का हल न खोज पाएंगे। हम रोते रहेंगे, समस्याएं हमारी जान खाती रहेंगी। आज यहां फूटेगा, कल जहर वहां फूटेगा, परसों वहां फूटेगा। बंबई, अहमदाबाद में जब जहर फूटेगा तो अहमदाबाद के लोगों को कहेगा, कैसे लोग हैं! और जब जबलपुर में जहर फूटेगा तो अहमदाबाद के लोग कहेंगे, कैसे लोग हैं! और जब दिल्ली में फूटेगा तो जबलपुर के लोग कहेंगे, कैसे लोग हैं! लेकिन कोई यह न सोचेगा कि हम सब ऐसे ही लोग हैं, हम सबमें कोई फर्क नहीं है। क्योंकि हम भी हिंदू हैं, हम भी मुसलमान हैं। देर-अबेर की बात है, जहर कहीं भी फूट सकता है, लेकिन हम सब बीमार हैं।
आदमी को स्वस्थ करना है तो आदमी, सिर्फ आदमी होना काफी है। असल में हिंदू-मुसलमान होना बड़ी पुरानी बातें हो गई हैं। एक दुनिया थी जब दुनिया खंड-खंडों में विभाजित थी। न हिंदुस्तान के आदमी को पता था बाहर का, न बाहर के आदमी को पता था हिंदुस्तान का। लोकल सब बंटवारा था। सारी दुनिया छोटे- छोटे खंडों में बंटी थी।
और कनफ्यूशियस की एक किताब में लिखा है कि मेरे पूर्वज कहते थे कि गांव के पास नदी बहती थी। नदी के उस पार रात को कुत्ते भौंकते थे तो हमें आवाज सुनाई पड़ती थी लेकिन हमें यह पता नहीं था कि नदी के पार कौन रहता है? क्योंकि नदी बड़ी थी और नाव ईजाद न हुई थी। नदी के पार कोई रहता है, कोई गांव है, कभी-कभी कुत्तों के भौंकने की आवाज रात के सन्नाटे में सुनाई पड़ती है लेकिन नाव न थी। वह गांव अपनी उसकी दुनिया थी, इस गांव की अपनी दुनिया थी। एक-एक गांव की अपनी दुनिया थी, एक-एक देश की अपनी दुनिया थी। सारी मनुष्यता जुड़ी न थी। उस खंडित दुनिया में हमने जो विचार पैदा किए थे वे आज के काम के नहीं हैं।
आज सारी दुनिया एक गांव हो गई है, एक युनिवर्सल विलेज हो गई है। जितनी देर में हम एक गांव से दूसरे गांव पहुंचते थे, आज उतनी देर में हम अहमदाबाद से लंदन पहुंच सकते हैं। दुनिया एक छोटा गांव हो गई है। उस दुनिया की धारणाएं, जब दुनिया खंडित थी, हम अगर अभी भी पकड़ कर चलते हैं तो हम इस दुनिया में रहने के योग्य न रह जाएंगे। वे हमें छोड़ देनी पड़ेंगी। यह ऐसा ही है जैसा कि कार तो ईजाद हो गई है, हवाई जहाज ईजाद हो गया लेकिन एक आदमी अपनी बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में बैठ जाए। वह कहे कि हम अपनी बैलगाड़ी नहीं छोड़ सकते हैं। क्योंकि बैलगाड़ी में हमारे पूर्वज चलते थे। बैलगाड़ी ने बड़ी कृपा की है। हम बैलगाड़ी नहीं छोड़ सकते, हम तो हवाई जहाज में इसको लेकर ही चलेंगे।
उस आदमी को हम पागल कहेंगे, जो आदमी बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में सवार होने की कोशिश कर रहा है। लेकिन हम सब पिछली सदियों को लेकर बीसवीं सदी में जीने की कोशिश कर रहे हैं। उन दोनों बातों में बहुत भेद नहीं है। पिछली सदियों को विदा हो जाना चाहिए। चौदह सौ साल पहले इस्लाम पैदा हुआ था। वह चौदह सौ साल पहले अरब की हालतों में उसका कोई अर्थ कोई संदर्भ रहा होगा; कोई संगति, कोई रिलेवेंस रही होगी। आज उसकी कोई रिलेवेंस नहीं है। हिंदू धर्म पांच हजार साल पहले पैदा हुआ था। पांच हजार साल की पुरानी दुनिया में उसका कोई अर्थ रहा होगा। जब बिजली चमकती होगी तो डर लगता होगा और इंद्र की पूजा की गई होगी। अर्थात मन को राहत मिली थी, रात हम निश्चिंत सो सके थे कि इंद्र को समझा दिया है, नारियल भी फोड़ दिया है। रात कम से कम हमारा घर सुरक्षित रहेगा। लेकिन आज कोई रिलेवेंस नहीं है। लेकिन आज भी बीसवीं सदी में यज्ञ किया जा रहा है, इंद्र की पूजा की जा रही है, पानी बरसे, इसके लिए इंद्र से प्रार्थना की जा रही है, यह बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में चढ़ने की कोशिश है।
नहीं, हर युग अपना विचार पैदा करता है। फिर युग चला जाता है और विचार अटक कर रह जाता है। और विचार को हम दूसरे युग में ले जाते हैं। तब वह विचार बोझिल हो जाता है, लेकिन पहले यह बोझिल न हुआ था क्योंकि नये विचार पैदा ही

नहीं हो रहे थे। लेकिन इधर डेढ़ सौ वर्षों में मनुष्य की चेतना क्रांति से गुजर गई है। एक बहुत बड़ा तूफान आया, सब विचार बदल गए, नई दिशाएं टूटीं, नये खयाल पैदा हुए, नये आविष्कार हुए। उन्होंने सब पुरानी स्थिति डांवाडोल कर दी। पुराना सब जमा हुआ बिखर गया। सब उखड़ गया। एक दुनिया थी जब हम सोचते थे पृथ्वी केंद्र है और सूरज चक्कर लगाता है। वैसे दिखता है सूरज चक्कर लगाता हुआ। लेकिन सब दिखा हुआ सच नहीं होता। सूरज दिखता है हम सबको कि चक्कर लगाता है। एक दुनिया थी, जब स्वाभाविक किसी ने सोचा होगा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। उस दुनिया के लिए यह बात गलत न रही होगी। लेकिन आज, आज अगर कोई यह कहेगा तो मुश्किल हो जाएगी। आज हम जानते हैं कि पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है। लेकिन जो हमने विचार पैदा किए थे पृथ्वी को केंद्र पर मान कर वे सारे के सारे विचार वही के वही हैं और अब सब स्थिति बदल गई है। अब पृथ्वी सूरज का चक्कर लगा रही है।
मनुष्य को एक भारी अहंकार था। पुराने सारे धर्म कहते हैं, आदमी को विनम्र होना चाहिए लेकिन किसी धर्म ने भी आदमी को विनम्रता नहीं सिखाई। आदमी को धर्म ने भारी अहंकार सिखाया है। कोई कहता है, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। कोई कहता है, हम ईश्वर के बेटे हैं। कोई कहता है, परमात्मा ने आदमी को सृजा अपनी ही शक्ल में। अब आदमी की शक्ल देख कर अगर परमात्मा का पता लगाना हो, तो ऐसा परमात्मा न ही मिले तो अच्छा। क्योंकि मिले तो जेब काट सकता है, छुरा मार सकता है आदमी की शक्ल में। पुराने आदमी ने ऐसा सोचा था कि भगवान ने कोई स्पेशल, कोई विशेष आदमी को पैदा किया है। पृथ्वी केंद्र थी, आदमी केंद्र था, चांद-तारे सब आदमी के आस-पास, इर्द-गिर्द घूम रहे थे।
चांद इसलिए था कि आदमी को रात में रोशनी हो और सूरज इसलिए था कि सुबह
उठ कर आदमी को खेत पर काम में जाने में रोशनी करे। सब आदमी के चाकर थे। और भगवान आदमी को व्यवस्था देने के लिए था। इसलिए आदमी छोटी-छोटी बात के लिए उसके पास जा रहा था--पानी गिराओ, धूप कम करो, या बादल लाओ या न लाओ, या फसल ठीक हो, या दुश्मन की फसल न हो पाए।
धर्मग्रंथों में ये भी प्रार्थनाएं हैं कि दुश्मन की गाय दूध देना बंद कर दे। धर्मग्रंथ थे कि दुश्मन के खेत में फसल न हो, कि ओले गिरें तो दुश्मन के खेत में गिरें, मेरे खेत में न गिरें। हे भगवान, ऐसी व्यवस्था कर देना। भगवान से भी एक तरह के नौकर का ही काम लिया जा रहा था--आदमी के नौकर का। आदमी था सेंटर में, सब बदल गया लेकिन।
पीछे बर्नार्ड शॉ अमरीका में था। एक युनिवर्सिटी में बोलते हुए उसने मजाक में यह बात कही कि मैं यह सिद्धांत मानने को राजी नहीं हूं कि सूरज का चक्कर पृथ्वी लगाती है। मैं तो पुराना सिद्धांत ही मानता हूं कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। एक आदमी ने पूछाः आप कह क्या रहे हैं? भूल तो नहीं गए हैं? सूरज, और पृथ्वी का चक्कर लगाता, आप कह रहे हैं? कारण बताएंगे? बर्नार्ड शॉ ने कहाः बिना कारण मैं कुछ भी नहीं कहता। बड़े से बड़ा कारण यह है कि बर्नार्ड शॉ जिस पृथ्वी पर रहता है वह पृथ्वी किसी का चक्कर नहीं लगा सकती। सूरज ही चक्कर लगाता होगा। मैं यहां रहता हूं।
आदमी पृथ्वी पर रहता था। उसने पृथ्वी को सेंटर बना लिया था। अब हम जानते हैं कि पृथ्वी बहुत छोटी से छोटी चीज है। सूरज सात हजार गुना बड़ा है इस पृथ्वी से, और सूरज बहुत छोटा सूरज है, उससे करोड़, अरब गुने सूरज हैं। सूरज बहुत छोटा सूरज है और पृथ्वी का तो कोई पता ही नहीं है। अगर इस पूरे विस्तार में हम खोज करने निकलें तो पृथ्वी का कोई हिसाब नहीं है। वह कहीं नहीं आती है। उस पृथ्वी पर आदमी है, लेकिन उसने अपने को सदा केंद्र माना था। केंद्र मान कर उसने एक दुनिया विकसित की थी--मंदिर और मस्जिद और भगवान और गीता और कुरान, और दर्शन और फिलासफी की। वह सब गड़बड़ा गई।
अब आदमी केंद्र पर नहीं है। फिर पहले तो पृथ्वी चक्कर लगाने लगी, आदमी
का पहला केंद्र टूट गया। फिर डार्विन ने कहा कि यह आदमी की सारी आदतों को देख कर, खोज-बीन करके ऐसा लगता है कि यह थोड़ा सा पूंछ झड़ गया बंदर है। कहां भगवान की इमेज में हम थे और कहां बंदर से संबंध जुड़ा! बहुत मुश्किल हो गई, बहुत बेचैनी हुई, बहुत कठिनाई हुई, लेकिन डार्विन ने बड़े गहरे प्रमाण खोजे

थे। और उसे गलत नहीं कहा जा सका। भगवान का बेटा अचानक बंदर का बेटा सिद्ध हुआ। तब बहुत कठिनाई हो गई। लाखों साल हो गए हैं बंदर को आदमी बनने की प्रक्रिया में। बहुत कुछ बदलाहट हुई है लेकिन बहुत गहरे में बंदर अब भी मौजूद है।
मैं एक अजायबघर में गया था। वहां काफी बंदर एक कठघरे में बंद हैं। मैं
उस अजायबघर के एक क्यूरेटर को पूछने लगा कि जब तुम किसी नये बंदर को लाते हो... क्योंकि उस दिन एक नया बंदर लाया गया था, उस कठघरे में। उस नये बंदर को बाकी बंदर बहुत परेशान कर रहे थे। पुराने बंदर उसको डरवा रहे थे। तो उसने कहा कि यह हमेशा होता है। जब भी नये बंदर को लाते हैं तो रस्साकशी होती है। जो पुराना बंदरों का नेता होता है वह नये बंदर को डरवाता है। अगर नया बंदर डर जाए, दबा दिया जाए तो वह सब-आर्डिनेरी हैसियत का हो जाता है, नंबर दो। और अगर वह न डरे और पुराने वाले नेता को डरा दे तो वह नंबर एक हैसियत का हो जाता है। मैंने कहाः बहुत बढ़िया। उसने कहाः आप दिल्ली जाते होंगे, दिल्ली में भी यही होता है। एक बंदर दूसरे बंदर को डरा रहा है। सब आर्डिनेरी हैसियत करने की कोशिश चलती है।
वह डार्विन ठीक कहता था। और आज के हिंदुस्तान के नेताओं की तो शक्लें
भी डार्विन को पता नहीं थीं। अगर पता होतीं तो बड़ी मुश्किल होती। वह इसको भी एक प्रमाण मानता कि आदमी जरूर बंदर से पैदा हुआ है। असल में जब जिंदगी कुरूप हो जाती है तो भीतर चेहरा भी कुरूप हो जाता है। हिंदुस्तान के नेतृत्व से सौंदर्य चला गया नेहरू के मरने के साथ। भीतर सब कुरूपता है, सब गंदगी है, चौबीस घंटे, तो चेहरे भी कुरूप हो जाते हैं। उनका भी सौंदर्य खो जाता है। आज हिंदुस्तान के नेताओं को लाइन लगा कर खड़ा किया जाए तो वे किसी भी कारागृह के अपराधी, कैदी मालूम हो सकते हैं। सौंदर्य खो गया, गरिमा खो गई। डार्विन को लेकिन इसका कुछ पता नहीं था। उसने तो इनके बिना जाने यह किया था। इनका कोई कसूर नहीं था, इनका कोई हाथ नहीं था। लेकिन डार्विन ने यह कहा कि आदमी बंदर से पैदा हुआ है। और बड़ी खोज की, और बात सच है।

वैसे, भगवान से पैदा होना और बंदर से पैदा होने में, बंदर से पैदा होना
ही ज्यादा गौरवपूर्ण है। क्यों? क्योंकि भगवान से पैदा होने का मतलब होता है पतन, फाल। बंदर से विकसित होने का मतलब होता है विकास, उन्नति। भगवान से पैदा होने का मतलब होता है पतन। बंदर से पैदा होने का मतलब होता है विकास। पुरानी दुनिया पतन की छाया में जी रही थी। उसने जितने समाधान खोजे थे, वे सब पतन की छाया में खोजे थे। ओरिजिनल सिन था कि आदमी भगवान से बिछुड़ गया। ईदन के बगीचे से बाहर निकाल दिया गया। पतित था आदमी। डार्विन के बाद आदमी विकास की धारा पर खड़ा हुआ। इसलिए पुराना आदमी रोज पतित हो रहा था। हमने भी जो विचार किया था वह पतन का है। हमारे अच्छे युग पहले हो चुके, गोल्डन एज पहले हो चुकी। सतयुग, द्वापर, त्रेता, सब हो चुके। पीछे कलयुग। रोज हम पतित हो रहे हैं। श्रेष्ठतम युग पहले, फिर पतन... फिर पतन... फिर पतन, कलियुग आखिरी पतन की स्थिति। हमारी भी चिंतन की धारा यही थी कि श्रेष्ठ पहले हो गया, निकृष्ट पीछे आ रहा है। विकास की कोई धारणा न थी।
दुनिया में ही न थी। इवोल्यूशन की कोई धारणा न थी, पतन की ही धारणा थी। पतन की धारणा के नीचे जो भी सिद्धांत हमने खोजे थे, वे आज की समस्याओं
का समाधान नहीं है। क्योंकि आज हम विकास की धारणा के अंतर्गत जी रहे हैं। आज सब कुछ विकास के अंतर्गत है। आज आदमी विकासशील है। इसलिए पुराना समाज स्टेटिक था, ठहरा हुआ था। ज्यादा से ज्यादा पतन रुक जाए तो काफी था। आज का समाज डाइनेमिक होगा, गतिमान होगा। इतना काफी नहीं है कि पतन न हो, जरूरी है कि विकास हो। विकास हो मतलब, स्वर्णयुग आगे रखना होगा भविष्य में। अब तक के सब स्वर्ण-युग पीछे थे। राम-राज्य हो चुका वही। जो हो चुका था वही राम-राज्य है, लेकिन स्वर्ण-युग आगे है। यह हमें बदलना पड़ेगा। हमें पूरा पर्सपेक्टिव--चिंतन की पूरी धारा बदलनी पड़ेगी।
फिर आया फ्रायड। एक हमला कोपरनिकस ने किया, दूसरा हमला डार्विन ने किया, तीसरा हमला फ्रायड ने किया। उसने कहा कि जिन चीजों की तुम निन्दा कर रहे हो वह आदमी उनसे भरा हुआ है। और जिन चीजों की तुम प्रशंसा कर रहे हो वे

सिवाय सपनों के, कहानियों के और कुछ भी नहीं हैं। और जब आदमी के भीतर खोज-बीन की गई तो फ्रायड को सही पाया गया। फ्रायड सही है।
आदमी उन सब चीजों से भरा है, जिन्हें हम इन्कार कर रहे हैं। हमारे इनकार करने से कुछ फर्क नहीं पड़ता है। एक आदमी गीता पढ़ रहा है, एक आदमी कुरान पढ़ रहा है। हम सोच भी नहीं सकते कि भोला-भाला आदमी एक दीया जला कर, घी का दीया जला कर कुरान और गीता पढ़ रहा है, यह किसी की छाती में छुरा भोंक सकता है। इसके चेहरे को देख कर खयाल ही नहीं आता। लेकिन फ्रायड कहता है कि थोड़ा पीछे खोजो, हो सकता है, छुरा भोंकने से बचने के लिए ही कुरान और गीता पढ़ रहा हो कि किसी तरह मन को भुला लें। राम-राम, राम-राम जप रहा है एक आदमी। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि राम का चिंतन कर रहा है। हो सकता है, भीतर किसी चिंतन को दबाने लिए राम-राम, राम-राम जप रहा हो कि भीतर कुछ दब जाए जो राम से बिल्कुल उलटा है। नदी में लोग ठंड में स्नान करते हैं तो एकदम हरि-हरि, राम-राम, राम-राम करने लगते हैं। इस भूल में मत पड़ जाना कि राम से कुछ संबंध है। वह जो ठंड लग रही है, वह ठंड भूल जाए। माइंड आकुपाइड हो जाए राम-राम में तो नीचे जो ठंड लग रही है वह भूल जाए।
फ्रायड ने पहली दफा चेताया कि भीतर आदमी कुछ और है। उसे भूलने की कोशिश कर रहा है। भजन-कीर्तन कर रहा है और भीतर गालियां देना चाहता है। ऊपर से प्रेम की बातें कर रहा है, भीतर घृणा के सागर भरे हैं। ऊपर से अमृत की खोज कर रहा है, भीतर जहर खुद पैदा कर रहा है।
आदमी की सचाई पहली दफा खोल कर रखी गई। हम डरते थे आदमी को नंगा देखने में कि वह आदमी नंगा कैसा है। हमने उसे कपड़े पहना दिए थे अच्छे-अच्छे और कपड़ों में ही देखते रहे थे। इधर डेढ़ सौ वर्षों में सब बदल गया। आदमी बहुत और रूप का दिखाई पड़ा है, जैसा हमने उसे कभी न सोचा था--भीतर खोजने से। जितने हम उसके भीतर गहरे गए हैं उतना हमें पता चला है कि आदमी बहुत अदभुत जाल है। उसके भीतर बड़ी गहरी जड़ें हैं और बड़ी खतरनाक हैं। लेकिन उनको दबाने से कोई छुटकारा नहीं है। उनको समझने से छुटकारा हो भी सकता है। पुरानी सारी संस्कृति दबाने वाली संस्कृति थी। आज की अधिकतम समस्याएं, जिन्हें हम आज बर्निंग प्रॉब्लम्स कहते हैं, जिन्हें हम जिंदा जलते हुए प्रश्न कहते हैं, वे पुरानी सभ्यता के सप्रेशन और दमन से पैदा हुए हैं। आज जलते हुए हैं, लेकिन उनकी जलन और उनकी आग ऐसे मार्गों से भी निकल जाती है जिनसे उनका कोई संबंध नहीं है।
मैं दफ्तर में हूं और मेरे मालिक से झगड़ा हो गया, तो मालिक पर मैं क्रोध नहीं करता हूं, लेकिन जाकर अपनी पत्नी पर टूट पड़ता हूं। और पत्नी की समझ के बाहर होता है। उसने बेचारी ने कुछ बिगाड़ा भी नहीं। दिन भर मेरे घर में मेरे बच्चों की फिकर करे, मेरे बर्तन साफ करे, मेरे कपड़े धोए और सांझ को मैं पहुंचूं कि उसकी गर्दन पकड़ लूं और उसे कुछ समझ में न आए कि क्या मामला हो गया है। लेकिन वह भी मुझ पर नहीं टूट सकती है क्योंकि पति परमात्मा है। ऐसा पतियों ने ही उसे समझाया हुआ है! और पति कैसा भी हो, उसको तो सती-सावित्री होना ही है। वह भी समझाया हुआ है। तो वह मुझे सह जाती है। लेकिन बेटे की प्रतीक्षा करती है स्कूल से आते कि बेटा फंस जाए आकर तो उसकी गर्दन पकड़ ले। बेटा चला आ रहा है, उसे पता भी नहीं है। बस्ते को झुलाते हुए, गीत गाते हुए, उसे पता ही नहीं कि मां तैयार है, पिता ने मां को तैयार कर रखा है। वह तैयार है, वह उस पर टूटेगी। वह आते से टूट पड़ने वाली है। कपड़े खराब हो गए हैं, गंदे लड़कों के साथ खेला है, और हजार कसूर हैं। जिंदगी में कसूर जब खोजने हों तो मिल ही जाते हैं, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। कल भी वह इन्हीं बच्चों के साथ खेला था, कल भी कपड़े इतने ही गंदे हो गए थे। वह बच्चा कैसा, जिसके कपड़े गंदे होकर घर न आएं! वह कोई बूढ़ा है? बूढ़े अपने कपड़े बचा कर आते हैं इसलिए और कुछ नहीं बचा पाते हैं, सिर्फ कपड़े ही बचा पाते हैं। वह बच्चा है, अभी कपड़े की फिकर कहां है। अभी कपड़े कहां बाधा डालते हैं जीने में उसके! अभी कपड़े अर्थहीन हैं। अभी कपड़ों का कोई मूल्य नहीं है। वह कल भी कपड़े बिगाड़ कर आया था, लेकिन कल नहीं पकड़ा गया था, क्योंकि कल पति ने पत्नी को तैयार नहीं किया था। आज पत्नी तैयार है। आज वह टूट पड़ती है। लेकिन लड़का क्या करे, वह चौकन्ना खड़ा हो जाता है। उसने कोई

कसूर तो किया नहीं लेकिन वह क्या करे? वह एकांत में जाकर अपनी गुड़िया की टांगें तोड़ देता है, गर्दन मरोड़ देता है।
हमारे दबे हुए विकार नये-नये मार्गों से--बहुत इनोसेंट, बहुत निर्दोष मार्गों से निकलना शुरू हो जाते हैं। मेरी अपनी समझ है कि हिंदुस्तान में आजादी के बाद जो हत्याकांड हुआ, हिंदुस्तान और पाकिस्तान की सीमाओं पर-- हिंदुओं का, मुसलमानों का, बच्चों का, औरतों का, आदमियों का कहना चाहिए--जो हत्याकांड हुआ, वह अंग्रेजों के प्रति हमारे दबाए हुए क्रोध का अंतिम फल था जिसको हम नहीं निकल पाए। जिसको हम नहीं निकाल पाए और गांधीजी और उनके साथियों ने उसे नहीं निकलने दिया। उन्होंने अहिंसा, अहिंसा अहिंसा की सारी बातें कीं। वह क्रोध इकट्ठा होता चला गया। वह इकट्ठा होता चला गया फिर कोई उपाय न रहा। इसलिए आजादी के बाद खुल कर निकला। हमने इतनी हत्या, अगर इतना बलिदान, इतनी कुर्बानी आजादी के लिए की होती तो एक चमकदार आजादी हाथ में आती। एक आजादी भी मरी-मराई हाथ में आई और पीछे हमने लाखों लोगों की हत्या भी की। वह बेमानी थी, इररिलेवेंट हो गई। लेकिन वह वैसी थी जैसे बच्चा गुड्डे को मरोड़ डाले और गुड्डे का कोई कसूर न हो।
हिंदू-मुसलमान लड़े। अगर हिंदुस्तान अंग्रेजों से लड़ लेता दिल खोल कर
तो हिंदू-मुसलमान कभी न लड़ते। वह क्रोध ही इकट्ठा न हो पाता। अगर हिंदुस्तान अंग्रेजों से लड़ लेता दिल खोल कर तो हिंदू और मुसलमान साथ खड़े हो जाते और एक हो जाते। वह लड़ाई उन्हें इकट्ठा कर गई होती, तोड़ नहीं गई होती। लेकिन वे अंग्रेजों से लड़ न पाए। अंग्रेजों का सारा अपमान पिया। अपनी छाती पर उनके जूते सहे। वह सारा का सारा इकठ्ठा हो गया, वह निकल न सका। उसको हम रोकते रहे, रोकते रहे, रोकते रहे। रुका-रुकाया, फिर कोई उपाय न रहा... ।
आजादी की रात हत्याकांड बन गई। सारे मुल्क में आग फैल गई। वह बड़ी अनहोनी घटना है। लेकिन उसे समझना चाहिए कि वह कैसे घटी, वह कैसे घट गई? वह उस घटने में हिंदू-मुसलमान का उतना हाथ नहीं है। हिंदू-मुसलमान तो बहाना बना। उसके पीछे कारण है डेढ़ सौ वर्ष की गुलामी, और डेढ़ सौ वर्ष की गुलामी में इकट्ठा हुआ क्रोध। और उस क्रोध को निकलने का कोई उपाय नहीं। और उस क्रोध का जब सब मामला खत्म हो गया तब वह टूट पड़ा आपस में, और जिसने जिसको कमजोर पाया उसकी गर्दन पकड़ ली। जहां मुसलमान कमजोर था वहां मुसलमान मारा गया, जहां हिंदू कमजोर था वहां हिंदू मारा गया। बच्चे मारे गए, औरतें मारी गईं। लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि वह सवाल सप्रेशन का था। वह दबा हुआ क्रोध और हिंसा थी, जो निकली।
हर दस साल में एक युद्ध की जरूरत पड़ती है दुनिया में। क्योंकि हर दस साल में हम इतनी बेवकूफियां इकट्ठी कर लेते हैं कि जिन्हें प्रकट करने के लिए और कोई उपाय नहीं रह जाता। हर दस साल, पंद्रह साल में एक हिटलर, एक माओ पैदा करना ही पड़ता है, उसके बिना काम नहीं चलता। वह हमारी बहुत नेसेसिटी है, हमारी बहुत जरूरत है। वह हमें बड़ी राहत दे जाता है। दस-पंद्रह साल के लिए फिर हम निश्चिंत जी पाते हैं। फिर इतना ही इकट्ठा कर लेते हैं। क्या आपको पता है कि जब युद्ध होता है तो दुनिया में हत्याएं कम हो जाती हैं, आत्महत्याएं कम हो जाती हैं, चोरियां कम हो जाती हैं, डकैतियां कम हो जाती हैं, खून कम हो जाते हैं। जब युद्ध होता है तब ये क्यों कम हो जाते हैं? मैं बहुत सोचता था। पहले महायुद्ध में यह हुआ था। तब कुछ समझ में नहीं पड़ा कि क्यों ऐसा हुआ? आखिर जर्मनी में युद्ध हो रहा हो, या यूरोप की जमीन पर युद्ध हो रहा हो, तो चीन में चोरी कम हो जाने का क्या कारण है? लेकिन चीन में चोरी कम हो जाती है, हिंदुस्तान में हत्याएं कम होती हैं। यहां तक मजा है कि लोग कम पागल होते हैं, युद्ध के समय में। पागलों की संख्या नीचे गिर जाती है। इसका फिर दूसरे महायुद्ध में तो बहुत जोर से यह हुआ। तब यह खयाल में आना शुरू हुआ कि जब सामूहिक पागलपन चल रहा हो तो प्राइवेट पागलपन की कोई जरूरत नहीं है। वे उसी में रस ले लेते हैं, उसी में निपटारा कर लेते हैं, उसी में निकास हो जाता है। तो एक-एक आदमी को अलग-अलग पागल होने की जरूरत नहीं। जब सामूहिक हत्या चल रही हो तो हत्या का मजा आ जाता है।

ध्यान रहे, जो हत्या करता है, वही हत्या नहीं करता। जो किनारे खड़े होकर देख कर मजा लेता है वह भी हत्या का भागीदार है। वह भी रस लेता है। उसका भी हाथ है। एक हवा बनाता है जिसमें हत्या हो सकती है। हम हत्या के लिए आतुर हैं। जब किसी की छाती में छुरा भुंकता है और खून के फव्वारे फूटते हैं तो हमारे भीतर कोई तृप्ति होती है। हमारे भीतर कुछ शांत होता है। रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों तो हम हजार काम छोड़ कर साइकिल रोक कर वहीं खड़े हो जाते हैं। ऐसे ऊपर से कहते हैं कि क्यों लड़ते हो? भीतर से भगवान से कहते हैं कहीं छूट ही न जाएं, लड़ाई होनी ही चाहिए। और अगर वे दोनों मान जाएं भीड़ की कि अच्छा नहीं लड़ते, आप कहते हैं तो बात खत्म है, तो सारी भीड़ उदास लौटेगी, समय बेकार गया। कोई मतलब न निकला। लेकिन अगर वे जूझ ही जाएं और खून टपक जाए तो सारी भीड़ एक भीतरी रस और तृप्ति को लेकर लौटेगी।
हम अपने भीतर बहुत इकट्ठा कर रहे हैं। पुरानी सारी संस्कृति सप्रेसिव थी। वह दमन सिखाती थी। उसमें कोई, जिसको विसर्जन कहें वह नहीं सिखाया। इसलिए आदमी के सारे प्रश्न दमन से पैदा हुए प्रश्न हैं। दंगा हिंदू- मुसलमान का होता है लेकिन स्त्री क्यों पकड़ ली जाती है? बड़ी हैरानी की बात है। हिंदू-मुसलमान लड़े, लेकिन स्त्री फौरन फंस जाती है।
अभी मैं एक सभा में बोल रहा था और सभा में कुछ दंगा हो गया, तो दंगा हो गया तो मेरे पास गांव का कमिश्नर भागा हुआ आया और उसने कहा कि एक काम करिए, सबसे पहले स्त्रियों को निकालने का इंतजाम करवाइए। तो मैंने कहाः स्त्रियों से क्या मामला है? जो लोग लड़ रहे हैं उन्हें लड़ने दो। उसने कहाः आपको कुछ पता नहीं। लोग लड़ इसीलिए रहे हैं कि अगर उपद्रव पूरा हो जाए तो स्त्रियां अभी फंस जाएं। अब यह बड़ी हैरानी की बात है। जब झगड़ा होता है तो स्त्रियां एकदम से क्यों उलझ जाती हैं? वह चाहे कलकत्ते में हो, वह चाहे अहमदाबाद में हो, कहीं भी हो, स्त्री क्यों बीच में आ जाती है? असल में सेक्स का इतना सप्रेशन किया है, इतना दमन किया है कि हर आदमी उबल रहा है। मौके की तलाश है। अगर उपद्रव हो जाए तो मौका पूरा है, फिर आइडेंटिटी नहीं रह जाती है कि कौन आदमी क्या कर रहा है? कोई झंझट नहीं है। फिर हम कर ही नहीं रहे, भीड़ कर रही है। इसलिए जो भी हो रहा है, हो सकता है। सब जगह हमारा दमन, हमारी समस्याएं बनता है। इस समय हिंदुस्तान के सामने जो खास समस्याएं हैं, उनको मैं दोहराऊं, और आपसे कहूं कि वे दमन से पैदा हुई हैं। एक समस्या है हिंदुस्तान के सामने, वह है पद की, धन की पागल दौड़। सिद्धांत-विद्धांत सब बातें हैं। सारी दौड़ पद की और धन की है। सब बातें हैं सिद्धांत--धन की और पद की दौड़ है। लेकिन यह हिंदुस्तान इतना पागल क्यों हो गया है धन और पद के लिए? यह तीन हजार साल से हम धन और पद के खिलाफ हैं। हम कहते हैं कि धनी होना पापी होना है। हम कहते हैं, धन होना बड़ी बुराई है। गरीब होना बड़ी ऊंची बात है। तीन-चार-हजार साल से गरीब होना हम सिखा रहे हैं। गरीब होने के लिए कोई राजी नहीं है। गरीब होना स्वभाव के विपरीत है। गरीब होना प्रकृति के प्रतिकूल है। कोई आदमी राजी नहीं है। न किसी आदमी को राजी होना चाहिए। हां, सिर्फ इस तरह के लोग राजी हो सकते हैं जिनकी गरीबी पर अमीरी से भी ज्यादा खर्च करना पड़े, ऐसे लोग राजी हो सकते हैं।
चर्चिल ने कहीं कहा है कि गांधी दुनिया के उन गरीब आदमियों में से एक हैं जिनके ऊपर अमीरों से ज्यादा खर्च होता है। और यह ठीक है, यह बात सच है। यह बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन, गांधी की गरीबी बहुत महंगी है। अगर बहुत महंगी गरीबी मिले तो कोई भी गरीब हो सकता है। वह गरीबी बड़े मजे की है। या एक रास्ता और है कि अगर कोई आदमी अमीरी से ऊब जाए तो स्वाद बदलने को गरीब हो जाए। बुद्ध और महावीर ऐसे ही गरीब होते हैं। आज अमरीका में भी हिप्पी और बीटल और बीटनिक इसी तरह गरीब हो रहे हैं। अमीर घरों के लड़के हैं, स्वाद बदलने के लिए बनारस की सड़कों पर भीख मांग रहे हैं।
अभी मैं बनारस था तो दो हिप्पी मुझे मिलने आए। मैंने उनसे कहाः पागल
हो गए हो? मैंने सुना है, तुम अमीरों के लड़के हो। उन्होंने कहाः हम अमीरों के लड़के हैं, लेकिन अमीरी से ऊब गए हैं। सब बेस्वाद हो गया है। कोई मतलब नहीं है। सब है, तो मजा ही चला गया। इधर आकर बड़ा आनंद आ रहा है। दस पैसे के

लिए आतुर खड़े होते हैं हाथ फैला कर, पता नहीं मिलेंगे, नहीं मिलेंगे। जिंदगी में बड़ी पुलक आ गई। पता नहीं, मिलेंगे, नहीं मिलेंगे! बड़ा दांव है।
दस पैसे के लिए हाथ फैलाया, हो सकता है आदमी मना कर दे कि नहीं है। हाथ वापस लौटा लेना पड़ेगा। सुबह की चाय नहीं पी है, हाथ फैला कर पुलक से प्रतीक्षा कर रहे हैं। और जब दो घंटे के बाद एक कप चाय पी पाते हैं तो उस चाय का मजा ही दूसरा है।
ये अमीरी से ऊबे हुए लोग गरीब हो सकते हैं। यानी मेरा कहना यह है कि गरीबी अमीर आदमी की लास्ट लग्जरी है, आखिरी विलास है, जो अमीर आदमी ही अफर्ड कर सकता है, गरीब आदमी नहीं। इसलिए जब अमीरी बढ़ती है तो गरीबी के नये-नये फैड और क्रीड पैदा हो जाते हैं। आज अमरीका गरीब होने को बड़ा उत्सुक है। इसलिए कोई महर्षि को पकड़ लेता है, कभी किसी को पकड़ लेता है, कभी किसी के पीछे चला जाता है। वह गांधी के लिए भी बड़ा आतुर है। वह आतुरता अमीर अमरीका की है जो अमीरी से ऊबा हुआ है और गरीबी में रस लेना चाहता है। अमरीका में आज उपवास की बड़ी चर्चा है। और जगह-जगह स्थान बने हुए हैं जहां लोग आकर उपवास कर रहे हैं। असल में जब ओवर फैड, ज्यादा खा जाते हैं लोग तो उपवास शुरू हो जाता है। लेकिन गरीब आदमी को उपवास का क्या मतलब है? मैं उरली कांचन में कभी-कभी ठहरता हूं। वहां उपवास करने लोग आते हैं। तीस-तीस दिन, चालीस-चालीस दिन के लोग उपवास करते हैं। लेकिन वे, वे ही लोग होते हैं जिनके पास इतनी चर्बी है कि चालीस दिन कुछ हर्जा नहीं होता, फायदा ही होता है। वह चर्बी चुक जाती है, वे आनंदित ही घर लौटते हैं। लेकिन गरीब आदमी को चालीस दिन का उपवास करवा दो तो जिंदा घर नहीं लौटेगा। उपवास करने के लिए ओवर फीडिंग चाहिए। ज्यादा खा लिया हो, उपवास बड़ी अच्छी बात है। इसलिए जो कौमें ज्यादा संपन्न हो जाती हैं उनमें उपवास चल जाता है--जैसे जैनियों में। उसका और कोई कारण नहीं है। जैनों में उपवास चलने का कुल कारण इतना है कि इस देश में सबसे ज्यादा सुलभ खाने की व्यवस्था, धन की व्यवस्था, तिजोरियां उनके पास हैं। तीन हजार साल से उनके पास हैं। उसकी वजह से वे उपवास में बड़े आनंदित होते हैं। वे कहते हैं, उपवास बड़ा धार्मिक कृत्य है। उपवास सिर्फ पश्चात्ताप है ज्यादा खाने का। जिसने ठीक-ठीक खाया है उसे उपवास की कोई जरूरत नहीं है। ज्यादा जो खाएगा उसे उपवास करना पड़ेगा, दंडित होना पड़ेगा। स्वाभाविक है।
गरीब, लेकिन कोई होने को राजी नहीं है, न होना चाहिए। हां, कुछ रुग्ण चित्त लोग अपने को सताने को राजी हो सकते हैं। मैंने कहा, तीन तरह की गरीबियां स्वीकृत हो सकती हैं--एक ऐसी गरीबी जो अमीरी से भी ज्यादा अमीर हो। एक ऐसी गरीबी जो अमीरी से स्वाद बदलने के लिए अंगीकार की गई हो। और एक ऐसी गरीबी जो मैसोचिस्ट होती है। कुछ लोग हैं जो अपने को सताने में रस लेते हैं--रुग्ण, बीमार; अपने को सताने में भी रस ले सकते हैं, लेकिन वे पैथॉलाजिकल हैं। उनका इलाज होना चाहिए। इन तीन तरह के लोगों के अतिरिक्त दुनिया में कोई आदमी दुख के वरण करने के लिए न राजी होता है, न होना चाहिए। लेकिन हिंदुस्तान तीन हजार साल से दुख की शिक्षा दे रहा है कि दुख को वरण करो। इसलिए यहां एक उपद्रव पैदा हो गया है। वह उपद्रव यह है कि जब तक हम गुलाम थे तब तक तो ठीक था। अब हम स्वतंत्र हो गए हैं। अब हम सबको सुख की एक पागल दौड़ शुरू हुई है, जो बिल्कुल ही फैनेटिक है। क्योंकि हमने इतने दिन तक दुख को वरण करने की चेष्टा की है कि अब सब बांध तोड़ कर हम सुख की तरफ दौड़ रहे हैं। अब सब बांध तोड़ दिए। अब वह सुख चाहे दूसरे को दुख देने से मिले तो भी हम लेने को तैयार हैं। हमने इतने दिन तक गरीबी को पकड़ने की, आदर देने की कोशिश की है कि अब हम अमीरी की तरफ पागल हो गए हैं। अब वह अमीरी चाहे हजारों लोगों की छाती पर खड़े होकर मिलती हो तो भी हम तैयार हैं। इसलिए रिश्वत है, इसलिए भ्रष्टाचार है, इसलिए बेईमानी है। बेईमानी, रिश्वत, भ्रष्टाचार, अमीर होने की पागल तरकीबें हैं। और यह मुल्क इतने दिन से गरीबी का आदर कर रहा है कि यह पागल ढंग से ही अमीर हो सकता है। इसे और कोई ढंग नहीं दिखाई पड़ता है। असल में हम सुख को स्वस्थ रूप से स्वीकार नहीं करते हैं, इसलिए हम बीमार होकर ही सुख की तरफ दौड़ सकते हैं। इस देश का

भ्रष्टाचार, इस देश की रिश्वतखोरी, इस देश की कालाबाजारी हमारे सुख के विरोध से पैदा हुई है, लेकिन गुलामी में उनका पता न चला।
असल में, सभी पता स्वतंत्रता में चलता है। स्वतंत्रता का मतलब यह है
कि हम जो करना चाहें उसके लिए स्वतंत्र हुए। गुलामी का मतलब यह है कि जो हम करना चाहें उसके लिए हम स्वतंत्र नहीं हैं। तो गुलामी में हम स्वतंत्र न थे, जो हम होना चाहें। अब हमें मौका मिला जो हम होना चाहें। तो अब हम हो गए हैं पूरे अर्थों में। अब हम होने की कोशिश कर रहे हैं। और उस कोशिश को अगर हम ऊपर से सुलझाने की कोशिश करेंगे तो वह हल न होगी।
मामला ऐसा है कि एक आदमी को हम तीस दिन भूखा रखें, तीस दिन उपवास करवाएं और अचानक उसको चौके में पहुंचने का मौका मिल जाए तो यह पक्का है कि वह आदमी ज्यादा खा लेगा। और यह भी पक्का है कि जितना नुकसान उसे भूखे रहने से पहुंचा होगा उससे ज्यादा नुकसान वह खाने से पहुंचा लेगा। और जब वह खाने से नुकसान पहुंचा ले तो वह भी सोचेगा कि खाना बुरी चीज है, फिर भूखा रहना चाहिए। हम तीन हजार साल से दमन किए हुए हैं, सुख की वृत्ति का। वह जो सुख के खोज की सहज वृत्ति है मनुष्य के भीतर उसे हमने दबाया है और काटा है। अब हम मुक्त हुए हैं, अब हम स्वतंत्र हुए हैं। इसलिए अब स्वतंत्रता ने हमें मौका दिया है। अब हम उस मौके का तीव्रता से प्रयोग कर रहे हैं। अब हम फीवरिश, बुखार की तरह दौड़ रहे हैं। और किसी भी तरह सुख मिल जाए तो उसको पाने की कोशिश में हैं। लेकिन यह कोशिश स्वस्थ नहीं है। और यह स्वस्थ तभी हो सकेगी जब हम बुनियादी दमन को दूर करने के लिए तैयार हो जाएं।
मैं आपसे कहना चाहता हूं, भारत को अपनी इन बीमारियों से मुक्त होने के लिए सुख की सहज खोज को स्वीकार करना पड़ेगा। लेकिन हम स्वीकार करते हैं, आवश्यकताएं कम करो, और मन आवश्यकताएं बढ़ाता है। सच तो यह है कि जीवन का नियम ही विस्तार है, संकोच नहीं है। एक बीज को गपा दें जमीन में, एक छोटा सा बीज फैलने लगता है, अंकुर फेंक देता है, पत्ते निकल आते हैं, बड़ा वृक्ष हो जाता है, फूल आकाश में खिलने लगते हैं। एक छोटा सा बीज फैल जाता है। जब पूरा फैल जाता है तब तृप्त हो पाता है। जब फूल खिल जाते हैं और फल लग जाते हैं तब तृप्त होता है। बीज को सिखाओ कि आवश्यकताएं मत बढ़ाना... क्योंकि ध्यान रहे, वृक्ष की आवश्यकताएं बीज से बहुत ज्यादा हैं। सच तो यह है कि बीज की कोई आवश्यकता ही नहीं है। बीज की आवश्यकता तभी बढ़नी शुरू होती है जब वह अंकुर बनता है। और जब वह फैलता है तब उसे पानी चाहिए और खाद चाहिए और सूरज की रोशनी चाहिए और किसी माली की रक्षा चाहिए और किसी का प्रेम चाहिए। उसे सब चाहिए, तब वह फैल पाएगा। उसकी आवश्यकताएं बढ़ती चली जाती हैं।
यह देश एक गलत शिक्षा के अंतर्गत जी रहा है कि आवश्यकताओं को कम करो। आवश्यकताओं को कम करने का मतलब? चित्त का जो विस्तार का सहज नियम है उसे रोको, दबाओ। हम समझाते हैं अपने देश को कि चादर से हमेशा पैर भीतर रखो। और मजा यह है कि चादर अपने आप नहीं बढ़ती और आदमी अपने आप बढ़ता चला जाता है। अब वह आदमी बड़ा हो रहा है और चादर उतनी की उतनी रहती है। और पांव भीतर सिकोड़ो, हाथ भीतर सिकोड़ो। कभी हाथ बाहर निकलता है, कभी पैर बाहर निकलता है, कभी सिर बाहर निकलता है। और चादर? चादर बढ़ानी नहीं है। क्योंकि चादर वही बढ़ाता है जो पैर फैलाता है। जब पैर बाहर निकलते हैं तब जरूरत आती है कि चादर को बढ़ाओ। जब पैर ही बाहर नहीं निकलते तो चादर को बढ़ाने की जरूरत ही नहीं आती। यह देश कह रहा है अब तक कि आवश्यकताएं कम करो। फिर इसके दोहरे परिणाम होते हैं। एक तो परिणाम यह होता है कि जो आवश्यकताएं बढ़ा कर जीता है वह पापी मालूम पड़ने लगता है दूसरों को और खुद को भी। उसको लगता है कि मैं कुछ गलती कर रहा हूं। मैं कुछ पाप कर रहा हूं। तो उसके विस्तार की जो सहजता है वह नष्ट हो जाती है। पाय.जनस हो जाती है, जहर मिल जाता है, पाप का बोध सम्मिलित हो जाता है। और दूसरी तकलीफ यह होती है कि वह लोगों से यह छिपाने की कोशिश करता है कि मैं आवश्यकता नहीं बढ़ा रहा। आवश्यकताएं पीछे के दरवाजे से बढ़ा रहा है। बाहर के दरवाजे पर चटाइयां लगा लेता है।
जब डाक्टर राजेंद्र प्रसाद पहली दफा राष्ट्रपति हुए तो मैं दिल्ली गया। एक मित्र ने मुझे कहा कि देखते हैं, कितने त्यागी पुरुष हैं! जहां वायसराय रहता था उस भवन के अंदर उन्होंने चटाइयां लगा ली हैं। मैंने कहाः

अजीब पागल हैं। और खर्चा ज्यादा किया। चटाइयों का खर्चा तो कम से कम वायसराय नहीं करता था। बाकी खर्च उतना ही है जारी। बैठक के अंदर, वायसराय की बैठक के अंदर चटाई लगा ली और वे झोपड़े के भीतर हो गए क्योंकि वे चटाई के भीतर हैं। और एक हजार नौकर काम कर रहे हैं और उतना बड़ा महल और वह सारा विस्तार जारी है, लेकिन राजेंद्र प्रसाद चटाइयों के भीतर बैठे हैं। मैंने कहा कि वायसराय सीधा-सादा आदमी था, राजेंद्र प्रसाद थोड़े तिरछे आदमी मालूम पड़ते हैं। वायसराय जैसा जी रहा था, जी रहा था। यह चटाई का धोखा तो खतरनाक है। यह पाखंड है, यह हिपोक्रेसी है।
यह तो ऐसा है कि मैंने उनसे कहाः एक संन्यासी, एक बड़े संन्यासी मेरे साथ एक दिन कार में जा रहे थे। इम्पाला गाड़ी है। मैं तो पहले ही जाकर बैठ गया था। फिर संन्यासी के शिष्य आए, उन्होंने कहाः जरा उठिए, क्योंकि संन्यासी जी सोफे पर नहीं बैठते हैं और गाड़ी में सोफा है। तो मैंने कहाः संन्यासी जी कैसे बैठेंगे, किस तरकीब से बैठेंगे? उन्होंने कहाः पहले सोफे पर चटाई डाल देंगे, फिर संन्यासी जी चटाई पर बैठ जाएंगे। वे चटाई पर ही बैठते हैं, वे सोफे पर कभी नहीं बैठते। फिर चटाई डाल दी गई। मैं सोफे पर रहा, संन्यासी चटाई पर हो गए। इम्पाला गाड़ी जा रही है, उन्हें मतलब नहीं है। वे अपनी जादू की चटाई पर जा रहे हैं।
यह बेईमानी पैदा होती है। जब हम आवश्यकताओं को कम करने की शिक्षा देते हैं जो कि अप्राकृतिक है, नैसर्गिक नहीं है, चित्त के विकास के अनुकूल नहीं है। कोई बीज विकसित नहीं होता संकोच से। मनुष्य भी विकसित नहीं होता है। विस्तार जीवन का नियम है। वैज्ञानिक कहते हैं कि चांद-तारे भी विस्तार पा रहे हैं, एक्सपैंड कर रहे हैं। सारा जगत एक्सपैंडिंग है, सब चीजें फैल रही हैं। चांद-तारे करोड़ों-अरबों मील की रफ्तार से फैलते जा रहे हैं। विस्तार! ब्रह्म शब्द का मतलब भी विस्तार होता है। ब्रह्म का मतलब होता है, दि एक्सपेंडेड। वह जो फैला हुआ है और फैलता ही चला जा रहा है। विस्तार और ब्रह्म एक ही शब्द से बने हैं। ब्रह्मांड का मतलब, जो फैलता ही चला जा रहा है। जीवन का नियम तो फैलाव है, सब फैल रहा है। लेकिन हमको एक शिक्षा दी गई है सिकुड़ने की--सिकोड़ो अपने को। सिकुड़ना चूंकि जीवन के प्रतिकूल है इसलिए पाखंड पैदा हुआ है।
हिंदुस्तान की एक जलती समस्या है पाखंड, सब तरह का पाखंड। जो आदमी पक्का अहंकारी है, वह हाथ जोड़ कर कहता है, मैं तो कुछ भी नहीं हूं, आपके पैर की धूल हूं। जरा उसकी आंखों में देखें। वह ऐसा लग रहा है कि अगर मौका मिल जाए तो आपको अभी पैर के नीचे दबा दे। लेकिन वह कह रहा है कि मैं विनम्र हूं, मैं सेवक आदमी हूं, मैं आपके पैर की धूल हूं। यह हम पाखंड सिखा रहे हैं। वह आदमी भीतर तिजोरी बड़ी करता जा रहा है और वस्त्र सादे पहने हुए है। वह पैदल चल रहा है और महल बड़ा किए जा रहा है। वह यूरोप और अमरीका के बैंकों में धन इकट्ठा कर रहा है और यहां बैठ कर चर्खा कात रहा है। बहुत अजीब मामला है। यह भारत का जलता हुआ प्रश्न है, हिपोक्रेसी, पाखंड! हर आदमी पाखंड के साथ में खड़ा हो गया है। तोड़ेंगे कैसे इसे हम?
जब तक हम उन नियमों को नहीं बदलते जिनकी वजह से पाखंड पैदा होता है, तब
तक यह तोड़ना मुश्किल है। जीवन को सहज स्वीकार करना होगा तो हिपोक्रेसी टूट सकती है।
टायनबी ने एक बात लिखी है। उसने लिखा है कि पश्चिम की संस्कृति सेंसुअस है, सेंसेट है, ऐंद्रिक है। कोई मुझे वह किताब पढ़ कर सुना रहा था। पक्के भारतीय मुझे वह किताब पढ़ कर सुना रहे थे। उन्होंने कहाः देखते हैं, टायनबी जैसा विचारक कहता है कि पश्चिम की संस्कृति सेंसेट है, ऐंद्रिक है। तो मैंने कहाः इतनी अकड़ आप किसलिए दिखा रहे हैं? अगर पश्चिम की संस्कृति सेंसेट है तो पूरब की संस्कृति हिपोक्रेट है, पाखंडी है।
और ऐंद्रिक होना पाखंडी होने से बेहतर है। क्योंकि ऐंद्रिक होना जीवन
का सहज नियम है। ऐंद्रिक व्यक्ति कभी आध्यात्मिक भी हो सकता है क्योंकि जिसने शरीर को स्वीकार किया है वह किसी दिन आत्मा को भी स्वीकार कर सकता है। जिसने द्वार में प्रवेश किया वह कभी भीतर के गर्भ में भी पहुंच सकता है। जो कभी सीढ़ियां चढ़ा है वह कभी मंदिर के भीतर भी जा सकता है। लेकिन

पाखंडी कभी भी आध्यात्मिक नहीं हो सकता। हमारी संस्कृति आध्यात्मिक नहीं, पाखंडी है, क्योंकि हमने जो नियम निर्मित किए हैं, वे आदमी को झूठा होने के लिए मजबूर करते हैं। और अगर वह सीधा-सीधा साफ-साफ हो तो पापी मालूम पड़ता है, कंडेमनेशन मालूम पड़ता है, चारों तरफ निंदा मालूम पड़ती है। वह जितना पाखंडी हो उतना आदर, उतना सम्मान मिलता है।
मैं एक आश्रम में ठहरा हुआ था। तीन दिन वहां था। आश्रम था, तो आश्रम में जिस तरह के जीव रहते हैं वैसे जीव वहां थे। एक लड़की ने मुझे आकर रात को कहा--ड़रते हुए, जब सब चले गए, मैं बिस्तर पर सोने गया, वह आई। उसने कहाः मुझे एक बात कहनी है। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। मैं कालेज से निकली थी और जनता की सेवा करने के काम में आ गई। जिस गुरु से मैंने जनता की सेवा का पाठ लिया, उन्होंने मुझे ब्रह्मचर्य, आजीवन ब्रह्मचर्य का नियम दिलवा दिया। उन्होंने कहा कि तू आजीवन ब्रह्मचारी रह! तब मैं जानती भी न थी। क्योंकि मैं सेक्स ही न जानती थी तो ब्रह्मचर्य कैसे जानती? मुझे कुछ पता ही न था कि ब्रह्मचर्य यानी क्या? जब इतना बड़ा महात्मा कहता है तो मैंने कसम खा ली और जीवन भर के लिए नियम ले लिया।
लेकिन जिंदगी नियम नहीं मानती। जिंदगी बड़ी अदभुत है। वह सब नियम तोड़ देती है, सब दीवालें तोड़ देती है।
उसने कहाः उसी सेवा में लगे-लगे एक व्यक्ति से मेरा प्रेम हो गया। और
जब प्रेम हुआ तब हम निकट, निकट और निकट आना चाहे। तब मुश्किल खड़ी हो गई। क्योंकि वह भी आजीवन ब्रह्मचर्य का पाठ लिए बैठा था। अब हम क्या करें? अब हम इतनी कठिनाई में पड़ गए कि हमने अपने गुरु को जाकर कहा कि हम तो मुश्किल में पड़ गए हैं। आप हमें कृपा करके आशीर्वाद दें कि हम विवाह कर लें। हम तो बहुत कठिनाई में पड़ गए हैं। गुरु पहले तो बहुत नाराज हुए। असल में गुरुओं की गुरुता नाराजगी पर ही निर्भर है। अगर वे नाराज न हों तो गुरुता खिसक जाए। वे भारी नाराज हुए कि यह बहुत पाप है, यह है, वह है। उन्होंने हजार उपदेश दिए, नरक में सड़ोगे। लेकिन वे नरक में जाने को तैयार थे लेकिन प्रेम छोड़ने को तैयार न थे। और कोई भी भला आदमी नरक में जाने को तैयार होगा, प्रेम छोड़ने को तैयार नहीं हो सकता। क्योंकि प्रेम इतना बड़ा स्वर्ग है कि हजार नरक सहे जा सकते हैं। उन्होंने कहाः जो कुछ भी हो, नरक तो जब होगा, होगा--अभी तो हमें विवाह की आज्ञा दें।
असल में पुराने नरक का अब प्रभाव नहीं रहा, क्योंकि आदमी ज्यादा निर्भय हुआ है। पुराना आदमी बहुत भयभीत था। उसको डरवाया जा सकता था। नया आदमी निर्भय हुआ है। उसे इतने आसानी से नहीं डरवाया जा सकता है। इसलिए पुराने सब समाधान गड़बड़ हो गए। वह डरे हुए आदमी को दिए गए समाधान थे। आज का आदमी निर्भय है। वह कहता है, होगा नरक। ठीक है, निपट लेंगे, देखेंगे। पहुंचेगे, हड़ताल तो कर सकते हैं नरक में! घेराव तो कर सकते हैं! देखेंगे नरक में। और जब सभी को नरक में जाना है तो देख लेंगे नरक में, घेराव कर लेंगे, हड़ताल कर लेंगे, कुछ करेंगे; सत्याग्रह, कुछ उपाय करेंगे। लेकिन अब नरक से मत डराओ।
उन दोनों ने कहा कि आप हमको क्षमा करें, नरक में जाने को तैयार हैं, हमारा विवाह करवा दें। आश्रम में मीटिंग बुला कर, पांच सौ, छह सौ लोगों के सामने गुरु ने उनका विवाह करवा दिया। तालियां बज गईं, फूलमालाएं डलवा दीं। फिर गुरु ने आशीर्वाद दिया और आशीर्वाद में उसने कहा कि तुम दोनों ने विवाह किया, यह बहुत अच्छा है, यह बड़ा पवित्र कार्य है। लेकिन ध्यान रहे, जीवन भर ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो। अब वे दोनों नासमझ उस भीड़ के सामने फिर चक्कर में आ गए और भीड़ ने तालियां बजाईं। तालियां बड़ी खतरनाक हैं। किसी से गलत काम करवाना हो तो तालियां बजा कर करवाया जा सकता है। ये सारे नेताओं से जो गलत काम हो रहे हैं आपकी तालियों से हो रहे हैं। जरा तालियां बहुत कंजूसी से बजाना भविष्य में, क्योंकि आपकी तालियां गलत खबर दे देती हैं। पांच लाख आदमी इकट्ठे हो जाएं, किसी नेता को ताली बजा दें, वह पागल हो जाएगा आदमी। कि ये पांच लाख आदमी मेरे साथ हैं। और उसको पता नहीं कि उसके ही दस आदमियों ने किराए की ताली बजाई है तो बाकी लोग सिर्फ साथ दे देते

हैं। तालियां बजा दीं पांच सौ लोगों ने, इतना ऊंचा कार्य! उन दोनों ने फिर ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया।
मैं जब उस आश्रम में ठहरा, तो उस लड़की ने मुझसे कहा कि दो साल हो गए हैं, या तो मैं आत्महत्या करूं या क्या करूं? मुझे फिट भी आने लगे, हिस्टीरिया भी शुरू हो गया, और रात भर सिर घूमता है, सिर दुखता है, चक्कर आते हैं। और हम इतने डर गए हैं कि अब क्या होगा। और पति से मैं इतनी डर गई हूं, और पति मुझसे डरता है क्योंकि कहीं ब्रह्मचर्य न टूट जाए! तो हम ताले लगा लेते हैं एक-दूसरे के कमरे में और चाबियां दूसरे के कमरे में फेंक देते हैं कि रात कहीं खोल न लें।
अब यह आदमी के जीने का ढंग है? इससे जिंदगी सुंदर होगी? इससे जिंदगी प्रेमपूर्ण होगी? इससे जिंदगी निपट पाखंड हो जाएगी। तो मैंने उनसे कहा, तुम घबड़ाओ मत। आज शाम कोई हजार लोग मुझे भी सुनने आने वाले हैं। ताली मैं बजवा दूंगा। ब्रह्मचर्य का व्रत छुड़वा देता हूं और आशीर्वाद देता हूं कि ब्रह्मचर्य का व्रत छोड़ कर स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा। घबड़ाना मत। क्योंकि वहां मेरे खयाल में एक भी देवता ब्रह्मचर्य का व्रत पालन कर रहा हो, ऐसा शास्त्रों में नहीं है। तुम बिल्कुल बेफिकर रहो, तुम जा सकोगे। यह हम एक अस्वाभाविक ढंग से जीवन को ढालने की जो कोशिश किए, उसने हमारे सारे प्रश्न खड़े कर दिए। एक भी प्रश्न को हम हल नहीं कर पाते, क्योंकि जिन समाधानों से प्रश्न पैदा होते हैं, प्रश्न पैदा होने पर उन्हीं समाधानों को हम वापस दोहराते हैं। जो दवा हमारी बीमारी है उसी दवा को हम और दिए चले जाते हैं। बीमारी और बढ़ती चली जाती है। और जैसे-जैसे इस देश में दवा होती है वैसे-वैसे बीमार और बीमार होता चला जाता है।
मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूं रि-कंसिडर करने की, पुनर्विचार करने की। हमारी सारी समस्याओं के पीछे हमारे पुराने समाधान हैं। उन पुराने समाधानों से मुक्त होना पड़ेगा। और प्रत्येक समस्या को नये छोर से, नये सिरे से, फ्रेशली, बिल्कुल ताजे ढंग से--जैसे हमने उस समस्या को कभी जाना नहीं--फिर से छूना पड़ेगा और फिर से खोलना पड़ेगा।
यदि हम अपनी समस्याओं को समाधानों के पर्दे से हट कर सीधा देखना शुरू
कर सकें तो भारत की ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जो हल न हो जाए। और यदि हम समस्याओं को समाधानों को मान कर ही हल करने की कोशिश करेंगे तो भारत की ऐसी कोई समस्या नहीं है जो रोज दुगुनी बड़ी न होती चली जाए। समाधानों से हट जाना पड़ेगा और समस्याओं को सीधा लेना पड़ेगा।
समस्याएं बहुत बड़ी नहीं हैं। जिंदगी के साथ प्रश्न होते ही हैं और जिन्हें जीना है उन्हें प्रश्न हल करने ही पड़ते हैं। हमारा कोई प्रश्न बहुत बड़ा नहीं है, न हमारी गरीबी का प्रश्न बहुत बड़ा है। अगर हमारे पुराने समाधान छोड़े जा सकें तो गरीबी इस देश की भी मिट सकती है। न हमारी नैतिकता का प्रश्न बहुत बड़ा है; अगर हम पुरानी नैतिक मान्यताओं की व्यर्थता को समझ सकें तो नई नैतिक मान्यताएं पैदा की जा सकती हैं। न हमारे युवकों की समस्या बहुत बड़ी है। अगर हम पुराने आधारों को ही युवकों पर न थोपे चले जाएं तो हमारे युवक की शक्ति मुक्त हो सकती है और देश के सृजन में लग सकती है।
इन आने वाले दिनों में जिंदगी की जो भी जीवित समस्याएं हैं, आप मुझे लिख कर दे देंगे--जिसके जो खयाल में जीवित समस्या है, मैं उस पर बात करना चाहूंगा। और उसके लिए क्या नया समाधान हो सकता है, उसकी भी बात करना चाहूंगा। मेरी बातों को मानना जरूरी नहीं है। मैं इस बात का सीधा-सीधा दुश्मन हूं कि कोई आदमी किसी को अपनी बातें मनवाए। बुरा है। वही तो पुराना ढंग है। नहीं, वह नहीं चाहिए। मेरी बातें मानने की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरी बात सुन ली, यह भी बहुत कृपा है। उस पर सोच लिया, यह भी बहुत कृपा है। अगर आप सोचने लग जाएं तो मैं मानता हूं कि आप भी उन समाधानों पर पहुंच जाएंगे जिन समाधानों से देश का हल हो सकता है।
आप सोचने लग जाएं इसकी मेरी फिकर है। मैं अपने विचार आपको दे दूं, यह मेरी चिंता नहीं है। मेरी चिंता यह है कि आप विचार करने लग जाएं। यह देश सोचने लगे तो कोई कारण नहीं है कि हम अगर सारे लोग सोचें तो हमारी कोई भी

समस्या बची रह जाए और कोई भी प्रश्न ऐसा हो कि हल न हो सके। सब सवाल हल हो सकते हैं। असल में सब सवालों के भीतर ही उनके हल छिपे होते हैं, लेकिन सोचने वाला मस्तिष्क चाहिए। और हमें सिखाया गया है कि कभी सोचना मत। सोचना ही मत, सोचना पाप है। मानना, सोचना मत। मैं नहीं कहना चाहता आप मुझे मानना। मेरी बातें इतना ही कर दें कि आपको उकसा दें, आपके भीतर थोड़ी चोट कर दें, थोड़े शॉक लग जाएं, आप थोड़े हिल जाएं और सोचना शुरू कर दें तो मेरा काम पूरा हो गया।
आप अगर सोचते हैं, हम अगर सोचते हैं, तो हम बहुत जल्दी उन निष्कर्षों
पर पहुंच जाएंगे जो अनिवार्य रूप से तार्किक चिंतन से पैदा होते हैं। तो जो भी आपके प्रश्न हों--यह तो मैंने प्राथमिक बात कही--जो भी आपको जलते हुए प्रश्न लगते हों वे आप लिख कर दे देंगे तो मैं तीन दिनों में उनकी बात करना चाहूंगा।

मेरी बातों को इतने शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का दूसरा प्रवचन

गरीबी और समाजवाद

बहुत सी समस्याएं हैं और बहुत सी उलझने हैं। लेकिन ऐसी एक भी उलझन नहीं जो मनुष्य हल करना चाहे और हल न कर सके। लेकिन यदि मनुष्य सोच ले कि हल हो ही नहीं सकता तब फिर सरल से सरल उलझन भी सदा के लिए उलझन रह जाती है। इस देश का दुर्भाग्य है कि हमने बहुत सी उलझनों को ऐसा मान रखा है कि वे सुलझ ही नहीं सकती हैं। और एक बार कोई कौम इस तरह की धारणा बना ले तो उसकी समस्याएं फिर कभी हल नहीं होती हैं।
जैसे बड़ी से बड़ी हमारी समस्या गरीबी की, दरिद्रता की, दीनता की है। लेकिन इस देश ने दीनता, दरिद्रता को दूर करने की बजाय ऐसी व्याख्याएं स्वीकार कर ली हैं, जिनसे दरिद्रता कभी भी दूर नहीं हो सकेगी। बजाय दरिद्रता को समझने के कि हम उसे कैसे दूर कर सकें, हमने दरिद्रता को इस भांति समझा है कि हम कैसे उसे स्वीकार कर सकें। दूर करना दूर, स्वीकार करने की प्रवृत्ति ने उसे स्थायी बीमारी बना दिया है। सोचा नहीं--ऐसा नहीं है, लेकिन गलत ढंग से सोचा। और कोई न सोचे तो कभी ठीक ढंग से सोच भी ले, लेकिन एक बार गलत ढंग से सोचने की आदत बन जाए तो हजारों साल पीछा करती है। गरीब हम बहुत पुराने समय से हैं। सच तो यह है कि हम अमीर कभी भी नहीं थे। हो भी नहीं सकते थे।
देश के सोने की चिड़िया होने की बातें हैं। वे बातें कुछ लोगों के लिए हमेशा सच रही हैं, पूरे देश के लिए कभी नहीं। कुछ लोगों के लिए यह देश हमेशा सोने की चिड़िया था, अब भी उनके लिए है लेकिन पूरे देश के लिए सोने की चिड़िया की बात बिल्कुल बेमानी है। देश हमेशा से गहरी गरीबी में रहा है। सच तो यह है कि हम इतने गरीब थे कि गरीबी के खिलाफ विद्रोह भी हम नहीं कर सके। गरीबी के खिलाफ भी विद्रोह तब शुरू होता है जब अमीरी थोड़ी सी फूटनी शुरू हो जाती है। गरीब गरीबी के खिलाफ विद्रोह भी नहीं कर सकता है। बहुत गरीब कैसे विद्रोह करेगा? अस्पताल जाने के लिए भी बिल्कुल बीमार होना काफी नहीं, थोड़ा सा स्वास्थ्य चाहिए ताकि अस्पताल तक जाया जा सके।
जब अमीरी की थोड़ी सी किरणें फूटनी शुरू होती हैं तब गरीबी के खिलाफ विद्रोह शुरू होता है। जब गरीबी इतनी ज्यादा होती है कि हमारे प्राण और हमारी आत्मा सब उसमें डूब जाते हैं तो गरीबी के खिलाफ बगावत भी पैदा नहीं होती। यह देश बहुत पुराने समय से, सदा से, सनातन से गरीब है। यह गरीबी हमने सोचा इस पर? हमारे विचारकों ने न सोचा हो, ऐसा नहीं है, लेकिन हमारे विचारकों ने इस गरीबी को इस भांति सोचा ताकि यह स्वीकृत हो जाए, अंगीकार हो जाए। हमने गरीबी के लिए व्याख्याएं की हैं। और हमारी सबसे खतरनाक व्याख्या यह थी कि हमने गरीबी को व्यक्ति के कर्मों से जोड़ दिया। यह इतनी खतरनाक, इतनी सुसाइडल, इतनी आत्मघाती व्याख्या थी कि इसके कारण हम पांच हजार साल गरीब रहे। और अगर यह व्याख्या अब भी जारी रहती है... और ऐसा लगता है कि अब भी जारी है!
साधु और संत और महात्मा गांव-गांव लोगों को यही समझाते फिर रहे हैं कि आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मों के फल के कारण। गरीबी को पिछले जन्मों से जोड़ देने का मतलब यह है कि गरीबी नहीं बदली जा सकती। उसके बदलने का कोई उपाय नहीं है, उसे भोगना ही पड़ेगा। वह अपने कर्मों का फल है। अगर मैंने आग में हाथ डाला है तो अब जल गया हूं तो भोगना ही पड़ेगा। पिछले जन्मों के कर्मों को अब बदलने का कोई उपाय नहीं है। पिछले जन्मों के कर्म वे हैं जो हो चुके हैं और उनका फल--गरीबी--मुझे आज भोगना पड़ रहा है।
हमने एक व्याख्या की जिसने गरीबी पर सील मोहर लगा दी कि इसे अब कभी नहीं तोड़ा जा सकता। गरीबी भोगनी ही पड़ेगी। और अगर गरीबी मिटानी हो तो इस जन्म में अच्छे कर्म करो ताकि अगले जन्म में गरीबी न रहे, अमीर हो जाएं। और अच्छे कर्मों में निश्चित ही बगावत नहीं आती। अच्छे कर्मों में विद्रोह नहीं आता। अच्छे कर्मों में क्रांति नहीं आती। अच्छे कर्मों में आती है शांति। क्रांति तो बुरे कर्मों का ही हिस्सा है। इसलिए शांति से जीयो,

संतोष से जीयो, सांत्वना रखो, अगले जन्म की प्रतीक्षा करो। गरीबी सुनिश्चित हो गई, उसको बदलने का कोई उपाय न रहा।
एक बार जब हमने यह तय कर लिया कि व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोग रहा है गरीबी के रूप में, तो फिर गरीब पर दया करना भी बेमानी हो गया। गरीब के साथ सहानुभूति भी व्यर्थ हो गई। अगर मैं अपने कर्मों का फल भोग रहा हूं तो दया और सहानुभूति की क्या जरूरत है? इसलिए यह देश गरीबी के प्रति बिल्कुल इनसेंसिटिव हो गया, संवेदनाहीन हो गया। अगर एक आदमी सड़क पर भीख मांग रहा है तो उस पर दया करने का कोई भी तो अर्थ नहीं है, वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। अपने कर्मों का फल भोगना ही चाहिए। और अगर मैं उसे दो पैसे दान कर रहा हूं तो उस भिखमंगे पर दया करके नहीं, वे दो पैसे मैं दान कर रहा हूं अगले जन्म में फिर अमीर होने के लिए, शुभ कर्म कर रहा हूं। उस भिखमंगे से उन दो पैसे के दान का कोई संबंध नहीं है। उस गरीब पर दया करने का कोई सवाल नहीं है। सिर्थ एक सवाल है कि उस पर दया करके मैं स्वर्ग की सीढ़ियों पर पैर रख सकता हूं। गरीब की गरीबी मेरे लिए सी.ढियों का काम बन सकती है, स्वर्ग तक पहुंचा सकती है।
दान को बुनियादी धर्म कहा है। इसलिए नहीं कि उससे गरीब को कुछ हित होगा। गरीब अपना फल भोग रहा है। दान से अमीर को हित होगा कि वह स्वर्ग के द्वार खोल लेगा। दान चाबी है। करपात्री जी ने एक किताब लिखी है और उसमें लिखा है कि समाजवाद कभी नहीं आना चाहिए। क्योंकि जिस दिन समाजवाद आ जाएगा उस दिन कोई गरीब न होगा। जिस दिन कोई गरीब न होगा, दान कौन देगा और कौन लेगा? और बिना दान के स्वर्ग का दरवाजा बंद है--स्वर्ग का दरवाजा बंद हो जाएगा।
गरीब रहना चाहिए ताकि हम उस पर सीढ़ियां बना सकें। दीन-दरिद्र रहना चाहिए ताकि उसके कंधे पर अपने पैर रख कर हम ऊपर जा सकें। इतनी संवेदनहीनता गरीबी के प्रति हममें पैदा हुई--हमारी व्याख्या के कारण। एक बार व्याख्या हम ऐसी कर लें तो फिर संवेदनहीन हो जाते हैं।
पुराने जमाने में यज्ञों में हम गाय को, बैल को और कुछ लोग कहते हैं, आदमी को भी काटते थे। लेकिन मजे से काटते थे, काटने वाले को जरा पीड़ा न होती थी, क्योंकि मान्यता यह थी कि काटा गया बकरा, काटी गई गाय स्वर्ग पहुंच जाती है। और जब स्वर्ग भेज रहे हैं तो काटने में तकलीफ क्या? तो यज्ञ में हिंसा के प्रति हम संवेदनहीन हो गए थे। कोई संवेदना का सवाल न था, हम स्वर्ग भेज रहे हैं। वह तो कुछ लोग इस मुल्क में हुए--चार्वाक, और उन्होंने कहा कि फिर अपने पिता को क्यों नहीं काट देते हो? स्वर्ग चला जाएगा। तब हमको खयाल आया कि हम बकरे और गाय के साथ क्या कर रहे हैं? लेकिन उस दिन तो गाय और बकरे को काटने वाला आदमी बड़ा कीमती था।
एक शब्द आपने सुना होगा। आज कोई भी लिखता है, अपने नाम के पीछे शर्मा, लेकिन आपको पता न होगा कि शर्मा का मतलब क्या है। शर्मा का मतलब है जो यज्ञ में गाय-बैल काटता था। शर्मन का मतलब काटने वाला। यह बड़ा गंदा शब्द है। इसका मतलब ही है काटने वाला, शर्मन, काट दे! तो वह जो काटता था गाय-बैल को, वह बड़ा कीमती आदमी था। क्योंकि वह गाय-बैल को स्वर्ग पहुंचाता था। तो वह बड़ा पूज्य था। लेकिन आज हम नहीं सोच सकते इस भाषा में। आदमी संवेदनहीन हो सकता है अगर व्याख्या उसे ऐसी मिल जाए।
गरीब के प्रति हम संवेदनहीन हो गए हैं, गरीबी के प्रति भी संवेदनहीन
हो गए हैं। और जब पिछले जन्मों का कर्म का फल है, तो अब कुछ भी नहीं किया जा सकता, गरीबी को स्वीकार ही करना होगा--एक। उस व्याख्या में एक दूसरी व्याख्या भी सम्मिलित थी कि गरीबी प्रत्येक व्यक्ति की निजी जिम्मेवारी है--इंडिविजुअल रिस्पांसिबिलिटी है। अगर मैंने बुरे कर्म किए हैं तो मैं गरीब हूं, और अच्छे कर्म किए हैं तो मैं अमीर हूं। गरीबी और अमीरी से समाज का कोई संबंध नहीं है, व्यक्ति का सीधा संबंध है। यह व्याख्या भी बड़ी महंगी पड़ी। क्योंकि वस्तुतः अमीरी और गरीबी सामाजिक संदर्भ में अर्थ रखती है। कोई व्यक्ति अकेला न अमीर हो सकता है, न गरीब हो सकता है। समाज की व्यवस्था में कोई अमीर होता है और कोई गरीब होता है। गरीबी और अमीरी सामूहिक दायित्व है--सोशल रिस्पांसिबिलिटी है। यह खयाल ही नहीं पैदा हुआ,

क्योंकि हमने व्यक्ति को जिम्मेवार ठहरा दिया था। इसलिए हम पांच हजार साल गरीब रहे। लेकिन ये व्याख्याएं अब भी हमारे मन में चलती हैं। अब भी हमारे मन इनसे घिरे हैं, अब भी हमारे मन इनसे मुक्त नहीं हो गए हैं। यह ध्यान रखना जरूरी है कि अगर गरीबी को तोड़ना हो तो ये व्याख्याओं में हमें आग लगा देनी पड़ेगी। यह चिंतन बदलना पड़ेगा।
गरीबी हमारा सामाजिक दायित्व है। लेकिन इतने से ही गरीबी मिट न जाएगी। इतने से सिर्फ गरीबी को मिटाने की सुविधा पैदा होगी। यह हमारी पुरानी आदत कि गरीबी को या तो पिछले जन्मों पर छोड़ो, या व्यक्ति के कर्मों पर छोड़ो, या भाग्य पर, या भगवान पर--हमें और भी खतरों में ले गई। फिर हमने... दूसरे पर छोड़ने की आदत से हमने कहा कि अंग्रेजों ने हमें लूट लिया, इसलिए हम गरीब हैं। अंग्रेजों के लूटने की वजह से थोड़ी हमें परेशानी हुई है, लेकिन उस वजह से हम गरीब नहीं हैं। अंग्रेजों के लूटने के पहले भी हम गरीब थे। और अगर हमने ऐसा सोचा कि अंग्रेजों ने लूट लिया, इसलिए हम गरीब हैं तो फिर हमने गरीबी को ठहरा लिया कि अब क्या कर सकते हैं? लुट ही गए हैं, गरीब रहना ही पड़ेगा। नहीं, मूल कारण खोजने की हमारी प्रवृत्ति नहीं है। फिर अभी एक नई बात पैदा हुई है कि पूंजीपति शोषण कर रहा है, इसलिए हम गरीब हैं, यह बात भी बहुत खतरनाक और झूठी है। पूंजीपति शोषण नहीं कर रहा था तो भी हम गरीब थे। और अगर आज पूंजीपति के पास जितना पैसा है वह बांट दिया जाए तो देश अमीर नहीं हो जाएगा, यह भी खयाल में रख लेना जरूरी है।
मुझे एक घटना याद आती है, एक अमरीकन अरबपति रथचाइल्ड से एक साम्यवादी विचारक मिलने गया और उसने रथचाइल्ड को कहा कि तुम्हारी वजह से मुल्क गरीब है, हजारों लोग गरीब हैं। तो रथचाइल्ड ने कागज उठाया, कलम उठाई, कुछ हिसाब लगाया और आधा डालर उस साम्यवादी विचारक को दे दिया और कहा, यह ले जाओ। उसने कहा, क्या मतलब आपका? इससे क्या मतलब--रथचाइल्ड ने कहाः जिनको और मांगना हो वे आ जाएं। मेरे पास जितनी संपत्ति है अगर मैं उसमें सारी दुनिया की आबादी का भाग दूं तो आधा-आधा डालर एक-एक आदमी के जिम्मे पड़ता है। यह मैं बांटे देता हूं। और जिसको भी मांगना हो वह ले जाए। लेकिन क्या तुम सोचते हो, दुनिया अमीर हो जाएगी?
अगर आज हिंदुस्तान में दस पूंजीपतियों की सम्पत्ति को बांट दिया जाए
तो क्या आप सोचते हैं यह देश समृद्ध हो जाएगा? इंदिराजी और उनके साथी इसी भ्रम में पड़े हैं कि अमीरों को बांट देने से कोई देश की गरीबी मिट जाएगी। हां, गरीब का क्रोध पूरा हो जाएगा, लेकिन क्रोध के पूरे होने से गरीबी नहीं मिट सकती। गरीब की शत्रुता पूरी हो जाएगी, गरीब की ईर्ष्या पूरी हो जाएगी, लेकिन गरीब की ईर्ष्या पूरी हो जाने से कोई गरीबी नहीं मिट जा सकती है। गरीब के कारण गहरे हैं, और अगर हम न समझ पाए तो हम एक बहुत बड़े खतरे की हालत में खड़े हैं। हमने पुरानी व्याख्या के कारण बहुत परेशानी उठाई। हमारी नई व्याख्या भी खतरनाक सिद्ध हो सकती है। अगर हमने यह समझ लिया कि कुछ पूंजीपतियों के कारण देश गरीब है और हमने उनको बांटने की कोशिश की तो हम सिर्फ गरीबी को बांट लेंगे, और हम कुछ भी न कर पाएंगे। अमीरी बांटने के लिए देश के पास है ही नहीं। धन भी तो चाहिए न बांटने के लिए। समाजवाद क्या बांट सकता है? धन हो तो बांट सकता है। समाजवाद गरीबी को बांटेगा तो क्या परिणाम हो सकता है? पूंजीपति जिम्मेवार है, इस भाषा में अगर गरीब ने सोचा तो गरीबी मिटने वाली नहीं है। फिर वह मूल कारण पर नहीं जा रहा है। विनोबा ने वैसी भूल की है। वह गांव-गांव गए और गरीबों से जमीन मांग ली और जमीन देने वाला भी गरीब हो गया। पांच एकड़ थी, उसने दो एकड़ दान कर दी, उसके पास तीन ही एकड़ बची।
देश इतना गरीब है कि बांटने की बात अगर हमने की तो सिर्फ गरीबी बंटेगी। अमीरी होना चाहिए न बांटने के लिए! घर में कुछ बांटने को हो तभी तो बांट सकते हैं। घर में बांटने को ही न हो तो क्या बांटिएगा? देश की गरीबी के कारण और भी गहरे हैं। लेकिन क्रोध गरीब का है--स्वाभाविक है। और इसलिए समाजवाद की बात गरीब को बड़ी अर्थपूर्ण मालूम होती है।
मैं खुद समाजवादी हूं लेकिन मैं समझता हूं कि अभी पचास साल तक इस देश
को समाजवादी बनाने की चेष्टा अत्यंत अप्रौढ़, चाइल्डिश और बचकानी है। पचास

साल तक इस देश को समाजवादी बनाने की कोशिश ऐसी ही है जैसे मां के पेट से पांच महीने के बच्चे को बाहर निकाल लिया जाए। वह बच्चा भी मरेगा और उस मां के बचने की उम्मीद भी बहुत कम है।
जब तक कोई देश ठीक से संपत्ति पैदा न कर ले तब तक समाजवाद सपना है। सपने देखने बहुत अच्छे हैं लेकिन उनको रूपांतरित करना जिंदगी में बहुत कठिन है।
अगर समाजवाद के लिए कोई भी रास्ता जाता है, निश्चित ही मास्को तक पहुंचना पड़ेगा। लेकिन मैं बड़ी उलटी बात आपसे कहना चाहता हूं, मास्को तक जो निकटतम रास्ता है वह वाया वाशिंगटन जाता है, और कोई रास्ता ही नहीं जाता। वह जो वाशिंगटन में वॉल स्ट्रीट है उसके ही आखिरी छोर पर क्रेमलिन के लाल सितारे चमक सकते हैं। और कोई रास्ता नहीं है। अगर हमने वाशिंगटन से बच कर जाने की कोशिश की तो यह देश आगे भी गरीब रह जाएगा, और ज्यादा गरीब हो सकता है। पूंजी होनी चाहिए, तब पूंजी बांटी जा सकती है। लेकिन हमारी पुरानी आदत है, किसी दूसरे को जिम्मेवार ठहरा देने की--भाग्य को, पिछले जन्म को, भगवान को, ब्रिट्रिश साम्राज्य को, अब पूंजीपति को। लेकिन हम अपनी जीवन व्यवस्था के बुनियादी आधारों पर सोचने की तैयारी नहीं दिखाते हैं जिनकी वजह से हम गरीब हैं। मैं उन कारणों के संबंध में कुछ बात आपसे कहना चाहता हूं।
इस समय चूंकि बात बहुत गरम है, लेकिन पोलिटिकल स्टंट से ज्यादा नहीं है। इस समय बात बहुत गरम है। इस समय समाजवाद की बात बड़े जोर से चर्चा में है, लेकिन समाजवाद की बात से समाजवाद नहीं आता। समाजवाद आसमान से नहीं उतरेगा, समाजवाद तो हमें विकसित करना होगा। और हम, जो कि संपत्ति ही पैदा नहीं कर पाए, पूंजी ही पैदा नहीं कर पाए, कैसे समाजवाद को ला सकते हैं? पूंजीवाद समाजवाद का पहला चरण है। यह देश अभी ठीक अर्थों में पूंजीवादी भी नहीं है।
ध्यान रहे, समाजवाद पूंजीवाद से उलटी व्यवस्था नहीं है। समाजवाद पूंजीवाद का चरम विकास है। पूंजीवाद जब पूरी तरह विकसित होता है तो समाजवाद में रूपांतरित हो जाता है। जब पूंजी इतनी अतिरेक हो जाती है कि उसे व्यक्ति के पास रखने का कोई अर्थ नहीं होता तभी वह समाज में ओवरफ्लो करती है। तभी वह समाज में बंट सकती है। लेकिन जब तक पूंजी बहुत कम है तब तक समाजवाद सुसाइडल, आत्मघाती है, अपने हाथ से मर जाने का उपाय है।
लेकिन यह कठिन है, आज समझना। आज बहुत कठिन है, मुश्किल है, क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि पूंजीपति को बांट दो तो सब ठीक हो जाएगा। लेकिन पूंजीपति को बांटने से क्या ठीक हो जाएगा? पूंजीपति को बांटने से कुछ भी ठीक नहीं हो सकता। सिर्फ पूंजी को पैदा करने की जो व्यवस्था थी वह भी टूट जाएगी। पूंजी को पैदा करने का जो इनसेंटिव था, जो प्रेरणा थी, वह भी टूट जाएगी। और हमारे जैसे आलसी, प्रमाद से भरे हुए भाग्यवादी देश में अगर पूंजी को पैदा करने की प्रेरणा भी टूट जाए तो शायद हम अपने इतिहास का सबसे दुर्दिन का दिन देखना शुरू कर देंगे। लेकिन अनुभव हमें कुछ भी नहीं सिखाता। जिन-जिन व्यवस्थाओं को सरकार ने अपने हाथ में लिया है, समाजवाद के नाम पर, वे सारी व्यवस्थाएं असफल हैं। सरकार से कुछ भी चलता नहीं, क्योंकि चलाना तो आदमियों से पड़ेगा।
मैं जिस प्रदेश से हूं उस प्रदेश की सारी रोडवेज को--मोटर सर्विसेस को, बसेस को सरकार ने ले लिया। अभी उनकी कमेटी हुई, उनकी कमेटी के चेयरमैन मुझे मिलने आए, उन्होंने कहा कि हमें तीस लाख साल का, प्रति वर्ष घाटा हो रहा है। एक आदमी के पास बस हो तो वह अमीर हो जाता है--इतना कमा लेता है। सारे प्रदेश की बस उनके पास हैं और तीस लाख साल का उनको घाटा हो रहा है। जहां-जहां सरकार ने राष्ट्रीयकरण के नाम पर जो-जो चीज अपने हाथ में ली है वहां-वहां नुकसान है। अगर पूरे देश की संपत्ति का उत्पादन राज्य के हाथ में चला जाए समाजवाद के नाम पर, तो यह देश आने वाले बीस वर्षों में और भी गरीब होगा, अमीर नहीं होगा। क्योंकि सिर्फ संपत्ति के उत्पादन के साधन हाथ में ले लेने से राज्य का कुछ भी नहीं हो सकता। इस देश के मानस को बदलना

जरूरी है। वह मानस गरीब होने की पूरी तैयारी लिए बैठा है। उस मानस के संबंध में मैं कुछ बात करना चाहता हूं।
पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि समृद्ध होने के लिए एक बहुत और तरह के विचार की जरूरत है जो हमारे मन में ही नहीं है।
एक छोटी सी कहानी से मैं समझाऊं। कनफ्यूशियस ने लिखा है कि वह एक गांव
से गुजरता था और उस गांव में उसने एक माली को अपने बगीचे में पानी सींचते देखा। बूढ़ा माली है, उसका जवान बेटा है। वे दोनों बैलों और घोड़ों की तरह मोट में जुते हैं और कुएं से पानी को निकाल रहे हैं। कनफ्यूशियस हैरान हुआ। क्योंकि तब तक यह ईजाद हो गई थी कि आदमी की जगह घोड़े या बैल जोते जा सकते थे। कनफ्यूशियस बूढ़े के पास गया और उसने कहा, मालूम होता है, तुम्हें पता नहीं है। अब तुम क्यों जुते हो चौबीस घंटे? इस मोट की जगह घोड़े और बैल जोते जा सकते हैं। उस बूढ़े ने कहाः धीरे बोलो, कहीं मेरा बेटा न सुन ले। कनफ्यूशियस ने कहाः क्यों? उसने कहाः पीछे आना। बेटे के चले जाने के बाद उस बूढ़े ने कहाः अब बोलो। मुझे पता है कि घोड़े जोते जा सकते हैं। लेकिन घोड़ा जोतने से मेरा जवान लड़का विश्राम करने लगेगा, और श्रम जीवन की सबसे कीमती चीज है। मैं नहीं चाहता कि जवान लड़का विश्राम करने लगे। श्रम ही तो सब कुछ है, इसलिए मैं घोड़े नहीं लाना चाहता। मुझे यह भी पता है कि मशीन भी निकल गई है एक छोटी, जिससे हम पानी बाहर फेंक सकते हैं, लेकिन वह भी मैं नहीं लाना चाहता क्योंकि लड़का विश्राम करने लगेगा। और जवानी में विश्राम बहुत बुरा है। कनफ्यूशियस को भी यह बात जंची है और उसने अपनी किताब में कहा है कि मुझे वह बूढ़ा बहुत ठीक मालूम पड़ा।
हिंदुस्तान का मन हजारों साल से इस बात को ठीक समझ रहा है। वह यह समझ रहा है कि श्रम करना कोई बहुत ऊंची बात है! इधर पंडित नेहरू ने एक नारा दिया थाः आराम हराम है। लेकिन कोई पूछे कि आदमी आराम के लिए जीता है या किसी और चीज के लिए जीता है? श्रम भी आदमी इसलिए करता है कि आराम को उपलब्ध हो सके। मेहनत भी इसलिए करता है कि विश्राम कर सके। विश्राम जीवन का लक्ष्य है, श्रम नहीं। श्रम केवल साधन है।
भारत पांच हजार वर्षों से श्रम को साध्य बनाए हुए है, साधन नहीं। वह कहता है, श्रम जीवन का लक्ष्य है। विनोबा भी वही कहते हैं, गांधी भी वही कहते हैं, नेहरू भी वही कहते हैं। श्रम जीवन का लक्ष्य है। श्रम जीवन का लक्ष्य ही नहीं है। जीवन का लक्ष्य विश्राम है। जीवन का लक्ष्य आराम है। और आराम हराम नहीं है क्योंकि लक्ष्य अगर हराम हो जाएगा तो पूरी जिंदगी हराम हो जाएगी। लेकिन आराम पाने के लिए श्रम करना पड़ता है। श्रम साधन है और जिसे आराम पाना हो उसे श्रम करना पड़ता है। लेकिन आराम के लक्ष्य को हटाया नहीं जा सकता। बड़े मजे की बात है, लेकिन हिंदुस्तान श्रम को बड़ा आदर देता है।
श्रम से संपत्ति पैदा नहीं होती। यह आपको उलटी बात मालूम पड़ेगी। हमें
तो लगता है, श्रम से ही संपत्ति पैदा होती है। नहीं, जो कौम विश्राम खोजने की कोशिश करती है वह श्रम से बचने की कोशिश में टेक्नालॉजी का विकास करती है। जो कौम श्रम से बचने की कोशिश करती है वह टेक्नालॉजी का विकास करती है। टेक्नालॉजी सब्स्टीट्यूट है श्रम का। अगर मुझे आपके घर तक आना है तो मैं पैदल आ सकता हूं। पदयात्रा करूं तो आपको भी अच्छा लगेगा। अखबार भी खबर छापेंगे कि पदयात्री है। लेकिन मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए साइकिल को ईजाद करता हूं। मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए कार ईजाद करता हूं। मै पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए हवाई जहाज ईजाद करता हूं। जो कौम श्रम से बचना चाहती है वह टेक्नालॉजी को विकसित करती है। जो कौम श्रम का आदर करती है वह टेक्नालॉजी को विकसित नहीं करती। टेक्नालॉजी के अतिरिक्त धन कभी पैदा नहीं होता। धन होता है टेक्नीक से पैदा, श्रम से नहीं। इसलिए जो कौम जितना विश्राम की आकांक्षा करती है उतने टेक्नीक को विकसित करती चली जाती है। आप हैरान होंगे, दुनिया का सारा विकास उन लोगों ने किया है जो विश्राम के आकांक्षी हैं। दुनिया के सारे आविष्कार उन्होंने किए हैं जो विश्राम के आकांक्षी हैं। आपने यह कहावत सुनी होगी कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। वह कहावत बहुत सच नहीं है। विश्राम की

आकांक्षा आविष्कार की जननी है--विश्राम की आकांक्षा। इसलिए बुद्धिमान आदमी सब तरफ से विश्राम खोजता है।
शायद आपने सुना हो, एडीसन ने कोई एक हजार आविष्कार किए। दुनिया में किसी एक आदमी ने इतने आविष्कार नहीं किए। एडीसन एक फैक्ट्री में काम करता था प्रारंभ में। और उसका काम इतना था केवल कि जब कोई फोन आए तो वह अपने मालिक को खबर कर दे। रात भर उसे जगना पड़ता था। किसी रात फोन आता भी था, किसी रात नहीं भी आता था। रात भर जगना पड़ता था। तो उसने एक तरकीब विकसित की रात भर सोने के लिए। उसने फोन के साथ घंटी जोड़ी, इतनी तेज कि उसकी नींद खुल जाए। और वह मालिक को खबर कर सके। फिर वह निश्चिंत सोने लगा। वह निश्चिंत सोने लगा। महीनों बीत गए, जब कभी जोर से घंटी बजती वह उठ जाता और मालिक को खबर कर देता--ऐसे वह सोता। एक दिन उसकी घंटी बिगड़ गई। फोन आया और वह सोया रहा। मालिक पता लगाने आया कि क्या बात है, क्योंकि मालिक ने अपनी पत्नी को ही फोन किया था, खबर करनी थी। आया तो वह मजे से सो रहा था। उसने उसे नौकरी से निकाल दिया--एडीसन को। उसने कहा कि तुम आलसी हो। एडीसन ने कहा कि मेरे आलस्य के कारण ही मै घंटी का आविष्कार कर सका। लेकिन नौकरी से निकाल दिया, वह भी सौभाग्य सिद्ध हुआ। क्योंकि फिर वह हजार आविष्कार कर सका। और एडीसन ने लिखा है कि विश्राम की आकांक्षा से ही आविष्कार विकसित होते हैं-- निश्चित ही!
जो कौम श्रम करने को बहुत आदर देगी--अब यह बड़ी उलटी बात दिखाई पड़ेगी, लेकिन जिंदगी बड़ी उलटी है। जो कौम श्रम को बहुत आदर देगी वह आलसी हो जाएगी और विश्राम को उपलब्ध न होगी। आलसी आदमी विश्राम को कभी उपलब्ध नहीं होता। विश्राम को तो वह उपलब्ध होता है जो ठीक से श्रम कर लेता है। आलसी कभी विश्राम को उपलब्ध नहीं होता।
जो कौम श्रम पर जोर देगी--श्रम मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा नहीं है, आकांक्षा तो विश्राम की है। श्रम हम करते ही इसलिए हैं कि सांझ विश्राम कर सकें। और इसलिए निरंतर खोज होती चली जाती है। अब आटोमेटिक यंत्र पश्चिम ने खोज लिया है--अब वह सारे आदमियों को सब श्रम से मुक्त कर देगा। क्या आप सोचते हैं कि आदमी श्रम से मुक्त हो जाएगा? नहीं! आदमी श्रम से मुक्त हो जाएगा, लेकिन चौबीस घंटे विश्राम में बैठे रहना अर्थपूर्ण नहीं है। आदमी कुछ न कुछ करेगा। श्रम, क्रीड़ा और खेल और लीला हो जाएगी।
दुनिया की सारी संस्कृति उन लोगों ने विकसित की है जो लेजर में और विश्राम में थे। ताजमहल के सपने उन्होंने देखे हैं जो विश्राम में थे। और पिरामिड भी उन्होंने ही सोचे हैं जो विश्राम में थे। और संगीत, और साहित्य, और कला, और मूर्तिया, और चित्र, और दर्शन, सब विश्राम से पैदा हुआ है। सारी संस्कृति विश्राम से जन्मी है, लेजर क्लास से पैदा हुई है। अगर हम सारे जगत को किसी दिन विश्राम में ला सकें तो संस्कृति का इतना एक्सप्लोजन होगा कि पिकासो को ढूंढने कोई पेरिस जाने की जरूरत न होगी, वह एक-एक गांव में भी मिल सकता है। और तानसेन को पैदा करने के लिए अकबर का दरबार जरूरी न होगा। घर-घर में एक-एक बेटा तानसेन हो सकता है। लेकिन इतने लेजर, इतने विश्राम की जरूरत है, जिसमें यह संस्कृति विकसित हो सके। लेकिन हमारा देश... हमारा देश श्रम को आदर दे रहा है।
श्रम को आदर देने के कारण टेक्नालॉजी विकसित नहीं हो पाई। टेक्नालॉजी विकसित न होने के कारण समृद्धि और संपत्ति पैदा नहीं हुई। संपत्ति लक्ष्मी की पूजा से पैदा नहीं होती। संपत्ति टेक्नालॉजी से पैदा होती है। आज जो देश समृद्ध हैं--अमरीका आज समृद्ध है, और पृथ्वी पर पहला देश ठीक अर्थों में समृद्ध है। रूस अभी भी गरीब है, यह ध्यान रहे। रूस अभी भी समृद्ध नहीं है। रूस की समृद्धि जो थोड़ी-बहुत है, वह भी बहुत महंगी है। और बामुश्किल पाई गई है। और रूस में कोई चालीस वर्षों में एक करोड़ लोगों की हत्या करके किसी तरह काम करवाया गया है। पूरा रूस एक कनसनट्रेशन कैंप बन गया, तब कहीं काम लिया जा सका है। आदमी से जबरदस्ती पीछे बंदूक के कुंदे पर काम लिया जा सका है। कहीं फिर भी रूस समृद्ध नहीं हो सका। आज भी रूस की बुनियादी हालत गरीबी की है। आज भी अमरीकी अर्थों में रूस समृद्ध नहीं है। अमरीका अकेला मुल्क है जो समृद्ध हो सका। कैसे हो सका है?

अमरीका समृद्ध हो सका है तकनीक के अत्याधुनिक विकास से। तकनीक ने श्रम को बदल दिया। लेकिन हम यहां उलटी प्रक्रिया में लगे हैं। हम कहते हैं, थोड़ा बहुत टेक्नीक आ गया हो तो उसको भी श्रम से बदल दो। अगर टेक्सटाइल मिल चल रही है तो उसको हटाओ और चर्खे चलाओ। हम उलटे... हम सिर के बल शीर्षासन करने के ऐसे आदी हो गए हैं कि हम सीधे पैर के बल खड़ा नहीं होना चाहते। हम कहते हैं, चर्खा चलाना बहुत ऊंची बात है। तो नेता रोज सुबह घर के सामने बैठ कर चरखा चला लेता है धूप में कि जनता देख ले। राजघाट पर गांधीजी के मरने के दिन बैठ कर चर्खा चला लेता है कि कैमरामैन फोटो उतार ले। चर्खा चलाने में इतना क्या आदर है?
चर्खा अगर चलेगा तो मुल्क गरीब होगा। चर्खे से मुल्क अमीर नहीं हो सकते। चर्खा तो बहुत दिन से चल रहा है। पांच-छह हजार साल से हम चर्खा चला रहे हैं। कौन सी अमीरी आई? अमीरी टेक्नीक से आती है क्योंकि टेक्नीक हजार आदमी का काम अकेला कर देता है। लाख आदमी का काम अकेला कर देता है। टेक्नीक हमारा बढ़ा हुआ हाथ है। टेक्नीक हमारा हजार गुना हो गया श्रम है और हम विश्राम में हो जाते हैं। और विश्राम से बैठा आदमी नये आविष्कार कर पाता है। और एक चक्र शुरू हो जाता है, जिससे समृद्धि आती है। इस देश में वह चक्र आज तक शुरू नहीं हो पाया। और आज तक इस देश के समझदार लोग उलटी बातें समझा रहे हैं।
गांधी जी थर्ड क्लास में चलते हैं, किसी ने पूछा कि आप थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं? उन्होंने कहाः चूंकि फोर्थ क्लास नहीं है। फोर्थ क्लास की बड़ी जरूरत है। लेकिन फोर्थ में चलेंगे और कोई पूछेगा, फोर्थ में क्यों चलते हैं? तो वे कहेंगे, फिफ्थ क्लास नहीं है। इसका अंत नरक में होगा, इसके पहले नहीं हो सकता। जब तक नरक में न पहुंच जाएं तब तक तृप्ति न होगी। लेकिन जो देश इस भाषा में सोचेगा--पीछे लौटने की, और नीचे गिरने की, और नीचे गिरने की, वह आगे कैसे बढ़ेगा?
मैंने सुना है कि गांधी जी जेल में थे और वल्लभभाई उनके साथ थे। गांधी
जी दस छुहारे फुला कर सुबह नाश्ता करते थे। वल्लभभाई ने सोचा कि बूढ़ा रोज-रोज दुबला होता चला जाता है। दस छुहारे से क्या होगा! उन्होंने बारह छुहारे फुला दिए। कौन गिनती करेगा। लेकिन गांधी जी गिनती में होशियार थे। रात जब सब काम बन्द हो जाता, तो कौड़ी-कौड़ी का हिसाब... वह आश्रम में दो बजे रात तक करते रहते। सब हिसाब करके फिर वह सोते। सुबह उठते से ही उन्होंने देखा कि मालूम होता है छुहारे ज्यादा हैं। गिनती की, बारह निकले। तो उन्होंने वल्लभभाई पटेल को कहा कि किसने बारह डाले? यह तो भारी अपराध हो गया। वल्लभभाई ने कहा कि मैंने सोचा कि थोड़ा ज्यादा आपके शरीर में चला जाए तो ठीक। शरीर की बड़ी जरूरत है--आपकी। लेकिन हम इस मुल्क में मानते ही नहीं कि शरीर की कोई जरूरत है। हम तो कहते हैं, सिर्फ आत्मा से रहना काफी है। हमारा अगर वश चले हम सब भूत-प्रेत हो जाएं--वैसे हो ही गए हैं--शरीर की कोई जरूरत ही नहीं है। छुहारे की शरीर को जरूरत है? गांधीजी शुद्ध आत्मा! शरीर की जरूरत क्या है? वल्लभभाई ने कहाः फिर दस और बारह में फर्क ही क्या है? गांधीजी ने यह बात पकड़ ली। गांधीजी ने कहा, दस और बारह में कोई फर्क नहीं तो कल से मैं आठ ही खा लूंगा। क्योंकि फिर दस और आठ में कोई फर्क नहीं है। मैं मानता हूं कि वल्लभभाई का दस और बारह में कोई फर्क नहीं है यह मुल्क को विकास की तरफ ले जाएगा और गांधी का दस और आठ में कोई फर्क नहीं है, यह मुल्क को पतन की तरफ ले जाएगा। वल्लभभाई उतने बड़े आदमी नहीं हैं, लेकिन सहज और सीधे और सादे आदमी हैं। दस से बारह पर जाना चाहते हैं, थर्ड क्लास से सेकेंड क्लास में जाना चाहते हैं। गांधी जी बड़े आदमी हैं, लेकिन बड़े आदमी खतरनाक हो सकते हैं क्योंकि आदमी को बड़ा होने के लिए अक्सर सामान्य आदमी से उलटा होना पड़ता है। जब तक वह उलटा खड़ा न हो, कोई उसको बड़ा नहीं मानता। थर्ड क्लास से फोर्थ क्लास में जाए तभी जनता कहेगी, हां, यह है महात्मा। दो चपाती खाए, एक चपाती खाए तो और बड़ा महात्मा। बिल्कुल न खाए तो और बड़ा महात्मा है। असल में जिंदा रहते हुए महात्मा में थोड़ी कमी ही होती है। मर कर ही महात्मा पूरा हो पाता है। इसलिए मरे हुए महात्माओं की हम सदा पूजा करते हैं। जिंदा महात्मा में थोड़ी भूल-चूक दिख ही जाती है।

यह हमारा सोचना बहुत महंगा और खतरनाक है। सिकुड़ने का सोचना है, संकोच का, दबने का, नीचे उतरने का। नहीं, टेक्नालॉजी को श्रम में नहीं बदलना है, श्रम को टेक्नालॉजी में बदलना है तो देश में अमीरी पैदा होगी। खेत जितनी संपति हाथ से पैदा कर सकते थे, कर चुके। और खेत भी थक गए बुरी तरह और हाथ भी थक गए बहुत बहुत बुरी तरह। अब खेत पर हाथ की जगह मशीन चाहिए। लेकिन मशीन हमें भौतिकवादी मालूम पड़ती है। मशीन को उपयोग में लाने वाले लोग मैटीरियलिस्ट मालूम पड़ते हैं। हम अध्यात्मवादी लोग हैं। हम मशीन का कैसे उपयोग कर सकते हैं? और अगर करेंगे भी तो बेईमानी से करेंगे। ईमानदारी से न करेंगे।
अब यह मैं माइक का उपयोग कर रहा हूं। एक जैन आचार्य हैं तुलसी, अभी तक माइक का उपयोग नहीं करते थे क्योंकि खयाल था कि आवाज जोर से पैदा होगी तो कीटाणु मर जाएंगे। लेकिन अब सच तो यह है कि अगर कीटाणु मरते हों तो थोड़ी आवाज में भी मरते होंगे। मुंह पर पट्टी बांधने में भी मरते होंगे, थोड़े कम मरते होंगे। असल में अगर आवाज से कोई मरता हो तो ओंठ सी लेने चाहिए। लेकिन उनको दिखाई पड़ा कि मुंह पर पट्टी बांध कर दस--पांच लोग ही मुश्किल से सुन पाते हैं। बड़ी भीड़ इकट्ठी हो, इसका भी रस नहीं छूटता। तो अब एक बेईमानी की तरकीब निकाली। अभी बैंगलोर में माइक से बोले तो लोगों ने कहा कि आप और माइक से बोल रहे हैं? उन्होंने कहाः मैं माइक से नहीं बोल रहा, मैं तो सिर्फ बोल रहा हूं। किन्हीं लोगों ने माइक सामने रख दिया तो मैं क्या करूं? श्रावक सुनना चाहते हैं, वह पाप उनके जिम्मे। उन्होंने माइक रखा। मैं तो अपनी जगह बैठ कर बोल रहा हूं। न तो मैं यह कहता कि माइक रखो, न मैं यह कहता कि माइक मत रखो।
अब यह बेईमान तरकीबें हैं मशीन का उपयोग करने की। यह ज्यादा डिसआनेस्ट मीन्स हैं। अगर मशीन का उपयोग करना है तो सीधा करो। उसमें पाखंड और बेईमानी की क्या जरूरत है? नहीं, लेकिन यह तरकीब निकालनी पड़ेगी क्योंकि मशीन के उपयोग के साथ हमें खयाल है कि भौतिकवाद है। यह मैटीरियलिज्म है। यह देश भौतिकवाद का विरोधी रहा है। समृद्ध नहीं हो सकता। अगर किसी देश को समृद्ध होना है, उसे ठीक अर्थों में भौतिकवादी होना जरूरी है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि भौतिकवादी होने से कोई गैर-अध्यात्मवादी हो जाता है।
यह भी एक भ्रांत तर्क है। अगर एक मंदिर हमें बनाना हो तो मंदिर का सोने का शिखर अकेला नहीं रखा जा सकता। नीचे नींव में पत्थर भी भरने पड़ते हैं। लेकिन अगर कोई यह समझ ले कि हम नींव में पत्थर न भरेंगे, हम तो सिर्फ स्वर्ण-कलश चढ़ाएंगे, तो मंदिर कभी न बनेगा। स्वर्ण-कलश में और नींव के गंदे और कुरूप पत्थर में कोई भेद नहीं है। वह नींव का पत्थर ही स्वर्ण के कलश को सम्हालता है। अध्यात्म के कलश अगर देश के मंदिर पर चढ़ाने हों तो नींव में भौतिकवाद के पत्थर बिछाने पड़ेंगे। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। देश का मंदिर अगर बनाना है ठीक तो नींव भौतिकवाद की होगी और कलश अध्यात्म का। अध्यात्म और भौतिकवाद का विरोध बिल्कुल झूठा है। वैसा विरोध कहीं भी नहीं है। आत्मा और शरीर का विरोध झूठा है, परमात्मा और प्रकृति का विरोध झूठा है। लेकिन इस देश को इसी डुआलिज्म में समझाया जा रहा है। यह बड़े मजे की बात है। हमें यही समझाया जा रहा है कि शरीर को मारो, अगर आत्मा को पाना है। दीन-हीन बनो, दुखी बनो, दरिद्र बनो, भूखे रहो, अगर आत्मा को पाना है।
मैं नहीं सोचता कि स्वस्थ शरीर हुए बिना कोई आत्मा को उपलब्ध हो सकता है। मैं नहीं सोचता कि जीवन की सामान्य जरूरतें पूरी हुए बिना कोई आत्मा की तरफ यात्रा कर सकता है। यह असंभव है। यह ऐसा ही है जैसे नींव के पत्थर के बिना कोई स्वर्ण-कलश चढ़ाने की कोशिश कर रहा हो। नहीं, भौतिक और अध्यात्म विरोधी नहीं हैं। अगर कोई कहे कि वीणा को हटाओ, हम तो सिर्फ संगीत को प्रेम करते हैं--सिर्फ संगीत चाहिए, वीणा तो भौतिक है! वीणा तो भौतिक है ही, वीणा को हटाओ, सिर्फ संगीत चाहिए--तो ध्यान रहे, वीणा तो बिना संगीत के हो सकती है, लेकिन संगीत बिना वीणा के नहीं हो सकता। शरीर तो बिना

आत्मा के हो सकता है कि आत्मा का हमें कोई पता ही न हो तो हम सिर्फ शरीर में जीते रहें, लेकिन अकेली आत्मा बिना शरीर के नहीं हो सकती।
यह ध्यान रहे, निकृष्ट के बिना श्रेष्ठ नहीं हो सकता लेकिन श्रेष्ठ
के बिना निकृष्ट हो सकता है। यह बड़ी अदभुत बात है, लेकिन जिंदगी ऐसी है। यहां नींव हो सकती है बिना कलश के लेकिन कलश बिना नींव के नहीं हो सकता। यहां जड़ें हो सकती हैं बिना वृक्ष के, लेकिन वृक्ष बिना जड़ों के नही हो सकता। जड़ें कुरूप है, माना, लेकिन जड़ों में रस है जो वृक्षों के फूलों तक पहुंचता है। यह देश जड़ों को इनकार कर रहा है और कहता है, हम सिर्फ फूलों को प्रेम करेंगे। यह प्रेम... यह प्रेम असंभव है, यह प्रेम बहुत मंहगा पड़ गया है। पांच हजार साल हमने फूलों को प्रेम करने की कोशिश की--जड़ों को इनकार करके। आत्मा को पाने की कोशिश की शरीर की दुश्मनी करके। प्रकृति को निकृष्ट कह कर, प्रकृति को असार कह कर परमात्मा का मंदिर खोजा, वह हमें नहीं मिला। बल्कि फूल तो मिले ही नहीं, जड़ें भी कुम्हला गईं और सूख गईं, क्योंकि जड़ों को हमने पानी न दिया। जब हम जड़ों के दुश्मन थे तो हम पानी कैसे देते?
समृद्धि पैदा होगी भौतिकवाद के सहज स्वीकार से। यह देश जब तक अपने थोथे अध्यात्मवाद से भरा है--थोथा अध्यात्मवाद मैं उसे कहता हूं जो भौतिकवाद का विरोधी है। ठीक, राइट स्प्रिचुअलिज्म उसे कहता हूं जो भौतिकवाद को समाहित कर लेता है। जो कहता है--आए, भौतिक भी हममें समा जाए। भौतिक हमारा कुछ न बिगाड़ पाएगा। लेकिन यह हमारी अब तक की वृत्ति रही है। हम समृद्ध कैसे हों? हमने दरिद्रता के सब उपाय किए और हम सफल हो गए। हमने समृद्धि का कोई उपाय ही नहीं किया क्योंकि हमने मूल आधार न रखा। एक बात--भौतिकवाद का सम्यक स्वीकार चाहिए। आने वाले भारत की नई पीढ़ी को भौतिकवाद को आत्मसात करना होगा--यह कह कर कि पश्चिम भौतिकवादी है, इनकार करने से नहीं चलेगा, क्योंकि जो पश्चिम भौतिकवादी है उसी के सामने हाथ फैलाने पड़ते हैं, भीख मांगनी पड़ती है। और यह बहुत अशोभन है कि अध्यात्मवादी भौतिकवादियों के सामने भीख मांगे। लेकिन हम बीस साल से भीख मांग रहे हैं। और आगे भी, अभी कोई उपाय नहीं दिखता कि भीख मांगना हमें बंद करने की स्थिति में लाए। भीख हमें मांगनी ही पड़ेगी, क्योंकि हम अध्यात्मवादी हैं, हम शुद्ध आत्मा में जीना चाहते हैं। तो कौन गेहूं पैदा करे, कौन मशीनें लाए, कौन टेक्नालॉजी पैदा करे? नहीं, वह हमसे नहीं होगा। वह पश्चिम करे, और हम भीख मांगें--यह हमारी पुरानी तरकीब है। पाप कोई और करे, पुण्य हम करें।
एक आदमी संन्यासी हो जाता है। वह कहता है, हम दुकान नहीं करेंगे। दुकान में पाप है। हम खेती नहीं करेंगे। खेती में पाप है। हम पैसा नहीं कमाएंगे। हम पैसा छुएंगे नहीं, छूने में पाप है। अभी दो संन्यासी मुझे मिलने आए। उनसे मैंने कहा कि आप कल सुबह आ जाएं। उन्होंने कहाः बड़ी मुश्किल होगी क्योंकि हम पैसा नहीं छूते। कोई आदमी हमारे साथ रहता है जो पैसा खीसे में रखता है, वह पैसा देता है। तो हम उस आदमी को पूछ लें, अगर वह कल सुबह आ सकता हो तो हम आ सकते हैं। मैंने कहा, बड़ा मुश्किल है। मैंने कहाः आप पैसा क्यों नहीं छूते हैं? उन्होंने कहाः पैसा छूना पाप है। और मैंने कहाः वह आदमी आपके लिए पैसा छू रहा है, तो वह किसके लिए पाप कर रहा है? नरक वह जाएगा, आप स्वर्ग चले जाएंगे?
मैं दुकान करूं तो पाप है, मैं दुकान न करूं, और दो दुकान करने वाले मुझे जिंदगी भर पालें तो पुण्य है! पाप कोई और करे, पुण्य हम करेंगे, यह हमारी पुरानी प्रवृत्ति है। पश्चिम भौतिकवादी है, पेट हमारा खाली है, रोटी पश्चिम दे। पाप अगर होगा, नरक अगर जाएंगे तो पश्चिम के लोग जाएंगे, यह बड़े मजे की बात है। अमरीका का किसान नरक जाएगा, क्योंकि भौतिकवादी है और हम स्वर्ग जाएंगे क्योंकि हम अध्यात्मवादी हैं। और अमरीका का किसान हमारे लिए मेहनत करेगा। चार किसान अमरीका में मेहनत कर रहे हैं, उनमें एक किसान की मेहनत हमें मिल रही है। आज अमरीका का एक चौथाई भोजन हम ले रहे हैं, लेकिन बेशर्मी के साथ। यह हमें खुद पैदा करना पड़ेगा। लेकिन हम कैसे पैदा करेंगे? अगर भौतिकवाद की स्वीकृति नहीं है तो यह पैदा नहीं होगा।

इस देश में भौतिकवाद के अस्वीकार के कारण विज्ञान भी पैदा नहीं हो पाया। हमारी जलती हुई समस्या यह है कि हम कैसे तीव्रता से विज्ञान पैदा करें, कैसे हम साइंटिफिक हो जाएं? लेकिन हमारा सब सोचना गैर-साइंटिफिक है। हमारे चिंतन के सब आधार गैर-साइंटिफिक हैं। अगर हम सोचेंगे भी तो हम हमेशा गैर-साइंटिफिक ढंग से ही सोचेंगे। हमारे सोचने की पूरी धारा, पूरा ढांचा ऐसा है।
अब जनसंख्या बढ़ती है, वह हमारा सवाल है--आज मुल्क के सामने। हमारे विचारशील लोग, तो उनसे पूछिए जाकर कि जनसंख्या बढ़ती है तो क्या करें? वे कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो। गांधीजी कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो। विनोबाजी कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो, जनसंख्या नहीं बढ़ेगी। ब्रह्मचर्य धारण करो! और पांच हजार साल का अनुभव यह कहता है कि कितने लोगों ने ब्रह्मचर्य धारण किया? लेकिन अनुभव से हम कुछ सीखते नहीं। और कितने लोग ब्रह्मचर्य धारण कर लेंगे? वह भी हम नहीं सोचते। और खतरा तो यह है कि अगर यह चालीस करोड़ का मुल्क एकदम से ब्रह्मचर्य धारण कर ले दो-एक साल, तो हम एक-दूसरे की गर्दन घोंट डालें--इतना हमारे भीतर काम का वेग इकट्ठा हो जाए कि जिंदा रहना मुश्किल हो जाए, पूरा मुल्क पागल हो जाए वह बच्चे पैदा करने से भी महंगा पड़े--लेकिन उसका हमें कोई खयाल नहीं है! वैज्ञानिक साधन से हमारा विरोध है। तो बर्थ-कंट्रोल से हमारा विरोध
ह, क्योंकि वह वैज्ञानिक साधन है, सोचने का वह वैज्ञानिक ढंग है! लेकिन उससे हमारा विरोध है। हम किसी भी चीज के संबंध में वैज्ञानिक बुद्धि से नहीं सोच पाते। वैज्ञानिक बुद्धि हमारे पास नहीं है। बुद्धि वैज्ञानिक हो सकती है आज भी, उसके आधार बदलने होंगे। हमारे सोचने के आधार क्या हैं? हमारा सोचने का आधार सदा शास्त्र है।
जब भी हम सोचते हैं तो हम पहले यह पूछते हैं, गीता क्या कहती है? अब गीता को कब तक परेशान करेंगे, और कृष्ण ने आपका क्या बिगाड़ा है? पैदा हो गए आपके मुल्क में तो कोई कसूर हो गया, अपराध हो गया?
उनका पीछा कब तक करेंगे? लेकिन पहले हम गीता खोलेंगे। समस्या आज की, शास्त्र कल का; उनका मेल क्या है? लेकिन पहले शास्त्र में खोजेंगे कि शास्त्रसम्मत कोई रास्ता मिल जाए। शास्त्र में कुछ रास्ते हैं, वे हम खोज लेंगे। वे रास्ते लागू नहीं होंगे, क्योंकि यह बुद्धि जो शास्त्र में खोजती है; अवैज्ञानिक है।
वैज्ञानिक बुद्धि प्रयोग में खोजती है, अवैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र में खोजती है। प्रयोग भविष्यगामी है और शास्त्र अतीत से बंधे हैं। प्रयोग सदा भविष्य में ले जाता है, एक्सपेरीमेंट हमेशा भविष्य में ले जाता है और शास्त्र सदा अतीत में ले जाते हैं। जाना है भविष्य में और पकड़े हैं शास्त्र को, तो मुसीबत खड़ी हो गई है। जाना है पूरब और बैलगाड़ी में बैल जुते हैं पश्चिम की तरफ। बैलगाड़ी के बैल चलते हैं तो और पश्चिम में चले जाते हैं और जाना है पूरब। बहुत कठिनाई हो गई है, बहुत मुश्किल हो गई है। शास्त्र की तरफ देखना बंद करना पड़ेगा। वैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र की तरफ नहीं देखती। बल्कि ध्यान रहे, जब से कुछ लोगों ने शास्त्र की तरफ देखना बंद किया, तभी से विज्ञान पैदा हुआ। नहीं तो विज्ञान कभी पैदा न होता। गैलीलियो को सवाल उठा कि जमीन चपटी है या गोल? बाइबिल खोल कर देख सकता था। उसमें लिखा है जमीन चपटी है, बात खत्म हो जाती। उसने कहा, बाइबिल की हम फिकर नहीं करते। हम तो खोजने जाएंगे कि जमीन कैसी है! खोजने गया तो पाया कि बाइबिल गलत है।
हिंदुस्तान अभी भी अपने शास्त्रों के विपरीत नहीं है। और जब तक हिंदुस्तान की प्रतिभा शास्त्र के विपरीत नहीं है तब तक गैलीलियो पैदा नहीं होगा, कोपरनिकस पैदा नहीं होगा, डार्विन पैदा नहीं होगा, मार्क्स पैदा नहीं होगा, फ्रायड पैदा नहीं होगा--वैज्ञानिक बुद्धि पैदा नहीं होगी। वह नहीं हो सकती है। हम जब भी कुछ खोजते हैं, फौरन शास्त्र में जाकर संदर्भ देख लेते हैं। बात खत्म हो जाती है। प्रयोग में नहीं उतरते, जिंदगी देखने नहीं जाते। और कई दफे ऐसा हो जाता है--इतना कठिन है अवैज्ञानिक मन!

मैंने सुना है, अरस्तू तो बड़ा विचारक था। उसने लिखा है कि औरतों के दांत आदमियों से कम होते हैं। तो उसने अपनी किताब में भी लिख दिया कि स्त्रियों के दांत आदमी से कम होते हैं। अब दो औरतों वाले आदमी को कितनी देर लगती थी? एक मिसेज को कहता, जरा मुंह खोलो, दांत गिन लेता। लेकिन उसने नहीं गिने। पुरानी किताब में लिखा है कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं और सब किताबें पुरुषों ने लिखी हैं तो स्त्रियों में बराबर दांत होते हैं, यह भी कैसे मान सकते? स्त्रियों में कमी तो होनी ही चाहिए सब तरह की। वह तो पहले पक्का सिद्धांत था।
अब यह बड़े मजे की बात है कि यह किसने किताब लिखी। और अरस्तू ने भी अपनी किताब में लिख दिया कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं--गिना नहीं। अरस्तू के मरने के एक हजार साल तक सारा यूरोप यह मानता रहा कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। अब मजा है कि पुरुषों को छोड़ दो, पक्षपात है उनका। स्त्रियां क्या करती रहीं, अपने दांत नहीं गिन सकती थीं? लेकिन अवैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र में जाती है। उन्होंने भी किताब खोल कर पढ़ा होगा, स्त्रियों के दांत कम हैं तो बात खत्म हो गई। आश्चर्यजनक है, लेकिन सत्य है, हजारों मान्यताएं चल रही हैं क्योंकि शास्त्र में लिखी हैं।
देश को एक वैज्ञानिक बुद्धि चाहिए तो हम अपने जिंदगी के सवालों को हल
कर सकेंगे। हमारी अवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने बहुत कुछ समस्याएं खड़ी कर दी हैं, वे चारों तरफ खड़ी हैं। वे हमें घेरे हुए हैं। उनको काटना मुश्किल होगा क्योंकि विज्ञान पैदा न हो तो टेक्नालॉजी पैदा नहीं होगी।
हां, हम ट्रांसप्लांट कर सकते हैं। पश्चिम से हम उधार टेक्नालॉजी ला सकते हैं। लेकिन उधार बुद्धि कहां से लाइएगा? और बैलगाड़ी में बैठने वाले आदमी के पास एक तरह की बुद्धि होती है--बैलगाड़ी की। हवाई जहाज मिल सकता है उधार--बैलगाड़ी में बैठने वाले आदमी को हवाई जहाज में बिठाया जा सकता है, पायलट बनाया जा सकता है। लेकिन बैलगाड़ी वाले की बुद्धि एकदम हवाई जहाज के पायलट की बुद्धि नहीं हो जाती। और बैलगाड़ी वाली बुद्धि के हाथ में हवाई जहाज खतरनाक सिद्ध होगा। नुकसान में ले जाएगा, फायदे में नहीं ले जा सकता। मुश्किल में डाल देगा।
नहीं, पहले इस देश की बुद्धि बदलनी चाहिए। क्या आपको पता है कि तीन सौ साल में पश्चिम में जो विज्ञान का विकास हुआ, उसके जन्म का कारण संदेह की प्रवृत्ति है। संदेह, डाउट! तीन सौ साल में पश्चिम के युवकों ने संदेह किया पूर्वजों पर, पुरखों पर, पिताओं पर, पिछली सदियों पर, पिछले शास्त्रों पर, जीसस पर, मोहम्मद पर, सब पर संदेह किया--मूसा पर, जरथुस्त्र पर। उस संदेह का परिणाम हुआ विज्ञान। आज भी हम संदेह करने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं। और अगर हम संदेह नहीं कर पाते तो विज्ञान का जन्म नहीं हो सकता। वैज्ञानिक बुद्धि पैदा नहीं हो सकती।
अवैज्ञानिक बुद्धि का आधार है विश्वास, बिलीफ और वैज्ञानिक बुद्धि का आधार है संदेह, डाउट। क्या आज भी हम संदेह करने की स्थिति में हैं? नहीं, आज भी शिक्षक सिखा रहा है, विश्वास करो। पिता सिखा रहा है, विश्वास करो। बड़ा भाई छोटे भाई को सिखा रहा है, विश्वास करो। सब तरफ विश्वास सिखाया जा रहा है। विश्वास अब आगे हमें कठिनाई में डाल दे सकता है। संदेह सिखाने की जरूरत है। और यह बड़े मजे की बात है कि जब कोई आदमी ठीक से संदेह करने लगता है तो वह उन विश्वासों पर पहुंच जाता है जो असंदिग्ध हैं। जब कोई आदमी ठीक से संदेह करता है तो वह उन विश्वासों पर पहुंच जाता है जो असंदिग्ध हैं। और जब कोई आदमी पहले से विश्वास कर लेता है, तो कभी असंदिग्ध विश्वासों पर नहीं पहुंच पाता। संदेह की यात्रा सत्य तक ले जाती है, विश्वास की यात्रा कभी भी नहीं।
लेकिन हम विश्वास से भरे हुए लोग हैं। हम सब तरफ से विश्वास पर जी रहे हैं। यह तोड़ना पड़ेगा। यह मिटाना पड़ेगा। तो आज कोई कारण नहीं है कि जो पश्चिम में संभव हुई है समृद्धि, वह यहां संभव क्यों न हो जाए? बेहतर जमीन है, बेहतर आकाश है, बेहतर मौसम है, ज्यादा उपलब्ध सूरज है, पहाड़ हैं, संपत्ति है, जमीन है, सब है। लेकिन वह बुद्धि नहीं है जो उसमें से कीमिया

को निकाल ले और संपत्ति को पैदा कर दे। सिर्फ बुद्धि की कमी बाधा डाल रही है, और कोई बाधा नहीं है। और बुद्धि हो तो संपत्ति पैदा होगी, लेकिन हमको उसकी भी फिकर नहीं है।
हम कहते हैं, जो सम्पत्ति है उसे बांटिए, सब मामला हल हो जाएगा। तो हमारा सारा बुद्धिमान वर्ग एक नारे में लगा है कि बस संपत्ति को बांटो। मैं नहीं मानता कि वह बहुत बुद्धिमान वर्ग है जो इस नारे में लगा है। संपत्ति नहीं है, बांटिएगा क्या? पहले संपत्ति पैदा करो, पहले संपत्ति को बरसाओ, पहले संपत्ति से देश को भर दो। फिर बांटना तो बहुत आसान काम है। लेकिन अगर आज हमने जबरदस्ती संपत्ति बांट भी ली--बांट लेंगे, ऐसा लगता है--ऐसा लगता है कि बांट लेंगे क्योंकि रिक्शा वाला बहुत प्रसन्न हो गया है। इंदिरा जी के आस-पास घेरा लगा कर नारे लगा रहा है। वह कह रहा है जिंदाबाद। हां, लगता है कि हम संपत्ति बांट लेंगे। संपत्ति नहीं है, उसको बांट लेंगे। वह बंट जाएगी। और यह देश और गरीब हो जाएगा। संपत्ति नहीं बांटनी है, विश्वास की हत्या करनी है और संदेह को जन्म देना है। धर्म के अंधेपन से मुक्त होना है और वैज्ञानिक की आंख पैदा करनी है। गरीबी का पुराना मोह छोड़ना है और संपत्ति को पैदा करने का स्वस्थ आग्रह पैदा करना है। दीन-हीन होने की पुरानी व्याख्याएं जला डालनी हैं और समृद्ध होने के नये आधार रखने हैं। भौतिकवाद को स्वीकार करना है ताकि अध्यात्म का कलश, स्वर्ण-कलश उस पर चढ़ाया जा सके।
ये काम हैं जो देश के बुद्धिमान को करने हैं, लेकिन देश का बुद्धिमान नारेबाजी में है। और नारेबाजी के साथ भीड़ भी खड़ी हो जाती है। भीड़ बहुत कम समझदार है। भीड़ को खड़ा कर लेना बहुत कठिन नहीं है। अगर भीड़ बहुत समझदार होती तो उसने अपने मसले कभी के हल कर लिए होते, लेकिन भीड़ बहुत समझदार नहीं है। और इस देश में भीड़ को इकट्ठा अगर करना हो तो नासमझी की बातें करना जरूरी हैं। नासमझी हो तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। इस देश में नेता होना हो तो थोड़ा मीडियाकर बुद्धि का होना बहुत जरूरी है। बहुत प्रतिभावान आदमी इस देश में नेता नहीं हो सकता। क्योंकि बहुत प्रतिभावान आदमी भीड़ की बातों पर राजी नहीं होगा। अक्सर प्रतिभावान आदमी भीड़ की बातों का विरोध करेगा। क्योंकि भीड़ अपनी भूलों से परेशान है। उसको उसकी भूलों को स्वीकार करना खतरनाक है। लेकिन नेता होने का सूत्र है कि जो भीड़ कहती है वही तुम भी कहो। नेता होने की कीमिया है, केमिस्ट्री है कि हमेशा भीड़ के पीछे चलो। नेता दिखता आगे है, होता हमेशा पीछे है। नेता अपने अनुयायी का भी अनुयायी होता है। अनुयायी का भी अनुयायी जो हो सकता है वही नेता हो सकता है। वह अनुयायी के पीछे चलता है। वह देखता है, अनुयायी क्या मांगता है, वही कहो, अनुयायी क्या चाहता है, वही कहो। नारे पैदा हो गए हैं। देश बीस साल से नारों के आस-पास जी रहा है। स्लोगनबाजी है, उसमें कुछ बहुत सोच-विचार नहीं है। उसमें कोई बहुत गहरी खोज नहीं है। देश के महारोग के भीतर उतरने की कोई निष्ठावान चेष्टा नहीं है, सिर्फ नारेबाजी है।
जनता को क्या नारा ठीक लगता है, वह नारा लगाओ। और जनता ही अगर समझदार होती तो पांच हजार साल की दीनता और दरिद्रता हमने न झेली होती। अब फिर जनता प्रमुख हो गई है। अब फिर जनता जिसको साथ देगी वही इस मुल्क को आगे चलाएगा। जनता के मानस में नये विचार डालने पड़ेंगे। जनता का मानस बदलना पड़ेगा तो शायद गलत नेता उसे गलत मार्गदर्शन न दे सकें। अभी इस देश को पचास साल एक परिपक्व पूंजीवाद की जरूरत है, एक मैच्योर कैपटेलिज्म की जरूरत है।
तो मैं समाजवादी हूं, जब ऐसी बात कहता हूं तो कठिन मालूम पड़ती है। समाजवादी मित्र मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, आप क्या कहते हैं? मैं यह कहता हूं कि पूंजीवाद आ जाए तो समाजवाद आ सके। पूंजीवाद ही नहीं आए तो समाजवाद नहीं आ सकता। और मैं यह कहना चाहता हूं कि रूस का प्रयोग बहुत गहरे अर्थों में असफल हुआ है और परेशानी हुई है। चीन का प्रयोग असफल हो रहा है और भीतर बहुत गहरी परेशानी है।
चीन ने पहली दफा तिब्बत पर हमला किया तो मेरे एक मित्र मानसरोवर की यात्रा पर गए थे। वे लौटते थे तो एक तिब्बती गांव में उनको पकड़ लिया गया।

जिन चीन के सैनिकों ने पकड़ा, वे मुझसे कहने लगे, हम बहुत हैरान हुए। वे चीन के सैनिक इनका एक-एक सामान देखने लगे। स्टोव था इनके पास। वे स्टोव नहीं समझ सके कि यह स्टोव क्या है। तो उन्होंने कहा कि इसे जला कर बताओ। चला कर बताओ कि यह है क्या, यह चीज क्या है? वे समझे कि कोई खतरनाक यंत्र है। स्टोव, साधारण, चाय बनाने का स्टोव--चीन का सैनिक नहीं समझ सका कि यह क्या है! गांव के किसान हैं, जबरदस्ती भर्ती कर लिए गए हैं, जबरदस्ती बंदूक पकड़ा दी गई है। स्टोव को चीन के सैनिक नहीं समझ पाए। वे मेरे मित्र कहने लगे, हम बहुत हैरान हुए। हमने स्टोव जला कर बताया तो जो आठ-दस सैनिक थे वे एकदम भाग कर दरवाजे के बाहर खड़े हो गए क्योंकि आग भभकी। उन्होंने समझा कि पता नहीं क्या विस्फोट हो जाए। क्या खतरा हो जाए।
चीन जबरदस्ती समाजवादी होने की कोशिश कर रहा है इसलिए भारी रक्तपात
हो रहा है। पांच महीने के बच्चे को मां से निकालेंगे तो रक्तपात होगा। और रक्तपात के बाद भी समाधान नहीं है। समाधान इसलिए नहीं है कि समृद्धि है ही नहीं, बांटिएगा क्या? तो चीन भीतर से गरीब और परेशान है। मुश्किल में है। उस मुश्किल को हल करता है आस-पास हमले करके। आस-पास हमले करने से आशा बंधती है चीन के आदमी को कि शायद कहीं से संपत्ति लूट लेंगे। कहीं कुछ उपद्रव हो जाए। लेकिन कहीं से संपत्ति लूटी नहीं जा सकती। संपत्ति पैदा करनी पड़ती है।
रूस चालीस साल के अनुभव के बाद नये अनुभव ले रहा है। अभी उन्नीस सौ साठ में पहली दफा रूस में व्यक्तिगत कार रखने की छूट दी गई है। हालांकि हैं नहीं अभी कि व्यक्तिगत कारें सारे लोग रख सकें। सौ-पचास लोग बड़े नगरों में रख सकते हैं। लेकिन व्यक्तिगत कार रखने की छूट उन्नीस सौ साठ में दी और यह अनुभव किया कि अब व्यक्तिगत छूट थोड़ी दो। क्योंकि लोगों का इनसेंटिव मर गया, लोगों की प्रेरणा मर गई। कोई काम नहीं करना चाहता। रूस के सामने बड़े से बड़ा सवाल है, रूस का युवक काम नहीं करना चाहता क्योंकि काम करने का कोई प्रयोजन नहीं है।

अमरीका, मैं मानता हूं, पचास वर्षों में ज्यादा बेहतर समाजवादी मुल्क सिद्ध होगा। वह रोज समाजवाद की तरफ बढ़ेगा, बढ़ना पड़ेगा। संपत्ति जब अतिरिक्त हो जाएगी तो व्यक्तिगत कब्जे का कोई मतलब नहीं है। व्यक्तिगत कब्जे का एक ही अर्थ है कि कम है संपत्ति, न्यून है, तभी तक व्यक्तिगत कब्जे का अर्थ है। गांव में हवा पर हम कब्जा नहीं करते, क्योंकि हवा बहुत है। कब्जा करने का कोई मतलब नहीं है। जमीन पर हमने कब्जा किया, लेकिन कब किया? जब जमीन कम पड़ी और संख्या ज्यादा हुई। आज से सौ साल पहले तक जमीन पर कोई कब्जा न था। जो जितनी जमीन जोत लेता था वह उसकी हो जाती थी।
मेरे नाना ने मुझे कहा कि उन्हें जो जमीन मिली थी वह मुफ्त मिली थी। क्योंकि कोई जोतने वाला न था। जो जोत ले उसी को जमीन मिल जाती थी। जमीन का कोई मूल्य न था। संख्या कम थी, जमीन ज्यादा थी तो जमीन पर कोई कब्जा न था। संख्या ज्यादा हुई, जमीन कम पड़ी, जमीन पर कब्जा आ गया। जो चीज कम हो जाएगी उस पर कब्जा हो जाएगा।
संपत्ति जब तक कम है तब तक व्यक्तिगत कब्जे को हटाना मुश्किल है। और अगर हटाया तो संपत्ति का पैदा होना बंद हो जाएगा। क्योंकि पैदा होने की प्रेरणा विलीन हो जाएगी। संपत्ति इतनी हो जानी चाहिए जैसे हवा है, पानी है। ताकि उस पर व्यक्तिगत कब्जे का अर्थ खो जाए। अमरीका पचास वर्षों में समाजवादी हो सकता है। और वहां जो समाजवाद आएगा वह एकदम लोकतांत्रिक और अहिंसात्मक होगा। क्योंकि तब समाजवाद सहज आ जाएगा। संपत्ति के अतिरेक से आया हुआ समाजवाद ही सहज समाजवाद हो सकता है। लेकिन इस मुल्क में कैसे आ सकता है? हम तो बहुत बुरी हालत में हैं। यहां संपत्ति नहीं है। ये संपत्ति पैदा करने के मूल आधार हमें सोचने पड़ेंगे।
मैंने कुछ बातें कहीं इस आशा में कि आप सोचेंगे, विचार करेंगे। निर्णय जल्दी हमें लेना पड़ेगा देश को कि क्या करना है। निर्णय अगर हमने सोच कर लिया, नारेबाजी में नहीं लिया तो शायद सहज उपयोगी हो सके और नारेबाजी में निर्णय लिया तो खतरनाक भी हो सकता है। नारे सुंदर लगते हैं,

इससे सत्य नहीं हो जाते। और कोई बात हमारी ईर्ष्या को तृप्त करती है, इससे सहयोगी और उपयोगी नहीं हो जाती।
और भी समस्याएं हैं, कल उन पर बात करूंगा। आपके कोई सवाल होंगे, वे लिख
कर दे देंगे।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का
तीसरा प्रवचन

राष्ट्रभाषा और खण्डित देश

मेरे प्रिय आत्मन्!
प्रश्नों के ढेर से लगता है कि भारत के सामने कितनी जीवंत समस्याएं होंगी। करीब-करीब समस्याएं ही समस्याएं हैं और समाधान नहीं हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या भारत में कोई राष्ट्रभाषा होनी चाहिए? यदि हां, तो कौन सी?

राष्ट्रभाषा का सवाल ही भारत में बुनियादी रूप से गलत है। भारत में इतनी भाषाएं हैं कि राष्ट्रभाषा सिर्फ लादी जा सकती है और जिन भाषाओं पर लादी जाएगी उनके साथ अन्याय होगा। भारत में राष्ट्रभाषा की कोई भी जरूरत नहीं है। भारत में बहुत सी राष्ट्रभाषाएं ही होंगी और आज कोई कठिनाई भी नहीं है कि राष्ट्रभाषा जरूरी हो। रूस बिना राष्ट्रभाषा के काम चलाता है तो हम क्यों नहीं चला सकते। आज तो यांत्रिक व्यवस्था हो सकती है संसद में, बहुत थोड़े खर्च से, जिसके द्वारा एक भाषा सभी भाषाओं में अनुवादित हो जाए। लेकिन राष्ट्रभाषा का मोह बहुत महंगा पड़ रहा है। भारत की प्रत्येक भाषा राष्ट्रभाषा होने में समर्थ है इसलिए कोई भी भाषा अपना अधिकार छोड़ने को राजी नहीं होगी--होना भी नहीं चाहिए। लेकिन यदि हमने जबरदस्ती किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बना कर थोपने की कोशिश की तो देश खंड-खंड हो जाएगा। आज देश के बीच विभाजन के जो बुनियादी कारण हैं उनमें भाषा एक है। राष्ट्रभाषा बनाने का खयाल ही राष्ट्र को खंड-खंड में तोड़ने का कारण बनेगा। लेकिन हमें वह भूत जोर से सवार है कि राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। अगर राष्ट्र को बचाना हो तो राष्ट्रभाषा से बचना पड़ेगा। और अगर राष्ट्र को मिटाना हो तो राष्ट्रभाषा की बात आगे भी जारी रखी जा सकती है।
मेरी दृष्टि में भारत में जितनी भाषाएं बोली जाती हैं, सब राष्ट्रभाषाएं हैं। उनको समान आदर उपलब्ध होना चाहिए। किसी एक भाषा का साम्राज्य दूसरी भाषाओं पर बरदाश्त नहीं किया जाएगा, वह भाषा चाहे हिंदी हो और चाहे कोई और हो। कोई कारण नहीं है कि तमिल या तेलगू या बंगाली या गुजराती को हिंदी दबाए। लेकिन गांधी जी के कारण कुछ बीमारियां इस देश में छूटीं, उनमें एक बीमारी हिंदी को राष्ट्रभाषा का वहम देने की भी है। हिंदी को यह अहंकार गांधी जी दे गए कि वह राष्ट्रभाषा है। तो हिंदी प्रांत उस अहंकार से परेशान हैं और वह अपनी भाषा को पूरे देश पर थोपने की कोशिश में लगे हुए हैं। स्वाभाविक है कि इसकी बगावत हो। हिंदी का साम्राज्य भी बरदाश्त नहीं किया जा सकता हैं, किसी भाषा का नहीं किया सकता हैं। कोई अड़चन भी नहीं है। सिर्फ संसद में हमें यांत्रिक व्यवस्था करनी चाहिए कि सारी भाषाएं अनुवादित हो सकें। और वैसे भी संसद कोई काम तो कोई करती नहीं है कि कोई अड़चन हो जाएगी। सालों तक एक-एक बात पर चर्चा चलती है, थोड़ी देर और चल लेगी तो कोई फर्क नहीं होने वाला है। संसद कुछ करती हो तो भी विचार होता कि कहीं कार्य में बाधा न पड़ जाए। कार्य में कोइ बाधा पड़ने वाली नहीं मालूम होती हैं।
फिर मेरी दृष्टि यह भी है कि यदि हम राष्ट्रभाषा को थोपने का उपाय न करें तो शायद बीस पच्चीस वर्षों में कोई एक भाषा विकसित हो और धीरे-धीरे राष्ट्र के प्राणों को घेर ले। वह भाषा हिंदी नहीं होगी, वह भाषा हिंदुस्तानी होगी। उसमें तमिल के शब्द भी होंगे, तेलगू के भी, अंग्रेजी के भी, गुजराती के भी, मराठी के भी। वह एक मिश्रित नई भाषा होगी जो धीरे-धीरे भारत के जीवन में से विकसित हो जाएगी। लेकिन, अगर कोई शुद्धतावादी चाहता हो कि शुद्ध हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना है तो यह सब पागलपन की बातें है। इससे कुछ हित नहीं हो सकता है।

एक मित्र ने यह भी पूछा है कि क्या अंग्रेजी को देश से हटाया जाए?

अंग्रेजी को देश से हटाना बहुत आत्मघाती होगा। विगत दो सौ वर्षों में अंग्रेजी के माध्यम से हम जगत से संबंधित हुए हैं। और विगत दो सौ वर्षों में जो भी महत्वपूर्ण निर्मित हुआ है, वह अंग्रेजी भाषा-भाषी लोगों के द्वारा निर्मित हुआ है। और आने वाले भविष्य में भी अंग्रेजी का जगत निरंतर विकास आविष्कार और खोज करता रहेगा। यदि अंग्रेजी को भारत से हटाने की चेष्टा की गई तो हम अपने हाथ से जगत से टूट कर एक कुएं में बंद हो जाएंगे। वह बहुत महंगा पड़ेगा। लेकिन हमको सुखद लग सकता है कि अंग्रेजी अंग्रेजों की भाषा है इसलिए हटाओ। लेकिन अब सवाल अंग्रेजों की भाषा का नहीं, अब सवाल अंतर्राष्ट्रीय भाषा का है। और हमें अच्छा लग सकता है कि अंग्रेजों की भाषा है इसलिए हटाओ, तो अंग्रेजों की मोटरें, और रेलगाड़ियां और हवाई जहाज हटाने के संबंध में क्या खयाल है? सारी टेक्नालॉजी पश्चिम से आई है और अगर उस टेक्नालॉजी में दुनिया के साथ खड़े होना है तो अंग्रेजी पर अधिकार अत्यंत आवश्यक है। हमारे हित में है, पश्चिम के हित में नहीं है। आज सारी दुनिया धीरे-धीरे अंग्रेजी जगत से संबंधित होती जा रही है।
हर युग की एक भाषा होती है। उस युग की भाषा वही होती है जो उस युग को सर्वाधिक दान देती है। हमारे देश की कोई भी भाषा अभी जगत भाषा नहीं बन सकती क्योंकि जगत के विकास में हमारा आज कोई कंट्रीब्यूशन, कोई दान नहीं है। न हमने यंत्र दिए हैं, न समृद्धि दी है, न सुख दिया है। हमने विश्व को रूपांतरित करने के लिए आज कुछ भी नहीं दिया है। जो भाषा आज सर्वाधिक दान करेगी वही भाषा जगत की भाषा बनेगी। हमें इतने समर्थ होना पड़ेगा, इतने आविष्कारक, इतने वैज्ञानिक, तब हमारी कोई भाषा जागतिक महत्व की हो सकती है लेकिन आज अंग्रेजी से अपने को तोड़ना बहुत महंगा पड़ जाएगा।
सच तो यह है कि अंग्रेजों के जाने के बाद हमें अंग्रेजी को बचाने की तीव्रतम चेष्टा करनी चाहिए। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से ऐतिहासिक संयोग था कि हमें डेढ़ सौ या दो सौ वर्ष अंग्रेजी से संबंधित होने का मौका मिला। इस मौके को हम अपना वरदान सिद्ध कर सकते हैं। आज दुनिया में गैर-अंग्रेजी भाषी देशों में हमारा देश अकेला देश है जो ढंग से अंग्रेजी में सोच सकता है, विचार सकता है, बात कर सकता है। इस मौके को खो नहीं देना चाहिए। यह मौका हमने खोया है। बीस वर्षों में अंग्रेजी की क्षमता हमारी निरंतर कम हुई है क्योंकि हमको यह खयाल है कि अब अंग्रेजी की कोई जरूरत नहीं है। अंग्रेजी की जरूरत रोज-रोज बढ़ती चली जाएगी। न केवल अंग्रेजी की जरूरत पड़ेगी बल्कि भविष्य में हमें रूसी भी सीखनी पड़ेगी, चीनी भी सीखनी पड़ेगी। भविष्य में हमें और जगतिक भाषाओं पर भी अधिकार उपलब्ध करना पडेगा। जिस पर है, देश के नासमझ नेता उसको छोड़ने की बात कर रहे हैं। जिन पर नहीं है, उन पर अधिकार करने की बात तो बहुत दूर है।
अंग्रेजी बचाने की चेष्टा अत्यंत जरूरी है। लेकिन अंग्रेजी को कोई राष्ट्रभाषा बनाने की जरूरत नहीं है। अंग्रेजी हमारी भाषा नहीं है इसलिए राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। राष्ट्रभाषा की जरूरत ही नहीं है। देश की सभी भाषाएं राष्ट्रभाषा की हैसियत से काम करें, अंग्रेजी हमारा अंतर्राष्ट्रीय संबंध की भाषा रहे और उसमें जितने निष्णात हो सकें, उतना अच्छा है। लेकिन अंग्रेजी के साथ गुलामी का दंश जुड़ गया। उस दंश से हमें बचना चाहिए और गुलामी ने कुछ अच्छाइयां भी दी हैं और कुछ बुराइयां भी दी हैं। बुराइयों को काट डालना जरूरी है, अच्छाइयों को बचा लेना जरूरी है। सिर्फ इसलिए कि वह गुलामी के क्षणों में हम पर आयीं, उनसे छूट जाना अपने ही हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना होगा।
ठीक से समझा जाए तो मुसलमानों की हुकूमत इस देश में एक हजार साल चली
और उसका कुल कारण इतना था कि मुसलमान संस्कृति ने भारत को कुछ भी शिक्षित करने की कोशिश नहीं की। अंग्रेज भी भारत में एक हजार साल चल सकते थे-- ज्यादा चल सकते थे, लेकिन अंग्रेजों ने एक भूल की--उन्होंने भारत को शिक्षित करने की कोशिश की। उनकी शिक्षा ही बगावत का कारण बनी। हिंदुस्तान में जो बगावत, विद्रोह और क्रांति की भावना पैदा हुई, लोकतंत्र, स्वतंत्रता का जो खयाल पैदा हुआ वह पश्चिम से आया। भारत की कांग्रेस संस्था जिसने इस क्रांति को अगुआई दी, अंग्रेजों के द्वारा निर्मित

संस्था थी। और भारत के सारे नेता, जिन्होंने इस देश को विचार दिए और क्रांति में ले गए, पश्चिम में शिक्षित हुए थे और पश्चिम से स्वतंत्रता का खयाल लेकर लौटे थे और क्रांति का खयाल लेकर लौटे थे।
क्रांति का खयाल भारतीय नहीं है। भारत ने कभी क्रांति नहीं की है। विद्रोह और बगावत की बात भारतीय नहीं है। भारतीय मन संतोष और तृप्ति को मानता है, क्रांति और बगावत को नहीं। भारतीय मन सब स्थितियों में राजी होने को तैयार है--तोड़ने को, बदलने को नहीं। परिवर्तन की आकांक्षा बिल्कुल अभारतीय है और अंग्रेजों के द्वारा इस देश में आई। विज्ञान की भी सारी क्षमता उनके मार्ग से हम तक आई। निश्चित ही गुलामी बहुत दुखद थी और गुलामी में जो भी हमारे पास आया उससे हमारा दुख का संबंध हो गया। लेकिन हमें सोच समझ कर काम करना पड़ेगा। माना कि पैर में घाव हो जाए तो बहुत दुख होता है, हम घाव को अलग कर देते हैं, पैर को बचा लेते हैं। लेकिन पैर को ही अलग नहीं कर देते।
बहुत घाव लगे गुलामी में, लेकिन उन घावों के साथ कुछ पश्चिम की संस्कृति का श्रेष्ठ भी हम तक आया है। उसे बचा लेने की अत्यंत जरूरत है। क्यों? क्योंकि आधुनिकीकरण में--भारत के मॉर्डनाइजेशन में, वह पश्चिम से जो आया है उसकी अनिवार्य जरूरत पड़ेगी। अन्यथा हम बहुत पिछड़े हुए हो जाएंगे। आज विज्ञान की श्रेष्ठतम शाखाओं में जो भी उपलब्ध किया जा रहा है उसका अगर हम अनुवाद करने बैठें तो हम दो सौ वर्ष तो अनुवाद में लगा देंगे। और दो सौ वर्ष जब तक हम इसका अनुवाद करेंगे तब तक विज्ञान ठहरा नहीं रहेगा। वह दो सौ वर्ष आगे निकल चुका होगा। इतने जोर से क्रांति हो रही है कि अनुवाद के द्वारा काम नहीं हो सकता। हमें सीधा ही संपर्क बांधना होगा अन्यथा हम संपर्क से खो जाएंगे। और इस सीधे संपर्क के लिए अंग्रेजी को बचा लेना अत्यंत जरूरी है। और अब हम अंग्रेजी को हिम्मत से और प्रेम से बचा सकते हैं क्योंकि वह अब गुलामी की बात नहीं है, अब वह अंतर्राष्ट्रीय संबंध की और सीखने की बात है। अंग्रेजी तो अनिवार्य होनी ही चाहिए, उससे तो छुटकारा नहीं है। उससे छुटकारे की बात ही महंगी पड़ जएगी।
हमारा मन करता है क्योंकि अंग्रेजी सीखने की कठिनाई है। हमारा मन करता है, इससे छुटकारा हो जाए। युवक पसंद करेगा अंग्रेजी से छुटकारा हो जाए। असल में कठिनाई से बचने की कौन कोशिश नहीं करता है? लेकिन कठिनाइयों से कौम जो बचने की कोशिश करती है वह धीरे-धीरे कमजोर हो जाती है और नष्ट हो जाती है। पिछले, अतीत, इतिहास में भी हमने कठिनाइयों से बचने की कोशिश में बहुत कुछ गंवाया है। अब आगे हम कठिनाइयों से बचेंगे तो बहुत बुरी बात हो जाएगी। कठिनाइयों से नहीं बचना है। कठिनाइयों को स्वीकार करना पड़ेगा, उनकी चुनौती माननी पड़ेगी और उन कठिनाइयों से गुजर कर देश की नई पीढ़ी को ठीक से निर्मित करना होगा।
अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा की तरह हमें सीखनी ही है, उससे छुटकारा नहीं लेना है। और राष्ट्रीय भाषा विकसित हो सकती है, अगर थोपी न जाए। हिंदी धीरे-धीरे विकसित हो रही है। उसके प्रति प्रेम था दक्षिण में भी, बंगाल में भी, गुजरात में भी, सब तरफ उसके प्रति प्रेम था। लेकिन जैसे ही राष्ट्रभाषा का खयाल आया और हिंदी ने कोशिश की कि राष्ट्रभाषा बन जाए और हिंदी साम्राज्यवादी कुछ नेतागण पागल की तरह उसको राष्ट्रभाषा बनाने में लग गए, वैसे ही तनाव पैदा हो गया और रेसिस्टेंस शुरू हो गया। सारा मुल्क तन गया और उसने कहा, यह बरदाश्त नहीं किया जा सकता--नहीं करना चाहिए। गलत है बरदाश्त करना।
कोई भी चीज थोपी नहीं जा सकती और भाषाएं थोपने से विकसित नहीं होतीं। भाषाएं प्रेम से, अंतर्संबंधों से विकसित होती हैं। वे अपने आप विकसित होती चली जाती हैं। अगर देश साथ-साथ जीएगा तो धीरे-धीरे एक भाषा, आम बोलचाल की भाषा विकसित हो जाएगी। वह हिंदुस्तानी होगी। उसमें सब भाषाओं के शब्द होंगे और वह हिंदी से ज्यादा बहुमूल्य होगी, समृद्ध होगी। क्योंकि सभी भाषाओं की धाराएं उसमें आकर मिल जाएंगी। वह अकेली हिंदी नहीं होगी, वह एक बिल्कुल ही नई भाषा होगी। उस नई भाषा की दिशा में कदम उठाए जा सकते हैं। पहला कदम है, राष्ट्रभाषा की बात बंद कर दें।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि देश की एकता के लिए क्या किया जाए? देश
का इंटिग्रेशन, राष्ट्रीय एकता कैसे हो?

उसमें कुछ बातें सोचनी जरूरी हैं। पहली बात तो यह कि देश की सारी राजनीति देश को खंड-खंड बनाए रखने पर जीवित है और वे ही राजनीतिज्ञ बातें करते हैं कि राष्ट्र एक कैसे हो? गुजरात का राजनीतिज्ञ जिंदा है गुजरात की अलग इकाई पर, महाराष्ट्र का राजनीतिज्ञ जिंदा है महाराष्ट्र की अलग इकाई पर, मैसूर का राजनीतिज्ञ मैसूर की अलग इकाई पर जिंदा है। मैसूर और महाराष्ट्र लड़ते रहेंगे, कि एक जिला मैसूर में हो कि महाराष्ट्र में, और ऊपर दिल्ली में बैठ कर वे विचार करेंगे--वे ही लोग, कि राष्ट्र की एकता कैसे हो? असल में राजनीतिज्ञ लोकल, स्थानीय स्वार्थ पर जिंदा है और राष्ट्रीय स्वार्थ की बात कर रहा है, इसलिए यह एकता संभव नहीं हो सकती है। यह एकता संभव एक ही तरह से हो सकती है कि देश में स्थानीय सरकारों को विदा किया जाए, सिर्फ केंद्रीय सरकार हो; उसके अतिरिक्त देश की एकता नहीं हो सकती। देश में केंद्रीय सरकार हो, लेकिन राजनीतिज्ञ पसंद न करेगा। क्योंकि फिर इतने गवर्नर कैसे होंगे, इतने मुख्यमंत्री कैसे होंगे, इतने मंत्री, उपमंत्री कैसे होंगे? बहुत कठिनाई हो जाएगी। थोड़े से लोगों के हाथ में ही फिर सत्ता होगी। इतने लोग सत्ताधिकारी होने का मजा नहीं ले सकेंगे। उनकी सत्ताधिकारी होनी की इच्छा देश को खंड-खंड तोड़ती चली जाती है। फिर तेलंगाना चाहता है अलग राज्य बन जाए, पंजाब चाहता है अलग राज्य बन जाए, झारखंड चाहता है बिहार में अलग राज्य बन जाए, बरार चाहता है विदर्भ अलग राज्य बन जाए। क्योंकि राजनीतिज्ञ देखते है कि एक प्रदेश दो हिस्सों में टूटे तो फिर दो मुख्यमंत्री होते हैं, दो मंत्रालय होते है, दो गवर्नर होते है। राजनीतिज्ञ को सुविधा मिलती है देश जितने हिस्सों में टूटे। राजनीतिज्ञ का हित इस पर निर्भर है कि देश टूटता चला जाए और फिर राजनीतिज्ञ ऊपर बैठ कर बातें करते हैं कि राष्ट्र की एकता कैसे हो? सेमिनार बुलाता है, विचार करता है। वह विचार बेकार है, उनसे कुछ हल नहीं हो सकता है। अगर देश को एक बनाना है तो देश में एक केंद्रीय सरकार के अतिरिक्त और सरकारों की कोई जरूरत नहीं है। एक सरकार के रहते ही लोकल हित समाप्त हो जाएंगे, स्थानीय हित समाप्त हो जाएंगे। फिर नर्मदा का जल गुजरात का है कि मध्यप्रदेश का, यह सवाल नहीं रहेगा। फिर नर्मदा का जल नर्मदा का होगा। अभी बहुत झंझट है। फिर कौन सा जिला मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में, इस पर गोली नहीं चलेगी। क्योंकि जिला अपनी जगह है, अपनी जगह रहेगा। वह पूरे देश का होगा। एक केंद्रिय सरकार निर्मित होते ही देश एक होने लगेगा।
हां, देश के विभाजन एडमिनिस्ट्रेशन के आधार पर होने चाहिए--झोनल, चार टुकड़े हो जाएं। जोनल एडमिनिस्ट्रेशन की बात है, राजनीतिक विभाजन की बात नहीं है। इकाइयां हो जाएं, जैसे रेलवे की इकाइयां हैं। रेलवे में कोई झगड़ा नहीं है कि वेस्टर्न रेलवे और सेंट्रल रेलवे से युद्ध कर रही हो। कोई झगड़ा नहीं है, एडमिनिस्ट्रेटिव विभाजन है। देश का विभाजन प्रशासनिक होना चाहिए, राजनीतिक नहीं। पोलिटिकल विभाजन खतरनाक है। और अगर पोलिटिकल विभाजन चलता है तो एक-एक राज्य को हमें और छोटे राज्यों में तोड़ना ही पड़ेगा क्योंकि छोटे राजनीतिज्ञ छुटभय्यों के लिए क्या किया जाए? उन्हें भी प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री और गवर्नर होना है। फिर उनको रोकने का कारण भी क्या है? फिर गुजरात एक क्यों हो? चार गुजरात क्यों न हों? सौराष्ट्र अलग क्यों न हो?
आखिर सौराष्ट्र के भी राजनीतिज्ञ हैं, उनको भी मजा लेने का हक है। जबसे गुजरात बना, तबसे वे बेचारे बड़े परेशान हैं। वे मुझे मिलते हैं। मेरे कई मित्र हैं उनमें। वह बड़े परेशान हैं। जब सौराष्ट्र था तो उनमें कोई मुख्यमंत्री था, कोई मंत्री था, कोई कुछ था। वह अब कुछ भी नहीं रह गए। तो उनकी चेष्टा अगर हो कि सौराष्ट्र अलग हो तो बुरा क्या है? मैं यह कहता हूं, या तो फिर देश को टुकड़ों-टुकड़ों में तोड़ दें, एक-एक गांव में एक-एक

मिनिस्ट्री बना दो, तो तृप्ति हो सकती है। फिर भी होगी पक्का नहीं है, क्योंकि मोहल्ले लड़ सकते हैं। मुश्किल है मामला। राजनीति कहां रुकेगी कहना मुश्किल है।
तो एक रास्ता तो यह है कि एक-एक पंचायत एक-एक मंत्रालय हो जाए और या एक रास्ता यह है कि राष्ट्र की एक ही केंद्रीय सरकार हो। एक केंद्र होते ही देश के विभाजन की जो हमें शक्ल दिखाई पड़ती है, वह विदा हो जाएगी। चर्चिल ने हिंदुस्तान की आजादी मिलते वक्त एक बहुत दुखद भविष्यवाणी की थी। उसने कहा था कि दे तो रहे हो आजादी इनको, लेकिन बीस साल में ये वही हालत कर लेंगे जो अंग्रेजों से लेते समय मुसलमान साम्राज्य की थी कि बाप बेटे को मार रहा था, बेटा बाप को कैद कर रहा था। सारा देश खंड-खंड में बंट गया था। दिल्ली का सामरज्य सम्राट कहलाता जरूर था लेकिन आगरा भी वश में नहीं है। नाम ही रह गया। सारा मुल्क खंड-खंड था। एक-एक सिपहसालार, एक-एक सेनापति अपना राज्य बनाए हुए बैठा गया था। चर्चिल ने कहा था, बीस साल में, हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ अंग्रेजोंने मुसलमनोंसे जब भारत लिया था उसी हालत में भारत को पहुंचा देंगे। हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ उसकी भविष्यवाणी को पूरी करने में जी-जान से लगे हुए हैं। वे सब चेष्टा कर रहे हैं कि कहीं चर्चिल गलत न हो जाए। देश को खंड-खंड तोड़े चले जा रहे हैं। निपट मूढ़ता की बातें हैं। चंडीगढ़ कहां हो? गोलियां चलें, आदमी मरें, छोटी-छोटी बातों पर! लेकिन उसका मूल कारण क्या है? मूल कारण है कि हम छोटे-छोटे सभी राजनीतिज्ञों को सत्ता-अधिकार का रस देने की तैयारी दिखला रहे हैं। और फिर वे ही लोग मिल कर कहते हैं कि राष्ट्र की एकता कैसे हो, तब बहुत कठिनाई हो जाती है। जैसे चोर मिल कर विचार करें कि देश में चोरी कैसे बंद हो? सब एक-दूसरे की तरफ देखें, हंसें, भाषण करें और विदा हो जाएं। चोर कैसे देश में चोरी बंद करवाने का विचार कर सकते हैं? हां, कर सकते--इसलिए--सिर्फ-- ताकि पूरा देश सुन ले कि हम भी चोरी के खिलाफ हैं, ताकि चोरी करने में सुविधा हो जाए। अक्सर चोर ऐसा करते हैं। अगर कहीं चोरी हो जाए तो जिसने चोरी की है, उसके बचने का सबसे सरल उपाय यह है कि वह जोर से चिल्लाने लगे चोर के खिलाफ कि किसने चोरी की है, पकड़ो। तो फिर उसको कोई न पकड़ेगा क्योंकि इतना तो पक्का है कि इस आदमी ने चोरी नहीं की है। राजनीतिज्ञ चिल्लाते हैं कि देश की एकता चाहिए तो खयाल में आता है कि इन बेचारों का कोई हाथ नहीं है, ये निर्दोष मासूम हैं। और इनका ही हाथ है। इन्होंने देश को खंड-खंड किया है। देश खंड-खंड कहां है? सिवाय राजनीतिज्ञों के स्वार्थ के देश का कोई खंड-खंड होना नहीं है।
राजनीतिज्ञों को विदा करना पड़ेगा। छोटे-छोटे राजनीतिज्ञों की सबकी तृप्ति को रोकना पड़ेगा। एक राष्ट्र एक केंद्रीय सरकार के निर्मित होते ही बन जाएगा। एडमिनिस्ट्रेटिव--प्रशासनिक विभाजन होने चाहिए। जिले हों, प्रदेश हों, जोन हों, लेकिन उनकी कोई अपनी राजनीतिक केंद्रीय व्यवस्था न हो। अन्यथा कोई खतरा नहीं है, कोई कठिनाई नहीं है कि मद्रास कल कहे कि हम अलग होना चाहते हैं, रोकने का क्या हक है किसी को? और बंगाल कहे कि हम अलग होना चाहते हैं, रोकने का हक क्या है किसी को? जितनी सत्ता इन छोटे टुकड़ों के हाथ में इकट्ठी होती चली जाएगी उतना देश खंड-खंड होता चला जाएगा। और देश इतना बड़ा है--यह हमारा सौभाग्य है--लेकिन इतने बड़े देश को हम उसका बड़ा होना दुर्भाग्य में भी बदल सकते हैं। छोटे-छोटे टुकड़े भी काफी बड़े हैं हमारे। उन टुकड़ों में भी हम तृप्त हो सकते हैं।
पहला खतरा हमने हिंदुस्तान-पाकिस्तान को बांट कर किया है। बंटवारा शुरू हो गया। उसी दिन... वह भी राजनीतिक बंटवारा था, उसमें भी गहरे में राजनीतिक बंटवारे की ही बात थी। दो गवर्नर जनरल होने चाहिए, दो प्रधानमंत्री होने चाहिए, दो राष्ट्रपति होने चाहिए। वह मजा भी गहरे में राजनीतिज्ञों का था। और हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ जो निरंतर कहते रहे कि हम बंटने न देंगे, हमारी लाश पर से बंटवारा होगा, वे सब जिंदा रहे। किसी की लाश पर से बंटवारा न हुआ। बंटवारा हुआ--आम आदमी की लाश से बंटवारा हुआ। और जो कहते थे कि बंटवारा हमारी लाश पर होगा उन्होंने बंटवारे पर दस्तखत किए। क्यों किए दस्तखत? कारण था; हिंदुस्तान के सब राजनीतिज्ञ बूढ़े हो गए

थे। बूढ़े राजनीतिज्ञ खतरनाक सिद्ध हुए। उनको लगा कि अगर दो-चार-पांच वर्ष और आजादी की लड़ाई चलानी पड़ी तो कम से कम हम राष्ट्र को मुक्त करने वाले न होंगे, कोई और होगा। और कम से कम सत्ता न कर पाएंगे, कोई और करेगा। हिंदुस्तान जिद्द कर सकता था कि या तो स्वतंत्र होंगे तो अखंड या गुलामी ही बेहतर है; लेकिन खंड-खंड नहीं होंगे। लेकिन हिंदुस्तान का राजनीतिज्ञ बूढ़ा हो गया था। उस बूढ़े को डर था कि कहीं मैं मर जाऊं, तो न मालूम किसके सिर पर सेहरा बंधे आजादी का कि किसने आजादी ली! वे जल्दी में थे। वे अपने मरने के पहले इंतजाम कर लेना चाहते थे अपने ऐतिहासिक मूल्य का। उन्होंने जल्दी में स्वीकार कर लिया। फिर इसके बाद एक पागल दौड़ शुरू हुई। और हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ को गांधी जी कुछ हथियार दे गए हैं जो बड़े खतरनाक हैं। वे सिखा गए हैं कि अनशन कर दो, बस... सब हो जाएगा। बस अनशन करो और बंटवारा करवा लो। अनशन करो और जो मांग पूरी करवानी हो वह करवा लो। हर आदमी को वह यह सिखा गए हैं कि अपने मरने की धमकी दो और फिर सब पूरा हो सकता है। तो देश भर बंट रहा है। जो भी मरने की धमकी दे सकता है वह देश को दो टुकड़ों में, कहीं भी किसी भी प्रदेश को, दो टुकड़ों में बंटवा सकता है। बस मरने की धमकी चाहिए।
इतना कमजोर हमारा मन हो गया है कि हम किसी भी धमकी, बलवे, हिंसा सब पर राजी हो जाते हैं और जो करना है वह करने नहीं देते हैं। नहीं, हिंदुस्तान के छोटे-छोटे राजनीतिज्ञ हिंदुस्तान को खंड-खंड में बांट देंगे। इनसे बचने की जरूरत है। हिंदुस्तान एक है। कृपा करके राजनीतिज्ञ बीच से हट जाएं और हम पाएंगे हिंदुस्तान एक है। वह बंटा कहां है? लेकिन बांटने वाले लोग ही कर रहे हैं कि देश बंट गया है और इसको एक करना है। उनकी एक करने की भाषा से ऐसा पता चलता है कि कम से कम ये बेचारे बंटवाने वाले नहीं हैं। राजनीतिज्ञ को अलग कर दें, देश कहां बंटा हुआ है? देश इकट्ठा है।
कौन लड़वा रहा है? वह राजनीतिज्ञ लड़वा रहा है। और बिना लड़वाए राजनीतिज्ञ के हाथ की ताकत कम हो जाती है। जब वह लड़वाता है तभी ताकत में होता है। जब वह एक जिले के लिए मैसूर और महाराष्ट्र को लड़वाते हैं तो मैसूर के राजनीतिज्ञ की भी ताकत बढ़ती है और महाराष्ट्र के राजनीतिज्ञ की भी ताकत बढ़ती है और वे अपने वोटर को समझाएं रखते हैं कि जिला हम लेकर रहेंगे। और अगर जिला लेना हैं तो मुझे मुख्यमंत्री बना रखो, तभी जिला आ सकता है, नहीं तो नहीं आ सकता है। और मजा यह है कि जनता को जिला कहां रहता है, इससे क्या फर्क पड़ता है?
मैंने सुना है कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटा तो एक पागलखाना था दोनों मुल्कों की सीमा पर। उसके बंटवारे का भी सवाल आ गया। उसको बांटना पड़ेगा। अधिकारियों ने जाकर पागलों से कहा कि तुम कहां रहना चाहते हो, हिंदुस्तान में कि पाकिस्तान में? उन्होंने कहाः हम तो यहीं रहना चाहते हैं। उन्होंने कहाः यह सवाल नहीं है, तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ेगा, रहोगे तुम यहां, लेकिन तुम यह बताओ--हिंदुस्तान में जाना है कि पाकिस्तान में? पागल बड़ी मुश्किल में पड़ गए। उन्होंने कहाः जब रहेंगे यहीं, तब जाने का सवाल ही क्या है? अधिकारियों ने कहाः तुम समझते नहीं, ये बड़ी गहरी गंभीर बातें हैं। तुम तो यह बताओ, तुम जाना कहां चाहते हों? उन्होंने कहाः हम जाना ही नहीं चाहते। अधिकारियों ने कहाः घबड़ाओ मत, रहना यहीं रहेगा, लेकिन फिर भी तुम कहां जाना चाहते हो? वे पागल कहने लगे, हम सोचते थे, हम पागल हैं, आप कब से पागल हो गए हैं? फिर कोई रास्ता न मिला। अब पागलों को समझाया न जा सका कि रहोगे यहीं, लेकिन हिंदुस्तान या पाकिस्तान चले जाओगे। तब फिर यह हुआ कि बीच से पागलखाना बांट दिया गया। तब पागलखाने के दो हिस्से हो गए। एक हिस्सा हिंदुस्तान में चला गया, एक पाकिस्तान में चला गया। बीच में एक दीवाल खींच दी गई। अब भी वह पागल कभी-कभी दीवाल पर चढ़ कर एक-दूसरे से बातें करते हैं और वे कहते हैं, बड़ी अजीब बात है। हम सब वहीं के वहीं हैं, सिर्फ एक दीवाल बीच में आ गई। हम हिंदुस्तान में हो गए, तुम पाकिस्तान में हो गए। कुछ समझ में नहीं आता। ये बाहर के पागल क्या करते रहते हैं, कुछ समझ में नहीं आता!

हम और छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटते चले जाएंगे। राजनीतिज्ञ की ताकत हमें पागल बनाने में निर्भर है। जब वह हमें पागल बनाने में समर्थ हो जाता है तब उसमें ताकत आ जाती है। जब तक वह हमें पागल नहीं बना पाता, तब तक वह निहत्ता हैं, उसमें कोई शक्ति नहीं है। लेकिन राजनीतिज्ञ हमको किसी भी चीज पर पागल बना सकता है--हिंदू होने पर, मुसलमान होने पर, गुजराती-भाषी होने पर, मराठी-भाषी होने पर, ब्राह्मण होने पर, शूद्र होने पर, किसी भी तरह हमें पागल बना सकता है। राजनीतिज्ञ की ताकत हम किस मात्रा में पागल हो सकते हैं, इसी पर निर्भर है। अगर देश को एक करना है, तो देश के पागल होने की क्षमता कम करनी पड़ेगी। देश में सैनिटी बढ़ानी पड़ेगी, पागलपन कम करना पड़ेगा। हम छोटी-छोटी बातों पर इतने जल्दी पागल होते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। किसी ने खबर कर दी कि गाय की पूंछ कट गई, कुछ लोग पागल हो जाएंगे। अब गाय की अगर पूंछ कट भी गई हो तो भी दो-चार हजार लोगों को मरने और मारने की जरूरत समझ में नहीं आती। और हमारे बच्चे अगर कभी भविष्य में पढ़ेंगे तो बहुत हंसेंगे कि हमारे बापदादे सब पागल थे क्या? गाय की पूंछ कट गई तो चार हजार लोगों को मरने-मारने की क्या जरूरत थी? गाय की पूंछ कट गई थी तो इलाज करवा देना था, प्लास्टिक सर्जरी करवा देनी थी। गाय की पूंछ फिर से जुड़ सकती थी, लेकिन गाय की पूंछ पर यह हो सकता है। एक पत्थर की मूर्ति का हाथ कट जाए तो हजारों लोग मर सकते हैं। औरतों के स्तन काटे जा सकते हैं, बच्चों की हत्या की जा सकती है, लोगों को आग लगाई जा सकती है।
अगर हम इस तरह पागल होने को तत्पर हैं तो यह देश इकट्ठा नहीं हो सकता। पागलपन तुड़वाता है। और राजनीतिज्ञ की ताकत--ध्यान रहे, हमें पागल बनाने में है। वह जितने दूर तक हमें पागल बना सकता है उतना शक्तिशाली रहेगा। जिस दिन हम पागल बनने से इनकार कर देंगे, एक बड़ी अदभुत घटना घटेगी, हमको राजनीतिज्ञ पागल मालूम होगा, जिस दिन हम पागल होने सें इनकार कर देंगे। हमें दिखाई पड़ेगा कि यह क्या पागलपन की बातें चला रखी हैं! राजनीतिज्ञ पागल मालूम होगा अगर जनता थोड़ी सैनिटी, थोड़ा स्वस्थ होने की कोशिश करे। राष्ट्र को एक करना हो तो उसे स्वस्थ करना होगा। उसके पागलपन के बुनियादी कारण हटाने पड़ेंगे।

अब एक मित्र ने पूछा है अभी कि आप कहते हैं कि कोई हिंदू न रहे, कोई मुसलमान न रहे, तो फिर शादी हो जाएगी और खून अशुद्ध मिल जाएगा, तो सब पतन नहीं हो जाएगा?

अब ये पागलपन की बातें हैं। खून सभी शुद्ध होता है, हिंदू का भी और मुसलमान का भी। एक मुसलमान का खून निकाल कर लेबोरेटरी में चले जाएं और अगर कोई डाक्टर बता दे कि यह मुसलमान का खून है तो आश्चर्य, मिरेकल समझना। कोई खून नहीं बताया जा सकता कि हिंदू का है, कि मुसलमान का है, कि ईसाई का है, कि ब्राह्मण का है, कि शूद्र का। खून सिर्फ खून है। खून शुद्ध और अशुद्ध नहीं होता, चमड़ी शुद्ध और अशुद्ध नहीं होती, हड्डियां शुद्ध और अशुद्ध नहीं होतीं। दो हड्डियां निकाल कर जांच नहीं की जा सकती कि ब्राह्मण की शुद्ध हड्डी कौन सी है और भंगी की अशुद्ध हड्डी कौन सी है? खून से कोई शुद्धता का संबंध नहीं है।
और आश्चर्य की बात यह है कि जितने निकट का खून होता है उतने ही अस्वस्थ बच्चे पैदा हो सकते हैं। जितना ही दूर का खून होता है उतने ही स्वस्थ बच्चे पैदा होते हैं। हम भी मानते हैं, सामान्यतया अपनी बहन से हम शादी नहीं करते हैं। क्यों? क्या तकलीफ है? एक ही तकलीफ है कि खून बहुत करीब है और करीब खून से उतना टेंशन पैदा नहीं होता कि बच्चा स्वस्थ हो सके इसलिए दूर शादी करते हैं। बचाते हैं कि बहन से शादी न हो जाए, फासले पर शादी करते हैं। अगर बहन से शादी करने में बचाव करते हैं तो क्या उचित न होगा, और फासले पर शादी करने से और स्वस्थ बच्चे पैदा होंगे? अब तो प्राणीशास्त्री जानते हैं कि क्रास-ब्रीडिंग का कितना बेहतर परिणाम है। एक अंग्रेज सांड को ले आएं और हिंदू गाय से दोस्ती करवा दें तो जो बच्चा

पैदा होगा, वह हिंदू बैल से कभी पैदा नहीं हो सकता। इतना फासले का ब्रीडिंग जब होता है तो स्वस्थ जानवर पैदा होते हैं।
आदमी के साथ भी नियम वही है। जितना फासले का संबंध होगा उतने स्वस्थ लोग पैदा होंगे। हिंदू-मुसलमान का संबंध ज्यादा अच्छा है बजाय हिंदू और हिंदू के। हिंदुस्तानी और चीनी का संबंध ज्यादा अच्छा है बजाय हिंदुस्तानी-हिंदुस्तानी के। एशिया के रहने वाले का संबंध योरोप के निवासी से ज्यादा बेहतर है बजाय एशिया के भीतर। और अगर किसी दिन हमने चांद-तारों पर कोई जाति खोज ली तो इंटरप्लेनेटरी विवाह जितने अच्छे होंगे उतने और कहीं नहीं हो सकते हैं। क्योंकि उस प्लेनेट पर करोड़ों वर्षों से जो विकास हुआ होगा और इस प्लेनेट पर जो विकास हुआ है, अगर एक लड़की और लड़का हिम्मत करके शादी कर लेंगे तो ये दोनों विकास की धाराएं मिल कर जिस बच्चे को पैदा करेंगे, वह दोनों विकास की धाराओं का वंशज होगा। वह उतना ही कीमती, समृद्ध बुद्धि और शरीर लेकर पैदा होगा।
मगर हमें पागल बनाने की तरकीबें हैं कि खून... शुद्ध खून खोजना चाहिए। शुद्ध खून का कोई मतलब ही नहीं होता है। बीमार खून और स्वस्थ खून होता है, लेकिन शुद्ध और अशुद्ध खून नहीं होता है। कोई खून शुद्ध नहीं है खून की तरह; सभी शुद्ध हैं या सभी अशुद्ध हैं। चमड़ी के फासले बनाए हुए हैं कि गोरी चमड़ी और सफेड़ चमड़ी। और पता है कि यह फासला कितना होता है? एक पिगमेंट होता है छोटा सा, जो काली चमड़ी को काला बना देता है--और मुश्किल से छटांक का चौथाई हिस्सा। उतना पिगमेंट जिसके शरीर में होता है उसकी चमड़ी काली हो जाती है; उतना नहीं होता है तो गोरी हो जाती है। वह जो चौथाई छटांक का हिस्सा है पिगमेंट का, वह भी इसलिए है कि ज्यादा और कम धूप भीतर ले जाई जा सकें। काली चमड़ी इसलिए हैं कि जहां बहुत धूप हैं, वहां चमडी रोके धूप को, भीतर ना जाने दें। काली चमड़ी प्रोटेक्टिव है, सुरक्षा करती है, भीतर धूप को नहीं जाने देती है। सफेद चमड़ी--सर्द हो जगह तो ठीक है, गर्म जगह हो तो बड़ी गलत है। वह धूप को भीतर घुस आने देती है और मुश्किल में डाल देती है। काली और सफेद चमड़ी में कुछ ऊंचा और नीचा नहीं है।
आप बाजार में निकलते हैं, काला छाता लगा कर। सफेद छाता लगा कर नहीं निकल जाते हैं--क्यों? सफेद छाता बेमानी है क्योंकि काला छाता रोशनी को रोकने का काम करता है, किरणों को वापस लौटा देता है। सफेद छाता सब किरणों को पी जाता है। उस काले छाते में काला पिगमेंट है, जो किरणों को वापस भेज देता है। वह काला छाता हम लगाते हैं बिना फिकर किए--कि काला क्यों लगाएं, सफेद छाता लगाएं! गोरा छाता बहुत अच्छा होगा, लेकिन धूप में काला छाता ही बेहतर है। जहां गर्म मुल्क हैं, श्रम करने वाले लोग हैं--जिन्हें दिन भर धूप में रहना है, उनकी चमड़ी अगर काली न होगी तो वे जिंदा नहीं रह सकते। लेकिन किसने कहा कि काली चमड़ी सुंदर नहीं होती है? काली चमड़ी का अपना सौंदर्य है, सफेद चमड़ी का अपना सौंदर्य है। कोई नीचा-ऊंचा नहीं है। कोई नीचा-ऊंचा नहीं है! हमने कृष्ण को काला बनाया है। कृष्ण का मतलब ही काला है, सांवला। और हमने काला इसलिए बनाया है कि हमने काले के रंग का सौंदर्य भी समझा है। सच बात यह है कि गोरे रंग में एक विस्तार होता है लेकिन गहराई नहीं होती, काले रंग में गहराई होती है जो गोरे रंग में नहीं होती है। गोरे रंग में एक हमला होता है, गोरा रंग एग्रेसिव है, हमलावर है। अगर सड़क से गोरा रंग निकल जाए तो हमें देखना ही पड़ता है, वह आक्रामक है, हिंसात्मक है। काला रंग अनाक्रामक है, वह हमला नहीं करता है। आपको देखना हो तो देखें, प्रतीक्षा करता है, वेट करता है, अहिंसात्मक है। वह काला रंग जो है, वह हिंसा नहीं करता है। देखा है, नदी जब गहरी हो जाती है तब सांवली हो जाती है, उथली होती है तो सफेद हो जाती है। गहराई आ जाती है नीले रंग में। आकाश नीला दिखाई पड़ता है बहुत गहराई के कारण, और कोई कारण नहीं है। काले रंग में एक गहराई है। काले रंग का अपना सौंदर्य है, सफेद रंग का अपना सौंदर्य है। लेकिन कौन कहता है कि सफेद अच्छा और काला बुरा है। जब कोई ऐसा कहता है तो भूल की बातें करता है। गलत बातें करता है और इस तरह से पागलपन पैदा होता है।

अब अमरीका में पागलपन है कि नीग्रो को मारो, क्योंकि वह काला है। बड़ी अजीब बात है। हिंदुस्तान में भी वही है। हमने तो वर्ण की जो व्यवस्था की, वह कलर पर निर्भर है। वर्ण का मतलब रंग। असल में काले रंग के लोगों को हमने शूद्र बना दिया है, नीचे धक्का दे दिया है। वर्ण का मतलब है रंग। वह भी रंग के आधार पर तय हुआ था कभी। गोरी चमड़ी के लोग ऊपर बैठ गए, वह ब्राह्मण हो गए, क्षत्रिय हो गए, वैश्य हो गए। काली चमड़ी के लोगों को उन्होंने नीचे धक्के देकर शूद्र बना दिया, अस्पृश्य बना दिया कि छूने योग्य नहीं है। वह रंग का ही विभाजन था। लेकिन रंग से कोई संबंध है? काले रंग का अपना आनंद है, सफेद रंग का अपना आनंद है। फिर स्वार्थ-स्वार्थ की बात है। किसी को काला रंग अच्छा लग सकता है, किसी को सफेद रंग अच्छा लग सकता है। लेकिन इसमें कोई वैल्युएशन नहीं हो सकता है, इसमें कोई ऊंचा-नीचा नहीं है। इसमें कोई नीच और ऊंच नहीं है। यह सब पागलपन हैं, छोड़ने पड़ेंगे। वर्ण का पागलपन छोड़ना पड़ेगा, जाति का पागलपन छोड़ना पड़ेगा, धर्म का पागलपन छोड़ना पड़ेगा तो देश राजनीतिज्ञ के हाथ से अभी मुक्त हो जाए। और देश अगर राजनीतिज्ञ के हाथ से मुक्त हो जाए तो देश सदा एक है, देश को बांटा कहां है?
बंटा कहां है देश? सच तो यह है कि अगर सारी दुनिया राजनीतिज्ञों से मुक्त हो जाए तो पूरी मनुष्यता एक है। इसलिए मुझसे यह मत पूछें कि देश को एक कैसे करें। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि देश को अनेक करने की तरकीबें भर पहचान लें और उन तरकीबों में न फंसें, देश एक हो जाएगा।
जैसे मैंने यह मुट्ठी बांधी और मैं किसी से जाकर पूछूं कि यह मुट्टी कैसे खोलूं? तो वह आदमी कहेगा कि खोलने का कोई सवाल ही नहीं है। कृपया करके बांधें मत। मुट्ठी अपने से खुल जाएगी। मुट्ठी को खोलना नहीं पड़ता है, बांधना पड़ता है। बांधना क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है। शब्द में मालूम पड़ता है, खोलना क्रिया है। खुलना अपने से हो जाता है। खुलना स्वभाव है। एक होना मनुष्य का स्वभाव है। बंटना, खंडित होना हमारी तरकीब है। बहुत व्यवस्था और मेहनत से बंटना पड़ता है। अगर हम न बटें तो हम एक तो अभी हो जाएंगे। अगर मैं अपनी लड़की को न समझाऊं कि तू हिंदू है और मेरा पड़ोसी अपने लड़के को न समझाए कि तू मुसलमान है, तो उनको प्रेम से रोकने वाला कोई न होगा। वे आपस में पास आ सकते हैं और प्रेम कर सकते हैं। लेकिन मैं समझा रहा हूं कि तू हिंदू है और उसका आदमी समझा रहा है कि तू मुसलमान है। हम दीवालें खड़ी कर रहे हैं बीच में। वे लड़की और लड़के के बीच एक फासला खड़ा कर रहे हैं, वह करीब न आ सकेंगे, उनके बीच एक सख्त दीवाल खड़ी हो गई है।
नहीं, यह मत पूछिए कि एक कैसे हों, इतना ही पूछिए कि अनेक कैसे हो गए हैं? और अनेक होने की तरकीब समझ लीजिए और उससे मुक्त हो जाइए। एकता स्वाभाविक रूप से फलित हो जाएगी। मनुष्य एक है, शैतानों ने उसे अनेक किया हुआ है। वे बड़े मेहनती हैं। शैतान सदा से मेहनती हैं। वह भारी श्रम करके अनेक करते हैं। वे दिन-रात चेष्टा में लगे हैं कि आदमी को कैसे तोडें। और जब शैतान देखता है कि अब तोड़ना इतना ज्यादा हो गया है कि आदमी घबड़ाता है तो शैतान ही नई शक्ल लाकर कहता है कि सब एक हो जाओ। भाइयो, हिंदू-मुलसमान सब भाई बन जाओ। वह देखता है कि अब तोड़ा नहीं जा सकता है आगे, तो एक करने की बात करो। थोड़ा लोग रिलैक्स हो जाएं, फिर तोड़ो। फिर तोड़ने की बात करो।
एक सज्जन ने पूछा है कि हिंदू और मुसलमान एक क्यों नहीं हो सकते हैं? हिंदू-मुसलमान हैं इसीलिए एक नहीं हो सकते। आदमी-आदमी एक हो सकता है, हिंदू-मुसलमान एक नहीं हो सकते। वह हिंदू-मुसलमान होने का बोध ही उन्हें दो कर रहा है और अगर वे चेष्टा करके एक भी हो जाएं--जैसा कभी-कभी होता है, गले मिलने का भी तो इन्तजाम करते हैं न--कि हिंदू-मुसलमान गले मिल रहे हैं, फोटो उतर जाती है, अखबार में छप जाती है, बस इससे ज्यादा "एक" कुछ भी नहीं होता है। वह जो गले मिले थे, दूसरे दिन फिर छुरे खींच लेते हैं। वह जो एक होने की बात है, उसकी बुनियाद में हमने मान रखा है कि अनेक को हम स्वीकार करते हैं। हम हिंदू को हिंदू मानते हैं, मुसलमान को मुसलमान मानते हैं। यह बड़े मजे की बात है, कोई बच्चा हिंदू की तरह पैदा होता है कि कोई बच्चा मुसलमान की तरह पैदा होता है? बच्चे सिर्फ आदमी की तरह पैदा होते हैं। पुरानी पीढ़ी उनको बिगाड़ने का उपाय करती है। और सिखाना शुरू करती है

कि तुम यह हो। उनमें जहर डालती है। और जहर डाल कर बड़े होते-होते तक उनको पक्की तरह से हिंदू-मुसलमान बना देती है। अगर मैं हिंदू हूं और मेरे घर में एक बच्चा पैदा हो और मैं मुसलमान मित्र को दे दूं और वह मुसलमान के घर बड़ा हो, तो क्या अपने आप वह बच्चा कभी भी पता लगा पाएगा कि वह हिंदू है? कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय ही नहीं है। उस बच्चे को कभी भी पता नहीं चलेगा क्योंकि बच्चा कोई होता ही नहीं। बच्चा तो खाली होता है बिना लेबल के। लेबल हम लगाते हैं। बच्चा कोई लेबल लेकर नहीं आता है, वह सिर्फ आदमी की तरह आता है। फिर हम लेबल लगाते हैं और लेबल लगाने से उपद्रव शुरू हो जाते हैं। नहीं, लेबल लगाने बन्द करने पड़ेंगे। जो बाप अपने बेटे को प्रेम करता हो, कृपा करके उस पर लेबल न लगाएं। जो मां अपने बेटी को प्रेम करती है वह कृपा करके उस पर लेबल न लगाए। अगर हम यह तय कर लें कि हम अपने बच्चों को लेबल नहीं लगाएंगे और लगे-लगाए लेबल को उखाड़ कर फेंक देंगे तो कौन है, जो हमें अलग करेगा? कोई हमें अलग करने को नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि मैं कहता हूं कि आप गीता न पढ़ें, कुरान न पढ़ें। मैं मुसलमान नहीं हूं, मैं कुरान पढ़ता हूं। मैं हिंदू नहीं हूं, मैं गीता पढ़ता हूं। मैं ईसाई नहीं हूं, मैं बाइबिल पढ़ता हूं। मुझे कौन रोकता है? सच बात तो यह है कि जब मैं कोई न रह जाऊंगा तो मैं निष्पक्ष मन से गीता, कुरान, बाइबिल तीनों को पढ़ सकूंगा। जब तक मैं मुसलमान हूं, तब तक मैं कुरान एक ढंग से पढ़ता हूं, और गीता दूसरे ढंग से पढ़ता हूं। जब तक मैं हिंदू हूं तब तक गीता को मैं पवित्र ढंग से पढ़ता हूं और कुरान को ऐसे पढ़ता हूं जैसे--जैसे स्टेप-मदर, दूसरी मां, दूसरे के बेटे को देखती है। स्टेप-मदरली ढंग से पढ़ता हूं। उसको मैं ऐसे नहीं पढ़ता, जैसे गीता को पढ़ता हूं। नहीं, जिस दिन मैं कोई नहीं हूं उस दिन मैं सबको पढूंगा। उस दिन सारी दुनिया की संस्कृति का, सारा अतीत... का मैं वारिस हो जाऊंगा। अभी मैं सारी दुनिया की संस्कृति का वारिस नहीं हूं। अभी मैं एक धारा का वारिस हूं। जब मैं सारी दुनिया का वारिस हो जाऊंगा तब जीसस से मुझे कुछ सीखना है तो मैं मुक्त हूं, और मोहम्मद से कुछ सीखना है तो मैं बंधा नहीं हूं और कृष्ण से मुझे कुछ सीखना है तो मेरे मन के द्वार खुले हैं। मैं सबसे सीख सकूंगा। सारी दुनिया का सारा अनुभव मेरा हो जाएगा।
क्या हमारे बच्चे ज्यादा समृद्ध न हो जाएंगे अगर वे सिर्फ आदमी हो जाएं? नहीं, हम उन्हें दरिद्र बनाते हैं क्योंकि हम उन्हें हिंदू बना देते हैं, मुसलमान बना देते हैं। और हमारा लेबल का मोह इतना गहरा है कि उसके कारण हम करीब-करीब अंधे हो जाते हैं, हम दूसरे की तरफ कभी देखते ही नहीं। अब जीसस जैसे प्यारे आदमी को पढ़ने से हम वंचित रह जाएंगे क्योंकि हम ईसाई नहीं हैं। अब जीसस जैसा आदमी बहुत अदभुत है। उससे जो वंचित रह गया, वह दुनिया के बहुत बड़े महत्वपूर्ण धन से वंचित रह गया। मोहम्मद की अपनी शान है--जो उनसे वंचित रह गया, वह एक बहुत प्यारे आदमी को जानने से वंचित रह गया। जिसने कृष्ण को नहीं जाना, वह चूक गया, अक हीरे से चूक गया, जो मुफ्त में मिल सकता था। जो महावीर को प्रेम नहीं कर पाया, उसकी जिंदगी में, उसकी आत्मा में कुछ कमी रह जाएगी। जिसने बुद्ध के चरणों में बैठ कर थोड़ी देर राहत की श्वास न ली, उसकी शांति में कुछ कमी रह जाएगी।
और मजा यह है कि इनमें से जो एक दे सकता है वह दूसरा नहीं दे सकता। वे
सब यूनिक हैं, वे सब बेजोड़ हैं। बुद्ध कुछ और दे सकते हैं, महावीर कुछ और, मोहम्मद कुछ और--जीसस कुछ और, जरथुस्त्र कुछ और। लेकिन अब तक हमने अपने बच्चों को एक धारा से जोड़ कर बाकी दुनिया की धारा से वंचित किया है। भविष्य में एक नागरिक पैदा करना है जो विश्व का नागरिक हो तो हमें धर्मों से, जातियों से, रंगों के पागलपन से मुक्त होना पड़े और तब हम एक हैं। एक होना हमारा स्वभाव है। अनेक हम किए गए हैं तरकीब से। तरकीब से हम सावधान हो जाएं, हमें एक होने से कोई भी नहीं रोक रहा हैं।
एक-दो छोटे प्रश्न और।

एक मित्र ने पूछा हैः वह भी एक जीवित सवाल है। हिंदुस्तान में साधु- संन्यासी, सज्जन जिनको हम कहें, वे सब आधुनिकता के बड़े विपरीत हैं। वे

कहते हैं, आधुनिक हुए तो अपना सब खो जाएगा, भारतीय न रह जाओगे। अतीत की संपदा है, वह खो जाएगी। वे कहते हैं कि आधुनिक होने से बचना, अन्यथा अपनी संस्कृति खो जाएगी।

असल में जो संस्कृति जिंदा होती है, वह आधुनिक होकर ही बचती है। आधुनिक होकर खोती नहीं हैं। सिर्फ जिस संस्कृति को मरना हो वहीं आधुनिक होने से बचती सकती है। जैसे मैंने कल भी श्वासें ली थीं और अगर मैं यह सोचूं कि अगर मैं आज भी श्वास लूंगा तो कलवाला आदमी मर जाएगा, तो फिर मैं मरूंगा। मुझे आज श्वास लेनी पड़ेगी। तो ही मैं जिंदा रह सकता हूं। आधुनिकता का मतलब है कि आज वर्तमान में श्वास लेने की क्षमता। और जिंदगी रोज बदलती जाती है, जिंदगी को रोज आधुनिक होना पड़ता है। उसे रोज नये कदम उठाने पड़ते हैं, उसे नये रास्तों पर चलना पड़ता है, नई बातें सीखनी पड़ती हैं, नये वातावरण, नये माहौल से समायोजित होना पड़ता है। भारत एक अगर कसम लेकर बैठ जाए कि हम तो सब पक्के वही रहेंगे, जो हम पीछे थे, हम तो अपनी चोटी बढ़ा कर रखेंगे, नहीं तो भारतीय नहीं रह जाएंगे, हम तो जनेऊ पहनेंगे नहीं तो भारतीय नहीं रह जाएंगे... ।
और यह छोटे-मोटे भारतीय का मामला नहीं है, जिनको हम बड़े-बड़े भारतीय कहते हैं, उनकी बुद्धि भी उतनी ही छोटी होती है। उसमें कोई बड़ा फर्क नहीं होता है। मदनमोहन मालवीय जैसा आदमी अंग्रेज से हाथ मिलाने में डरते थे कि कहीं अपवित्र न हो जाएं। जो कौम इतनी घबड़ाई हुई हो जाएगी कि किसी से हाथ न मिला सके, उस कौम का कोई भविष्य नहीं हो सकता। इंग्लैंड गए थे गोलमेज कांफ्रेंस में, तो गंगाजल साथ में ले गए थे पीने के लिए। थेम्स नदी का जल जो है, वह भगवान का बनाया हुआ नहीं है। वह गंगा ही का जल भगवान ने बनाया हुआ है। वह गंगा का जल उनको जाता रहा पीने के लिए। क्या पागलपन है? ऐसी कौम जिंदा नहीं रह सकती है। इधर शंकर जी की पिंडी छिपाए हुए थे पगड़ी में भीतर, जिससे शंकर जी रक्षा करते रहें। कोई अपवित्र छू न जाए। ऐसे आदमी के साथ शंकर जी भी अपवित्र हो जाएंगे। जो ऐसा अपवित्रता से डरा हुआ है, वह जिंदा कैसे रहेगा? यह आदमी जिंदा रहने की कोशिश नहीं कर रहा है। पूरी कौम हमारी ऐसी हो गई है, तो हम ऐसे डर गए और हम अपनी प्राचीनता को किसी भी तरह घसीटने के लिए कुछ भी दलीलें दिए चले जाते हैं।
मैंने एक किताब पढ़ी। एक सज्जन ने वह किताब लिखी है। हिंदू धर्म वैज्ञानिक है, उसने सिद्ध किया है। उसने बड़े मजे की बातें लिखी है। इतने मजे की बातें कि पश्चिम के वैज्ञानिकों को पता चल जाए तो उनको भी बड़ा लाभ हो। उसने लिखा है कि हमने चोटी क्यों बढ़ाई, उसका वैज्ञानिक कारण है। जैसे कि मकानों के ऊपर लोहे के डंडे लगाते हैं बिजली गिराने को, जिससे बिजली का असर न हो। हम बड़े वैज्ञानिक थे। हमने चोटी बांध कर खड़ी कर ली थी जिससे बिजली पार हो जाए। हमारी चोटी की वैज्ञानिकता सिद्ध कर रहे हैं। हम सारी दुनिया में अपने को हंसी-योग्य सिद्ध कर लेने में लगे हैं। हम पागलपन में लगे हैं। इस भांति हम जिंदा न रह सकेंगे। उस किताब में लिखा है, खड़ाऊं हिंदू क्यों पहनते हैं। नस दब जाती है पैर की, उस नस के दबने के कारण आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। तो वैसी नस को पैर से काट ही डालो तो बड़ा अच्छा हो जाए! उसको दबा ही दो। अब तो दबाने के बड़े उपाय हैं, खड़ाऊं पहनने की जरूरत नहीं है। नस को दबा ही दो, नसबंदी बहुत अच्छी होगी। यह इस तरह की नसबंदी बहुत अच्छी हो जाएगी, बर्थ-कंट्रोल के लिए बड़े फायदे की होगी। हम अपनी व्यर्थता को भी आधुनिक ढांचा पहनाने में उत्सुक हैं।
नहीं, जो व्यर्थ है उसे छोड़ना पड़ेगा और अगर उसे हम नहीं छोड़ें तो उसके साथ हम मूढ़ बनते हैं। हम सारे जगत में हंसने योग्य हुए चले जा रहे हैं। हम व्यर्थ ही अपने आप हंसने योग्य बनने की कोशिश में लगे हैं। हमें आधुनिक होना पड़ेगा। आधुनिक होना जीवन का धर्म है। आधुनिक होने का मतलब है कि जो आज है जिंदगी" हमें उसके योग्य होकर खड़ा होना पड़ेगा। इसका यह मतलब नहीं है--आधुनिक होने का मतलब पाश्चात्यीकरण नहीं हैं। मॉर्डनाइजेशन का मतलब वेस्टर्नाइजेशन नहीं है। पाश्चात्यीकरण की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन

आधुनिकीकरण तो करना ही पड़ेगा। जिंदगी को सब तरफ से नया करना पड़ेगा। नहीं करेंगे तो हम मरेंगे। किसी और को उससे नुकसान नहीं होगा।

एक मित्र ने पूछा है कि सभी साधु-संत फिल्मों के विरोध में है। आपका क्या कहना है?

यह अंतिम प्रश्न। इस संबंध में बात कर लेनी उचित है क्योंकि इधर भारत में ऐसा समझा जा रहा है कि फिल्मों के कारण लोग बिगड़े जा रहे हैं। यह बिल्कूल उल्टी बात है। बिगड़े हुए लोगों की वजह से अच्छी फिल्में बनाना मुश्किल हो रहा हैं। फिल्मों की वजह से कोई नहीं बिगड़ रहा है। कोई फिल्म किसी को बिगाड़ नहीं सकती, लेकिन लोग अगर बिगड़े हों तो अच्छी फिल्म को चलाना मुश्किल है, कठिन है। और फिल्म एक अर्थ में बहुत बड़ा काम कर रही है। फिल्म एक अर्थ में बड़ा काम यह कर रही है, कि जो काम आप करना चाहते हैं, और नहीं कर पाते, वह फिल्म में देख कर राहत मिलती है। और शांति से घर लौट आते हैं। अगर फिल्में न हों तो आप यह काम सड़कों पर खड़े होकर करेंगे और उपद्रव बढ़ेगा, कम नहीं होगा--इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं।
अगर फिल्म में एक आदमी डिटेक्टिव फिल्म देखता है और हत्या की घटना देखता है और एक कार को दौड़ते देखता है और उसके पीछे पुलिस को लगे देखता है तो जब तेज गति हो जाती है तो आपने देखा है कि फिल्म के सारे लोगों की रीढ़ सीधी हो जाती है, फिर कोई कुर्सी से टिका नहीं रह जाता। उनके भीतर भी कुछ हो रहा है, वे भी तैयार हो गए हैं, जैसे कार की स्टेयरिंग पर वे खुद ही बैठे हों। उनके हाथ-पैर तैयार हो गए हैं, श्वास बंद हो गई है, पलकों ने झपकना बंद कर दिया। एक क्षण चूक जाएं तो चूक जाएं। इतने थ्रिल में उनके भीतर जो उत्तेजना की आकांक्षा है, वह तृप्त हो जाती है। अगर फिल्में अलग कर दी जाएं तो यह उत्तेजना हमें और रास्तों से लानी पड़ेगी। विनोबा जी, आचार्य तुलसी और इस तरह के लोग फिल्मों के बड़े विरोध में हैं। वह कहते हैं, फिल्में अश्लील हैं और अश्लील फिल्में नहीं होनी चाहिए। और मैं आप से कहता हूं, अश्लील फिल्मों के कारण आदमी कम अश्लील है। अगर फिल्में अश्लील न हों तो आदमी को अश्लील होना पड़ेगा।
और कौन कहता है कि फिल्मों की वजह से अश्लीलता है? कालिदास ने तो फिल्म नहीं देखे थे, जहां तक मेरा खयाल है। लेकिन अगर उनके नाटक पढ़ें तो आज की कोई फिल्म उतनी अश्लील नहीं है, जितना कालिदास रहे होंगे। कालिदास जंगल में भी जाएं तो फलों में उन्हें फल नहीं दिखाई पड़ते हैं, स्त्रियों के स्तन ही दिखाई पड़ते हैं। तो यह दिमाग फिल्म से बिगड गया था? कालिदास का दिमाग फिल्म ने खराब किया था? यह खजुराहो के मंदिर कोई फिल्म एक्टरों ने खोदें हैं? खजुराहो के मंदिरों पर मैथुन के चित्र किसने खोदे हैं? यह तो आज के नहीं है। काम-सूत्र किसने लिखा है? यह तो आज का नहीं है और भर्तृहरि केशृंगार-शतक किसने रचे हैं? यह तो इसमें फिल्म प्रोड्यूसर का इसमें कोई भी हाथ सिद्ध नहीं किया जा सकता है। आदमी जो चाहता रहा है हमेशा से वह अलग-अलग माध्यम में उसे देना पड़ा है। आदमी बदले तो बदलाहट हो सकती है, माध्यम बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। अब वे कहते हैं कि नग्न तस्वीरें न हों, लेकिन आदमी नग्न तस्वीरें देखना चाहता है।
मैं दिल्ली में था। साधुओं ने एक जलसा किया था अश्लील पोस्टरों के खिलाफ भूल से वह मुझे भी बुला ले गए। कई लोग भूल से मुझे बुला लेते हैं फिर पीछे बहुत पछताते हैं। उन्होंने समझा, के मैं भी अश्लील पोस्टर के खिलाफ में... अश्लील पोस्टर के खिलाफ में कौन न बोलेगा? तो मैं बड़ा हैरान हुआ। मैंने उन साधुओं से कहा कि पहली तो बात यह है कि आप साधु हो, आप अश्लील पोस्टर देखने गए कहां, आप किसलिए गए? तुम्हें किसी ने बुलाया था अश्लील पोस्टर देखने को? तुम किसलिए अश्लील पोस्टर देखने जाते हो, तुम्हें क्या परेशानी है? उन्होंने कहा कि हम तो इसलिए देखने जाते हैं कि लोग उनको देख कर बिगड़ न जाएं। कुछ लोग ऐसे हैं, अगर आप सिनेमा में पकड़ जाएं और विद्यार्थी हैं तो आपका शिक्षक आपको समझाएगा और अगर शिक्षक पकड़ा जाए तो वह कहेगा कि हम जरा देखने आए थे कि कौन-कौन विद्यार्थी आए थे। बहुत मजे की

बातें हैं, यह साधु पोस्टर देखने जाते हैं, बेचारे--कृपा करके कि दूसरे लोग न बिगड़ जाएं और सच बात यह है कि साधु जितनी नग्न तस्वीरें देखना चाहता हैं उतना कोई भी नहीं देखना चाहता हैं। क्योंकि साधु ने जिंदगी से अपने को तोड़ लिया है। उसकी आकांक्षाएं भीतर दबी रह गई हैं।
एक संन्यासी मेरे पास मेहमान थे तो मैंने यह घटना वहां कही। वह संन्यासी मेरे पास रहे दो-चार दिन, निकट से बातें कीं तो फिर वह सच्चा बोल सके। साधु से सच्ची बातें निकलवानी बहुत कठिण हैं क्योंकि उसे झूठी जिंदगी जीनी पड़ती है। वह सच्ची बात नहीं कह सकता हैं। मेरे पास रहे, धीरे- धीरे उनको लगा कि नहीं, सच्ची बात कही जा सकती है। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि मैं नौ साल का था तब मैं साधु हो गया। मेरे पिता दीक्षित हुए और घर में कोई न था, मां मर गई थी इसलिए पिता दीक्षित हुए होंगे। स्त्रियां जिंदा रहें तो भी साधुता की प्रेरणा देती हैं और मर जाएं तो भी। जिंदा स्त्रियों से भी कई लोग भाग कर साधु होते हैं और कुछ लोग मरी हुई स्त्रियों की वजह से साधु होते हैं। पिता साधु हो गए। मां मर गई। अब बेटा कहां जाए? तो उन्होंने उसे भी दीक्षा दे दी। नौ साल के बच्चे को दीक्षा दे दी। अब उन संन्यासी की उम्र बावन वर्ष है। बावन्न वर्ष का साधु है वह, लेकिन उनकी बुद्धि नौ वर्ष पर रुक गई है, उससे आगे नहीं बढ़ी। बढ़ भी नहीं सकती क्योंकि जिंदगी से अलग खड़े हो गए। तो उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे मन में सदा होता है कि टॉकीज से बाहर इतनी भीड़ रहती है, भीतर होता क्या है? कभी मैं भीतर नहीं गया और आपसे मैं दिल की बात कह सकता हूं। ऐसा नहीं हो सकता है, कि, कोई तरकीब से मैं टॉकीज के भीतर जाकर एक दफा देख लूं कि वहां हो क्या रहा है। इतनी भीड़ लगी रहती है। मंदिर के सामने तो क्यू लगता ही नहीं, कोई आता ही नहीं। मगर वहां पैसा दे-दे कर लोग खड़े हैं, मुश्किल से टिकट मिलती है, फिर भी भीतर जाते हैं। वहां भीतर हो क्या रहा है?
हमें समझ में नहीं आएगी उनकी तकलीफ, क्योंकि हमने भीतर जाकर देखा है। उनकी तकलीफ वही समझ सकतें हैं। मैंने कहाः मैं भिजवा देता हूं। पड़ोस से एक मित्र को बुलवाया। उन्हीं की जाति के वहे संन्यासी थे। उन मित्र से मैंने कहाः मुझे तो तीन घंटा खराब करने का समय नहीं हैं। आप इन्हें किसी फिल्म में ले जाएं। उन्होंने कहा माफ करिए, अगर किसी ने मुझे देख लिया कि साधु महाराज को फिल्म दिखला रहा हूं तो मैं तक परेशानी में पड़ जाऊंगा। उन्होंने कहा कि मैं कंटोनमेंट एरिया में ले जा सकता हूं, वहां हमारी जाति का कोई भी नहीं है। मगर वहां अंग्रेजी फिल्म चलती है। साधु अंग्रेजी नहीं जानते। पर उन साधु ने कहाः कोई हर्जा नहीं, देख तो लेंगे। समझेंगे नहीं तो कोई बात नहीं अंग्रेजी ही सही। वह बेचारे जब रात अंग्रेजी फिल्म देख कर लौटे तो उनके मन से जैसे बोझ उतर गया। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं हलका हो गया। मेरे मन में मोक्ष जाने की इतनी आकांक्षा न थी जितनी टॉकीज के भीतर जाने की थी। और अगर मैं मर जाता इसी आकांक्षा को लेकर तो पता नहीं टॉकीज में डोर-कीपर की जगह पैदा होता अगले जन्म में, या क्या होता!
मैंने उन संन्यासीयों से कहाः आप क्यों परेशान हैं अश्लील पोस्टरों से? और ध्यान रहे, आदमी नग्न स्त्री को देखना चाहता है। क्यों? बजाय पोस्टर को मिटाने के यह सोचना जरूरी है कि आदमी नग्न स्त्री में इतना उत्सुक क्यों है? उत्सुकता का कारण क्या है? और कारण साधु-संतों ने ही दिया है। कारण यह है कि हम स्त्री-पुरुष को इतने दूरी पर खड़ा करते हैं कि करीब-करीब वे एक जाति के प्राणी नहीं, दो जाति के अलग जानवर हो जाते हैं। अलग-अलग खड़ा करके इतने फासले को बड़ा करते हैं कि एक दूसरे को जानने की उत्सुकता शेष रह जाती है। और फासले इतने ज्यादा होते हैं कि जानने का मौका ही नहीं मिलता है एक-दूसरे को कि जान पाएं, परिचित हो पाएं। अगर लड़के और लड़कियों को करीब और निकट खड़ा किया जा सके, वे एक-दूसरे के साथ खेलते हों, दौडते हो, तैरते हों तो अश्लील पोस्टर धीरे-धीरे विदा हो जाएंगे।
अभी मैंने एक घटना पढ़ी। सिडनी में एक नग्न अभिनेत्री को लाया गया प्रदर्शन के लिए। बीस लाख की आबादी का गांव है। बहुत प्रचार किया लेकिन दो आदमी टाकीज में देखने गए, सिर्फ दो आदमी। अहमदाबाद में कितने आदमी जाते, सोच सकते हैं? अगर दो आदमी भी पीछे रह जाते तो चमत्कार है। सभी लोग जाते--

जाना ही पड़ता। इसमें कोई उपाय न था। कोइ विकल्प नहीं था। हां, इतना फर्क पड़ता कि कुछ लोग सामने के दरवाजे से जाते, कुछ सज्जन लोग पीछे के दरवाजे से जाते। यह फर्क पड़ सकता था, लेकिन जाना तो पड़ता। दो आदमी देखने आए सिडनी में, एक मिरेकल है, चमत्कार है। एक नग्न सुंदरी का नृत्य हो रहा हो और पूरी टॉकीज खाली हो और दो आदमी देख रहें हैं, यह बात क्या है? सिडनी में क्या बात हो गई है? स्त्रीयां और पुरुष इतने निकट खड़े हो रहे हैं कि यह बात बेहूदी है, अगर हम यह घोषणा करें कि एक आदमी का नंगा हाथ दिखाया जाएगा तो आप देखने जाएंगे? नहीं देखने जाएंगे, क्योंकि नंगे हाथ तो देख चुके हैं और कोई कारण नहीं है।
लेकिन एक जमाना ऐसा था--बर्ट्रेंड रसल ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है
कि एक जमाना ऐसा था कि इंग्लैंड में विक्टोरियन एज में स्त्रियां इतना बड़ा घाघरा पहनती थीं कि उनका पैर का अंगूठा भी नहीं दिखाई पड़ता था। पैर का अंगूठा भी नहीं दिखाई पड़ता था! घाघरा चारों तरफ जमीन को छूता था। तो बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि उस जमाने में बड़ी अजीब बात थी कि अगर किसी स्त्री का पैर का अंगूठा दिख जाए तो बड़ी रस-विमुग्धता पैदा हो जाती थी। चित्त रसमग्न हो जाता था, काव्य का झरना बहने लगता था, एकदम कविता निकलने लगती। पैर का अंगूठा देख कर! अब हम हसेंगे कि पैर का अंगूठा देख कर कविता निकलती थी! पागल हो गए हैं। अब तो पैर के अंगूठे सब तरफ दिखाई पड़ रहे हैं, कोई कविता नहीं निकलती। सिडनी में नंगी स्त्री को देख कर भी कोई कविता नहीं निकली। हिंदुस्तान में अभी भी निकलती है।
अश्लील फिल्म बनानी पड़ती है, अश्लील पोस्टर लगाना पड़ता है। हमारी मांग है। और अगर अश्लील पोस्टर न लगेगा और नंगी फिल्म न होगी तो खतरा है। हम सड़क पर स्त्री को वस्त्र पहने चलने देंगे या न चलने देंगे। हम उसके वस्त्र छीन सकते हैं। स्त्रियां सड़क पर निर्वस्त्र नहीं की जा रही हैं क्योंकि निर्वस्त्र स्त्रियों को देखने की टॉकीज में व्यवस्था है, नहीं तो खतरा पूरा है। यह जो हमारे मन की मांग है उसको पूरा करंगे। और हम कर भी लेते हैं। मौका मिलता है तो फिल्म पर हम निर्भर रहते भी नहीं हैं। वह तो मौका नहीं मिलता है तब तक हम फिल्म पर निर्भर रहते हैं। मौका मिल जाए, हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाए, फिर हम फिल्म की फिकर करते हैं? फिर हमे जो स्त्री मिल जाए, नंगी कर लेते हैं। हम कर लेंगे। वह हमारे भीतर है। साधु- संन्यासी उससे छुटकारा नहीं दिला सकते क्योंकि वे ही उस वृत्ति को जन्माने में मूलभूत कारण हैं। स्त्री और पुरुष को निकट लाना पड़ेगा, सरलता से निकट लाना पड़ेगा। वे जितने निकट आ जाएंगे उतने ही उनके फासले से पैदा हुई बीमारियां दूर हो जाएंगी।
भारत में जलता हुआ प्रश्न वह भी है। विशेषकर युवकों के सामने बहुत बड़ा सवाल है। वे बड़ी कठिनाई में पड़ गए हैं। पुरानी सारी व्यवस्था उनकी निंदा करती है और उनके चित्त और उनकी शिक्षा उन्हें मुक्त करने की व्यवस्था करती है। वे बहुत कठिनाई में हैं। कल उस संबंध में मैं बात करना चाहूंगा कि युवकों की पीढ़ी, उनकी भूखी पीढ़ी, उत्तप्त पीढ़ी, विद्रोही पीढ़ी, वह एक सवाल है। उस संबंध में भी सवाल पूछे गए हैं।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का चौथा प्रवचन

पूंजीवाद की अनिवार्यता

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप बता सकते हैं कि हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति के लिए कौन जवाबदार है?

सदा से हम यही पूछते रहे हैं कि कौन जवाबदार है। इससे ऐसी भ्रांति पैदा होती है कि कोई और हमारे सिवाय जवाबदार होगा। इस देश की परिस्थिति के लिए हम जवाबदार हैं। यह बहुत ही क्लीव और नपुंसक विचार है कि सदा हम किसी और को जवाबदार ठहराते हैं। जब तक हम दूसरों को जवाबदार ठहराते रहेंगे तब तक इस देश की परिस्थिति बदलेगी नहीं क्योंकि दूसरे को जवाबदार ठहरा कर हम मुक्त हो जाते हैं और बात वहीं की वहीं ठहर जाती है।
हम ही जवाबदार हैं। यदि हम गुलाम थे तो हम कहते हैं, किसी ने हमें गुलाम बना लिया, वह जवाबदार है। और हम यह कभी नहीं सोचते कि हम गुलाम बन गए इसलिए हम जवाबदार हैं। इस दुनिया में कोई भी किसी को गुलाम नहीं बना सकता। अगर गुलाम स्वयं गुलाम बनने को तैयार नहीं है तो असंभव है। मैं मर सकता हूं, अगर मुझे गुलाम नहीं बनना है। तो मैं कम से कम मर तो सकता ही हूं। लेकिन मैं जिंदगी को पसंद करता हूं, चाहे वह गुलामी की जिंदगी हो, तब फिर मुझे गुलाम बनाया जा सकता है। इस जगत में कोई भी आदमी उसके सहयोग के बिना गुलाम नहीं बनाया जा सकता। थोड़े से अंग्रेज इस मुल्क को दो सौ साल तक गुलाम बनाए रहे और फिर भी हम कहते हैं कि जवाबदार वही थे, क्योंकि उन्होंने हमको गुलाम बनाया। और हम चालीस करोड़ लोग जवाबदार नहीं थे, जो गुलाम बने रहे?
इस भाषा में सोचना भी गुलाम मस्तिष्क का लक्षण है। वह गुलाम भी खुद नहीं बनता, गुलाम भी उसे कोई और ही बनाता है। फिर स्वतंत्र भी वह खुद नहीं हो सकता। हम हुए भी नहीं हैं स्वतंत्र, कोई और ही हमें स्वतंत्र भी कर गया। पूछना चाहिए हमारी स्वतंत्रता के लिए कौन जिम्मेवार है, हम? हमें शक है क्योंकि हम गुलामी के लिए ही जिम्मेवार नहीं हैं, फिर स्वतंत्रता के लिए कैसे जिम्मेवार हो सकते हैं? जब गुलामी दूसरे ने थोपी थी तब आजादी भी दूसरे ने थोप दी है, ऐसा मालूम पड़ता है। हम आजादी के नीचे भी मुक्त नहीं हुए हैं, दबे-दबे हो गए हैं।
ऐसा लगता है कि आजादी का भी पत्थर छाती पर पड गया है। वह भी एक मुसीबत मालूम होती है। असल में सैकड़ों वर्षों से हमने जिम्मेवारी दूसरों पर डालना सीख लिया है। या तो भगवान पर छोड़ देंगे, भगवान बहुत ही दयनीय है। उस पर कोई भी जवाबदारी डाली जा सकती है। वह बेचारा बहुत ही परेशान होगा, जितनी जवाबदारियां हमने उस पर डालीं, अगर उसमें थोड़ी भी बुद्धि होगी तो अब तक उसने आत्महत्या कर ली होगी। सारी जवाबदारियां भगवान पर थोंप देने में हम बड़े कुशल हैं। बीमारी हो, अकाल हो, महामारी हो, गरीबी हो, दीनता हो, दासता हो, हम भगवान पर थोंपते हैं। भाग्य पर थोप देंगे, कर्मों के फलों पर थोप देंगे लेकिन एक को हम हमेशा बचा जाएंगे--अपने को। हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं है। जीते हम हैं और जिम्मेवारी सब दूसरों की है।
नहीं, इस भाषा में प्रश्न ही उठाना उचित नहीं है कि हमारी परिस्थिति
के लिए कौन जिम्मेवार है? यह प्रश्न ही गलत इंगित देता है कि कोई जिम्मेवार होगा। हमारी परिस्थिति में तो हम ही जिम्मेवार होंगे। कौन जिम्मेवार होगा? अगर देश में गरीबी है तो मैं जिम्मेवार हूं आप जिम्मेवार हैं। और अगर देश में बीमारी है तो मैं जिम्मेवार हूं, आप जिम्मेवार हैं। जिम्मेवारी दूसरों पर टाल देना बड़ा आसान है, सुलभ है, कनवीनिएंट है, सुविधापूर्ण है। झंझट मिट जाती है, जिम्मेवारी किसी और की हो जाती है। और हमें जैसे जीना हो, हम जीते चले जाते हैं।
रास्ते पर एक आदमी भीख मांग रहा है, हम पूछते हैं इसको भीख मंगवाने के लिए कौन जिम्मेवार है? फिर किसी एक आदमी का नाम ले लेते हैं, कोई बि.रला,

कोई और करोड़पति, वह जिम्मेवार है। फिर हम अपने रास्ते पर चले गए। हम जिम्मेवार नहीं हैं। बिड़ला के बिड़ला होने में भी हम जिम्मेवार हैं; सड़क पर भीख मांगने वाले आदमी के भिखमंगेपन में भी हम जिम्मेवार हैं। और जब तक हम सीधी जिम्मेवारी अपने ऊपर न लेंगे तब तक भारत के पास अपना व्यक्तित्व नहीं हो सकता। हम अपना व्यक्तित्व उपलब्ध तभी कर सकेंगे... ध्यान रहे, व्यक्तित्व आता है रिस्पांसिबिलिटी से। दायित्व की स्वीकृति से व्यक्तित्व पैदा होता है। जो व्यक्ति जितना दायित्व स्वीकार कर लेता है उतने बड़े व्यक्तित्व का उसके भीतर जन्म होता है। जो सारी जिम्मेवारियां दूसरों पर छोड़ देता है उसकी आत्मा मरती चली जाती है।
स्वतंत्रता सबसे बड़ा दायित्व है और इसीलिए स्वतंत्रता बहुत घबड़ाने वाली बात है। इसीलिए बीस साल से हम बड़े बैचेन हैं। अंग्रेज थे तो हमें एक सुविधा थी। कुछ भी मुसीबत हो तो हम अंग्रेजों पर टाल देते थे। गोली चले जलियावाले बाग में तो वह अंग्रेज चला रहा है। और बीस साल से गोली चल रही है, वह कौन चला रहा है? अंग्रेजों ने इतनी गोली कभी भी नहीं चलाई थी जितनी हमने बीस सालों में चलाई है। अंग्रेज को इस मुल्क को गुलाम रखने के लिए इतनी गोली न चलानी पड़ी जितनी हमें इस मुल्क को स्वतंत्र रखने के लिए चलानी पड़ रही है--आश्चर्यजनक है। लेकिन अब हम किसको जिम्मेवार ठहराएं, इसलिए बड़ी बेचैनी होती है।
अब किसको जिम्मेवार ठहराएं? अंग्रेज थे तो मुल्क गरीब था, क्योंकि अंग्रेज सोना लूट कर ले जा रहे थे, जहाज भर-भर कर सोना यूरोप ले जा रहे थे, तो हम गरीब थे। अब बीस साल से हमको कौन गरीब बनाए हुए है? अब बड़ी मुश्किल है, बड़ी बेचैनी है। अब हम किस पर जिम्मेवारी डालें? बड़ी सुविधा थी गुलामी में कि सदा जिम्मेवारी किसी और की होती है। अगर हम कमजोर थे, अगर वैज्ञानिक न थे, अगर स्वस्थ न थे तो कोई जिम्मेवार था सदा। जिम्मेवारी के लिए खूंटी थी जिस पर हम टांग देते थे और निश्चिंत सो जाते थे।
आजाद हो जाने से बड़ी मुसीबत हो गई है। सब जिम्मेवारी हमारी है। सच तो
यह है, सदा ही सब जिम्मेवारी हमारी थी। एक बार इस मुल्क को यह ठीक से समझ लेना होगा कि जो भी चारों तरफ हो रहा है, हम सब उसमें साथी, सहभागी हैं। अगर मुल्क कुरूप है तो इसकी कुरूपता में मैं भागीदार हूं। अगर मुल्क में दंगा होता है तो उस दंगे में मैं भागीदार हूं। अगर अहमदाबाद में कोई किसी की छाती में छुरा भोंकता है तो... मेरी सफेद चादर पर भी उसका खून का दाग है क्योंकि मैं भी इस मुल्क में हूं। और मैं जैसा मुल्क बना रहा हूं, इस मुल्क में कोई किसी की छाती में छुरा भोंकना संभव बना पाता है। उसमें मैं भागीदार हूं, उसमें मैं बच नहीं सकता। और अगर मैं बचने की कोशिश करूंगा तो फिर ठीक है, बहुत आसान है। कुछ लोग पकड़े जा सकते हैं कि ये गुंडे हैं, तो इनको सजा दे दों। बात खत्म हो जाती है, लेकिन मुल्क फिर वही रहेगा, हम फिर वही रहेंगे, फिर किसी दूसरे गांव में छुरा चलेगा, क्योंकि हम परिस्थितियां मौजूद करते रहेंगे जिनमें छुरे भोंके जाते हैं।
नहीं, इस देश को सामूहिक दायित्व की धारणा को सीखना पड़ेगा। हम सब जिम्मेवार हैं। अमीर ही जिम्मेवार नहीं है, गरीब को गरीब बनाने में। गरीब भी उतना ही जिम्मेवार है। मुझसे लोग पूछते हैं, स्त्रियां मुझसे आकर पूछती हैं कि हमारी गुलामी के लिए कौन जिम्मेवार है? पुरुष जिम्मेवार हैं, उनका खयाल है। और स्त्रियां जिम्मेवार नहीं हैं? आधी स्त्रियां हैं पृथ्वी पर, आधी से थोड़ी ज्यादा ही होती हैं हमेशा, क्योंकि पुरुष तो कुछ युद्धों में मर जाते हैं, कोइ कहीं और मर जाते हैं, मरने की कई तरकीबें खोज लेते हैं। स्त्रियां थोड़ी ज्यादा ही बढ़ जाती हैं। ऐसे भी लड़कियां पुरुष से बचने में ज्यादा शक्तिशाली हैं, उनका रेसिस्टेंस ज्यादा है। इसलिए प्रकृति भी एक सौ सोलह लड़के पैदा करती है और सौ लड़कियां पैदा करती है। लेकिन शादी की उम्र होते-होते तक सोलह लड़के मर जाते हैं--सौ रह जाते हैं और लड़कियां सौ की सौ रह जाती हैं। लड़के की ताकत कम है जिंदगी से लड़ने की, हालांकि खयाल है पुरुष को कि हम बड़े ताकतवर हैं, लेकिन रेसिस्टेंस कम है। अगर बीमारी आए तो पुरुष जल्दी फंस जाएगा बीमारी के चक्कर में, स्त्री देर

से फंसेगी। असल में स्त्री को प्रकृति ने मां बनने के लिए खड़ा किया है तो उसको बहुत झेलने की क्षमता होनी चाहिए।
स्त्रियां आधे से ज्यादा हैं, और गुलामी के लिए पुरुष जिम्मेवार हैं
और वे खुद जिम्मेवार नहीं हैं? तो अगर स्वतंत्रता पुरुष उनको देगा तो वे स्वतंत्र हो जाएंगी। ध्यान रहे, दी हुई स्वतंत्रता दो कौड़ी की है, क्योंकि दी गई स्वतंत्रता कभी भी वापस ली जा सकती है। आज भी दुनिया में स्त्रियों को मुक्त करने के जो आंदोलन चलते हैं वे पुरुष चलाते हैं। उसकी बात भी पुरुषों को करनी पड़ती है। अजीब लड़ाई है, पुरुषों को पुरुषों से ही लड़ना पड़ता है। स्त्रियां देखती हैं कि पुरुष स्वतंत्र कर दें उन्हें। लेकिन दी गई स्वतंत्रता कितनी कीमत रखती है? ली गई स्वतंत्रता का ही कोई मूल्य होता है। जो हम लेते हैं संघर्ष से, उससे शक्ति आती है। लेकिन वह तो हम तभी लेंगे जब जिम्मेवार हम अपने को समझें। अगर दुनिया की स्त्रियां समझ लें कि हम जिम्मेवार हैं गुलामी के लिए, तो उन्हें कोईर् गुलाम नहीं रख सकता है। अगर हम अपने दायित्व को समझ लें तो हमारा परिवर्तन अभी शुरू हो जाता है। तो वह जो मित्र मुझसे पूछते हैं, उनसे कहना चाहता हूं कि हम जिम्मेवार हैं, हम जवाबदार हैं, हम रिस्पांसिबिल हैं--हम इकट्ठे; किसी एक तरफ इशारा नहीं किया जा सकता।
जिंदगी सामूहिक है। जिंदगी सहजीवन है। हम साथ इकट्ठे खड़े हैं। दुख में, पीड़ा में, गुलामी में, सुख में, आनंद में, हम सब सहभागी हैं। इसलिए जिम्मेवारी कहीं और खोजने अगर हम गए तो वह जिम्मेवारी से बचने का रास्ता है। बचने से बदलाहट नहीं होगी। हमे स्वीकार करना ही होगा--हम ही जिम्मेवार हैं। और यह स्वीकृति क्रांति शुरू कर देती है, क्योंकि जब मुझे लगता है कि मैं जिम्मेवार हूं तो फिर मेरे हाथ उस सहयोग से पीछे हटने लगते हैं, जो देश में बुराई लाता है। जब मुझे लगता है कि मैं जिम्मेवार हूं, तब मैं पीछे हटने लगता हूं--कम से कम अपने सहयोग को तो अलग कर लूं। कम से कम मैं तो इस भांति जीऊं कि मैं इस देश को बदलने के लिए कुछ छोटा सा रास्ता बना सकूं। और अगर एक-एक आदमी जिम्मेवारी समझे तो यह देश बदल सकता है। यह अब तक नहीं बदला क्योंकि जिम्मेवारी सदा दूसरे की थी।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि इंदिरा गांधी आदि नेता समाजवाद लाने में सफल नहीं हो सकेंगे, ऐसा आप क्यों कहते हैं?

कहने का कारण है। अगर किसी बच्चे को बूढ़ा बनाना हो तो भी जवानी से गुजारना जरूरी होगा। जिंदगी स्टेजस में चलती है, जिंदगी में छलांगें नहीं हैं। बचपन से कोई आदमी छलांग लगा कर बूढ़ा नहीं हो सकता है, जवानी से गुजरना पड़ेगा। समाजवाद आसमान से नहीं उतरता है, समाजवाद पूंजीवाद का अंतिम फल है। पूंजीवाद परिपक्व हो तो ही समाजवाद आ सकता है। और पूंजीवाद पका हुआ न हो तो समाजवाद नहीं आ सकता। और अगर लाने की कोशिश की गई तो समाजवाद तो आएगा ही नहीं, पूंजीवाद तक लाना मुश्किल हो जाएगा। और देश की स्थिति सामंतवादी रह जाएगी, पूंजीवाद से भी पिछड़ी अवस्था रह जाएगी। आदमी पूंजीवाद से भी पीछे की अवस्था में है। हम पूंजीवाद की अवस्था में भी नहीं हैं। इसलिए मैं कहता हूं, अभी समाजवाद की बातें प्रीमेच्योर हैं, अप्रौढ़ हैं। समाजवाद का लक्ष्य ठीक है। समाजवाद लाना है, यह भी ठीक है, लाना ही पड़ेगा, लाना ही चाहिए। लेकिन देश पूंजीवाद की प्रक्रिया से न गुजरे तो समाजवाद ऊपर से थोपा गया होगा, जैसे प्लास्टिक के फूल लगा दिए जाएं। असली फूल के लिए जड़ें चाहिए, बीज चाहिए, पौधा चाहिए। अगर कोई हमसे कहे कि प्लास्टिक के फूल में क्या हर्ज है? तो मैं नहीं कहता कि कोई हर्ज है, लेकिन प्लास्टिक का फूल ठीक से समझा जाए तो फूल है ही नहीं।
हम समाजवाद को ऊपर से थोप सकते हैं जबकि मुल्क की आत्मा अभी पूंजीवादी भी नहीं हो पाई है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीवाद की भी बात करते हैं, समाजवाद की भी। आप बड़ी विरोधी बातें करते हैं!

वह मित्र को अंदाज नहीं है, पूंजीवाद और समाजवाद में विरोध नहीं है। पूंजीवाद की ही विकसित अवस्था समाजवाद है। जवानी में, बुढ़ापे में विरोध दिखाई पड़ सकता है। बूढ़ा कह सकता है कि बड़ा दुख है कि अब मैं जवान न रहा। लेकिन उसकी जवानी ही उसको बुढ़ापे तक लाई है। बुढ़ापे और जवानी में विरोध नहीं है। बुढ़ापा जवानी की ही विकसित अवस्था है। कच्चे फल में और पके फल में विरोध नहीं है। पका फल कच्चे फल की अवस्था है। हलांकि दोनों मे बुनियादी फर्क है। कच्चा फल कभी गिर नहीं सकता। पका फल वृक्ष से गिर जाएगा। लेकिन कच्चा फल ही पके फल के लिए रास्ता बनता है। यह खयाल में मत लें कि पूंजीवाद और समाजवाद में विरोध है। पूंजीवाद और समाजवाद दुश्मन नहीं है। पूंजीवाद की ही प्रक्रिया का परिणाम समाजवाद है। असल में पूंजीवाद ही समाज को उस स्थिति में लाता है, जहां समाजवाद संभव हो सके। और इसलिए समाजवाद जब आएगा तो हमें पूंजीवाद को धन्यवाद ही देना पड़ेगा। उसके बिना कभी समाजवाद नहीं आ सकता है।
लेकिन हम जिंदगी को सदा दो हिस्सों में तोड़ कर देखने के आदी हैं। हम विरोध में ही सोचते हैं। हम सब चीजों को विरोध में तोड़ लेते हैं कि यह-यह विरोध है। लेकिन विरोध कहां है? अगर पूंजीवाद पूंजी पैदा करेगा तो ही पूंजी का वितरण हो सकता है। पूंजीवाद के पहले समाजवाद दुनिया में क्यों न आ सका? मार्क्स के पहले बुद्धिमान लोग पैदा न हुए थे? कोई बुद्ध में कम बुद्धिमानी थी--कि महावीर में, कि कनफ्यूशियस में, कि क्राइस्ट में? लेकिन किसी को समाजवाद का खयाल न आया। तो उसका कारण था कि पूंजीवाद ही न आया हो तो समाजवाद का खयाल पैदा ही नहीं हो सकता।
मार्क्स कोई कृष्ण, बुद्ध या महावीर से ज्यादा बुद्धिमान आदमी न था। लेकिन मार्क्स एक नई स्थिति में था, जहां पूंजीवाद आना शुरू हो गया था। इसलिए मार्क्स सोच सकता था समाजवाद की बात। और मार्क्स के खयाल में भी समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी न था। वह पूंजीवाद की ही चरम सीमा थी जहां से पूंजीवाद के भीतर की शक्तियां बिखर कर समाजवाद को ले आएंगी। मार्क्स ने कभी सोचा भी न था कि रूस में समाजवाद पहले आ जाएगा! रूस पूंजीवादी देश न था। मार्क्स की भविष्यवाणी रूस के लिए न थी। मार्क्स की कल्पना में भी नहीं हो सकता था कि चीन में समाजवाद पहले आ जाएगा। चीन बहुत पिछड़ा हुआ मुल्क है। सामंतवादी मुल्क है। चीन भी अभी पूंजीवाद नहीं था। और इसलिए चीन को जबरदस्ती समजवादी बनाने की जो चेष्टा चल रही है, जैसे बच्चे को जबरदस्ती बूढ़े बनाने की चेष्टा में जितनी तकलीफ उठानी पड़े उतना खून गिराना पड़ रहा है, उतनी परेशानी हो रही है। रूस में भी वह हुआ।
अगर मार्क्स जिंदा हो जाए तो बहुत हैरान होगा कि रूस में समाजवाद आया कैसे? क्योंकि रूस तो पूंजीवादी ही न था। रूस तो पूरा फ्यूडल था, वहां कभी पूंजी की कोई उत्पत्ति न हुई थी, कोइ औद्योगीकरण न हुआ था। लेकिन रूस के क्रांतिकारियों ने जबरदस्ती समाजवाद थोपने की कोशिश की। चालीस साल जबरदस्ती समाजवाद थोपने के परिणाम में रूस को इतनी पीड़ा झेलनी पड़ी, जितनी पूंजीवाद--इतनी पीड़ा--कभी भी किसी को नहीं दे सकता है; न कभी दी है। इतनी कंडेंस्ड वायलेंस, इतनी सघन पीड़ा से रूस को गुजरना पड़ा। अगर हम उतनी ही पीड़ा से गुजरने को तैयार हों तो इंदिरा जी समाजवाद ला सकती हैं। लेकिन उतनी पीड़ा से गुजरने को भारत तैयार नहीं है, और न तैयार किया जाना चाहिए, और न इंदिरा जी की समझ में है कि उतनी पीड़ा से गुजारना पड़ेगा--तब समाजवाद आ सकता है।
असल में अगर हमें पानी को भाप बनाना है तो सौ डिग्री तक गर्म होने देना पड़ेगा। सौ डिग्री तक पानी गर्म हो जाए तो भाप बन सकता है। भाप पानी की उलटी अवस्था नहीं है, सौ डिग्री के बाद की अवस्था है। भाप विरोध नहीं है, सौ डिग्री के बाद की अवस्था है। पूंजीवाद जब सौ डिग्री पर उबलता है तो समाजवाद आना शुरू होता है। एक तो नैसर्गिक प्रक्रिया है कि पानी धीरे- धीरे गर्म होकर सौ डिग्री पर पहुंचे, और एक व्यवस्था यह है कि सारे घर में आग लगा कर एकदम पानी को गर्म कर लिया जाए। सारे घर में आग लगा कर भी पानी

गर्म हो सकता है। लेकिन उसमें पानी ही भाप नहीं बनेगा, घर के मेहमान भी, सब मित्र भी, सब रहने वाले भी भाप बन जायेंगे।
मैं चाहता हूं कि यह देश समाजवादी हो। कोई भी सहानुभूति, थोड़े भी प्रेम से, थोड़ी भी करुणा से, थोड़ी भी समझ से भरा हुआ आदमी हो तो समाजवाद के विरोध में नहीं हो सकता। सब बुद्धिमान आदमियों को साम्यवादी, समाजवादी होना ही पड़ेगा। वह अनिवार्यता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहूं कि आज समाजवाद थोपने की चेष्टा की जाए। हालांकि पूरा मुल्क का मन कहेगा कि ठीक है। बहुत सुखद है। यह गरीब को आश्वासन लगता है।
आजादी से भी गरीब को आश्वासन लगा था। हिंदुस्तान के गरीब ने बड़े सपने बांधे थे कि आजादी आने पर स्वर्ग आ जाएगा। लेकिन गरीब बहुत डिसइल्यूजंड हुआ। जब आजादी आई तो पता चला कि स्वर्ग वगैरह कुछ भी न आया। दो-चार दिन प्रतीक्षा की पंद्रह अगस्त के बाद कि अब आता होगा, थोड़ी देर लग सकती है। हिंदुस्तान में सभी चीजें समय के थोड़ी देर से आती हैं, लेट हो जाए गाड़ी शायद स्वर्ग की। दो-चार दिन प्रतीक्षा की, लेकिन झोपड़े वाले ने पाया कि झोपड़ा झोपड़ा है। उसका भूखा बच्चा भूखा है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ा। कितने सपने आजादी के साथ जोड़े थे, खयाल है आपको? नई पीढ़ी को कुछ खयाल में नहीं आता, पुरानी पीढ़ी ने कितने सपने देखे थे। आजादी आते से सब आ जाएगा। आजादी के आते से कुछ भी नहीं आ जाता। आजादी आते से सिर्फ गुलामी मिटी है। और आजादी आने से सवाल आए, हल नहीं आ गया। हल आ भी नहीं सकता।
अभी सारा मुल्क इस नये नशे से पीड़ित होगा कि समाजवाद आ जाए तो सब आ जाएगा। वह समाजवाद की बातें बहुत मोहक लगेंगी, जैसे आजादी की बातें बहुत मोहक लगी थीं। अगर हम अपने मुर्दा शरीरों को जिंदा कर सकें, भगतसिंह को, राजगुरु को, चंद्रशेखर को अगर वापस कब्रों से उठा कर खड़ा कर सकें और कहें कि तुम इस मुल्क के लिए फांसी पर लटके थे, यह आजादी आ गई--तो भगतसिंह भगवान से प्रार्थना करेगा कि बड़ी गलती हो गई। इस मुल्क के लिए हम मरे थे? इस आजादी के लिए? इसी आजादी के लिए हमने कुर्बानी की थी? भगतसिंह ने कौन से सपने देखे होंगे कारागृह में, जिनके लिए मरना आसान हो गया? बड़े सपने देखे होंगे। वह यही मुल्क है, जिसके लिए सौ वर्षों से लोग मरे थे? नहीं, वह सपने का मुल्क कभी नहीं आया।
अब यह समाजवाद का सपना--नया सपना पैदा हो रहा है। असल में बीस साल में देश के नेताओं को ऐसा अनुभव हुआ कि आजादी के आ जाने के बाद देश के पास कोई सपना नहीं रह गया। तो समाजवाद का सपना ही एक सपना हो सकता है अब। समाजवाद के सपने में मुल्क पीड़ित होगा। लेकिन मैं मानता हूं कि मुल्क की स्थितियां ऐसी नहीं हैं कि समाजवाद आज फलित हो सके। देश को संपत्ति पैदा करनी पड़े, पूंजी पैदा करनी पड़े। अगर देश संपत्ति और पूंजी पैदा न करे तो बांटने का सवाल नहीं उठता। बंटेगा क्या? सिर्फ गरीबी बंट जाएगी, हम और गरीब मालूम पड़ेंगे, और कुछ भी नहीं हो सकता है।
इसलिए मैं कहता हूं, इंदिरा जी, या इंडीकेट, या कोई भी इस मुल्क को अभी समाजवादी नहीं बना सकते, लेकिन समाजवाद के नाम पर एक इलेक्शन और जीत सकते हैं। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता है। एक इलेक्शन बहत्तर का वह जीत जाएंगे, और उनके सामने बहत्तर से आगे कोई इरादे भी नहीं हैं। बहत्तर का इलेक्शन ही जीत जाएं तो बहुत है। बहुत जोर से बात करेंगे। अभी तो समाजवाद की बात बहुत जोर से चलेगी। इतने जोर से कि सारा मुल्क एकदम समाजवाद से ही चिंतन करता हुआ मालूम पड़ेगा कि समाजवाद, समाजवाद, समाजवाद! लेकिन समाजवाद की छलांग यह मुल्क नहीं लगा सकता।
यह मुल्क अभी फ्यूडल सिस्टम के बाहर आ रहा है। अभी फ्यूडल सिस्टम के, सामंतवादी व्यवस्था के भी बाहर नहीं हो पाया है। पूंजीवादी नहीं हो पाया है। क्योंकि पूंजीवाद की प्रक्रिया का बड़ा हिस्सा है इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन, एक औद्योगिक क्रांति हो जानी चाहिए। तो मुल्क में औद्योगिक क्रांति अभी भी नहीं हो पाई है। अभी भी हमारा अस्सी प्रतिशत व्यक्ति खेत पर निर्भर है। अस्सी प्रतिशत आदमी खेत पर ही जिंदा है। बाकी बीस प्रतिशत आदमी भी, वह जो अस्सी प्रतिशत आदमी खेत पर जिंदा हैं, उसके शोषण पर जिंदा हैं। अभी देश औद्योगिक नहीं हो गया। अभी गांव हैं, अभी गांव नगर नहीं बन

गए। अभी देश का गरीब आदमी मध्यमवर्गीय भी नहीं हो गया है कि वह सोच सके सम्पत्ति के संबंध में, धन के संबंध में। और धन पैदा कैसे हो? क्योंकि हमारे सारे उपकरण आज भी प्रीमिटिव हैं, आज भी आदिम हैं। आज भी हम आदिम बातों पर बैठे हुए हैं। और आदिम बातों से संपत्ति पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। एक आदमी खेत में बैल को लगा कर जुता हुआ है। बैल को ईजाद हुए कोई पांच हजार साल हो गए। पांच हजार साल पहले जिस आदमी ने बैल जोता था खेत में, वह बड़ा क्रांतिकारी आदमी रहा होगा। लेकिन पांच हजार साल बाद भी जो बैल जोत रहा है, उसकी बुद्धि पर शक होता है।
हम अभी औद्योगिक क्रांति से नहीं गुजरे। उद्योग बढ़े, संपत्ति इतनी आए
कि देश में बांटी जा सके तो समाजवाद चरितार्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए मैं कहता हूं, कोई अभी समाजवाद नहीं ला सकता है। इसमें कोई इंदिरा जी या उनके साथियों की कमजोरी नहीं है। इसमें देश की वैज्ञानिक स्थिति जैसी है, उसकी मौजूदगी कारण है। इसलिए मैं चाहूं, या कोई भी चाहे तो समाजवाद नहीं ला सकता। और अगर लाना हो तो फिर एक ही रास्ता है--फिर स्टैलिन जैसा नेता चाहिए, या माओ जैसा नेता चाहिए जो समाजवाद लाने के लिए इतना खून कर सके, इतनी हत्या कर सके। उतनी हत्या की हमारी तैयारी नहीं दिखाई पड़ती है कि हम इतनी हत्या के लिए राजी हो जाएं।
फिर लोकतंत्र नहीं चाहिए क्योंकि लोकतंत्र समाजवाद नहीं ला सकेगा, इस हालत में। लोकतंत्र समाजवाद ला सकता है अमरीका जैसी हालत में, इस हालत में नहीं ला सकता है। इस हालत में तो बंदूक का कुंदा हो, और छाती के पीछे तोप लगी हो और पूरे वक्त मरने का डर हो, जबरदस्ती काम लिया जा सके औेर जबरदस्ती धन पैदा करवाया जा सके, तो शायद पचास वर्ष की हत्या और हिंसा के बाद हम थोड़ी बहुत संपत्ति पैदा कर सकें। लेकिन आज भी रूस अमीर नहीं हो सका है। पचास साल के अनुभव के बाद भी रूस एक गरीब देश है। हमें लगेगा कि अगर रूस गरीब देश है तो चांद पर पहुंचने की कोशिश कैसे करता है? वह कोशिश ऐसे ही है जैसे एक गरीब आदमी सिल्क का कुर्ता पहन कर और सामने के पड़ोसी धनी आदमी के सामने अकड़ कर निकले--चाहे घर में भूखा रह जाए। रूस की कोशिश वैसी है, इसलिए रूस पिछड़ भी गया है उस दौड़ में। क्योंकि वह दौड़ इतनी महंगी थी कि अमरीका के लिए शौक था, रूस के लिए जान की बन गई, इसलिए पिछड़ना भी पड़ा उस दौड़ में। और फिर नीचे जनता का दबाव भी बढ़ा कि घर में खाने को न हो... ।
पिछले कुछ वर्षों से रूस को भी गेहूं कनाडा से खरीदना पड़ रहा है। चालीस साल के समाजवाद के बाद भी गेहूं बाहर से खरीदना पड़े तो थोड़ा सोचने की बात है। थोड़ा विचारने की बात है। मैं आपसे कहता हूं कि आने वाले पांच वर्षों के बाद अमरीका ही रूस को गेहूं दे सकेगा। अमरीका के ही गेहूं पर रूस को भी पलना पड़ेगा जैसा हमको पलना पड़ रहा है। और यह बात साफ होती चली जा रही है क्योंकि पचास वर्ष की जबरदस्ती के कारण प्रेरणा तो बिल्कुल मर गई है। कोई काम नहीं करना चाहता है रूस में। और जबरदस्ती कब तक काम लिया जा सकता है? पूरा रूस एक कनसनट्रेशन कैंप हो गया है, एक कारागृह हो गया है, जिसमें जबसदस्ती काम लिया जा रहा है। जिसमें आदमी को मरने के डर से काम लिया जाता है। कब तक ऐसा चल सकता है? थोड़ी देर चल सकता है। बहुत देर के बाद मुश्किल हो जाता है, आदमी इनकार कर देता है। या इतना मृत्यु से भी राजी हो जाता है कि कहता है कि ठीक है, मर ही जाएं--जो कुछ होगा, होगा। लेकिन रूस अमीर नहीं है। आज भी रूस के पास कितनी कारें हैं? कितने लोगों के पास ठीक कपड़े हैं? कितने लोगों के पास ठीक भोजन है? जो यात्री जाते हैं वे गलत खबरें लेकर आ जाते हैं, क्योंकि उनके ठहरने के लिए खास होटलें हैं, खास दुकानें हैं खरीदने के लिए, खास आदमी हैं बात करने के लिए, जिससे वे बात करके लौटते हैं। लेकिन इधर-उधर भटक कर थोड़ा रूस में खोजना बड़ा सवाल है, और तरह का सवाल है।
रूस अमीर नहीं हो सका, और यह अनुभव में आ रहा है उन्हें, कि कहीं कोई भूल हो गई है। फिर भी स्टैलिन बहुत हिम्मत का आदमी था। उतने हिम्मत का आदमी हिंदुस्तान में कृष्ण के बाद तो पैदा नहीं हुआ। अगर कृष्ण हमको फिर से मिल जाएं तो कृष्ण हिम्मत के आदमी हैं। वे कहते हैं, कोई फिकर नहीं-- मारो, क्योंकि आत्मा मरती ही नहीं है इसलिए कोई चिंता नहीं है। कृष्ण हमको

मिल जाएं तो समाजवाद लाया जा सकता है। और रूस से ज्यादा हत्या करनी पड़ेगी भारत में, रूस से बहुत ज्यादा हत्या करनी पड़ेगी क्योंकि भारत रूस से बहुत ज्यादा आलसी है। इतने आलस में हमें हत्या के सिवाय कोई रास्ता न रह जाएगा। लेकिन इंदिरा जी को और उनके साथियों को कोई अंदाज नहीं है। अंदाज का कोई कारण भी नहीं है क्योंकि भीड़ जिस बात से राजी, वह बात कहनी चाहिए--नेता तभी नेता बना रह सकता है। नेता को कोई दूरदर्शी होने की जरूरत नहीं है। दूरदर्शी आदमी नेता नहीं हो सकता। नेता को शॉर्ट साइटेड होना चाहिए, पास ही दिखाई पड़ना चाहिए, दूर दिखाई पड़ना ही नहीं चाहिए, तभी नेता हो सकता है। और अगर नेता अंधा हो तो और भी अच्छा नेता हो सकता है। क्योंकि बिल्कुल दिखाई न पड़े तो वह ऐसे नारे लगा सकता है जो कि देखने वाला कभी भी नहीं लगा सकता। और अंधों के देश में नेता होने के लिए अंधा होना क्वालीफिकेशन है-- योग्यता है।
तो, मैं कहता हूं कि नहीं इंदिरा जी और न कोई और समाजवाद ला सकता है।
समाजवाद आएगा, लेकिन पचास साल मुल्क को औद्योगीकरण से गुजारना जरूरी है।
पचास साल मुल्क को पूंजीवाद की ठीक-ठीक तीव्रतम अवस्था पानी जरूरी है।
पचास साल बाद समाजवाद की बातें अर्थपूर्ण हो सकती हैं। लाना तो पड़ेगा ही।
पूंजी की व्यवस्था संक्रमण की व्यवस्था है, अंतिम फल तो समाजवाद होना ही चाहिए। लेकिन पूंजीवाद भी लाना पड़ेगा।
अब ये बातें मेरी उलटी दिखाई पड़ सकती हैं। ये बातें उलटी दिखाई पड़ सकती हैं कि मैं कहता हूं कि समाजवाद लाना है और पूंजीवाद लाना पड़ेगा। आपको दिखाई पड़ती होंगी उलटी, उलटी नहीं हैं। क्योंकि मैं उनको विकास के चरण मानता हूं। लेकिन हम कैसे ला पाएंगे पूंजीवाद? गांधी जी ने इस देश को जो विचार दिया है वह सामंतवादी है। वह पूंजीवाद तो नहीं लाता, वह पूंजीवाद से नीचे गिराता है। क्योंकि सब व्यस्थाएं उपकरणों पर निर्भर होती हैं। चरखा सामंतवादी व्यवस्था का उपकरण है। चरखे के द्वारा इतना ही पैदा हो सकता है कि किसी तरह अधपेट भरा आदमी सो सके। इससे ज्यादा पैदा नहीं हो सकता। चरखे के द्वारा पूंजी अतिरिक्त पैदा नहीं हो सकती है। हाथ के द्वारा खेत में काम करने से कोई बहुत पूंजी पैदा नहीं हो सकती। हाथ से कपड़ा बुनने से पूंजी पैदा नहीं हो सकती। ये सामंतवादी उपकरण हैं, इनके द्वारा रामराज्य लाया जा सकता है, समाजवाद नहीं लाया जा सकता है। रामराज्य का मतलब है, बहुत पीछे लौट जाना--तीन हजार साल पीछे लौट जाना। गांधी जी इतने डरे हुए थे पूंजीवाद से कि वे सामंतवाद की बात करने लगे, पीछे लौट चलें। पीछे लौट जाओ। बड़े उद्योग का उन्हें बड़ा खतरा लगा, तो छोटे उद्योग रखो जिससे संपत्ति ही पैदा न होगी तो खतरा न होगा। पीछे लौट चलो। इतना कम सामंतवादी व्यवस्था में आदमी एक अर्थ में बड़ा अच्छा आदमी था। अच्छा इसलिए था कि उसके पास बुरे होने की ताकत भी न थी। आखिर बुरे होने के लिए भी ताकत चाहिए। और मेरा मानना है कि जो आदमी बुरा नहीं हो सकता, उसकी अच्छाई का कोई मतलब नहीं है। एक बीमार आदमी अगर सड़क पर जाकर उपद्रव न करता हो, और एक बीमार बच्चा अगर बाप की चुपचाप आज्ञा मान लेता हो, तो शुभ नहीं है। उस बच्चे की आज्ञा का कोई अर्थ है, जो चाहे आज्ञा तोड़ना तो तोड़ सके। उस आदमी के अच्छे होने का प्रयोजन है, जो चाहे बुरा होना तो हो सके। सामंतवाद ने इतनी दीन-हीन व्यवस्था दी आदमी को कि बुरे होने तक का उपाय न था। तो आदमी अच्छा था!
गांधी जी को लगता है कि उन्हीं अच्छे दिनों में वापस लौट चलें। वे दिन अच्छे न थे, सिर्फ रुग्ण, कमजोर दिन थे। अच्छे दिन आगे आ सकते हैं। अच्छे दिनों की संभावना आगे है, पीछे नहीं। तो अगर गांधी जी का विचार मान कर हम चलते हैं तो पूंजीवाद भी त्वरित नहीं हो पाएगा, पूंजीवाद भी धीमा गति पकड़ लेगा। और पूंजीवाद जितना धीमा होगा, समाजवाद का नक्शा उतना ही दूर मानना चाहिए। पूंजीवाद में त्वरा, स्पीड लाने की जरूरत है। औद्योगीकरण में स्पीड लाने की जरूरत है। चरखे से वह स्पीड में बाधा पड़ रही है। वह चरखा हटना चाहिए बीच से। तो पचास साल में औद्योगीकरण हो सकता है देश का। मशीन लाई जा सकती है, मशीन से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। केंद्रत संपत्ति पैदा हो सकती है। तो समाजवाद भी संभव है।

गांधी जी को अगर हम केंद्र पर रख कर चलते हैं तो देश पूंजीवादी ही नहीं हो पाएगा, समाजवादी होने की बात तो बहुत दूर है। इसीलिए गांधी जी को सारी दुनिया में वे सारे लोग, जो समाजवाद से डरे हुए हैं, आदर दे रहे हैं। उनका कुल कारण इतना है कि गांधी ही दुनिया को समाजवाद से बचा सकते हैं। बिड़ला नहीं बचा सकते हैं। बिड़ला तो समाजवाद में ले ही जाएंगे। दुनिया का कोई पूंजीपति दुनिया को समाजवाद से नहीं बचा सकता। अमरीका के पूंजीपति दुनिया को समाजवाद से नहीं बचा सकते। सब पूंजीवादी मिल कर जो कर रहे हैं, उसका अंतिम परिणाम समाजवाद ही होगा। लेकिन गांधी जी बचा सकते हैं, क्योंकि वह पूंजीवाद से पीछे की व्यवस्था में लौटने की बात करते हैं। जितना तीव्र और इंटेंस होगा उतनी जल्दी समाजवाद का सपना पूरा हो सकता है। लेकिन हमारा चिंतन बहुत अजीब है। एक तरफ हम समाजवाद की बात भी करेंगे, दूसरी तरफ गांधी जी का जयकार भी करते रहेंगे। यह दोनों में विरोध है, क्योंकि गांधी जी का समस्त चिंतन सामंतवादी प्रक्रिया में ले जाएगा। वह पूंजीवाद के पहले की व्यवस्था है, पूंजीवाद के बाद की व्यवस्था नहीं है। मै पूंजीवाद का विरोधी नहीं हूं इस अर्थों में कि पूंजीवाद समाजवाद में ले जाने वाला है। मैं पूंजीवाद का विरोधी हूं, इस अर्थों में कि पूंजीवाद पर ही नहीं रुक जाना है, समाजवाद तक पहुंचना है। मैं समाजवाद का पक्षपाती हूं क्योंकि समाजवाद के बिना जगत से गरीबी और दुख और दारिद्रय नहीं मिट सकता है। लेकिन मैं पूंजीवाद का समर्थन करता हूं क्योंकि पूंजीवाद के पूर्ण विकास के बिना समाजवाद नहीं आ सकता है। इनको सोचना पड़ेगा, ये विरोधी बातें नहीं हैं। ये विरोधी दिखाई पड़ सकती हैं।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, अमरीका जैसी समृद्धि देश में लानी है, तो अमरीका में तो मानसिक अशांति बढ़ी है, व्यभिचार बढ़ा है, आचरण का पतन हुआ है, चारित्र्य नीचे गया है। हमारे देश का चरित्र और आचरण तो बहुत ऊंचा है!

यह थोड़ा सोचना पड़ेगा। यह हमारे देश के चरित्र और आचरण के संबंध में बहुत विचार करने की जरूरत है। तीन बातें उन्होंने कही हैं, वह विचार करनी चाहिए। पहली बात तो यह कि आम खयाल यह है, और ठीक है कि अमरीका में मानसिक अशांति बढ़ी है। लेकिन मानसिक अशांति आपको पता है, कब बढ़ती है? मानसिक अशांति तब बढ़ती है जब शरीर की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं, उसके पहले नहीं बढ़ती है। जानवरों में मानसिक अशांति नहीं होती है। लेकिन इसलिए हम जानवर होना पसंद न करेंगे। आदिवासियों में मानसिक अशांति नहीं होती है, लेकिन हम आदिवासी होना पसंद न करेंगे। असल में मानसिक अशांति होती तब है जब शरीर की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तब मन की मांग शुरू होती है। अब जो आदमी भूखा बैठा है, खाना नहीं है, कपड़ा नहीं है, मकान नहीं है, उसको मानसिक अशांति नहीं हो सकती है। उसकी शारीरिक अशांति इतनी बड़ी है--मानसिक अशांति का उपाय नहीं है।
जब शारीरिक अशांति मिटती है तो मनासिक अशांति शुरू होती है। मानसिक अशांति एक अर्थ में विकास है। और जब मन की भी सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं तो आत्मिक अशांति शुरू होती है। वह और बड़ा विकास है। आत्मिक अशांति तीसरी बात है। बुद्ध और महावीर आत्मिक रूप से अशांत थे, मानसिक रूप से नहीं। बुद्ध और महावीर की शरीर की जरूरतें पूरी थीं, मन की भी जरूरतें बहुत पूरी थीं। मन की हमारी जरूरतें पूरी नहीं हैं, अमरीका की भी जरूरतें पूरी नहीं हैं। तो बुद्ध और महावीर ने एक नई अशांति अनुभव की--मानसिक नहीं, आध्यात्मिक--एक स्प्रिचुअल अनरेस्ट पैदा हो गया।
अब बुद्ध को जितनी भी उस देश में सुंदर स्त्रियां हो सकती थीं--उनके पिता ने सब उनके महल में इकट्ठी कर दी थीं। अब मानसिक अशांति का उपाय न रहा। मानसिक अशांति अब क्या करे? सब स्त्रियां जो चाही जा सकती थीं मिल गयीं। सुंदरतम मकान मिला, सुंदरतम निवास मिला, सब सुविधा मिली, शरीर की सब जरूरतें पूरी हो गईं। संगीत मिला, साहित्य मिला, चित्रकला मिली, नृत्य मिला, सब मिल गया। शरीर और मन की सब जरूरतें पूरी हो गईं। तो बुद्ध को एक नई

अशांति ने पकड़ा, स्प्रिचुअल अनरेस्ट--कि हमको परमात्मा पाना है। हमको सत्य पाना है। हम बिना सत्य पाए नहीं रह सकते। तो क्या आप कहेंगे कि बुद्ध की हालत अच्छी नहीं है?
ध्यान रहे, अशांतियों के भी तल हैं। शारीरिक अशांति निकृष्टतम अशांति है। मानसिक अशांति उससे ऊंची अशांति है। आध्यात्मिक अशांति और भी ऊंची अशांति है। और ध्यान रहे, जिस तल पर हम शांत होंगे उसी तल पर शांत हो सकते हैं। जिस तल पर हम अशांत भी नहीं हुए उस तल पर हम शांत कैसे होंगे?
भारत मानसिक रूप से अशांत होने में अभी समर्थ नहीं है। अभी शारीरिक
तल पर अशांति है। अभी पेट भूखा है। शरीर के तल पर अशांति है। तो हम सोचते हैं कि शायद हम मानसिक रूप से शांत हैं, आप गलती में हैं। मानसिक रूप से शांत होने के लेवल तक भी हम अभी नहीं पहुंचे हैं। इसलिए हम शांत मालूम पड़ रहे हैं। हमारी शांति वास्तविक नहीं है। हमारी शांति बिल्कुल झूठी है क्योंकि हम अशांत ही नहीं हुए जिस तल पर, उस पर हम शांत कैसे हो जायेंगे? अमरीका शरीर के तल पर शांत हुआ है तो मन के तल पर अशांत हुआ है। यह मनुष्य के एवोल्यूशन का दूसरा कदम है। बेचैन हैं, तकलीफ है, लेकिन ध्यान रहे, जब वे मानसिक रूप से अशांत हुए हैं तो वे मानसिक शांति की तलाश में लग गए हैं। बहुत जल्द वे सारे उपाय खोज लेंगे जिनसे मन में शांति हो जाए। एक नई अशांति अमरीका में शुरू होगी, जो आध्यात्मिक होगी। वे ईश्वर, सत्य और निर्वाण और मोक्ष की खोज से बेचैन हो जाएंगे। तब क्या हम कहेंगे, वे लोग आध्यात्मिक रूप से अशांत हो गए हैं तो हम उनसे बेहतर हैं? नहीं, मैं आपसे कहता हूं, वे हमसे बेहतर हैं, क्योंकि हमसे ऊंचे तल पर अशांत हैं। तो ऊंचे तल पर शांत भी हो सकते हैं। इसको नियम मानता हूं मैं कि जिस तल पर हम अशांत होंगे, उसी तल पर शांत हो सकते हैं। लेकिन, तल के नीचे हैं हम। हम शरीर के तल पर अशांत हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। वे पहले आते हैं कि हमें ध्यान सीखना है, बहुत अशांति है। फिर कुछ दिन मेरे पास रुकते हैं, मैं उनसे और बात करता हूं तो पता चलता है, किसी को लड़की की शादी करनी है असल में, इसलिए अशांति है। वह कहता है कि ठीक है, जब निकट आता है तो पहले तो वह ध्यान और परमात्मा की बात करता है। जब निकट आता है तब वह धीरे से बात करता है कि लड़की बड़ी हो गई है और शादी करनी है। किसी के लड़के को नौकरी नहीं मिल रही है, वह बेकार है। किसी को बीमारी है जो ठीक नहीं हो रही है। किसी के घर में इतनी अव्यवस्था है कि कोई उपाय नहीं रह गया। उससे वह कह रहे हैं कि हम मानसिक रूप से अशांत हैं। खोजने आते हैं ध्यान, लेकिन बहुत जल्दी पता चलता है कि उनको अगर धन मिल जाए तो वह ध्यान से ज्यादा कीमती सिद्ध होगा। धर्म की बात करते आते है, भगवान के मंदिर की तरफ आते हैं, लेकिन भगवान से भी हाथ जोड़ कर पता है क्या मांगते हैं वे? अगर हम आदमी, जो मंदिर में हाथ जोड़े खड़े हैं उनको ऊपर से देख कर लौट आए तो हम समझेंगे कि बड़े धार्मिक आदमी हैं। हो सकता है वे भीतर कह रहे हों कि मेरा जिससे प्रेम है उसी से विवाह करवा दिया जाए। नौकरी नहीं मिल रही है, नौकरी दिलवा दी जाए। रिटायरमेंट हुआ जा रहा है और दो चार साल नौकरी चल जाए तो अच्छा है। शादी नहीं हो रही है बच्चे की--तो बच्चे की शादी हो जाए। बीमारी है, बीमारी दूर हो जाए।
एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहाः मुझे भगवान पर पक्का विश्वास आ गया है। क्योंकि मैंने प्रार्थना की थी कि मुझे नौकरी मिल जाए और मुझे नौकरी मिल गई। तो मैंने कहाः सस्ता विश्वास है। आगे अब इसका दुबारा फिर से परीक्षा मत करना भगवान से, नहीं तो गड़बड़ हो जाए। उसने कहाः क्या मतलब है आपका? मैंने कहाः जब भूल-चूक से किसी तरह मिल गई है नौकरी तो ठीक है, तुम विश्वास ही रखना। अब आगे परीक्षा मत करना। नहीं तो भगवान हर परीक्षा में सही न निकलेगा। अब यह जो आदमी है, इसकी शारिरिक तकलीफ है। हमारी इस देश में तकलीफ, शारीरिक है, मानसिक नहीं। लेकिन हमारे देश के साधु-संत समझाते हैं लोगों को कि देखो अमरीका में कितनी मानसिक अशांति है। उनको पता नहीं है कि अमरीका में मानसिक अशांति हमसे विकसित होने के कारण है, वह अविकसित अवस्था नहीं है। वह हमसे विकसित अवस्था है।

असल में जीवन में ऊंची अशांतियां पैदा होनी शुरू होती हैं। एक जंगली आदमी है, उसको अगर संगीत सुनने को न मिले तो कोई अशांति न होगी। उसे अगर कालिदास और शेक्सपीयर पढ़ने को न मिले तो कोई अशांति न होगी। वह मजे से अपने जंगल में जो कर रहा है, करता रहेगा। उसे कभी खयाल में न आएगा कि शेक्सपीयर को भी पढ़ने का भी एक आनंद है और एक मोझर्ट को सुनने का भी एक आनंद है, और पिकासो के चित्रों को भी देखने का एक आनंद है। लेकिन जिस आदमी ने पिकासो के चित्रों में आनंद लिया है उस आदमी को पिकासो के चित्र देखने को न मिलें तो अशांति शुरू हो जाएगी। और जिसने वीणा के रस में डुबकी ली है उसे अगर वीणा सुनने को न मिले तो अशांति शुरू हो जाएगी। अशांतियों के तल हैं। जितना आदमी विकसित होता है, ऊंची अशांतियां पकड़ती हैं। सौभाग्यशाली हैं वे, जिनको नीचे की अशांतियां शांत हो गई हैं और ऊंची अशांतियों ने जिन्हें पकड़ लिया है। क्यों? क्योंकि ऊपर की अशांतियां उन्हें ऊपर की शांतियों की खोज में ले जाएंगी। अमरीका खोज पर निकल पड़ा है। आज अमरीका में सारा गहरे से गहरा चिंतन इस बात का है कि हम शांत कैसे हो सकें? ध्यान रहे, उनका अगर मन शांत होगा तो हम और उनमें जमीन आसमान का फर्क होगा। आज वे इस चिंता में पड़े हैं कि क्या एल एस डी से मन शांत हो सकेगा? कोई केमिकल तरकीब खोजी जा सकती है? कोई ध्यान का रास्ता हो सकता है, कोई मेडिटेशन हो सकता है? कोई उपाय हो सकता है जिससे मन शांत हो सके? पच्चीस तीस वर्षों में मन के शांत होने के उपाय उनमें विकसित हो जाएंगे। वे मन के विज्ञान को भी खोज लेंगे और हम यहां बैठ कर प्रशंसा का अनुभव करते रहेंगे-- आत्मप्रशंसा--कि हम बड़े शांत हैं, वे बड़े अशांत हैं।
उन्हीं मित्र ने पूछा है कि वहां आत्महत्या बढ़ गई है!
ध्यान रहे, आत्महत्या मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ बढ़ती है। जितना मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से अविकसित आदमी होगा उतनी आत्महत्या नहीं करता। आदिवासी आत्महत्या नहीं करते हैं। जितनी जंगली कौम होगी, जितनी गहरे जंगल में रहती होगी, जितनी प्राचीन होगी, आत्महत्या नहीं करेगी। क्योंकि आत्महत्या करने के लिए बड़ा आत्मवान व्यक्तित्व चाहिए। पहली तो बात यह है कि इतना बोध चाहिए कि जीवन व्यर्थ है तो मैं अपने को समाप्त कर लूं। यह बोध साधारण बोध नहीं है। आदिवासी दूसरे की हत्या कर सकता है। अगर जीवन गड़बड़ है तो दूसरे की हत्या कर दों। लेकिन अगर जीवन मुझे व्यर्थ मालूम पड़े तो मैं अपना अपने को समाप्त कर दूं, इसके लिए बड़े आत्मबल की जरूरत है। जैसे-जैसे बुद्धि विकसित होती है, आत्महत्या बढ़ेगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आत्महत्या कोई गौरव की चीज है। और बुद्धि विकसित होगी तो और आत्महत्या के बाद आत्म-साधना शुरू होगी। सिर्फ वे ही सभ्यताएं, जो आत्महत्या करने की स्थिति में पहुंचती हैं, आत्म-साधना की स्थिति में संलग्न होती हैं। आत्महत्या यह कहती है कि कुछ बदलना पड़ेगा, मिटाना पड़ेगा। सबसे पहला खयाल यही आता है कि अपने शरीर को मिटा दो। अगर जिंदगी ठीक नहीं है, आनंद नहीं देती है, रस नहीं देती है तो शरीर को मिटा दो। लेकिन, धीरे-धीरे यह भी खयाल आएगा कि शरीर को मिटाने में भी क्या होगा? तो शायद यह भी खयाल आएगा कि अपनी आत्मा को बदल डालो, मिटा डालो अहंकार को। आत्मा को बदल डालो तो शायद जिंदगी बदल जाए। असल में जो व्यक्ति आत्महत्या करने की स्थिति में पहुंचता है वहां से दो रास्ते निकलते हैं--एक आत्महत्या का, एक आत्म-साधना का। पहले आत्महत्या की जाएगी, धीरे-धीरे आत्म-साधना में रुचि बढ़ेगी। क्योंकि आत्महत्या बहुत लम्बी देर तक खींची नहीं जा सकती। अमरीका में आत्महत्याएं बढ़ी हैं। और मैं आपसे कहता हूं, आने वाले पचास वर्षों में आत्म-साधनाएं बढ़ेंगी, क्योंकि आत्महत्या स्थायी चीज नहीं हो सकती, वह संक्रमण की बात है।
उन मित्र ने पूछा है कि वहां व्यभिचार बढ़ा है, आचरणहीनता आई है!
यह सवाल बहुत ज्यादा जटिल है। पहली तो बात यह है कि अमरीका जैसे मुल्क में पहली दफा आंकड़े उपलब्ध हुए हैं। हमारे मुल्क में आंकड़े नहीं हैं। आंकड़े न होने से हमें बड़ी सुविधा है। अगर मैं आपसे, एक-एक आदमी से आकर पूछूं कि आपने अपनी जिंदगी में अपनी पत्नी को छोड़ कर और किन-किन स्त्रियों से प्रेम किया है तो कोई भी राजी नहीं होगा। हां, बता देगा कि पड़ोसी यह कह

रहे हैं, लेकिन अपन दूर हैं। लेकिन अमरीका में अगर पूछने जाते हैं तो लोग बता देंगे कि मैंने अपनी पत्नी को छोड़ कर तीन स्त्रियों से मेरे संबंध थे। वे नाम गिना देंगे, हिसाब लिखा देंगे। तो अमरीका के पास आंकड़े हैं इस बात के आज कि कौन आदमी एक जिंदगी में कितनी स्त्रियों से संबंध जोड़ता है। कौन आदमी विवाह के पहले संबंध जोड़ता है? कौन आदमी विवाह के भीतर भी संबंध जोड़ता है। इन सबके आंकड़े हैं। उन आंकड़ों की वजह से यहां के साधु-संत प्रसन्न होते हैं। वह आंकड़े उठा लेते हैं और कहते हैं, देखो, अमरीका में यह हो रहा है। चालीस परसेंट लड़कियां कहती हैं कि हमने विवाह के पहले संभोग का अनुभव किया है--हद हो गई व्यभिचार की। लेकिन आंकड़ों की कमी तथ्यों की कमी नहीं है। असल में आंकड़े भी सभ्यता के विकास के साथ ही उपलब्ध होते हैं। अमरीका का व्यक्ति आज इतना समर्थ है कि बेफिकर है, निश्चिंत है, वह सच बात कह सकता है। हम सच बात कहने में भी समर्थ नहीं हैं।
व्यभिचार उतना ही है, लेकिन पर्दे के पीछे है, वह पर्दे के बाहर नहीं है। वह पीछे-पीछे सरकता है। पीछे सरकता है, आंकड़े नहीं मिलते। तो आंकड़े न मिलने की वजह से हम बड़े निश्चिंत होते हैं। आंकड़े बहुत नई घटना है, स्टेटिस्टिक्स की साइंस बहुत नई चीज है। अगर हम पता लगाने जाएं कि आज से हजार साल पहले हिंदुस्तान में कितनी वेश्याएं थीं तो कोई पता नहीं लग सकता था। इसका मतलब यह नहीं है कि वेश्याएं नहीं थीं। अगर हम आज भी पता लगाने जाएं कि हिंदुस्तान में कितने लोगों ने जिंदगी में मास्टरबेशन, हस्तमैथुन किया है तो आंकड़े नहीं मिल सकते। लेकिन अमरीका में मिल सकते हैं। उसका कारण यह है कि जिंदगी को सीधा-साफ... पाखंड की तरह नहीं किया जा रहा है। एक आदमी से पूछें तो वह कह देगा कि हां, ऐसा-ऐसा हुआ। उसकी वजह से मनुष्य को समझने में बड़ी सुविधा हुई। सच्चाइयां सामने आईं, ठहराने के तथ्य प्रकट हुए। और नये तथ्यों ने जीवन को संवारने, सुधारने की नई सुविधा जुटाई है। उसका परिणाम यह हुआ है कि हम आदमी के वास्तविक व्यक्तित्व को जानने में जितने समर्थ आज हो गए हैं उतने कभी भी नहीं थे। क्योंकि आदमी ऊपर एक शक्ल बनाए था, भीतर कुछ और था। वह कहता कुछ और था, करता कुछ और था। आज अमरीका में हम पता लगा सकते है कि वह करता क्या है। और अगर करने का पता लगे, तो बहुत हैरानी की बात है। अनुभव किया गया--अभी दस... जो वर्षों में खोज-बीन होती है अमरीका में, उसके बहुत अजीब परिणाम हैं। उसके परिणाम यह हैं कि करीब-करीब सत्तर प्रतिशत लोग जीवन में कभी न कभी हस्तमैथुन करते हैं। तो अब यह हमको आंकड़ा मिल गया। यह आंकड़ा अमरीका के आदमी पर ही लागू नहीं है, यह सारी दुनिया के आदमी पर लागू है। और जैसे-जैसे आदमी विकसित होगा, सारी दुनिया में ये आंकड़े कमोबेश दो-चार-दस परसेंट के फर्क से मिलने शुरू हो जाएंगे।
लेकिन अभी हमारे पास आंकड़े नहीं हैं। आंकड़े तो दूर हैं, हस्तमैथुन की पब्लिक रूप से चर्चा करनी मुश्किल है। आंकड़ा तो बहुत मुश्किल है और अगर हम किसी से पूछने जाएंगे तो वह डंडा उठा लेगा कि आप पागल हो गए हैं, मैं ऐसा काम करूंगा? यह आप किसी और से पूछिए। ऐसा कहीं कोई नहीं करता। हम जिंदगी को उसकी सच्चाई, उसकी नेकेडनेस में--नग्नता में स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। अगर हम किसी पत्नी से पूछें कि तुझे कभी कोई और पुरुष सुंदर मालूम पड़ता है तो वह कहेगी, आप कैसी बातें करते हैं? और अगले जन्म में भी इसी पति को पाने की प्रार्थना कर रही हूं। कभी कोई पुरुष मुझे सुंदर मालूम पड़ता ही नहीं। मेरे पति से ज्यादा सुंदर कोई है ही नहीं। अब यह असंभव है बात। यह बिल्कुल असंभव है। और पुरुष भी सुंदर हैं। और सड़क पर वे दिखाई पड़ते हैं तो सुंदर मालूम ही पड़ेंगे, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें न कुछ पाप है, न कोई आचरणहीनता है। पति ने कोई सुंदर होने का ठेका नहीं ले लिया है, और न पत्नी ने सुंदर होने का ठेका ले लिया है। लेकिन दूसरे की पत्नी से अगर मैं कहूं कि आप बहुत सुंदर हैं तो झगड़ा हो सकता है। हालांकि झगड़ा होना नहीं चाहिए। मैं सिर्फ एप्रीसिएशन कर रहा हूं। मुझे धन्यवाद मिलना चाहिए। आपके बगीचे में आऊं और कहूं कि आपका गुलाब का फूल बहुत सुंदर है तो झगड़ा नहीं करते आप। और आपसे कहूं कि आपकी लड़की बहुत सुंदर है तो झगड़ा शुरू हो जाएगा। अगर गुलाब के फूल से आप प्रसन्न हुए थे, तो लड़की के सौंदर्य की

चर्चा सुन कर आपको और भी प्रसन्न होना चाहिए था। सौंदर्य सहज तथ्य है जीवन का। लेकिन हमने उसे स्वीकार नहीं किया है।
हमारी अस्वीकृति हमारा आचरण बनी हुई है और हम सोचते हैं कि हम बहुत आचरणवान हैं। मैं इधर साधु-संन्यासियों से निरंतर मिलता हूं। मैं बहुत हैरान हुआ। एक आंकड़ा मेरी नजर में आना शुरू हुआ तो मैं मुश्किल में पड़ गया। जब साधु-संन्यासी मुझे मिलते हैं--और मुल्क में हजारों लोगों से मेरा संबंध है--तब वे मुझसे सबके सामने आत्मा-परमात्मा की ही बातें करते हैं। कहते हैं, कुछ एकांत में बातें करनी हैं, साधना के संबंध में। फिर वे एकांत में मिलते हैं तो सिवाय सेक्स के उनका कोई प्राब्लम नहीं होता। वे कहते हैं कि हम बड़ी मुश्किल में पड़े हैं।
अभी छह सात दिन पहले एक साधु मुझे मिलने आए थे और उन्होंने मुझसे कहा
कि मैं मुश्किल में पड़ा हुआ हूं। ब्रह्मचर्य के लिए जो भी नियम कहे गए हैं, सबका पालन करता हूं, लेकिन ब्रह्मचर्य सधता नहीं। स्त्री को देखता नहीं हूं, आंखें झुका कर चलता हूं, लेकिन सपने में स्त्रियां आ जाती हैं। अब दिन भर तो किसी तरह सम्हाल लेता हूं, लेकिन सपने में मैं क्या करूं? मेरे वश के बाहर है। इधर यह नहीं खाता हूं, यह नहीं खाता हूं, यह नहीं खाता हूं, कम खाता हूं, सब है, लेकिन स्वप्नदोष बंद नहीं होते। अब एक साधु यह कहेगा, लेकिन वह सबके सामने वह स्वीकार करने को राजी नहीं है। मैंने कहाः तुम इसे सबके सामने कहो ताकि लोगों को पता चल सके कि साधु भी क्या मुसीबत है ताकि और लोग साधु न बन जाएं। लेकिन वह यह कहने को राजी नहीं होगा। सबसे सामने वह ब्रह्म की बातें करेगा और सबके सामने समझाएगा कि ब्रह्मचर्य महान आनंद है। और किस कष्ट में और किस नरक में वह पड़ा है, वह यह भीतर अनुभव करेगा।
उन संन्यासी ने मुझसे कहा कि आप ठीक कहते हैं, लेकिन अगर मैं यह सबके सामने कहूं तो उससे कुछ भी सिद्ध न होगा। सिर्फ इतना ही सिद्ध होगा कि ब्रह्मचर्य तो ठीक है, मैं गड़बड़ हूं और कुछ सिद्ध न होगा। मैं इस झंझट में क्यों पडूं? जब कोई दूसरा नहीं पड़ रहा है तो मैं क्यों पडूं? अभी लोग मेरे पैर छूते हैं, नमस्कार करते हैं, आदर करते हैं। सब मेरा आदर खो जाएगा। सब सम्मान खो जाएगा।
सम्मान और आदर के डर से सत्य खो रहा है, खोता रहा है। इस देश को अपने व्यक्तित्व के संबंध में सत्य खोजना पड़ेगा। तो मैं आपसे कहना चाहता हूंः दुनिया में न कोई आचरणहीन है, न कोई आचरणवान है। मनुष्य करीब-करीब एक जैसा है। सारी पृथ्वी पर एक जैसा है। थोड़े बहुत फर्क हैं, हवाओं की वजह से, गर्मी और ठंड की वजह से। वह फर्क आदमी के फर्क नहीं हैं, क्लाइमेटिक फर्क हैं, लेकिन आदमी सारी दुनिया में एक जैसा है। आदमी-आदमी में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। और इस भ्रम में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है कि कोई हम कुछ ज्यादा चरित्रवान हैं और कोई दूसरा कम चरित्रवान है।
फिर हमारी चरित्र की अपनी व्याख्याएं हैं। अगर हिंदुस्तान में किसी
के संबंध में कह दिया जाए कि वह आदमी चरित्रहीन है तो आप समझते हैं, क्या समझेंगे आप? आप फौरन समझेंगे कि कुछ सेक्स के मामले की गड़बड़ है। अगर किसी के बाबत कह दिया जाए कि फलां आदमी चरित्रहीन है तो हमें यही खयाल आएगा कि उसके यौन संबंधों की कोई गड़बड़ है। हमें कभी खयाल नहीं आएगा कि वह आदमी झूठ बोलता होगा। हममें कभी खयाल न आएगा कि वह आदमी वचन के लिए प्रतिबद्ध नहीं रहता। हमें कभी खयाल न आएगा कि वह आदमी आचरण की और कोई भूलें करता होगा। हमें फौरन सेक्स का खयाल आएगा। चरित्रहीन का मतलब ही हमारे मन में यह है कि कुछ न कुछ उसके सेक्सुअल संबंधों में कोई गड़बड़ है।
लेकिन दूसरी कौमें चरित्रहीन का दूसरा मतलब लेती हैं। और इसलिए उन्होंने कई अर्थों में आचरण को सुधारा है। कई अर्थों में आचरण को सुधारा है। आज अगर इंग्लैंड या अमरीका में चौरस्ते पर अखबार रख दिया जाए तो लोग पैसा डाल जाते हैं पेटी में, अपना अखबार ले जाते हैं। अगर हमारे यहां रखा जाए तो अखबार भी ले जाएंगे, पेटी भी ले जाएंगे। कोई पता ही नहीं चलेगा, दूसरे आदमी का सवाल ही नहीं उठेगा। दूसरे आदमी को कोई कठिनाई ही न आएगी, पहला आदमी ही निपटा देगा। डिपार्टमेंटल स्टोर्स हैं, लोग चीजें चुन लेते हैं, पैसा डाल देते हैं। यह एक तरह क आचरण है जो अर्थ रखता है। अगर कोई किसी

को वचन देता है तो पूरा करने की कोशिश करता है। यहां इतना ही कह देना काफी है कि भूल गए। बात खत्म हो गई। इसमें कुछ आचरणहीनता नहीं है? एक आदमी मुझसे कह जांऐ कि वह पांच बजे आएगा, वह नौ बजे रात आ रहा है। शाम पांच बजे का आया हुआ, वह कहता है कि जरा काम में लग गया। मेरे चार घंटे उसकी प्रतीक्षा में खराब हुए, इसका कोई हिसाब ही नहीं है, इससे कोई संबंध नहीं है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है।
हमारी आचरण की सारी केंद्रितता सेक्स से बंध गई है। सारी दुनिया में सेक्स से धीरे-धीरे आचरण को मुक्त किया जा रहा है और आचरण के दूसरे आयाम पकड़े जा रहे हैं। क्योंकि ठीक से समझा जाए तो सेक्स दो व्यक्तियों के बीच का संबंध है। दूसरे आयाम बहुत महत्वपूर्ण हैं। दूसरे आयाम, सत्य बोलने के, वचन प्रतिबद्धता के, नियम समय के पालन के ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, आश्वासन के ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।
अगर मैं किसी के पास जाऊं और उससे कहूं कि मेरा फलां काम कर देना तो वह कहेगा कि हां, कर देंगे। कोई नहीं तो कहेगा ही नहीं, और कोई काम करेगा भी नहीं। बल्कि मैंने लोगों से कहाः कभी मैं किसी के घर बैठा हूं... एक वाइस चांसलर के घर ठहरा था। कोई आया, उसने कहा कि मेरा फलां लड़का है, वह आपके यहां नौकरी के लिए दरख्वास्त दिया है। उन्होंने कहाः हां मैं सब देख लूंगा, घबड़ाइए मत। वे चले गए तो मैंने कहाः सच में आप देखेंगे? उन्होंने कहाः देखने का कहां सवाल है? जो आता है उससे यही कहना पड़ता है। क्योंकि अगर हम देखने लगें तो मुश्किल में पड़ जाएं और अगर न करें तो वह आदमी पीछे पड़ जाए। तो हम हां बोल देते हैं और झंझट के बाहर हो जाते हैं।
सब राजनीतिज्ञ हां बोल रहे हैं। सब नेता हां बोल रहे हैं। कुछ भी कहिए, वे कहते हैं हां, हम करेंगे। और उनके हां का मतलब ठीक से समझ लेना। जैसा पहले कहा जाता था कि स्त्री नहीं कहे तो उसका मतलब हां होता है। ऐसा नेता हां कहे तो उसका मतलब नहीं होता है। हमारे आचरण के और आयाम हैं, उनका हमें खयाल नहीं है। हमने सेक्स पर उसे केंद्रित किया है। सच बात तो यह है कि जो कौम सेक्स पर आचरण को केंद्रित करती है, वह एक अर्थ में आचरणहीन है। सेक्स कोई अर्थ नहीं रखता--इतना बड़ा, जितना हम सोच रहे हैं। जितना हम उसे महत्व दे रहे हैं उतना अर्थ नहीं रखता। जिंदगी के और तथ्यों में एक तथ्य वह भी है। और उसके संबंध में ऑब्सेस्ड होने की जरूरत नहीं है कि हम उसी को सोचते रहें और दिन-रात उसी की फिकर रखें, दूसरों की खिड़कियों में से झांक कर देखते रहें कि कहां क्या हो रहा है? कहीं आचरणहीनता तो नहीं हो रही है? सब एक दूसरे की तलाश में लगे हुए हैं कि कहीं कोई आचरणहीनता तो नहीं हो रही है? यह पूरी बात आचरणहीनता की है।
मेरे एक मित्र डाक्टर हैं दिल्ली में, सरदार हैं। वे गए हुए थे लंदन
एक मेडिकल कांफेरन्स में भाग लेने। मैं उनसे बात कर रहा था। लौट कर वे कहने लगे कि आपकी बात ठीक लगती है, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। एक बड़े पार्क में कोई पांच सौ डाक्टर की कांफ्रेंस थी तो हम कुछ मिलने-जुलने, कुछ खाने-पीने के लिए इकट्ठे हुए थे। पांच सौ लोग हैं पार्क में, डाक्टर आपस में बातें कर रहे हैं। मेरे सरदार मित्र भी वहां हैं, वे बड़े बेचैन हैं। बाकी सारे लोग बातों में लगे हैं, वे बातों में नहीं हैं। वह किसी दूसरी खोज में लग गए हैं। एक लड़का और एक लड़की एक बेंच पर पार्क में एक दूसरे के गले में हाथ डाले, आंख बंद किए बैठे हैं। वे बड़े बेचैन हुए जा रहे हैं कि बड़ी आचरणहीनता हो रही है। अब आपको इस आचरणहीनता से क्या लेना-देना है? आप अपना आचरण सम्हाल रहे हैं, इतनी ही काफी कृपा है। एक युवक और एक युवती गले में हाथ डाले बैठे हैं, इससे आपका क्या बिगड़ रहा है? और उनका गले में हाथ डाले बैठना और उनका आंख बंद करके बैठना एक पवित्र क्षण भी हो सकता है, प्रेयरफुल भी हो सकता है, प्रेमपूर्ण भी हो सकता है।
और सच तो यह है कि जब दो व्यक्ति प्रेम में एक-दूसरे के निकट होते हैं
तब इतनी पवित्रता जन्मती है, जितनी पवित्रता और कभी नहीं जन्मती है। मगर उनको कहां फुरसत है, वे तो परेशान हुए जा रहे हैं। उन्होंने बगल के डाक्टर से कहा कि यह क्या आचरणहीनता हो रही है, पब्लिक पार्क में? उस डाक्टर ने कहाः आपको क्या मतलब है? और मैं हैरान हूं कि आप बार-बार वहीं क्यों देख

रहे हैं? और आप ज्यादा वहां मत देखिए, नहीं तो पुलिसवाला आकर आपको उठा कर ले जा सकता है। क्या अशिष्ट व्यवहार कर रहे हैं आप? वह उन दो व्यक्तियों की बात है। वह उनकी जिंदगी की बात है। यह उनका लेन-देना है, उससे आपको क्या प्रयोजन है? वह आपको कहां बाधा डाल रहे हैं। वे बेचारे आंख बंद किए चुपचाप न मालूम किस काव्य में खो गए हैं! आप क्यों उपद्रव बीच में बन रहे हैं? आपसे क्या लेना-देना है? उन्होंने कहाः नहीं, यह मेरे बरदाश्त के बाहर है, पब्लिक पार्क में ऐसी आचरणहीनता हो रही है!
अब हमारी बुद्धि है। हम इसको आचरणहीनता कहें? किसको आचरणहीनता कहेंगे? डाक्टर आचरणहीन है, या एक युवक और युवती का एक दूसरे के पास बैठना आचरणहीनता है। अगर एक युवक और युवती का प्रेम करना आचरणहीन है तो यह पृथ्वी ज्यादा दिन नहीं चल सकती। फिर तो यह डूबेगी। फिर इसका बचने का उपाय नहीं है और यह पृथ्वी डूबेगी तो डाक्टर भी नहीं बच सकता, यह भी जाएगा। नहीं, मेरी दृष्टि में यह डाक्टर आचरणहीन है। दूसरे व्यक्तियों के जीवन में इतनी ज्यादा घुसपैठ, आचरणहीनता है। दूसरे व्यक्तियों का अपना जीवन है। उस जीवन में हम इतनी आतुरता से प्रवेश करें, यह हमारे भीतर किसी गहरी कमी का द्योतक है।
मेरी अपनी समझ है--मैंने उस डाक्टर को कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि तुम किसी स्त्री को कभी प्रेम नहीं कर पाए। काश, तुमने किसी स्त्री को प्रेम किया होता! काश, तुम किसी स्त्री के पास बैठ कर किसी स्वप्न में खो गए होते तो तुम्हें आचरणहीनता मालूम न होती। लेकिन तुमने कभी किसी स्त्री को प्रेम नहीं किया। इसलिए तुम्हें आचरणहीनता दिखाई पड़ी है। और तुमने कभी किसी स्त्री को नहीं चाहा इसलिए तुम दूसरे बहाने खोज कर उस लड़की को देखते रहे। वह तुम्हारा देखना, वह तुम्हारा झांकना, वह चोरी से तुम्हारा उसकी तरफ बार-बार रुख करना एकदम चरित्रहीनता का लक्षण है।
हम चरित्र की क्या परिभाषा करते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है। आप हैरान होंगे, हमारे शास्त्रों में जिनमें बड़े-बड़े साधु संन्यासियों ने, बड़े महात्माओं ने किताबें लिखी हैं, उसमें स्त्रियों की भारी निंदा की है और निंदा के साथ-साथ स्त्रियों के एक-एक अंग की रसपूर्ण चर्चा भी की है। असल में साधु-संन्यासी स्त्रियों की निंदा के बहाने उनके अंगों की चर्चा का रस भी ले लेते हैं। वह चर्चा भी साथ चलेगी, वह निंदा भी साथ चलेगी--वह चर्चा भी साथ चलेगी।
कौन है चरित्रवान? चरित्र के हमें सारे आधार बदलने पड़ेंगे। अब तक जिसको हम चरित्र कहते रहे हैं, वह चरित्र कम है, वह दूसरे को दुश्चरित्र सिद्ध करने की चेष्टा ज्यादा है। अब तक जिसको हम आचरण कहते रहे हैं वह आचरण कम है, वह दूसरे को निंदित करने की, नरक भेजने का उपाय और व्यवस्था ज्यादा है। सांझ मैं इस संबंध में मैं थोड़ी बात करना चाहूंगा कि चरित्र क्या है क्योंकि वह भी हमारा जिंदा सवाल है।

मेरी बातों को इतनी शांति प्रेम और से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का पांचवां प्रवचन

भारत के भटके युवक

मेरे प्रिय आत्मन्!
हमारी चर्चाओं का अंतिम दिन है, और बहुत से प्रश्न बाकी रह गए हैं। तो मैं बहुत थोड़े-थोड़े में जो जरूरी प्रश्न मालूम होते हैं, उनकी चर्चा करना चाहूंगा।
एक मित्र ने पूछा है कि कहा जाता है कि भारत का जवान राह खो बैठा है। उसे सच्ची राह पर कैसे लाया जा सकता है?

पहली तो यह बात ही झूठ है कि भारत का जवान राह खो बैठा है। भारत का जवान राह नहीं खो बैठा है, भारत की बूढ़ी पीढ़ी की राह अचानक आकर व्यर्थ हो गई है, और आगे कोई राह नहीं है। एक रास्ते पर हम जाते हैं और फिर रास्ता खत्म हो जाता है, और खड्डा आ जाता है। आज तक हमने जिसे रास्ता समझा था वह अचानक समाप्त हो गया है, और आगे कोई रास्ता नहीं है। और रास्ता न हो तो खोने के सिवाय मार्ग क्या रह जाएगा? भारत का जवान नहीं खो गया है, भारत ने अब तक जो रास्ता निर्मित किया था, इस सदी में आकर हमें पता चला है कि वह रास्ता है नहीं। इसलिए हम बेराह खड़े हो गए हैं। रास्ता तो तब खोया जाता है जब रास्ता हो और कोई रास्ते से भटक जाए। जब रास्ता ही न बचा हो तो किसी को भटकने के लिए जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। जवान को रास्ते पर नहीं लाना है, रास्ता बनाना है। रास्ता नहीं है आज। और रास्ता बन जाए तो जवान सदा रास्ते पर आने को तैयार है, हमेशा तैयार है। क्योंकि जीना है उसे, रास्ते से भटक कर जी थोड़े सकेगा! बूढ़े रास्ते से भटके, तो भटक सकते हैं। क्योंकि अब उन्हें जीना नहीं है। और सब रास्ते--भटके हुए रास्ते भी कब्र तक पहुंचा देते हैं।
लेकिन जिसे जीना है, वह भटक नहीं सकता। भटकना मजबूरी है उसकी। जीना है
तो रास्ते पर होना पड़ेगा, क्योंकि भटके हुए रास्ते जिंदगी की मंजिल तक नहीं ले जा सकते हैं। जिंदगी की मंजिल तक पहुंचने के लिए ठीक रास्ता चाहिए, लेकिन रास्ता नहीं है। मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि युवक नहीं भटक गया है, हमने जो रास्ता बनाया था वह रास्ता ही विलीन हो गया; वह रास्ता ही नहीं है अब। आगे कोई रास्ता ही नहीं है। और अगर हम युवक वर्ग को ही गाली दिए जले जायेंगे कि तुम भटक गए हो, तो वह हमपर सिर्फ क्रुद्ध हो सकता है क्योंकि उसे कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा है और आप कहते हैं भटक गए हो। हमने कुछ रास्ता बनाया था, जो बीसवीं सदी में आकर व्यर्थ हो गया है। हमने एक रास्ता बनाया था। वह रास्ता ऐसा था कि उसका व्यर्थ हो जाना अनिवार्य था।
पहली तो बात यह है: हमने पृथ्वी पर चलने लायक रास्ता कभी नहीं बनाया। हमने रास्ता बनाया था, जैसे बेबीलोन में टॉवर बनाया था कुछ लोगों ने स्वर्ग जाने के लिए। वह जमीन पर नहीं जाता था, वह ऊपर आकाश की तरफ जा रहा था। स्वर्ग पहुंचने के लिए कुछ लोगों ने एक टॉवर बनाया था। हिंदुस्तान ने पांच हजार सालों में जमीन पर चलने लायक रास्ता नहीं बनाया, स्वर्ग पर पहुंचने के रास्ते खोजे हैं। स्वर्ग पर पहुंचने के रास्ते खोजने में हम पृथ्वी पर रास्ते बनाने भूल गए हैं। हमारी आंखें आकाश की तरफ अटक गई हैं। और हमारे पैर तो मजबूरी से पृथ्वी पर ही चलेंगे। बीसवीं सदी में आकर हमको अचानक पता चला है कि हमारी आंखों और पैरों में विरोध हो गया है। आंखें आकाश से वापस जमीन की तरफ लौटी हैं तो हम देखते हैं, नीचे कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि नीचे हमने कभी देखा ही न था।
इस देश मे हमने एक पारलौकिक संस्कृति बनाने की कोशिश की थी। बड़ा अदभुत सपना था, लेकिन सफल नहीं हुआ, न सफल हो सकता था। इस पृथ्वी पर रहने वाले को इस पृथ्वी की संस्कृति बनानी पड़ेगी, पार्थिव। इस पृथ्वी की संस्कृति हम निर्मित नहीं किए।

मैंने सुना है, यूनान में एक बहुत बड़ा ज्योतिषी एक रात एक गड्ढे में गिर गया। चिल्लाया है, बड़ी मुश्किल से पास की किसी किसान औरत ने उसे निकाला है। जब निकाला है तब उस ज्योतिषी ने कहा है कि मां, तुझे बहुत धन्यवाद। मैं एक बहुत बड़ा ज्योतिषी हूं, तारों के संबंध में मुझसे ज्यादा कोई भी नहीं जानता। अगर तुझे तारों के संबंध में कुछ भी जानना हो तो मैं बिना फीस के तुझे बता दूंगा, तू चली आना। मेरी फीस भी बहुत ज्यादा है। उस बूढ़ी औरत ने कहाः बेटे, तुम निश्चिंत रहो, मैं कभी न आऊंगी; क्योंकि जिसे अभी जमीन के गड्ढे नहीं दिखाई पड़ते हैं उसके आकाश के तारों के ज्ञान का भरोसा मैं कैसे करूं?
उस बूढ़ी औरत ने ठीक कहा। और वह ज्योतिषी गिरा इसीलिए गड्ढे में, कि वह रात को आकाश के तारों का अध्ययन करता हुआ चला जा रहा था। पैर भटक गए और वह गड्ढे में गिर गया।
भारत कोई तीन हजार साल से गड्ढे में पड़ा है आकाश की तरफ आंखें उठाने
के कारण। नहीं, मैं यह नहीं कहता हूं कि किन्हीं क्षणों में आकाश की तरफ न देखा जाए, लेकिन आकाश की तरफ देखने में समर्थ वही है जो जमीन पर रास्ता ठीक से बना ले और विश्राम कर सके। वह आकाश की तरफ देख सकता है। लेकिन हम जमीन को भूल कर अगर आकाश की तरफ देखेंगे तो गहरी खाई में गिरने के सिवाय कोई मार्ग नहीं है। लेकिन पूछा जा सकता है कि भारत के जवान ने इसके पहले यह भटकन क्यों न ली? बीसवीं सदी में आकर क्या बात हो गई? रास्ता--मैं कह रहा हूं, तीन हजार साल से हमारी पूरी संस्कृति ने जमीन पर रास्ता ही नहीं बनाया। अगर हम पुराने शास्त्र पढ़ें तो उनमें हमें मिल जाएंगी किताबें, जिनका नाम है, "मोक्षमार्ग", मोक्ष की तरफ जाने वाला रास्ता। लेकिन पृथ्वी पर चलने वाले रास्ते के संबंध में एक किताब भारतीय संस्कृति के पास नहीं है। स्वर्ग जाने का रास्ता भी है, नरक जाने का रास्ता भी है, लेकिन पृथ्वी पर चलने के रास्ते के संबंध में कोई बात नहीं है।
पूछा जा सकता है, आज ही क्यों यह सवाल उठा? इसके पहले जवान ने इनकार क्यों न किया? उसका कारण हैं। हमने एक और तरकीब की थी। हमने एक तरकीब की थी कि हम जवान को जवान होने ही न देते थे। बच्चों की शादियां कर देते थे और जब बच्चों की शादियां हो जाती थीं, वे जिम्मेवार हो जाते थे। सत्रह और अठरह साल का होते-होते लड़का बाप बन जाता था। बाप जवान नहीं हो सकता, बाप बूढ़ा होना शुरू हो जाता है। और जब कोई व्यक्ति बाप बन जाता है तो वह बूढ़ों की तरह सोचने लगता है। हिंदुस्तान में जवान भी नई घटना है, नया फिनोमिना है। हिंदुस्तान में जवान पहले कभी नहीं था। बच्चे थे और बूढ़े थे। और दोनों के बीच में हमने ऐसा तालमेल बिठाया था कि बीच की सीढ़ी को बिल्कुल ही गोल कर दिया था। उसका पता ही नहीं चलता था कि कहां है। आठ और नौ साल के बच्चे की शादी कर देंगे तो जवान कैसे पैदा होगा?
जवान भी बीसवीं सदी की घटना है। क्योंकि अब शादी होती है पच्चीस और छब्बीस वर्ष में। बचपन चला जाता है बारह, तेरह, चौदह साल में। फिर चौदह साल के बाद दस साल का वक्त बचता है जब आदमी बच्चा भी नहीं होता और बूढ़ा भी नहीं होता। यह दस साल का वक्त है जब वह युवा होता है। यह पीढ़ी पहली दफे पैदा हुई है। यंगर जनरेशन नई घटना है। यह कभी थी ही नहीं दुनिया में। और इसलिए उसके साथ नये सवाल आ गए हैं। उस नई पीढ़ी ने पूछना शुरू किया है। उस नई पीढ़ी ने संदेह करना शुरू किया है। उस नई पीढ़ी ने कहा कि हमें पृथ्वी पर रहना है। यह स्वर्ग की बातें बंद करो। हमें जमीन पर रहने का रास्ता बताओ। और जमीन पर रहने का हमारे पास कोई रास्ता नहीं है, इसलिए वह भटक गई है। और अगर आज भारत की नई पीढ़ी पश्चिम का अनुकरण कर रही है तो मजबूरी में; क्योंकि हमारे बापदादों ने उसके लिए कोई रास्ता नहीं बनाया। उसे मजबूरी में दूसरों की तरफ देखना पड़ रहा है। वह मजबूरी है। उसके लिए जवान को दोषी मत ठहराना। और अगर हमने देर की तो शायद हो सकता है कि हम सदा के लिए इमिटेटिव हो जाएं, सदा के लिए हम नकल करने लगें।
हमें जल्दी करनी चाहिए और जमीन के रास्ते अपने बना लेने चाहिए ताकि
हम अपने पैर पर खड़े हो सकें। आज हमें हर चीज के लिए पश्चिम की तरफ देखना पड़ रहा है। हर चीज के लिए हमें उनकी तरफ आंख उठानी पड़ती है। और उसका कारण है।

उसका कारण यह है कि हमारे पास कुछ भी नहीं है। सच यह है कि हमारे मां-बाप हमारे लिए वसीयत में सिवाय अध्यात्म के और कुछ भी नहीं छोड़ गए हैं। अकेले अध्यात्म से जिया नहीं जा सकता। हां, मरना हो तो मरा जा सकता है। अकेले अध्यात्म से जीना नहीं निकलता है। और ध्यान रहे, अध्यात्म की उत्सुकता जवान की नहीं होती है, आमतौर से बूढ़े की होती है। क्योंकि जैसे आदमी मरने के करीब पहुंचता है, वह विचार करने लगता है, मरने के बाद क्या? जवान पूछता है जिंदगी में क्या है? बूढ़ा पूछता है, मरने के बाद क्या है? उनके सवाल अलग हैं, उनके जवाब अलग होंगे। हमारे सारे शास्त्र बूढ़ों के लिए लिखे गए हैं। कोई परीक्षित मरते समय सुनता है। वह बूढ़े के शास्त्र हैं जो पूछ रहा है कि मरने के बाद क्या होगा--स्वर्ग होंगे, नरक होंगे, देवता होंगे, आत्मा बचेगी, नहीं बचेगी, मैं कहां जाऊंगा, नहीं जाऊंगा? वह मरते आदमी के शास्त्र हैं। जिंदा आदमी, जिसे जीना है उसके लिए हमने कौन सा शास्त्र निर्मित किया है? इसलिए हम विज्ञान पैदा नहीं कर पाए। विज्ञान जवान का शास्त्र है, धर्म बूढ़े का शास्त्र है।
तो हमारा जवान जरूर मुश्किल में है, बहुत कठिनाई में है। और मेरी अपनी मान्यता है कि वह करुणा योग्य है, क्रोध के योग्य नहीं। बहुत दया के योग्य है क्योंकि उसको कोई वसीयत नहीं छोड़ गया है। एक अर्थ में हमारा युवक अनाथ है। अनाथ इस अर्थों में कि उसकी जमीन की कोई वसीयत उसके पास नहीं है। उसकी पुरानी पीढ़ियां उसके लिए जीने योग्य, जिंदगी से रस निकालने योग्य, कोई भी तकनीक, कोई भी साइंस नहीं छोड़ गई हैं। हां, उसे एक तरकीब बता दी है कि अगर तुम्हें मरना हो तो मोक्ष जाने का रास्ता है। अभी वह मरना नहीं चाहता है, वह जीना चाहता है--उसके लिए व्यर्थ है। इसलिए मंदिरों में, मस्जिदों में जवान दिखाई नहीं पड़ता। हां, लड़कियों वगैरह के खयाल से कोई जवान पहुंच गया हो तो बात अगल है। लेकिन मंदिर और मस्जिद के लिए जवान नहीं जाता, वहां बूढ़े इकट्ठे हो रहे हैं।
वहां बूढ़े क्यों दिखाई पड़ रहे हैं, उसका कारण है। उसका कारण है, बूढ़े
की उत्सुकता बदल गई। अब वह जिंदा रहने में उत्सुक नहीं है। अब वह ढंग से मरने में उत्सुक है। ठीक है, उसकी उत्सुकता गलत नहीं है। उसकी उत्सुकता की भी तृप्ति होनी चाहिए और उसके चिंतन को भी मार्ग मिलना चाहिए कि मृत्यु के बाद क्या है? लेकिन वह जवान का चिंतन नहीं है। तो हम कठिनाई में पड़ गए हैं। रास्ता नहीं है, रास्ता बनाना पड़ेगा।
कौन बनाएगा यह रास्ता? बड़ी जटिलता का सवाल है क्योंकि बूढ़े विरोध में हैं, वृद्ध पीढ़ी विरोध में है और जवान पीढ़ी अनुभवहीन है। रास्ता कौन बनाएगा? रास्ता बनाने के लिए दो चीजों की जरूरत है--अनुभव की और शक्ति की। शक्ति जवान के पास है, अनुभव बूढ़े के पास है। उन दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं है। रास्ता बनेगा कैसे? रास्ता बनाने के लिए हिंदुस्तान की बूढ़ी पीढ़ी को जवान के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होना पड़ेगा। अपने अनुभव से उसे सचेत करना पड़ेगा, और जवान की शक्ति को नियोजित करना पड़ेगा। लेकिन बूढ़ी पीढ़ी निंदा में संलग्न है। वह सिर्फ निंदा कर रही है, वह सिर्फ गालियां दे रही है कि सब बिगड़ गए हैं। लेकिन यह कहने से कुछ फल नहीं होता। इससे अगर कोई बिगड़ भी गया हो तो उसे कोई सुधरने का मार्ग नहीं मिलता। अगर कोई न भी बिगड़ा हो तो बार-बार कहने से कि बिगड़ गया है, उसके चित्त में बिगड़ने की दिशा पैदा होती है।
नहीं, वृद्ध पीढ़ी को, बहुत की कीमती समय यह है कि, वह अपने सारे अनुभव
पर ध्यान देकर भारत के लिए नया रास्ता बनाने में युवक की शक्ति का नियोजन कर सके। लेकिन यह तभी हो सकता है जब वृद्ध--पुरानी पीढ़ी--नई पीढ़ी की तरफ निंदा से न देखे, करुणा और प्रेम से देखे। लेकिन वृद्ध नाराज है। नाराज वह इसलिए है कि उसकी पुरानी सारी दुनिया अस्तव्यस्त हो गई है। नाराजगी का कारण दूसरा है। नाराजगी का कारण युवक नहीं है। नाराजगी का कारण उसका अब तक का बनाया हुआ सारा ढांचा गिर गया है। जैसे में एक मकान बनाऊं और पूरा मकान गिर जाए और मैं अपने बेटे की पिटाई शुरू कर दूं। मेरा क्रोध तो उस मकान के गिर जाने के लिए है।

पुरानी संस्कृति का पूरा मकान गिर रहा है, गिर गया है। नाराजगी बेटे
पर है और ऐसा लग रहा है कि ये बेटे मकान को गिराए दे रहे हैं। नहीं। मकान, जैसा हमने बनाया था, वह गिरने ही वाला था। हां बेटों ने अब तक उसे सहारा दिया था क्योंकि बेटों को हम बहुत जल्दी बूढ़ा बना देते थें। अब बेटे उसको बचाने में सहायता नहीं दे रहे हैं। गिरा नहीं रहें हैं, सिर्फ बचाने में सहायता नहीं दे रहे हैं। और बूढ़े हाथ कैसे किसी मकान को बचा सकते हैं? वह गिर रहा है। वे बेटों पर नाराज हैं। उस नाराजगी को छोड़ना पड़ेगा। और मेरी दृष्टि में अगर पिछली पीढ़ी नाराजगी को छोड़ दे, तो नई पीढ़ी उसके प्रति आदर से भर सकती है। जो निंदा करे उसके प्रति आदर नहीं हो सकता। नई पीढ़ी का आदर नहीं है पुरानी पीढ़ी के प्रति, क्योंकि पुरानी पीढ़ी सिवाय निंदा के और कुछ भी नहीं कर रही है।
मैं एक घर में जाता हूं। जब भी जाता हूं, वह सज्जन अपने लड़के को सामने लाकर खड़ा कर देते हैं अपराधी की तरह, कहते हैं, देखिए साहब, अभी कितनी उम्र है तुम्हारी? और मुंह सूंघिए, सिगरेट की बास आ रही है। और उस लड़के को सामने खड़ा कर देते हैं। वह आंख झुकाए हुए खड़ा है। अपराधी अनुभव कर रहा है। वह बाप का दुश्मन हुआ जा रहा है। बुढ़ापे में इस पिता को वह ठीक करेगा। छोड़ नहीं सकता है। यह इकट्ठा हो रहा है क्रोध। उन्होंने न मालूम कितनों के सामने उस लड़के को खड़ा किया होगा और भूल से मेरे सामने भी खड़ा कर दिया।
मैंने उनसे पूछाः यह लड़का सिगरेट अभी नहीं पीएगा तो कब पीएगा? उन्होंने कहाः क्या कहा, क्या कहते हैं आप? क्या कहते हैं आप! उस लड़के ने आंख उठा कर मुझे गौर से देखा। पहली दफा एक आदमी आया है कि जिसने सहानुभूति प्रकट की। वह लड़का रात मुझसे अलग से मिलने आया और उसने कहा कि आप मुझे बताएं कि मैं सिगरेट कैसे छोड दूं? मैं भी परेशान हूं। लेकिन मेरे पिता इतने क्रुद्ध हैं कि मैं सिर्फ उनका क्रोध तोड़ने के लिए, और उनके खिलाफ बगावत करने के लिए सिगरेट पीए चला जा रहा हूं। और मैं पीता रहूंगा। वे कितना इनकार करते हैं, देखते हैं। चोरी से पीऊंगा, छिप कर पीऊंगा, लेकिन मैं पीता रहूंगा। मेरे पास और कोई उपाय नहीं है इनकार करने का, तो मैं सिगरेट पीकर डिनाई कर रहा हूं, अपने पिता को इनकार कर रहा हूं। लेकिन आपको कैसे इनकार करूं? आपने कहा कि यह उम्र है पीने की, तो मैं पछने आया हूं, सच में सिगरेट पीने में कोई हर्ज नहीं है? मैं छोड़ना चाहता हूं, लेकिन मेरे पिता मुझे नहीं छोड़ने दे रहे हैं।
पिताओं को पता नहीं है कि उनकी निंदा उनके बच्चों में उनके प्रति घृणा पैदा करती है, सम्मान नहीं। फिर जब घृणा पैदा करती है और आदर नहीं मिलता तो वे कहते हैं, बेटे आदर नहीं दे रहे हैं। नई पीढ़ी अनादर से भरी है। गलत हे यह बात। मेरे अनुभव में ऐसा नहीं आया। सच तो यह है कि नई पीढ़ी बहुत आदर देना चाहती है, लेकिन आदर योग्य लोग खोजने मुश्किल हैं। नई पीढ़ी आदर देने को आतुर है, लेकिन न गुरु आदर योग्य मालूम पड़ता है, न पीता आदर योग्य मालूम पड़ते हैं। न मां आदर योग्य मालूम पड़ती है। क्यों? क्योंकि पिता, मां और गुरु इस तरह के झूठ बोल रहे हैं जिनको बच्चे बहुत जल्दी आविष्कृत कर लेते हैं।
पिता बच्चे को समझा रहा है कि सिगरेट पीना बुरा है, और पिता खुद सिगरेट पी रहा है। कितनी देर तक यह बात छिपाई जाएगी? पिता बेटे को कह रहा है कि गाली देना बुरा है, और पिता खुद गालियां दे रहा है। और पिता बेटे को कह रहा है कि दूसरे की स्त्रियों को मां-बहन समझना चाहिए, और पिता खुद नहीं समझ पा रहा है। लड़के इसका पता लगा लेते हैं, यह बहुत देर नहीं लगती। लड़के बहुत बुद्धिमान हैं, उनको दिखाई पड़ने लगता है कि क्या हो रहा है?
यह जो सब उन्हें दिखाई पड़ता है तो आदर असंभव हो जाता है। उन्हें आदर योग्य कोई भी नहीं मिलता। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि नई पीढ़ी पिता के कारण ही परमात्मा तक को मानने से इनकार कर रही है क्योंकि परमात्मा सदा परमपिता की तरह ही सोच गया है। जब पिता धोखेबाज निकला तो परमपिता परम धोखेबाज हो सकता है। पुरानी पीढ़ियों ने पिता के आदर के कारण ही परमात्मा को भी आदर दिया था इसलिए उसको हम परमपिता, गॉड-फादर और सब कहते थे। पिता को इतना आदर था कि ऐसा लगता था, सारा जगत भी किसी पिता के प्रोटेक्शन में है।

लेकिन पिता गया कि परमपिता को भी उनके पीछे विदा होना पड़ रहा है। वह नहीं बच सकते। नहीं, पुरानी पीढ़ी को बहुत सोच-समझ की जरूरत है कि वह नये बच्चों का आदर कैसे उपलब्ध कर सकें। आदर के योग्य पात्र होने की जरूरत है।
मैं अभी एक शिक्षकों के सम्मेलन में गया था। वहां सबसे बड़ा सवाल यही था। सब शिक्षकों के मन में यही सवाल है कि विद्यार्थी शिक्षक को आदर नहीं देते, आदर मिलना चाहिए। पहली तो बात है कि आदर मांगने की इच्छा बहुत आदर योग्य नहीं है। क्योंकि जब मैं कहता हूं कि मुझे आदर मिलना चाहिए तभी मैं अपात्र और अनाधिकारी हो जाता हूं। जो आदर मिलने योग्य है, उसे आदर मिलता है, वह चाहता नहीं, वह मांगता नहीं। शिक्षक बहुत परेशान है, आदर मिलना चाहिए। असल में आदर मिलने चाहिए की आकांक्षा तभी पैदा होती है, जब भीतर हम आदर योग्य नहीं रह जाते। उनमें से एक शिक्षक ने वहां कहा कि पुराने शास्त्रों में लिखा है कि गुरु को आदर दिया जाना चाहिए। मैंने उनसे कहाः आपने या तो शास्त्र को गलत पढ़ा होगा, या शास्त्र में गलत लिखा होगा। फिर से शास्त्र लिखना पड़ेगा। उन्होंने कहाः क्या मतलब आपका? मैंने कहाः मैं यह नहीं कहता कि गुरु को आदर दिया जाना चाहिए; मैं कहता हूं, जिसको आदर देना पड़ता है, वह गुरु है। गुरु को आदर दिए जाने का सवाल नहीं है, जिसे आदर देना पड़ता है वह गुरु है। हमें परिभाषा बदल देनी पड़ेगी। जो आदर उपलब्ध कर लेता है वह गुरु है। गुरु को आदर देने का कोई सवाल नहीं है। गुरु कोई प्रोफेशन थोड़े ही है, कोई धंधा थोड़े ही है कि आदर देने की बात कोइ मजबूरी कर दी जाए, कानून बना दिया जाए कि गुरु को आदर हो। वह एक प्रेम का हार्दिक नाता है। पिता भी अनादृत हुआ है, दुखी है। दुख स्वाभाविक है। लेकिन उसके कारण नहीं खोज रहा है। उसके कारण खोजेगा तो पाएगा कि अनादर के कारण अपने पास हैं। अभी मैं एक घर में रुका। उनके पिता ने कहा कि मेरे लड़के को आप समझाइए। वह किसी लड़की के प्रेम में पड़ा हुआ है और मैं नहीं चाहता कि इस लड़की से संबंध हो। और मैं हैरान हुआ, क्योंकि ये जो पिता हैं, इन्होंने भी प्रेम-विवाह किया था। तो मैंने उनसे कहाः आप यह क्या कह रहे हैं? तो उन्होंने कहा हमारी बात और थी। सब पिता यही सोचते हैं कि हमारी बात और थी। ये लड़के भी कल पिता होकर यही सोचेंगे कि हमारी बात और थी।
नहीं, इस तरह नहीं चलेगा। इस तरह नहीं चल सकता है। नया युवक भटक नहीं गया है, पुरानी पीढ़ी मार्ग देने में असमर्थ है। अगर हम यह असमर्थता स्वीकार कर लें तो मार्ग बन सकता है, कोई कठिनाई नहीं है। इतना स्वस्थ, इतना बुद्धिमान, इतना विचारशील युवक कब था पृथ्वी पर? यह पहला मौका है, जो सौभाग्य बनना चाहिए वह दुर्भाग्य बन रहा है। इतना विचारशील युवक कब था पृथ्वी पर? कभी भी नहीं था। जो सौभाग्य बन सकती है घटना, वह दुर्भाग्य में बदलती जा रही है।
बुद्धिमत्ता खतरनाक है एक अर्थों में, कि अगर उसे ठीक मार्ग न मिले तो विध्वंसात्मक हो जाती है। घर में दो बेटे हों, एक बेटा अगर गोबरगणेश है तो आज्ञाकारी होगा, सदा आज्ञाकारी होगा, क्योंकि आज्ञा तोड़ने के लिए थोड़ी बुद्धि की जरूरत पड़ती है। हां कहने के लिए किस बुद्धिमत्ता की जरूरत है? न कहने के लिए बुद्धिमत्ता की जरूरत है, क्योंकि न कहने के लिए कारण भी बताने पड़ेंगे, तर्क भी देना पड़ेगा। न कहने के लिए खड़ा होना पड़ेगा, पिता से टक्कर भी लेनी पड़ेगी। तो गोबरगणेश बेटा होगा तो चुपचाप राजी हो जाता है कि हां, पिता खुश होते हैं। बहुत प्रसन्नता की बात है, लड़का बड़ा आज्ञाकारी है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि लड़का बिल्कुल मरा हुआ है, लड़का जिंदा नहीं है।
अगर लड़के में थोड़ी बुद्धिमत्ता होगी तो हजार सवाल उठाएगा, सब बातों
पर राजी नहीं हो जाएगा, इनकार करेगा। और पिता को अगर खयाल हो कि मैं सर्वज्ञ हूं तो कष्ट शुरू हो जाएगा। लेकिन कोई सर्वज्ञ नहीं है, पिता होने से कोई सर्वज्ञ नहीं होता। असल में पिता होना इतना सरल है कि उसके लिए बुद्धिमत्ता की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती। पिता होने के लिए कौन सी बुद्धिमत्ता की जरूरत है? पिता होना इतनी सरल घटना है, इतनी टेक्नीकल कि उसके लिए किसी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। लेकिन पिता होने के साथ एक अहंकार जुड़ा रहा है अब तक कि मैं सब जानता हूं।

नहीं, ये बच्चे अब राजी नहीं हो सकते कि आप सब जानते हैं। यह झूठ है बात। अब पिता को जो वह जानता है, उतना ही कहना पड़ेगा, इतना मैं जानता हूं। जो नहीं जानता वह कहना पड़ेगा कि नहीं जानता हूं। और जीवन के सारे सत्य खोल देने पड़ेंगे तो बाप और बेटे के बीच सेतु बन सकता है। लेकिन बाप और बेटे के बीच कोई सेतु नहीं मालूम होता है क्योंकि डॉयलाग ही नहीं होता है। उनके बीच कोई चर्चा ही नहीं है। ऐसा नहीं है कि बाप अपने बेटों को बिठा कर बात कर रहा हो जिंदगी के मसलों की। अपनी तकलीफें बता रहा हो, अपनी भूलें बता रहा हो, अपनी जिंदगी की मुसीबतें बता रहा हो, नहीं, ऐसा नहीं है। बाप एक सख्त रुख रखता है कि मैं सब जानता हूं, मैंने कभी भूल नहीं की, मैं सदा ठीक हूं।
अन्यायपूर्ण है यह बात। इससे बेटों से संबंध बनेगा नहीं, टूट जाएगा।
और इसका रिएक्शन, प्रतिक्रिया यह होगी कि बेटे यह समझेंगे कि कुछ भी नहीं जानता है। नहीं, इसे तोड़ना पड़ेगा। और इसे तोड़ने में कौन शुरुआत करे? बेटे शुरुआत करें कि पिता शुरुआत करे? मैं मानता हूं, बेटे शुरुआत करें--यह जरा मुश्किल है। बेटे आखिर बेटे हैं, बच्चे आखिर बच्चे हैं। उनसे हम वृद्धों से ज्यादा बुद्धिमानी की अपेक्षा एकदम से करें तो कठिन है। नहीं, पिता को ही शुरुआत करनी पड़ेगी। उसे मार्ग बनाना पड़ेगा। बेटे से संबंध और मित्रता जोड़नी पड़ेगी। तो हम जिंदगी के संबंध में सवाल उठा सकते हैं, सीख सकते हैं, हल कर सकते हैं।
नई पीढ़ी भटक नहीं गई हैं, नई पीढ़ी सिर्फ अतिरिक्त शक्ति से भरी हुई सामने खड़ी है और हम कोई मार्ग नहीं खोज पा रहे हैं। जैसे कोई झरने में ताकत हो, पानी फूट पड़ने को हो और कोई मार्ग न मिलता हो, पानी सब तरफ से बिखर जाता हो, व्यर्थ हो जाता हो। जैसे आकाश में बिजली चमकती है और हम बिजली को मार्ग न दे सकें तो सिर्फ चमकती है और व्यर्थ हो जाती है। युवकों के पास बड़ी शक्ति है, होनी ही चाहिए। वह बड़ी शक्ति बिल्कुल अनियोजित भटक रही है। उसे कोई नियोजन नहीं है, कोई दिशा नहीं है। दिशा-हारा युवक खड़ा है, लेकिन जिम्मेवार युवक नहीं है। और ध्यान रहे, यह मैं किसी खास पीढ़ी से नहीं कर रहा हूं। आज जो युवक हैं, कल वे पिता हो जाएंगे और वे भी इसी तरह अपने बेटों को जिम्मेवार ठहराने लगेंगे। वही गलती फिर शुरू हो जाएगी।
नहीं, पुरानी पीढ़ी को बहुत शांति से विचार करना चाहिए। क्रोध छोड़ कर बच्चों के निकट आना पड़ेगा और जिंदगी कैसे बने, उसकी दिशाएं सोचनी पड़ेंगी, और साथ खड़े होना पड़ेगा। आज्ञा देने वाले की तरह नहीं, सहयात्री की तरह, एल्डर ब्रदर्स की तरह। पिता भी अब बड़े भाई से ज्यादा नहीं है। उसी भांति उसे खड़ा होना पड़ेगा। पुरानी प्रिस्टिज और पुराने आदर सम्मान का केंद्र अब नहीं चल सकता है। वह बात गई। उस बात को भूल जाना चाहिए। वह इतिहास का अध्याय समाप्त हो गया है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि क्या विद्यार्थी राजनीति में भाग लें?

सवाल बहुत महत्वपूर्ण है, और राजनीतिज्ञ दो तरह के उत्तर देंगे। अगर राजनीतिज्ञ के हित में होगा तो वह कहेगा, राजनीति में भाग लेना चाहिए। जैसे आजादी के पहले कांग्रेस के नेता कहेंगे कि राजनीति में भाग लेना चाहिए। और आजादी के बाद कांग्रेस के नेता कहेंगे विद्यार्थी को राजनीति में भाग कभी नहीं लेना चाहिए। जो पार्टी हुकूमत में है वह कहेगी, राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। जो पार्टी हुकूमत में नहीं है, वह कहेगी राजनीति में भाग लेना चाहिए। राजनीतिज्ञ अपना हित देख कर चलता है। और राजनीतिज्ञ देखता है कि जब युवक की ताकत मिलने से उसे फायदा होगा तो वह कहता है कि भाग लो। और जब उसे दिखता है कि अब हम ताकत में आ गए, और युवक ने अगर भाग लिया तो वह कुर्सी से नीचे उतार सकता है। वह कहता है, भाग मत लो। विद्यार्थियों का काम युनिवर्सिटी में अध्ययन करना है।
मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं और मैं मानता हूं कि चाहे सत्ता में, चाहे सत्ता के बाहर जो लोग भी कहते हैं कि राजनीति में भाग लो, उनके कहने में भी राजनीति है। और जो कहते हैं, राजनीति में भाग मत लो, उनके इस कहने

में भी राजनीति है। ये दोनों ही पोलिटिकल हैं--दोनों ही वक्तव्य। लेकिन मेरी दृष्टि यह है कि विद्यार्थी जिंदगी की तैयारी कर रहा है, उसे जिंदगी में अभी उतरना नहीं चाहिए, तैयारी करनी चाहिए। राजनीति को समझना चाहिए पूरी तरह। राजनीति में भाग लेने का अभी कोई अर्थ नहीं है। राजनीति को समझना चाहिए ताकि जब वह कल भाग लेने की स्थिति में आए तो उसका शोषण न किया जा सके। राजनीतिज्ञ उसका शोषण न कर पाएं। लेकिन गांधी जी ने एक गलत आदत इस मुल्क में डाली।
गांधी जी पहले आदमी हैं जो विद्यार्थी को राजनीति में लाए। रवींद्रनाथ ने विरोध किया था, लेकिन रवींद्रनाथ की कौन सुनता! बल्कि रवींद्रनाथ को लोगों ने देशद्रोही कहा कि यह आदमी देशद्रोही है। गांधी जी ने कहा कि विद्यार्थी छोड़ दें युनिवर्सिटी, और कालेज छोड़ कर आजादी की लड़ाई में आ जाएं। रवींद्रनाथ ने कहाः यह बहुत गलत बात सिखा रहे हैं आप। क्योंकि एक बार विद्यार्थी युनिवर्सिटी को छोड़ कर बाहर आ जाएगा, तो भीतर ले जाना फिर बहुत मुश्किल पड़ेगा। अब मुश्किल पड़ रहा है। लेकिन लोगों ने कहा कि रवींद्रनाथ देशद्रोही है। गांधी जी देश-प्रेम की बातें कर रहे हैं, विद्यार्थी को अभी पढ़ने का वक्त नहीं है। जब देश गुलाम है तो पढ़ाई कैसी! लड़कों को बाहर आ जाना चाहिए। लड़के बाहर आ गए और जब सबे वह बाहर आए हैं तब से उन्होंने भीतर जाने का नाम ही नहीं लिया है।
आजादी तो आ गई, अब वे भीतर नहीं जाते। अब वे लड़के यह कहते हैं कि अब हमें समाजवाद लाना है। कोई लड़का कहता है, हमें साम्यवाद लाना है, कोई कुछ और कह रहा है। वह कह रहा है, पढ़ना-लिखना कैसा? जब तक साम्यवाद न आ जाए, जब तक समाजवाद न आ जाए? अब पढ़ना-लिखना कभी नहीं हो सकता। एनीबीसेंट ने गांधी जी का विरोध किया तो एनीबीसेंट की सारी इज्जत खतम हो गई। जनता बहुत अदभुत है। एनीबीसेंट की सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई क्योंकि उसने कहा कि यह बात गलत है। विद्यार्थी को विश्वविद्यालय के बाहर लाना बहुत महंगा काम है। आजादी के लिए लड़ने के लिए और कोई नहीं है, विद्यार्थी हैं सिर्फ? यह इतना बड़ा मुल्क है, सिर्फ विद्यार्थी ही आजादी के लिए लड़ने के लिए है? लेकिन गांधी जी विद्यार्थीयों को बाहर ले आए।
असल में गांधी जी तो शिक्षा के विरोधी थे। उन्होंने अपने बेटों को पढ़ाया-लिखाया नहीं, सबकी जिंदगी खराब की। उनके बड़े बेटे ने इसीलिए बगावत की, और उनके बड़े बेटे ने लिखा कि हमारी जिंदगी तुम खराब कर रहे हो। गांधी जी से उसने कहा कि तुम खुद तो पढ़-लिख गए हो और हमें पढ़ा-लिखा नहीं रहे हो। तो गांधी जी कहते थे कि बुनियादी शिक्षा काफी है। बुनियादी शिक्षा से एक आदमी ठीक अर्थों में आदमी ही नहीं बन सकता। बुनियादी शिक्षा का मतलब है, अशिक्षित रहने का उपाय। बुनियादी शिक्षा का मतलब है, चरखा चलाना सीख लो, तकली चलाना सीख लो, जूता सीना सीख लो, कपड़ा बुनना सीख लो, काम पूरा हो गया। फिर आइंस्टीन कैसे पैदा होगा? और फिर अणु-शक्ति कौन खोजेगा और चांद पर कौन पहुंचेगा? अभी तक चरखे पर बैठ कर चांद पर पहुंचने का कोई उपाय तो निकला नहीं। नहीं, लेकिन इतना काफी है। गांधी जी मानते थे, शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। गांधी जी समझते थे, यह शिक्षा बहुत बड़ा रोग है, तो ठीक था कि उन्होंने लोगों को शिक्षा के बाहर ले आए और वे विद्यार्थी अब तक नहीं गए। और हिंदुस्तान की प्रतिभा को भारी नुकसान पहुंच रहा है।
मैं विद्यार्थियों से कहना चाहूंगा, उनके सामने सबसे बड़ा सवाल है, देश की प्रतिभा में रोज नये चांद लगाना। देश की प्रतिभा कितनी निखरे, इसके लिए देश उनको पच्चीस वर्ष तक भोजन की, कपड़े की सारी व्यवस्था कर रहा है। उनसे देश और कोई अपेक्षा नहीं करता। उनसे सिर्फ एक अपेक्षा करता है कि वह देश की प्रतिभा को ऊंचाइयों पर ले जाएं। गौरीशंकर तक पहुंचा दें, शिखरों को छुआ दें। दुनिया में कोई प्रतिभा उनसे आगे न हो। पूरा देश उनके लिए मेहनत करके इस आशा से पच्चीस वर्ष सुरक्षित कर रहा है, और वह--वह अगर राजनीतिक नेताओं के पीछे नारेबाजी में लगे हैं और झंडे लेकर जयजयकार कर रहे हैं तो वे देश के साथ बहुत नुकसान की बात कर रहे हैं, और अपने साथ भी नुकसान की बात कर रहे हैं।

मैं विद्यार्थियों के राजनीति में भाग लेने का एकदम विरोधी हूं। इसलिए विरोधी हूं कि विद्यार्थी का मतलब ही खत्म हो जाता है। हां, विद्यार्थी राजनीति समझे, और ठीक से समझे ताकि कल जब वह पच्चीस साल का होकर युनिवर्सिटी के बाहर आए और जिंदगी में उतरे, तो उसे कोई दो कौड़ी के आदमी राजनीति में धोखेबाजी न कर सकें। कोई भी मुल्क के ऊपर हावी न हो सकें। लेकिन, जो हुकूमत में नहीं हैं वे राजनीतिज्ञ उसको कहते रहेंगे कि राजनीति में आओ। उसे लगाते रहेंगे। आखिर उनकी इतनी आतुरता विद्यार्थी के प्रति क्यों है? उसका कारण है कि विद्यार्थी शक्ति का स्रोत है। विद्यार्थी जिसके साथ खड़ा हो जाए वह गलत हो कि सही, उसके पास शक्ति उपलब्ध हो जाती है। इसलिए जवान का शोषण हमेशा किया जाता रहा है। चाहे कोई भी मूवमेंट हो, आंदोलन हो, जवान को पकड़ने की कोशिश की जाती है। हिटलर ने नाजी पार्टी बनाई, तो उसने दूसरों की फिकर न की। वह छोटे-छोटे बच्चों और जवानों के पास गया। उसने उनको पकड़ने की कोशिश की क्योंकि कल वे जवान होंगे, कल उनके हाथ में ताकत आएगी और फिर उनके द्वारा सब कुछ करवाया जा सकता है।
सब राजनीतिज्ञ उत्सुक हैं युवकों में, लेकिन युवकों को राजनीतिज्ञों में उत्सुकता बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए। हां, राजनीति में उत्सुकता लेनी चाहिए, लेकिन इस हिसाब से कि हम समझ पाएं। भाग लेने का कोई सवाल नहीं है। भाग लेने का वक्त आएगा। इतनी जल्दी भी क्या है? भाग लेने का वक्त जल्दी आ जाएगा। उसके पहले बुद्धि परिपक्व हो, हम ठीक से समझ पाएं देश का हित क्या है, अहित क्या है, जगत की व्यवस्था क्या है? कुछ भी हम नहीं समझ पा रहे हैं। अगर हिंदुस्तान का विद्यार्थी राजनीति ठीक से समझे तो बहुत हैरान होगा। हिंदुस्तान में राजनीति के नाम से क्या हो रहा है, बहुत अजीब बात है। हिंदुस्तान का कांस्टीट्यूशन अगर हम उठा कर देखें तो जिसको पहले भानुमती का पिटारा कहते थे, वही है। सारी दुनिया के सारे कांस्टीट्यूशंस में से चुन कर जो भी ठीक मालूम पड़ौ, इकट्ठा कर लिया है। जैसे कि बिल्ली की आंख अच्छी लगी तो आंख ले ली, कुत्ते की टांग अच्छी लगी तो टांग ले ली, सब इकट्ठा कर लिया, कौवे के पंख अच्छे लगे तो पंख ले लिए। अब एक जानवर बना है जिसमें कोई जान ही नहीं है। और वह कोई जानवर भी नहीं है। भगवान भी नहीं पहचान सकता है कि यह कौन है? राजनीतिक बोध हमारा बहुत कम है, अत्यंत कम है। वह राजनीतिक बोध हिंदुस्तान को कौन देगा? हिंदुस्तान में आने वाली पीढ़ी अगर राजनीति को ठीक से समझती है तो वह बोध पैदा होगा। कैसा दुर्भाग्य है कि एक राजनीतिक पार्टी खड़ी होती है तो चुनाव चिह्न पर भी जीत जाती है। चिह्न बहुत महत्वपूर्ण है। गावों में जाकर समझाया जा सकता है कि अगर बैल न रहेंगे तो तुम खेती कैसे करोगे? और बेचारा किसान सोचता है कि बात तो ठीक है, अगर बैल न रहे तो खेती कैसे करेंगे? बैल जोड़ी को वोट देनी चाहिए।
जहां राजनीतिक चेतना इतनी कम है वहां हिंदुस्तान के युवकों में राजनीतिक चेतना में ठीक निष्णात होने की जरूरत है। राजनीति में भाग जितना जल्दी आप लेंगे, उतने अपरिपक्व होंगे। रुकें, अध्ययन करें, जानें, पहचानें समझें, चारों तरफ की जिंदगी को देखें। दुनिया का इतिहास देखें, दुनिया की आज की व्यवस्था देखें और सोचें कि इस देश के लिए हमें क्या करना है। कल वक्त आएगा, उसके लिए तैयार हो जाएं। लेकिन अगर आज आप कूद जाते हैं, तो सिर्फ आपका शोषण होगा, और कुछ भी नहीं हो सकता है। विद्यार्थी राजनीति में भाग लेंगे, देश का दुर्भाग्य ही हो सकता है, सौभाग्य नहीं।
लेकिन राजनीतिज्ञ चाहते हैं। कुछ चाहते हैं कि भाग लो, कुछ चाहते हैं
कि मत लो; लोकिन वे दोनों की राजनीतिक चालें हैं। जो आज कहता है मत लो, अगर कल अपदस्थ हो जाएगा तो वह कहेगा, लो। और जो आज कहता है राजनीति में भाग लो, कल अगर हुकूमत में पहुंच जाएगा, वह कहेगा, बस अब ठीक है, काम पूरा हो गया, अब तुम पढ़ने जाओ। अब तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।
नहीं, इन दोनों राजनीतिज्ञों से सावधान हो जाने की जरूरत है। हिंदुस्तान को राजनीतिज्ञों से सावधान होना ही पड़ेगा, अन्यथा हिंदुस्तान का राजनीतिज्ञ हिंदुस्तान को रोज नरक में ले जाएगा। वह यात्रा करवा रहा है। बीस साल में उसने बड़ी कुशलता से यह कार्य किया है। आगे भी वह अपनी

कुशलता बढ़ाए चला जा रहा है। मुल्क को नरक में ले जाने के लिए उसकी कुशलता बढ़ती चली जा रही है।
कौन इसे रोकेगा? असल में हम इतने दिन गुलाम थे कि हमारा कोई राजनीतिक बोध--पोलिटिकल कांशसनेस नहीं है, इसलिए हम नारेबाजी से जीते हैं। नारा पकड़ जाए, बस! फिर बात खत्म हो जाती है। फिर हम बहुत गहरे कारणों में नहीं उतरते कि क्या कारण होगा! क्या करने से हित होगा, अहित होगा, वह सब हम नहीं सोचते। हिंदुस्तान आजाद हुआ, अगर हममें राजनीतिक चेतना होती तो जो लोग जेल गए थे, आजादी की लड़ाई लड़ी थी, झंडा उठा कर क्रांति की थी, हम कभी भी उनके हाथ में सत्ता न देते, क्योंकि जेल जाना एक तरह का क्वालिफिकेशन है, सत्ता में होना बिल्कुल दूसरी तरह की योग्यता चाहिए। जेल जाना योग्यता नहीं है, सत्ता में होने की। लेकिन हमने कहा कि जो जेल गए हैं वे महान हैं। बिल्कुल, निश्चित महान हैं, लेकिन जेल जाने में महान हैं। उनको सत्ता देना खतरनाक भी हो सकता है। जो आदमी जिंदगी के बीस साल जेल में गुजारे, उसके हाथ में राजनीति की पूरी बागडोर सौंप देनी महंगी पड़ सकती है--और महंगी पड़ी। इंग्लैंड में एक चेतना है राजनीति की। मुल्क युद्ध में गया, चर्चिल
को उन्होंने बुला लिया कि आ जाओ, सम्हाल लो। क्योंकि वे जानते हैं कि युद्ध में चर्चिल कुशल है। युद्ध खत्म हुआ, फिर उन्होंने नहीं कहा कि चर्चिल हमारे राष्ट्रपिता हैं, अब उनको हम कभी न छोड़ेंगे। अब तो तुम रहो। युद्ध खत्म हुआ, उन्होंने चर्चिल को ऐसे विदा कर दिया कि जैसे पता ही नहीं चला कि चर्चिल ने कुछ बड़ा काम किया हो। चर्चिल ने इतना बड़ा काम किया जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है, लेकिन चर्चिल को चुपचाप विदा कर दिया। क्योंकि जो युद्ध में योग्य था वह कोई राष्ट्र के निर्माण में योग्य होगा, यह जरूरी नहीं है।
हिंदुस्तान में एक राजनीतिक बोध नहीं है। अगर एक आदमी ने जाकर मजदूरों के पैर दबाए, कोढ़ियों की सेवा की--बहुत अच्छा काम किया, उनके फोटो छापो, उनको भारत-रत्न की पदवियां दे दो लेकिन कृपा करके उनको सत्ता मत दें देना। एजुकेशन मिनिस्टर मत बना देना। उपद्रव कर देंगे वह। उपद्रव हो ही जएगा! ऐसी हालत है इस वक्त देश में कि, जिनका शिक्षा से कोइ संबंध नहीं हैं वह शिक्षा मंत्री हैं। लेकिन... जिन्होंने कभी किचन में पैर नहीं रखा, वे खाद्यमंत्री बने हुए हैं! कोइ मतलब नहीं हैं। जिन्होंने कभी सोचा नहीं कि भोजन क्या बला है, वे खाद्यमंत्री होंगे। क्यों? उनकी योग्यता यह है कि वे दस दफा जेल में गए। कुछ समझ में नहीं आता। दस दफा जेल में जाने से किसी को डाक्टर बनाइएगा? दस दफे जेल में जाने से कोई सर्जन बन जाएगा? लेकिन दस दफा जेल में जाने से वह मंत्री बन सकता है। मंत्री क्या सबसे अयोग्य काम है? इसके लिए कोई योग्यता की जरूरत नहीं है?
इस वक्त हिंदुस्तान में अगर चपरासी भी होना हो तो एक विशेष योग्यता
की जरूरत है। लेकिन प्रधानमंत्री भी मुल्क का होना हो तो किसी योग्यता की कोई जरूरत नहीं है। सबसे अयोग्य काम, जिसके लिए शिक्षित होने की, योग्य होने की, किसी तरह के विशेष ज्ञान की कोई जरूरत नहीं है, वह राजनीति है। इसलिए राजनीति अशिक्षित, अयोग्य, जो कुछ भी न कर सके, सब तरह से पंगु, बुद्धिहीन, उन सबका धंधा बन गया है। उनका अड्डा वहां खड़ा हो गया है। इससे मुल्क को बचाना पड़ेगा।
आज अजीब हालत है। जो सोच सकते हैं, विचार सकते हैं उनकी कोई आवाज नहीं है। जो जोर से चिल्ला सकता है, मुक्का पटक कर टेबल बजा सकता है, दस-पांच आदमियों को किसी भांति राजी कर सकता है अपने को कि ये बाबूजी हैं, पिताजी हैं कहने के लिए, वह आदमी जीत जाएगा। वह मुल्क में ताकत में पहुंच जाएगा। वह फिर बैठ जाएगा वहां। और एक अजीब जाल है जो बहुत हैरान करनेवाला है। दिल्ली में मैं होता हूं, देख कर बड़ी हैरानी होती है। बड़े नेताओं से मिलना होता है तो बड़ी हैरानी होती है कि नेता का बड़ा होना क्या जरूरी रूप से बुद्धि का छोटा होना होता है। शरीर तो नेताओं के जरूर बड़े हो गए हैं। और शरीर फैलते जा रहे हैं, अत्यंत कुरूप और बेढ़ंगे चले होते जा रहे हैं, लेकिन बुद्धि भीतर सिकुड़ती जा रही है। बुद्धि का कोई पता नहीं चलता।

एक बड़े नेता के घर में मैं मेहमान था। वे मेरे साथ यात्रा कर रहे थे, फिर कहीं हम रुके थे। तो सुबह-सुबह दूध के लिए घर वालों ने पूछा। तो उन्होंने कहाः मैं गाय का ही दूध पीता हूं, भैंस का नहीं पीता। मैंने कहाः क्या हुआ? उन्होंने कहा कि भैंस का दूध पीने से बुद्धि खराब हो जाती है। तो मैंने कहाः उसके लिए कम से कम बुद्धि होनी तो चाहिए, तभी खराब हो सकती है। आप बेफिकर पीओ, आपको कोई पीने में डर नहीं होना चाहिए। कोई डर की जरूरत नहीं है।... मगर आप हंसे, वे हंसे भी नहीं। उसके लिए भी समझने की तो बुद्धि चाहिए न? वे मुझे मुंह बाके देखते रह गए कि मैं क्या कह रहा हूं?
एकदम बुद्धिहीन नेतृत्व मुल्क के ऊपर बैठ रहा है। कौन उसे अलग करेगा? आने वाले दस वर्षों में देश की राजनीतिक चेतना विकसित हो तो यह हो सकता है। स्पष्ट रूप से राजनीतिक चेतना विकसित होनी चाहिए। बहुत हैरानी का मामला हुआ है, लेकिन चारों तरफ घटित हो रहा है। और इसे कैसे रोका जाए? युवकों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, लेकिन राजनीति पर गहरी नजर रखनी चाहिए। समझना चाहिए, पहचानना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए। जब वह कल जिंदगी में भाग लेने आएं तो जो भूल पिछले बीस सालों में हमने की है वह आगे न हो--इसका बोध, इसकी मेहनत, इसका श्रम उन्हें उठाना है। लेकिन अगर वे नारेबाजी में लगे, और नेताओं के स्वागत करने में लगे, और बाजार में शोर-गुल मचाने में लगे, और वोट देने और दिलवाने में लगे तो यह राजनीतिक बोध कौन विकसित करेगा? नहीं, फिर यह नहीं हो सकेगा।
देश के युवक के सामने बड़ा सवाल है राजनीतिक चेतना को देश में उन्नत करने का। वह हमारी बिल्कुल नहीं है। एक हजार साल तक गुलाम रहने का परिणाम है कि हमने राजनीतिक बोध खो दिया। हम धीरे-धीरे यही कहने लगे, कुछ भी हो, हमें क्या मतलब है? अपना खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता सब ठीक है। बाकी जो हो रहा है होने दो। "कोई नृप होय हमें का हानी!" हमारा ऐसा भाव होता चला गया। कोई भी हो, होता रहे।
अब यह नहीं चल सकता क्योंकि अब सारे देश की जिंदगी हमारे निर्णय पर निर्भर है। और हम निर्णय लेने वाले कितने बुद्धिमान हैं, इस पर देश का भविष्य निर्भर है।

एक दूसरे युवक ने पूछा है--जरूरी सवाल है, और आज की जिंदगी में महत्वपूर्ण सवाल है। उन्होंने पूछा है कि आज की अर्धनग्न कालेजियन लड़कियों के बारे में आपका क्या खयाल है?

सवाल महत्वपूर्ण है। सवाल इसलिए महत्वपूर्ण है कि कपड़े हमें लगते हैं
कि बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं लेकिन महत्वपूर्ण हैं। वे हमारे व्यक्तित्व को निर्मित करते हैं। दो-तीन बातें ध्यान में रखनी जरूरी हैं।। पहली बात तो यह ध्यान में रखनी जरूरी है कि जैसे-जैसे शरीर स्वस्थ होता है और अनुपात में आता है, सुंदर होता है वैसे-वैसे पूरे शरीर को ढंकने का खयाल मिटने लगता है। सिर्फ अत्यंत गरीब, दीन-हीन अविकसित समाज की स्त्रियां पूरे शरीर को ढांकती हैं। जैसे-जैसे शरीर सुंदर होगा वैसे-वैसे शरीर उघड़ना शुरू होगा। जहां-जहां शरीर का सौष्ठव आएगा वहां-वहां कपड़े कम होंगे। इसमें बहुत घबड़ाने की जरूरत नहीं है।
असल में कपड़ों के कम होने से इतनी घबड़ाहट हमें क्यों होती है? उस घबड़ाहट के पीछे कोई कारण है। उस घबड़ाहट के पीछे कारण क्या है? उस घबड़ाहट के पीछे यही कारण है कि हम शरीरों को अर्द्धनग्न देखना चाहते हैं। देखना चाहते हैं--वह हमारी चाह तभी मिटेगी जब शरीर धीरे-धीरे उघाड़े होंगे तभी हमारी चाह मिटेगी। अगर लड़कियों ने हिम्मत की और बीस साल वे ऐसे ही कपड़े पहने रहीं तो हमारी बुद्धि में काफी फर्क पड़ेगा। लेकिन सभी लड़कियों के लिए छोटे कपड़े, कम कपड़े सुंदर नहीं हैं, काव्यपूर्ण नहीं हैं। और कुछ स्त्रियां भी लड़कियां बनने की कोशिश करती हैं, तब जरा मुश्किल हो जाता है। लड़कियां हलके-फुलके कपड़े पहनें, लड़के हलके-फुलके कपड़े पहनें, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। बूढ़ों की तरह गंभीर कपड़े पहनना उचित भी नहीं है। हलके-फुलके कपड़े पहनें, दौड़ सकें, कूद सकें, फांद सकें, तैर सकें, वृक्षों

पर चढ़ सकें, ऐसे कपड़े पहनें, यह उचित है। बच्चों के कपड़े उसी तरह के होने चाहिए। लेकिन जब रोग चलना शुरू होता है तो उसका पता नहीं चलता है, वह कहां पहुंच जाता है। भारी-भरकम मोटी स्त्रियां सड़कों पर ऐसे कपड़े पहने चली जा रही हैं जैसे वे छोटी लड़कियां हों। उन्हें देख कर बहुत बेहूदा मालूम होता है, बहुत असंस्कृत मालूम होता है। इसलिए नहीं कि शरीर पर चुस्त कपड़े सदा बुरे मालूम पड़ते हैं लेकिन शरीर भी तो चुस्त कपड़ों के योग्य तो होना चाहिए।
अब हमारे नेता हैं, वे भी हमारी मोटी स्त्रियों से कम नहीं हैं। चुस्त कपड़े वे भी पहने हुए हैं, पेट तो बहुत बड़ा हो रहा है, चूड़ीदार पाजामा पहने हुए हैं, ऊपर से वह कोट पहने हुए हैं। वह चुस्त पाजामा पहने हुए खड़ा हुआ है, उसको देखो तो अब कोई कार्टून बनाने की जरूरत नहीं है, फोटो उतार लेना काफी है। बेहूदी है वह बात। बिल्कुल बेहूदी है। कपड़ों की अपनी शालीनता है और प्रत्येक तल पर कपड़ों का अपना उपयोग है। एक गंभीर आदमी अगर चुस्त कपड़े पहने तो ठीक नहीं मालूम पड़ता है क्योंकि ढीले कपड़ों की एक अपनी गौरव गरिमा है। चुस्त कपड़ो का एक हल्कापन है।
छोटी-छोटी चीजों का अर्थ है। अगर आपको चुस्त कपड़े पहना दिए जाएं तो आपकी चाल में तेजी आ जाएगी। आप सीढ़ियों पर दो सीढ़ियां एक साथ चढ़ जाएंगे। और अगर आपको ढीले कपड़े पहना दिए जाएं तो आप दो सीढ़ियां इकट्ठी कभी नहीं चढ़ेंगे, आप एक-एक सीढ़ी चढ़ेंगे। सड़क पर आप आहिस्ता से चलेंगे। कपड़े ढीले होंगे तो एक गंभीरता लाते हैं। लेकिन गंभीरता की एक उम्र है, और गंभीरता के अपने आयाम हैं। कपड़ों की चुस्ती एक बात लाती है। अगर हम मिलिटरी में लोगों को ढीले-ढाले कपड़े पहना दें, साधु-संन्यासियों के वस्त्र पहना दें तो फिर लड़ाई-झगड़ा नहीं हो सकता, फिर लड़ाई-झगड़े के लिए उपाय नहीं हैं। उसके लिए चुस्त कपड़े चाहिए। बंधे हुए कपड़े चाहिए। शरीर और कपड़े में फासला न रहे, यह पता ही न चले कि कपड़ा कोई बाधा दे रहा है, वैसे कपड़े चाहिए। लड़कियां, युवक चुस्त कपड़े पहनें, बुरा नहीं है। लेकिन चुस्त कपड़े पहनने की दृष्टि पर जरूर विचार करना चाहिए कि क्या दृष्टि होगी चुस्त कपड़े पहनने की? चुस्त कपड़ा पहनने का एक हलकापन है, ताजगी है, गति है, तीव्रता है, श्रम करने की सुविधा है, यह ठीक है। लेकिन अगर चुस्त कपड़े का केवल अर्थ सेक्सुअल एक्सप्रेशन है, अगर केवल यौन अभिव्यक्ति है तो बात जरा बेहूदी है। लेकिन है, वह बात भी है। और वह बात इसीलिए है कि हम चीजों को सीधे नहीं लेते तो उनको हमको उलटे रास्ते से लेना पड़ता है।
अब, एक स्त्री रास्ते से गुजरती हो--चुस्त कपड़े पहनेगी, लेकिन अगर आप उसको गौर से देखें तो नाराज होगी। और कोई पूछे कि फिर इतने चुस्त कपड़े पहन कर वह इस रास्ते से निकली किसलिए हैं? वह निकली इसलिए है कि आप गौर से देखें। अब बड़ा कंट्राडिक्ट्री मामला हो गया। अगर कोई न देखे तो दुखी घर लौटेगी, अगर कोई देखे तो नाराज होगी। तो मुश्किल की बात हो गई। तब कठिनाई की बात हो गई।
अगर कालेज में एक लड़की पढ़े और कोई उस पर कंकड़ न फेंके तो भी दुख होता है, अगर कंकड़ फेंके तो भी दुख होता है। हालांकि कंकड़ फेंकने से न कंकड़ फेंकने वाला दुख ज्यादा होता है। क्योंकि न कंकड़ फेंकने का मतलब है, कोई ध्यान नहीं दे रहा है। कंकड़ इतनी चोट कभी नहीं पहुंचाता जितना कोई ध्यान न दे तो चोट पहुंचती है। यह भी स्वाभाविक है। दूसरे का ध्यान हमारे ऊपर पड़े यह कुछ अस्वाभाविक नहीं है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। आदमी एक सामाजिक प्राणी है, वह दूसरों की आंखों में भी देखना चाहता है, लोग हमें प्रेम करें, पसंद करें, चाहें, यह बिल्कुल स्वभाविक है। उनकी चाह के योग्य हम हों, यह भी बड़ा स्वाभाविक है।
एक बहुत अदभुत घटना मुझे याद आती है। गांधी जी रवींद्रनाथ के पास मेहमान थे। सांझ को घूमने निकलते थे, तो रवींद्रनाथ न कहाः रुकिए, मैं थोड़े बाल बना आऊं। एक बूढ़ा आदमी बाल बनाए, गांधी जी की समझ के बिल्कुल बाहर है। उन्होंने कहाः बाल! लेकिन रवींद्रनाथ से कुछ कह भी न सके। कोई और होता तब तो वह उपदेश देते, लेकिन रवींद्रनाथ को उपदेश देना जरा मुश्किल था। रवींद्रनाथ जब तक जा भी चुके थे। दस मिनट बीत गए, पंद्रह मिनिट बीत गए,

गांधी जी का गुस्सा बढ़ता चला गया। भीतर जाकर देखा, वे आदमकद आईने के सामने बड़े मंत्रमुग्ध बाल संवार रहे हैं।
गांधी जी ने कहाः आप और इस उमर में बाल संवार रहे हैं? आप यह कर क्या रहे हैं? तो रवीन्द्रनाथ ने कहा कि जब मैं जवान था तो बिना संवारे भी चल जाता था, जबसे बूढ़ा हो गया, तबसे संवारना पड़ता है। और फिर मैं सड़क पर निकलूं और किसी को असुंदर मालूम पडूं तो भी मैं मानता हूं, मैंने दूसरे को दुख पहुंचाया। वह मेरी दृष्टि में हिंसा ही है। मैं सड़क पर चलूं और किसी को अच्छा लगूं तो मैं उसे मानता हूं, मैंने सुख पहुंचाया। वह मेरी दृष्टि में अहिंसा है।
गांधी जी की पकड़ में ऐसी अहिंसा कभी नहीं आ सकती थी। लेकिन रवींद्रनाथ कुछ बात बड़ी कीमत की कह रहे हैं। गांधी जी की अहिंसा से कहीं ज्यादा कीमत अहिंसा की बात कह रहे हैं। वह यह कह रहे हैं कि आपकी आंख को भी मैं अप्रीतिकर लगूं, अरुचिकर लगूं, बेहूदा लगूं तो मैंने आपको चोट पहुंचाई है। मैं आपको प्रातिकर लगूं, आनंदपूर्ण लगूं--अच्छा है।
मैं मानता हूं, हिंदुस्तान के बच्चे ऐसे कपड़े पहनें जो प्रीतिकर हों, आनंदपूर्ण हों और चारों तरफ एक सुगंध फैलाते हों, एक हलकापन लाते हों, प्रफुल्लता लाते हों--अच्छा है। हिंदुस्तान बहुत दिन से गंभीर है, इसकी गंभीरता तोड़नी है। इसे थोड़ा हलका-फुलकापन लाना है। यह थोड़ा हंस सके, मुस्कुरा सके, यह जिंदगी में थोड़ा रस ले सके, ऐसी स्थिति पैदा करनी है। इसमें बुरा नहीं है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को अपने कपड़े कनफर्मिटी से नहीं चुनने चाहिए। क्योंकि सभी लड़कियां चुस्त कपड़े पहने हैं इसलिए बाकी लड़कियों को भी चुस्त कपड़े पहनने हैं, तो फिर मूढ़ता हो जाती है। सभी लड़के चुस्त पायजामें पहने हैं, या पेंट पहने हैं, तो बाकी को भी पहनने हैं तो मूढ़ता हो जाती है।
प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के अनुकूल कपड़े चुनने चाहिए।
हर व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है। उसे अपने ढंग से सोचना चाहिए। अगर सारे लोग एक से कपड़े पहनने लगें तो यह भी एक बुद्धिहीनता का सबूत है। क्योंकि यह इस बात की खबर है कि हम अपने कपड़े भी इनवेंट नहीं कर सकते। हम इनवेंट क्या करेंगे? हम अपने कपड़े भी नहीं खोज सकते कि मेरे लिए क्या सुखद है, क्या आनंदपूर्ण है। मुझे क्या अच्छा है, वह मुझे खोजना चाहिए।
लेकिन यह मैं मानता हूं कि इधर कपड़ों के संबंध में हमारी रुचि में परिवर्तन हुआ है। और शुभ है परिवर्तन क्योंकि कपड़े उदासी से थोड़े मुक्त हुए है, थोड़े प्रफुल्लता के निकट आए हैं। लेकिन हमारी जो दृष्टि है पुरानी, घूर-घूर कर देखने की, उसके लिए बड़ी मुसीबत हो गई है। उसके लिए बड़ी अड़चन आ गई है। अगर एक स्त्री बुर्का ओढ़ कर जाती हो तो घूरने में बड़ा आनंद आता है क्योंकि घूरने के लिए बड़ा उपाय रहता है। तांगे के चारों तरफ घूमा जा सकता है, झांका जा सकता है। अगर एक स्त्री सीधे-सादे कपड़े पहने हुए बैठी है, उघड़ी ही, अब उसको घूर कर देखना मुश्किल हो जाता है। उसको घूर कर देखो तो अभद्रता मालूम होती है। बुर्का घूरने को सुविधा देता है।
क्या आपने कभी ख्याल किया है कि, हम ऐसे लोगों को लुच्चा कहते हैं। लुच्चे का मतलब होता है, घूर कर देखने वाला। लुच्चा, संस्कृत में लोचन, आंख को कहते हैं। आलोचक कहते है जो खूब सोच-विचार कर किसी चीज को देखता है। लुच्चा उसको कहते हैं, जो देखते ही चला जाता है, आंख हटाता ही नहीं। लुच्चे का मतलब है स्टेयरिंग, एकदम देखते चले जाना। लुच्चे को बड़ी तकलीफ हो गई है क्योंकि अब घूरने को, बहुत देर देखने को कुछ बचा नहीं। चीजें साफ हो गई हैं। जितनी चीजें साफ हो जाएंगी, उतने लुच्चे विदा हो जाएंगे। चीजें साफ हो जानी चाहिए।
अच्छा समाज शरीर के सौष्ठव और अनुपात के प्रति भी रस लेता है। अच्छा समाज शरीर को भी फूल की तरह सुंदर मानता है। शरीर को अस्वीकार नहीं करता, शरीर के आनंद को भी स्वीकार करता है। लेकिन हमारे देश ने हजारों साल से शरीर को अस्वीकार किया है। यहां शरीर को गंदा रखना अध्यात्म है। यहां शरीर को बीमार और पीला बना देना स्वर्ग जाने का उपाय है। यहां ऐसे साधु हैं जो स्नान नहीं करते हैं। ऐसे साधु हैं जो दतौन नहीं करते हैं। ऐसे

साधु हैं जो हाथ का मैल नहीं छुड़ाते हैं। ऐसे साधु मुझे कभी मिलने आ जाते हैं तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। उनके पास बैठना कठिन है। उनका मुंह बास छोड़ता है, उनके शरीर से गंदगी आती है। लेकिन वे अपने अध्यात्म में बड़े प्रतिष्ठित हैं। ये सब अध्यात्म के सबूत हैं।
नहीं, शरीर के प्रति हमारा विरोध समाप्त करना पड़ेगा। शरीर जिंदगी का
एक अदभुत तथ्य है। सच तो यह है कि शरीर इतना बड़ा रहस्य है कि अगर हम शरीर को पूरी तरह जान पाएं तो हम परमात्मा के एक बड़े रहस्य को समझने में समर्थ हो जाएंगे। शरीर के रहस्य का हमें पता ही नहीं है कि शरीर कितना बड़ा रहस्य है। इससे बड़ी मिस्ट्री हुई नहीं। चांद-तारे इतनी बड़ी मिस्ट्री नहीं हैं जितना शरीर--इतना बड़ा रहस्य! आप रोटी खाते हैं, वह कैसे खून बन जाती है और सत्तर साल तक अनवरत श्वास चलती है। सत्तर साल अगर लोहे का फेफड़ा भी हो तो सत्तर साल में जवाब दे दे, लेकिन फेफड़ा काम किए चला जाता है। सत्तर साल तक मस्तिष्क चौबीस घंटे काम करता है। एक क्षण विश्राम नहीं करता है, लेकिन काम करता रहता है। लोहे के तार भी थक जाएं लेकिन बारीक और महीन रेशे वह भी नहीं थकते। शरीर बहुत अदभुत व्यवस्था है। इतना बड़ा यंत्र है कि अगर हम उसे फैला कर देखने जाएं तो एक बड़ी फैक्ट्री भी उतना काम पूरा नहीं कर सकती, जितना एक शरीर--एक छोटा सा शरीर कर रहा है। लेकिन हम उसके प्रति दुष्टता, क्रोध और कठोरता से भरे हैं।
फिर हम फूल के सौंदर्य में आनंदित होते हैं। एक वृक्ष जब हरा हो उठता
है तब हम आनंदित होते हैं। जब आकाश में बादल घिरते हैं तब आनंदित होते हैं, और जब एक मोर नाचता है तब हम आनंदित होते हैं, और जब बगुलों की सफेद कतार आकाश से निकल जाती है तब हम प्रसन्न हो जाते हैं। तो आदमी के शरीर का ही क्या कसूर है कि उसे देख कर हम प्रसन्न न हो सकें? बगुले का शरीर आनंद देता है, एक तोते की लाच चोंच आनंद देती है, वृक्षों के हरे शरीर आनंद देते हैं, मोर का नाचते हुए पंखों का फैलाव आत्मा के भीतर भी कुछ फैला देता है, फिर आदमी के शरीर से ही क्या नाराजगी है? सच तो यह है कि कोई भी शरीर आदमी के शरीर के जितना अदभुत रहस्यपूर्ण नहीं है। लेकिन हमें गलत तरह के धार्मिक लोगों ने शरीर की दुश्मनी सिखाई और इसलिए शरीर के सौंदर्य को तोड़ने के लिए हम आतुर हैं कि शरीर सुंदर न हो। शरीर आकर्षक न हो, शरीर सुगंधित न हो इसलिए हम बड़े आतुर हैं। क्योंकि हम शरीर के दुश्मन हैं।
मैं शरीर का दुश्मन नहीं हूं। और मैं मानता हूं, जो शरीर का दुश्मन है
वह आत्मा का प्रेमी क्या हो पाएगा! क्योंकि इसी शरीर में उस आत्मा का वास है। इसी शरीर में उस आत्मा ने अपना निवास चुना है। हम इस शरीर को भी प्रेम करें और इस शरीर के भीतर प्रेम करके प्रवेश करें तो शायद उस आत्मा तक भी पहुंच सकते हैं। तो मैं खिलाफत में नहीं हूं कि कोई सुंदर वस्त्र न पहने। मैं इसकी भी खिलाफत में नहीं हूं कि शरीर के बहुत से अंग उघाड़े हों। मैं इसकी जरा भी खिलाफत में नहीं हूं। खिलाफत में इस बात के हूं कि हमें यह बेचैनी क्यों होती है? एक आदमी को सुख है कि वह जैसा कपड़ा उसे पहनना है, पहन रहा है। हम सब चिंता में क्यों पड़े हुए हैं?
वाइस चांसलर बैठ कर कमेटियां करते हैं और विचार करते हैं कि लड़कियों
को कैसे कपड़े पहन कर आने देना है और कैसे कपड़े पहन कर नहीं आने देना है। वाइस चांसलर को और कोई काम नहीं बचा है सोचने का? लड़कियों के कपड़ों की इतनी चिंता है? वाइस चांसलरों के दिमाग का कुछ इलाज होना चाहिए। लड़कियां कपड़े पहनती हैं, यह उनका सुख है। धीरे-धीरे हम उसके लिए राजी हो जाएंगे, धीरे-धीरे हम उन्हें स्वीकार कर लेंगे। कपड़े कम होंगे। शरीर... आप ध्यान रखें। हैरान होंगे, मेरी अपनी समझ ऐसी है कि शरीर में जो-जो कुरूप है उसे ढांकने के लिए हमने कपड़े ईजाद किए हैं। जो-जो सुंदर हैं उसे हमने प्रकट रखा है। जो-जो कुरूप है उसे हमने दबा लिया है।
महावीर जैसा आदमी नग्न खड़ा हो गया। कोई और समझता होगा कुछ, मैं यही समझता हूं कि महावीर का शरीर इतना सुंदर था, इतना प्रपोर्शनेट, इतने अनुपात में था कि ढांकने की कोई जरूरत न थी। वे पूरे के पूरे सुंदर थे। पूरा शरीर नग्न खड़ा हो गया। उनका सौंदर्य मन को मोह लेने वाला होगा। ढांकने को कुछ भी न था। सिर्फ कुरूपता ढांकी जाती है। जैसे-जैसे मनुष्य-

74

जाति सुंदर होगी, समृद्ध होगी--और निरंतर सुंदर और समृद्ध हो रही है, वैसे- वैसे मनुष्य के कपड़े कम होते चले जाएंगे और मनुष्य नग्न खड़े होने में भी एक तरह का आनंद ले सकेगा। नदी पर, घाट पर, फूल पर, स्नान में, वह नग्न भी हो सकेगा और हमारी बेचैनी खत्म हो जाएगी। हमने शरीर में सिर्फ कुरूप अंगों को छिपाया है। अगर शरीर पूरा सुंदर हो जायें... इसलिए देखना कुरूप आदमी बहुत कपड़े डाल-डूल कर चलता है, वह कपड़ों में अपनी कुरूपता को छिपाता है। कोई अपने कोट के कंधों में रुई भरे हुए है। अब कंधे उठे हुए होने चाहिए, स्वस्थ पुरुष का लक्षण होना चाहिए। अब वह तो कंधे तो दबे हुए हैं। अब रुई भर कर कंधे उठा लिए तो कोट कैसे निकालें? कोट को पहन कर ही चलना पड़ेगा। तो कोट में आदमी ज्यादा सुंदर मालूम पड़ता है। क्योंकि रुई भरे हुए कंधे, रुई भरी हुई छातियां आदमी को वह दे देती है जो शरीर से मिलना चाहिए। अगर हम सौ आदमियों को नंगा खड़ा करें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे, जो बड़े सुंदर मालूम पड़ते थे, नंगे खड़े होकर एकदम बेहूदे मालूम पड़ने लगेंगे। उसका कारण यह है कि बाकी शरीर में कुछ भी सुंदर नहीं है, हमने सिर्फ चेहरे की थोड़ी बहुत फिकर कर ली, बाकी शरीर को बिल्कुल छोड़ दिया है। बाकी शरीर निगलेक्टेड है। अगर आप भी आइने के सामने नंगे खड़ें होंगे तो हैरानी मालूम पड़ेगी कि अपना ही शरीर है, जल्दी ढांको, इसे छिपा लो। शरीर सुंदर होगा, स्वस्थ होगा अनुपात में होगा तो नग्न होने में हमारा डर कम हो जाएगा। डर का और कोई कारण नहीं है। शरीर उघड़ेगा, शरीर थोड़ा प्रकट होगा। छिपाने की कोई जरूरत नहीं है। आदमी अकेला है पृथ्वी पर जिसने कपड़े पहने हुए हैं। लेकिन कभी आपको खयाल आया, मोर नंगा है। आ सकता है... !
मैंने सुना है, लंदन में महिलाओं की एक समिति है। उसने एक प्रस्ताव किया है कि कुत्तों को कपड़े पहनाना चाहिए। यह दिमाग इनका खराब हो गया है, इन औरतों का। इनको कुत्ते भी नंगे दिखाई पड़ रहे हैं! इनके दिमाग की खराबी है, और कोई कारण नहीं है। यह कुत्ता बेचारा... ! आदमी अब तक नंगा दिखाई पड़ता था, आज कुत्ता नंगा दिखाई पड़ा, कल बैल नंगे दिखाई पड़ेंगे, तो मुश्किल हो जाएगी। हम कहां-कहां नग्नता को ढांकते फिरेंगे। सारी प्रकृति नंगी है, परमात्मा नग्न है, आदमी भर ढंका हुआ है।
नहीं, इतने ढंकने का मोह भी क्या है, इतनी बेचैनी भी क्या है? जिंदगी
को सरलता, हलकेपन से, प्रसन्नता से लिया जा सके--ऐसे कपड़े चाहिए, ऐसा रहने- सहने का ढंग चाहिए, इतनी मुक्ति चाहिए... ! और एक-दूसरे की शरीर में आंखें डालने की चेष्टा बहुत ही कुरूप है, लेकिन सप्रेसिव सोसाइटीज में होती हैं। हम एक-दूसरे के कपड़े के भीतर भी देखने की कोशिश करते हैं। अगर आंखें कपड़े के भीतर प्रवेश कर सकें, तो हम आंखों को भीतर ले जा सकते हैं। यह बहुत दमन से भरा हुआ चित्त है हमारा। बहुत कुरूप, अग्ली है, यह सुंदर नहीं है। नहीं, इतनी हमें बेचैनी नहीं लेनी चाहिए। आदमी के स्वास्थ्य के साथ सौंदर्य के साथ कपड़ों में रूपांतरण निश्चित है--हो रहा है--होगा। उसे प्रेम से स्वीकार कर लेंगे, तो हम उसे कलात्मक और सांस्कृतिक ढंग दे सकेंगे। अगर हम प्रेम से स्वीकार न करेंगे तो वह असांस्कृतिक, कुरूप और बेढंगा हो जाएगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है--वह अंतिम सवाल, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं--उन्होंने पूछा है, कुटुंब नियोजन के बाबत, बर्थ-कंट्रोल के बाबत आपके क्या खयाल हैं?

यह अंतिम बात, क्योंकि यह भारत की अंतिम और सबसे बड़ी समस्या है। और अगर हमने इसे हल कर लिया तो हम सब हल कर लेंगे। यह अंतिम समस्या है। यह अगर हल हो गई तो सब हल हो जाएगी। भारत के सामने बड़े से बड़ा सवाल जनसंख्या का है; और रोज बढ़ता जा रहा है। हिंदुस्तान की आबादी इतने जोर से बढ़ रही है कि हम कितनी ही प्रगति करें, कितना ही विकास करें, कितनी ही संपत्ति पैदा करें कुछ परिणाम न होगा। क्योंकि जितना हम पैदा करेंगे उससे चौगुने मुंह हम पैदा कर देते हैं। और सब सवाल वहीं के वहीं खड़े रह जाते हैं, हल नहीं होते।

मनुष्य ने एक काम किया है कि मौत से एक लड़ाई लड़ी है। मौत को हमने दूर हटाया है। हमने प्लेग, महामारियों से मुक्ति पा ली है। हम आदमी को ज्यादा स्वस्थ कर सके। बच्चे जितने पैदा होते हैं, करीब-करीब बचाने का हमने उपाय कर लिया है। हमने मौत से तो लड़ाई लड़ ली, लेकिन हम यह भूल गए कि हमें जन्म से भी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। एकतरफा लड़ाई महंगी पड़ जाएगी। हमने मौत का दरवाजा तो क्षीण कर दिया और जन्म का दरवाजा पुरानी रफ्तार से, बल्कि और बड़ी रफ्तार से जारी है। तो एक उपद्रव मुश्किल हो गया। प्रकृति में एक संतुलन था कि प्रकृति उतने ही लोगों को बचने देती थी इस पृथ्वी पर, जितने लोगों के बचने का उपाय था।
आपको शायद पता न हो, आपने घर में छिपकली देखी होगी दीवारों पर। छिपकली
एक बहुत पुराने जानवर का वंशज है। आज से कोई दस लाख साल पहले जमीन पर हाथियों से भी कोई पांच-पांच गुने बडी छिपकलियां थी, वह सब खत्म हो गईं। क्योंकि उन्होंने इतने बच्चे पैदा कर लिए कि आत्मघात हो गया। उनके मरने का और कोई कारण नहीं है। न कोई भूकंप आया, न कोई अकाल पड़ा। उनका कुल कारण यह है कि उन्होंने इतने बच्चे पैदा कर लिए कि उन बच्चों के लिए भोजन जुटाना असंभव हो गया और सारी छिपकलियां मर गईं। उनका एक वंशज बहुत छोटे रूप में हमारे घरों में रह गया। हाथियों से बड़े जानवर थे वे। और भी बहुत से जानवरों की जातियां पृथ्वी से तिरोहित हो गई हैं, सदा के लिए विलीन हो गई हैं। कभी थीं, अब नहीं हैं। और उसका कुल कारण एक था कि वे बच्चे पैदा करते चले गए। और सीमा वहां आ गई, जहां भोजन कम पड़ गया और लोग ज्यादा हो गए और मृत्यु के सिवाय कोई रास्ता न रहा।
प्रकृति आदमी के साथ भी अलग तरह का सलूक न करेगी, आदमी इस भूल में न रहे। अगर हम संख्या बढ़ाते चले जाते हैं तो हमारे साथ भी वही होगा जो सब पशुओं के साथ हो सकता है। हमारे साथ कोई भगवान अलग से हिसाब नहीं रखेगा। आज पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब लोग हैं। हिंदुस्तान की आबादी पाकिस्तान के बंटने के वक्त जितनी थी, पाकिस्तान बंटने से अगर किसी ने सोचा होगा कि हम कम हो जाएंगे तो गलती में है। हमने एक पाकिस्तान को तब तक फिर पैदा कर लिया। आज पाकिस्तान-हिंदुस्तान की आबादी मिल कर बहत्तर करोड़ है। हिंदुस्तान की आबादी उन्नीस सौ तीस में तैंतीस करोड़ थी। तैंतीस करोड़ से बहत्तर करोड़ हो गई--सिर्फ चालीस वर्षों में! इस सदी के पूरे होते-होते हम कहां खड़े होंगे, कहना बहुत मुश्किल है। सभा करने की कोई जरूरत न रह जाएगी, जहां भी होंगे सभा में ही होंगे। कोहनी हिलाने की जगह नहीं रह जाने वाली है। लेकिन इतने लोग कैसे जी सकते हैं?
सारे जगत के सामने सवाल है, हमारे सामने सबसे ज्यादा। सबसे ज्यादा इसलिए है कि समृद्ध कौमें बच्चे कम पैदा करती हैं, गरीब कौमें ज्यादा बच्चे पैदा करती हैं। इसका कारण है। अमरीका में कोई जनसंख्या बढ़ नहीं रही। फ्रांस में तो घट रही है। फ्रांस की सरकार चिंतित है कि कहीं हमारी संख्या न घट जाए। बड़ी अजीब दुनिया है। इधर हम मरे जा रहे हैं कि संख्या बढ़ी जा रही है, उधर फ्रांस में संख्या कम पड़ी जा रही है। फ्रांस की सरकार चिंतित है कि कहीं संख्या कम न हो जाए। बीस साल से ठहरी हुई है संख्या। क्या कारण था?
असल में जैसे आदमी समृद्ध होता है, संपत्तिवान होता है, बुद्धिमान होता है, वैसे ही उसकी जिंदगी में मनोरंजन की बहुत सी दिशाएं खुल जाती हैं। और गरीब के पास मनोरंजन की एक ही दिशा है, सेक्स। और कोई मनोरंजन की दिशा नहीं है। और मुफ्त! कोई टिकट नहीं, कोई पैसा नहीं। कोइ खर्च नहीं। वह दिन भर का थका-मांदा, सिनेमा जाए तो पैसा खर्च हो जाते हैं, नृत्य देखे तो पैसा खर्च हो जाते हैं, रेडियो कहां से लाए, टेलीविजन कहां से लाए। सेक्स एकमात्र उसके पास मुफ्त मनोरंजन है। उसकी वजह से गरीब बच्चे पैदा करता चला जाता है। पहले कोई खतरा न था। पहले भी गरीब बच्चे पैदा करता था। एक आदमी बीस बच्चे पैदा करता था, एकाध बचा लिया तो बहुत, दो बच गए तो बड़ी कृपा भगवान की। वह भी गंडे-ताबीज वगैरह बांध कर मुश्किल से बच पाते थे। लेकिन अब खतरा है, गरीब का बच्चा भी बचेगा। अमीर बच्चे कम पैदा करता है। क्योकि

उसके पास मनोरंजन के साधन ज्यादा हैं। इसलिए अमीरों को पहले भी बच्चे गोद लेने पड़ते थे, अब भी लेने पड़ते हैं। उसके पास मनोरंजन के साधन बहुत हैं। और एक और मजे की बात है कि आदमी जितने आराम में रहे, विश्राम में रहे, उसकी सेक्सुअल एनर्जी उतनी एब्जार्ब हो जाती है। जितने विश्राम में आदमी रहेगा उतनी उसकी काम शक्ति शरीर में विसर्जित हो जाती है। और जितना आदमी श्रम करेगा उतनी काम शक्ति बाहर निकलने के लिए आतुर हो जाती है। इसलिए श्रमिक की तकलीफ है क्योंकि इसके सारे शरीर की काम शक्ति निचोड़ कर इकट्ठी हो जाती है और बाहर फिंकना चाहती है। विश्राम करने वाले आदमी को उतनी काम शक्ति बाहर निकलने के लिए आतुर नहीं करती। इसलिए संपन्नता बढ़ने के साथ नये आयाम मिलते हैं--मनोरंजन के, सृजन की नई दिशाएं मिलती हैं। और तनाव और श्रम कम हो जाने से शरीर की यौन शक्ति शरीर में विसर्जित हो जाती है। गरीब मुल्क के सामने बड़ा सवाल है। गरीब मुल्क क्या करे? हम क्या करें? हमारे सज्जन, अच्छे आदमी, जो हमें बड़े महंगे पड़ते रहे हैं, और अब भी महंगे पड़ रहे हैं--वे हमें समझाते हैं कि ब्रह्मचर्य रखो, संयम रखो तो सब ठीक हो जाएगा। कोई ब्रह्मचर्य रख नहीं सकता, न रखता है। कोई रख सके करोड़ में, दो करोड़ में एक व्यक्ति तो उसके लिए उसे इतने शीर्षासन और इतनी चेष्टाएं और इतनी विधियां करनी पड़ती हैं कि संभव नहीं है कि आम--मास स्केल पर ब्रह्मचर्य कभी हो जाए। और फिर अगर किसी को ब्रह्मचर्य रखना हो तो फिर वह एक ही काम कर सकता है कि ब्रह्मचर्य रखे। चौबीस घंटे उसी काम में लगा रहे, फिर दूसरा काम नहीं कर सकता। इसलिए साधु-संन्यासी संसार छोड़ कर भागते हैं, उसका और कोई कारण नहीं है। एक ही काम, पूरा का पूरा एब्जार्बिंग है-- ब्रह्मचर्य साधना। इतना खाना खाओ, इतना खाना मत खाओ, यह पानी पीओ, यह पानी मत पीओ, इस तरह सोओ, इस तरह मत सोओ, यह पढ़ो, यह मत पढ़ो, यह देखो, यह मत देखो-- चौबीस घंटे वह ब्रह्मचर्य ही साध लें तो पर्याप्त--उनके जीवन की यात्रा हो गई। लेकिन यह बड़ी बेहूदी यात्रा है कि अगर सिर्फ ब्रह्मचर्य सधा तो क्या सध गया? यह मासेस के स्केल पर नहीं हो सकता।
मासेस के स्केल पर, बड़े जन-समूह के पैमाने पर तो कृत्रिम साधनों का, वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन भारत का मन उन साधनों का उपयोग करने की तैयारी नहीं दिखा रहा है। अगर हमने तैयार नहीं दिखाई तो हम मरेंगे, अपने हाथ से मरेंगे। और अगर हम तैयारी नहीं दिखाते तो मेरी अपनी समझ यह है कि बर्थ-कंट्रोल कंपल्सरी होना चाहिए। अगर शिक्षा कम्पल्सरी हो सकती है, जो कि उतनी जरूरी बात नहीं है आज।
अगर कुछ लोग अशिक्षित रह जाएं, तो नुकसान होगा, लेकिन भारी नुकसान नहीं हो जाएगा। लेकिन संतति-नियमन--बोर्ड लगे हैं जगह-जगह--"दो या तीन बच्चे, बस"; उससे कुछ होने वाला नहीं है। समझाने से भी कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि अगर हम समझाने में लगे तो... मैं अभी एक आंकड़ा पढ़ रहा था कि अगर हिंदुस्तान के एक-एक आदमी को समझाने की कोशिश की जाए बर्थ-कंट्रोल के लिए, तो कम से कम हमको सौ साल लगेंगे समझाने में, और सौ साल में वे इतने बच्चे पैदा कर देंगे कि उनको कौन समझाएगा? वह सौ साल रुके तो नहीं रहेंगे कि हम जब समझ लेंगे तब बच्चे पैदा करेंगे। वह बच्चे तो पैदा करते रहेंगे। पूरी जमीन पर डेढ़ लाख बच्चे रोज पैदा हो रहे हैं। बड़ा हिस्सा एशिया पैदा कर रहा है। एशिया में भी बड़ा हिस्सा चीन के बाद हम पैदा कर रहे हैं।
नहीं, बर्थ-कंट्रोल, संतति-नियमन समझाने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह जीवन मरण का सवाल है। वह अनिवार्य होना चाहिए। अनिवार्य का मतलब यह है कि दो बच्चों के बाद आपरेशन अनिवार्य होगा। अनिवार्य का यह भी मतलब है कि दो बच्चों के बाद, जिनके पास ज्यादा और बच्चे हैं उन बच्चों पर सरकार सुविधाएं कम कर देगी। जितने जिसके पास कम बच्चे हैं उनको उतनी ज्यादा सुविधाएं मिलनी चाहिए, अभी हालतें उलटी हैं।
अभी हालतें यह हैं कि एक अविवाहित आदमी पर टैक्स ज्यादा है और विवाहित होने पर टैक्स कम है। बच्चे हो जाएं तो और कम है। बड़ी उलटी बात है। बच्चों को कम करना है तो यह उलटा हिसाब लग रहा है। अविवाहित आदमी पर टैक्स बिल्कुल नहीं होना चाहिए--या कम से कम होना चाहिए। विवाहित पर ज्यादा टैक्स होना चाहिए और बच्चे होने पर टैक्स बढ़ता जाना चाहिए, तब हम रोक

पाएंगे। और अविवाहित व्यक्ति, और जो निःसंतान रहने को तैयार हैं उनको हमें प्रतिष्ठा देनी चाहिए, आदर देना चाहिए, सम्मान देना चाहिए, पुरस्कार देना चाहिए। और सब तरफ से दो बच्चों के बाद सख्त, सख्त से सख्त कदम उठा कर रोक देना चाहिए, अन्यथा उन्नीस सौ अठहत्तर तक हमारी संख्या इतनी हो जाएगी कि एक बड़े अकाल की संभावना है जिसमें दस करोड़ लोगों को मरना पड़ेगा--कम से कम--ज्यादा भी मर सकते हैं। अगर सारी दुनिया ने भी हमें खाने की सहायता दी तो भी बीस वर्षों के भीतर एक बड़े अकाल से गुजरने की आशा माननी चाहिए। घबड़ाने वाली बात है। ऐसा न हो, अच्छा है। लेकिन सारी स्थितियां यह कहती हैं कि यह हो जाएगा।
क्या यह अच्छा होगा कि दस करोड़ लोग अकाल में मरें? या हम पहले ही बच्चों को रोकें? लेकिन धर्मगुरु उलटी बातें सिखाते हैं। वे यह कहते हैं कि बच्चे भगवान देता है। भगवान का इसमें कोई हाथ नहीं है, कोई अपराध नहीं। भगवान पर मुकदमा चलाया ही नहीं जा सकता है इस मामले में। मजे की बात यह है कि जो धर्मगुरु यह समझाते हैं कि भगवान देता है बच्चे, वे यह नहीं समझाते कि बीमारी भी भगवान देता है, इसका इलाज नहीं करवाना चाहिए। बीमारी के लिए इलाज करवाने के लिए संन्यासी भी अस्पताल मे भर्ती हो जाते है। बीमारी भगवान ने दी है, इलाज किससे करवा रहे हो? नहीं, बीमारी भगवान की नहीं है, बीमारी डाक्टर से दूर करवाएंगे, और बच्चे भगवान पर थोप देंगे।
बहुत मिरेकल की घटना है कि एक आदमी के शरीर में इतने वीर्याणु बनते हैं एक जिंदगी में कि एक पुरुष से आज पृथ्वी पर जितनी संख्या है उतने बच्चे पैदा हो सकते हैं। एक संभोग में एक पुरुष से इतने वीर्याणु निकलते हैं कि एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं। और एक पुरुष सामान्य रूप से जिंदगी में अगर चार हजार बार संभोग करे तो चार हजार करोड़ बच्चों का बाप बन सकता है। यह तो स्त्री की कृपा है कि वह एक ही बच्चे को साल में दे सकती है, नहीं तो हम बड़ी मुश्किल में कभी के पड़ गए होते! बहुत झंझट में पड़ गए होते। यह रोकना पड़ेगा। न केवल यह रोकना पड़ेगा बल्कि दो तीन बातें मेरे खयाल में और हैं जो मैं कहना चाहूंगा। हमें न केवल संतति पर नियमन करना पड़ेगा, हमें संतति वैज्ञानिक रूप से पैदा हो इसका भी विचार करना होगा। अंधे, लूले, लंगड़े, कोढ़ी, पंगु, बुद्धि-भ्रष्ट, पागल, वे सब बच्चे पैदा करते जाएं, यह बहुत खतरनाक है। यह तो बहुत महंगा है। यह तो सारी रेस को खराब करने की व्यवस्था है। हमें इसकी भी फिकर करनी पड़ेगी कि दो व्यक्ति अगर विवाह करते हैं--तो विवाह तो कोई भी व्यक्ति किसी से भी कर सकता है क्योंकि प्रेम के संबंध में कोई भी कानून नहीं लगाया जा सकता। लेकिन दो व्यक्ति अगर विवाह करते हैं तो विवाह के बाद उनको सर्टिफिकेट लेना ही चाहिए मेडिकल बोर्ड का कि वे बच्चे पैदा कर सकते हैं या नहीं। हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हक बहुत खतरनाक है; आगे ठीक नहीं है। साइंटिफिक ब्रीडिंग के लिए उचित नहीं है। क्योंकि कोई भी बच्चे पैदा करता है। एक आदमी सड़क पर भीख मांग रहा है, मस्तिष्क खराब है, पागल है, वह भी बच्चे पैदा करता है। तो हम आगे की रेस को खराब करते चले जाते हैं। हमारी प्रतिभा, शक्ति, सौंदर्य सब नष्ट होता चला जाता है। वह हमें रोकना पड़ेगा।
और अब, अब चूंकि आर्टिफिशियल इनसेमिनेशन ने, कृत्रिम गर्भाधारण ने,
नई दिशाएं खोज दी हैं, जो बहुत अदभुत हैं। अब यह संभव है कि मैं मर जाऊं तो मेरे मरने के दस बारह साल बाद मेरा बेटा पैदा हो सके। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गई। अब बाप की मौजूदगी बेटे के लिए जरूरी नहीं है। मेरे वीर्य-अणु संरक्षित किए जा सकते हैं। इसका यह मतलब है कि अब हम श्रेष्ठतम व्यक्तियों के, आइंस्टीन के, या बुद्ध के, या महावीर के वीर्य-अणु सुरक्षित कर सकते हैं। श्रेष्ठतम स्त्रियों के वीर्य-अणु सुरक्षित हो सकते हैं। और उन अणुओं से हम नये तरह के ज्यादा श्रेष्ठतम व्यक्तियों को जन्म दे सकते हैं। अब हर व्यक्ति को बच्चे पैदा नहीं करने चाहिए।
लेकिन हम कहेंगे कि मेरा बच्चा और अणु किसी और का? यह नहीं हो सकता। लेकिन मेरा बच्चा--उसके लिए साइकिल कोई और बनाता है तो चढ़ता है। मेरा बच्चा--गुड्डी कोई और बनाता है। मेरा बच्चा--कपड़े कोई दर्जी सीता है। मेरा बच्चा--दवाई कोई डाक्टर बनाता है। मेरा बच्चा--शिक्षा कोई शिक्षक देता है।

जब हम सारी बातों में किसी और से इंतजाम करवा लेते हैं तो व्यक्ति का जो मौलिक अणु है वह मेरे बच्चे के लिए श्रेष्ठतम मिले, यह जो बाप अपने बेटे को प्यार करता है, इसकी फिकर करेगा--करना चाहिए। अब यह संभव है। लेकिन आदमी की कठिनाई यह है कि विज्ञान जिसे संभव बना देता है, आदमी की बुद्धिहीनता के कारण वह सैकड़ों वर्ष तक संभव नहीं हो पाता। अब यह संभव है कि मनुष्य की प्रतिभा बढ़ाई जा सके, बुद्धि बढ़ाई जा सके और श्रेष्ठतम, सुंदरतम स्वस्थतम, मनुष्य को पैदा किया जा सके।
लेकिन वे तो दूर के सपने हैं। अभी तो हमारे सामने सवाल यह है कि हम किसी तरह आती हुई भीड़ को रोक सकें। भीड़ एकदम आकाश से उतर रही हैं, पूरे मुल्क को भरती चली जाएंगी। अगर हमने पचास साल में हिम्मत न दिखाई तो हम अपने हाथ से मर सकते हैं। किसी एटम की, किसी हाइड्रोजन बम की हमारे ऊपर फेंकने की जरूरत न पड़ेगी। हमारा पापुलेशन एक्सप्लोजन ही हमारे लिए हाइड्रोजन बम बन जाएगा। वह जो जनसंख्या फूट रही है, वही हमारी मृत्यु बन सकती है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने इन चार दिनों में कहीं, बहुत बातें कहने को शेष रह गईं। लेकिन जिन्होंने मेरी बातें सुनी हैं वे उन प्रश्नों पर भी इस दिशा में विचार कर सकेंगे जिन पर मैं नहीं बोल सका हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का
छठवां प्रवचन

समाजवाद अर्थात पूर्ण विकसित पूंजीवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं।
एक महानगरी में भीड़ थी। रास्ते पर लाखों लोग खड़े थे जो आतुरतापूर्वक सम्राट के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ समय पश्चात सम्राट की सवारी आई। भीड़ के सभी लोग सम्राट के वस्त्रों की चर्चा करने लगे और मजा यह कि सम्राट बिल्कुल नग्न था, उसके शरीर पर वस्त्र थे ही नहीं। केवल एक छोटे से बच्चे को, जो अपने बाप के कंधे पर बैठ कर आ गया था, बड़ी हैरानी हुई। उसने अपने बाप से कहा कि लोग सम्राट के सुंदर वस्त्रों की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन मुझे तो सम्राट नग्न दिखाई पड़ रहा है। उसके बाप ने उससे कहाः चुप नासमझ, कोई सुन लेगा तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी और वह उस बच्चे को लेकर भीड़ से बाहर हो गया।
सम्राट नग्न था और लोग उसके वस्त्रों की चर्चा कर रहे थे। बात क्या थी?
कुछ माह पूर्व एक आदमी ने उस सम्राट से कहा था कि आपने सारी पृथ्वी जीत लीं, लेकिन आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। मैं लाकर दे सकता हूं। सम्राट का मन लोभ से भर गया। सब उसके पास था, पर देवताओं के वस्त्र न थे। उस आदमी ने कहा फिकर न करें, थोड़ा खर्च तो होगा, लेकिन वस्त्र लेकर मैं आ जाऊंगा। छह महीने की उसने मोहलत चाही। छह महीने तक सम्राट ने एक महल में उसे बंद कर दिया। चारों तरफ से नंगी तलवारों का पहरा बैठा दिया। वह आदमी कभी लाख, कभी दो लाख रुपये मांगने लगा। उसने छह महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट से लिए वस्त्र लाने के लिए; लेकिन सम्राट निश्चिंत था, क्योंकि महल में वह कैद था और भाग नहीं सकता था। छह महीने पूरे होने पर वह आदमी एक बहुमूल्य पेटी में वस्त्र लाकर उपस्थित हुआ। राजमहल आया--बड़े सम्राट आमंत्रित थे, उसने ताला खोला, सम्राट से कहा, अपनी पगड़ी मुझे दे दें। सम्राट की पगड़ी पेटी के भीतर डाली, फिर पेटी के भीतर से कोई पगड़ी निकाली, लेकिन हाथ उसका खाली था। सम्राट ने गौर से देखा। उसने कहा, पगड़ी आपको दिखाई पड़ रही है? और धीरे से कहा कि जब मैं चलने लगा तो देवताओं ने कहा था कि ये वस्त्र उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं। हाथ खाली था, लेकिन सम्राट को तत्काल पगड़ी दिखाई पड़ने लगी। उसने कहा, इतनी सुंदर पगड़ी मैंने कभी नहीं देखी। फिर सम्राट के एक-एक वस्त्र उस पेटी में डाले गए और झूठे वस्त्र सम्राट पहनता चला गया और झूठे वस्त्रों से कोई अर्थ न था, वह नंगा होता चला गया। फिर जब आखिरी वस्त्र के उतारने की बात आई, तब सम्राट घबड़ाया। लेकिन उस आदमी ने कहा कि अब घबराने से कोई फायदा नहीं। झूठ की यात्रा शुरू हो जाए तो पूरी ही करनी पड़ती है, वापस नहीं लौट सकते, लोग क्या कहेंगे? आखिरी वस्त्र भी सम्राट का उतर गया। दरबारी भी बड़े जोर से प्रशंसा करने लगे कि इतने सुंदर वस्त्र हमने कभी नहीं देखे, क्योंकि उस आदमी ने कहा कि ये वस्त्र सिर्फ उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ है। सब दरबारियों को वस्त्र दिखाई पड़ने लगे जो नहीं थे। प्रत्येक दरबारी को ऐसा लगा कि जब सबको दिखाई पड़ रहे हैं तो वस्त्र होंगे ही। जरूर सिर्फ मुझे नहीं दिखाई पड़ रहे हैं तो अपना बाप संदिग्ध हुआ, लेकिन अब इस बात को खोलने से कोई मतलब नहीं। लेकिन यह बात राजमहाल के भीतर की थी। उस आदमी ने कहा, महाराज, देवताओं ने कहा है कि यह वस्त्र पहली दफा पृथ्वी पर जा रहे हैं, इनका जुलूस, इनकी शोभायात्रा भी निकालना जरूरी है, रथ तैयार है, आप बाहर चलें। सम्राट घबराया। लेकिन उस आदमी ने कहा, आप बिल्कुल न घबड़ाए, आपके रथ के सामने ही डुग्गी पीटते हुए लोग चलेंगे कि यह वस्त्र उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने बाप से पैदा हुए है। ये वस्त्र सबको दिखाई पड़ेंगे, आप घबड़ाएं नहीं। सम्राट रथ पर सवार हुआ। सभी को नग्न दिखाई पड़ा, लेकिन कौन कहे कि सम्राट नग्न है। एक छोटे-से बच्चे ने यह कहा

था तो उसके बाप ने कहा, नासमझ, अभी तुझे अनुभव नहीं है, जब तू बड़ा होगा तब वस्त्र तुझे दिखाई पड़ने लगेंगे। यहां कोई सुन लेगा तो मुसीबत हो सकती है। इस कहानी से क्यों मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं? समाजवाद के नाम
से आज सारी दुनिया में शोर है, उस भीड़ के बीच में मेरी हालत उस बच्चे जैसी है जो कहे कि सम्राट नंगा है। लेकिन मुझे लगता है कि किसी को यह बात कहनी चाहिए। मनुष्य का मन ऐसा है कि प्रचारित असत्य भी सत्य मालूम होने लगते हैं। बहुत बार बोले गए झूठ भी सच मालूम होने लगते हैं। और पहली बार बोला गया सच भी सच नहीं मालूम पड़ता है। इधर सौ वर्षों से समाजवाद शब्द के आस-पास एक, "मिथ", एक कहानी गढ़ी जा रही है। उसके निरंतर प्रचार ने, जो समाजवादी नहीं हैं, उन्हें भी समाजवादी बना दिया है। जो भीतर से समाजवादी नहीं हैं, बाहर से वे भी उसका गुणगान करते दिखाई पड़ते हैं। समाजवाद के विरोध में बोलने का साहस किसी को नहीं मालूम पड़ता। सब अनुभवी हैं, मैं एक गैर-अनुभवी आदमी हूं। इसलिए उसके विपरीत बोलने की कोशिश करूंगा।
लेकिन मनुष्य-जाति के इतिहास में भीड़ कुछ मान ले, इससे सच नहीं हो जाता है। भीड़ ने हमेशा बड़े-बड़े झूठ स्वीकार किए हैं और हमेशा उन्हीं के साथ जीती रही है। एक नया असत्य मनुष्य के मन को पकड़े है समाजवाद के नाम से। उसकी पूरी व्याख्या समझ लेनी जरूरी है।
पहली बात तो यह है कि समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में शत्रु की भांति खड़ा हुआ है। समाजवाद जो कुछ भी हो, वह पूंजीवाद की संतान है। सामंतवाद की व्यवस्था से, फ्युडिलिज्म से पूंजीवाद पैदा हुआ। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो उससे समाजवाद पैदा हो सकता है, अगर साम्यवाद ठीक से विकसित हो तो उससे अराजकतावाद पैदा हो सकता है। लेकिन ठीक से विकसित हो तब। बच्चे मां के पेट से समय से पहले भी पैदा हो सकते हैं और मां आतुर हो सकती है कि नौ महीने क्यों प्रतीक्षा करूं। पांच महीने में बच्चा अगर निकल आए पेट से तो ज्यादा अच्छा है। चार महीने का कष्ट भी बचेगा, चार महीने की प्रतीक्षा भी बचेगी और बेटे से अभी मिलना हो जाएगा। लेकिन पांच महीने के बेटे मुर्दा पैदा होते हैं, जिंदा नहीं; और अगर जिंदा पैदा हो जाएं तो जिंदगी भर मुर्दे से भी बदतर उनकी हालत होती है।
रूस में जो समाजवाद पैदा हुआ, वह भी प्रीमेच्योर है। वह भी जरूरत से पहले पैदा हुआ है। रूस पूंजीवादी मुल्क था, इसलिए रूस में समाजवाद को जबरदस्ती पैदा करने की कोशिश की गई। समाजवाद तो पैदा हुआ, लेकिन मुर्दा पैदा हुआ। और समाजवाद के पैदा होने में, जिन गरीबों के लिए समाजवाद पैदा हुआ, उनकी ही लाखों की संख्या में हत्या भी करनी पड़ी। शायद मनुष्य-जाति, के इतिहास में समाजवादी मुल्कों ने जितनी हत्याएं की है, उतनी किसी ने भी नहीं कीं और आश्चर्य तो यह है कि जिन गरीबों के लिए, जिन मजदूरों और शोषितों के लिए समाजवाद खड़ा हुआ था, उन्हीं की हत्या की गई है। रूस में एक करोड़ पूंजीपति नहीं थे, एक करोड़ तो पूंजीपति आज अमरीका में भी नहीं हैं-- फिर रूस में अंदाजन एक करोड़ लोगों की जो हत्या हुई वह किसकी हत्या है? वह उनकी ही हत्या थी जिनके लिए कि समाजवाद लाना था। हत्या करना आसान हो जाता है अगर आप के ही हित में हत्या करनी हो। जब कोई हत्यारा आपके ही हित में हत्या करता है तो आप भी निहत्थे हो जाते हैं, बचाव भी नहीं कर सकते। एक करोड़ लोगों की हत्या के बाद भी रूस आज एक गरीब मुल्क है, अमीर मुल्क नहीं है। अभी भी समाजवाद मरा-मरा है और पिछले दस वर्षों से रूस रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठा रहा है। वह जो भूल हो गई उसकी तरफ वापस कदम उठाए जा रहे हैं। माओत्से तुंग का रूस से जो विरोध है, वह यही है कि रूस रोज पूंजीवादी होता चला जा रहा है। लेकिन रूस का पचास साल का अनुभव यह है कि समाजवाद लाने में थोड़ी जल्दी कर दी। देश पूंजी पैदा ही नहीं कर पाया था। यह ध्यान रहे, पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो समाजवाद उसका सहज परिणाम है। नौ महीने का गर्भ हो तो बच्चा सहज और चुपचाप पैदा हो जाता है। पूंजीवाद ठीक से विकसित न हो तो समाजवाद की बात सुसाइडल है, आत्मघाती है। मैं खुद समाजवादी हूं और जब समाजवाद से सावधान करने की बात करूंगा तो हैरानी होगी। हैरानी यह है कि मैं भी चाहता हूं कि बच्चा पैदा हो, लेकिन नौ महीने पूरे हो जाएं। यह देश अभी समाजवादी भी नहीं है और इस देश में समाजवाद की बातें उतनी ही खतरनाक

हैं जितनी रूस में थीं, उतनी ही खतरनाक हैं जितनी चीन में हैं। चीन में फिर लाखों लोगों की हत्या करने का उपाय करना पड़ रहा है और फिर भी समाजवाद नहीं आएगा, क्योंकि समय के पहले कुछ भी नहीं लाया जा सकता। जीवन की व्यवस्था में जल्दी नहीं हो सकती। भारत अभी पूंजीवादी नहीं है। इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि पूंजीवाद का क्या मतलब है?
पूंजीवाद हमारे मन में सिर्फ एक गाली की तरह आता है, एक निंदा की तरह, बिना यह जाने हुए कि पूंजीवाद ने मनुष्य-जाति के लिए क्या किया है। बिना यह समझे हुए कि पूंजीवाद ही मनुष्य जाति को समाजवाद तक पहुंचाने की प्रक्रिया है, बिना यह समझे हुए कि अगर मनुष्य कभी समान होगा और अगर कभी सारे मनुष्य खुशहाल होंगे और अगर कभी सारे मनुष्य दीनता और दरिद्रता से मुक्त होंगे तो उसमें सौ प्रतिशत हाथ पूंजीवाद का होगा।
पूंजीवाद के संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली तो यह
कि पूंजीवाद पूंजी उत्पन्न करने की व्यवस्था का नाम है। "ए सिस्टम दैट क्रिएट्स वेल्थ"--एक ऐसी व्यवस्था जो संपत्ति का सृजन करती है। दुनिया में पूंजीवाद के पहले किसी व्यवस्था ने पूंजी पैदा नहीं की थी। पूंजीवाद ने पूंजी पैदा की है। पैदा करने का मतलब यह है कि ऐसी पूंजी जमीन पर पैदा की है, जो आदमी अगर पैदा न करता तो खदानों से न निकलती, जमीन से न निकलती, आकाश से न निकलती। आज जमीन पर जो पूंजी है वह पैदा की गई पूंजी है। वह कोई प्राकृतिक संपत्ति नहीं है जो कि किसी खदान से मिलती हो, जमीन से मिलती हो, किसी झरने से मिलती हो, किसी प्रकृति से, किसी जगह से मिलती हो। पूंजीवाद ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में पूंजी पैदा करने की व्यवस्था ईजाद की। इसके पहले जो भी व्यवस्थाएं थीं, वे लुटेरी व्यवस्थाएं थीं। चंगीज हों कि तैमूरलंग हों, कि दुनिया के कोई भी सम्राट हों, सामंतों ने पूंजी को लूटा था, शोषण किया था। लेकिन पूंजीवाद ने पूंजी पैदा की है! लेकिन हम सामंतवादियों के साथ ही पूंजीवाद को भी रखने के आदी हो गया हैं। हम सोचते हैं, पूंजीवाद ने भी पूंजी का शोषण किया है। पूंजीवाद ने पूंजी निर्मित की है और पूंजी निर्मित हो जाए तो बंटवारा हो सकता है। पूंजी अगर निर्मित न हो तो बंटवारा किस चीज का होगा?
आज इंदिरा जी और उनके नासमझ साथी समझते हैं कि समाजवाद आ सकता है, संपत्ति बांटी जा सकती है। उनकी बातें ऐसी हैं कि संपत्ति के बिना ही संपत्ति को बांटने का वे विचार कर रहे हैं। देश के पास संपत्ति नहीं है। अगर आज हम बांटेंगे तो सिर्फ गरीबी बंटेगी, धन नहीं बंट सकता। धन है ही नहीं। होना चाहिए बांटने के लिए। बंटना चाहिए जरूर एक दिन, लेकिन बंटने के पहले होना चाहिए। पूंजीवाद संपत्ति पैदा करता है, समाजवाद संपत्ति बांटता है। लेकिन पैदा करना पहला काम है, बांटना दूसरा काम है और अगर पूंजीवाद संपत्ति पैदा न कर पाए तो समाजवाद सिर्फ गरीबी बांट सकता है। अगर हमारे देश ने यह निर्णय लिया समाजवादी होने का तो हम सदा के लिए गरीब होने का निर्णय लेंगे, क्योंकि हम गरीबी बांट कर रह जाएंगे और कुछ भी न कर पाएंगे, क्योंकि पूंजी को पैदा करने की व्यवस्था के सूत्र हमारे ध्यान में नहीं हैं।
पहली बात यह समझ लेना जरूरी है कि दुनिया के सारे लोगों ने मिल कर पूंजी पैदा नहीं की है, बिल्कुल थोड़े से लोगों ने पूंजी पैदा की है। कोई एक रॉकफेलर, कोई एक मार्गन, कोई एक फोर्ड, कोई रथचाइल्ड, कोई बिड़ला, कोई टाटा, कोई साहू पूंजी पैदा करता है। अगर हम अमरीका के दस बड़े नाम निकाल दें तो अमरीका भी हमारे जैसा ही गरीब देश होगा। हेनरी फोर्ड लंदन गया था। उसने स्टेशन पर आकर इंक्वायरी आफिस में पूछा कि कोई सस्ता सा होटल हो तो बता दो। क्लर्क ने कहाः आपके चेहरे को मैंने अखबारों में देखा है। लगता है कि आप हेनरी फोर्ड हैं। आप सस्ता होटल खोज रहे हैं? आपके बेटे और बेटियां आती हैं तो वे सबसे महंगे होटल खोजते हैं।
हेनरी फोर्ड ने कहा, मैं गरीब आदमी का बेटा हूं और मेरे बेटे हेनरी फोर्ड के बेटे हैं, अमीर आदमी के बेटे हैं। मैंने संपत्ति पैदा की है, मैं गरीब आदमी का बेटा हूं। मुझे सस्ता होटल बता दें, मैं किसी फोर्ड का बेटा नहीं हूं। अमरीका से दस बड़े नाम हम छांट दें तो अमरीका भी गरीब होगा।

अमरीका के पास जो आज संपत्ति है वह कुछ लोगों के मस्तिष्क का आविष्कार और कुछ लोगों की संपत्ति को पैदा करने की कला का परिणाम है। सारी दुनिया ने संपत्ति क्यों पैदा नहीं कर ली?
अभी हिंदुस्तान संपत्ति पैदा क्यों नहीं कर पाया? हम सबसे पुरानी कौम हैं और जमीन पर सबसे पुरानी हमारी संस्कृति है, लेकिन हम संपत्ति क्यों पैदा नहीं कर पाए? संपत्ति को पैदा करने की कला हम विकसित न कर पाए, क्योंकि हम संपत्ति-विरोधी देश हैं, इसलिए संपत्ति पैदा करने की दिशा में हमारी प्रतिभा नहीं जा सकी। हमारी प्रतिभा गई संन्यास की दिशा में। जो आदमी फोर्ड बन सकता था, वह जंगल चला गया। हमने अपनी सारी प्रतिभा को चैनेलाइज किया संन्यास की तरफ। तो हमने बड़े संन्यासी पैदा किए--बुद्ध पैदा किया, शंकर पैदा किया, नागार्जुन पैदा किया, महावीर पैदा किया; लेकिन हम संपत्ति पैदा करने वाले बड़े कुशल लोग पैदा न कर सके। उस तरफ हमारी प्रतिभा न गई संपत्ति के विरोध के कारण।
हिंदुस्तान से एक यात्री वापस लौटा। वह था काउंट कैसरलिन। उसने एक छोटा सा वाक्य लिखा है। पढ़ा तो बहुत हैरान हुआ। उसने लिखा हैः "इंडिया इ.ज ए रिच लैंड व्हेयर पुअर पीपुल लिव।" अर्थात "हिंदुस्तान एक अमीर देश है जहां गरीब लोग रहते हैं।" यह आदमी पागल तो नहीं है? अगर हिंदुस्तान अमीर देश है तो गरीब लोग वहां कैसे रहेंगे और अगर वहां गरीब लोगे रहते हैं तो देश अमीर कैसे है? लेकिन उसका मजाक मैं समझ गया। उसका मजाक यह था कि हिंदुस्तान कभी अमीर हो सकता था, लेकिन अमीरी पैदा करनी पड़ती है। प्रतिभा नियोजित करनी पड़ती है, जीनियस को यात्रा पकड़ानी पड़ती है, तब संपत्ति पैदा होती है; अन्यथा संपत्ति पैदा नहीं होती। संपत्ति के उत्पादक मजदूर और श्रमिक नहीं हैं। अन्यथा आदिवासी श्रम कर रहे हैं जन्मों-जन्मों से और संपत्ति पैदा नहीं कर पाए। अफ्रीका का गरीब भी श्रम कर रहा है, लेकिन संपत्ति पैदा नहीं हो पाई। अगर श्रम संपत्ति पैदा करता तो सारी दुनिया में संपत्ति पैदा हो जाती। उत्पादक कोई और है। कोई और प्रतिभा है पीछे। पूंजीवाद ने उस तरह की प्रतिभाओं को अवसर दिया है जो संपत्ति को पैदा करें और पूंजीवाद ने संपत्ति को पैदा करने का इंतजाम किया। बड़ा इंतजाम तो उसने यह किया है कि मनुष्य की जगह मशीन को लाने की कोशिश की, क्योंकि मनुष्य के हाथ से संपत्ति पैदा नहीं हो सकती। मनुष्य कितना ही श्रम कर ले, पेट भर ले तो बहुत है।
बुद्ध के जमाने में हिंदुस्तान की आबादी दो करोड़ थी। यह आबादी दो करोड़ ही रहती, ज्यादा नहीं हो सकती थी, क्योंकि दस बच्चे पैदा होते और नौ बच्चों को मरना ही पड़ता। क्योंकि न तो भोजन था, न दवा थी, न जगह थी, न मकान था, न इंतजाम था। उनके शरीर को बचाने का कोई उपाय न था, पिछले डेढ़ सौ वर्षों में दुनिया में एक्सप्लोजन हुआ मनुष्य-जाति का। आज साढ़े तीन अरब लोग हैं। ये साढ़े तीन अरब लोग पूंजीवाद की व्यवस्था के कारण जीवित हैं, अन्यथा ये जीवित नहीं रह सकते थे--पूंजीवादी व्यवस्था के बिना कल्पना के बाहर है कि साढ़े तीन अरब आदमी इस पृथ्वी पर जी जाएं।
पूंजीवाद ने क्या किया? मनुष्य की जगह मशीन को ईजाद किया, मनुष्य को हटाया श्रम से और मशीन को लगाया श्रम में। इसके दो परिणाम हुए। मशीन मनुष्य से हजारगुना काम कर सकती है, लाख गुना काम कर सकती है, करोड़गुना भी कर सकती हैं। मशीन की संभावनाएं अनंत हैं, मनुष्य की संभावनाएं बहुत सीमित हैं। मशीन की वजह से संपत्ति का इतना ढेर लगना शुरू हुआ और दूसरा काम, जैसे ही मशीन आई, मनुष्य गुलामी से मुक्त हो सका। पूंजीवाद की दूसरी बड़ी देन है दासता का अंत, गुलामी की समाप्ति। अगर मशीन न आती तो आदमी की गुलामी कभी भी मिट नहीं सकती थी। आदमी की गुलामी मिटाना असंभव था। आदमी को गुलाम रहना ही पड़ता, क्योंकि आदमी से काम लेना और आदमी से पीछे उसकी छाती पर या तो सवार हो कोई, पीछे कोड़े लेकर, तभी उससे हड्डी तोड़कर काम लिया जा सकता है। मशीन स्थापित हुई, सब्स्टीट्यूट हुई, तो ही आदमी गुलामी से मुक्त हो सकता है।
आज पृथ्वी पर आदमी गुलाम नहीं है, आज आदमी मुक्त है। लेकिन समाजवाद ने
एक झूठी और भ्रामक बाद पैदा करना शुरू की है कि संपत्ति और पूंजी श्रमिक

पैदा कर रहा है। श्रमिक संपत्ति पैदा नहीं कर रहा है, श्रमिक सिर्फ संपत्ति के पैदा करने का बहुत गौण हिस्सा है और आज नहीं कल, श्रमिक सुपरफ्तुअस--व्यर्थ हो जाएगा, क्योंकि मशीन उसे पूरी तरह से सब्स्टीट्यूट कर देगी। पचास साल के भीतर दुनिया में लेबर, श्रमिक जैसा आदमी नहीं होगा, होने की जरूरत भी नहीं है।
अशोभन है कि किसी आदमी को मशीन का काम करना पड़े जो मशीन कर सकती है। श्रमिक व्यर्थ हो जाएगा। संपत्ति के पैदा करने में श्रमिक धीरे-धीरे व्यर्थ होता गया और पचास साल में बिल्कुल बेकार हो जाएगा। श्रमिक की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी, क्योंकि श्रम नॉन-एसेंशियल, गैर-जरूरी हिस्सा है। जरूरी हिस्सा उत्पादक बुद्धि है, प्रोडक्टिव माइंड है। लेकिन समाजवाद ने एक भ्रम पैदा किया है कि संपत्ति मसल्स से पैदा हुई है। झूठी है यह बात। संपत्ति मस्तिष्क से पैदा हुई है, मसल्स से नहीं। और अगर समाजवाद ने यह जिद्द की और मसल्स को मस्तिष्क के ऊपर बिठा दिया तो मस्तिष्क विदा हो जाएगा और मसल्स वहीं पहुंच जाएंगी जहां हजार साल पहले गरीबी और भुखमरी थी, उससे आगे नहीं।
सारी संपत्ति मस्तिष्क की ईजाद है और ध्यान रहे, सारे लोगों ने संपत्ति के पैदा करने का श्रम भी नहीं उठाया है। एक आइंस्टीन ईजाद करता है, सारे लोग फायदे लेते हैं। एक फोर्ड संपत्ति पैदा करता है, सारे लोगों तक संपत्ति बिखर जाती है। लेकिन ऐसा समझाया जा रहा है कि पूंजीपति जो है वह लोगों से संपत्ति शोषित करता है। इससे बड़ी झूठी कोई बात नहीं हो सकती है। जो संपत्ति है ही नहीं, उसका शोषण होगा कैसे? उस संपत्ति का शोषण हो सकता है जो कहीं हो, लेकिन जो संपत्ति कहीं है ही नहीं उस संपत्ति का शोषण कैसे हो सकता है? पूंजीवाद संपत्ति का शोषण नहीं करता है, संपत्ति पैदा करता है। लेकिन जब संपत्ति पैदा होती है तो दिखाई पड़नी शुरू होती है और हजारों आंखों में ईर्ष्या का कारण बनती है।
समाजवाद के प्रभाव का कारण यह नहीं है कि हर आदमी हर दूसरे आदमी को समान समझता है। समाजवाद के बुनियादी प्रभाव का कारण मनुष्य की जन्मजात ईर्ष्या है--उनके प्रति जो सफल हैं, उनके प्रति जो समृद्ध हैं, उनके प्रति जिन्होंने कुछ पाया, जिन्होंने कुछ खोजा, जिन्होंने कुछ बनाया। मनुष्य जाति का बड़ा हिस्सा एकदम तमस में रहा है, उसने कुछ भी पैदा नहीं किया है। मनुष्य जाति के बड़े हिस्से ने न तो ज्ञान पैदा किया है, न संपत्ति पैदा की है, न शक्ति पैदा की है। लेकिन मनुष्य-जाति का यह बड़ा हिस्सा ईर्ष्या से पीड़ित जरूर हो गया है। उसे दिखाई पड़ रहा है--संपत्ति है, ज्ञान है, बुद्धि है, लोगों के पास कुछ है और निश्चित ही करोड़ों लोगों की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है।
रूस में जो क्रांति हुई है वह ईर्ष्या से, चीन में जो क्रांति हुई वह ईर्ष्या से और इस देश में भी जो समाजवाद की बातें हो रही हैं वे ईर्ष्याजन्य हैं। लेकिन ध्यान रहे, ईर्ष्या से कोई समाज निर्मित नहीं होता और यह भी ध्यान रहे, ईर्ष्या से समाज का किया गया रूपांतरण फलदाई, सुखदाई, मंगलदायी नहीं होगा। यह भी ध्यान रहे कि ईर्ष्या से हम किसी व्यवस्था को तोड़ तो देंगे, लेकिन नई व्यवस्था का सृजन नहीं कर पाएंगे। ईर्ष्या क्रिएटिव नहीं है, डिस्ट्रक्टिव है। ईर्ष्या कभी भी सृजनात्मक शक्ति नहीं है। वह तोड़ सकती है, मिटा सकती है, बना नहीं सकती। बनाने की कल्पना ही ईर्ष्या में नहीं होती है।
मैंने सुना है कि एक आदमी मरा। मरते समय उसने अपने बेटों को इकट्ठा किया और उनसे कहा कि मुझ मरते हुए बाप की एक इच्छा है, उसे तुम पूरा कर देना। मेरे पास आओ और मुझे वचन दो। लेकिन उसके बड़े बेटे चुपचाप दूर ही बैठे रहे। वे अपने बाप को भलीभांति पहचानते थे। लेकिन छोटा बेटा नहीं जानता था, वह बाप के पास चला गया। बाप ने उसके कान में कहा कि तू ही मेरा असली बेटा है और तुझे मैं एक बड़ा दायित्व सौंप जाता हूं। जब मैं मर जाऊं तो मेरी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में फेंक देना। उसने कहाः क्या मतलब है आपका? तो उस आदमी ने कहा कि जब मेरी आत्मा जा रही होगी स्वर्ग की तरफ तो पड़ोसियों को जेलखाने की तरफ जाते देख कर मुझे बड़ी शांति मिलेगी।

मेरा दिल बड़ा तृप्त हो जाएगा। जिंदगी भर से चाहता हूं, इन्हें जेल भेज दूं। मकान एक पड़ोसी के पास बड़ा है, मेरे पास छोटा है। दूसरे पड़ोसी के पास सुंदर घोड़े हैं, मेरे पास नहीं। तीसरे पड़ोसी के पास यह है, चौथे के पास वह है और मेरे पास नहीं। लेकिन इतना तो कर ही सकता हूं मैं कि मरने के बाद मेरी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में फिंकवा दूं?
अब यह जो आदमी है, ईर्ष्या में जी रहा है। मकान बड़े हो सकते हैं सृजन से, ईर्ष्या से नहीं। हां, ईर्ष्या से बड़े मकान छोटे बनाए जा सकते हैं; लेकिन ईर्ष्या से छोटे मकान बड़े नहीं बनाए जा सकते। ईर्ष्या के पास सृजनात्मक शक्ति नहीं है। ईर्ष्या जो है--मृत्यु की साथी है, जीवन की नहीं। लेकिन सारी दुनिया में समाजवाद का जो प्रभाव है उसकी बुनियाद में ईर्ष्या आधार है। लेकिन मजा यह है कि जिस गरीब को यह ईर्ष्या सता रही है और शायद गरीब को उतनी नहीं सता रही है जितनी अमीर और गरीब के बीच के जो नेता खड़े हैं; उनको सता रही है। यह जो ईर्ष्या इनको सता रही है, वह ईर्ष्या अमीरों के खिलाफ जितना नुकसान पहुंचाएगी; वह बड़ा नहीं है। इसका अंतिम नुकसान गरीबों को ही पहुंचनेवाला है। क्योंकि अमीर जो संपत्ति पैदा कर रहा है वह संपत्ति अंततः गरीब तक पहुंच रही है, पहुंचती है, पहुंच ही जाती है। उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है।
मैं निकल रहा था, एक ट्रेन से। दिल्ली जा रहा था। मेरे कंपार्टमेंट में एक सज्जन थे, रास्ते में एक बड़ा मकान था और उस मकान के आस-पास दस-पांच छोटे झोपड़े थे। उन्होंने मुझे देख कर कहा, देखते हैं आप, यह मकान बड़ा हो गया है, इन मकानों को छोटा करके। मैंने उनसे कहा, आप गलत देख रहे हैं। इस बड़े मकान को बीच से हटा दें तो यह जो आस-पास दस मकान हैं ये बड़े नहीं हो जाएंगे, ये मकान नदारद हो जाएंगे। उस बड़े मकान के बनने की वजह से ये दस मकान भी आस-पास बन जाते हैं, बनने ही पड़ते हैं। कोई मकान अकेला नहीं बनता है। एक बड़ा मकान जब बनता है, दस छोटे मकान बन ही जाते हैं, क्योंकि उस बड़े मकान को बनाएगा कौन? उस बड़े मकान को बीच से हटा दें तो ये दस मकान विदा हो जाएंगे।
दुनिया में दस बच्चे पैदा होते, नौ मरते थे। पूंजीवाद ने उन नौ बच्चों
को भी बचा लिया। आज दस बच्चे होते हैं, सिर्फ एक बच्चा मरता है, नौ बच्चे बच जाते हैं। उन नौ बच्चों की भीड़ इकट्ठी हो गई है। उनके पास छोटे मकान हैं, दुखद है यह बात। उनके पास अच्छे मकान होने चाहिए। लेकिन अच्छे मकान होना का यह सूत्र नहीं है कि बड़े मकान मिटा दिए जाएं। अगर बड़े मकान मिट गए तो मैं आपसे कहता हूं कि ये छोटे मकान विदा हो जाएंगे। ये बड़े मकान के पीछे आए हैं। ये नौ मकान जो बच रहे हैं, दस में से, ये बड़े मकान के बनाने में बच रहे हैं।
मजदूर को काम है, नौकरी है, रहने की जगह है, वह पूंजी के पैदा होने के कारण हुई है। इस पूंजी को बिखेर देने से मजदूर बचेगा नहीं। कोशिश हमें यह करनी चाहिए कि मजदूर भी कैसे पूंजीपति हो जाए। कोशिश हमें यह करनी चाहिए कि छोटे मकान कैसे बड़े हों और अगर छोटे मकान बड़े बनाने हैं तो और बहुत बड़े मकान बनाने पड़ेंगे, तभी ये बड़े हो पाएंगे, अन्यथा ये बड़े नहीं हो पाएंगे। लेकिन कई बार बड़े भ्रांत तर्क पैदा हो जाते हैं।
चीन में जो चल रहा है वह यही खयाल है कि हम सब बड़े मकान मिटा कर छोटे मकानों को बड़ा कर देंगे। नहीं, बड़ा मकान मिट जाएगा और छोटा मकान जिसके पास है अगर वह बड़ा मकान बना सकता होता तो उसने बहुत पहले बड़ा मकान बना लिया होता। वह अपनी लिथार्जी में, अपने तामस में वापस लौट जाएगा।
ख्रुश्चेव ने रूस से विदा होने से पहले अपने पद से जो एक महत्वपूर्ण बात कही है, वह सोचने जैसी है। उसने कहा है, आज रूस के सामने जो सबसे बड़ा सवाल है वह यह है कि रूस में कोई भी काम करने को तैयार नहीं है। रूस के जवान काम करने में बिल्कुल उत्सुक नहीं हैं। बड़ी अजीब बात है कि रूस के मजदूर काम करने में उत्सुक न हों; रूस का जवान काम करने में उत्सुक न हो। लिथार्जी में, आलस में, तामस में वापस लौट रहा है वह। स्टैलिन ने जो उससे काम लिया था वह भी जबरदस्ती था, इसलिए स्टैलिन के मरने के बाद जो व्यवहार स्टैलिन के साथ रूस में हुआ वह बिल्कुल ही तर्कसंगत मालूम पड़ता है। जिस

क्रेमलिन के चौराहे पर, जिस रेडस्क्वायर पर जिंदगी भर सलामी ली स्टैलिन ने, उसी स्क्वायर से उसकी गड़ी हुई लाश को उखाड़ कर हटा दिया गया है, क्योंकि जितने दिन स्टैलिन जिंदा था--रूस पर प्रेत की भांति छाया रहा और गहरी हत्या करता रहा। गहरी हत्या के भय से काम चला, लेकिन हत्या का भय ढीला हुआ, काम बंद हुआ।
पूंजीवाद ने इंसेंटिव पैदा किया है, एक प्रेरणा पैदा की है व्यक्ति
के भीतर कि वह संपत्ति को पैदा करे। संपत्ति को पैदा करने का आकर्षण पैदा किया है। वह आकर्षण पूंजीवाद के विदा होते ही विदा हो जाएगा। हां, एक ही शर्त पर अगर पूंजीवाद पूरी तरह विकसित हो जाए और पूंजीवाद से समाजवाद सहज आए तो यह घटना नहीं घटेगी। ऐसा हो सकता है। अमरीका में ऐसा संभव हो जाएगा। यह कितना विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल मालूम पड़ता है, लेकिन यही सत्य
है कि आने वाले पचास वर्षों में अमरीका रोज समाजवाद की तरफ कदम उठाएगा और रूस रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठाएगा। अमरीका रोज समाजवादी होता जा रहा है बिना जाने, बिना किसी क्रांति के। क्यों? क्योंकि संपत्ति जब अतिरिक्त हो जाती है तो व्यक्तिगत मालकियत व्यर्थ हो जाती है। व्यक्तिगत मालकियत तभी व्यर्थ होती है, जब संपत्ति अतिरिक्त हो जाए, जरूरत से ज्यादा हो जाए। अभी एक गांव में हम जाएं, वहां पानी पर कोई कब्जा नहीं है। लेकिन गांव में पानी बहुत ज्यादा है, लोग कम हैं। कल गांव में पानी कम हो जाए और लोग ज्यादा हो जाएं तो पानी पर व्यक्तिगत मालकियत शुरू हो जाएगी। आज हवा मुक्त है सबके लिए, कल हवा छोटी पड़ जाए, लोग ज्यादा बढ़ जाएं, कल आक्सीजन कम हो जाए और लोग ज्यादा हो जाएं तो जिनके पास सुविधा है, समझ है वे आक्सीजन के टैंक अपने घरों में बंद कर लेंगे। व्यक्तिगत मालकियत शुरू हो जाएगी। संपत्ति पर तब तक व्यक्तिगत मालकियत रहेगी ही जब तक संपत्ति कम है और लोग ज्यादा हैं। एक ही तर्कसगंत, एक ही स्वाभाविक संभावना है व्यक्तिगत संपत्ति के विदा होने की और वह यह है कि संपत्ति पानी और हवा की तरह अतिरिक्त मात्रा में पैदा हो जाए।
यह संभव हो जाएगा। आज भी अमरीका में हम जिसे गरीब कहते हैं वह रूस के मापदंडों के हिसाब से अमीर है। आज जिसे रूस में हम बहुत सुविधा संपन्न कहें वह भी अमरीका के गरीब से पीछे खड़ा हुआ है। लेकिन यह बहुत आकस्मिक नहीं है। लेकिन चिंतनीय तो है ही। क्या यह बहुत विचारणीय नहीं मालूम होता कि पचास वर्ष की समाजवादी व्यवस्था के बाद भी रूस एक बड़ा गरीब मुल्क है? दस सालों से तो अपना भोजन भी खुद पैदा नहीं कर पा रहा है। आप ही अपना भोजन बाहर से मंगा रहे हैं ऐसा नहीं, रूस भी दस सालों से पूंजीवाद मुल्कों से भोजन खरीद रहा है। समाजवादी पेट को भी पूंजीवादी हाथों को ही भरना पड़ेगा, तो समाजवाद का क्या होगा? रूस में लिथार्जी वापस लौट आई है। असल में पूंजीवाद एक व्यक्तिगत प्रेरणा देता है प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति पैदा करने की। वह प्रेरणा खत्म हो जाए तो फिर एक ही रास्ता है पीछे से बंदूक लगाओ, लेकिन पीछे से बंदूक की व्यवस्था स्थाई व्यवस्था नहीं हो सकती है।
मैंने सुना है, ख्रुश्चेव के संबंध में एक मजाक। ख्रुश्चेव एक पार्टी-मीटिंग में बोल रहा था और बोलते वक्त वह स्टैलिन की निंदा कर रहा था। तो एक आदमी ने पीछे से खड़े होकर कहा कि महाशय, स्टैलिन के जिन कामों की आप निंदा कर रहे हैं और कह रहे हैं कि लाखों लोगों की हत्या की, साइबेरिया भेजा, जेल में डाला, सारे मुल्क को खून में डुबो दिया। जो ये बातें आप कह रहे हैं, जब स्टैलिन यह सब कर रहा था तब भी आप स्टैलिन के साथ थे। तब आप कहां चले गए थे? ख्रुश्चेव एक मिनट के लिए चुप हो गया। फिर उसने कहा, जिन महाशय ने यह बात कही है--कृपा करके अपना नाम और पता बता दें। लेकिन वह आदमी फिर नहीं उठा। फिर ख्रुश्चेव ने कहाः आप कृपा करके उठ कर अपनी शक्ल ही दिखा दें, लेकिन उस आदमी का कोई पता नहीं चला। फिर ख्रुश्चेव ने कहा कि जिस वजह से आप अब दोबारा नहीं उठ रहे हैं उसी वजह से मैं भी चुप रह गया था। जिंदा रहना था तो चुप रहना जरूरी था।
पूंजीवाद संपत्ति पैदा करवाता है बड़े सहज ढंग से। किसी के पीछे कोई कोड़ा नहीं है, किसी के पीछे बंदूक नहीं है, लेकिन व्यक्ति की अपनी एक छोटी

सी दुनिया है, उसकी अपनी प्रेरणा है। अगर मेरी पत्नी बीमार है तो मैं रात भर काम कर सकता हूं लेकिन अगर कोई मुझसे कहे कि मनुष्यता बीमार है तो मैं सोचूंगा--होगी! मनुष्यता इतने दूर की बात हो जाती है कि उससे कोई संबंध नहीं बनता। उससे कोई प्रेरणा पैदा नहीं होती। अगर मुझसे कोई कहता है कि मेरे बेटे को पढ़ाना है तो मैं गड्ढा खोद सकता हूं भरी धूप में, लेकिन कोई मुझे कहता है कि मनुष्यता को शिक्षित करना है, तो बात धुएं में खो जाती है। कहीं मेरे ऊपर उसकी कोई चोट नहीं पहुंचती है। अगर कोई मुझसे कहता है कि एक घर बनाना है अपने लिए। अपने लिए छाया करनी है और बगिया बनाना है जिसमें फूल खिलेंगे, तो समझ में आती है बात। जब कोई राष्ट्र के बगीचे की बात करने लगता है तब बात खो जाती है।
आदमी की चेतना का दायरा बहुत छोटा है, वैसे ही जैसे दीये का प्रकाश चार-पांच फुट के आस-पास पड़ता है। ऐसे ही आदमी की चेतना है। उसकी चेतना बहुत छोटे से घेरे पर पड़ती है। जिस घेरे पर पड़ती है, उसी का नाम परिवार है। अभी आदमी परिवार से ज्यादा बड़े घेरे के योग्य नहीं है। परिवार के बाहर जैसा बड़ा घेरा होता जाता है, वैसा ही आदमी सुस्त होता चला जाता है, उसकी प्रेरणा खोती चली जाती है। राष्ट्र, मनुष्यता, मनुष्य-जाति, विश्व इतने बड़े घेरे हैं कि मनुष्य की चेतना पर इनका कोई कहीं परिणाम नहीं होता। पूंजीवाद ने उसकी व्यक्तिगत चेतना के आधार पर संपत्ति के सृजन की एक दौड़ पैदा की है और पूंजीवाद ने संपत्ति पैदा की है, ज्ञान पैदा किया है।
ईसा के मरने के अठारह सौ पचास वर्ष में जितना ज्ञान दुनिया में पैदा हुआ, पूंजीवाद के डेढ़ सौ वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ, इधर पंद्रह वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ। पिछले पंद्रह वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ उतना इधर पांच वर्षों में ज्ञान पैदा हुआ है। पुरानी दुनिया जहां अठ्ठारह सौ पचास वर्ष मे जितना काम करती थी वह पूंजीवाद की दुनिया पांच वर्ष में पूरा कर रही है। एक चमत्कार है, लेकिन हम पूंजीपति को गाली दिए जा रहे हैं बिना यह समझे कि वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां से संपत्ति बरस जाएगी। वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां वह प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति के सृजन में संलग्न कर देगा। वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां से धीरे-धीरे संपत्ति अतिरेक में, एफ्लुएंस में हो जाएगी और जिस दिन संपत्ति अतिरिक्त हो जाएगी, उस दिन पूंजीवाद का बेटा सहज पैदा होगा।
मैं जब समाजवाद से सावधान की बात करता हूं तो मेरा मतलब है गर्भ का काल पूरा होने दें। पूंजीवाद गर्भ का काल है, उसके नौ महीने पूरे हो जाने दें। पूंजीवाद की ऐतिहासिक प्रक्रिया को पूरा हो जाने दें। मार्क्स को भी कल्पना न थी कि रूस से पूंजीवाद समाप्त होगा, क्योंकि रूस में तो पूंजीवाद था ही नहीं। मार्क्स की कल्पना ही नहीं थी कि चीन साम्यवादी हो जाएगा, क्योंकि चीन तो अत्यंत दरिद्र था। मार्क्स की भी कल्पना थी कि अमरीका या जर्मनी में पूंजीवाद पहले टूटेगा। लेकिन टूटा रूस में; टूटा चीन में। तोड़ने की कोशिश चलती है हिंदुस्तान में। ये सब गरीब मुल्क हैं जिनके पास पूंजी की व्यवस्था ही नहीं है, लेकिन इनके पास गरीबों का बहुत बड़ा समूह है। उस समूह की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है।
मार्क्स का चिंतन तो बहुत वैज्ञानिक था। वह ठीक कह रहा था कि जहां पूंजीवाद अपनी ठीक व्यवस्था को विकसित कर लेगा, वहां से उसको विदा हो जाना पड़ेगा; क्योंकि जब संपत्ति ज्यादा हो जाएगी तो व्यक्तिगत संपत्ति का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। लेकिन उसे पता नहीं था कि जब क्रांतियां होंगी तब पूंजीवाद का, संपत्ति का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। लेकिन उसे पता नहीं था कि जो क्रांतियां होंगी वह पूंजीवाद के संपत्ति के पैदा करने से नहीं, वह गरीब की ईर्ष्या को भड़का कर हो जाएंगी।
जिन मुल्कों में समाजवाद आया, वे गरीब हैं। आना चाहिए था अमरीका में, वहां वैसा समाजवाद नहीं आया, लेकिन वहां एक अर्थ में समाजवाद आ रहा है चुपचाप, साइलेंटली। असल में जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह बैंड-बाजा बजा कर नहीं आता, जो भी महत्वपूर्ण है, वह चुपचाप आता है। बीज टूटता है तो कोई खबर नहीं होती और सूरज निकलता है तो कोई घोषणा नहीं होती। जिंदगी में

जो भी महत्वपूर्ण है, चुपचाप आता है। आ जाता है तभी पता चलता है कि आ गया। लेकिन जो भी बैंड-बाजे बजा कर आता, समझना कि कुछ जल्दी आने की कोशिश चल रही है। समाजवाद बैंड-बाजे बजा कर आना चाहता है और बिना इस बात को जाने हुए कि पूंजीवाद पूरा न हो तो समाजवाद नहीं आ सकता है।
आज हिंदुस्तान में वह संपत्ति को बांट ले और पूंजी की बढ़ती हुई बनती हुई बिल्कुल प्राथमिक व्यवस्था को तोड़ दे, तो क्या होगा। गरीब की ईर्ष्या तुष्ट होगी, लेकिन गरीब और गरीब होगा। गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब भूखों मरेगा। गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब अपने हाथे से आत्मघात कर लेगा।
हिंदुस्तान में पूंजी की बनती हुई व्यवस्था को सब तरह का सहयोग चाहिए। आज तो हिंदुस्तान को पूंजीवाद होने का ठीक अर्थों में निर्णय लेना चाहिए कि हम पचास वर्ष में ठीक पूंजीवाद पैदा कर लें। समाजवाद उसके पीछे आने ही वाला है, अपने आप आ जाएगा। उसे लाने को किसी इंदिर ाजी की जरूरत नहीं पड़ेगी, उसे लाने के लिए किसी की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह आ जाएगा, क्योंकि मेरी समझ ऐसी है कि पूंजीवाद कौन लाया? पूंजीवाद आया। जब सामंतवाद की व्यवस्था उस जगह पहुंच गई तो पूंजीवाद आया। समाजवाद को लाने की जरूरत नहीं है। समाजवाद भी आएगा लेकिन धैर्य चाहिए। वह धैर्य बिल्कुल नहीं है और अधैर्य इतना नुकसान कर सकता है, जिसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। फिर कौन हिसाब लगाएगा?
मैंने सुना है, एक बार रथचाइल्ड के पास एक समाजवादी गया और उसने जाकर कहा कि तुमने सारे देश की संपत्ति हड़प कर ली है। बांट दो तो सारा देश अमीर हो जाएगा। रथचाइल्ड ने उसकी बात सुनी, कागज पर कुछ हिसाब लगाया और उससे कहा कि यह छह पैसे आपके हिस्से पड़ते हैं, आप लीजिए और जो-जो आएंगे उनके हिस्से जो पड़ता है, उनको देता जाऊंगा। मेरे पास जितनी संपत्ति है, अगर मैं सारी दुनिया में बांटूं तो एक-एक आदमी को छह-छह पैसे बांट दूंगा। जो भी आएगा इनकार नहीं करूंगा, लेकिन क्या आप सोचते हैं कि ये छह पैसे आपको मिल जाएंगे तो समाजवाद आ जाएगा? लेकिन रथचाइल्ड तो छह पैसे भी दे सकता था। बिड़ला, टाटा, साहू, डालमिया के पास छह पैसे भी नहीं हैं। हमारे पास पूंजीपति ही नहीं है, पूंजीपति बिल्कुल अंकुरित हो रहा है। आज बंबई में थोड़ी सुविधा दिखाई पड़ती है, लेकिन बंबई हिंदुस्तान नहीं है।
हिंदुस्तान पूरा का पूरा गरीब देश है और हिंदुस्तान पूरा का पूरा इस तरह जी रहा है जैसे औद्योगिक क्रांति के पहले यूरोप था। अभी औद्योगिक क्रांति भी यहां नहीं हो पाई और हम सपने देख रहे हैं आगे के। औद्योगिक क्रांति हो, सारा मुल्क उद्योग से भर जाए, सारा मुल्क संपत्ति पैदा करे, सारे मुल्क में करोड़ों छोटे-बड़े टाटा-बिड़ला हों तो ही वे सपने पूरे हो सकते हैं। संपत्ति मुल्क में पैदा हो जाए तो कोई टाटा, कोई बिड़ला संपत्ति के विभाजन को न रोक पाएंगे। बल्कि मेरी समझ तो यह है कि वे ही संपत्ति इतनी पैदा कर जाएंगे कि वह बांटी जा सके, अन्यथा वह बांटी भी नहीं जा सकती। समाजवाद से सावधान होने का यह मतलब नहीं है कि मैं समाजवाद का शत्रु हूं। मैं तो समझता हूं, आज जो समाजवादी हैं वे समाजवाद के शत्रु हैं, क्योंकि उन्हें पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। वे जिस शाखा को काट रहे हैं उसी पर बैठे हुए हैं। वे गिरेंगे, अपने साथ सबको लेकर डूब जाएंगे। हिंदुस्तान बहुत लंबे समय से गरीब है। सोच-विचार कर कदम उठाना। कहीं ऐसा न हो कि जो संपत्ति पैदा हो रही है, उसकी व्यवस्था टूट जाए। और उसे रोज टूटता देखते हैं, लेकिन हम अंधे मालूम होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि हमने तय कर लिया है कि हम आंख खोल कर नहीं देखेंगे। सरकार जिस काम को हाथ में लेती है, वही नुकसान पहुंचाने लगता है। निजी उद्योगों में जितनी संपत्ति लगी है, सरकारी उद्योगों में उससे दुगुनी लगी है; लेकिन सब सरकारी उद्योग नुकसान पहुंचा रहे हैं और सरकार कहती है कि बाकी जो निजी उद्योग हैं वे भी सरकार के हो जाएं तो हम लाभ ही लाभ पहुंचा देंगे।
यह भी ध्यान रहे कि समाजवाद की आड़ में कौन खड़ा है। समाजवाद की बात चलती है, लेकिन जो आता है वह होता है राज्यवाद। समाजवाद का नाम चलता है, सोशलिज्म का, लेकिन जो आता है वह होता है स्टेट कैपिटलिज्म, वह होता है

राज्य-पूंजीवाद। समाजवाद का मतलब है समाज के हाथ में संपत्ति हो, लेकिन समाज के हाथ में संपत्ति कहां आती है? हां, समाज के हाथ से सारी संपत्ति राज्य के हाथों में पहुंच जाती है। जहां बंटे हुए पूंजीपति थे बहुत, वहां एक ही पूंजीपति रह जाता है--राज्य, और राज्य की कुशलता हम देख रहे हैं। हमारे मुल्क में राज्य जितना अकुशल है, उतना गांव का छोटा सा दुकानदार भी अकुशल नहीं है। आज राज्य कितना मूढ़ सिद्ध हो रहा है, उतना हिंदुस्तान का साधारण सा किराना बेचने वाला और ठेले पर काम करने वाला आदमी भी उतना मूढ़ नहीं है। इस राज्य के हाथ में सारी संपत्ति दे देने का खयाल है, सारे उत्पादन के स्रोत दे देने का खयाल है। अगर हिंदुस्तान ने मरने का ही तय कर रखा है, तब बात दूसरी है!
इस राज्य के हाथों में जाकर खतरा होगा और यह भी ध्यान रहे कि राज्य की सत्ता जिनके हाथ में है, वे वैसे ही पागल हो जाते हैं। लेकिन अब वे संपत्ति की सत्ता को भी दूसरों के हाथों में देखने के लिए राजी नहीं हैं इसलिए संपत्ति की सत्ता भी अपने हाथ में चाहते हैं। असल में राज्य के मद में जो पागल हैं, वे चाहते हैं कि संपत्ति की ताकत भी उनके हाथ में हो, तब संपूर्ण शक्ति उनके हाथ में हो जाती है--धन की भी। राज्य की भी अकेले राज्य की शक्ति ही उन्हें दीवाना कर देती है, धन की शक्ति भी उनके हाथ में पहुंच जाए तब वे निरंकुश हो जाते हैं। फिर उनके ऊपर कुछ भी नहीं किया जा सकता। आखिर स्टैलिन को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका, हिटलर को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका।
क्या आपको पता है, हिटलर भी सोशलिस्ट था? उसकी पार्टी का नाम भी नेशनल सोशलिस्ट पार्टी था! वह भी समाजवादी था। माओ को हटाने के लिए भी कुछ नहीं किया जा सकता। और यह भी ध्यान रहे कि आज दुनिया में राज्य के हाथ में इतनी ताकतें हैं कि अगर धन की ताकत भी उसके हाथ में चली जाए तो व्यक्ति बिल्कुल नपुंसक--इंपोटेंट हो जाता है। पूरा राष्ट्र नपुंसक हो जाता है। फिर व्यक्ति के पास कोई शक्ति नहीं रह जाती।
यह शायद आपको पता न हो कि राजनीतिक स्वतंत्रता हो, आर्थिक स्वतंत्रता हो, तो ही व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता शेष रहती है। अगर आर्थिक और राजनीतिक शक्तियां एक ही ग्रुप के हाथ में चली जाएं तो व्यक्ति के पास विचार की कोई स्वतंत्रता नहीं रह जाती। रूस में विचार की कोई स्वतंत्रता नहीं है। चीन में भी नहीं है, हिंदुस्तान में भी कल नहीं होगी। लेकिन यह एक-एक कदम आती हैं बातें, पहले से पता नहीं चलता है।
एक व्यक्ति की संपत्ति छीन लो, संपत्ति के छिनने के साथ ही उसके व्यक्तित्व का नब्बे प्रतिशत हिस्सा समाप्त हो जाता है। नब्बे प्रतिशत विदा हो गया! संपत्ति छिनते ही उसके सोच-विचार की क्षमता भी छिन जाती है, क्योंकि उसके पास व्यक्ति होने की सामर्थ्य ही क्षीण हो गई। राज्य के पास सारी ताकत पहुंच जाए तो व्यक्ति की हत्या हो जाएगी। इस समय सारी दुनिया में, इस देश में भी, सबसे बड़ा सवाल जो है वह यह है कि व्यक्ति को कैसे बचाया जाए। राज्य हड़प लेना चाहता है सब, लेकिन इस ढंग से हड़पता है और वह लोगों को समझा कर हड़पता है। वह कहता है, तुम्हारे ही हित में हड़प रहे हैं। यह जो हम संपत्ति और उत्पादन के साधन अपने हाथ में लेते हैं वह तुम्हारे लिए, इसलिए जयजयकार भी होगा और वे ही लोग जयजयकार करेंगे जिनकी गर्दन पर फंदा कसा जा रहा है। वे ही लोग जयजयकार करेंगे जो फांसी पर लटक जाएंगे। उन्हें पता भी नहीं चलेगा। संपत्ति एक बार राज्य के हाथ में चली गई तो राज्य निरंकुश है, फिर राज्य के सामने व्यक्ति की क्या सामर्थ्य है, फिर व्यक्ति की क्या हैसियत, व्यक्ति की क्या आत्मा है?
रूस में पचास साल से पचास आदमियों का एक छोटा सा ग्रुप, एक छोटा सा समूह मालिक बन बैठा है। उस ग्रुप के हाथ के बाहर ताकत नहीं जाती है। स्टैलिन मरे, चाहे ख्रुश्चेव आ जाएं, चाहे कोसीगिन रहें, चाहे ब्रुझनेव हों, कोई भी हो, वह एक पचास आदिमियों का छोटा सा गु्रप सारे मुल्क की छाती पर हावी है। कोई इनकार नहीं हो सकता, क्योंकि विरोध करने के पहले जबान कट जाए, इनकार करने के पहले आदमी का कोई पता न चले। राज्य के हाथ में जब पूरी शक्ति हो तो व्यक्ति क्या कर सकेगा? इसलिए ध्यान रहे, राज्य की शक्ति

निरंतर कम करनी है, बढ़ानी नहीं है; क्योंकि अंततः एक ऐसा समाज चाहिए जिसमें राज्य एक कामचलाऊ व्यवस्था मात्र रह जाए।
मैं नहीं सोचता कि एक खाद्यमंत्री का कोई ज्यादा मूल्य होना चाहिए। क्या मूल्य होना चाहिए? घर में एक रसोइए का जो मूल्य होता है, प्रांत के लिए रसोइए का--वही मूल्य है खाद्यमंत्री का। वह एक बड़ा रसोइया है। अगर अच्छा खाना प्रांत को खिलाता है तो कभी-कभी उसकी प्रशंसा करनी चाहिए, लेकिन रसोइए से ज्यादा नहीं। कभी टिप भी देनी चाहिए उसको, लेकिन रसोइए से ज्यादा नहीं। लेकिन खाद्यमंत्री रसोइया नहीं है। उसके पास ताकत है। लेकिन वह यह जानता है कि उसकी ताकत में एक कमी है और वह कमी यह है कि लोगों के पास व्यक्तिगत संपत्ति है और व्यक्तिगत संपत्ति बगावत कर सकती है और व्यक्तिगत संपत्ति विरोध कर सकती है और जिसके पास व्यक्तिगत संपत्ति है उसके पास व्यक्तिगत सोच-विचार का मौका है। यह भी वह छीन लेना चाहता है। राजनीतिज्ञ बहुत एंबीशियस है। वह बहुत महत्वाकांक्षी है। वह सारी शक्ति को अपने हाथ में ले लेना चाहता है। जिस दिन राज्य के हाथ में पोलिटिकल पॉवर और इकॉनामिक पॉवर दोनों हो जाते हैं, उस दिन क्रांति का, बगावत का, विद्रोह का कोई उपाय नहीं रह जाता।
यह कैसे मजे की बात है कि रूस में क्रांति हुई, लेकिन रूस अब अकेला मुल्क है जहां क्रांति नहीं हो सकती; क्योंकि राज्य के पास इतने अदभुत साधन हैं। सब दीवारों के पास कान हैं। राज्य का जाल सब तरफ फैला हुआ है। पति भी अपनी पत्नी से बोलते वक्त दो दफा सोच लेता है कि वह जो कह रहा है; वह कहना है, नहीं कहना है; क्योंकि क्या भरोसा, पत्नी खबर कर दे। बाप अपने बेटे से भी खुल कर बात नहीं कर पाता, क्योंकि खुल कर बात करना खतरनाक है। हो सकता है बेटा यंग कम्युनिस्ट हो, जवान कम्युनिस्ट के ग्रुप का सदस्य हो और खबर पहुंचा दे। क्योंकि एक-एक बेटे को समझाया जा रहा है, कि बाप की कोई कीमत नहीं है, कीमत है राष्ट्र की। पत्नी की कोई कीमत नहीं है, कीमत है समाज की।
समाजवाद एक बड़ी भ्रांत बात समझा रहा है कि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है, जब कि एकमात्र कीमत व्यक्ति की है। समाज है क्या? समाज एक कोरा शब्द है, व्यक्ति है वास्तविक, व्यक्ति है यथार्थ। समाज तो सिर्फ जोड़ है। लेकिन समाजवाद ने इतना शोरगुल मचाया है कि जो नहीं है उसकी कीमत है--समाज की; और जो है उसकी कोई कीमत नहीं है--व्यक्ति की; कोई कीमत नहीं है। इसलिए व्यक्ति को समाज की बलिवेदी पर चढ़ाया जा सकता है। हमेशा से व्यक्ति को चढ़ाया जाता रहा है ऐसे देवताओं के लिए, जो नहीं हैं--कभी भगवान के लिए, कभी काली के लिए, कभी किसी यज्ञ में। अब नया देवता है समाज और उसके पीछे असली देवता खड़ा है राज्य। इन पर व्यक्ति को चढ़ाया जा रहा है। काट डालो सबको, क्योंकि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है, कीमत है समाज की।
समाज कहां है? उससे कहीं मिलना नहीं हुआ। बहुत खोजता हूं, सब जगह जाता हूं। पूछता हूं, समाज कहां है? जगह-जगह पता मिलता है कि वहां मिलेगा। वहां जाता हूं, वहां भी व्यक्ति ही मिलते हैं। जब भी मिलेगा, व्यक्ति मिलेगा। व्यक्ति का मूल्य चरम है--अल्टीमेट वैल्यू है। व्यक्ति के मूल्य को खोना खतरनाक है। हां, निश्चित ही किसी दिन समाजवाद आऐगा, लेकिन व्यक्ति को समाप्त करके नहीं, व्यक्ति को तृप्त करके, व्यक्ति को फुलफिल करके, व्यक्ति को पूरा करके। व्यक्ति को मिटा करके जो समाजवाद आता है, उससे सावधान होने की जरूरत है। वह समाजवाद नहीं है, वह व्यक्ति की हत्या है और समाजवाद के पीछे खड़ा है स्टेट, खड़ा है राज्य और खड़े हैं राजनीतिज्ञ। उनको कठिनाई मालूम होती है कि ताकत कहीं भी बंटी हो। सारी ताकत उनके हाथ में होनी चाहिए। और यह ध्यान रहे, यह अंतिम बात आज कहना चाहता हूं कि राज्य के पास इतनी ताकतें कभी भी न थीं, जितनी आज हो सकती हैं। क्योंकि टेक्नालॉजी ने ऐसा विकास किया है, जिसका हमें पता नहीं।
अभी मेरे एक मित्र ने एक चित्र मेरे पास भेजा। वह चित्र देख कर मैं कांप गया। उस रात मैं सो नहीं सका, बहुत चिंतित हो उठा, लेकिन शायद ही कहीं कोई चिंता उस संबंध में हुई हो। सारी दुनिया में खबरें छपीं। एक वैज्ञानिक ने एक घोड़े की खोपड़ी को काट कर उसमें एक इलेक्ट्रोड रख दिया है,

एक यंत्र रख दिया है भीतर, खोपड़ी बंद कर दी गई। घोड़े को कुछ पता नहीं। अब वायरलेस से उस घोड़े को कहीं से हजारों मील दूर से इशारा किया जा सकता है। जो भी इशारे किए जाएंगे घोड़े को वही करना पड़ेगा, क्योंकि घोड़े को लगेगा कि वे इशारे उसके भीतर से आ रहे हैं। हजार मील दूर से वह वैज्ञानिक कहे कि घोड़ा पैर उठाए, इशारा करे पैर उठाने के तो घोड़ा पैर उठाएगा। कहे, नाचो, तो वह नाचेगा।
एक मित्र ने मुझे वह तस्वीर भेजी और उसने कहा कि कितना बड़ा आविष्कार है। मैंने उसे वापस तस्वीर भेजी और लिखा कि अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण! क्योंकि राज्य यह इलेक्ट्रोड आज नहीं कल आदमी की खोपड़ी में भी लगा देगा। पता नहीं चलता न! फिर विद्रोह असंभव है। केमिकल रिवोल्यूशन हो रहा है, कुछ ऐसे ड्रग्स खोज लिए गए हैं जो क्रांति को असंभव कर दें, क्योंकि यह बात पकड़ ली गई है कि जो लोग विद्रोही होते हैं, उनके शरीर में, उनके व्यक्तित्व में कुछ तत्व होते हैं जो गैर-विद्रोह में नहीं होते। तो अब ऐसे ड्रग्स एल एस डी, मेस्कलीन हैं ये, और-और ड्रग्स भी खोजे जा रहे हैं। कल यह हो सकता है कि आपके गांव के रिजर्वायर में, तुलसीलेक में, पवईलेक में केमिकल्स डाल दिए जाएं, पूरा गांव पिए, पता भी न चले कि पानी में कुछ है और गांव में सारे व्यक्तियों के भीतर से वे तत्व क्षीण हो जाएं जो बगावत कर सकते हैं, जो कह सकते हैं, "नो", नहीं, वे तत्व विदा हो जाएं!
राज्य के हाथ में आज पूरी ताकत जाना बहुत खतरनाक है, क्योंकि उसके पास इतनी टेक्नालॉजी है कि व्यक्ति को बिल्कुल ही पोंछ सकता है। माइंड-वॉश की नई-नई ईजादे हैं। किसी भी आदमी की स्मृति पोंछी जा सकती है। छह महीने आदमी को बंद कर दिया जाए और इलेक्ट्रिक के शॉक हैं, केमिकल्स ड्रग्स हैं और माइंड-वॉश के मेथड्स हैं, उससे उसकी स्मृति पोंछी जा सकती है। अगर वह कहता है कि मैं विरोधी हूं तो उसकी स्मृति विदा हो जाएगी, उसे पता ही नहीं रहेगा कि मैं कौन हूं। अगर वह कहता है कि मेरा यह खयाल है तो उसका वह खयाल खो जाएगा, क्योंकि वह यही नहीं बता सकेगा कि मैं कौन हूं, मेरा खयाल क्या है। वह छोटा बच्चा हो जाएगा, उसको क ख ग से फिर सीखना पड़ेगा। उसे भाषा, नाम सब फिर से सीखने पड़ेंगे।
जब इतनी ताकत विज्ञान दे रहा हो राज्य को, और धन की भी सारी ताकत राज्य
के हाथ में हो, और प्रशासन की भी सारी ताकत राज्य के हाथ में हो, तो हम अपने हाथ से मनुष्य की हत्या का आयोजन कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ इस योग्य नहीं है। सच तो यह है कि राजनीतिज्ञ ने मनुष्य के इतिहास में जो किया है, उससे सिवाय अयोग्यता के उसने योग्यता कभी भी सिद्ध नहीं की। राजनीतिज्ञ के हाथ से सत्ता वापस लौटनी चाहिए, उसे बढ़ाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह भी जानता है कि अगर वह कहे कि राज्य के हाथ में सब होना चाहिए तो लोग कहेंगे कि नहीं, तो वह एक दूसरा चेहरा बनाता है, वह कहता है समाज के हाथ में सब होना चाहिए। समाज के पास तो कोई हाथ नहीं है, इसलिए फिर राज्य के हाथ में ही सब चला जाता है।
आज सोशलिज्म के नाम से दुनिया में जो भी चल रहा है, वह स्टैट कैपिटलिज्म है, वह राज्य-पूंजीवाद है। और मैं मानता हूं कि राज्य-पूंजीवाद से व्यक्ति-पूंजीवाद श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ इसलिए है कि व्यक्ति स्वतंत्र है, श्रेष्ठ इसलिए है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूंजी पैदा करने की प्रेरणा है, श्रेष्ठ इसलिए है कि शक्ति विभाजित और विकेंद्रित है, श्रेष्ठ इसलिए है कि संपत्ति अगर कल अतिरिक्त मात्रा में पैदा हुई तो समाजवाद आएगा, आना चाहिए। लेकिन लाना नहीं है, आना चाहिए। लाया हुआ समाजवाद खतरनाक सिद्ध होगा। आने दें, लेकिन आएगा कैसे?
एक माली को बीज में से अंकुर निकालना है, तो अंकुर आएगा कि निकालना पड़ेगा? अगर निकाला, तो संभावना है बीज भी टूट जाए और अंकुर न निकले। लेकिन आने देना है तो माली क्या करे? माली वह व्यवस्था करे जिससे अंकुर आता है। व्यवस्था करे खाद की, बीज को डाले जमीन में, पानी डाले, सूरज को आने दे, झाड़ को हटा दे--आएगा बीज, जरूर आ जाएगा, अंकुर भी फूटेगा, वृक्ष भी बड़ा होगा। अगर समाजवाद लाना हो तो पूंजीवाद के बीज को ठीक से सिंचित करने की जरूरत है। यह मेरी बात लोगों को उलटी मालूम पड़ती है। पर यह उतनी ही सीधी और

साफ है। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित होता है तो उसके भीतर से समाजवाद आता ही है, लेकिन पूंजीवाद अपना काम पूरी तरह कर ले तब विदा हो।
लेकिन आज तो पूंजीवाद जो है वह भी डरा हुआ है। वह भी हिम्मत से नहीं कह सकता कि पूंजीवाद के होने का भी कोई कारण है। वह भी कहता है कि नहीं, समाजवाद ठीक है। उसके पास भी अपना दर्शन नहीं है। वह भी भयभीत है, वह भी चारों तरफ भीड़ से डरा हुआ है। वह भी नारे और झंडे और आवाजों से घबरा गया है। वह कहता है, तो समाजवाद ही ठीक। बड़े से बड़ा पूंजीपति, मैं देखता हूं, वह घबड़ा रहा है। उसे लग रहा है कि उसने कोई पाप किया है।
बड़े आश्चर्य की बात है। पूंजीपति ने इतने बड़े समाज को जिंदा रखने की व्यवस्था की, इतने अधिक मनुष्यों को जीवित रखने का उपाय किया, संपत्ति पैदा की, गुलामी खत्म की, मनुष्य की जगह मशीन को लाने का उपाय किया और अंततः समाजवाद उससे आएगा, लेकिन वही पूंजीवाद की व्यवस्था में जो कारीगर है वह भी घबरा गया है। आइजनहावर ने लिखा है कि एक कम्युनिस्ट से मैं बातें करता था तो मैं उत्तर नहीं दे पाता था, क्योंकि मुझे भी लगता तो यही था कि यही ठीक कह रहा है। आइजनहावर के पास भी तर्क नहीं है। पूंजीवाद के पास तर्क नहीं है, पूंजीवाद के पास दर्शन नहीं है तो पूंजीवाद मरेगा।
मैं चाहता हूं, पूंजीवाद के पास अपना तर्क हो, अपना दर्शन हो, ताकि वह ठीक से जी सके और समाजवाद को जन्म देने योग्य हो सके। समाजवाद पूंजीवाद की संतान है और बाप अगर अस्वस्थ रहे तो ध्यान रखना, बेटा स्वस्थ होने वाला नहीं है। लेकिन बाप को मार कर बेटे को पैदा करने की कोशिश चल रही है। मां की हत्या करके गर्भ निकालने की कोशिश चल रही है। इन सब नासमझों से सावधान होने की जरूरत है।
संबंधित विषय पर आगे हर कोण से, हर पहलू से चार लंबी वार्ताओं में अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हूं। एक-एक बात पुनर्विचार करने के योग्य है, एक-एक विचार से ठीक समझ लेने, सोचने योग्य है। जरूरी नहीं है कि जो मैं कहूं वह ठीक ही हो। वह गलत हो सकता है, इसलिए सोचने के लिए निमंत्रण से ज्यादा मेरा कोई आग्रह नहीं है। सुहृदय श्रोता यदि समाजवाद पर इस दृष्टि से सोच सकें, तो शायद वह पूरे देश के भी काम आ सकता है।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का सातवां प्रवचन

धर्म-विरोधी तथाकथित समाजवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि हम तो स्वयं की आत्मा को पाना चाहते हैं, और आपने कल जो बातें कहीं उनसे स्वयं की आत्मा को पाने का क्या संबंध है?

संबंध अवश्य है। आज रूस में या चीन में अपनी आत्मा को पाने का कोई उपाय नहीं रह गया है और अगर आज रूस या चीन में मार्क्स भी पैदा होना चाहे तो पैदा नहीं हो सकता। महावीर, बुद्ध, मोहम्मद और क्राइस्ट के पैदा होने की तो बात बहुत दूर है। स्वयं मनुष्य की आत्मा की खोज भी स्वतंत्रता की एक हवा में संभव है। मनुष्य की आत्मा की स्वीकृति भी, जिसे आप समाजवाद कहते हैं, वह नहीं देता है। समाजवाद मौलिक रुप से भौतिकवादी जीवन व्यवस्था है। समाज की मौलिक धारणाओं में एक यह भी है कि मनुष्य पदार्थ से ज्यादा नहीं है। इस बात को थोड़ा समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि मेरी समझ में ऐसा समाजवाद, जो मनुष्य की आत्मा को स्वीकृति नहीं देता, बहुत घातक सिद्ध होगा।

उन मित्र ने आगे पूछा है कि यदि हमें अपनी आत्मा को खोजना है तो समाजवाद की आलोचना का इससे क्या संबंध है?

यह संबंध गहरा और सीधा है। समाजवाद मनुष्य-जाति के इतिहास में आत्मा
के विरोध में खड़ा हुआ सबसे बड़ा विचार है। दुनिया में नास्तिकता कभी भी सफल नहीं हो पाएगी और दुनिया में कोई नास्तिक समाज, कोई नास्तिक संगठन, कोई नास्तिक देश चरम आत्मिक संभावनाओं को प्राप्त नहीं कर सका। इसका कारण यह है कि नास्तिकों ने सीधे ही आत्मा और परमात्मा पर हमला बोल दिया। वे हार गए, जीत नहीं सके; लेकिन साम्यवाद ने पीछे के रास्ते से हमला बोला है और साम्यवाद ने पहली बार जमीन पर एक नास्तिक देश और एक नास्तिक समाज को पैदा कर दिया है। चार्वाक नहीं जीता, एपीकुरस नहीं जीता। जहां दुनिया के नास्तिक हार गए वहां मार्क्स, लेनिन और एंजिल्स जीत गए। रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि साम्यवाद पीछे के दरवाजे से नास्तिकता को लाता है। वह धर्म का सीधा विरोध नहीं करता है, वह सीधा विरोध धनपति का करता है और पीछे से वह यह कहता है कि अगर धनपति को मिटाना है तो धर्म को मिटाना जरूरी है, क्योंकि धर्म को बिना मिटाए धनपति को नहीं मिटाया जा सकता। वह यह भी कहता है कि अगर धनपति को समाप्त करना है तो अब तक की जो विचारधाराएं धनपति को खड़े होने का आधार बनती थीं, उनको भी गिरा देना होगा। मार्क्स की भी मान्यता थी कि सब दृष्टिकोण वर्गीय होते हैं। अगर धनपति धर्म की बात करता है तो सिर्फ इसीलिए करता है कि धर्म उसकी सुरक्षा बन जाएगा। यह धारणा आमूल भ्रांत है। धर्म का वर्ग से कोई संबंध नहीं है, न ही दर्शनों का। उत्पादन व्यवस्थाओं से बंधा है।
लेकिन मार्क्स की अतिस्थूल भौतिकवादी दृष्टि ऐसा ही देख सकती थी। इसलिए उसने पूंजीवाद को हटाने के लिए धर्म को हटाने का भी विचार दिया। उसकी दृष्टि मनुष्य के भीतर आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है--इस विचार के कारण ही तो स्टैलिन इतनी हत्याएं करने में सफल हुआ है, क्योंकि यदि आदमी केवल पदार्थ है, तो गर्दन काटने में कोई भी नहीं कटता है। पदार्थ न मरता है, न कटता है। माओ भी सुविधा से हत्या कर सकता है, क्योंकि आदमी सिर्फ पदार्थ है, वहां पीछे कोई आत्मा नहीं है। साम्यवादी पहली बार दुनिया में निस्संकोच बिना अंतःकरण की किसी पीड़ा के हत्या करने में सफल हो सके। उसका कारण केवल यही है कि आदमी की आत्मा को इनकार ही कर दिया गया है और आदमी की आत्मा के विकास और आविष्कार की जो सम्भावनाएं है वे भी क्षीण करने का प्रयत्न निरंतर चलता रहा है। इस संबंध में भी दो बातें समझ लेनी आवश्यक हैं।

पहली बात तो यह समझ लेनी आवश्यक है कि मनुष्य के भीतर जो आत्मा है उसको भी प्रकट होने के लिए सुविधाएं और परिस्थितियां चाहिए। एक बीच के भीतर पौधा छिपा हुआ है, लेकिन अभी बीच को तोड़ देंगे तो पौधा मिलेगा नहीं। पौधा छिपा है जरूर, लेकिन प्रकट होने के लिए व्यवस्था चाहिए, पानी चाहिए, खाद चाहिए, जमीन चाहिए, सूरज की किरणें चाहिए, कोई प्रेम करने वाला चाहिए जो उस बीज के भीरत से पौधे को प्रकट कर पाए। प्रत्येक आदमी के भीतर आत्मा बीज की तरह है। आदमी को काटने से मिलेगी नहीं, इसलिए प्रयोगशाला में आदमी की आत्मा कभी भी न पाई जा सकेगी। मैंने सुना है, मार्क्स ने कभी मजाक में कहा था कि मैं तुम्हारे ईश्वर को मान लूंगा अगर प्रयोगशाला की टेस्ट-ट्यूब में ईश्वर को पकड़ कर बताया जा सके और फिर उसने यह भी कहा, ध्यान रहे, भूल कर कहीं अपने ईश्वर को प्रयोगशाला की टेस्ट-ट्यूब में ले मत आना, क्योंकि जो ईश्वर टेस्ट-ट्यूब की पकड़ में आ जाएगा वह ईश्वर ही क्या रह जाएगा।
नहीं, ईश्वर को टेस्ट-ट्यूब में नहीं पकड़ा जा सकेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नहीं है। टेस्ट-ट्यूब बहुत छोटी चीज है और आदमी के शरीर को काट कर भी हम उसकी आत्मा को नहीं पकड़ पाएंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नहीं है। अगर मेरे मस्तिष्क को अभी काट दिया जाए तो वहां कोई विचार जैसी चीज नहीं मिलेगी। लेकिन विचार है। अगर आपके हृदय को काटा जाए तो वहां प्रेम जैसी कोई चीज नहीं मिलेगी, लेकिन प्रेम है। प्रमाण क्या है? प्रयोगशाला में कहीं पकड़ में आता है?
आप सिद्ध नहीं कर सकते है कि प्रेम है, क्योंकि हृदय के खोजने से, तोड़ने-फोड़ने से कहीं उसका कोई पता नहीं चलता, लेकिन फिर भी आप जानते हैं कि वह है और आप कहेंगे कि दुनिया भर की प्रयोगशालाएं सिद्ध कर दें कि प्रेम नहीं है तो भी मैं मानने को राजी नहीं हूं, क्योंकि मैंने प्रेम को जाना है--अनुभव है, पदार्थ के पार है। लेकिन समाजवाद का बुनियादी आधार अनात्मवाद है और एक बार किसी समाज ने यह स्वीकार कर लिया कि आत्मा नहीं है तो वह बीज बोना बंद कर देगा, क्योंकि जब बीज--अंकुर है ही नहीं तो फिर बीज को बोने की जरूरत नहीं है।
मनुष्य-जाति के ऊपर सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह होगा कि यदि यह स्वीकृत हो जाएगा, कि आत्मा नहीं है तो आत्मा का प्रकट होना निरंतर धीरे-धीरे बंद हो जाएगा, बीज पड़े-पड़े सड़ जाएंगे, लेकिन उनसे अंकुर नहीं आएंगे। अगर लोगों ने यह मान लिया कि बीजों में वृक्ष होते ही नहीं तो कौन बीज को बोएगा, कौन बीज को पानी देगा, कौन बीज को बड़ा करेगा?
समाजवाद की सबसे खतरनाक धारणा उसका शरीरवाद है। और यह भी ध्यान रहे
कि आत्मा को प्रकट होने के लिए जो सुविधाएं चाहिए वह समाजवाद छीन लेता हैः अभी जो समाजवाद आएगा वह निश्चित छीन होगा, क्योंकि अभी समाजवाद को लाने के लिए पहली आवश्यकता तो यह है कि आदमी की स्वतंत्रता छीन ली जाए। और आदमी की स्वतंत्रता का बहुत बड़ा हिस्सा उसकी आर्थिक स्वतंत्रता है। अर्जन की स्वतंत्रता, अर्जित के स्वामित्व की स्वतंत्रता आदमी की मूलभूत स्वतंत्रता है। मैं जो पैदा करूं वह मेरा हो सके, मैं जो निर्मित करूं वह मेरा हो सके।
मनुष्य की बुनियादी स्वतंत्रता है उसकी आर्थिक स्वतंत्रता। उसके हाथ
से आर्थिक स्वतंत्रता के छीने बिना समाजवाद स्थापित नहीं हो सकता। हां, यदि पूंजीवाद ठीक से विकसित हो जाए तो किसी आदमी की स्वतंत्रता बिना छीने समाजवाद का जन्म हो सकता है। वह जन्म होगा पूंजी के अत्यधिक हो जाने पर, उसके पहले नहीं। इसलिए अभी दुनिया में कोई भी देश, अमरीका भी, अभी उस हालत में नहीं आ सका है जहां समाजवाद सहज जन्म ले ले। लेकिन अमरीका शायद पचास वर्षों में उस जगह आ जाए। अभी तो हमें बलपूर्वक समाजवाद आरोपित करना पड़ेगा। आरोपित समाजवाद में स्वतंत्रता का हनन होगा और जितनी स्वतंत्रता मरती है, उतनी ही भीतर आत्मा के फैलने की संभावना कम हो जाती है। आत्मा के लिए स्वतंत्रता का आकाश चाहिए और जब आर्थिक स्वतंत्रता छिनती है तो दूसरा हमला मनुष्य की वैचारिक स्वतंत्रता पर होता है, क्योंकि समाजवाद के पक्षधर यह कहते हैं कि अगर हम वैचारिक स्वतंत्रता दें तो हम समाजवादी

व्यवस्था का निर्माण नहीं कर पाएंगे। इसलिए हम समाजवाद से विपरीत विचारधारा को स्वीकार नहीं करेंगे।
रूस में एक ही दल है और कैसे मजे की बात है कि एक ही दल चुनाव भी लड़ता है। इसी कारण स्टैलिन को दुनिया में जितने वोट मिलते थे, उतने किसी आदमी को कभी नहीं मिले। सौ प्रतिशत वोट स्टैलिन को मिलते थे और उसका प्रचार सारे विश्व में किया जाता था कि स्टैलिन को सौ प्रतिशत वोट मिल रहे हैं। कोई यह पूछेगा नहीं कि उसके विपरीत कौन खड़ा था। उसके विपरीत कोई खड़ा ही नहीं है। इस बात का अर्थ क्या है? इस बात का अर्थ यह है कि विचारों की कोई स्वतंत्रता नहीं है।
पिछले पचास वर्षों में रूस में अदभुत घटनाएं घटी हैं। वैज्ञानिकों को
भी सरकार आज्ञा देती है कि किस भांति सोचो। उनको भी कहती है कि कौन सा सिद्धांत निकालो, उनको भी कहती है कौन सा सिद्धांत मार्क्स के अनुकूल नहीं हैं। तो रूस में पिछले तीस वर्षों में बायोलाजी में इस तरह के सिद्धांत भी चलते रहे जो सारी दुनिया में कहीं मान्य नहीं हैं। सारी दुनिया में प्रयोगकर्त्ता कह रहे थे कि यह गलत है, लेकिन स्टैलिन की आज्ञा के अनुसार वे सही थे। स्टैलिन के मरने पर वे गलत हो गए, उसके पहले वे गलत नहीं हो सके। रूस के वैज्ञानिक भी हां में हां भर रहे थे कि यही ठीक है, क्योंकि वैज्ञानिक को भी पार्टी-निर्देश पर जीना है।
उन्नीस सौ सत्रह के पहले रूस ने दुनिया के श्रेष्ठतम बुद्धिमान लोग पैदा किए। उनके नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। लेकिन उन्नीस सौ सत्रह के बाद उस हैसियत का एक आदमी भी रूस पैदा नहीं कर सका। लियो टाल्सटाय, मैक्सिम गोर्की, तुर्गनेव, गोगोल, दोस्तोवस्की या चैखव आदि की हैसियत का एक आदमी भी रूस पचास वर्षों में पैदा नहीं कर पाया। बात क्या है? रूस ने लेखक पैदा किए, पुरस्कार दिए, विचारक पैदा किए, पुरस्कृत किए, लेकिन एक भी विचारक उस गरिमा का नहीं है जो रूस ने अपनी गरीबी के और अत्यंत परेशानी के दिनों में पैदा किए थे, जो उसने जारों की अत्यंत हीन व्यवस्था में पैदा किए। उतने विचारशील, उतने बुद्धिमान, उतने सृजनात्मक व्यक्तित्व भी रूस पैदा नहीं कर पाया। बात क्या है? वह पैदा होने की जो मूलभूत संभावना है आत्मा के जन्म और विचार की स्वतंत्रता; वही छीन ली गई है। तुर्गनेव कैसे पैदा हो? दोस्तोवस्की कैसे पैदा हो?
लेनिन भी वापस रूस में पैदा नहीं हो सकता। लेनिन को भी पैदा होने के लिए अमरीका या इंग्लैंड खोजना पड़ेगा। लेनिन भी रूस में पैदा नहीं हो सकता। सच तो यह है कि जो जानते हैं, वे कहते हैं कि लेनिन को भी जहर देकर ही मारा गया। जिस आदमी ने क्रांति की थी, जिस आदमी ने रूस को समाजवादी बनाना चाहा था, वह भी मारा ही गया। दूसरा आदमी था ट्राटस्की, जिसने क्रांति में दूसरा बड़ा हिस्सा लिया था, वह भागता फिरा था। उसका कुत्ता छूट गया था। रूस में तो कम्युनिस्टों ने उसके कुत्ते की भी हत्या कर दी और फिर मैक्सिको में जाकर उसकी भी हत्ता कर दी। मनुष्य-जाति के इतिहास में इतने बड़े पैमाने पर हत्या का खेल कहीं भी नहीं हुआ। सरल था, क्योंकि आत्मा है ही नहीं, सिर्फ पदार्थ है। तो गुड्डे गुड्डियों को मारने और काटने में क्या अंतर पड़ता है? और फिर यह भी जरूरी है कि जिनके भीतर आत्मा ही नहीं, उन मनुष्यों की स्वतंत्रता की भी क्या जरूरत है? समाजवाद अगर ठीक से सफल हो, जैसा समाजवाद आज है, तो वह प्रत्येक आदमी को मशीन में बदल लेने को तैयार है। मैंने पीछे एक बात कही है; उसे पुनः इस संदर्भ में दोहराना चाहूंगा कि मनुष्य की गुलामी पूरी तरह से तभी समाप्त होगी, जब मनुष्य के श्रम का स्थान हम पूरी तरह यंत्र से बदल डालेंगे। जिस दिन मनुष्य को श्रम करने की आवश्यकता ही न रह जाएगी और सारे स्वचालित यंत्र उसकी जगह काम करने लगेंगे, उस दिन ही श्रमिक सब तरह की दीनता से मुक्त हो सकेगा। एक मार्ग तो यह है जो कि पूंजीवाद के विकास से संभव हो सकता है। दूसरा मार्ग यह है कि यदि हम शीघ्रता करें और आज ही समाजवाद लाना हो तो हम आदमी को ही मशीन बना सकते हैं जो कि रूस और चीन में किया जा रहा है।
वह दूसरा विकल्प है कि आदमी को मशीन में बदल दो। उसे सोचने की क्या जरूरत है, और जिनकी समझ यह है कि आदमी सिर्फ शरीर ही है उनका कहना भी फिर

ठीक है, तर्कयुक्त है। उचित भोजन मिलना चाहिए, अच्छे कपड़े मिलने चाहिए, सुविधाजनक निवास मिलना चाहिए। लेकिन ठीक आत्मा भी मिलनी चाहिए, यह भी किसी समाजवादी नारे में सुना है? रोटी मिलनी चाहिए, कपड़ा मिलना चाहिए, मकान मिलना चाहिए, आत्मा भी मिलनी चाहिए। यह भी कोई समाजवादी नारा है? नहीं; आदमी को रोटी मिल जाए, कपड़े मिल जायें, मकान मिल जाए--बात समाप्त हो गई। इससे ज्यादा आदमी को जरूरत क्या है? बल्कि जो लोग इस संबंध में सोचते हैं वे तो कहते हैं, सोच-विचार से आदमी को परेशानी होती है। अच्छा है कि सोच-विचार छीन लिया जाए तो आदमी बिल्कुल निश्चिंत पशु की भांति जी सके। खाने-पीने को खूब हो, मकान हो, कपड़े हों, रहें, काम करें, सुख से जीएं। सोचने की क्या जरूरत है? सोचने से चिंता पैदा होती है, सोचने से परेशानी पैदा होती है, सोचने से बगावत पैदा होती है, सोचने से आदमी के भीतर हजार तरह की बातें उठती हैं। सुख में बाधा पड़ती है, सोचना छोड़ दो। समाजवादी कहेगा कि सुख से रहो, सोचने की क्या जरूरत है और इंतजाम करेगा कि सोचने की कोई आवश्यकता न रह जाए। व्यवस्था उसने की भी है। सबसे बड़ी व्यवस्था तो यह कि है कि, प्रत्एक बच्चे के मन में इसके पहले कि बुद्धि पैदा हो, समाजवाद की गलत-सही धारणाओं को ठूंस कर डाल दो, ताकि जब उसमें विचार पैदा हो तब तक उसकी आत्मा जंजीरों में कस गई हो।
रूस में जाकर छोटे से बच्चे से पूछो, ईश्वर है? वह कहेगा नहीं है। मेरे
एक मित्र उन्नीस सौ छत्तीस में रूस गए और उन्होंने एक स्कूल में जाकर पूछा कि ईश्वर है? तो उस स्कूल के बच्चों ने कहा, आप इतनी उमर के होकर भी ऐसा नासमझी का सवाल पूछते हैं। ईश्वर हुआ करता था, अब नहीं है। छोटे बच्चों को सिखाया जा रहा है कि कोई आत्मा नहीं, कोई ईश्वर नहीं, कोई धर्म नहीं, कोई जीवन का बड़ा मूल्य नहीं। जीवन का एक ही मूल्य है कि किसी तरह आदमी को ठीक छप्पर, ठीक मकान, ठीक भोजन, ठीक कपड़ा मिल जाए।
रूस में एक अदभुत तरह की अव्यवस्था पैदा हो गई है। रूस में दो वर्ण हैं। एक सत्ताधिकारियों या व्यवस्थापकों का और एक मैनेज्ड या व्यवस्थापितों का। रूस में वर्ग मिटे नहीं, सिर्फ नकाब बदल गई है। रूस में कुछ लोग हैं जो व्यवस्था कर रहे हैं और कुछ लोग हैं जो व्यवस्थित किए जा रहे हैं और दो वर्ग स्पष्ट बंट गए हैं। और वर्ग ही नहीं हैं। मैं कहता हूं, वह वर्ण है। वर्ग और वर्ण में थोड़ा सा फर्क होता है। वर्ग तरल होता है, एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाना आसान होता है। वर्ण निश्चित होता है, ठोस होता है। लचीला या तरल नहीं होता। जैसे कि शूद्र वर्ण है, वर्ग नहीं। क्योंकि शूद्र कुछ भी कोशिश करे तो ब्राह्मण नहीं हो सकता। कुछ भी उपाय करे तो ब्राह्मण में प्रवेश नहीं कर सकता। ब्राह्मण वर्ण है, वर्ग नहीं। उसका घेरा निश्चित है, बंधा है।
रूस में एक नई वर्ण-व्यवस्था पैदा हो रही है, जैसे हिंदुस्तान में कभी पैदा हुई थी। वह वर्ण-व्यवस्था व्यवस्थापक और व्यवस्थापित की है। उसको तोड़ने का कोई उपाय नहीं है। समस्या बहुत जटिल है और वह जो व्यवस्थापक है, वह क्यों नीचे वालों को प्रवेश करने दे? उसके अपने हित हैं, अपने न्यस्त स्वार्थ हैं।
इस भूल में मत पड़िए कि रूस में स्टैलिन को भी वही अधिकार थे जो रूस के
एक गरीब मजदूर को हैं। इस भूल में भी मत पड़िए कि रूस में समानता है या चीन में समानता है या माओ और माओ के चपरासी में कोई समान अधिकारों की बात है। आज समान हुआ ही नहीं जा सकता है, जब तक संपत्ति अतिरिक्त नहीं हो जाती। जब तक संपत्ति इतनी नहीं हो जाती कि संपति का स्वामित्व खोखला मालूम पड़े, तब तक दुनिया में सिर्फ वर्ग बदलेगे, वर्ग मिटेंगे नहीं। वर्गविहीन समाज कभी पैदा होगा तो वही समाज होगा, जिसमें संपत्ति व्यर्थ हो गई होगी। संपत्ति जब तक सार्थक है, तब तक वर्गविहीन समाज पैदा नहीं हो सकता। जिनके हाथ में संपत्ति आएगी, ताकत आएगी, वे नया वर्ग बना लेंगे।
तब मेरी अपनी दृष्टि यह है कि बजाय वर्ण का वर्ग बेहतर है; क्योंकि वर्ण सुस्थिर हो जाता है, कठोर हो जाता है। गतिमयता खो जाती है। कम से कम वर्ग में गतिमयता रहती है। एक गरीब अमीर हो सकता है, एक अमीर गरीब हो सकता है। गरीब और अमीर वर्ग हैं, वर्ण नहीं। लेकिन रूस में जो व्यवस्था है, वह

वर्णों को जन्म दे रही है और स्थापित होती चली जा रही है। स्थापित हितों और व्यवस्थापित लोगों के बीच इतनी बड़ी दरार है कि जिसको पार करना असंभव होता जा रहा है। लेकिन समाजवाद की बुनियादी धारणा पर भी थोड़ा सोच लेना जरूरी है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप समाजवाद की इस धारणा को नहीं मानते कि सबको समान होने का हक है?

इस पर थोड़ा विचार करना जरूरी है। पहली बात तो यह है कि सारे लोग समान नहीं हैं और सारे लोग समान नहीं हो सकते। समान होने के हक की बात नहीं है। सारे लोग समान हैं नहीं। यह तथ्य है। और सारे लोग समान हो भी नहीं सकते। फिर भी मैं कहता हूं, सारे लोगों को समान अवसर होना चाहिए विकास का। इसका क्या मतलब होगा? इसका मतलब होगा कि प्रत्येक व्यक्ति को असमान होने की समान सुविधा होनी चाहिए। हर आदमी जो होना चाहता है, उसे होने का समान हक होना चाहिए; लेकिन एक हक पूंजी पैदा करने का हक भी है, एक हक ज्ञान अर्जित करने का हक भी है। सारी दुनिया के लोग आइंस्टीन नहीं हो सकते, न सारी दुनिया के लोग बुद्ध या महावीर हो सकते हैं। कोई एक व्यक्ति जन्मजात आइंस्टीन होने की क्षमता लेकर पैदा होता है।
लेकिन धन के संबंध में हमने कभी यह नहीं सोचा कि धन पैदा करने की क्षमता भी उतनी ही जन्मजात है, जितनी कि कविता पैदा करने की, जितनी गणित की, जितनी दर्शन की, जितनी धर्म की। धन पैदा करने की क्षमता जन्मजात है। कोई फोर्ड पैदा नहीं किया जाता, पैदा होता है। कुछ लोग धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं और कुछ लोग धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा नहीं होते। यह तथ्य है। और अगर उन लोगों को जो धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं, धन पैदा करने से रोका जाए, तो दुनिया दीन बनेगी, दरिद्र बनेगी, समृद्ध नहीं बन सकती।
यह ऐसा ही है जैसे कल हम कहने लगें कि सारे लोगों को समान कविता करनी पड़ेगी, कोई जरूरत नहीं कि कालिदास और शेक्सपीयर ऊपर चढ़ कर बैठ जाएं। यह बरदाश्त के बाहर है। हम वर्ग-विहीन कविता का समाज बनाएंगे, हर आदमी को एक-सी कविता करनी पड़ेगी। तुकबंदी हो सकती है, शेक्सपीयर और कालिदास पैदा नहीं होंगे। फिर कविता हम सब कर सकते हैं, शब्द जोड़ सकते हैं, तुकबंदी कर सकते हैं; लेकिन कालिदास और शेक्सपीयर तुकबंद नहीं हैं। बात कुछ और है। रंग तो हम भी फेंक सकते हैं किसी पोस्टर पर, रंग हम भी पोत सकते हैं किसी कैनवस पर, लेकिन पिकासो या वानगाग जन्मजात पैदा होते हैं।
सोशलिज्म मनुष्य-जाति की जन्मजात भिन्नता को स्वीकार नहीं करता, यह बड़ी खतरनाक बात है। एक-एक व्यक्ति अपनी तरह का पैदा होता है, दूसरी तरह का नहीं। सच तो यह है कि हर आदमी अनूठा, अद्वितीय, यूनिक, बेजोड़ है; जिससे किसी दूसरे का कोई मुकाबला नहीं किया जा सकता है। इस दुनिया में सब आदमी एक जैसे पैदा भी नहीं होते। कभी पैदा नहीं हुए, इसीलिए तो प्रत्एक आदमी के पास आत्मा है।
आत्मा का मतलब है भिन्न होने की क्षमता।
श्मशानों में समानता हो सकती है, फिएट कारे एक लाख बिल्कुल एक जैसी हो सकती हैं; लेकिन दो आदमी एक जैसे नहीं हो सकते। फिएट कार के पास आत्मा नहीं है, सिर्फ यंत्र है। यंत्र समान हो सकते हैं और अगर आदमियों को समान करने की जबरदस्ती कोशिश की गई तो आदमी यंत्र के तल पर ही समान हो सकता है। उससे ऊपर के तल पर समान नहीं हो सकता। या तो आदमी को यंत्र बनाओ, वह समान हो जाएगा। आदमी जितना ऊपर चढ़ेगा, असमान हो जाएगा। जितना नीचे उतरेगा, उतना समान हो जाएगा। नींद के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। भूख के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। छाया और धूप के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। सबको मकान चाहिए, खाना चाहिए, भोजन चाहिए, स्त्री चाहिए। इन मामलों में हम पशुओं से भी समान हैं।
लेकिन जैसे ही हम ऊपर उठते हैं, एक बुद्ध, एक महावीर, एक कालिदास, एक पिकासो, एक आइंस्टीन, एक बर्ट्रेंड रसल--असमानता शुरू हो जाती है। जितने

ऊपर जाती है आत्मा, उतनी असमान होने लगती है। जितने ऊपर जाती है, उतनी सिर्फ अकेली रह जाती है। फिर महावीर या बुद्ध जैसा आदमी अकेला रह जाता है जो करोड़-करोड़ वर्षों तक दूसरा आदमी उस जैसा नहीं होगा, लेकिन हम सबको भीड़ की ईर्ष्या कह सकती है कि अब हम नहीं होने देंगे।
हम सबको समान रखेंगे--अगर एक भी समानता का यह पागलपन पैदा हो जाए जो कि सारी दुनिया में पैदा हो रहा है, तो हम मनुष्य की ऊंचाइयों को नष्ट कर देंगे और सबको लेवलिंग कर देंगे जमीन पर--सबके पास मकान, सबके पास कपड़े, सबके पास औरतें, सब काम करें--खाना खाएं, सो जाएं, सिनेमा देखें, मनोरंजन करें। इस तल पर जीवन समान हो सकता है, लेकिन समान अवसर प्रत्येक को मिलना चाहिए।
समाजवाद समान अवसर पर पहला हमला बोल देता है। वह संपत्ति पैदा करने वाले को काट देता है, छांट देता है। फिर इसके बाद वह जो विचार में असमान हैं, उनको छांटने की कोशिश में लग जाता है। वह कहता है कि हम समान करके रहेंगे, तो हम असमान विचार भी नहीं पैदा होने देंगे। अब आश्चर्य है कि रूस के पचास साल के इतिहास में कोई बड़ा विवाद नहीं हुआ--पचास साल! जब कि सच बात यह है कि मनुष्य की जिंदगी में एक भी विचार ऐसा नहीं है जिस पर विवाद न हो सके। सब विचार अपनी-अपनी जगह से देखे जाते हैं, और दूसरा आदमी जरूरी नहीं है कि राजी हो। श्रेष्ठतम विचारों का विरोध भी निश्चित है। जितनी बुद्धिमत्ता बढ़ती है, उतना विरोध भी बढ़ता है। लेकिन पचास साल में कोई बड़ा विवाद--रूस के वर्णों को मथ डाले--ऐसा कोई विचार, कोई आंदोलन, कोई विरोध, कोई बगावत, कोई विद्रोह--कोई भी नहीं। क्योंकि वे कहते हैं, हम समाजवादी व्यवस्था बनाने में लगे हैं। अभी हम विरोध नहीं कर सकते, अभी हम विद्रोह नहीं सह सकते। अभी स्वतंत्र चिंतन की सुविधा नहीं है हमारे पास। वी कैन नॉट अफर्ड। अभी हम सब स्वतंत्र चिंतन बंद रखेंगे, फिर जब सब ठीक हो जाएगा, तब हम छोड़ेंगे स्वतंत्र चिंतन को।
लेकिन ध्यान रहे, अगर पचास साल तक लोगों के पैर बांध दिए जाएं और पचास साल बाद उनसे कहा जाए कि ठीक है तुम मुक्त हो, दौड़ो, चढ़ो पहाड़; लेकिन पहाड़ तो बहुत दूर है। घर के सामने वह निकल कर चल पाए, यह भी असंभव है। चिंतन भी रुक जाए तो बंद होना शुरू हो जाता है। चिंतन को सुविधा न हो, बगावत को, तो मरना शुरू हो जाता है।
जिन मित्र ने पूछा है कि आत्मा को पाने का इससे क्या संबंध है, उनसे मैं कहना चाहता हूं कि मनुष्य की आत्मा पर सबसे बड़ा खतरा है और वह यह है कि सारी दुनिया में धीरे-धीरे राजनीतिज्ञ सारे अधिकार राज्य के हाथ में केंद्रित कर लेना चाहता है। मनुष्य की आत्मा ही अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहता है और इसके खिलाफ आवाज, इसके खिलाफ विचार जरूरी है; लेकिन जब समाजवाद स्वतंत्रता पर हमला करता है, तब बड़ी तरकीब से करता है। उसकी तरकीब है कि हम समानता लाना चाहते हैं, इसलिए स्वतंत्रता पर हमला करना जरूरी है; क्योंकि स्वतंत्रता रहेगी तो हम समानता कैसे लाएंगे!
समाजवाद फ्रीडम की बात नहीं, इक्वलिटी की बात करता है। वह कहता है, समानता पहली चीज है। जब तक समानता नहीं है, तब तक स्वतंत्रता नहीं होगी। पहले समानता चाहिए, समानता के लिए स्वतंत्रता की हत्या करनी पड़ेगी। यह चुनाव हमें ठीक से समझ लेना चाहिए कि पहला मूल्य किसका है? समानता का या स्वतंत्रता का? प्रिफरेंस किसको देना है? पूरी मनुष्य-जाति को यह निर्णय जल्दी ही लेना पड़ेगा। क्या हम समानता को ज्यादा मूल्य देते हैं या स्वतंत्रता को? ध्यान रहे, अगर स्वतंत्रता रहे तो समानता की आगे भी संभावना है, लेकिन समानता के लिए अगर स्वतंत्रता खो दी जाए, तो आगे स्वतंत्रता की कोई संभावना नहीं रह जाती, क्योंकि स्वतंत्रता एक बार खोकर वापस लाना बहुत कठिन है और समानता की जो बात है, वह बहुत अवैज्ञानिक है, अमनोवैज्ञानिक है, एंटी-साइकोलॉजिकल है।
आदमी समान नहीं है और इसलिए आदमी पर जबरदस्ती अगर हम समानता का आरोपण करेंगे तो वह आदमी को मारेगी, मिटाएगी, नष्ट करेगी। आदमी को असमान होने की, भिन्न होने की, विभिन्न होने की, विपरीत होने की, विद्रोह करने की, इनकार करने की सारी सुविधा होनी चाहिए, तभी मनुष्य की आत्मा उस स्वतंत्रता से

फलती है, फूलती है, विकसित होती है। समाजवाद अभी मनुष्य की आत्मा के विरोध में सबसे बड़ी आवाज है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि समाजवाद गरीबों का कल्याण करना चाहता है। क्या आप गरीबों के कल्याण का विरोध करते हैं?

मैं और गरीबी के कल्याण का विरोधी भला कैसे हो सकता हूं? कोई भी क्यों होगा? लेकिन यह ध्यान रहे कि गरीबों का कल्याण करने की आवाज हजारों सालों से चलती है और न मालूम कितने गरीबों के कल्याण करने वाले पैदा हो गए; लेकिन कल्याण गरीबों का नहीं होता, सिर्फ गरीबों के कल्याण की आवाज पर वह जो कल्याण करने वाले हैं, अपना कल्याण कर लेते हैं। और गरीब अपनी जगह पड़ा रह जाता है। उस गरीब के कल्याण से उसका कोई संबंध नहीं होता। लेकिन गरीब साथ जरूर दे देता है। साथ दे देता है, यह आवाज सुन कर कि हमारे कल्याण के लिए यह सब हो रहा है, कुर्बान भी कर देता है, गोली भी खा लेता है, मर भी जाता है। समाजवाद के लिए जो शहीद होते हैं, वे और हैं समाजवाद की ताकत जिनके हाथ में आती है, वे और हैं। समाजवाद के लिए जो मरेगा, वह गरीब होगा। समाजवाद की जिसके हाथ में ताकत आएगी, वह गरीब नहीं है। वह फिर अमीरों का नया वर्ग होगा। असल में ताकत जिसके हाथ में आ जाएगी, वह तत्काल अमीर हो जाएगा। आदमी आदमी में फर्क क्या है? आज जो गरीब की तरफदारी कर रहा है, जैसे ही
वह कल शक्ति में पहुंचता है, उसके अपने न्यस्त स्वार्थ हो जाते हैं। अब उसे शक्ति में रहना जरूरी हो जाता है, तो वह जिनके ऊपर सीढ़ी बना कर आया था, उन सीढ़ियों को काटना शुरू कर देता है, क्योंकि उन्हीं सीढ़ियों से कल दूसरा भी कोई ऊपर आ सकता है। गरीब का कल्याण कभी भी नहीं हुआ। हां गरीब के कल्याण पर आंदोलन बहुत हुए, क्रांतियां बहुत हुई, हत्याएं बहुत हुई। और गरीब का कल्याण नहीं हुआ। अभी गरीब के कल्याण से थोड़ा चौंकने की जरूरत है।
अब जब भी कोई आदमी कहे कि मैं गरीब का कल्याण चाहता हूं, तब जरा सम्हल जाने की जरूरत है कि कोई खतरनाक आदमी आया है। अब यह फिर गरीब की छाती पर पैर रखेगा और गरीब नासमझ है, नासमझ न होता तो गरीब न होता। नासमझ होने की वजह से गरीब है। इसलिए वह फिर नया मसीहा उसे मिल जाता है। नये पैगंबर मिल जाते हैं। नये नेता मिल जाते हैं। ए फिर उसकी छाती पर चढ़ जाते हैं। हिटलर भी गरीबों का कल्याण करके छाती पर चढ़ता है, मुसोलिनी भी गरीबों का कल्याण करने के लिए छाती पर चढ़ता है--माओ भी, स्टैलिन भी। सारी दुनिया में सब गरीबों का कल्याण करना चाहते हैं और गरीब का कोई कल्याण होता दिखाई नहीं पड़ता। नहीं, गरीब का कल्याण इन कल्याण करने वालों से नहीं होगा।
गरीब का कल्याण न होने का कारण क्या है? कारण सिर्फ एक है कि संपत्ति
कम है और लोग ज्यादा हैं। गरीब का कल्याण ऐसे नहीं हो सकता। किसी को भी बिठा दो सत्ता में। उसके बैठ जाने से कुछ भी नहीं होने वाला है। सवाल असली यह है कि संपत्ति कम है और लोग ज्यादा हैं। संपत्ति ज्यादा होनी चाहिए। संपत्ति लोगों से ज्यादा होनी चाहिए। उनकी जरूरत से ज्यादा होनी चाहिए। यह संपत्ति कैसे पैदा हो, यह सवाल है। लेकिन जो संपत्ति पैदा कर सकते हैं, गरीब उनके खिलाफ खड़ा हो जाता है। जो गरीब के लिए हितकर हो सकते हैं; गरीब उनके खिलाफ खड़ा हो जाता है। आदमी की यह आदत बहुत पुरानी है।
यह बहुत आश्चर्य है। गैलीलियो को फांसी पर लटका दिया और आज गैलीलियो
की खोज से सारी दुनिया लाभान्वित हो रही है। जीसस को हमने सूली पर लटका दिया, लेकिन जीसस की खोज सारी दुनिया को मनुष्य बनाने का कारण बन रही है। सुकरात को हमने जहर पिला दिया, लेकिन सुकरात ने जो कहा, वह अनंतकाल तक मनुष्य की आत्मा के विकास के लिए अनिवार्य रास्ता है।
आदमी बहुत अजीब है। वह अपने कल्याण करने वालों को कभी नहीं पहचान पाता है कि कौन उसका कल्याण कर रहा है। असल में जो जितना शोरगुल मचाता है कल्याण करने का, वह उतना ही आगे दिखाई देने लगता है और जो कल्याण कर रहे हैं वे चुपचाप काम में लगे रहते हैं। उनका शोरगुल कुछ पता भी नहीं चलता कि कौन कल्याण कर रहा है। और हम तो प्रचार से प्रभावित होते हैं।

मैं आप से कहना चाहता हूं कि जिन लोगों ने कल्याण किया, वे लोग कुछ और हैं। कोई वैज्ञानिक जो अपनी लेबोरेटरी में बैठ कर खोज कर रहा है, वह कल्याण कर सकता है, लेकिन एक राजनीतिज्ञ नहीं--जो दिल्ली में बैठा है और तिकड़मबाजियां भिड़ा रहा है कि किसकी टांग खींचें, किसकी कुर्सी उलटाएं? इससे हित होने वाला नहीं है। एक लेबोरेटरी में अनजान आदमी जिसका गरीब कभी नाम भी नहीं जानेगा कि उसका बच्चा... किस पैनेसिलिन की खोज से बच रहा है? कौन उसकी टी.बी. के लिए इंतजाम कर रहा है? कौन उसकी कैंसर के लिए फिकर कर रहा है, कौन उसकी उम्र बढ़ा रहा है? उसका उसे पता भी नहीं चलेगा। कौन उसके घर बिजली को रोशनी जला रहा है? उसे पता भी नहीं चलेगा। लेकिन राजनीतिज्ञ ऐसा है जो कुछ भी नहीं कर रहा है, केवल झंडा पकड़ना जानता है और जोर से चिल्लाना जानता है। असल में कुछ लोगों को जोर से चिल्लाने में बहुत मजा आता है।
मैंने सुना है, एक सड़क के किनारे एक लड़का जोर से चिल्ला रहा है। अखबार बेच रहा है। एक आदमी ने उससे पूछा कि क्या बचा लेते हो? एक-एक आने में अखबार बेच रहे हो, तुम्हें क्या बच जाता है? उसने कहा, बचता कुछ भी नहीं। एक-एक आने में वह जो सड़क पर दूसरी तरफ लड़का अखबार बेच रहा है, उससे खरीदता हूं और एक-एक आने में बेच देता हूं। उस आदमी ने कहा, तुम बड़े पागल हो। लड़के ने का, पागल नहीं हूं। फिर उसने पूछा, तुम्हें मिलता क्या है? लड़के ने कहा, मुझे जोर से चिल्लाने का मजा मिलता है। उस आदमी ने कहा कि तुम बड़े होकर राजनीतिज्ञ हो सकते हो।
मनुष्य का कल्याण करने वाले कौन लोग हैं? वे चुपचाप अपने काम में संलग्न हैं। उनकी खोजें जिंदगी के अंधेरे कोनों में काम कर रही हैं। वे मर जाएंगे, आपके लिए। आपको पता भी नहीं चलेगा कि कौन वैज्ञानिक आपके लिए जहर चख कर मर गया, इसलिए कि वह जहर किसी की जिंदगी न ले ले। आपको पता न चलेगा कि कौन वैज्ञानिक बीमारियों के कीटाणु की परीक्षा करते-करते बीमार होकर मर गया कि वह कीटाणु किसी दूसरे को बीमार न कर सकें। आपको पता न चलेगा कि कौन वैज्ञानिक आटोमेटिक यंत्र खोज रहा है, जिससे किसी आदमी को श्रम करने की जरूरत न रह जाए। लेकिन राजनीतिज्ञ चिल्लाता रहेगा कि हम कल्याण करने वाले हैं, हम कल्याण कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ से कल्याण नहीं होता, क्रांतियों से कल्याण नहीं हुआ। बड़े मजे की बात है कि क्रांतियों से कोई कल्याण नहीं हुआ, बलकि क्रांतियों ने कई अर्थों में हजार तरह की हानियां पहुंचाई हैं। मनुष्य के विकास में व्यवधान पैदा किए, बाधाएं खड़ी कीं। जो सहज गति से जीवन की धारा जाती थी, उसे बहुत जगह से तोड़ा और रोका।
अब ऐसी क्रांति की जरूरत है जो बाकी की क्रांतियों को भुला दे। अब एक ऐसी क्रांति की जरूरत है, जो कल्याण करनेवालों से कहे कि आप क्षमा करें। बहुत कल्याण हो चुका। पांच हजार साल से जो हमारा कल्याण करते हैं, अभी तक नहीं कर पाए, अब आप चुप हो जाएं। अब आपकी कोई जरूरत नहीं है।
गरीब के कल्याण का मतलब है, संपत्ति का उत्पादन और गरीब के कल्याण का मतलब है, ऐसे यंत्रों का उत्पादन जो संपत्ति को हजार गुना रूप से पैदा करने लगे। गरीब के कल्याण का मतलब है, पृथ्वी को वर्ग-विद्वेष से विहीन करने का उपाय, वर्ग-विद्वेष नहीं। लेकिन सारे समाजवादी वर्ग-विद्वेष पर जीते हैं। उनका सारा जीना क्लास-कांफ्लिक्ट पर है। गरीब को अमीर के खिलाफ भड़काओ, कारखाना कम चले, कारखाने बंद हों, हड़ताल हो, बाजार बंद हों, मोर्चे हों--इनमें लगे रहें। गरीब को पता नहीं कि जितने मोर्चे होते हैं, जितनी हड़तालें होती हैं, जितना कारखाना बंद होता है--गरीब अपने हाथों से गरीब होने का उपाय कर रहा है; क्योंकि ऐसे देश की संपत्ति कम होगी।
कौन कर रहा है कल्याण? अगर कल्याण करना है तो जोर से लग जाओ संपत्ति पैदा करने में। जोर से कर्म में लगो, जोर से उत्पादन करो। वर्ग-विद्वेष की आग लगाकर उत्पादन की व्यवस्था को मत रोको; बल्कि वर्गों को निकट लाओ। लेकिन नेता वर्गों को निकट लाए तो नेता को कौन पूछे? नेता तभी पूछा जाता है जब वह किसी को लड़ाता है। बिना लड़ाए नेता का कोई अस्तित्व नहीं। इसलिए दुनिया में जब तक नेता रहेंगे, तब तक लड़ाई रहेगी। नेता को विदा करिए, लड़ाई

विदा हो जाएगी। नेता लड़ाई निर्माण करता है। वे नेता का भोजन है--उसका आधार, उसका प्राण, उसकी आत्मा, उसका परमात्मा है।
हिटलर ने लिखा है अपनी आत्म-कथा में कि अगर बड़ा नेता होना हो तो बड़ी लड़ाई की जरूरत है और अगर असली लड़ाई न चल रही हो तो कोल्ड-वॉर--ठंडी लड़ाई चलाते रहो; लेकिन लड़ाई जारी रखो और लोगों को भयभीत रखो। क्योंकि भयभीत हालत में लोग नेता को पकड़ते हैं। जब लोग निश्चिंत हो जाते हैं, तब कहते हैं--हम निश्चिंत हैं, नेता की क्या जरूरत? नहीं, लड़ाई जारी रखो तो वे कहेंगे, कोई अगुवा चाहिए, कोई नेता चाहिए। लड़ाई जारी रखो तो वे कहेंगे, कोई आगे चाहिए--बुद्धिमान, समझदार, जो लड़ सके। हम गरीब हैं, हम कैसे लड़ सकेंगे? इधर हिंदुस्तान में आजादी के बाद के बीस-बाईस वर्षों में वर्ग-विद्वेष की आग पैदा करके हिंदुस्तान के औद्योगीकरण में इस भांति पीठ में छुरा भोंका गया है; लेकिन यह गरीब को कभी पता न चलेगा कि उसने अपनी ही पीठ में छुरा भोंका है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप यह जो बातें कर रहे हैं, ये पूंजीपतियों के बड़े पक्ष में हैं। आप उनके खिलाफ कुछ न कहेंगे?

जरूर उनके खिलाफ बहुत कुछ कहूंगा। कहना ही पड़ेगा। क्योंकि पूंजीपति
भी वर्ग-विद्वेष को पैदा करने में आधारभूत बनता है। असल में जो आदमी धन कमा लेता है, वह तत्काल अपने को अलग दुनिया का हिस्सा समझने लगता है जो कि गलत बात है। धन कमाने से कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता है। धन कमाने से कोई आदमी किसी ऊंचे पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। अगर एक आदमी चित्र बना लेता है तो वह पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। एक आदमी मूर्ति बना लेता है तो पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। लेकिन आदमी धन कमा लेता है तो अहंकार के पहाड़ पर चढ़ जाता है। जब तक अमीर धनपति धन के माध्यम से अपने अहंकार की तृप्ति करेगा, तब तक अनिवार्य रूप से वह गरीब को ईर्ष्या से जन्म देगा।
मैंने कल कहा कि गरीब की ईर्ष्या को भड़काया जा रहा है। लेकिन गरीब में इतनी ईर्ष्या क्यों है? गरीब में इतनी ईर्ष्या का पचास प्रतिशत कारण गरीबी है। पचास प्रतिशत कारण पड़ोस में खड़े अमीर का अहंकार है। अमीर को अहंकार छोड़ना पड़ेगा। धन कमाना उसका आनंद है; लेकिन धन कमा कर वह किसी अहंकार को अर्जित करके किसी पहाड़ पर खड़ा हो जाए तो फिर आस-पास के लोग भी उसे पहाड़ से नीचे उतारने की कोशिश करेंगे। असल में धन कमा लेना अहंकार की तृप्ति का मार्ग या माध्यम नहीं बनना चाहिए। बल्कि सच तो यह है कि जितना धन हो, उतना आदमी को निर-अहंकारी हो जाना चाहिए--कि उसने धन की बहुलता को देख लिया और यह भी पा लिया कि बहुत धन मिलने से भी क्या मिल जाता है!
आखिर महावीर और बुद्ध अमीरों के बेटे थे; लेकिन लात मारकर वह अमीरी के बाहर चले गए। क्या कारण था? बुद्ध जब दूसरे गांव में ठहरे तो उस गांव का सम्राट आया और उसने कहाः मैं तुम्हें समझाने आया हूं। तुम पागल हो गए हो। तुम यह धन, यह इज्जत और यह प्रतिष्ठा और यह राजमहल छोड़ कर क्यों भागे? मैं तुमसे अपनी लड़की का विवाह कर देता हूं। लौट आओ! मेरे राज्य को सम्हालो! बुद्ध ने कहाः जो राज्य मैं छोड़ कर आया वह बड़ा था। अब मुझे प्रलोधन मत दो। सम्राट ने कहाः लेकिन छोड़ कर क्यों आए? बुद्ध ने कहा कि मैंने देखा, सब था, लेकिन फिर भी भीतर कोई कमी थी जो धन से पूरी नहीं हुई।
मेरी अपनी समझ है कि निर्धन का अहंकार छूटना बहुत मुश्किल है, क्योंकि उसे पता नहीं कि धन के मिलने पर कुछ नहीं मिलता। लेकिन धनी का अहंकार छूट जाना चाहिए। ठीक अर्थों में वही आदमी धनी है जिसे यह भी दिखाई पड़ गया है कि धन मिल गया, मकान मिल गया। बड़ी फैक्टरी है, बड़ी कार है--सब है, लेकिन भीतर फिर भी कोई जगह खाली रह गई है। उस खाली जगह को जो धन से भर लें तो अहंकार पैदा होता है। उस खाली जगह को जो धन की पृष्ठभूमि में से देख लें तो निर-अहंकार पैदा होता है। धनी को अहंकार छोड़ना पड़े तो गरीब को ईर्ष्या छोड़ने में बड़ी सुविधा हो जाए, लेकिन धनी अपने अहंकार में अकड़े तो गरीब के पास सिवाय ईर्ष्या के क्या बचता है? और तब नेता को सुविधा मिल जाती है कि गरीब की ईर्ष्या को भड़काए और गरीब की ईर्ष्या को भड़काता है तो धनी और

अकड़ता है। वह अपने बचाव में लगता है, वह अपने अहंकार की और सुरक्षाएं चाहता है। यह सब खतरनाक उपाय हैं। इससे ईर्ष्या और भड़केगी। आग और फैलेगी। नहीं, अगर इस देश को समृद्ध बनाना हो तो वर्ग-विद्वेष को कम करना पड़ेगा। धनी का पहला काम यह है--गरीब से भी पहले; क्योंकि गरीब की ईर्ष्या बड़ी स्वाभाविक है; लेकिन धनी का अहंकार बिल्कुल अस्वाभाविक है। धनी का अहंकार बहुत थोथा है और गरीब की ईर्ष्या बड़ी वास्तविक है।
एक छोटी सी कहानी मुझे याद आती है। मैंने सुना है, एक अस्पताल है। उसमें जेलखाने के कैदियों को रखा जाता है। लेकिन अस्पताल में भी, जेलखाने के कैदियों की खाटों में नंबर हैं। एक नंबर की खाट पर जो कैदी जरा मजबूत है और अधिकारी जिसे मानते हैं, उसे रखा जाता है। नंबर एक की खाट है, फिर नंबर दो, सौ नंबर की खाट वाला आदमी को ना-कुछ समझता है, नो-बडी। जो कैदी, नंबर एक की खाट पर रहता है, जंजीर से बंधा है, जकड़ कर बंधा है, लेकिन अकड़ कर जीता है कि मैं कुछ हूं। नंबर एक की जो खाट है उस अस्पताल में, दरवाजे के पास है और वह नंबर एक का जो कैदी है सुबह उठ कर कहता है, अहा, कितना खूबसूरत सूरज निकला है और निन्यानबे खाटों पर बंधे हुए मरीज वहीं अकड़ कर रह जाते हैं कि सूरज हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। धन्य है एक नंबर की खाट वाला आदमी। वह नंबर एक की खाट वाला आदमी गौर से देखता है। कभी कहता है, रात कैसा चांद निकला है, गुलमोहर के फूल खिले हैं। कभी कहता है--सुगंध आ रही है रातरानी की, कभी कहता है, आकाश में बगुलों की कतार उड़ गई। वह हमेशा बात करता रहता है, दरवाजे के पास। सारे मरीज उससे कहते हैं कि धन्यभागी हो तुम और मन में रोज भगवान से प्रार्थना करते हैं कि कितने लोग मर रहे हैं। नंबर एक की खाट का आदमी कब मरेगा? वैसे उससे कहते हैं, तुम धन्यभागी हो। पिछले जन्म में अच्छे कर्म किए होंगे, इसलिए नंबर एक की खाट मिली। हम अभागे हैं, हम को निन्यानबे नंबर की खाट है। किसी को पचास नंबर की। लेकिन मन में कहता है, कब मरोगे! कई दफा उसे हृदय का दौरा आता है।
नंबर एक की खाट के लोगों को अक्सर हृदय का दौरा आता है। उसे कई दफे हृदय का दौरा आता है, तो उन सबके प्राणों में खुशी दौड़ जाती है कि अब मरा, अब मरा। लेकिन नंबर एक की खाट के मरीज बड़ी मुश्किल से मरते हैं। वह फिर ठीक हो जाता है और फिर कहने लगता है कि आज तो तोते इकट्ठे हो गए हैं, गुलमोहर के वृक्ष पर। उनके गीत सुनते हो? लेकिन किसी को कुछ सुनाई नहीं पड़ता। लोग कानों को समेट कर दुख में भरे रह जाते हैं। लेकिन नंबर एक का मरीज भी कब तक बचेगा? वह भी मरा। जब वह मरा तो निन्यानबे मरीजों में दौड़ मच गई। जैसे दिल्ली में मचती है, किसी नंबर एक के आदमी के मरने पर। खूब दौड़े वे, अफसरों की खुशामद की, पैर पकड़े। डाक्टरों के पैर पड़े। जो उनके पास रिश्वत थी, देने लगे। फिर एक आदमी रिश्वत में जीत गया और नम्बर एक की खाट पर पहुंच गया। जाकर उसने पहला काम किया, जो कोई भी करेगा। जब कोई राष्ट्रपति के पद पर पहुंचेगा, तब करेगा। जब नंबर एक की जगह पर पहुंचेगा, तब करेगा। उसने जाकर दरवाजे के बाहर देखा, देखते ही मुश्किल में पड़ गया। न वहां कोई गुलमोहर का पौधा था, न वहां कोई रातरानी थी, न वहां से सूरज दिखाई पड़ता था। न वहां से आकाश दिखाई पड़ता था। बाहर भी परकोटे की बड़ी मजबूत पत्थर की दीवाल थी। उसके अतिरिक्त वहां से कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था! लेकिन उसने कहाः आप जानते हैं, उसने क्या कहा? लौट कर उसने यह कहा कि धन्य हैं मेरे भाग्य, सूरज निकला है, पक्षी गीत गा रहे हैं! फूल खिले हैं! बाकी निन्यानबे मरीज फिर उसकी मृत्यु की प्रार्थना करने लगे। आखिर तुम भी मरोगे ही। कब मरोगे? मैंने सुना है, उस अस्पताल में ऐसा सैकड़ों वर्ष से चला आ रहा है। लेकिन वह नंबर एक का आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता कि कह दे कि बाहर कोई फूल नहीं है, कोई सूरज नहीं है। वह जो धन की नंबर एक की व्यवस्था में पहुंच जाती है, उसको हिम्मत जुटा कर कहना चाहिए कि धन मिल गया, आत्मा नहीं मिल गई। धन मिला गया, कोई सत्य नहीं मिल गया। धन मिल गया, प्रेम नहीं मिल गया, और तब उस धनिक को अत्यंत निर्धन भीतर अनुभव करना चाहिए। अगर यह अनुभव हो तो वह अहंकार का केंद्र न बने। अगर वह अहंकार का केंद्र न बने तो नीचे चारों तरफ ईर्ष्या की आग न पैदा करे। अमीर को अहंकार छोड़ना पड़े अगर वर्ग-

102

विद्वेष मिटाना हो और अमीर को सिंहासनों से नीचे आना पड़े यदि ईर्ष्या की व्यर्थ आग बुझानी है तो।
मनुष्यता धन के कारण ऊंची नहीं हो जाती। अगर दफ्तर में कोई चपरासी है
तो इसी वजह से वह छोटा आदमी नहीं हो जाता। आदमियत अलग बात है और जिस आदमी को आदमियत का ध्यान नहीं, वह आदमी समाज को बहुत तरह का नुकसान पहुंचाता है। धनी को ध्यान रखना पड़ेगा कि धन आदमियत नहीं है और एक मजदूर के भीतर भी परमात्मा है और जब मजदूर की तरफ देखता है तो इस भांति नहीं देखना है जैसे कि पशु की तरफ देखता हो। तो हम वर्ग-विद्वेष की आग को बुझा सकेंगे। बुझ सकती है आग, और अगर आग बुझे तो देश सृजन में लग सकता है। संपत्ति पैदा हो सकती है।

एक मित्र ने पूछा है कि हिंदुस्तान क्यों संपत्ति पैदा नहीं कर पाया?

नहीं कर पाने के कुछ कारण हैं। एक-दो पर मैं बात करूं। पहला तो कारण यह
है कि हमने न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में संपत्ति के विरोध में निर्णय ले लिया है। हमने गरीबी की पूजा की है हजारों साल से। हम गरीब को आदर देते हैं। शायद इसका कारण यह है कि हम बहुत गरीब थे और अमीर की ईर्ष्या के कारण यह हम गरीब को आदर देने लगे। अगर हम भिखमंगे हैं और हमें सम्राट होने का कोई उपाय न हो तो आखिर में हमारा मन यहीं इंतजाम करेगा कि हम सम्राट होना ही कब चाहते हैं। हम तो भिखारी होने में ही आनंदित हैं। यह हमारे अहंकार की आखिरी तरकीब होगी। हजारों साल से भारत गरीब है। उसकी गरीबी इतनी लंबी हो गई है कि उसकी गरीबी में भी अहंकार को तृप्त करने का उपाय खोजना जरूरी था। इसलिए हमने उपाय खोज लिया। हम गरीबी को "सादगी" कहने लगे। हम गरीबी को "अपरिग्रह" कहने लगे। हम गरीब आदमी को आदर देने लगे, और अगर कोई गरीब गरीबी स्वीकार कर ले स्वेच्छा से तो हम उसके चरण छूने लगे, पैर पकड़ने लगे।
जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं। गरीब का कोई बेटा तीर्थंकर की तरह क्यों स्वीकृत नहीं हो सका? न होने का कारण था; क्योंकि गरीब के पास त्याग करने को कुछ भी नहीं है और हम त्याग तौल सकते हैं कि कौन आदमी कितना बड़ा है। हम धन से ही मानते हैं, धन हो तो धन से तौलते हैं और कोई धन छोड़े तो धन से तौलते हैं। महावीर बड़े आदमी हैं; क्योंकि उन्होंने बहुत धन छोड़ा। बुद्ध बड़े आदमी हैं; क्योंकि उन्होंने बहुत धन छोड़ा। बुद्ध अगर गरीब के घर में पैदा हों तो कौन फिकर करता है; क्योंकि छोड़ा क्या? हम पूछते, कितनी मुहरें छोड़ीं, कितने घोड़े, कितने हाथी? वह कहते, कुछ था नहीं हमारे पास। तो हम कहते, भाग जाओ। तुम तीर्थंकर नहीं हो सकते। तीर्थंकर होने के लिए हजारों-करोड़ों रुपये चाहिए। हम रुपए से ही तौलते हैं, गरीब आदमी रुपये से ही तौलता है। धन को भी रूपए से तौलता है। त्याग को भी रुपये से तौलता है।
मैं जयपुर में मेहमान था। एक आदमी ने मुझसे कहा, एक भरी संन्यासी हैं, उनसे आप मिलें। बहुत अदभुत आदमी हैं। मैंने कहाः तुमने किस तराजू से पता लगाया है कि बहुत बड़े संन्यासी हैं? उन्होंने कहाः खुद जयपुर महाराज उनके पैर छूते हैं। तो मैंने कहाः तुम्हारे मन में जयपुर महाराज का आदर है, संन्यासी का तो कोई आदर नहीं है। अगर जयपुर महाराज पैर न छुएं तो संन्यासी गया।
मैं एक संन्यासी के पास कभी रुका था। वह दो-चार बातचीत के बाद जरूर यह चर्चा चलाते कि मैंने लाखों रुपये पर लात मार दी। मैंने उनसे एक दिन पूछा कि लात आपने कब मारी? उन्होंने कहाः कोई तीस साल हो गए। मैंने कहाः लात ठीक से लग नहीं पाई। तीस साल के बाद भी आपको याद है, कि आपने लाखों रुपये पर लात मार दी। तो अभी भी मजा वही है। लाखों थे तो भी अकड़ लाखों की थी। अब भी जो अकड़ है, वह लाखों के छोड़ने की अकड़ है, लेकिन है पैसा ही आधार। गरीब आदमी पैसे को आधार बना लेता है; लेकिन दुर्भाग्य के क्षण में हमारी गरीबी को अंगीकार कर लिया और हमने कहा कि गरीबी भी सौभाग्य है। संतोष करो इसलिए संपत्ति पैदा न हो सकी। संपत्ति पैदा करने के लिए गरीबी का आदर छोड़ना

पड़ेगा। दरिद्र को नारायण नहीं कहना है। बहुत हो चुकी यह नासमझी। दरिद्र नारायण नहीं है। दरिद्रता महारोग है। प्लेग, हैजा को जैसे मिटाना है, वैसे ही दरिद्रता को भी मिटा देना है। दरिद्रता नहीं बचने देनी है। संपत्ति की स्वीकृति हमारे मन में आए तो हम संपत्ति पैदा कर लेंगे। हम वही पैदा करते हैं, जो हम पैदा करने की आकांक्षा जगा लेते हैं। हमने गरीबी पैदा कर ली, क्योंकि हमने गरीबी को स्वीकार कर लिया है।
गांधी जी से कोई पूछता था कि आप थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं, तो वह कहते थे चूंकि फोर्थ क्लास नहीं है। अब गांधी जी का मन तृप्त न होगा, जब तक नरक की रेलगाड़ी में न चलें। क्योंकि फोर्थ क्लास में क्यों चलते हैं? वे कहेंगे, फिफ्थ क्लास नहीं है इसलिए। हम कहेंगे गांधी महात्मा है; क्योंकि वे थर्ड क्लास स्वीकार कर रहे हैं। हम सब थर्ड में चलते हैं तो हमें लगेगा कि यह है महात्मा असली। क्योंकि थर्ड क्लास में हमारे प्राण ही परेशान हो रहे हैं। हम भी चाहते हैं कि फर्स्ट क्लास में चलें, लेकिन फर्स्ट क्लास में चलना नहीं हो पाता है। तो अब थर्ड क्लास में जो चलेगा, उसको हम कहेंगे। यह है महात्मा। अब हम किसको आदर देंगे? हम अब थर्ड क्लास को आदर का आधार बनाने की कोशिश करेंगे कि थर्ड क्लास में चलना भी बड़े महत्व की बात है। इससे हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है।
इस अहंकार की भूखी तृप्ति ने इस देश में संपत्ति को पैदा करने में बाधा डाल दी। इसको हटा देना पड़ेगा। संपत्ति की अपनी जरूरत है। संपत्ति सब कुछ नहीं है, लेकिन बहुत-कुछ है। संपत्ति से आत्मा नहीं मिल जाएगी, लेकिन संपत्ति के बिना आत्मा को पान भी बहुत मुश्किल है। संपत्ति से कम से कम जो सबसे बड़ी कीमती बात मिलती है, वह यह है कि शरीर को भूलने की सुविधा मिलती है। रोटी का उपयोग एक ही है कि शरीर भूल जाता है। भूख में शरीर भूलना मुश्किल है। सिर में दर्द हो तो सिर नहीं भूल सकता। दर्द न हो तो सिर भूल जाता है। पैर मैं कांटा गड़ा हो तो आत पैर में ही चली जाती है, वहां कांटे के पास निवास करने गलती है। कांटा निकल जाए, आत्मा पैर से विदा हो जाती है। जहां अभाव है, वहां खटकता रहता है। गरीब शरीर में ही जी पाता है। क्योंकि शरीर ही खटकता रहता है।
अमीर के लिए एक सुविधा है कि वह शरीर को भूल सकता है और मैं मानता हूं इसलिए सारी दुनिया को अमीर किया जाना जरूरी है, ताकि एक-एक आदमी शरीर को भूल सके। जिस दिन हम शरीर को भूल पाते हैं, उसी दिन आत्मा की सुधि आनी शुरू होती है। उस दिन खयाल आना शुरू होता है कि फिर मैं क्या हूं? जब शरीर की कोई जरूरत नहीं बचती है तो सवाल उठता है, अब मेरी क्या जरूरत है? अब मैं क्या खोजूं? धर्म की और आत्मा की खोज मनुष्य की सभी सुविधाओं की तृप्ति के बाद पैदा हुई खोज है। वह लास्ट लक्जरी है। वह आखिरी विलास है। वह सुविधाओं के बाद की अंतिम चरम यात्रा है। लेकिन हमने जो निर्णय लिया था, वह भ्रांत था। वह निर्णय यदि हम बदल दें तो आज सारी स्थिति बदल सकती है।
और एक बात। हमने एक और निर्णय भी लिया था, इस गरीबी के साथ राजी होने
के लिए। वह निर्णय यह था कि आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण। वह भी संतोष की व्यवस्था थी। हम कहते थे, अमीर अपने पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण अमीर है। गरीब अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण गरीब है। इससे तृप्ति मिलती थी, संतोष मिलता था। और हम गरीबी में ही जी लेते थे। इसलिए गरीबी का मिटना मुश्किल हो गया। गरीबी हमारे पिछले जन्मों के कर्मों का परिणाम नहीं है। गरीबी हमारी इसी जन्म की भूलों का फल है। इस जन्म में हम जो कर रहे हैं, वह अगर संपत्ति पैदा नहीं कर रहा है, तो गरीबी अनिवार्य हो जाएगी। दूसरी बात, गरीबी एक-एक व्यक्ति की व्यक्तिगत व्यवस्था का भी फल नहीं, हमारी सामूहिक अंतर-व्यवस्था का भी फल है। ये दो बातें अगर खयाल में आ जाएं तो गरीबी मिटाई जा सकती है। जब तक हम सोचते थे, आदमी की उम्र भाग्य से तय है, तब तक आदमी की उम्र नहीं बढ़ाई जा सकी। लेकिन अब उम्र बढ़ी है, क्योंकि भाग्य का विश्वास घटा है।
तिब्बत में एक रिवाज था। बच्चे जब पैदा होते तो पहले उन्हें बर्फीले पानी में डुबा देते। फिर निकाल लेते। सात दफा डुबकी देते। दस में से सात बच्चे मर जाते, तीन बच्चे बचते; लेकिन उनका मानना यह था कि जो मर गया, वह मर

ही जाता है, इसलिए मर गया। जो बच गया है, वह बच ही जाता है। और हमने परीक्षा कर ली कि कौन बचने को आया, कौन मरने को आया। तो चलता रहा तिब्बत में यह रिवाज। करोड़ों-करोड़ बच्चे मरते रहे। जरूरी नहीं था कि जो बच्चा जिंदा पानी में पैदा होते ही डुबा दिया जाए, वह मर ही जाता। हां, रेसिस्टेंस उसका थोड़ा कम जरूर था। लेकिन रेसिस्टेंस थोड़ा बढ़ाया जा सकता था, इलाज किया जा सकता था। लेकिन मारने का इंतजाम कर लिया। उम्र तब बढ़नी शुरू हुई, जब हमें खयाल आया कि उम्र कोई भाग्य का निर्णय नहीं है। तो उम्र बढ़ गई। पहले हम सोचते थे कि बीमारी भी पिछले जन्मों के कर्मों का फल है तो हम बीमार से नहीं लड़े। जिस दिन खयाल आ गया कि बीमारी पिछले जन्मों के कर्मों का फल नहीं है, बीमारी को बदल दिया गया। आज बहुत सी बीमारियां विदा हो गईं। एक वक्त आएगा कि जमीन पर बीमारी बहुत असंभव बात हो जाएगी।
गरीबी को हमने स्वीकार किया, इसलिए गरीब हैं। हमें पूरे मन से गरीबी
को अस्वीकार करना पड़ेगा तो ही गरीबी मिट सकती है और अगर सारा मुल्क तय कर ले तो कोई भी कठिनाई नहीं है गरीबी को मिटा देने में। क्योंकि गरीबी को मिटाने का मतलब है पहले तो गरीबी को मिटाने का संकल्प लें। लेकिन अब गरीब को नई नासमझियां समझाई जा रही हैं। उसे समझाया जा रहा है कि तेरा शोषण किया जा रहा है, इसलिए तू गरीब है। तो तू शोषक को मिटा। शोषक मिट जाएगा, तो तू अमीर हो जाएगा। यह बड़ी नासमझी की और आत्मघाती दलील है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप कहते हैं कि गरीब का शोषण नहीं हो रहा है? आप गलत कहते हैं। गरीब से दस रुपये का काम लिया जाता है और उसे दो रुपये दिए जाते हैं।

मैं उनसे पूछता हूं, वह काम न करे दस रुपये का। वह दो रुपये का काम न करे। वह अपनी मजदूरी को, अपने इस श्रम को जहां दस रुपये में बिकता हो, बेच दे। वह कहां बेचेगा दस रुपये में? वह जो दो रुपये में बेच रहा है, अगर न बेचे तो दो पैसे में भी नहीं बेच पाएगा। दस रुपये का मूल्य कैसे है उसका? मूल्य कैसे तय होता है? मूल्य के तय होने का मतलब क्या है?
मार्क्स ने एक बहुत ही अजीब बात लोगों को समझाई कि गरीब जितने का काम
कर रहा है उससे कम का पैसा उसे दिया जा रहा है। लेकिन गरीब को जो पैसा दिया जा रहा है, अगर वह काम न करे तो उसके श्रम का पैसा उसे मिलने वाला कहां है और उसे ज्यादा कहां मिल जाएगा? जितना मिल रहा है उससे ज्यादा की तलाश की जा सकती है, उससे ज्यादा का उत्पादन किया जा सकता है। लेकिन अगर इस ढंग से सोचा जाए कि यह शोषण किया जा रहा है, तो हम गरीब और अमीर के बीच एक दुश्मनी खड़ी करते हैं और उत्पादन की व्यवस्था अगर दुश्मनों की व्यवस्था हो जाए, तो देश समृद्ध नहीं हो सकता। उत्पादन की व्यवस्था मित्रों की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें गरीब को सोचना चाहिए कि छीनने का नहीं, संपत्ति को और ज्यादा पैदा करने का खयाल है। इसमें अमीर को सोचना चाहिए कि वह जितना मुनाफा इकट्ठा करता है, उतना मुनाफा इकट्ठा करने का सवाल नहीं, उस मुनाफे को भी नियोजित करने का सवाल है और संपत्ति पैदा करने में; तो हम इस देश को कल अमीर बना सकते हैं।
लेकिन आज समाजवादी जो बातें कर रहे हैं, अगर उनकी बात मान ली गई तो आज जितना मुल्क गरीब है, बीस साल बाद और भी ज्यादा गरीब होगा; क्योंकि वे संपत्ति-उत्पादन की तरफ सोच ही नहीं रहे हैं, वे संपत्ति-विभाजन, वितरण, बांट लेने की तरफ सोच रहे हैं और गरीब को बिल्कुल ठीक लगता है कि संपत्ति बंटे और मुफ्त मिल जाए। वह गरीब इसलिए है कि श्रम करने की, सृजन करने की, पैदा करने की जो प्रबल आकांक्षा होनी चाहिए--वह उसमें नहीं है। तो वह कहता है, अगर बंट कर मिल जाए तो बहुत अच्छा है। तो वह कहता है--काम-धाम बंद करो, मोर्चा लगाओ, हड़ताल करो! संपत्ति बंटनी चाहिए, संपत्ति मिल जानी चाहिए। यह जो हम आकांक्षा पैदा कर रहे हैं गरीब में, अगर हिंदुस्तान के गरीब
की आत्मा में यह आकांक्षा प्रवेश कर गई तो हिंदुस्तान सदा के लिए गरीब होने की सील-मुहर अपनी छाती पर लगा लेगा। फिर गरीबी से छुटकारा पाना बहुत असंभव हो जाएगा।

एक मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीपतियों के पक्ष में बोल रहे हैं, तो आपको पूंजीपतियों से पैसे तो नहीं मिल रहे हैं?

बड़ा मजा है, हमारे सोचने का सारा ढंग ऐसा है। अगर मैं समाजवाद के पक्ष में कोई बात करता हूं तो मेरे पास पत्र आते हैं कि आपको चीन से पैसे तो नहीं मिल रहे हैं? आप माओ के एजेंट तो नहीं हैं? अगर मैं समाजवाद की आलोचना करता हूं तो वे कहेंगे, आपको अमरीका से तो पैसे नहीं मिल रहे हैं, आप किसी पूंजीपति के एजेंट तो नहीं हैं? क्या इस दुनिया में सोचना गुनाह है? सिवाय एजेंट के और कोई नहीं सोचता, सिर्फ एजेंट ही सोचते हैं? असल में जिन्होंने यह पूछा है वे जरूर कहीं न कहीं एजेंसी से संबंधित होंगे, क्योंकि हमारी कल्पना में यह बात नहीं आती कि कोई आदमी सीधा भी सोच सकता है। हम पूछेंगे, जरूर किसी का एजेंट होगा। इसका मतलब हुआ कि आदमी के पास अपनी आत्मा नहीं है, अपने सोचने का ढंग नहीं है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कभी समाजवाद के पक्ष में कहते हैं, कभी पूंजीवाद के पक्ष में कहते हैं। आप ऐसी विपरीत बातें करके हमें परेशानी में डाल देते हैं!

असल में हमारी कठिनाई यह है कि समाजवाद और पूंजीवाद को जो विपरीत समझता है, वह गलत समझता है। पूंजीवाद की विकसित अवस्था समजावाद है। वह विपरीत नहीं है और जब मैं पूंजीवाद के पक्ष में कहता हूं तो मैं उस प्रक्रिया की बात कर रहा हूं जिससे कि अंत में समाजवाद उपलब्ध होगा। उन दोनों में विरोध नहीं है। लेकिन चूंकि हम दुश्मनी की भाषा में सोचने के आदी हो गए हैं, इसलिए हम और तरह से सोच ही नहीं पाते हैं। को-आपरेशन नहीं, कांफ्लिक्ट--सहयोग नहीं, संघर्ष की भाषा में सोचो--यही हमें सिखाया जा रहा है। नेता संघर्ष की भाषा में सोचता है। मैं कोई नेता नहीं हूं। मुझे लगता है कि समाजवाद लक्ष्य है, लेकिन पूंजीवाद प्रक्रिया है और इसलिए मैं समाजवाद के पक्ष में हूं और पूंजीवाद के विपक्ष में नहीं हूं।
इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। न मालूम कितने मित्रों ने यही लिख कर पूछा है कि आप कभी यह कहते हैं, कभी वह कहते हैं। आप कल जवान थे, आज बूढ़े हो गए। पहले बालक थे, फिर जवान हुए, फिर बूढ़े हो गए। आपसे कोई कहे कि बड़े इनकंसिस्टेंस आदमी मालूम पड़ते हैं। कभी बच्चा होते हैं, कभी जवान होते हैं, फिर बूढ़े हो जाते हैं। नहीं, इसको आप इनकंसिस्टेंस नहीं कहेंगे, इसको कहेंगे ग्रोथ। यह विकास है। बचपन से जवानी आती है, जवानी से बुढ़ापा आता है। पूंजीवाद से समाजवाद आएगा, समाजवाद से साम्यवाद आएगा, साम्यवाद से अराजकतावाद आएगा। जिस दिन साम्यवाद ठीक से व्यवस्थित होगा, राज्य की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। लेकिन यह क्रमिक अवस्थाएं हैं समाज की। ये विरोध नहीं हैं, ये विकास हैं।
मैं कोई भी असंगति की बात नहीं कह रहा हूं। मेरी दृष्टि में उसकी संगति है, इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि हिंदुस्तान में समाजवाद की बातें करने वाले लोग समाजवाद नहीं लाएंगे। हो सकता है, वे समाजवाद के आने में बाधा डालें; क्योंकि पूंजी का तंत्र तोड़ दें और हिंदुस्तान में समाजवाद कभी न आ सके; लेकिन कोई सोच भी न पाएगा कि बिड़ला या टाटा समाजवाद ला रहे हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, वे ला रहे हैं। लाने का मतलब यह है कि वे जो संपत्ति पैदा कर रहे हैं, अगर वह बड़े पैमाने पर फैलाई जाए तो संपत्ति के उत्पादन की अंतिम परिणति समाजवाद ही है। समाजवाद आ जाएगा, वह सहज परिणाम होगा पूंजीवाद का, लेकिन मार्क्स ने थीसिस और एंटी-थीसिस की भाषा समझा दी है। वाद और प्रतिवाद के कलह की, सर्वहारा की क्रांति की और बगावत की बात उसे समझा दी है। मार्क्स के पास विकास की कोई धारणा नहीं है, और इसलिए मार्क्स में एक बुनियादी कमजोरी है जब कि जीवन का बुनियादी नियम विकास है। क्रांति तो तब जरूरी होती है जब विकास को कोई रोकने को आमादा हो जाए, लेकिन विकास ही न हुआ हो तो... समझ लें कि मैंने कल कहा कि मां के पेट से

पांच महीने का बच्चा निकालना पड़े तो इसको मैं गलत कहूंगा। यह खतरनाक है। बच्चा मरेगा, मां भी मर सकती है और अगर बच्चा किसी तरह बचा तो मरा हुआ बचेगा। लेकिन यह भी हो सकता है कि मां के पेट में नौ महीने के बाद भी बच्चा पैदा न हो और मां का पेट काटना पड़े। क्रांति तब की जाती है जब विकास में कोई अवरोध डाल दे। अवरोध हटाने के लिए क्रांति की जरूरत है। क्रांति समय के पहले जरूरी नहीं है।
अमरीका में अगर पचास साल के बाद समाजवाद न आया तो क्रांति की जरूरत हो सकती है। न तो अभी रूस में जरूरत थी, न अभी चीन में जरूरत थी और न अभी हिंदुस्तान में जरूरत है। लेकिन जहां जरूरत नहीं वहां हो रही है। लेनिन ने भविष्यवाणी की थी कि लंदन तक कम्युनिज्म का जो यात्रा-पथ है--वह मास्को से पेकिंग--पेकिंग से कलकत्ता और कलकत्ता से लंदन की तरफ जाएगा। बड़ी खतरनाक भविष्यवाणी थी, लेकिन पूरी होती मालूम पड़ती है। पेकिंग तक को पक्का सीमेंट रोड बन गया है, कलकत्ते तक भी पगडंडियां आनी शुरू हो गई हैं। यदि लेनिन की भविष्यवाणी पूरी हो गई तो वह पूरे एशिया के लिए, पूरी दुनिया के लिए दुर्भाग्य की बात होगी। अभी वे पगडंडियां तोड़ी जा सकती हैं। अभी वे पगडंडियां पक्की, मजबूत हिस्सा नहीं बन गई हैं, लेकिन कोई दृष्टि न हो, तो कैसे तोड़ी जाएं?
सबसे बड़े मजे की बात यह है कि कम्युनिज्म के पास आंदोलन है, समाजवाद
के पास विचार है, लेकिन पूंजीवाद के पास कोई विचार नहीं, कोई फिलासफी नहीं, इसलिए वह खड़ा नहीं हो पाता, वह सरकता जाता है। वह डिफेंसिव है और जब तक पूंजीवाद रक्षा का उपाय करेगा, तब तक मरेगा। पूंजीवाद की रक्षा का उपाय करने का मतलब यह है कि हार अब स्वीकृत हो गई। जिस आदमी को, जिसे व्यवस्था को जीतना हो, उसे रक्षा का उपाय नहीं पकड़ना चाहिए, लेकिन पूंजीवादी रक्षा कर रहा है। वह कहता है--कलकत्ता गया तो कोई बात नहीं, अभी बंबई सम्हालो। कल बंबई जाए, तो दिल्ली सम्हालो। कल दिल्ली जाए तो सम्हालते चले जाओ और पीछे हटते चले जाओ।
नहीं, इस तरह नहीं होगा। जब कोई आंदोलन हिंसात्मक ईर्ष्या पर खड़ा होता है, उसके पास बड़ी आग की लपटें होती हैं, वह फैलती चली जाती है। आग की उन लपटों के खिलाफ विचार की प्रबल शक्ति हो सकती है; क्योंकि मेरी समझ यह है कि पूंजीवाद बिना अपनी दलील दिए मरा जा रहा है। वह बिना गवाह उपस्थित किए ही हारता जा रहा है। एक ही विपक्षी उपस्थित होकर सारा निर्णय लिए ले रहा है। पूंजीवाद को अपनी फिलासफी सामने रखनी चाहिए और पूंजीवाद को यह स्पष्ट घोषणा करनी चाहिए कि समाजवाद पूंजीवाद का हिस्सा है, उसके विकास का हिस्सा है। समाजवाद पूंजीवाद का पहला नहीं, उसका अंतिम चरण है और जिस दिन पूंजीवाद इस व्यवस्था, इस विचार को सामने रख पाए, उस दिन हम कलकत्ता से भी पीछे हटा सकते हैं और पेकिंग से भी पीछे हटा सकते हैं, और पेकिंग से भी वापस मास्को और मास्को से भी वापस लौटा सकते हैं। उसमें कोई ज्यादा कठिनाई नहीं है।
बेचैनी है आज रूस में भी। आज रूस में भी बहुत परेशानी है, बहुत तनाव है। रूस का युवा-वर्ग आज उत्तेजित और परेशान है, लेकिन बगावत की वहां सुविधा नहीं है। वह बगावत वहां भी पहुंचनी चाहिए। अमरीका का भी कसूर यही है कि उसके पास भी कोई आक्रामक विचार नहीं है, सिर्फ रक्षात्मक विचार है, इसलिए वह परेशानी में है। लेकिन मुझे लगता है कि समाजवाद पेकिंग और कलकत्ता होता हुआ लंदन नहीं जाएगा। अगर समाजवाद को कहीं से भी फैलना है दुनिया सें, तो वह केंद्र वाशिंगटन होगा। समाजवाद वाया वाशिंगटन; उसके सिवाय कोईर् सम्यक रास्ता नहीं हो सकता है। वाशिंगटन के ही माध्यम से अगर दुनिया में समाजवाद फैलेगा तो सुखद, स्वस्थ और सहज हो सकता है।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का आठवां प्रवचन

पूंजीवाद की नैसर्गिक व्यवस्था

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि पूंजीवाद तो स्वार्थ की व्यवस्था है और फिर भी
आप उसका समर्थन कर रहे हैं?

इस संबंध में थोड़ी सी बात समझ लेना जरूरी है। पहली बात तो यह समझ लेना जरूरी है कि आज तक मनुष्य को जो बहुत सी गलत बातें सिखाई गई हैं, उनमें एक गलत बात यह है कि अपने लिए जीना बुरा है। मनुष्य पैदा ही इसलिए होता है कि अपने लिए जीए! मनुष्य को समझाया जाता रहा है कि दूसरे के लिए जीओ, अपने लिए जीना बुरा है। बाप बेटे के लिए जीए, और बेटा फिर अपने बेटे के लिए जीए; और इस तरह न बाप जी पाए, न बेटा जी पाए! समाज के लिए जीओ, राष्ट्र के लिए जीओ, मनुष्यता के लिए जीओ, भगवान के लिए जीओ, मोक्ष के लिए जीओ। बस, एक भूल भर मत करना--अपने लिए मत जीना। यह बात इतनी बार समझाई गई है कि हमारे प्राणों में गहरी पैठ गई है कि अपने लिए जीना जैसे पाप है, जब कि कोई भी आदमी अगर जीए तो सिर्फ अपने लिए ही जी सकता है और अगर दूसरे के लिए जीना भी निकलता है तो वह अपने लिए जीने की गहराई का परिणाम है, वह उसकी सुगंध है।
कोई आदमी इस जगत में दुसरे के लिए नहीं जी सकता, असंभव है यह। मां भी बेटे के लिए नहीं जीती है और अगर बेटे के लिए मरती है तो वह मां का आनंद है। बेटा सिर्फ बहाना है। अगर नदी में एक आदमी डूब रहा हो और आप किनारे पर खड़े हों और दौड़ कर जब आप उस आदमी को बचाते हैं तो शायद आप लोगों से कहें कि इस आदमी को मरने से बचाने के लिए मैंने अपना जीवन दांव पर लगा दिया। आप बिल्कुल गलत कह रहे हैं। सच्चाई कुछ और है। सच्चाई यह है कि आप उस आदमी को डूबते हुए न देख सके। यह आपकी पीड़ा है, यह आपका कष्ट था। इस कष्ट को मिटाने के लिए आप कूदे हैं और उस आदमी को आपने बचाया है। उस आदमी से आपका कोई संबंध नहीं है और अगर आपको यह पीड़ा नहीं होती, तो आप न बचाते। दूसरे लोग भी थे नदी के किनारे, जिन्हें कोई पीड़ा न हुई थी। वे अपने रास्ते चले गए। जब कोई आदमी किसी को नदी में डूबने से बचाता है, तब भी अपनी ही पीड़ा के निवारण के लिए। वह उस आदमी को डूबते हुए देख कर अपने को नहीं देख सकता, यह उसके लिए असंभव है। बहुत गहरे में अपनी पीड़ा का ही वह निवारण कर रहा है।
अगर एक आदमी जाकर गरीबों की सेवा कर रहा है तो वह गरीबों की सेवा नहीं
कर रहा है। अगर कह रहा है तो गलत कह रहा है। वह आदमी गरीब को गरीब देखना असंभव पा रहा है। उसके भीतर एक पीड़ा जन्म ले रही है, जिसे दूर किए बिना वह नहीं रह सकता। वह अपनी पीड़ा दूर करने को गरीब की सेवा करने गया है। आज तक कोई मनुष्य दूसरे के लिए नहीं जीया है, सब मनुष्य अपने लिए जीते हैं। लेकिन अपने लिए जीना दो तरह का हो सकता है। एक अपने लिए ऐसा जीना जिसमें दूसरे को मारना भी आ जाए, मिटाना भी आ जाए। एक ऐसा जीना जिसमें दूसरे का जीवन भी विकसित होता हो। लेकिन परोपकार की बात बहुत खतरनाक है। जब भी हम किसी आदमी को सिखाते हैं कि दूसरे के लिए जीओ, तभी वह आदमी रुग्ण, बीमार और अस्वस्थ होना शुरू हो जाता है।
मैंने सुना है, एक बाप अपने बेटे को समझा रहा था। वह उसे अच्छी शिक्षाएं दे रहा था और अच्छी शिक्षाएं बड़ी खतरनाक होती हैं बहुत बार। वह अपने बेटे से कह रहा है कि भगवान ने तुझे इसलिए पैदा किया है कि तू दूसरे की सेवा कर। पुराने जमाने का बेटा होता तो मान लेता और सेवा करने निकल जाता। उस नये जमाने के बेटे ने कहाः मैं समझ गया, भगवान ने मुझे दूसरों की सेवा के लिए पैदा किया है। मैं यह पूछना चाहता हूं, भगवान ने दूसरों को किसलिए पैदा किया? इसलिए कि मेरी सेवा लें? तो भगवान ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया या इसलिए कि दूसरे मेरी सेवा करें और मैं उनकी सेवा करूं? तो भगवान बहुत कनफ्यूज्ड मालूम होता है। यह उलटी झंझट क्यों करनी? एक-एक आदमी अपनी कर ले, यह सरल व्यवस्था है। मैं आपकी करूं और आप मेरी करें--ऐसी उलझन में पड़ने का प्रयोजन ही क्या है?

और ध्यान रखें, जब भी कोई आदमी किसी की सेवा करता है तो नीचे पैर भी दबाता है, ऊपर गर्दन भी पकड़ लेता है। सेवा करने वाला हमेशा गर्दन पकड़ लेता है, हालांकि गर्दन पकड़ने की यात्रा पैर दबाने से शुरू करनी पड़ती है। सेवक से सदा सावधान रहना; क्योंकि सेवक कहेगाः मैंने सेवा की है, मैंने कुर्बानी की है तुम्हारे लिए। जो मां अपने बेटे से कहती हैः मैंने कुर्बानी की है तुम्हारे लिए, वह मां अपने बेटे को क्रिपिल्ड करके रहेगी, पंगु कर देगी, जान ले लेगी। जो बाप अपने बेटे से कहेगा तेरे लिए मैंने सब गंवाया है, वह इस बेटे की गर्दन जिंदगी भर दबाएगा। स्वाभाविक है दबाना। स्वाभाविक इसलिए है कि उसने कुर्बानी की है, शहीद हुआ है और शहीदी का बदला किससे ले? उसने कुर्बानी की है, वह बदला किससे ले? वह किससे कहे कि मैंने इतनी कुर्बानी की है। लेकिन किसी मां ने अगर कभी कहा हो कि मैंने कुर्बानी की है बेटे के लिए, तो मां ही नहीं है। उसे मां होने का पता नहीं चला। मां होने का आनंद है वह, बेटे से उसका कोई संबंध नहीं है। और अगर बेटा न होता तो वह मां जिंदगी भर तड़पती कि किसके लिए न्योछावर कर दूं, किसके लिए परेशान हो जाऊं, किसके लिए जागूं, किसकी प्रतीक्षा करूं?
मनुष्य का व्यक्तित्व, मनुष्य का स्वभाव अपने लिए जीने का है; लेकिन
यह सीधी, साफ बात स्वीकृत नहीं है। हम इसे गाली देते हैं। हम कहते हैं, यह स्वार्थ है। स्वार्थ ही स्वाभाविक है। अस्वाभाविक नहीं है स्वार्थ। अस्वाभाविक वहां होता है जहां मेरा स्वार्थ आपके स्वार्थ की हत्या करना शुरू करे। इसलिए समाज की व्यवस्था ऐसी नहीं होनी चाहिए जिसमें हम कहें कि समाज के लिए कुर्बानी करो।
समाज की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि हम प्रत्येक को अपने हित के लिए जीने का मौका दें और समाज तथा कानून एवं राज्य सिर्फ वहीं बाधा बनें, जहां कोई व्यक्ति किसी के स्वार्थ की हत्या करता हो, अन्यथा समाज को बीच में आने की कोई भी जरूरत नहीं। लेकिन तथाकथित समाजवादी, साम्यवादी चिंतन कहता है कि व्यक्ति का बलिदान करेंगे समाज की बलिवेदी पर। समाज है लक्ष्य, व्यक्ति को जीना है समाज के लिए और जब भी ये बड़े लक्ष्य पैदा किए जाते हैं तो व्यक्ति की कुर्बानी दी जा सकती है। फिर व्यक्ति निहत्था हो जाता है। वह कहता है, क्या कर सकते हैं? इतना बड़ा समाज है, उसके हित में कुर्बानी देनी है। आज तक मनुष्य-जाति ने जितनी हत्याएं की हैं, वह इसी तरकीब से की हैं। कोई इस्लाम के लिए मर रहा हे, कोई इस्लाम के लिए मरवा रहा है कि जाओ, मरो, इस्लाम के लिए तो बहिश्त निश्चित है। अपने लिए मत जीओ, जीओ इस्लाम के लिए। कोई कह रहा है, हिंदू होने के लिए जीओ, हिंदू के मंदिर की मूर्ति के लिए जीओ। मूर्ति बचे, तुम मिटो, कोई फिकर नहीं। तुम मर जाओ, लेकिन मूर्ति को बचाओ, मंदिर को बचाओ। कोई कहता है, हिंदुस्तान के लिए जीओ; कोई कहता है, पाकिस्तान के लिए। कोई कहता है, चीन के लिए, कोई कहता है, समाजवाद के लिए जीओ। कोई भी नहीं कहता कि प्रत्एक अपने लिए जीओ। जब कि वही सहज और सरल है। लेकिन सरल और सहज सत्य छूट जाते हैं, हमारे खयाल से उड़ जाते हैं। उनका खयाल भी भूल जाता है। हर आदमी अपने लिए ही जी सकता है और अगर हमने जोर-जबरदस्ती की तो वह पाखंडी हो जाएगा। इसलिए हमारे सेवक निश्चित अनिवार्यरूपेण पाखंडी हो जाते हैं, क्योंकि वह जीते तो अपने लिए है, लेकिन दिखाते फिरते हैं कि वह किसी और के लिए जी रहे हैं। एक दोहरी जिंदगी हो जाती है। भीतर कुछ होते हैं, बाहर कुछ होते हैं--होगा ही।
नेता दिखाता है कि वह सारे राष्ट्र के लिए मरा जा रहा है। अपनी कुर्सी
के लिए मरता है, लेकिन सारे राष्ट्र की बात करता है। सारा राष्ट्र यानी वह कुर्सी, जिस पर वह बैठा है। यदि वह कुर्सी नहीं, तो सारा राष्ट्र कहीं भी जाए, उससे फिर कोई मतलब नहीं। राजनीतिक मरा जा रहा है देशों के लिए, वादों के लिए, संस्कृतियों के लिए, सभ्यताओं के लिए। धर्मगुरु मरे जा रहे हैं धर्मों के लिए, संप्रदायों के लिए, लेकिन कोई भी इन सबके लिए नहीं मर रहा है। ये सब बातें हैं। मर रहा है अपने पद, अपनी प्रतिष्ठा, अपने अहंकार के लिए। लेकिन इस सीधे सत्य को हम कब स्वीकार करेंगे? स्वीकार न करने के कारण हिपोक्रेसी पैदा होती है, स्वीकार न करने के कारण पाखंड पैदा होता है और पाखंड इतने जाल बुनता है कि जिंदगी बिल्कुल गलत रास्ते पर भटक जाती है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि स्वार्थी होना स्वस्थ होना है, इसमें कुछ
भी पाप नहीं है और मैं तो मानता हूं कि महावीर, बुद्ध या क्राइस्ट से ज्यादा स्वार्थी आदमी पृथ्वी पर दूसरे नहीं हुए हैं। क्यों? क्योंकि वे निपट अपने आनंद, अपने मोक्ष, अपनी आत्मा, अपने परमात्मा की खोज के लिए जी रहे हैं और मजे की बात यह है कि उनसे बड़े परोपकारी कहीं भी नहीं हुए; क्योंकि जो आदमी अपने को पा लेता है वह अपने को बांटना शुरू कर देता है। जब अपने को पा लेता है तो एक नया आनंद शुरू होता है अपने को बांटने का। और जब कोई आदमी भीतर आनंद से भर जाता है तो करेगा क्या?
कभी आपने खयाल किया है? आनंद जब भी भीतर भर जाता है तो जैसे बादल बरसना चाहते हैं वैसे आनन्द भी बंटना चाहता है, लेकिन वह भी स्वार्थ है। इसी तरह जब कोई आदमी भीतर दुख से भर जाता है तो दुख भी बरसना चाहता है। वह दूसरे को दुखी करेगा, इसलिए ए जो शहीद तरह के लोग चारों तरफ घूमते रहते हैं--कोई मां- बाप की शक्ल में घूम रहा है, कोई शिक्षक की शक्ल में घूम रहा है, कोई नेता, कोई गुरु तो कोई महात्मा की शक्ल में। असल में ए जो शहीद दूसरे के लिए जीने की कोशिश कर रहे हैं--ये बड़े खतरनाक लोग हैं, क्योंकि पहले तो ये अपने फूल को न खिला पाएंगे और भीतर दुखी होते चले जाएंगे; और जितने दुखी होंगे उतनी ज्यादा सेवा करेंगे और जितनी ज्यादा सेवा करेंगे उतनी आपकी गर्दन दबाएंगे कि मैंने आपकी सेवा की है, अब इसका बदला चाहिए। उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले जिन-जिन लोगों ने इस देश की सेवा की थी, वे उन्नीस सौ सैंतालिस के बाद बदला ले रहे हैं। सेवा का बदला चल रहा है। वह जेल गए, वह सर्टिफिकेट लेकर खड़े है कि यह है मेरे पास सर्टिफिकेट। अब राष्ट्रपति का पद चाहिए। लेकिन हमने कब कहा हक जेल जाने से राष्ट्रपति का पद मिलता है? आपकी बड़ी कृपा थी, आप जेल गए, आपको मजा आया होगा। आप आजादी के लिए लड़े, यह आपकी खुशी रही होगी। किंतु परिणाम स्वरूप अब तुम क्या सदा के लिए मुल्क की गर्दन बांधोगे? किसने तुमसे कहा था? लेकिन सेवक बदला मांगता है। बदले के सिक्के कोई भी हो सकते हैं। इसलिए सेवक कब एकदम से मालिक हो जाता है, पता नहीं चलता। सेवक, मालिक होने की तैयारी ही कर रहा है। दुनिया में सच्ची सेवा केवल वे ही लोग कर पाते हैं जो परम स्वार्थी हैं। परम स्वार्थी का मतलबः जो अपने हित, अपने कल्याण को पूरी तरह खोजते हैं। जिस दिन उन्हें अपना मंगल, अपना सुख, अपना आनंद मिल जाता है, अनिवार्यरूपेण दूसरे के जीवन में उनका सुख फैलना शुरू हो जाता है। करिएगा क्या? जिस दिन सब भीतर होना-- बहेगा, बंटेगा। लेकिन तब वैसा व्यक्ति जानता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूं, वह मेरी खुशी है।
बुद्ध एक गांव में गए। उस गांव के लोगों ने कहा, आपने बड़ी कृपा की है
कि इतने मील चल कर आए हमें समझाने। बुद्ध ने कहाः ऐसी बात मत करो। तुमने बड़ी कृपा की है कि मैं बोलने आया और तुम सुनने आ गए हो। मैं भर गया हूं और कुछ बरसना चाहता हूं। तुम न आओ तो मैं तुम्हें खोजता हुआ आऊंगा, जैसे बादल खोज रहा हो सूखी जमीन, कहां बरस जाए! नदी खोज रही हो सागर कि कहां ढलक जाए! फूल खोज रहा हो सूरज कि कहां बिखर जाए! बुद्ध ने कहा कि मैं भर गया हूं किसी चीज से और उसे बांटने के लिए तुम्हें खोजता आ रहा हूं, तुम मुझे धन्यवाद मत दो। अनुगृहीत मैं हूं कि तुम आ गए और तुम्हें मैं बांट सकूंगा।
जो जानते हैं वे भलीभांति जानते हैं कि सेवा भी बहुत गहरा स्वार्थ है। वह सेवा करने वाला का आनंद है; लेकिन यह आनंद तभी होगा, जब हम स्वार्थ को स्वीकार कर लें। पूंजीवाद की व्यवस्था अत्यंत नैसर्गिक व्यवस्था है। वहां हम किसी को किसी पर बलिदान नहीं कर रहे हैं। प्रत्एक व्यक्ति अपने लिए जी रहा है, जीनेकी खोज कर रहा है। इस खोज से दूसरे के लिए भी जीएगा; क्योंकि कोई भी आदमी अकेला नहीं जी सकता है। जीने का मतलब ही संघर्षो में जीना है। और जब सारे लोग अपना सुख खोजते हैं, तब अनिवार्यतः वे शेष के लिए भी सुख का स्रोत बन जाते हैं। अगर हजार आदमी यहां बैठ कर अपना सुख खोजें तो हजारगुना सुख कल पैदा हो जाएगा। वह सुख बंटेगा, वह जाएगा कहां? लेकिन प्रत्येक आदमी दूसरे के लिए कुर्बानी करे, अपना सुख न खोजे और हजार आदमी में हर आदमी नौ सौ निन्यानबे के लिए कुर्बानी करता रहे, वहां दुख की दुख इकट्ठा हो जाएगा। वहां सुख इकट्ठा नहीं हो सकता।

मेरे मित्र, जिन्होंने पूछा है--उन्होंने यही कहा है कि स्वार्थ के कारण ही तो दुनिया बरबाद है।
मैं आपसे कहना चाहता हूं कि स्वार्थ के कारण नहीं, परोपकार की अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक शिक्षाओं के कारण दुनिया परेशान है। अगर आप सहज अपना ही सुख खोज सकें तो काफी है। इतना ही कर दें दुनिया में आप, तो बहुप काफी है। जन्म और मृत्यु के बीच में अपना सुख खोज लें तो यह दुनिया आपको धन्यवाद देगी; क्योंकि जो आदमी अपना सुख खोज लेता है, वह दूसरे को दुख देना बंद कर देता है। क्यों? क्योंकि जो जानता है कि उसे सुख चाहिए, वह यह भी जान लेता है कि दूसरे को दुख देकर सुख लाना असंभव है। वह दूसरे को दुख देना बंद कर देता है; और जो आदमी यह जान लेता है कि दूसरे को
दुख देने से मेरा सुख कम होता है, वह यह भी बहुत जल्दी जान लेता है कि दूसरे को सुख देने से मेरा सुख बढ़ता है। यह गणित है सीधा। यह जिस दिन दिखाई पड़ जाता है, उस दिन जिंदगी में क्रांति हो जाती है।
लेकिन दुनिया के सारे धर्म त्याग सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं, त्याग करो, वे कहते हैं, स्वयं को छोड़ो, वे कहते हैं, स्वार्थ छोड़ो। वैसे स्वार्थ शब्द का अर्थ बड़ा साफ है। स्वार्थ का अर्थ है, स्व के लिए जो अर्थपूर्ण हो। स्व का मतलब है आत्मा, जो अपने हित में... लेकिन जो मेरे हित में है--क्या जरूरी है कि वह आपके अहित में हो? जितनी गहराई में उतरेंगे, उतना ही पाएंगे कि जो मेरे हित में हो सकता है वह वस्तुतः आपके अहित में नहीं हो सकता है, क्योंकि बहुत गहरे में हम सबके प्राण कहीं संबंधित और एक हैं। यह असंभव है कि जो मेरा हित हो बहुत गहरे में वह आपका अहित हो जाए। उलटी बात सच है कि जो आपका अहित हो, वह अनजाने में मेरा भी अहित हो जाए।
मैं एक पहाड़ पर गया था। उस पहाड़ पर एक ईको-पॉइंट था। मेरे साथ दस-पांच मित्र गए थे। उनमें एक मित्र थे--उस ईको-पॉइंट पर जैसी आवाज की जाए, पहाड़ वही आवाज दोहराता था। वह मित्र कई जानवरों की आवाज जानते थे। उन्होंने कुत्ते की आवाज में भोंकना शुरू कर दिया। उस पहाड़ से कई हजार कुत्ते भोंकने लगे। सौ गुनी आवाजें होकर लौटने लगीं। कुत्ते ही कुत्ते पहाड़ पर फैल गए। मैंने उन मित्र से कहाः देख रहे हैं, आपने एक कुत्ते की आवाज की, चारों तरफ से हजार कुत्ते भोंकने लगे। अपनी ही आवाज के कारण आप हजार कुत्ते की आवाज में घिर गए। कितना अच्छा हो कि कोयल की आवाज में बोलो! वह जानते थे। उन्होंने कोयल की आवाज निकाली। पहाड़ कोयल की मधुर आवाज से गूंजने लगा। फिर वह उठ आए और सहज चुप हो गए। कोई घड़ी भर बाद उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे ऐसा लगता है कि आपने कुछ इशारा किया। मैंने पूछाः क्या लगा? उन्होंने कहाः मुझे ऐसा लगा कि यह प्रतिध्वनि वाला पहाड़ पूरी जिंदगी की तस्वीर है। हम वहां जो हो जाते हैं वही लौट आता है हजार-हजार गुना होकर। कुत्ते की आवाज बोलेंगे तो कुत्तों से घिर जाएंगे। दुख देंगे तो दुख बरस जाएगा, कांटे फेकेंगे तो कांटे लौट आएंगे, आनंद बांटेगे तो आनंद हजार गुना होकर बहने लगेगा, प्रेम देंगे तो प्रेम लौट आएगा, क्रोध लौट आएगा। जिंदगी एक प्रतिध्वनि है।
लेकिन इसलिए मैं कहता हूं कि मैं स्वार्थ के विरोध में नहीं हूं। यदि
आप अपना ही स्वार्थ खोज लें, तो इस जगत के लिए इतने परोपकारी सिद्ध होंगे कि और किसी भांति नहीं सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए मैं स्वार्थ की व्यवस्था का विरोध नहीं करता हूं, पुरा समर्थन करता हूं। और स्वार्थ की व्यवस्था ही विकसित होते-होते समाजवादी व्यवस्था बन सकती है; क्योंकि सारे लोग अपना स्वार्थ खोजें, नहीं तो कल उन्हें दिखाई पड़ जाएगा कि बहुत सी जगह हम एक दूसरे के स्वार्थ में व्यर्थ बाधक बन रहे हैं। वह बाधाएं भी हटा लें। अपने स्वार्थ को, सुख को, हजार गुना कर लें, तो आज नहीं तो कल, मनुष्य-जाति समाजवाद के करीब पहुंच सकती है--स्वार्थो के संघर्ष से नहीं, बल्कि स्वार्थ के सहयोग की खोज से।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि पूंजीवाद में भ्रष्टाचार, ब्लैक मार्केटिंग है, रिश्वत है। इन सबके लिए आप क्या कहते हैं?

इस सबका कारण पूंजीवाद नहीं है। इस सबका कारण पूंजी का कम होना है। जहां पूंजी कम होगी वहां भ्रष्टाचार नहीं रोका जा सकता। लोग होंगे बहुत, पूंजी होगी कम, तो लोग सब तरह के रास्ते खोजेंगे पूंजी की मालकियत करने के। अगर दुनिया से भ्रष्टाचार मिटाना हो तो भ्रष्टाचार मिटाने की फिकर ही न करें। भ्रष्टाचार सिर्फ बाई-प्रॉडक्ट है, उससे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन सारे नेता भ्रष्टाचार मिटाने में लगे हैं, सारे साधु भ्रष्टाचार मिटाने में लगे हैं। वे कहते हैं, हम भ्रष्टाचार मिटाएंगे, जब कि असली सवाल यह है कि संपत्ति कम है, भ्रष्टाचार होगा। भ्रष्टाचार संपत्ति के कम होने का स्वाभाविक परिणाम है। अगर हम हजार लोग यहां हैं और खाना दस आदमियों के लिए है, तो क्या आप समझते हैं कि खाना चोरी से प्राप्त करने की कोशिश नहीं की जाएगी?
एक मनोवैज्ञानिक समाजवादी हिटलर के किसी कारागृह में बंद था! उसने लिखा है कि वहां जाकर मुझे आदमी की असली तस्वीरों का पता चलना शुरू हुआ, क्योंकि चौबीस घंटे में एक ही बार रोटी मिलती थी और वह थी अत्यंत अल्प होती थी कि पेट न भर पाए। मैंने ऐसे लोगों को जो कवि थे, लेखक थे, डाक्टर थे, इंजीनियर थे, प्रतिष्ठित थे, कोई किसी गांव का मेयर था, उसको भी रात में दूसरों के बैग में से रोटी का एक टुकड़ा चुराते हुए देखा। जिनकी नैतिकता की सदा चर्चा थी, जिनके अभिनंदन होते थे, हजारों की थैलियां जिनको भेंट की जाती थीं, उस आदमी को भी एक सिगरेट के लिए घुटने टेक कर गिड़गिड़ाते देखा और किसी को कुछ नहीं लग रहा है कि क्या गलत हो रहा है। उसने खुद लिखा है कि मुझे जो पूरी रोटी मिलती थी वह पूरी तो नहीं थीं, एक वक्त का भी पेट नहीं भरता था और एक दफे उसे खा लो तो दिन भर तकलीफ होती थी; क्योंकि पेट भरा भी नहीं है, भूख बुझी भी नहीं है। और रोटी भी खत्म हो गई। उसने लिखा है कि एक टुकड़ा फिर खा लिया; थोड़ी देर भूख को सहा। फिर इस आशा में कल्पना देखते हुए कि अब थोड़ी देर में फिर एक टुकड़ा खा लेंगे, और थोड़ा रुको--ऐसे चौबीस घंटे में कई बार छोटा-छोटा टुकड़ा! उसने यह भी लिखा है कि यहां आकर मुझे पता चला है कि मैं चौबीस घंटे रोटी के संबंध में ही सोचने लगा हूं। ईश्वर, आत्मा, चेतन, अचेतन, साइकोलॉजी, एनालिसिस सब खो गए हैं--फिलासफी--सब गए। सदा से मैं सोचता था यही महत्वपूर्ण है, वहां जाकर अचानक पता चला कि रोटी ही सब कुछ है और उसने कहा--मैं भी नहीं कह सकता हूं कि अगर मुझे मौका मिल जाए तो मैं किसी की रोटी न चुरा लूं।
यह जो भ्रष्टाचार हे, यह तो रिश्वतखोरी है, इस बात का सबूत है कि देश में लोग ज्यादा है और संपत्ति कम है। इस सीधे से तथ्य को हम न समझेंगे। एक आदमी को जब बुखार चढ़ता है, तो कुछ लोग बुखार को बीमारी समझ लेते हैं। वे कहते हैं--इस आदमी का शरीर गरम हो गया है, एक सौ दो डिग्री बुखार है। ठंडा पानी डाल कर इसका बुखार इसी वक्त ठीक करो। वह उसको मार डालेंगे। बुखार बीमारी नहीं है, सिर्फ खबर है कि भीतर अव्यवस्था हो गई है। यह जो भ्रष्टाचार हमें दिखाई पड़ता है--यह बीमारी नहीं है, यह सिर्फ खबर है कि पूंजी कम और लोग ज्यादा हैं; लेकिन भ्रष्टाचार खत्म करना है, पूंजी बढ़ानी नहीं है, लोग कम करने नहीं है। लोगों को भगवान पैदा कर रहा है तो भगवान से बड़ा भ्रष्टाचारी इस वक्त फिर कोई भी नहीं है; क्योंकि लोग जितने पैदा होते जाएंगे, भ्रष्टाचार बढ़ेगा। संख्या बढ़ती जाएगी, संपत्ति पैदा नहीं करनी है और संपत्ति हम पैदा करेंगे और जनसंख्या भगवान पैदा करेगा तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। तालमेल बैठाना असंभव हो जाएगा। इधर हमको भगवान के इस निरंतर के वरदान पर रोक लगानी पड़ेगी। उनसे हाथ जोड़ कर कहना पड़ेगा कि अब बस, अब लोग नहीं चाहिए और अगर लोग भेजते हो तो सबके हाथ दस एकड़ जमीन और एक-एक फैक्टरी एक-एक आदमी के साथ भेजो, अन्यथा यह काम नहीं चलेगा।
लोग अनैतिक नहीं हैं, जैसा कि सारे धर्मगुरु और नेता समझते हैं। लोग अनैतिक नहीं है, स्थिति अनैतिक है कोई अनैतिक नहीं है। न कोई नैतिक होता है, न कोई अनैतिक। इस अनैतिक स्थिति में भी कोई अगर बहुत श्रम करे तो नैतिक हो सकता है; लेकिन तब उसकी कुल जिंदगी नैतिक होने में ही व्यय हो जाएगी। वह कुछ और नहीं कर पाएगा। बस किसी तरह अपने को चोरी से रोक ले, आंख बंद करके हाथ-पैर रोक कर खड़ा हो जाए। श्वास रोक ले, चोरी से रोक ले, बस यही उनकी

उपलब्धि होगी। इसमें बहुत श्रम करके कोई नैतिक हो सकता है, लेकिन यह स्थिति अनैतिक है। सिचुएशन इ.ज इम्मारल, और इसलिए इस स्थिति को बदलने का सवाल है, न कि भ्रष्टाचार रोको, "भ्रष्टाचार रोको" आंदोलन चलाओ, नारे लगाओ, भाषण दो। कोई भी नहीं रोक पाएगा। रुकेगा अपने आप अगर संपत्ति बढ़ती है, विकसित होती है। अगर हम संपत्ति इतनी पैदा कर लेते हैं कि संपत्ति काफी हो, तो कोई चोरी करने नहीं जाएगा।

एक मित्र ने पूछा है कि बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम--वे सब तो त्याग की बात कर रहे हैं! वे तो कहते हैं, त्याग करो और आप कहते हैं, संपत्ति बढ़ाओ!

मैं आपसे कहता हूं, संपत्ति बढ़ाओ। बुद्ध, राम, कृष्ण क्या कहते हैं पक्का तय करना मुश्किल है; लेकिन अगर वे यह कहते हैं कि संपत्ति मत बढ़ाओ तो गलत कहते हैं। मजा तो यह है कि जिनके पास संपत्ति ही न हो वे त्याग क्या करेंगे? बुद्ध कह सकते हैं कि त्याग करो। बुद्ध संपत्ति में पैदा हुए हैं। बुद्ध, यशोधरा को छोड़ कर जा सकते हैं, जंगल में बारह वर्ष तपश्चर्या के लिए। यशोधरा के लिए पीछे महल है और सब सुरक्षा है। अगर आज का कोई बुद्ध यशोधरा को छोड़ कर जाएगा बारह वर्ष, तो बारह वर्ष के बाद यशोधरा चकले में मिलेगी, घर पर नहीं मिलेगी। और बुद्ध अपने बेटे राहुल को छोड़ कर जा सकते हैं, लौट कर वह घर पर ही मिलता है; किंतु यदि आज छोड़ कर जाएंगे तो किसी यतीमखाने में या बंबई के किसी रास्ते पर भीख मांगता मिलेगा। पता लगाना मुश्किल होगा कि बेटा कहां है। बुद्ध के पास बहुत था। जिसके पास भी बहुत है वे छोड़ने की बात कर सकते हैं लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जिनके पास बहुत है उनकी बात उन्होंने मान ली है जिनके पास कुछ भी नहीं है।
इस देश के सारे मनीषी धनपति घरों से आए और इस देश की सारी जनता दीन और दरिद्र है। लेकिन उसने उन्हें मान क्यों लिया? उसका भी तर्क है। उससे उसे बड़ा सुख मिला। उसने कहाः देखो, धन कमा कर क्या करना है। बुद्ध के पास इतना धन था, वे छोड़ कर सड़कों पर भीख मांग रहे हैं; तो हम तो पहले ही से बुद्ध हैं, हम तो पहले ही से भीख मांग रहे हैं। हिंदुस्तान के दरिद्र मन को तृप्ति मिली। बुद्ध और महावीर ने जब सड़कों पर भीख मांगी, तो हम बड़े खुश हुए। हमने जो बुद्ध और महावीर के चरणों में श्रद्धा का सिर रखा उसका कारण बुद्ध और महावीर न थे, उसका कारण हमारी दीनता और दरिद्रता को मिली तृप्ति थी। क्या रखा है इन महलों में, कुछ भी सार नहीं है, नहीं तो महल वाले महलों को छोड़ कर कैसे आते? तो हम तो धन्य हैं कि पहले से ही महल में नहीं हैं।
लेकिन ध्यान रहे, महल को छोड़ कर सड़क पर खड़ा होना एक अलग अनुभव है और सड़क पर ही खड़ा रहना हो और महल पर कभी न गए हों तो यह बिल्कुल दूसरी स्थिति है। इसलिए बुद्ध भिखारी नहीं हैं, बुद्ध के भिखारीपन में भी एक सम्राट की हैसियत है और बुद्ध की चाल में एवं उनकी आंखों में भिक्षु का खयाल कहीं भी नहीं है। मालकियत है, वे छोड़ कर आए हैं, वे ठुकरा कर आए हैं। कुछ चीजें बेकार हो गई हैं, और एक हम हैं जिन्होंने उन चीजों का जाना ही नहीं। बेकार नहीं हुई, भीतर प्राण कह रहे हैं कि महल मिल जाए, लेकिन न महल खोजन की ताकत है, न महल खोजने का श्रम करना है, न महल खोजने की बुद्धिमत्ता जुटानी है। फिर हम कहते हैं, क्या करेंगे महल खोज कर? जिनके पास महल था वे महल छोड़ कर सड़कों पर भीख मांग रहे हैं। बेकार है महल, इस तरह हम अपने को समझा रहे हैं। भारत अपने को समझाता रहा और समझा-समझा कर मरता चला गया है। यह बड़ी कठिन बात है भारत के मन के सामने। किसी न किसी रूप में हमें यह समझ लेना चाहिए कि बुद्ध और महावीर और इस तरह के सारे लोग संपन्नता को छोड़ कर आए हुए लोग थे। इन्हें विपत्रता का पता नहीं हो सकता है। बुद्ध के पास बुद्ध के बाप ने सारी सुंदर स्त्रियां इकट्ठी कर दी थीं--जो भी उस समय राज्य में उपलब्ध हो सकती थीं वह सब खोज कर इकट्ठी कर दीं। अब बुद्ध जब स्त्रियों की तरफ नहीं देखते हैं तो बात और है। बुद्ध देख चुके स्त्रियों के आर-पार कि अब स्त्री में कुछ नहीं है। अब ऐसे आदमी, जिनको स्त्री कभी छूने को नहीं मिली, देखने को नहीं मिली, वह भी अपने घर में बैठ कर बुद्ध बनने की कोशिश कर रहे है। ऐसे लोग फंस जाएंगे इस कोशिश में। उनके चित्त को स्त्रियां ही

स्त्रियां घेर लें तो आश्चर्य तो नहीं है न? स्त्री को आर-पार देख जाने के बाद एक छुटकारा है।
लेकिन स्त्री से दूर खड़े होकर जो ब्रह्मचर्य साध रहे हैं, ए यदि स्त्री से बुरी तरह बंध जाएंगे तो इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है न? अभाव में संतोष को पकड़ लेना एक बात है, लेकिन संपन्नता को विवेक से छोड़ देना बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन नेतृत्व मिल गया उनको और पूरा देश राजी हो गया, इसलिए
देश संपन्न नहीं हुआ, समृद्ध नहीं हुआ और हमने ऐसी फिलासफी पकड़ ली--ए फिलासफी ऑफ पावर्टी, जिसको पकड़ कर बैठ गए और अब उसमें बड़ा रस ले रहे हैं। बहुत हो चुका यह रस। खुजली खुजलाने का यह रस काफी हो चुका। इससे अब छुटकारा चाहिए।
देश की प्रतिभा को स्पष्ट रूप से समझ लेना पड़ेगा कि धन चाहिए और धन के चाहने में सबसे बड़ी जरूरत है कि धन मिल जाए तो ही आदमी धन के आर-पार जा सकता है। अन्यथा बहुत कठिन है। मैं यह नहीं कहता कि कोई एकाध आदमी नहीं जा सकता। किसी ने लिख कर भेज दिया कि फलां संत गरीब थे और वह चले गए। एकाध आदमी जा सकता है लेकिन नियम नहीं बनाया जा सकता एक आदमी के आधार पर।
इस गांव में मलेरिया फैल जाए और एक आदमी बिना मलेरिया के इंजेक्शन के
बच जाए तो इसको नियम नहीं बनाया जा सकता कि देखो, एक आदमी को इंजेक्शन नहीं लगा, उसको मलेरिया नहीं हुआ, इसलिए किसी को इंजेक्शन मत लगाओ। वह एक आदमी बच गया है, कुछ भूल-चूक हो गई मलेरिया के कीटाणुओं की; लेकिन यह नियम नहीं हो सकता और अगर इसको नियम बनाया तो पूरा गांव मरेगा और अगर पूरा गांव मरेगा तो इस आदमी के भी मरने की संभावना बढ़ जाएगी। हो सकता है, दूसरों को जो इंजेक्शन लगे हैं, वे ही इसको बचाने में कारगर हुए हों। इस तक बीमारी पहुंचने में रुकावट पड़ी हो।
एक आदमी को इस अपवाद का नियम बनाने की भूल नहीं करनी चाहिए। लेकिन हमारा देश कर रहा है। हमारा देश सामान्य मनुष्य से नियम नहीं बनाता। हमारा देश नियम बनाता है अपवादों को, एक्सेप्शन को। वह जो असामान्य है और अकेला है, उसको हम नियम बना लेते हैं। उसके अनुसार हम साधारण-साधारण जनों को व्यवस्थित, बदलने, नियमित करने की कोशिश करते हैं। असाधारण व्यक्तियों को साधारण आदमी के लिए आदर्श बनाना, साधारण आदमी की हत्या करने जैसा है; लेकिन यह हो रहा है आज तक। अब महावीर को आदर्श बना लो कि वह नग्न खड़े हैं और सारे लोगों को नग्न खड़ा कर दो तो कठिनाई हो जाएगी। महावीर वस्त्रों में रह चुके, महावीर वस्त्रों का सुख ले चुके, महावीर वस्त्रों में जी चुके। महावीर वस्त्रों का सुख ले चुके, महावीर वस्त्रों में जी चुके। महावीर को नग्न होने में जो आनंद है, उस आनंद में पहने गए वस्त्रों का हाथ है। इसलिए एक आदमी जो नंगा ही पैदा हुआ है, नंगा ही बड़ा हुआ है, वस्त्र देखे नहीं, दूर से देखी है चमक वस्त्रों की, उससे कहो नग्न रहने में आनंद है--तो वह क हेगा नग्न होने में क्या आनंदित होना है? वह कहेगा, महावीर कुछ विशेष होंगे, भगवान होंगे, तीर्थंकर होंगे, इसलिए नग्न रहे। मुझे तो कपड़े में बहुत आनंद आता है। लेकिन ध्यान रहे, महावीर कपड़ों के कारण नग्नता में आनंद ले पा रहे हैं, यह आदमी नग्नता के कारण कपड़ों में आनंद ले पाएगा। दोनों की चित्त-दशा में बहुत फर्क नहीं है। दोनों का तर्क एक ही है कि जो अनजाना है, अपरिचित है, वह सुखद है। जो परिचित है, वह व्यर्थ है। इसकी नग्नता परिचित होकर व्यर्थ हो गई है।
इन शिक्षाओं से मुक्त होना पड़ेगा। ये शिक्षाएं नॉन-डाइनैमिक सोसाइटी, स्टेटिक सोसाइटी पैदा करती हैं। इस शिक्षाओं ने एक मरा एवं रुका हुआ जड़ समाज पैदा किया है, जिसमें कोई बहाव नहीं है। एक बढ़ता हुआ, गतिमान समाज इनसे पैदा नहीं हो सका। अगर गतिमान समाज पैदा करना हो तो संतोष पर हीं, असंतोष पर आधार रखना पड़ेगा। यह जो हम निरंतर पूछते हैं कि हम गरीब क्यों हैं, हम गरीबी से संतुष्ट थे तो हम गरीब रहेंगे, क्योंकि अमीरी पैदा करनी पड़ेगी और पैदा वह करेगा जा गरीबी से असंतुष्ट हो। तभी अमीरी पैदा हो पाएगी, अन्यथा पैदा नहीं हो पाएगी। सम्पत्ति पैदा करनी है। संपत्ति कहीं रखी नहीं है कि हमें मिल जाए, अभी हम जाएं और मिल जाए। संपत्ति ह्यूमन

क्रिएशन है और जो चीज मानवी सृजन है उसे पैदा करने के लिए उसकी मूलभूत जो जरूरत है, वह है एक असंतुष्ट खोजने वाला चित्त। हमारे पास चाहिए एक डिस्कटेंट माइंड, एक ऐसा मन जो असंतुष्ट है और सदा खोज रहा है। हमारी सारी शिक्षाएं संतोष दिलाने वाली हैं। संतोष दिलाने वाली शिक्षाएं देश को जड़ बनाती हैं, गतिमान नहीं बनाती हैं।

मेरे एक मित्र ने पूछा है कि गांधी जी की कल मैंने बात की--उन्होंने पूछा है कि गांधी जी तो चाहते थे कि देश सुखी हो, देश समृद्ध हो, देश के लोग मंगल को, कल्याण को उपलब्ध हों... ?

जरूर चाहते थे। लेकिन नरक का रास्ता अच्छी चाहों से पटा हुआ है। अकेली अच्छी चाह का सवाल नहीं है। मैं बहुत चाहता हूं कि आपकी कैंसर ठीक हो और पानी पिला रहा हूं, तो कैंसर ठीक होने वाली नहीं है। मैं बहुत चाहता हूं कि आपकी टी.बी. ठीक हो, लेकिन ताबीज बांधता हूं तो चाह से टी.बी. ठीक न होगी। टी.बी. ठीक करने के विज्ञान को समझना पड़ेगा। गांधी जी कहते थे कि देश संपन्न हो, सुखी हो, लोग अच्छे हों, लेकिन गांधी जी जो भी तरकीबें बताते थे वह विपन्नता की, दरिद्रता की होती थीं। गांधी जी अगर सफल हो जाएं तो हिंदुस्तान का भाग्य सदा के लिए दरिद्र रह जाएगा। सच तो यह है कि अगर गांधी जी की बात मान ली जाए तो अभी पचास करोड़ की संख्या में से कम से कम हिंदुस्तान में पच्चीस करोड़ आदमी आज ही मरने की हालत में छोड़ देने पड़ेंगे।
अगर सारी दुनिया गांधी जी की बात मान ले, तो इसी समय साढ़े तीन अरब आबादी में से कम से कम दो अरब आदमी को गांधी की शिक्षा मानने से इसी वक्त मरना पड़ेगा। न तो चंगीज, न हिटलर, न स्टैलिन, न माओ और न सब दुनिया के हत्यारे मिल कर जितना मनुष्य को मार सके, उतना गांधी जी का विचार अकेला मार सकता है। क्यों? क्योंकि गांधी जी जो बातें कर रहे हैं, वह औद्योगिक युग के पहले की, सामंती युग की बातें हैं। उस सामंती युग के जिन उपकरणों की वे बात कर रहे हैं, चर्खा और तकली की, वह सारे के सारे उपकरण इतनी बड़ी मनुष्यता के लिए उपयोगी नहीं हैं। वे इसे जिंदा नहीं रख सकते। ये आदमी मर जाएंगे अभी। तो गांधी जी जो देखने में इतनी बड़ी अहिंसा की बात करते हैं, भूल कर उनकी बात मत मान लेना, नहीं तो बाद में इतिहास लिखेगा कि इससे बड़ा हिंसक आदमी नहीं हुआ; क्योंकि इतने लोग इसने मार डाले। इतने लोगों को जीने के लिए तकनीकी उत्पादन की वैज्ञानिक व्यवस्था चाहिए। लेकिन गांधी जी जो व्यवस्था सुझा रहे हैं, वह रामराज्य के जमाने की है, जब दुनिया की आबादी इतनी छोटी थी कि उस व्यवस्था से काम चल सकता था। उस दिन चर्खा-छाप धीमी और शिथिल व्यवस्था से काम चल सकता था। आज तीव्र व्यवस्था चाहिए। इतने मुंह हैं, इतने सिर है, इतने लोग हैं। आदिम व्यवस्था से गांधी जी इन्हें बचा सकते हैं। गांधी जी की बात मानी तो दरिद्रता पक्की हो जाएगी।

और उन मित्र ने पूछा है कि आप गांधी जी की आलोचना करते हैं, जब कि उनका व्यक्तित्व और उनके विचार और आचार में सदा एकरूपता थी!

इससे बड़ी झूठी कोई और बात नहीं हो सकती है। गांधी जी के आचार और विचार में इतनी बड़ी खाई थी कि जितनी दुनिया में शायद ही किसी आदमी के विचार और आचार में रही हो। आप कहेंगे, कैसी हैरानी की बात करते हैं?
गांधी जी जिंदगी भर रेलगाड़ी का विरोध करते रहे और जिंदगी का ज्यादा समय रेलगाडी में ही बिताया। जिंदगी भर विरोध किया एलोपैथी का और कहते थे, रामनाम ही सबसे बड़ी दवा है, लेकिन जब भी मरने के करीब पहुंचे, एलोपैथी की सहायता ली और बचे। न तो राम-नाम से बचे, न नेचरोपैथी से बचे। मरने के पहले जरूर सब उपाय कर लेते थे। नेचरोपैथी, रामनाम सब जब हो गया और जब मरने के करीब पहुंचे तो एलोपैथी ने बचाया। पूरी जिंदगी एलोपैथी का विरोध करते रहे और पूरी जिंदगी एलोपैथी उनको बचाती रही। पूरी जिंदगी रेलगाड़ी का, तार का, पोस्ट आफिस का विरोध किया और जितनी चिट्ठियां उन्होंने लिखीं, पोस्ट आफिस

का उपयोग किया--मैं नहीं समझता मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी और आदमी ने ऐसा किया हो। गांधी जी दुश्मन हैं ट्रेन के। ट्रेन में नहीं चलना है, ट्रेन का होना पाप है, ट्रेन इस दुनिया से हट जानी चाहिए। सारे नये उपकरण के विरोधी और सब नये उपकरणों का उन्होंने पूरी तरह उपयोग किया और लोग कहते हैं उनके आचार-विचार में बड़ी एकता है। कैसी एकता है आचार-विचार में? वे जो कह रहे हैं कर कभी नहीं पा रहे हैं और जो कर रहे हैं वह बहुत भिन्न है--अगर उनकी पूरी जिंदगी की व्यवस्था को ठीक से देखें। लेकिन जिसको हम महात्मा मान लेते हैं उसकी तरफ हम आंख बंद कर लेना जरूरी समझते हैं।
मेरी तो उनसे एक ही दफा मुलाकात हुई और दुबारा नहीं हुई। मुझे आकांक्षा भी नहीं हुई। बहुत छोटा था, तब उनसे मिलने गया था। मेरे गांव से वे निकल रहे थे। सारा गांव जा रहा था तो मैं भी गया था और बहुत छोटा था। मेरी मां ने मेरी जेब में तीन रुपये रख दिए थे कि वहां स्टेशन पर भीड़-भाड़ होगी, खाना-पीना, आना-जाना, तीन-चार मील का रास्ता भी था। स्टेशन के प्लेटफार्म पर बहुत भीड़ थी तो यह सोच कर कि इतनी भीड़ में मुझ छोटे से बच्चे को तो उन्हें देखना भी मुश्किल होगा, इसलिए मैं प्लेटफार्म की दूसरी तरफ चला गया जहां प्लेटफार्म नहीं था। गांधी जी की गाड़ी आई, मैं उनकी खिड़की में चढ़ कर भीतर भी चला गया। उनकी नजर मुझ पर नहीं गई--मेरे मलमल के कुर्ते में वह जो तीन रुपए का वजन लटका हुआ था और रुपए दिखाई पड़ रहे थे, उन पर गई। उन्होंने जल्दी से कहाः यह क्या है? तीन रुपये निकाल लिए और कहा कि हरिजन-फंड में दे दो बेटे और हरिजन-फंड की पेटी में डाल दिए। मैंने कहा, ठीक है। मैं इससे खुश भी हुआ। सोचा कि अच्छा हुआ कि मैंने रुपये पहले ही खर्च नहीं कर दिए। लेकिन जैसी कि मेरी बुद्धि है, तो चलते समय मैंने वह पेटी उठा ली और कहा कि यह पेटी मैं ले जाता हूं। मेरे स्कूल के गरीब बच्चों के काम ये रुपये आ जाएंगे। ले जाने की कोई बात न थी। ले भी मैं नही जाता, लेकिन जानना चाहता था कि गांधी जी क्या कहते हैं। उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, पेटी मत उठाओ, यह हरिजन-फंड की पेटी है। मैंने उनकी आंखों में झांका। जिस व्यक्ति को मैं खोजने आया था, वह व्यक्ति वहां नहीं था!
मैं नीचे ट्रेन से उतर कर खड़ा हो गया। ट्रेन चली गई और उस भीड़ में वह मुझको देखते रहे, क्योंकि उनकी समझ में भी शायद खयाल आया हो कि क्या हो गया है? घर लौटने पर मेरी मां ने मुझसे पूछा कि महात्मा जी से मिले? मैंने कहाः महात्मा जी आए ही नहीं। उसने कहाः क्या मतलब? सब लोग तो कह रहे थे, निकले ट्रेन से। मैंने कहा, निकले श्री मोहनदास कर्मचंद गांधी, महात्मा जी नहीं। मेरी मां नहीं समझी। उसने कहाः क्या मतलब है तुम्हारा? मैंने कहाः श्री मोहनदास कर्मचंद गांधी कुशल दुकानदार है, सफल बनिया है। और उसके बाद मैंने गांधी जी को बहुत समझने की कोशिश की और जितना मैंने समझने की कोशिश की, मेरी जो पहली उनके संबंध में धारणा बनी वह धारणा मिटी नहीं, और मजबूत होती गई। मैं यह नहीं कहता कि मेरी धारणा को कोई माने लेकिन इतना मैं जरूर कहता हूं कि किसी भी आदमी के संबंध में पथरीली धारणाएं नहीं बनानी चाहिए, अन्यथा देश के चिंतन को धक्का पहुंचता है, और अंततः यह धक्का घातक हो जाता है।
अब सबको यही खयाल है कि वह जो कहते थे, उससे देश का कल्याण होगी ही; क्योंकि वे महात्मा थे। महात्मा होने से ही कल्याण होता है, ऐसा भी नहीं है। अभी मैं गया राजकोट। वहां जिस मैदान में मेरी सभा थी, वहां मैंने बहुत गाय-बैल खड़े देखे। मरी हालत में थे। मैंने पूछाः ये क्यों इकट्ठे हैं? तो पता चला कि जहां-जहां पानी की कमी है वहां-वहां से इनको इकट्ठा कर लिया गया है। इनको बचाने की कोशिश की जा रही है। जिनसे मैंने पूछा, उन्होंने कहा कि एक बहुत अदभुत बात आपको बताऊं? एक महात्मा अभी आए और उन्होंने इन सबको मोतीचूर के लड्डू खिलाए। उस दिन चालीस गाएं मर गईं। महात्मा का फोटो अखबार में छपा कि कितनी महान आत्मा है। गायों को मोतीचूर के लड्डू खिला रहे हैं! लेकिन महात्मा होने में ऐसा लगता है कि अक्ल का न होना जैसे बहुत जरूरी है। भूखी गरीब गाय को, जिसको पानी नहीं, भोजन नहीं मिलता है उसको मोतीचूर के लड्डू खिला रहे हैं तो इससे तो छाती में छुरा मारना ज्यादा आसान है। उससे गाय सुविधा से मरेगी, शांति से मरेगी। मोतीचूर के लड्डू से

चालीस गाएं मरीं, लेकिन महात्मा ने मोतीचूर के लड्डू खिलाए और लोगों ने कहा कितना अदभुत गऊभक्त महात्मा है, मोतीचूर के लड्डू खिला रहा है! हिंदुस्तान की गरीबी गांधी जी की बात से मिटेगी नहीं, क्योंकि गरीबी मिटाने के लिए टेक्नालॉजी चाहिए और गांधी जी टेक्नालॉॅजी के सबसे बड़े दुश्म हैं। वे कहते हैं, टेक्नीक नहीं चाहिए, टेक्नीक शैतान का आविष्कार है। जब कि टेक्नालॉजी ही मनुष्य को बचाएगी और टेक्नालॉजी ही मनुष्य की दरिद्रता मिटाएगी और टेक्नालॉजी ही कल जब जमीन पर ज्यादा लोग हो जाएंगे तो उनको चांद पर पहुंचाएगी, मंगल पर पहुंचाएगी, क्योंकि पचास साल के बाद जमीन पर रहने योग्य जगह नहीं रह जाएगी। मैं नहीं जानता गांधी जी के चरखे के द्वारा किस भांति आदमी को चांद पर पहुंचाया जा सकेगा। मैं नहीं जानता कि गांधी जी के चरखे के द्वारा किस तरह अरबों, खरबों लोगों को भोजन और कपड़े दिए जा सकेंगे। लेकिन डर कोई नहीं है, क्योंकि गांधी जी की जय बोलने वाले भी उनको मानते नहीं हैं। लेकिन खतरा हो सकता है। अगर उन्हें माना जाए तो दुनिया को दो हजार साल पीछे लौटा कर वे रख दें। जिसे वे राम-राज्य कहते हैं, वह अत्यंत पिछड़ी हुई व्यवस्था का नाम है, आज की इस व्यवस्था से बहुत ज्यादा पिछड़ी हुई व्यवस्था का नाम है, लेकिन वे उसकी ही आकांक्षा करते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि आप जो कह रहे हैं--यही तो पुरानी हिंदू संस्कृति कहती है, यही तो पुरानी हिंदू संस्कृति का असली समाजवाद है!

मैं कुछ समझा नहीं कि वे क्या पूछ रहे हैं।
उन्होंने यह भी लिखा है असली समाजवाद हिंदुस्तान में पहले हो चुका है!
दुनिया में कभी नहीं हुआ और हिंदुस्तान में तो बिल्कुल नहीं हुआ, न अतीत में कभी होने की संभावना ही थी। जिसको आप पुरानी संस्कृति कहते हैं उससे जितनी जल्दी छूटें, उतना अच्छा है। सिर्फ अपनी होने से बीमारी अच्छी नहीं हो जाती। लेकिन जिस जाल में हम जकड़े होते हैं हजारों साल से, वह अच्छा लगने लगता है। किस चीज को आप कह रहे हैं? कब था समाजवाद भारत में? जिन्होंने यह पूछा है उन्होंने यह कहा है कि सब अच्छी बातें भारत में थीं, वहीं लौट चलना चाहिए।
कोई अच्छी बात नहीं थी जहां लौटने की जरूरत हो। अगर अच्छी बात होती तो
हम उसे छोड़ कर ही न आए होते। अच्छी बात छोड़ कर कभी भी कोई नहीं जाता है और अगर जाता है तो और अच्छे की तलाश में ही जाता है। लेकिन हम बड़े भ्रम में हैं। हमारा खयाल है कि भारत सोने की चिड़िया थी। कभी नहीं थी। हां, कुछ लोगों के लिए थी, कुछ लोगों के लिए आज भी है, सबके लिए कभी भी नहीं थी। हम सोचते हैं कि भारत में कभी ताले नहीं पड़ते थे। लोग इतने अच्छे और ईमानदार थे कि घरों में ताले नहीं पड़ते थे। मुझे नहीं समझ में आता है कि यह बात सच हो सकती है। होगी सच तो कारण कुछ और होंगे, जो हम सोचते हैं वह नहीं है। क्योंकि बुद्ध लोगों को समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, महावीर समझा रहे हैं कि चोरी मत करो। अगर लोग इतने अच्छे थे कि ताले की जरूरत नहीं थी तो बुद्ध और महावीर का दिमाग खराब रहा होगा--किसको समझ रहे हैं कि चोरी मत करो? चोरी बराबर थी। तब एक ही मतलब निकलता है कि ताले उन घरों पर नहीं होंगे जिनके भीतर चुराने को कुछ भी न हो और कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। या ताले बनाने की अक्ल पैदा न हुई होगी या घर के भीतर ताले लगाने जैसा कुछ न होगा। लेकिन ताले नहीं थे, यह इस बात का सबूत नहीं है कि लोग चोर न थे; क्योंकि सारे शास्त्र कह रहे हैं कि चोरी मत करो। बुद्ध सुबह से शाम तक यही समझाते हैं कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, यह मत करो, वह मत करो। यह सारे लोग क्यों समझा रहे हैं यह बातें? सुकरात ढाई हजार साल पहले भी यूनान में यही कहता गया है कि लड़के बिगड़ गए हैं, कोई मां-बाप की नहीं सुनता, शिक्षक का कोई आदर नहीं है। लोग बेईमान हो गए हैं, भ्रष्टाचारी हो गए हैं।
छह हजार साल पुरानी किताब है चीन में। उसकी भूमिका अगर पढ़ें तो ऐसा लगता है कि आज के ही सुबह के अखबार का एडिटोरियल है। उसमें लिखा है कि लोग

बहुत बिगड़ गए हैं, नैतिक ह्नास हो गया है। लोग भौतिकवादी हो गए हैं, भ्रष्टाचार फैल गया है, कोई किसी की सुनता नहीं, ऐसा लगता है कि महाप्रलय निकट है। वह छह हजार साल पहले की किताब है और उसमें लिखा भी है कि पहले के लोग अच्छे थे। पहले के लोग अच्छे थे, यह मिथ और कल्पना से ज्यादा नहीं है। असल में पहले के लोगों को हम भूल चुके और जो थोड़े से लोग हमें याद रह गए हैं, उनके कारण ही सब गड़बड़ होती है। महावीर याद हैं, महावीर के समय का आम आदमी हमें याद नहीं है तो लगता है कि महावीर के जमाने में सब लोग अच्छे रहे होंगे। महावीर के जमाने में अगर सब लोग अच्छे होते, तो महावीर की हमें याद भी न आती अब तक। महावीर अब तक दिखाई इसीलिए पड़ रहे हैं। स्कूल में तख्ते पर मास्टर लिखता है तो काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखता हैं। सफेद दीवाल पर लिखे तो लिख भी सकता है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा, काले तख्ते पर दिखाई पड़ता है। महावीर ढाई हजार साल तक दिखाई पड़ते है कि एक महापुरुष थे। जब तक समाज का तख्ता बिल्कुल ब्लैक-बोर्ड न रहा हो, तब तक ढाई हजार साल तक दिखाई नहीं पड़ सकते कि वे महापुरुष थे। दस-पांच महापुरुष मनुष्य-जाति में दिखाई पड़ते हैं। बाकी सारी मनुष्यता एक काले तख्ते की तरह है जिसके ऊपर लकीरें उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं, लेकिन कोई मनुष्यता कभी अच्छी नहीं थी। जितनी अच्छी आज है, उतनी अच्छी भी नहीं थी। हम रोज अच्छाई की तरफ विकास कर रहे हैं। लेकिन एक धारणा हमारे मन में है कि पतन हो रहा है। पहले सतयुग हो चुका, गोल्डन ए.ज हो चुकी, अब कलियुग है, अब तो पतन ही पतन है। जिस कौम के मन में यह भाव बैठ जाएगा कि आगे पतन है उसका पतन निश्चित है, क्योंकि भाव ही गतिमान करते हैं। हम अपने स्वर्ण-युग को पीछे रखे बैठे हैं। सब अच्छा हो चुका। अब तो सब बुरा होना है, यह हमने पक्का मान लिया है, यह हमारे प्राणों में बैठ गया है। यह हमारा संस्कार बन गया है। कि आगे बुरा--और बुरा होना है। तो बगल में जब कोई किसी को छुरा भोंकता है तो कहते हैं, आ गया कलियुग। जब कोई किसी की स्त्री को लेकर भाग जाता है, तो हम कहते हैं, आ गया कलियुग और आपके ऋषि-मुनि लेकर भागते रहे, तब सतयुग था और आपके देवी-देवता आकाश से उतर कर दूसरों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते रहे, तब सतयुग था और अब कलियुग आ गया, क्योंकि बगल का कोई आदमी ले गया है। अजीब बातें है। राम की औरत चोरी चली जाए तब सब अच्छी दुनिया है और अभी कोई दूसरे रामचंद्र जी पड़ोस में आपके रहते हों, उनकी औरत चोरी चली जाए तो कलियुग आ गया।
नहीं, आदमी रोज अच्छा हो रहा है। अगर भविष्य में अच्छा बनना है तो स्वर्ण-युग आगे है, अंधेरा पीछे है, प्रकाश आगे है। अगर भविष्य को निर्मित करना है तो आशा चाहिए और आशा न हो तो भविष्य निर्मित नहीं हो सकता। मेरी दृष्टि में मनुष्य के पैर जो इतने डगमगाए मालूम पड़ते हैं, उसका एक कारण यही है। आशा आगे नहीं मालूम पड़ती, आगे अंधेरा है, अंधेरा हम पैदा किए हुए हैं। इतना अच्छा आदमी पृथ्वी पर कभी नहीं था, जितना अच्छा आदमी आज है। अभी बिहार में अकाल पड़ा। दो करोड़ आदमी मर सकते थे उस अकाल में लेकिन मरे केवल चालीस। यहदो करोड़ आदमी कैसे बचे? सारी दुनिया दौड़ पड़ी। दूर-दूर देश के अनजान बच्चों ने अपने खाने के पैसे बचाए, आइस्क्रीम के पैसे बचाए, सिनेमा देखने के पैसे बचाए। सारी दुनिया दौड़ पड़ी। बिहार में कोई अनजान आदमी मर रहा है, जिससे कोई संबंध नहीं है, उसको बचाना है। ऐसा कभी नहीं हुआ था, पहली दफा हुआ है। आज वियतनाम में युद्ध हो तो भी यहां बंबई का प्राण भी कंपता है कि गलत हो रहा है। कहीं कुछ गलत हो रहा है, तो सारी दुनिया पीड़ा अनुभव करती है। मनुष्यता पहली दफा बोध को उपलब्ध हुई है। मनुष्य विकसित हुआ है, मनुष्य की समझ विकसित हुई है, मनुष्य का सुख विकसित हुआ है। लेकिन एक अंतिम बात...

दो-तीन मित्रों ने पूछा हैः आप अमरीका की इतनी तारीफ करते हैं, लेकिन वहां हिप्पी बढ़ रहे हैं, बीटनिक बढ़ रहे हैं, कोई एल एस डी ले रहा है, कोई मेस्कलीन ले रहा है, कोई शराब पी रहा है। लेकिन इतने अशांत हैं, नींद नहीं है--ट्रैंक्वेलाइजर चाहिए। ये सारी स्थितियां हैं और आप इतनी तारीफ करते हैं और कहते हैं, कि अमरीका में समाजवाद आएगा, वहां तो इतनी अशांति है... ?

आपको पता होना चाहिए, कोई जानवर अशांत नहीं होता है। सुना है कभी किसी भैंस को अशांत होते? सुना है कभी किसी गधे को रात कभी नींद न आई हो? नहीं सुना होगा। कभी सुना है कोई गधा बोर हुआ हो, ऊबा हो। कभी सुना है कि किसी बैल ने आत्महत्या कर ली कि जिंदगी बेकार है? कोई पशु न तो ऊबता है, न अशांत होता है, न चिंतित होता है, न आत्महत्या करता है। क्या कारण है? बुद्धि बहुत अविकसित होती है। बुद्धि जितनी विकसित होती है, उतनी सेंसिटिव होती है, उतनी संवेदनशीलता होती है, उतनी चीजें दिखाई पड़नी शुरू होती हैं, उतनी समझ बढ़ती है। जितना चारों तरफ का फैलाव होता है, उतनी अर्थ और मीनिंग की खोज शुरू होती है। आज अमरीका में वह जो हिप्पी है या बीटल है या बीटनिक है या जो और तरक के बगावती लड़के हैं, वे इस बात की खबर हैं कि चेतना नये स्तर छू रही है। वहां चेतना नई चीजों को देख रहीं है जो हमें कभी दिखाई नहीं पड़ीं। मनुष्य की बुद्धि ज्यादा विकसित हुई है। उसकी ज्यादा विकसित बुद्धि उसे चिंता दे रही है। लेकिन ध्यान रहे, जितनी ज्यादा चिंता होगी उतनी बड़ी शांति को उपलब्ध किया जा सकता है। शांति और अशांति का तल हमेशा बराबर होता है। अगर कोई आदमी सिर्फ दो इंच तक अशांत हो सकता है तो वह दो ही इंच तक शांत भी हो सकता है। अगर कोई आदमी हजार मील तक अशांत हो सकता है, तो हजार मील तक शांत होने की क्षमता भी विकसित हो जाती है।
हमारे जीवन की क्षमता, हमारी पात्रताएं, दोनों दिशाओं में एक साथ बढ़ती हैं। अगर मेरे मन में कुरूप का बोध स्पष्ट हो जाए तो सौंदर्य का बोध भी उतना ही विकसित होता है। जिस आदमी को बहुत सौंदर्य का बोध होगा उस आदमी को कुरूपता का भी उतना ही बोध हो जाएगा, क्योंकि सौंदर्य उसे सुख देगा। जिस आदमी की जितनी बड़ी चेतना का विस्तार होगा, उतनी चिंता उसको घेरने लगेगी, क्योंकि दूसरे की चिंता भी उसके घेरे के भीतर आ जाएगी। आज मनुष्यता ज्यादा बुद्धिमान है, इसलिए ज्यादा चिंतित है। लेकिन ज्यादा चिंतित होने के कारण पीछे नहीं लौटना है, और आगे जाना है कि जितनी मनुष्यता चिंतित है उतने हम शांति के नये मार्ग खोज सके। पुराने मार्ग काम नहीं देंगे, नये मार्ग खोजने पड़ेंगे। मनुष्य एक कगार पर है, चेतना एक नई छलांग के निकट है। उदाहरण के लिए जब पहली दफा बंदर झाड़ के नीचे उतरा होगा और चार हाथ-पैर
को छोड़ कर दो हाथ-पैर से चला होगा, तो पहली बात यह कि बड़ा आकवर्ड मालूम हुआ होगा, और जो बंदर चार हाथ-पैर से चलने वाले वृक्षों पर बैठे होंगे उनके बुजुर्ग उन्होंने कहा होगा मूर्ख यह क्या कर रहा है, कितना बेहूदा मालूम पड़ रहा है? कहीं बंदर ऐसा चलते हैं दो हाथ से? और जो दो हाथ से चला होगा उसको तकलीफ भी हुई होगी, चिंता भी हुई होगी, उसकी रात रीढ़ दुखी होगी, जिंदगी खराब हुई होगी, वह परेशानी में भी पड़ गया होगा। लेकिन उसी बंदर से मनुष्यता विकसित हुई।
आज जो विकसित चेतना पीड़ा अनुभव कर रही है, आत्महत्या तक पहुंच गई है, वही मनुष्य चेतना एक नई मनुष्यता को जन्म देने के करीब है। मनुष्य में एक नई चेतना का उदभव निकट है, और ध्यान रहे इसमें आदिवासी जंगल के भागीदार न हो पाएंगे और ध्यान रहे, इसमें आपके मंदिरों और मस्जिदों में बैठे लोग भजन-कीर्तन कर लें, लेकिन भागीदार न पाएंगे। ये सब संतोष खोज रहे हैं, वे असंतोष से भयभीत हैं। आज तो असंतोष की आग में कूदने को जो राजी है और उस आग को भी पार करने की क्षमता दिखाए, वही नये मनुष्य को जन्म देने के सौभाग्य का भागीदार हो सकता है। हम अभागे हैं उस अर्थ में। अभी हम हिप्पी पैदा नहीं कर सकते, अभी हम उतने गहरे शांत भी नहीं हो सकते। अमरीका उस जगह खड़ा है एक वैंगार्ड की तरह, एक आगे की सीमा-रेखा पर जहां छलांग करीब है। इस छलांग के पहले बहुत बार मन होगा कि पीछे लौट जाएं। इसलिए तो श्री महेश योगी जैसे लोगों का वहां प्रभाव पड़ता है। यह पीछे लौटने वाले लोग श्री महेश योगी जैसे व्यक्तियों से प्रभावित हो रहे हैं। वे कह रहे हैं कि कहां के झंझट में पड़ते हो, छोड़ो चिन्ता आंख बंद करके राम-राम भजो, माला फेरो, पीछे लौट चलो। श्री गांधी जी का भी प्रभाव अमरीका पर पड़ा है। हिंदुस्तान से ज्यादा। उसका भी कारण यह है कि वह जो पीछे लौटने वाला बैकवर्ड माइंड है वह घबड़ा गया है छलांग से। वह कहता है, आगे खाई है, पीछे लौट चलो। ठीक कहते

हैं गांधी जी, क्या जरूरत है टेक्नालॉजी की, इतने बड़े मकान का क्या करोगे, वापस लौटो।
लेकिन यह वापस लौटने वाला नारा सदा से था। इससे कोई हित नहीं हुआ है। जाना है आगे, पीछे लौटा नहीं जा सकता। उपाय भी नहीं है। हो भी उपाय तो लौटना खतरनाक है, क्योंकि अब पीछे लौट कर कुछ नहीं पाया जा सकता है। एक बार एक बच्चा चौथी क्लास में आ गया, अब कितना ही मन कहता हो, पहली क्लास में लौट चलो, बड़े सरल सवाल थे वहां, तो भी कोई मतलब नहीं। उसे लौटा भी दो तो अब सवाल बेमानी दिखाई पड़ेंगे। पहली क्लास को तीन क्लास की प्रौढ़ता आ गई। मनुष्य का चित इतना विकसित हो गया है कि उसे रामराज्य में नहीं ले जाया जा सकता है, उसे कोई प्रीमीटिव सोसाइटी में नहीं ले जाया जा सकता है। हां, यह हो सकता है, एक-दो दिन के लिए अच्छा लगे, जंगल चला जाए, लेकिन दो दिन के बाद ऊब जाएगा।
अभी यहां बीस-पच्चीस मित्र मेरे साथ कश्मीर गए। वे बंबई से आगे कश्मीर के लिए, पहलगाम में मेरे साथ थे। पहलगाम में जो रसोइया मेरा खाना बनाता था, वह रोज मुझसे कहता कि पीर बाबा मुझे किसी तरह बंबई पहुंचा दें। मैंने कहाः तू क्या पागल है? यह बंबई के लोग मेरे साथ यहां आए हुए हैं पहलगाम। तू धन्यभागी है, तू पहलगाम में ही मजे में रह। उसने कहाः बिल्कुल मजा नहीं आता है, बल्कि कई बार ऐसा लगता है कि यहां लोग क्या देखने आते हैं। यहा कुछ भी तो नहीं है, मुझे बंबई पहुंचा दो। मैं मानता हूं कि उसे बंबई मिलनी चाहिए। क्यों? क्योंकि एक तो बड़ा फायदा यह होगा कि तब वह पहलगाम कभी-कभी देखने में आनंद उठा सकेगा।
मनुष्यता आगे जाती है। पीछे कभी-कभी दिन दो दिन के लिए हाली डे मनाया
जा सकता है। वह सुखद है, लेकिन पीछे जाया नहीं जा सकता है। हां, किसी दिन मौज में आ जाए, राजघाट पर बैठ कर चर्खा चलाएं, जैसा नेतागण चलाते हैं, वह ठीक है। लेकिन अगर कोई कहता हो कि चरखे की इंडस्ट्री का सेंटर बना लें, तो गलत बात है। कोई कहता हो, चरखा ही चलाओ तब खतरा है। हां, वैसे कभी-कभी फोटो उतरवाने के लिए चर्खा चलाना काफी सुखद है, अच्छी हाबी है और बढ़िया हाबी है, सस्ती हाबी है और फायदा ज्यादा लाती है। लेकिन पीछे लौटना असंभव है। न कोई भारतीय संस्कृति, न कोई मुसलमान संस्कृति, न कोई ईसाई संस्कृति--कोई संस्कृति पीछे लौट कर मनुष्य को सुख नहीं दे सकती है। आगे और आगे और जहां आगे है--वहां न हिंदू बचेगा, न ईसाई बचेगा, न मुसलमान बचेगा। वहां मनुष्य बचेगा। भविष्य मनुष्य का है और इस भविष्य को लाने के लिए कितनी सृजनात्मकता चाहिए--उसका हम विचार करें! कितनी संपत्ति पैदा करें, कितना स्वस्थ आदमी पैदा करें, कितना शरीर बलशाली हो, कितना सुख जन्मा सकें कि उस सुख से संगीत आए--उस सुख से आत्मा की तलाश भी आए! उस सुख से हम किसी दिन प्रभु के मंदिर पर भी खड़े हो सकें!

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का
नौवां प्रवचन

कोरा शब्दः लोकतांत्रिक समाजवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछली चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि आप समाजवाद या साम्यवाद की जो आलोचना कर रहे हैं उसमें डेमोक्रेटिक सोशलिज्म (लोकतांत्रिक समाजवाद) के संबंध में शायद आपने विचार नहीं किया।
डेमोक्रेटिक सोशलिज्म या लोकतांत्रिक समाजवाद आत्मविरोधी शब्दों से निर्मित हुआ है, जैसे कोई कहे वंध्या-पुत्र। बांझ स्त्री का बेटा, अगर कोई कहे तो जैसी गलती होगी, वैसी ही यह गलती है। अगर बच्चा है तो स्त्री बांझ न रही होगी, अगर स्त्री बांझ है तो बच्चा नहीं हो सकता है। इसलिए वंध्या- पुत्र शब्द तो बनता है, सत्य नहीं होता। डेमोक्रेटिक सोशलिज्म जैसी कोई चीज नहीं है, लोकतांत्रिक समाजवाद जैसी कोई चीज नहीं है, शब्द भर है; क्योंकि समाजवाद लाने में ही लोकशाही की हत्या करनी पड़ती है। लोकशाही की बिना हत्या के तथाकथित समाजवाद नहीं लाया जा सकता। इस बात का फर्क समझ लेना उचित होगा कि लोकशाही की हत्या क्यों करनी पड़ती है।
डेमोक्रेसी या लोकशाही का पहला सिद्धांत यह है कि प्रत्येक व्यक्ति
को जीने, कमाने, खाने, अर्जित करने, इकट्ठा करने की स्वतंत्रता रहे। लोकशाही का बुनियादी आधार यह है कि किसी व्यक्ति के साथ अन्याय न हो पाए और लोकशाही का यह भी बुनियादी आधार है कि बहुमत अल्पमत पर अन्याय न कर सके। अगर एक गांव में सौ मुसलमान हों और दस हिंदू हों और वे दस हिंदुओं की हत्या करना चाहें और कहें कि हम लोकशाही ढंग से हत्या कर रहे हैं क्योंकि सौ लोग कहते हैं कि हत्या करो और दस लोक कहते हैं कि मत करो--ज्यादा लोग हत्या करने के पक्ष में हैं, इसलिए यह हत्या जो है एक डेमोक्रेटिक है, तो हम कहेंगे, गलत है यह बात। लोकशाही का मतलब ही यह है कि बहुमत भी अल्पमत पर अन्याय न कर पाए। पूंजीवाद या पूंजीपति अल्पमत है।
समाजवाद जिस बहुमत की बात कर रहा है और जिस बहुमत की बात लेकर चलता है,
वह अल्पमत को नष्ट करने के लिए लोकशाही का उपयोग करे तो लोकशाही का बुनियादी आधार गिर जाता है। और आज एक अल्पमत है, कल दूसरा अल्पमत है। आज कुछ लोग कहते हैं संपत्ति बंटनी चाहिए, किसी के पास ज्यादा, किसी के पास कम न हो, क्योंकि संपत्ति ने ईर्ष्या को जन्म दिया है। लेकिन पूछना जरूरी यह है कि जिन लोगों ने संपत्ति पैदा नहीं की, जिन लोगों ने संपत्ति के उत्पादन में और सृजन में कोई हाथ नहीं बंटाया, जो चुपचाप खड़े देखते रहे, लेकिन अर्जित हो जाने के बाद संपत्ति की मांग और बंटवारे की बात जरूर कर रहे हैं--क्या यह अन्यायपूर्ण नहीं है?
यह बड़े मजे की बात है कि जब भी कोई नया आविष्कार हुआ, जिससे दुनिया में संपत्ति आई, तो उस आविष्कार को बेचना भी मुश्किल हुआ। आविष्कारक हमेशा पागल मालूम पड़े। मनुष्य-जाति का बड़ा हिस्सा, बहुमत सदा ही रूढ़िवादी रहा है। विकास किया है इक्के-दुक्के लोगों ने। लेकिन अंत में भागीदार सब हो जाते हैं। मैंने सुना है, एक बहुत बड़े आविष्कार को लेकर एक वैज्ञानिक कई लोगों के पास गया। वह पचास रुपये में भी बेचने को राजी था, लेकिन कोई लेने को राजी नहीं था; क्योंकि बात पागलपन की मालूम पड़ती थी। कार की पहली डिजाइन भी पागलपन था, कोई लेने को तैयार नहीं था। जिस आदमी ने उस डिजाइन को लेने की हिम्मत जुटाई और हिम्मत दिखा कर संपत्ति के उत्पादन का एक नया द्वार खोला और वह आदमी जब संपत्ति पैदा कर लेगा, तो वे जो चुपचाप देख रहे थे कि यह डिजाइन पागलपन की है, यह संभावना गलत है--जब संपत्ति अर्जित हो जाएगी, तब वे कहेंगे कि हम भी इसमें भागीदार हैं, क्योंकि संपत्ति सबकी है।
संपत्ति बहुत थोड़े से लोगों ने पैदा की है और उन थोड़े से लोगों ने जब पैदा कर ली है तो जिन्होंने पैदा नहीं की है, वे मालकियत के लिए जरूर दावेदार हैं। लोकशाही का मतलब यह है कि जिसने पैदा किया है वह उसका मालिक

है। अगर वह बांटता है तो उसकी खुशी है, लेकिन मांगने वाले का हक नहीं हो सकता। अगर इसे मांगले वाले का अधिकार बताया जाता है तो यह बात कहां रुकेगी, कहना कठिन है। संपत्ति भी प्रतिभा से पैदा हुई है। आज हम संपत्तिशाली की प्रतिभा से पीड़ित हैं। हम कहते हैं कि संपत्ति बांट दो। कल हम कहेंगे कि कुछ लोगों के पास सुंदर स्त्रियां हैं, कुछ लोगों के पास कुरूप स्त्रियां हैं, यह अन्याय नहीं सहा जा सकता, यह असमानता नहीं देखी जा सकती। सुंदर स्त्रियों पर सबका समान अधिकार होना चाहिए। गलती नहीं होगी, तर्क वही है, तर्क में कोई भेट नहीं है। परसों हम कहेंगे, कुछ लोग प्रतिभाशाली हों, बुद्धिमान हों और कुछ लोग मूढ़ और अज्ञानी हों, यह बरदाश्त के बाहर है। असमानता नहीं सही जाती। बुद्धि का ठीक-ठीक वितरण होना चाहिए। तर्क वही है, लेकिन तर्क बिल्कुल एंटी-डेमोक्रेटिक है। एक-एक आदमी अलग है। एक-एक आदमी की अलग-अलग क्षमता है। हम आदमी की सृजनशीलता, क्षमता और प्रतिभा अलग है और उसी के अनुसार वह संबंधित वस्तुएं बनाएगा, जिनकी मालकियत भी उसकी ही होगी। अगर वह बांटता है, तो यह उसकी खुशी है; लेकिन मांगने का हक अन्याय है। समाजवाद बहुत से अन्यायों की स्वीकृति देता है, क्योंकि अन्याय के लिए बहुमत को तैयार किया जा सकता है। बहुमत के तैयार होने से अन्याय न्याय नहीं हो जाता और न असत्य सत्य हो जाते हैं। व्यक्तिगत संपत्ति व्यक्ति का मौलिक अधिकार है और लोकशाही उस अधिकार को स्वीकार करती है और जब कोई कहता है, "लोकशाही वाला समाजवाद" तो झूठी बात कहता है; क्योंकि लोकशाही की बुनियादी बात उसने तोड़नी शुरु कर दी है। दूसरी मजे की बात है कि समाजवाद जिन मूल्यों पर खड़ा हुआ है, वह मूल्यों की सिर्फ बात करनाहै, उन्हें ला नहीं सकता। विषय के स्पष्टीकरण के लिए थोड़े से मूल्यों की चर्चा कर लेना उपयोगी होगा।
स्वतंत्रता शायद मनुष्य के जीवन में सर्वाधिक मूल्यवान तथ्य है, संभवतः उससे बड़ा कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि स्वतंत्रता पहला आधार है जिससे व्यक्ति का संपूर्ण विकास हो सके। इसलिए परतंत्रता मनुष्य के जीवन की सबसे बुरी दशा है और स्वतंत्रता सबसे सुंदर और श्रेष्ठ। समाजवाद स्वतंत्रता पर हमला किए बिना स्थापित नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि बहुमत राजी हो अल्पमत की स्वतंत्रता को काट देने के लिए। लेकिन तब भी यह अनुचित है। स्वतंत्रता की हत्या लोकशाही नहीं हो सकती? लोकशाही का प्राण या आत्मा है, विचार की स्वतंत्रता। समाजवाद विचार की स्वतंत्रता बरदाश्त नहीं कर पाता, क्योंकि विचार की स्वतंत्रता में पूंजीवाद के समर्थन की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है। वह उसे कठिन मालूम होने लगता है, वह उसे आमूल तोड़ देना चाहता है। व्यक्ति की संपत्ति और व्यक्ति के विचार की स्वतंत्रता की हत्या करने के बाद भी अगर समाजवाद लोकतांत्रिक हो सकता है, तो वह बहुत आश्चर्य है, वह कैसे लोकतांत्रिक हो सकता है?
लोकतांत्रिक समाजवाद झूठा शब्द है। असल में लोकतंत्र "शब्द" का आदर है। समाजवाद उस आदर को भी छोड़ना नहीं चाहता। रूस भी लोकतांत्रिक है, चीन भी। सब लोकतांत्रिक हैं। शब्दों के साथ आदमी बड़ा खिलवाड़ करता है। वह शैतान के ऊपर भी भगवान का लेबल लगा सकता है। रोके कौन, रोकना बहुत कठिन है। साफ समझ लेना चाहिए कि डेमोक्रेसी पूंजीवाद का मूल्य है, समाजवाद का मूल्य नहीं है और डेमोक्रेसी बचेगी तो पूंजीवाद के साथ बचेगी। समाजवाद के साथ लोकतंत्र नहीं बच सकता। लोकतंत्र पूंजीवादी जीवन-व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा है। वह पूंजीवाद के साथ बचेगा। ऐसे ही और भी मूल्य हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़ते, हमारे खयाल में नहीं आते, लेकिन उन सार मूल्यों की हत्या बड़ी सुविधा से की जा सकती है। उनकी हत्या की जा रही है। व्यक्ति का अपना पृथक चरम मूल्य (अल्टीमेट वैल्यू) है, लेकिन समाजवाद व्यक्ति को नहीं, समाज को, भीड़ को मूल्य देना चाहता है। वह मूल्य देना चाहता है कि मूल्य है समाज का और समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान स्वीकार योग्य है। हमेशा से व्यक्ति का बलिदान होता रहा है बड़े-बड़े सिद्धांतों, बड़े-बड़े नामों के आधार पर--कभी राष्ट्र के लिए, कभी धर्म के लिए, कभी कुरान के लिए, कभी गीता के लिए--न मालूम किन-किन बातों के लिए आदमी का बलिदान होता रहा। लेकिन आदमी ऐसा प्राणी है जो इतिहास से कुछ भी नहीं सीखता। पुराने शब्द हट

जाते हैं, तो वह नई बलिवेदियां बना लेता है और फिर उन पर व्यक्ति को काटना शुरू कर देता है। समाजवाद नई बलिवेदी है अगर मनुष्य के इतिहास से कोई भी एक शिक्षा लेनी हो तो वह एक शिक्षा लेनी जैसी है और वह यह है कि व्यक्ति को किसी के लिए बलिदान नहीं किया जा सकता है। बड़े से बड़ा राष्ट्र भी एक व्यक्ति को बलिदान करने का हकदार नहीं है और बड़े से बड़ा सिद्धांत भी एक व्यक्ति को बलिदान करने का हकदार नहीं है; क्योंकि व्यक्ति जीवंत चेतना है और इस जीवंत चेतना की किसी भी व्यवस्था, किसी भी संस्था और किसी भी संगठन के लिए बलिदान करना उचित नहीं है। लेकिन हम आदी हैं व्यक्ति की हत्या करने के और अब भी हम नये उपाय निकाले जा रहे हैं कि व्यक्ति को किस मंदिर की वेदी पर चढ़ा दें। नई वेदी समाजवाद की है।
समाजवाद लोकशाही नहीं है। समाजवाद अगर हम बलपूर्वक लाते हैं, लाने की चेष्टा करते हैं, तब तो वह लोकशाही हो ही नहीं सकती। एक ही अर्थ में समाजवाद किसी दिन जीवन में अनायास, सहज अपने आप आए, तो जीवन की स्वतंत्रता की हत्या किए बिना आ सकता है, अन्यथा संभव नहीं है।

आज मेरे एक मित्र ने मुझे सूचना दी कि किसी अखबार में उन्होंने पढ़ा कि पैसिफिक महासागर में एक छोटा सा द्वीप है--उस द्वीप की आबादी ज्यादा नहीं है। कुछ ही सौ लोग वहां हैं। लेकिन उस द्वीप के पास फासफोरस की खदानें हैं और इतनी संपत्ति उन खदानों से पैदा हो जाती है कि एक-एक व्यक्ति को करीब आठ हजार रुपये उससे उपलब्ध हो जाते हैं। उस छोटे से द्वीप पर कोई गरीब नहीं है, कोई अमीर नहीं है, क्योंकि लोग कम हैं और संपत्ति ज्यादा है। वह द्वीप शायद पृथ्वी पर अभी पहला समाजवादी है। लेकिन वह समाजवादी है, ऐसा उसे पता भी नहीं है। समाजवाद के पैदा होने की भी कोई जरूरत नहीं है। संपत्ति इतनी ज्यादा है और लोग इतने कम हैं। उन्होंने मुझे खबर दी कि वहां अगर कोई मेहमान होता है किसी के घर में और इतना कह देता है कि यह रेडियो बहुत सुंदर है तो उस घर के लोग तत्काल उसे रेडियो दे देते हैं, क्योंकि वह कह देते हैं कि जिसे पसंद आ गई चीज, उसकी हो गई। संपत्ति है बहुत और संपत्ति की पकड़ हो गई है क्षीण। किसी दिन इस पृथ्वी पर समाजवाद आ सकता है--आना चाहिए--आएगा, अगर समाजवादियों ने जल्दी नहीं की। अगर समाजवादियों ने जल्दी की तो यह हो सकता है कि कभी भी न आ सके। सदा के लिए अवरुद्ध हो जाए। संपत्ति ज्यादा हो और व्यक्ति कम, इसकी व्यवस्था हम जिस दिन कर लेंगे, उस दिन लोकतंत्र की हत्या किए बिना समाजवाद आ सकता है। लेकिन तब उसका हमें पता भी नहीं चलेगा कि वह कब आया। वह चुपचाप आ जाएगा, जैसे जिंदगी में सब महत्वपूर्ण चीजें आती हैं।
एक बात और ध्यान देने जैसी है। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए, क्योंकि... कई मित्रों ने पूछा है कि आप कहते हैं कि श्रम का कोई उपयोग ही नहीं है पूंजी के उत्पादन में... ?
ऐसा मैंने नहीं कहा कि श्रम का उपयोग नहीं। मैंने कहा यह कि श्रम आज नहीं कल, गैर-जरूरी तत्व होता चला जाएगा। रोज होता चला गया। श्रम ने पूंजी के अर्जन मे साथ दिया है, लेकिन सृजन का मूल केंद वह नहीं है। सृजन का मूल केंद्र मनुष्य का मस्तिष्क है, मनुष्य की बुद्धि है और मनुष्य की प्रतिभा है जिसने सृजन के नये-नये आयाम खोजे। और यह भी ध्यान रहे कि श्रम जो है, वह बहुत जल्दी मर जाने वाली चीज है। अगर मैं आज दिन भर काम करूं तो आज दिन भर काम न करने से मेरे पास श्रम बचेगा नहीं कि मैं उसे तिजोरी में रख लूं और कल उसका उपयोग कर लूं। अगर मैंने आज दिन भर काम नहीं किया तो आज मैं जो काम कर सकता था, वह मैं कभी न कर सकूंगा, क्योंकि श्रम को बचाया नहीं जा सकता। श्रम रोज खो जाता है। ऐसा नहीं कि एक मजदूर काम करे जिंदगी भर तो उसका शोषण नहीं होगा, वह तो मर ही जाएगा। क्योंकि श्रम बचाया नहीं जा सकता। वह यह नहीं कह सकता कि मैंने अपने श्रम को तिजोरी में बंद कर रखा है। मैंने बचा लिया है।
पूंजीवाद ने पहली दफा श्रम को बचाने की व्यवस्था सोची। वह जो पैरी- सेवल कमोडिटी थी, उसको सुरक्षा योग्य बनाया। धन की ईजाद से श्रम बचने योग्य हुआ। आज मैं श्रम करता हूं और पांच रुपये तिजोरी में बंद कर लेता

हूं, पांच रुपये की शक्ल में मेरा श्रम स्थायी हुआ, बचा। अगर पांच रुपये की शक्ल में न मिले तो श्रम गया। ऐसा नहीं है कि मेरे पास श्रम होता, लेकिन मजा यह ह कि मैं कहूंगा कि मैंने दस रुपये का श्रम किया और मुझे सिर्फ पांच रुपये मिले, जब कि अगर मैं नहीं करता तो एक पैसे का भी श्रम नहीं होता। यह जो पांच रुपये मुझे मिले हैं, निश्चित ही किसी दिन मुझे दस रुपये मिलने ही चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पूंजी-उत्पादन की जो व्यवस्था है, उसको तोड़ कर रुपये मिल जाएंगे। इस पूंजी-उत्पादन व्यवस्था को और विकासमान करना होगा। पूंजीवाद जैसा आज है वैसा पर्याप्त नहीं है। आप ऐसा मत सोच लेना, जैसा कई मित्रों ने का है कि जो पूंजीवाद आज है, आप उसका समर्थन कर रहे हैं।
नहीं, जो पूंजीवाद आज है, उसमें बहुत परिष्कार की गुंजाइश एवं अनिवार्यता है। आज जो पूंजीवाद है, वह बिल्कुल प्राथमिक है--वह पूंजीवाद का क ख ग है। अभी उसे बहुत विकसित होना है, लेकिन समाजवादी शोरगुल उसे विकसित नहीं होने देगा। यह हो सकता है कि कल पांच रुपये की जगह दस रुपये भी श्रमिक को दिए जा सकें और यह भी हो सकता है कल दस रुपये के श्रम की जगह बीस रुपये दिए जा सकें और यह भी हो सकता है कि जो आदमी श्रम न करे, उसे भी दिया जा सके और अंततः ठीक से हम टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन से गुजर जाएं तो यह भी हो सकता है कि जो आदमी श्रम की मां करे उसे कम पैसे मिलें, और जो आदमी आराम करने के लिए राजी हो जाए उसे ज्यादा पैसे मिल जाएं। यह भी हो सकता है। यह इसलिए हो सकता है कि श्रम की मांग बढ़ी, और बहुत सी चीजों से जुड़ी है। अगर कल आपके गांवों में सारे स्वचालित यंत्र लगा दिए जाएं तो हजारों-लाखों लोग बेकार हो जाएंगे, लेकिन स्वचालित यंत्र जो संपत्ति पैदा करेंगे, उसका करिएगा क्या? इन बेकार लोगों को ही वह देनी पड़ेगी। उनको बेकारी का मुआवजा देना पड़ेगा। लेकिन कोई आदमी कह सकता है कि मैं चौबीस घंटे बेकार नहीं रह सकता। मैं पागल हो जाऊंगा। मुझे दो घंटे काम चाहिए तो इस आदमी को कम पैसा देना पड़ेगा, क्योंकि यह दोनों बातें मांगता है। पैसा भी मांगता है और काम भी मांगता है। जो बेकाम होने के लिए बिल्कुल तैयार हों--जो कहते हैं हम सिर्फ पैसे ही मां लेते हैं, हम काम नहीं मांगते, उन्हें ज्यादा भी मिल सकता है। वह पचास साल के भीतर संभव हो सकता है--अगर उत्पादन की व्यवस्था को परिष्कृत किया जाए और उसे जगह-जगह तोड़ने का उपाय न किया जाए। तोड़ने के उपाय बड़े मजेदार है और बड़ी तरकीब से भरे हैं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ते हैं। एक तरफ देश के नेता चिल्लाते हैं कि देश गरीब है। संपत्ति उत्पादित होनी चाहिए। दूसरी तरफ जो संपत्ति का उत्पादन करे, उस पर जितनी ज्यादा संपत्ति उत्पादन करे, उतना ज्यादा कर वे लगाते चले जाते हैं। यह बिल्कुल मूढ़तापूर्ण बात है। अगर संपत्ति ज्यादा चाहते हैं तो जो आदमी एक लाख पैदा करे, उस पर ज्यादा टैक्स। जो दो लाख पैदा करे उस पर कम, जो तीन लाख पैदा करे, उस पर और कम। दस लाख करे, उस पर बिल्कुल नहीं। जो करोड़ करे, उसको उलटा सरकार टैक्स दे तो संपत्ति ज्यादा पैदा हो सकती है। संपत्ति के ज्यादा पैदा होने का सीधा सूत्र यह है कि लोगों के इंसेंटिव को जगाओ। इंसेंटिव को मारते हैं आप। आप कहते हैं, लाख पैदा किया। आपने दो लाख यदि पैदा किया तो नब्बे हजार टैक्स हो जाएगा। तीन लाख किया तो और टैक्स हो जाएगा, चार लाख किया तो जो कमाया, वह टैक्स में जाएगा और टैक्स के भरने के इंतजाम की जो दौड़-धूप है, वह अलग है; तो आदमी सोचता है, कमाने की जरूरत ही क्या है। जो कमा सकते हैं, उनको आप रोक रहे हैं और जो नहीं कमा सकते हैं, वह जो बड़ा वृहत समाज है हमारा, जो लिथार्जी से भरा है, जो कुछ नहीं कमा सकता है, उसके आप गीत गा रहे हैं। मुल्क को मार डालने की तरकीब है। ये गीत अच्छे लग सकते हैं, लेकिन यह महंगे और खतरनाक हैं।
मनुष्य समाज का बहुत बड़ा हिस्सा बिल्कुल ही सृजनात्मक नहीं है। मनुष्य-समाज का बहुत बड़ा हिस्सा रोटी मिल जाए, भोजन मिल जाए और बच्चा पैदा करने की सुविधा मिल जाए तो तृप्त है। उसे और कुछ नहीं करना है। मनुष्य-जाति के बड़े हिस्से ने खाना खाने, बच्चा पैदा करने के अतिरिक्त कोई बड़ा काम नहीं किया है। मनुष्य-जाति के बहुत थोड़े से हिस्से ने सृजन के फूल खिलाए हैं। चाहे वह दिशा कोई भी हो, कविता हो, चित्र हो, धन हो, विज्ञान हो,

धर्म हो, हर क्षेत्र में बहुत थोड़े से मनुष्यों ने सृजन के शिखर पाए हैं। इनको रोकने की चेष्टा चल रही है, यह बहुत एब्सर्ड लॉजिक है। कहते तो यह हैं कि संपत्ति चाहिए देश को और प्रशंसा उसकी करते हैं जिसके पास संपत्ति नहीं है। जिसके पास संपत्ति नहीं है, उसके पास क्यों नहीं है? करोड़ों साल से वह भी पृथ्वी पर है। उसके भी पुरखे जमीन पर थे। उसके पास संपत्ति क्यों नहीं है? कभी इस पर सोचा है? उसने संपत्ति पैदा नहीं की, बच्चे पैदा किए। वह दरिद्र होता चला गया, उसकी दरिद्रता बढ़ती चली गई, लेकिन बहुत आश्चर्य है कि जिन्होंने संपत्ति पैदा की, वे आज अपराधी हैं। उनको आज समाज की सूली पर लटकना पड़ेगा। उनका भी एक ही अपराध है कि तुमने भी बच्चे पैदा क्यों नहीं किए? तुम भी चुपचाप बिना धन सृजन किए क्यों न बैठे रहे? तुम्हारा बहुत बड़ा पाप है कि तुमने धन पैदा किया। अब वह जिन्होंने नहीं पैदा किया है, वे बदला लेंगे और कहेंगे कि हम तुम्हारी गर्दन दबाएंगे। तुमने हमें चूस लिया, यह बड़े आश्चर्य की बात है। यह धन चूस कर पैदा नहीं हुआ है। यह धन कुछ लोगों ने बड़ी प्रतिभा और बड़े श्रम से पैदा किया है। इसमें बड़ी बुद्धि और बड़े नये आयामों की खोज है, लेकिन वह हमारे खयाल में नहीं है। इनको हम मिटाने पर तुले हैं। इनको हम काटेंगे, हमारा बस यही अंधा तर्क है।
अभी मैं एक परिवार-नियोजन केंद्र को देखने गया। सारा शासन चिल्ला रहा है। सारा देश कोशिश में लगा है कि परिवार-नियोजन हो, लेकिन हमारे तरीके बड़े अजीब है। अगर परिवार-नियोजन करना है तो फिर हमें सोचना चाहिए, उस पूरे संदर्भ में। जैसे मैंने कहा कि अगर संपत्ति उत्पादित करनी है तो जितनी ज्यादा जो संपत्ति पैदा करें, वह पुरस्कृत होना चाहिए। अभी वह दंडित होता है। जब दंडित होगा तो संपत्ति किसलिए पैदा करेगा और जो पैदा नहीं करने वाला है, वह तो करेगा नहीं। जो कर सकता था, वह रुकेगा। मुल्क गरीब होगा रोज-रोज। मुल्क अमीर नहीं हो सकता।
मैं गया उस परिवार-नियोजन केंद्र में। मैंने उस अधिकारी से पूछा कि तुम्हें पता है कि सरकार बैचलर पर कम टैक्स लगाती है या ज्यादा? शादीशुदा पर कम टैक्स लगता है कि ज्यादा? जिसके दो बच्चे हैं, उस पर कम टैक्स लगता है कि ज्यादा? उसने कहा कि इससे परिवार-नियोजन का क्या संबंध है? मैंने कहा, तब तो इसका मतलब हुआ परिवार-नियोजन से बुद्धि का ही कोई संबंध नहीं है। अगर बच्चे बढ़ते हैं किसी घर में तो टैक्स बढ़ला चाहिए, तो बच्चे रुकेंगे। बच्चे बढ़ते हैं, तो टैक्स कम होता है और सरकार कहती है कि हमको बच्चे कम पैदा करने हैं। बच्चे अगर बढ़ते हैं तो टैक्स बढ़ना चाहिए। जिसके घर में तीन बच्चे हों, उस पर कम टैक्स, जिसके चार हों, उस पर और ज्यादा, पांच हों तो और ज्यादा। छठवां हो तो उसकी फीस कई गुनी होनी चाहिए स्कूल में। उसको दवाई महंगी मिलनी चाहिए, क्योंकि जितने बच्चे ज्यादा होंगे, उतने उस पर टैक्स बढ़ने चाहिए तो वह डरेगा और बच्चे रोकेगा। लेकिन जितने बच्चे बढ़ेंगे टैक्स कम हो जाएगा। गैर-शादीशुदा आदमी पर टैक्स ज्यादा है। शादीशुदा होने पर कम हो जाएगा। अजीब बेवकूफी है। गैर-शादीशुदा आदमी पर टैक्स बिल्कुल मत लगाओ। कम करो, ताकि लोग ज्यादा देर तक शादी न करें और शादीशुदा पर जोर से टैक्स लगाओ, ताकि शादी महंगी पड़ने लगे, लोग देर से करें, कम करें। हर बच्चे के साथ टैक्स को बढ़ाओ। एक तरफ चिल्लाओ कि बच्चे कम, दूसरी तरफ जो बच्चे ज्यादा पैदा करे, उस पर टैक्स कम करो, तो इसका अर्थ क्या हुआ?
संपत्ति के मामले में भी यही हो रहा है। जीवन के बहुत पहलुओं पर यही
हो रहा है कि हमारे सामने कोई साफ उद्देश्य न होने से कुछ भी हम किए जा रहे हैं। देश गरीब है तो संपत्ति पैदा करने की सुविधा जुटाओ। देश गरीब है तो संपत्ति को सारी दुनिया से निमंत्रित करो, लेकिन इस मुल्क का खयाल है कि दूसरे मुल्क से लोग आ जाएंगे तो हमें चूस लेंगे।
मैंने आपसे कहा कि श्रम अगर उपयोग में न आए, तो बिना चूसे ही खत्म हो जाता है। अगर सारी दुनिया की संपत्ति इस मुल्क में निमंत्रित हो तो इस मुल्क का जो बहुत सा श्रम रोज व्यर्थ मर रहा है, वह सारा का सारा पूंजी में परिवर्तित हो जाए। लेकिन हमारा खयाल यह है कि अगर दूसरे मुल्क की पूंजी हिंदुस्तान में आई तो हमारा शोषण हो जाएगा। शोषण नहीं हो जाएगा, वरन हमारा

जो श्रम रोज गंगा के पानी जैसा समुद्र में गिरता जा रहा है, उसका उपयोग कर लो तो ठीक है, अन्यथा वह नष्ट हो जाएगा। नर्मदा का पानी भी रोज गिरा जा रहा है समुद्र में। उपयोग कर लो तो ठीक, अन्यथा वह गिर जाएगा।
ऐसे ही मनुष्य में जो श्रम की शक्ति पैदा होती है, वह रोज ही तिरोहित
हो जाती है अनंत में। उपयोग कर लो, उसे ट्रांसफार्म करो, संपत्ति बना लो, वह बच जाएगी। लेकिन हम बहुत अजीब लोग हैं, हम कहते हैं कि दस रुपये का श्रम अगर गंगा में चला जाए तो कोई हर्जा नहीं, लेकिन हम पांच रुपये पर राजी न होंगे। कहीं कोई हमारा पांच रुपये का शोषण न कर ले। जैसे कि पांच रुपये हमारे पास थे और किसी ने छीन लिए। कोई छीन नहीं रहा है। शोषण की पूरी की पूरी धारणा बड़ी नासमझी से भरी हुई है।
पूंजीवाद श्रम को संपत्ति में बदलने की प्रक्रिया है और अगर पूंजीवाद
को ठीक से विकास का मौका दिया जाए तो वह सारे श्रम को संपत्ति में बदलने का मार्ग खोज ले सकता है। लेकिन समाजवादी कहते हैं कि नहीं, हम राज्य के हाथ में यह सब देंगे और मजे की बात यह है कि राजनीतिज्ञ से ज्यादा अयोग्य वर्ग आज पृथ्वी पर कोई भी नहीं है और कभी भी नहीं था। इसका कारण है। इसका कारण यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योग्यता का मूल्य है।
राजनीति के क्षेत्र में योग्यता का कोई भी मूल्य नहीं है। जो आदमी किसी भी बाजार में जूता बेचने को दुकान पर भी न रखा जा सके, वह शिक्षामंत्री हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती है, क्योंकि शिक्षामंत्री के होने से, शिक्षा से योग्यता का कोई संबंध नहीं है। राजनीति एक मात्र अयोग्यों के लिए द्वार है। जिनके पास कोई योग्यता नहीं, वे राजनीति के योग्य हो सकते हैं, क्योंकि राजनीति किसी तरह के विशेष ज्ञान, किसी तरह की विशेषता का कोई आग्रह नहीं करती। इसलिए राजनीति अदभुत गोरख-धंधा है। उसमें कोई भी आदमी जो सिर्फ एक कला जानता है कि दस-बीस आदमियों को अपने पीछे इकट्ठा कर सके, शोरगुल मचा सके, वह आदमी राजनीति में योग्य हो जाता है। लेकिन फिर वह करेगा क्या? वह शिक्षामंत्री बनेगा और युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर और शिक्षाशास्त्री उसके आगे-पीछे चक्कर काटेंगे और वह आदमी अंगूठे से दस्तखत करेगा और शिक्षा को संचालित करेगा। यह समझ के बिल्कुल बाहर है। वह आदमी जिसको कोई पता नहीं है मेडिकल साइंस का, वह स्वास्थ-मंत्री हो जाएगा और स्वास्थ पर मुल्क का मार्गदर्शन करेगा, मुल्क के स्वास्थ को ठीक करने का विचार करेगा। राजनीति अयोग्य व्यक्ति के लिए गति है, लेकिन वह धन को भी अपने हाथ में लेना चाहती है। वह कहती है कि व्यवसाय, सारा धन, सारे उत्पादन भी राजनीतिज्ञों के हाथ में चले जाने चाहिए। वह भी कहीं से संचालित होना चाहिए। मुल्क को किसी भी तरह दिवालिया करने की उसने कसम खा रखी है--दिवालिया करके ही रहेंगे। मुल्क सब तरह से दिवालिया हो जाए, तब तक हम रुकने वाले नहीं हैं।
मेरी अपनी दृष्टि और ही है। मेरी दृष्टि यह है कि राजनीतिज्ञ को, तभी
इस दुनिया में मनुष्य को खतरे में ले जाने से रोका जा सकता है, जब कि राजनीतिज्ञ को सीधा ही शासन का मालिक न होने दिया जाए। इसलिए मेरी दृष्टि तो यही है कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि पार्लियामेंट बनाएं, लेकिन पार्लियामेंट में से मंत्रिमंडल न बने। पार्लियामेंट में जो पार्टी ज्यादा बहुमत में हो, उस बहुमत की पार्टी को हक हो कि एक शिक्षाशास्त्री को खोजे पूरे मुल्क में और शिक्षामंत्री बनाए। खोजे एक चिकित्सक को और स्वास्थ्य मंत्री बनाए। लेकिन जनता का प्रतिनिधी स्वास्थ मंत्री और शिक्षामंत्री नहीं होना चाहिए। यह मॉबोक्रेसी है, डेमोक्रेसी नहीं है। यह भीड़-तंत्र हुआ, लोकतंत्र नहीं हुआ।
जनता अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजे। जिन लोगों की ज्यादा संख्या हो पार्लियामेंट में, वे लोग अपने आदमी खोजें मुल्क में; लेकिन जिस पद के लिए खोजें, उस पद की योग्यता पूरी होनी चाहिए तब मॉबोक्रेसी की जगह मेरिटोक्रेसी का इंतजाम आ सकता है। गणतंत्र जब तक गुणतंत्र (मेरिटोक्रेसी) से नहीं जुड़ता, तब तक गणतंत्र निपट नासमझी की कहानी है। तब तक गणतंत्र मनुष्य को नीचे ही ले जाएगा, ऊपर नहीं ले जा सकता। जनता का प्रतिनिध बिल्कुल ठीक है--चुना जा सकता है। जनता का हक है, अपना प्रतिनिधि

चुनने का, लेकिन अपने प्रतिनिधि को शिक्षामंत्री बनाने का हक जनता को नहीं हो सकता है। हां, जनता का प्रतिनिधि शिक्षा शास्त्रियों को खोजे-- जिनको ठीक समझे, वह जनता का प्रतिनिधि चुनेगा। लेकिन कैबिनेट और मुल्क के शासन का हक विशेषज्ञों के हाथ में होना चाहिए। जब तक एक्सपर्ट के हाथ में, गुणवान लोगों के हाथ में राज्य नहीं है, तब तक सब तरह के खतरे हैं और आज तो जीवन की प्रत्येक चीज स्पेशलाइज्ड है। आज तो एक छोटी से छोटी चीज के लिए विशेषज्ञ हैं।
आज पुराना जमाना गया कि आप गए वैद्य के पास। उसने आपसे पूछा नहीं और नाड़ी देखी और दवा दे दी। उसने यह भी नहीं पूछा कि पेट में दर्द है, आंख में दर्द है कि पीठ में तकलीफ है। नाड़ी देखी और दवा दे दी। वह स्पेशलाइजेशन के पहले की बात है, जब वैद्य सभी कुछ जानता था। अब हालतें बदल गई हैं। मैंने सुना है कि आज से पचास साल बाद एक गांव में एक औरत, एक डाक्टर के आफिस गई और उसने कहा, मेरी आंख में तकलीफ है। वह डाक्टर उसे भीतर ले गया। फिर उसने पूछाः आपकी किस आंख में तकलीफ है। उसने कहा कि बाईं आंख में दर्द है। उस डाक्टर ने कहाः माफ करिए, मैं दाईं आंख का डाक्टर हूं। बाईं आंख का डाक्टर आगे है। एक आंख भी कितनी बड़ी बात है कि असल में दोनों आंख का डाक्टर भी ज्यादा दिन तक नहीं चलेगा! एक आंख इतनी बड़ी घटना है। इतनी बड़ी जटिलता है, लेकिन जिंदगी का जो सबसे जटिल तंत्र है राज्य, वह अविशेषज्ञों के हाथ में है। वे मुल्क को बर्बाद करते चले जाएंगे और अविशेषज्ञों का मन होता है कि सब पर कब्जा कर लो। धन की भी ताकत मेरे हाथ में हो, उद्योग मेरे हाथ में हों, सब मेरे हाथ में हों। धर्म भी मेरे हाथ में हो, विज्ञान भी मेरे हाथ में हो, लेकिन उसकी चाह को अगर हमने पूरा होने दिया तो खतरा होगा।
इसलिए मैं एक धारणा आपको देना चाहता हूं मेरिटोक्रेसी की, गुणतंत्र की। गुणतंत्र गणतंत्र के माध्यम से काम करने की धारणा है और आज नहीं कल, सारी दुनिया में जहां भी समझ बढ़ गई है, वहां एक्सपर्ट मूल्यवान होता चला जा रहा है। आज नहीं कल, इस बात की बहुत संभावना है कि वह जो विशेषज्ञ हैं, वह जो ज्ञानी है उसके हाथ में सब चला जाए।
मेरे एक मित्र ने खबर भेजी है कि जैसा आज आप कह रहे है कि सिर्फ पूंजीवाद ही जानता है, पूंजी को पैदा करना। ऐसा ही कुछ जमाने पहले ब्राह्मण कहते थे कि ब्राह्मण ही जानता है ज्ञान पैदा करना। अब वे ब्राह्मण कहां हैं? उन्होंने पुछवाया है कि अब ज्ञान कोई भी पैदा कर रहा है--वैसे ही आप जो कहते है, ये पूंजीपति भी चले जाएंगे तो कोई भी पूंजी पैदा करेगा?
उन मित्र से मैं निवेदन करना चाहूंगा कि उन्हें शायद पता नहीं है कि
हम ऐसा नहीं कहते रहे है कि ब्राह्मण ही ज्ञान पैदा कर सकता है। हम ऐसा कहते रहे हैं कि जो ज्ञान पैदा करता है, यह ब्राह्मण है और आज भी ब्राह्मण ही ज्ञान पैदा कर रहा है सारी दुनिया में। आइंस्टीन ब्राह्मण है, बनिया नहीं। और बर्ट्रेंड रसल ब्राह्मण है। मार्क्स भी ब्राह्मण है। ये सब ब्राह्मण हैं। यदि हिंदुस्तान में मार्क्स पैदा होता तो कभी का महर्षि हो जाता। ये सब ब्राह्मण हैं।
ब्राह्मण का मतलब क्या है? कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं होता। जन्म से बांधने की वजह से बड़ी भूल हो गई और अन्याय हो गया। यह धारणा कि मनुष्य चार प्रकार के होते हैं, बड़ी कीमती अंतर्दृष्टि है। भूल तो यहां हो गई कि हमने जन्म से इसे बांध दिया। कोई आदमी जन्म से ब्राह्मण नहीं होता, लेकिन कुछ लोग हैं जिनके लिए जीवन भर ज्ञान की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, धन की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, शक्ति की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, श्रम ही जिनकी आत्मा है। यह जो चार की कल्पना थी-- ब्राह्मण की, शूद्र की, वैश्य की, क्षत्रिय की, वह कल्पना जन्म से संबंधित होकर रुग्ण हो गई। धारणा कुछ और थी। धारणा यह थी कि चार टाइप के लोग हैं दुनिया में और वह धारणा अभी भी गलत नहीं हे। और कभी गलत नहीं होगी। वह धारणा सदा रहेगी। कुछ लोग हैं जो धन पैदा कर सकते है, वह कुछ ही लोग हैं। जरूरी नहीं कि धनिक का बेटा धन ही पैदा कर सकता है। इसलिए लिक्विडिटी तो होनी ही चाहिए, लेकिन धन पैदा करने वाली प्रतिभा कुछ लोगों में है, वे ही

वणिक हैं, ज्ञान कुछ लोग पैदा कर सकते हैं। अब मार्क्स बीस साल तक ब्रिटिश म्युजियम की लाइब्रेरी में बैठ कर पढ़ता रहा और इतना उसने पढ़ा कैपिटल लिखने के लिए कि जब लाइब्रेरी बंद होती तो चपरासी उसे अक्सर बेहोश हालत में घर पहुंचाता, क्योंकि वह दिन भर पढ़-पढ़ कर बेहोश हो जाता, यह आदमी ब्राह्मण है। असल में
दुनिया में विचार का जन्म बिना ब्राह्मण के होता ही नहीं। कहीं भी दुनिया में जब कोई ज्ञान लाएगा तो वह टाइप ब्राह्मण का होगा। धन कुछ लोग पैदा कर सकते हैं और राजनीति की जो दौड़ है, वह धनिक की दौड़ नहीं है। राजनीति की जो दौड़ है, अगर वह ठीक और शुद्ध हो तो क्षत्रिय की दौड़ है।
वह जो टाइप है शक्ति के लिए, शक्ति की खोज में चलता है, जीवन भर उसकी दौड़ है। दुनिया में शूद्र भी मिट नहीं जाएगा। हां, शूद्र जन्म से कोई भी नहीं होना चाहिए; लेकिन शूद्र का कुल मतलब इतना है कि जो श्रम कर लेता है, खाना खा लेता है, बच्चा पैदा करता है और मर जाता है। बहुत लोग शूद्र हैं। ब्राह्मणों के घर भी शूद्र पैदा होते हैं। वणिकों के घर में भी पैदा होते हैं, क्षत्रियों के घर में भी पैदा होते हैं। शूद्र का मात्र मतलब इतना ही है, इसलिए शूद्र बुरा शब्द नहीं है। उसका कुल मतलब इतना है कि ऐसा आदी, जो खा लेता है, पी लेता है, पैदा कर लेता है, प्रकृति का काम पूरा कर लेता है और एक पशु के तल पर जीकर समाप्त हो जाता है। लेकिन हमारा जो सोचने का ढंग है, वह यह है कि ब्राह्मण जन्म से है। जन्म वाला ब्राह्मण खो गया। जन्म वाला धनी भी नहीं बच सकता। लेकिन जिसमें धन की प्रतिभा है, उसकी स्वतंत्रता तो बचनी चाहिए कि वह धन खोज सके। सेवा जिसे करनी है, श्रम जिसे करना है, वह श्रम कर सके। ज्ञान जिसे खोजना है, वह ज्ञान खोज सके।
समाजवाद सब पर रोक लगाता है। आज रूस में ज्ञान की खोज पर बुनियादी रोक है। सभी तरह का ज्ञान नहीं खोजा जा सकता है। अगर कोई आज रूस में कहे कि मैं ध्यान के संबंध में कुछ खोज कर रहा हूं तो उपाय नहीं है। आज रूस में संन्यासी होने का उपाय नहीं है। संन्यासी की भी अपनी खोज है और कौन कह सकता है कि उसी की खोज अंतिम सिद्ध न होगी? जब सब ज्ञान थक जाए तो पता नहीं उसी की खोज सही हो। आइंस्टीन जैसा खोजी भी जीवन के अंत में यही कहता है कि सब खोज कर मैं उस जगह पर पहुंचा, जहां मैं कह सकता हूं कि जितना खोजा उतना ही पाया हूं कि अज्ञानी हूं। जितना खोजा उतना ही पता चला कि और अनंत खोजने को है। अंत में इतना ही कह सकता हूं कि जीवन एक रहस्य है। और उसका कोई आर-पार नहीं है। यह आदमी संन्यासी हो गया और रहस्य के किनारे पहुंच गया, लेकिन रूस में रहस्य की बात नहीं की जा सकती। ईश्वर वहां वर्जित खोज है। वह खतरनाक बात है। इसका मतलब हुआ कि ब्राह्मण के लिए पेदा होने के उपाय रोके गए। धन भी नहीं खोजा जा सकता।
अभी आज मुझे किसी ने कहा कि संभवतः रूस ने निमंत्रित किया है फोर्ड को
कि वह रूस में मोटर के कारखाने डाले। अमरीका से फोर्ड को बुलाइएगा और अपने मुल्क में जो फोर्ड पैदा होता है, उसकी पचास साल में हत्या कर दी। वह तो रूस में ही पैदा हो सकता था फोर्ड, कोई अमरीका से ही लाने की जरूरत थी? लेकिन आज अमरीका को निमंत्रण देना पड़ेगा फोर्ड बुलाने के लिए। मामला क्या है? क्या रूस के पास वह जो वैश्य था, वह जो बुद्धि थी, जो धन पैदा करती, वह नहीं पैदा हो सकती? वह हो सकती थी, लेकिन उसे पचास साल में रोका गया है। उसको सब तरह से रोका और तोड़ा है। उसको मिटा डाला है। आज वह जंजीर में कसी है। आज उसके फैलने का उपाय नहीं रह गयाहै। समाजवाद इन चारों तरह के व्यक्तियों को स्वतंत्रता नहीं देता। इसलिए मैं मानता हूं कि वह अमानवीय है।
पूंजीवाद एक मानवीय व्यवस्था है जो सब तरह के व्यक्तियों को सब तरह
की दिशाओं में, सब तरह की पूरी स्वतंत्रता देती है। अगर नहीं दे रही है तो कोशिश कर रही है कि वह पूरी दे। अगर कहीं रुकावट है तो उस रुकावट को हटाना चाहिए, लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि क्या जरूरत है बीमारी दूर करने की? बीमार को ही दूर कर दो। वे कहते हैं, क्या फायदा है इलाज करने से। मारो इस मरीज को। पूंजीवाद में खामियां हैं, वे खामियां दूर की जा सकती हैं; लेकिन कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, जो कहते हैं इतनी खामियां हैं, मारो

मरीज को। लेकिन उन्हें पता नहीं कि यह मरीज का मरना पूरी मनुष्य-जाति का मरना हो सकता है।
इसी संदर्भ में मैं आपको कहूं। कल मैंने गांधी जी को कुशल बनिया कहा
तो कुछ लोगों को बड़ी तकलीफ हो गई। वे बनिया थे। बनिया इसी हिसाब से, जो मैंने चार वर्ग बताए। तो किसी ने कहा कि आपने बड़ी निंदा का शब्द उपयोग कर दिया। कुछ लोगों का खयाल है कि "बनिया" शब्द निंदा का है। बनिए को भी लगता है कि बनिया शब्द निंदा का है। कोई शब्द निंदा का नहीं है। बनिया सिर्फ एक फैक्ट है। वणिक एक तथ्य है। वह भी एक तरह का आदमी है और मैं कहता हूं, गांधी ब्राह्मण नहीं हैं और गांधी शूद्र भी नहीं हैं। गांधी का मूल व्यक्तित्व बनिया का है, लेकिन यह तथ्य की बात है। कंडेमनेशन भी नहीं है, लेकिन हम तो इतने सोचने में क्षीण हो गए हैं कि या तो हम प्रशंसा समझते हैं या निंदा समझते हैं। फैक्ट को तो हम समझते ही नहीं कभी कि कोई बात फैक्ट भी हो सकती है। अगर मैं आपसे कह दूं कि फलां आदमी को टी.बी. है तो वह कहेगा कि आप हमको गाली दे रहे हैं। टी.बी. है तो इसमें गाली की क्या बात है? गांधी जी बनिया है, इसलिए मैंने कहा। कोई निंदा नहीं की है। तो उस मित्र ने कहा कि आप और दो-चार उल्लेख दें।
हजार उल्लेख दिए जा सकते हैं, फिर भी एक-दो मैं देना चाहूंगा। महावीर त्यागी ने संस्मरण लिखा है। गांधी जी उनके गांव में आए--रात बड़ी सभा हुई। गांधी जी ने सभा में लोगों से दान मांगे। कोई जो देना चाहे, दे दे। किसी ने रुपये दिए, किसी ने कान के इयर-रिंग दिए, किसी ने पैर की पायल दी, किसी ने चूड़ी दी। गांधी यह सब वही मंच पर डालते गए। लोगों से लेते गए और मंच पर डालते गए और फिर महावीर त्यागी से कह गए कि मैं जाता हूं और तुम सब समेट कर ले आओ। वह सब समेट कर रात बारह बजे पहुंचे। उन्होंने सोचा कि गांधी जी सो भी गए होंगे, लेकिन उन्हें पता नहीं कि कुशल वणिक की बुद्धि क्या चीज है-- सोना पीछे, हिसाब पहले। वह बुद्धि पहले हिसाब करती है। तो सोचा, इतनी रात न जाऊं, लेकिन बारह बजे गया तो देखा कि बूढ़े गांधी जाग रहे हैं और गांधी जी ने कहाः ले आए! जल्दी से खोल कर सब देखा। न केवल देखा, उन्होंने कहाः फिर से जाओ। इसमें एक ही इयर-रिंग है। कोई स्त्री मुझे एक इयर-रिंग नहीं देगी, देगी तो दोनों देगी। इयर-रिंग दो होने चाहिए। महावीर त्यागी एक बजे रात वापस भागे। रोते-धोते वहां पहुचे। गैस जला कर फिर ढूंढा, मिल गया वह आभूषण। वैश्य की नजर बड़ी गहरी होती है। वह लेकर लौटा बेचारा। सोचा, सो गए होंगे गांधी जी, लेकिन नहीं, वे अभी जाग रहे थे। जब इयर-रिंग मिल गया तब कहा कि अब हिसाब ठीक है।
मैं कोई डैरोगेट्ररी बात नहीं कह रहा हूं, यह भी प्रतिभा का एक ढंग है। इसमें कुछ निंदा की बात नहीं है। और यदि हम इस व्यक्तित्व को समझ लेते तो हिंदुस्तान की जिंदगी में बड़ा फर्क पड़ता। क्योंकि बनिए के हाथ में नेतृत्व हो तो खतरा होने वाला ही है। गांधी को काम दूसरे करने पड़े। काम क्षत्रिय का करते थे। भगतसिंह उस काम को ठीक से कर लेता, सुभाष ज्यादा ठीक से कर लेते। लेकिन वह नहीं हो सका और उसका परिणाम हुआ कि जो वैश्य की प्रतिभा कर सकती थी, वह उसने किया। पार्टीशन हुआ, आजादी कटी हुई और मरी हुई हाथ में आई; क्योंकि वैश्य प्रतिभा समझौते पर सदा राजी होती है। बनिया अतिवादी नहीं होता है। वह कहता है, आओ आधा-आधा कर लें। तो गांधी के नेतृत्व का परिणाम है वह बंटवारा; क्योंकि वणिक की बुद्धि झगड़े की नहीं होती है, कम्प्रोमाइज की होती है। उसे निपटारा करना है। आधा-आधा बांट लो और क्या ज्यादा झंझट करनी है। गांधी ऐसा कहें या न कहें, यह सवाल नहीं है।
गांधी के नेतृत्व ने जो मन देश को दिया, वह बनिया का था। और गांधी का इसलिए अंग्रेजों से मेल पड़ा, क्योंकि वह कौम बनियों की कौम थी। गांधी के सिवाय अंग्रेजों से किसी का मेल न पड़ा। भगतसिंह से कैसे मेल पड़ता? सुभाष से कैसे मेल पड़ता? गांधी से पड़ा। पड़ा इसलिए कि दोनों का माइंड एक टाइप का था। बनिया कौम थी। इधर भूल से क्षत्रिय की ताकत मिल गई थी। उधर वैश्य ही लड़ने वाला था, इसलिए देख कर बड़ी हैरानी होगी कि अंग्रेजों ने गांधी की जितनी सुरक्षा की, दुनिया के किसी राज्य ने कभी राज्य के दुश्मन की ऐसी

सुरक्षा नहीं की। हम न बचा सके गांधी को अंग्रेजों के जाने के बाद, अंग्रेजों के वक्त गांधी बचा रहा।
बड़े मजे की बात है, अंग्रेजों ने पूरी सुरक्षा दी गांधी को; क्योंकि अंग्रेजों को साफ हो गया कि नाता इसी से बना कर रखो। आज नहीं कल, यही आदमी काम का है। बाकी सबसे झंझट हो जाएगी। गांधी और अंग्रेजों के बीच एक इनर कम्यूनियन, जिसको कहते हैं, एक आंतरिक संबंध हो गया। वह संबंध होना बिल्कुल निश्चित था। वह बिल्कुल स्वाभाविक था। वह टाइप एक था। अंग्रेज गांधी को समझा सके, और गांधी अंग्रेज को समझा सके और उनका तालमेल बैठ गया, इसलिए हिंदुस्तान आजादी न ले पाया!
हिंदुस्तान को आजादी मिली और मिली हुई आजादी गुलामी से भी बदतर होती है। आजादी छीनी जाती है, ली जाती है, मांगी नहीं जाती। आजादी समझौतों से, वार्ताओं से नहीं मिलती और जब आजादी ली जाती है तो उसमें एक जिंदगी हाती है। उसके खून में गति होती है। और जब आजादी मिलती है, तो वह मरे हुए लोथड़े की तरह होती है। मिली आजादी, लेकिन बेरौनक! उसमें कोई महिमा न थी। और मिलने का जो दुष्परिणाम हुआ, वह भी हुआ।
गांधी रोज-रोज समझाते रहे पूरे मुल्क को कि हिंसा नहीं, हिंसा नहीं! क्योंकि वैश्य-चित्त हिंसा नहीं कर सकता। क्या आपको खयाल आता है कभी कि महावीर क्षत्रिय थे, लेकिन उनके पीछे जो कौम इकट्ठी हुई वह बनियों की है। महावीर क्षत्रिय हैं। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, लेकिन जैनी कोई क्षत्रिय नहीं है, वे सब बनिए हैं। बात क्या है? बनिए को अहिंसा अपील कर गई और कोई बात नहीं है। वह जो मुल्क के भीतर बनिया दिमाग था, उसने कहा, यह आदमी बिल्कुल ठीक कह रहा है, क्योंकि न हम हिंसा करेंगे, न दूसरे हमारी हिंसा करेंगे। जंचती है यह बात। सम्मिलित हो जाओ। गांधी के हाथ में होने की वजह से अहिंसा आंदोलन बनी और अहिंसा के आंदोलन की वजह से हिंदुस्तान को बड़े दुर्भाग्य भी झेलने पड़े। बड़ा दुर्भाग्य तो यह हुआ कि हिंदुस्तान के मन में अंग्रेजों के खिलाफ जो बिल्कुल सहज घृणा और हिंसा थी, गांधी ने उसको कभी प्रकट नहीं होने दिया--उसको दबाया। जरा कहीं हिंसा प्रकट हुई कि गांधी का वैश्य पीछे हट गया। उसने कहा कि नहीं भाई, हम दुकानदार आदमी हैं, हम समझौता करते हैं, हम ऐसी बात नहीं करते हैं। वह पीछे हट गया।
मुझे एक कहानी याद आती है। मुझे खयाल आता है कि कहीं राजस्थान में एक छोटी सी लोक कहानी है। कहानी है कि एक क्षत्रिय है, राजपूत है, वह मूंछ पर ताव देता हैं और घर के सामने बैठा रहता है और उसने गांव भर में खबर कर दी है कि मेरे घर के सामने दूसरा आदमी मूछ पर ताव देकर नहीं निकल सकता है। तो दूसरे लोग मूंछ यहां अपनी नीची कर लेते हैं कि कौन झंझट करे। वह अपने तख्त पर बैठा रहता है तलवार लिए। एक बनिया नया गांव में आया। उसको भी मूंछ रखने की धुन है। वह उसके सामने से निकला। उसने कहाः ऐ भाई, रुक, पहले मूंछ नीची कर। उसने कहाः तू कौन है मेरी मूंछ नीची करने वाला? राजपूत ने कहाः तो फिर ले यह तलवार सम्हाल। आओ हम निपटारा कर लें। उस बनिए ने यहां तक नहीं सोचा था कि तलवार से निपटारा करना पड़ेगा। उस बनिए ने कहाः ठीक है, लेकिन एक काम करो। अगर मैं मर जाऊंगा तो मेरे बच्चे परेशान होंगे, स्त्री परेशान होगी और तू मर जाएगा तो तेरी पत्नी विधवा होगी, बच्चे भीख मांगेंगे। तो एक काम कर। तू पहले घर में जाकर अपनी पत्नी व बच्चों का सफाया कर आ और मैं अपने घर में कर आता हूं। फिर हम दोनों लड़ लें। फिर कोई डर नहीं। क्षत्रिय ने कहाः बिल्कुल ठीक है। अक्ल ही होती क्षत्रिय के पास ज्यादा तो मूंछ पर ताव देकर बैठा न रहता। बनिया घर गया। क्षत्रिय अपने घर गया तो उसने तो सबका फैसला कर दिया। अपने बच्चे सब काट डाले। बाहर आकर खड़ा हो गया। बनिया वहां से मूंछ ही नीची करके आ गया। उसने कहाः मैंने सोचा, क्यों नाहक का झगड़ा करना, मूंछ ही नीची कर लेता हूं।
यह जो चित्त है, इसका अपना अस्तित्व है। निंदा, प्रशंसा--इनसे मुझे प्रयोजन नहीं है। मात्र तथ्य से जरूर प्रयोजन है। इसमें कोई निंदा नहीं है कि क्षत्रिय ऐसा है, वैश्य ऐसा है। गांधी जी भी झंझट में पड़ें, कहीं चोरा-चोरी की घटना हो या कहीं कुछ और हो जाए, फौरन पीछे हट जाना उनका नियम

था। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदुस्तान के मन में अंग्रेजों के खिलाफ जो सहज घृणा पैदा हुई थी, हिंसा पैदा हुई थी, वह दब गई और उस दबाव की वजह से हिंदू-मुस्लिम दंगे शुरू हुए। अगर हिंदुस्तान अंग्रेजों से सीधा लड़ता तो हिंदू-मुस्लिम कभी भी नहीं लड़ते। जब हम न लड़ पाए और घृणा इकट्ठी हो गई तो कहीं न कहीं वह निकलेगी। तो हमें रास्ता खोजना पड़ा। हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए।
आमतौर से लोग समझते हैं कि गांधी जी ने हिंदू-मुस्लिम दंगे रोकने की कोशिश की। मैं आपसे कहता हूं गांधी जी ही परोक्ष रूप से जिम्मेवार थे सारे हिंदू-मुस्लिम दंगों के लिए। अगर थोड़ी सी साइकोलॉजी का, थोड़े मानस-शास्त्र का खयाल हो तो समझ में आएगी बात। इतनी जोर से रोक दी सब तरफ से हिंसा, जो बिल्कुल स्वाभाविक थी कि हिंदुस्तान आग लगा देता अंग्रेजी सल्तनत को। फेंक देता उन्हें मुल्क के बाहर। वह सब वेग रोक दिया गया। अब वह वेग कहां जाए, वह घृणा कहां से निकले?
आपको पता है, एक आदमी दफ्तर में काम करे, मालिक उसको डांट दे, उसकी तबीयत होगी कि गर्दन दबा दे उसकी; लेकिन मालिक की गर्दन कैसे दबाएगा? वह हंसता रहेगा, मुस्कुराता रहेगा, पूंछ हिलाता रहेगा। फिर घर चलेगा। फिर उसकी साइकिल देखें, पैड़ल जोर से चलेगी। क्यों? मालिक को जो नहीं मार पाया, वह पैडल पर ही जोर आजमा रहा है। अब वह जा रहा है तेजी से। अब उसकी पत्नी को समझना चाहिए कि पति परमात्मा घर लौट रहे हैं और मालिक से कोई झंझट हो गई है, लेकिन पत्नी को क्या पता? वह बड़े मजे से प्रतीक्षा कर रही है कि पतिदेव लौटते होंगे। पतिदेव लौट रहे हैं। पति को भी पता नहीं, लेकिन वह गर्दन पकड़ेंगे पत्नी की। रोटी जल गई, बिस्तर ठीक नहीं लगे, हजार बातें हैं। पत्नी को ठीक किए बिना नहीं मानेंगे। उसको करना था मालिक को ठीक, वह कर नहीं पाया। घृणा भीतर थी, वह निकास चाहती है, वह बढ़ेगी। अगर भीतर की नाली बंद कर देंगे तो घर भर में गंदगी बढ़ेगी। नाली भी चाहिए घर में।
हिंसा है, उसका बहाव भी चाहिए। अगर वह ठीक जगह न बह जाए तो गलत जगह से बहेगी और ठीक जगह से बही हुई हिंसा की बजाय गलत जगह से बही हुई हिंसा बहुत महंगी पड़ेगी। लेकिन पत्नी कर क्या सकती है? पति को मार नहीं सकती। अभी तक पत्नी की इतनी हिम्मत नहीं हुई--हो जानी चाहिए, लेकिन पतियों ने समझाया हुआ है कि हम परमात्मा हैं। अब परमात्मा को मारो तो झंझट है। हालांकि मन में शक तो उठता है, लेकिन मानना पड़ता है; क्योंकि उसी ने प्रचार किया है। तो पत्नी बेटे का रास्ता देखेगी, लौटता होगा स्कूल से। ये सब अनकांशस डैविएशंस हैं। बेटा चला जा रहा है नाचता हुआ, उसे कुछ पता नहीं, फिल्म का गीत गाता हुआ। पकड़ लेगी मां गर्दन कि गंदे गीत गा रहे हो? कल भी यही गा रहा था। परसों भी यही गा रहा था। तुमने भी यह गया है, तुम्हारे पति ने भी यही गाया है, उनके बाप-दादे यही गा रहे थे। यह कोई नया नहीं है, लेकिन उसकी गर्दन पकड़ लेती है कि गंदा गीत गाते हो! अब वह बेटा क्या करे? मां को थप्पड़ मारे? अभी तक दुनिया इतनी सभ्य नहीं हो पाई है। वह बेटा जाएगा अपने कमरे में और गुड़िया की टांग तोड़ कर चार हिस्से कर देगा।
माइंड की एनर्जी.ज हैं--ऊर्जाएं हैं। गांधी ने हिंदुस्तान की हिंसा
को रोक कर दमन पैदा किया। वह अंग्रेजों की तरह बही होती तो एक शानदार मुल्क पैदा होता। हिंदुस्तान पाकिस्तान दो मुल्क नहीं होते। लड़ कर तलवार पर धार आ गई होती, लड़ कर हमारी जिंदगी में रस, उमंग, आशा आ गई होती। वह नहीं हो पाया। लेकिन तलवार हमें चलानी पड़ी और पड़ोस में ही चलानी पड़ी, फिर मुसलमान और हिंदू टकराएं और इसलिए पंद्रह अगस्त के बाद जो इतनी बड़ी हिंसा हुई, जिसमें दस लाख लोग मारे गए, इसका जिम्मेवार कौन हैं? लोग बहुत बेईमान हैं। वे कहते हैं, अंग्रेजों ने भड़का दिया--कोई कहता है जिन्ना ने भड़का दिया--नहीं साहब, न जिन्ना, न अंग्रेज। असली कारण यह है कि हिंदुस्तान के मन में आग थी, उसको निकालने का कोई मौका नहीं था, और जब हिंदुस्तान बंटा, एक मौका मिल गया कि अब ठीक है, निकाल लो, वह राहत निकली। सैकड़ों वर्षों से गुलामी की जो पीड़ा थी, उसको बहनेका का कोई उपाय न था, वह बही। हिंदुस्तान भी बंटा, लोभ भी मरे। अगर दस लाख लोग ही मरने थे तो अंग्रेजों से हम कभी का

देश छीन लिए होते। दस लाख लोग मरने को किसी भी दिन तैयार होते, तो अंग्रेज उसके दूसरे दिन ही हिंदुस्तान में न होते। लेकिन वह न हो सका।
जब मैं कहता हूं, गांधी जी वैश्य हैं, तो मैं बहुत सोच कर कह रहा हूं, गाली नहीं दे रहा हूं और सम। लेना कि वह वैश्य हैं, इसलिए आगे भी उनसे समझ कर संबंध रखना। वैश्य का अपना उपयोग है, उसकी अपनी जगह है। यह अपनी जगह बहुत कीमती है। ब्राह्मण का अपना उपयोग है, वह अपनी जगह कीमती है। शूद्र का अपना उपयोग है, वह अपनी जगह कीमती है। और किसी की कीमत मानवीय अर्थों में कम और ज्यादा नहीं होती है, लेकिन यह साफ-साफ होना चाहिए। समाजवाद इस सबको लीप-पोत देना चाहता है। मनुष्यों में जो विभिन्न टाइप हैं, उनको पोंछ डालना चाहता है। वह कहता है, मनुष्य एक जैसा है।

एक अंतिम बात, एक मित्र ने कहा है कि आपने कहा कि गांधी जी ट्रेन का विरोध करते थे, टेलीग्राफ का विरोध करते थे, हवाई जहाज का विरोध करते थे। और दो-तीन मित्रों ने पूछा है कि आप गलत बात कह रहे हैं, यह कहां लिखा है?

मैं बहुत हैरान होता हूं। मालूम होता है, आप कुछ पढ़ते-लिखते नहीं हैं। गांधी जी की किताब "हिंद-स्वराज्य" पढ़ें तो मैंने जितना कहा है, उससे हजार-गुना विरोध उसमें यंत्रों का लिखा है। लेकिन "हिंद-स्वराज्य" उन्नीस सौ पांच में लिखी थी, इसलिए कोई कहेगा, उन्नीस सौ पांच में लिखी मिताब से उन्नीस सौ अड़तालिस में मरने वाले आदमी की बाबत निर्णय लेना ठीक नहीं है। मैं भी नहीं मानता, लेकिन उन्नीस सौ पैंतालिस में नेहरू को गांधी जी ने एक पत्र लिखा है। नेहरू ने पूछा है गांधी जी से कि उन्नीस सौ पांच में लिखी "हिंद-स्वराज्य" नाम की किताब में आपने रेलगाड़ी का, टेलीफोन का विरोध किया है, क्या आप अब भी उस विरोध को राजी है? तो गांधी जी ने लिखा है उन्नीस सौ पैंतालिस में कि मैं "हिंद-स्वराज्य" के शब्द-शब्द से आज भी राजी हूं। मालूम होता है; पढ़ते-लिखते नहीं हैं। चिट्ठियां तो बहुत से लोगों ने लिख दीं कि आपको तथ्य पता नहीं है। सच बात यह है कि गांधी जी भी बहुत कम पढ़ने- लिखने में विश्वास करते थे ओर उनको मानने वाला और भी कम पढ़ता-लिखता मालूम होता है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आपने कहा कि गांधी और उनके आचार-विचार में विरोध हैं? लेकिन आपने कोई उदाहरण नहीं दिए!

मैं एक-दो उदाहरण देना चाहूंगा। गांधी जी जीवन भर अहिंसा का उपदेश देते हैं, लेकिन गांधी का व्यक्तित्व वायलेंट है, एक हिंसक व्यक्तित्व है। लेकिन वे अहिंसा की बातें करते थकते नहीं हैं। आप कहेंगे कि आप कैसे कह रहे हैं? इसलिए कह रहा हूं कि इस थोड़ा समझना पड़ेगा। अगर मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि मेरी बात मानते हैं कि नहीं, नहीं तो छुरा मार दूंगा, तो आप कहेंगे कि बड़े हिंसक आदमी हो। उलटा कर लें। मैं आपकी छाती पर छुरा नहीं रखता, छुरा अपनी छाती पर रखता हूं और कहता हूं कि मेरी बात मानते हो कि नहीं, नहीं तो छुरा मार लूंगा, तब मैं अहिंसक हो जाऊंगा? छुरे की सिर्फ दिशा बदल जाने से क्या आदमी अहिंसक हो जाता है?
गांधी जी जिंदगी भर यह धमकी देते रहे हैं कि मैं अपने को मार डालूंगा, अगर मेरी बात नहीं मानते हो। यह हिंसक दबाव है। श्री अंबेदकर को गांधी जी ने दबाया, उपवास और अनशन करके। गांधी जी ने जिंदगी में किसी का हृदय परिवर्तन नहीं किया, यद्यपि इतने उपवास किए। अंबेदकर बेचारा झुक गया, राजी हो गया। बाद में अंबेदकर ने कहा कि गांधी जी इस भ्रम में न पड़ें कि मेरा कोई हृदय-परिवर्तन हो गया। मैं अब भी मानता हूं कि मैं ही सही था और गांधी जी गलत थे, लेकिन फिर भी यह सोच कर कि इस आग्रह के पीछे अगर गांधी जी की जिंदगी चली जाए तो महंगा सौदा हो जाएगा, मैं झुक गया। मेरा हृदय परिवर्तन नहीं हुआ। गांधी जी की जबरदस्ती की वजह से झुक गया हूं। गांधी जी मरने की धमकी जिंदगी भर देते रहे। मरने की या मारने की, दोनों धमकियां हैं हिंसा की, लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ती हैं। हमें दिखाई पड़ती है कि खुद को

मारने की धमकी दे रहे हो तो अहिंसा हो गई। सच बात यह है कि वह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। यह अहिंसा नहीं है। अहिंसा का मतलब यह है कि जहां धमकी ही नहीं, न दूसरे को मारने की, न खुद को मारने की।
गांधी जी के साथ जो लोग रहे, गांधी के बेटों से पूछे--हरिदास गांधी से पूछे कि गांधी अहिंसक थे? तो हरिदास मुसलमान क्यों हुआ? गांधी अहिंसक थे तो हरिदास ने शराब क्यों पी, मांस क्यों खाया? गांधी अहिंसक थे तो हरिदास जिंदगी भर गांधी जी के खिलाफ क्यों रहा? असल में गांधी जी की अहिंस भी इतनी टार्चरिंग, इतनी सेडिस्ट थी कि अपने बेटे को भी उन्होंने अच्छी तरह सता डाला। हरिदास भागा उनको छोड़ कर। यह बाप तो मार डालेगा। उसे पता नहीं था कि एक बेटे का बाप जो ठीक से नहीं हो पाया, वह कल राष्ट्रपिता होने वाला है। असल में एक बेटे का बाप होना बहुत कठिन है, राष्ट्रपिता होना बहुत आसान है; क्योंकि राष्ट्रपिता होने में किसी का पिता नहीं होना पड़ता है। हरिदास से पूछें तो पता चलेगा कि गांधी का व्यक्तित्व हिंसक था कि अहिंसक था। कस्तूरबा से पूछें, हालांकि कस्तूरबा और गांधी जी को लेकर बहुत लेख लिखे जा रहे हैं कि बड़ा आदर्श दांपत्य जीवन था। बकवास करने में हमारी कौम का कोई मुकाबला ही नहीं है। अब गांधी जी और कस्तूरबा के बीच सतत कलह की जिंदगी बीती, लेकिन हम कहेंगे वह आदर्श दांपत्य जीवन था। कस्तूरबा से पूछें, पूरी जिंदगी उठा कर देखें, लेकिन उसको देखने की जरूरत नहीं। हम तो शोरगुल मचाने में, नारेबाजी करने में बड़े कुशल हैं। जब गांधी जी के घर अफ्रीका में कोई मेहमान होता तो उसका पाखाना भी वह कस्तूरबा से साफ करवाते। अब कस्तूरबा रो रही हैं, रोती हुई पाखाने का डिब्बा लेकर सीढ़ियां उतर रही है तो गांधी जी उससे नीचे खड़ा होकर कह रहे हैं कि रो मत, सेवा हंस कर करनी चाहिए। अब उसको बेचारी को दूसरे का पाखाना ढोना पड़ रहा है। वह कोई सेवा नहीं कर रहीं है, वह पति के चक्कर में पड़ गई है और पति एक सिद्धांत के चक्कर में है। वह पाखाना ढुलवा रहा है, लेकिन साथ में यह भी कि हंसते हुए पाखाना ढोओ। कई बार कस्तूरबा का हाथ पकड़ कर आधी रात गांधी जी ने घर के बाहर कर दिया है कि निकल जा घर के बाहर--अगर मेरे सिद्धांत नहीं मानती।
यह व्यक्तित्व अहिंसक नहीं है, यह व्यक्तित्व बिल्कुल हिंसक है, लेकिन सिद्धांत है अहिंसा का। असल में अहिंसा के सिद्धांत के कारण गांधी जी के व्यक्तित्व को समझना मुश्किल हो गया है। जिंदगी बड़ी उलझी बात है, इतनी आसान नहीं है। इसलिए जब मैं कुछ कहता हूं तो बहुत जल्दी निर्णय न लें--सोचें। सिद्धांतों को नहीं, सत्यों को देखें, और अंधे भक्तों की भांति नहीं, सजग विचारों की भांति सोचें--समझें--खोजें। गांधी जी के व्यक्तित्व को उनकी समग्र नग्नता में समझना हितकर है, क्योंकि उस भांति हम इस देश के अत्यंत जड़बद्ध पाखंड को समझने में सफल हो सकते हैं। इस देश की ऊंची सिद्धांतवादी संस्कृति और वस्तुतः एकदम विपरीत वास्तविकता को समझने के लिए गांधी जी बिल्कुल एक फेस हिस्ट्री का काम दे सकते हैं।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का दसवां प्रवचन

पूंजीवाद, समाजवाद और सर्वोदय

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछले चार दिनों में कुछ बातें मैंने आप से कही हैं उसके संबंध में सैकड़ों प्रश्न उपस्थित हुए हैं। आज संक्षिप्त में जितने ज्यादा से ज्यादा प्रश्नों के संबंध में बात हो सके, मैं करने की कोशिश करूंगा।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप यह मानते हैं कि विनोबा जी के सर्वोदय
से समाजवाद आ सकेगा?

विनोबा जी का सर्वोदय हो, या गांधी जी का; समाजवाद उससे नहीं आ सकेगा। क्योंकि सर्वोदय की पूरी धारणा ही मनुष्य को आदिम व्यवस्था की तरफ लौटाने की है। सर्वोदय की पूरी धारणा ही पूंजीवाद की विरोधी है; लेकिन पूंजीवाद से आगे जाने के लिए नहीं, पूंजीवाद से पीछे जाने के लिए है। पूंजीवाद से दो तरह से छुटकारा हो सकता है। या तो पूंजीवाद से आगे जाएं या और पूंजीवाद से पीछे लौट जाएं। पीछे लौटना कुछ लोगों को सदा सरल मालूम होता है और आकर्षक भी, लेकिन पीछे लौटना न तो संभव है, न उचित है; जाना सदा आगे ही पड़ता है-- चाहे मजबूरी से चाहे स्वेच्छा से। जो मजबूरी से जाते हैं वे घसीटे हुए पशु की तरह जाते हैं। जो स्वेच्छा से जाते हैं उनकी चाल में एक गति, और एक आनंद और भविष्य को पाने की एक स्फूर्ति, खुशी, आशा और सपना होता है। इस हमारे देश में पीछे की तरफ जाने की बात इतनी घर कर गई है कि जब भी मुसीबत हो, तो हम पीछे की तरफ हटना चाहते हैं। उसके कारण मनोवैज्ञानिक हैं। उन्हें थोड़ा समझना चाहिए। उससे विनोबा जी के सर्वोदय और गांधी जी के विचार और गांधीवादी पूरी दृष्टि का क्या मनोवैज्ञानिक अर्थ है, वह समझना उपयोगी होगा।
पहली बात तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य के मन में यह खयाल है कि पहले सब अच्छा था, गांव अच्छे थे, शहर बुरा है। क्योंकि शहर नया है, गांव पुराने! लेकिन ये बातें वे ही लोग कहते हैं जो शहरों में रहते हैं, गांव में नहीं। गांव की जिंदगी एक दिन घूम कर देख आना और बात है गांव में जीना बिल्कुल और बात है। और म.जा यह है कि सर्वोदय पर और गांव पर और प्राचीन ग्रामीण व्यवस्था पर, पंचायत पर जिन लोगों का बहुत जोर है, वे सब गांव में नहीं रहते। वे सब शहरों में रहते हैं। शहरों में रह कर वे किताबें लिखते हैं गांवों की सुंदर, प्राकृतिक जिंदगी के संबंध में। यह भ्रम जो हम पालते हैं, ये भ्रम मनमोहक होते हैं लेकिन खतरनाक हैं।
गांव का कोई भविष्य नहीं है, भविष्य है शहर का। आने वाली दुनिया में गांव नहीं होगा, होंगे शहर, और बड़े शहर, जिनकी अभी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। गांव जो है वह वैसा ही है जैसे झोपड़ा है। आने वाली दुनिया में झोपड़ा नहीं होगा, गांव भी नहीं होगा। असल में आने वाली दुनिया, ग्रामीण की दुनिया नहीं, नागरिक की दुनिया होने वाली है।
सच तो यह है कि जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, वैसे-वैसे आदमी जमीन से मुक्त होगा और जब तक आदमी जमीन से पूरी तरह मुक्त नहीं होता, तब तक आदमी पूरी तरह सुसंस्कृत नहीं हो पाएगा। आदमी निरंतर मुक्त हो रहा है बहुत-सी चीजों से, लेकिन अब तक भोजन के लिए जमीन से मुक्त नहीं हो पाया है--लेकिन हो सकता है। और मेरी समझ में टेक्नालॉजी का विकास उसे जमीन के ऊपर अनिवार्य रूप से भोजन के लिए निर्भर रहने से मुक्त कर देगा। बहुत दूर वह दिन नहीं है जब कि आदमी को भोजन के लिए जमीन पर निर्भर नहीं रहना होगा। भोजन भी औद्योदिक उत्पादन से ही पैदा हो सकेगा--सिंथेटिक हो सकेगा, केमिकल हो सकेगा।
जमीन पर निर्भर रहने की बात आगे संभव नहीं है। जमीन छोटी भी पड़ गई है, लोग ज्यादा भी हो गए हैं। और किसान जो है, कृषि जो है, वह अत्यंत पुरानी बात है जो इस बीसवीं सदी की, विकसित टेक्नालॉजी से, जिसका कोई बहुत गहरा संबंध नहीं हो सकता। भोजन के नये मार्ग खोजे जाएंगे। समुद्र से भोजन खोजा जा सकता है, खोज लिया गया है। हवा से भोजन खोजा जा सकता है, सूरज की किरणों से

भोजन खोजा जा सकता है, खोज लिया जाएगा। और आज नहीं कल, काज्मिक से सीधा भोजन भी खोजा जा सकता है। रोज जमीन से, भोजन से छुटकारा जब तक नहीं होता, तब तक दुनिया की दीनता और दरिद्रता मिटने वाली नहीं है। क्योंकि जमीन छोटी पड़ गई है। लोग ज्यादा हो गए हैं। मृत्यु दर हमने कम कर दी है और जन्म दर को कम करना असंभव मालूम पड़ रहा है। सर्वोदय भूमि से बंधे हुए आंदोलन हैं। अतीत की तरफ ले जाने वाला आंदोलन है। वह भविष्य की तरफ ले जानेवाला आंदोलन नहीं है। अब भूमि से बंधे हुए आंदोलन का कोई भविष्य नहीं है।
दूसरी मजे की बात ह कि सर्वोदय की सारी चिंतना त्याग, सरलता, सादगी इन
पर खड़ी हुई है। यह त्याग, सरलता, सादगी हजारों साल से आदमी को सिखाई गई बातें हैं। कोई मानता नहीं। कभी-कभी एकाध आदमी सादा और सरल खड़ा हो जाता है। वह भी सादा और सरल नहीं होता। वस्त्र पहन सकता है सादे और सरल, भोजन कर सकता है सादा और सरल, लेकिन मन उसका सामान्य आदमी से भी ज्यादा जटिल और ज्यादा कांप्लेक्स हो जाता है। सरलता जीवना का सहज हिस्सा नहीं है। जीवन का सहज हिस्सा है विस्तार और जटिलता। ध्यान रहे, जीवन का विकास कांप्लेक्सिटी की तरफ है। अमीबा है एक छोटा सा पहला प्राणी है जिससे मनुष्य विकसित हुआ। अमीबा के पास एक ही सेल है। एक ही सेल से जीता है। बिल्कुल सरल प्राणी है। लेकिन न बुद्धि हो सकती है उसमें, न कुछ और हो सकता है। बस जी सकता है, श्वास ले सकता है और मर जाएगा। अमीबा सरल प्राणी है। फिर जटिलता शुरू होती है, जैसे-जैसे विकास बढ़ता है। बंदर कम जटिल है। आदमी ज्यादा जटिल है, आदिवासी कम जटिल है, बंबई का निवासी ज्यादा जटिल है। जितनी जटिलता बढ़ती है मस्तिष्क की, व्यक्तित्व की, उतना विकास होता है। गांधी जी और विनोबा जी सरलता के पुराने आदर्श से पीड़ित थे। उन सबको यह ख्याल है कि जीवन सरल हो, थोड़ी आवश्यकताएं हों, छोटा झोपड़ा हो, दो कपड़े हों, चरखे से काम चल जाए, जमीन पर खोद कर अगर हाथ से ही पैदावार हो जाए तो बहुत अच्छा। साधन की जरूरत न रहे, उपकरण का उपयोग न हो। लेकिन अस्वाभाविक हैं ये मांगें। ये स्वभाव की तरफ लौटने की बातें बड़ी अस्वाभाविक हैं! आदमी निरंतर जाता है जटिलता की ओर और आदमी निरंतर जाता है आश्यकताओं को बढ़ाने की ओर। दुनिया भर के सारे शिक्षक चिल्ला-चिल्ला कर हार गए कि आवश्यकताएं कम करो। आवश्यकताएं कम नहीं हो सकतीं। जीवन का लक्षण यह नहीं है। जीवन आवश्यकताएं बढ़ाता है। मरना हो तो आवश्यकताएं कम की जा सकती हैं और अगर आवश्यकताएं बिल्कुल... बिल्कुल कम कर दी जाएं तो अंततः मरने के सिवाय कोई उपाय न रह जाए। अगर सारी आवश्यकताएं करनी हैं कम, तो धीरे-धीरे सुसाइडल माइंड, आत्मघाती व्यक्तित्व पैदा होता है जो अपने को मारता चला जाता है और स्वयं को खत्म कर लेता है।
जीवन है विस्तार, फैलाव आवश्यकताओं का। जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना मनुष्य उत्पादन करता है। जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना आविष्कार करता है। जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतने उसके मस्तिष्क के अवरुद्ध हिस्से सक्रिय होते हैं। जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना मनुष्य पशु से मुक्त होता है। पशु के पास बहुत थोड़ी आवश्यकताएं हैं, इसीलिए वह पशु है। और अगर आवश्यकताएंबिल्कुल कम की जाएं तो आदमी को पशु के तल पर ही जीना पड़ेगा। उसकी आदमियत थोथी है। आदमी के होने का मतलब है कांप्लेक्स, जटिल आवश्यकताओं से, विस्तार से भरा हुआ।
सर्वोदय जैसे सारे आंदोलन का लक्ष्य है सरलता, कम आवश्यकता, थोड़े में जियो। इस आग्रह को लेकर चलते हैं। मनुष्य की प्रकृति और मनुष्य के मन की कोई समझ उन सब में नहीं है, लेकिन फिर भी हमारे मन को वे बातें अपील करती हैं। वह अपील इसलिए करती हैं कि जब हम जटिलता से घबड़ा जाते हैं तो पीछे लौटने का मन करने लगता है। अगर अभी एक आदमी पचास साल की उम्र का है, उसके मकान में आग लग जाए तो आप उस मकान के सामने खड़े हुए उस पचास साल के आदमी को दस साल के बच्चे की तरह छाती पीट कर रोते हुए देखेंगे। वह वापस लौट गया है। डिग्रेशन हो गया। अब वह इस समय दस साल का बच्चा है, अब वह पचास साल का आदमी नहीं। मकान में आग लग गई है। बात जटिल हो गई है। उसकी समझ के बाहर है। अब वह जो पैर पटक के रो रहा है, चिल्ला रहा है। वह काम वही कर रहा है जो दस साल का छोटा बच्चा करे तो ठीक। लेकिन पचास वर्ष का आदमी करे तो गलत। लेकिन क्या

हो गया इसको? यह पचास साल का आदमी एकदम दस साल का क्यों हो गया! इसका मन दस साल का व्यवहार क्यों कर रहा है? इसकी समझ के बाहर हो गई बात। इसकी समझ में नहीं आ रहा कि अब मैं क्या करूं? इसलिए यह वापस लौट गया। यह दस साल जैसा व्यवहार कर रहा है।
हम रोज कई बार बच्चे हो जाते हैं और बच्चे हम इसलिए हो जाते हैं कि जब
भी कोई जटिल समस्या खड़ी होती है, तब हमारे मस्तिष्क से मांग होती है कि और ऊपर उठो, और चेतन हो उतनी मांग हम नहीं झेल पाते हैं तो हम वापस लौट जाते हैं। आदमी शराब पी लेता है ज्यादा जब जटिल समस्या सामने आ जाए--क्यों? शराब पी के वह समस्या को भुला देता है। ऐसे वह झंझट से बाहर हो जाता है। भजन कीर्तन करने लगते हैं--ज्यादा जटिल समस्या आ जाए, क्यों? भजन-कीर्तन करते समय वह बच्चों जैसा काम करने लगा। अब वह भूलने की कोशिश कर रहा है। भजन-कीर्तन भी, शराब भी, और पीछे लौटने की आकांक्षा--सदा ही एस्केपिस्ट है, पलायन है। जिंदगी संघर्ष है नई समस्याओं का।
सर्वोदय इत्यादि सब पलायनवादी विचार हैं, जो कहते हैं--जटिलता की दुनिया ही छोड़ दो! बंबई में रहते ही क्यों हो? न्यूयार्क में बसते ही क्यों हो? मास्को में रहने की जरूरत क्या है? लौट जाओ ठेठ गांव में। लौट जाओ वहां जहां जंगली आदमी रहता था। उसी तरह के कपड़े पहन लो। नंगे रह सको तो और भी अच्छा है। चरखे से भी छुटकारा हो जाए तो और भी अच्छा। लौट जाओ पीछे, कंदमूल-फल खा लो। थोड़ा-बहुत खेती-बाड़ी कर लो तो ठीक। बस पीछे लौटने का आग्रह, क्यों? इसलिए है, कि जिंदगी की बड़ी समस्याएं खड़ी हो गई हैं जिनको हल करने मे कुछ लोग घबरा गए हैं। वे पीछे लौटने की बात कर रहे हैं।
मैं मानता हूं कि जब भी बड़ी समस्याएं आती हैं तब मनुष्य की जिंदगी में छलांग लगाने का मौका आता है। कांशसनेस वहीं छलांग भरती है। जब ऐसी समस्याएं घेर लेती हैं जिनका सामना करने के लिए सोचना पड़ता है, विचार करना पड़ता है, जद्दोजहद करनी पड़ती है, प्राणों को दांव पर लगाना पड़ता है और ऐसा हो जाता है कि मरेंगे कि बचेंगे, तभी छलांग--चेतना आगे का कदम उठाती है। इस समय मनुष्यता बहुत सी जटिल समस्याओं के सामने खड़ी हो गई है।
तो दो तरह के लोग हैं। अधिक लोग तो वे हैं--और उनकी बात हमें ठीक मालूम पड़ती है--वे कहते हैं, पीछे लौट चलो, क्योंझंझट में पड़ते हो! पीछे लौट चलो, जहां कोई समस्याएं नहीं थीं। रेलगाड़ी नहीं थी, कारें नहीं थीं, हवाई जहाज नहीं था, बड़े शहर नहीं थे, छोटे-छोटे गांव थे--वहां लौट चलो। ब.ड़ी युनिवर्सिटी न थी, वहां लौट चलो। गुरुकुल थे, दस-पांच बच्चे पढ़ते थे, वहां लौट चलो। ये समस्याएं बड़ी पैदा हो रही हैं। अब एक युनिवर्सिटी है। बीस हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं, तो समस्या पैदा होगी। समस्या यह पैदा होगी कि बीस हजार जवान लड़के दुनिया में इसके पहले कभी एक जगह इकट्ठे न हुए थे। पुराना लड़का अपने बाप के पास था। बाप हमेशा डोमिनेटिंग था, अपने बेटे को दबा लेता था। अब बीस हजार बेटे इकट्ठे हो गए हैं और बीस हजार बाप कहीं भी इकट्ठे नहीं हैं। बहुत मुसीबत हो गई है। वे बीस हजार बेटे इकट्ठे मिल कर एक-एक बाप को बिल्कुल दबाए दे रहे हैं। अब एक रास्ता तो यह है कि उन बीस हजार लड़कों की समस्याओं का सामना करने के लिए कुछ सोचो, जो किं बहुत मुश्किल है। क्योंकि पुरानी संस्कृति के पास कोई उत्तर नहीं है और पुराने किसी ग्रंथ में उत्तर हो नहीं सकता। क्योंकि समस्या नई है।
युवकों का एक जगह इकट्ठा होना बिल्कुल ही नई घटना है। सच तो यह है कि युवक ही नई घटना है। पुरानी दुनिया में युवक नहीं होता था। बच्चे होते थे, बूढ़े होते थे। युवक होता ही नहीं था, न होने का कारण था। क्योंकि युवक होने देने के पहले ही समस्या का हल कर देते थे। बाल-विवाह कर देते थे। बस वह आदमी बूढ़ा हो जाता था। दस साल के लड़के का विवाह कर दिया, युवक होने का मौका ही उसको नहीं मिला। वह बीस साल का युवक होगा तब तक उसके दो बच्चे हो चुके होंगे। वह बूढ़ा हो चुका। बाप कभी भी जवान नहीं होता। बाप बूढ़ा हो ही जाता है। उस पर उत्तरदायित्व, सब जिम्मेवारी खड़ी हो जाती है। पुरानी दुनिया का हल था कि बच्चे को जवान मत होने दो और फिर एक-एक बच्चा अपने-अपने बाप के पास था। इसलिए खतरा नहीं था। अब बीस-पच्चीस हजार किसी गांव में, एक लाख विद्यार्थी जवान एक ही जगह इकट्ठे हैं। अतः एक समस्या सामने आ गई है। अब

क्या करो? अब यह रास्ता है कि युनिवर्सिटी तोड़ो। गांव में भेज दो इनको। प्राथमिक शिक्षा दो--जिसको गांधी जी बुनियादी शिक्षा कहते हैं। उतनी शिक्षा दे दो, बस वह काफी है। बढ़ईगिरी सिखा दो। कुछ जूते का, चमड़े का काम करना सिखा दो। कपड़ा बुनना सिखा दो। बस ठीक है।
मर जाएगा मुल्क, अगर ये शिक्षाएं मान ली गईं। यह बुनियादी शिक्षा हुई
या अशिक्षा हुई या शिक्षा से बचना हुआ? लेकिन समस्या हल हो जाएगी, वे कहते हैं--झंझट से बाहर हो जाएगा मामला। लेकिन इस झंझट से जूझना है, बाहर नहीं होना है। अब यह नया सवाल खड़ा हुआ है तो नये सवाल को नये ढंग से हल करना पड़ेगा। लेकिन पुरानी बुद्धि के पास उत्तर न होने से वह कहती है इससे वापस लौट चलो--उन्हीं दिनों मे जहां समस्या न थी।
अब मैं आपसे यह कहता हूं कि सारी दुनिया में यह सवाल है कि क्या करें लड़कों का। लड़के इकट्ठे हो गए हैं। उनकी क्लास, उनका वर्ग बन गया है। बूढ़ों की कोई क्लास नहीं, कोई वर्ग नहीं। कुछ उपाय सोचना पड़ेगा। कुछ नया विचार सोचना पड़ेगा। मेरी अपनी समझ यह है कि बजाय पीछे लौटने के और गांव को गुरुकुल बनाने के और लड़कों को यह सिखाने के कि बस सिर घुटा कर, चोटी बढ़ा कर, गुरु के चरणों में सिर लगाए बैठे रहो, पैर दबाते रहो--इससे काम नहीं होगा। वह वक्त गया और गुरु जो सिखा पाता था अब उस सिखाने का भी उपयोग नहीं रहा है। अब सिखाने का अर्थ इतना ज्यादाहै कि छोटे-छोटे गुरुकुल नहीं सिखा सकते। ये युनिवर्सिटीज भी हमारी छोटी हैं। अब और बड़ी लाइब्रेरीज चाहिए। ज्ञान इतने जोर से उत्पन्न हो रहा है कि उसे नई पीढ़ी को देने का सवाल बहुत कठिन हो गया है। वह गुरुकुल में नहीं हो सकता। वह एक बूढ़ा आदमी बैठ कर नहीं सिखा सकता।
लेकिन जहां दस हजार लड़के या एक लाख लड़के इकट्ठे हो गए हों, वहां सवाल
है कि अब क्या करें! पुरातनवादी, पलायनवादी कहेगा, अब पीछे लौट चलो, बंद करो युनिवर्सिटी। गांधी जी युनिवर्सिटीज के बड़े विरोध में थे। उन्होंने अपने लड़कों को पढ़ने नहीं भेजा। अपने लड़कों को अशिक्षित रखा पूरी तरह। क्योंकि वे बड़े विरोध में थे युनिवर्सिटीज के। वे मानते थे कि युनिवर्सिटीज भी एक रोग है। विश्वविद्यालय एक रोग है, आधुनिक शिक्षा एक बीमारी है। लेकिन ये जो दृष्टि है, नया ख्याल न मानने से कठिनाई होती है। लेकिन श्रम करो, जूझो नई समस्या से। नया हल खोजो।
मेरी अपनी समझ यह है कि जहां-जहां युनिवर्सिटी कैंप्स हैं उसमेंसाथ
ही रिटायर्ड कैंप्स हों, वहां अनुभवी वृद्धों को इकट्ठा कर दो। जो भी वृद्धजन रिटायर्ड होते हैं युनिवर्सिटी केम्पस के निवासी हो जाएं। अगर दस हजार युवक इकट्ठे हैं युनिवर्सिटी में तो दस हजार वृद्ध लोग भी वहां हों, वहां दोनों क्लासेज जीवन के आमने-सामने हों। निश्चित ही दस हजार वृद्धों की समझ, अनुभव, ज्ञान के--जीवन के मुकाबले ये बच्चे झुक जाएंगे। वहां केम्पस के साथ जोड़ो बूढ़ों को भी, कैंप्स बजाय भागने के, उसका परिणाम बहुत कीमती होगा। क्योंकि जहां दस हजार जीवन भर के अनुभव से वृद्ध हुए लोग इकट्ठे हों और जिनके पास अब कोई काम न हो, जो फुरसत में हो, जो बच्चों को थोड़ा पढ़ा भी सकें, उनके साथ खेल भी सकें, उनके साथ तैर भी सकें, उनके साथ गपशप भी कर सकें, उनसे मिल भी सकें, क्योंकि वह फुरसत में हैं। जहां दस हजार बूढ़े अनुभवी मिल जाएं युनिवर्सिटी को, उस युनिवर्सिटी में युवकों की समस्या विदा हो जाएगी, वहां युवक की समस्या नहीं टिक सकती और दो जनरेशन सीधा एनकाउंटर कर सकेंगी। अभी बड़ी मुश्किल हो गई है।
हम कहते जरूर हैं कि एक ओल्ड जेनरेशन है और एक न्यू जेनरेशन, लेकिन मेरे विचार में नई पीढ़ी तो पीढ़ी है, पुरानी पीढ़ी पीढ़ी नहीं है--वह फुटकर है। वह कहीं इकट्ठी नहीं है। इसलिए नई पीढ़ी को आप कहीं भी मिल सकते हैं। पुरानी पीढ़ी को कहां मिलिएगा? पुरानी पीढ़ी को भी लाओ। लेकिन वे नई समस्याएं हैं, नये सवाल उठेंगे, नया खयाल पैदा करना पड़ेगा नई व्यवस्था देनी पड़ेगी। हमारी कठिनाई यह होती है कि इतना श्रम न उठाएं। पीछे लौट जाएं।
अब सर्वादय-आंदोलन ने भूमि बांटी। बिना इस बात की फिकर किए कि इस देश में भूमि इतनी बंटी हुई है कि अब इसे और बांटना इस मुल्क को गरीब करना है।

इस संबंध में विनोबा जी तो कहते हैं कि जो गरीब भूमि देता है उसको मैं और भी ज्यादा कीमत देता हूं। अगर सौ एकड़ वाला पांच एकड़ देता है तो वह कहते हैं, यह कोई बड़ा दान नहीं है। लेकिन अगर पांच एकड़ वाला ढाई एकड़ दान दे देता है तो वे कहते है कि बहुत बड़ा दान है। बड़ी खतरनाक बात है ये, क्योंकि पांच एकड़ वैसे ही छोटा टुकड़ा है। यह पांच एकड़ वैसे ही गलत है। पांच एकड़ उत्पादक नहीं हो सकती है। लेकिन इसको ये और ढाई एकड़ दान करवा दी। अब उसके पास ढाई बची और दूसरे के पास ढाई बची। पूरे मुल्क का उत्पादन और नीचे गिरा। क्योंकि पांच एकड़ जितना पैदा करती थी, दो टुकड़ों में ढाई-ढाई एकड़ मिल कर उतना पैदा नहीं करेगी। यह मामला बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि मैंने कभी सुना था।
एक राजा को अपने लड़के का विवाह करना था। उसने अपने लड़के के विवाह के लिए वजीर को कहा कि सोलह साल की लड़की फी चाहिए। उस मंत्री ने बहुत खोजा, सोलह साल की सुंदर लड़की न मिली। तब वह आठ-आठ साल की दो लड़कियां ले आया; गणितज्ञ था। उसने सोचा कि ठीक है एक रुपया न सही तो अठन्नी दो सही। सोलह साल की लड़की नहीं मिलती है तो आठ-आठ साल की दो लड़कियां और आठ-आठ साल की न मिले तो चार-चार साल की चार से कर दो। लेकिन चार-चार साल की चार लड़कियां मिल कर सोलह साल की स्त्री नहीं बनती। यह गणित नहीं है। विनोबा ने जो हिसाब फैलाया है, उसमें जमीन के और टुकड़े करवा दिए और मजा यह है कि हमारा मुल्क ऐसा नासमझ है कि कुछ हिसाब ही नहीं। प्रचार पर जीता है।
नागपुर युनिवर्सिटी ने अभी एक अनुसंधान करवाया है। उस अनुसंधान के ठीक आंकड़े मुझे ख्याल नहीं हैं, लेकिन करीब-करीब आंकड़े ऐसे हैं। उस अनुसंधान में बड़ी अदभुत बातें पता चली हैं। वह अनुसंधान एक-एक घर में पहुंचा दिया जाना चाहिए। उससे पता चला है कि जितनी जमीन भूदान में मिली है, उसमें नब्बे प्रतिशत तो सरकारी जमीन है, नब्बे प्रतिशत तो सरकारी जमीन है जो मिली है। सात प्रतिशत ऐसी जमीन है कि जिसमें अभी कुछ भी पैदा हो नहीं सकता। और तीन प्रतिशत में कोई एक प्रतिशत जमीन ऐसी है जो मुकदमेबाजी में उलझी है, जिसका कोई पक्का भरोसा नहीं है। सौ एकड़ जमीन मिली उसमें बाबा विनोबा के हाथ कितनी पड़ी और भूदान-आंदोलन को कितनी मिली? लेकिन इससे क्या मतलब है? मतलब है कि कितने लाख एकड़ मिल गई इसका शोरगुल मचाओ! वह कहां से आई है, जमीन किसकी है, जिसने दे दी है, वह अभी भी कब्जा किए बैठा है? ऐसा भी है कि जिनके पास जमीन नहीं थीं उन्होंने भी दान की है। क्योंकि भीड़ में दान करने में क्या हर्ज है? जब जमीन देने की बात आएगी तब देखा जाएगा।
और मजा यह है कि इस मुल्क की जमीन इतने टुकड़ों में बंटी है कि इसे दान करवा के और टुकड़े करवा कर इस मुल्क का सवाल हल नहीं होगा। इस मुल्क की खेती को टुकड़ों से मुक्त करने की जरूरत है। गांव की सारी खेती इकट्ठी हो सके तो खेती इंडस्ट्रियल हो सकती है। तो खेती को उद्योग बनाया जा सकता है। लेकिन हमारे ख्याल ऐसे हैं, बहुत पुराने दिनों से कि समस्या दान से हल हो जाएगी। समस्या इतनी बड़ी है कि दान से हल नहीं होगी और समस्या को हल करना हो तो उसकी जड़ों को खोजना पड़ेगा कि जड़ें कहां हैं। हमें ऐसा लगता है कि आदमी को सिखा दें कि सरल जीवन रहो, दो रोटी खा लो, एक कपड़ा पहन लो तो हल हो जाएगी। लेकिन इतना सरल मामला नहीं है। आदमी एक कपड़ा और दो रोटी लाने को राजी नहीं है। उसको जब तक दो रोटी नहीं मिली है तब तक वह कहता है कि ठीक है। दो रोटी मिल जाती है तो वह कहता है, दो रोटी से क्या होगा, वह कहता है, मुझे साबुन भी चाहिए और साबुन भी उसे मिल जाए तो वह कहता है, रेडियो भी चाहिए और रेडियो मिल जाए तो कहता है, कार भी चाहिए। वह ठीक ही कहता है। गलत नहीं कहता है। जिंदगी फैलती है, नई मांग करती है--करनी चाहिए। क्योंकि नई मांग होगी
तो ही जिंदगी में गति और डाइनैमिज्म पैदा होगा। और अगर कोई समाज सरलता की बात पर राजी हो जाए और कम के लिए राजी हो जाए तो वह नॉन-डाइनैमिक, मरा हुआ समाज होगा। आदिवासियों के समाज हैं--वे मरे हुए, नॉन-डाइनैमिक समाज हैं। वहां कोई गति नहीं है, कोई विकास नहीं है। कोई तानसेन कभी पैदा नहीं होता, कोई आइंस्टीन कभी पैदा नहीं होता, कोई कवि पैदा नहीं होता, कोई कालिदास पैदा नहीं होता, कोई नहीं पैदा होता। आदमी जीता है पशुओं की भांति। रोज उठता है, थोड़ा सा खाकर जी लेता है। सो जाता है, बच्चे पैदा करता है और मर

जाता है। मनुष्यता नहीं, पशुता के तल पर वह जीता है। सर्वोदयी या गांधीवादी विचार-चिंतन, मनुष्य के विस्तार और भविष्य का चिंतन नहीं है।
उससे नहीं आएगा समाजवाद।
समाजवाद लाना हो तो विस्तार का दर्शन चाहिए, फैलाव का दर्शन चाहिए।
आवश्यकताओं को अनंत करने का दर्शन चाहिए। और मजा यह है कि जितनी ज्यादा आवश्यकताएं फैलती हैं और मनुष्य को उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जितना, जितना श्रम करना पड़ता है, उतनी उसकी प्रतिभा और आत्मा निखरती है। और अंतिम निखार उसका जो है वह बहुत अदभुत है। अंतिम निखार यह है कि निरंतर आवश्यकताओं को बढ़ा कर निरंतर नई आवश्यकताओं को अनुभव करके, वह जो व्यक्तित्व में निखार आता है, उसके आखिरी परिणाम में यह पता चलता है कि आवश्यकताएं कितनी ही बढ़ जाएं, धन कितना ही उपलब्ध हो जाए, महल कितना ही बड़ा हो जाए, सब जब हो जाता है तब पता चलता है कि एक और डाइमेंशन भी है, भीतर की आत्मा का! अगर वह न फैले, अगर वह न बड़ा हो तो यह सब व्यर्थ पड़ा रह जाता है। धनी आदमी को ही धन की व्यर्थता का बोध होता है। धन की अंतिम सार्थकता मैं यही मानता हूं कि वह आदमी को धन से मुक्त होने की क्षमता दे सकती है। जिसके बाहर की सारी जरूरतों का फैलाव हो जाता है, उसको पहली दफे भीतर की जरूरत का बोध होता है।
मैंने सुनी है उपनिषद की एक छोटी सी कहानी। एक युवक गुरुकुल से वापस लौटा। वहां से वह ब्रह्मज्ञान की बातें करता हुआ आया। वहां उसने सीख लिया ब्रह्म ज्ञान, वह आ गया। बाप ने उसकी बातें सुनी, वह सुबह से शाम तक ब्रह्मज्ञान की बातें करे। उसके बाप ने कहा, देख पहले तू पंद्रह दिन का उपवास कर; फिर हम तुझसे ब्रह्मज्ञान की बातें करेंगे। उस लड़के ने उपवास किया। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गए। उसने ब्रह्मज्ञान की बातें करनी बंद कर दीं और भोजन की बातचीत शुरू कर दी। सात दिन बीते, वह लड़का सुबह से शाम तक भोजन की ही बात करने लगा। रात को भोजन के सपने देखने लगा। पंद्रह दिन बीते, उसका बाप अगर उसे कभी छेड़े भी कि कुछ ब्रह्म के बाबत कहो तो चुपचाप बैठा रह जाए और अगर कोई जरा भोजन की चर्चा छेड़ दे तो उसके भीतर से धारा बहने लगे। पंद्रह दिन बीत जाने पर उसके बाप ने कहा, आ अब बैठ। अब ब्रह्म के संबंध में कुछ बातें करें। लड़के ने कहा, भाड़ में जाने दो ब्रह्म। अन्न के संबंध में कुछ कहिए पिताजी! तो उसके बूढ़े बाप ने कहा कि देख बेटा, मैं तुझे यह कहता हूं कि अन्न पहला ब्रह्म है। यह तू पहले सीख ले। जिंदगी की जिन्हें हम सामान्य जरूरतें कहते हैं, वह पहला ब्रह्म है। वह पूरा हो जाए, जिंदगी का जिसे हम विस्तार कहते हैं आवश्यकताओं का, वह बाहर का ब्रह्म है--वह पूरा हो जाए तो भीतर के ब्रह्म का बोध शुरू होता है।
समझ में तो ऐसा आता है कि गांधी जी और विनोबा जी की जो समाज व्यवस्था होगी, बड़ी धार्मिक होगी। मेरी समझ में नहीं आता। धार्मिक व्यवस्था पैदा ही नहीं होती दीन-दरिद्र स्थितियों में। धर्म का फूल भी खिलता है सुविधा में, संपन्नता में। जब भी सुविधा और संपन्नता होगी, तभी लोग धर्म-चिंतन की तरफ उत्सुक हो जाएंगे। क्योंकि जिनके पेट भरे हैं, अब वे आत्मा को भरने की तलाश करेंगे। लेकिन जिनके पेट ही खाली हैं, अभी आत्मा का सवाल नहीं उठता। इसलिए मेरी समझ में सर्वोदय के लाने से समाजवाद नहीं आएगा। किसी दिन समाजवाद आए तो सर्वोदय आ सकता है और समाजवाद आएगा पूंजीवाद के विकास से। पूंजीवाद का विकास हो तो समाजवाद फल होगा। और समाजवाद ठीक से विकसित हुआ तो जो स्थिति होगी सर्वहित की, सबके उदय की, सबकी समानता की, उसे कोई चाहे तो सर्वोदय कहे, कोई चाहे तो साम्यवाद कहे। इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। सर्वोदय से समाजवाद नहीं, समाजवाद से सर्वोदय आ सकता है और समाजवाद बिना पूंजीवाद के विस्तार के नहीं आ सकता। और जिसे हम सर्वोदय कहते हैं वह कहता है--पूंजीवाद का विस्तार छोड़ो। यह मशीन और उद्योग का युग छोड़ो। पीछे लौट चलो। राम-राज्य में लौट चलो।
इसलिए मेरी दृष्टि अगर आपके खयाल में आई हो, तो वह यह है कि सर्वोदय इस समय समाजवाद के आने में सबसे बड़ी बाधा हो सकता है। क्योंकि सर्वोदय पूंजीवाद के पीछे लौटने की बात कर रहा है। और समाजवाद पूंजीवाद के आगे का कदम है। अगर सर्वोदयी हम हो गए तो समाजवादी हम फिर कभी न होंगे। समाजवाद

तो फिर असंभव है। लेकिन सर्वोदयी हम होंगे नहीं। विनोबा हार चुके और थक कर बैठ गए हैं। बुरी तरह हार गए, अब नहीं लगता उन्हें कि उनसे कुछ होगा। इसमें कसूर विनोबा का नहीं है। इसमें कसूर जनता का नहीं है। इसमें कसूर गलत दृष्टि और दर्शन का है। थकेंगे ही, हारेंगे ही, हार सुनिश्चित है क्योंकि मनुष्य के स्वभाव का हमें खयाल ही नहीं है। मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल जीवन का दर्शन और दृष्टि होनी चाहिए।
मेरी समझ है कि पूंजीवाद मनुष्य के अत्यंत अनुकूल जीवन-दृष्टि वाला दर्शन है। पूंजीवाद, सिर्फ पूंजी की ही वह व्यवस्था नहीं है, बल्कि एक फिलासफी ऑफ लाइफ, एक जीवन का दर्शन भी है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि पूंजीवाद का विकास होगा तो समाजवाद आएगा, लेकिन कौन लाएगा समाजवाद?

हमें ऐसा लगता है कि कुछ चीजें लाने से ही आती हैं। मैं कहता हूं, बच्चा विकसित होगा तो जवानी आएगी। आप यह नहीं कहते, कौन लाएगा जवानी। मैं कहता हूं कि जवान विकसित होगा तो बुढ़ापा आएगा। आप नहीं कहते कि कौन लाएगा बुढ़ापा। जवानी का विकास अपने आप बुढ़ापा बनता है। बचपन का विकास अपने आप जवानी बनता है। लाने की बात नहीं है। समाज की जिंदगी की भी अपनी अवस्थाएं हैं। पूंजीवाद विकसित हो तो अपने आप समाजवाद बनता है, कोई लाता नहीं। और जब तब लाने की बात आप करेंगे, उसका मतलब है कि अभी पूंजीवाद पूरी तरह विकसित नहीं हुआ। इसलिए समाजवाद लाना पड़ रहा है। समाजवाद तभी तक जरूरी है जब तक पूंजीवाद विकसित नहीं हुआ है। जबरदस्ती करनी है तो लाना पड़ेगा। आने देना है तो आएगा, आ सकता है--अगर हम जबरदस्ती न करें। तो जब आप पूछते हैं, कौन लाएगा, तो मैं कहता हूं, व्यवस्था अपने आप रूपांतरित होती है। जवान अपने आप बूढ़ा हो जाता है। और पता भी नहीं चलता है कि किस तिथि में कैलेंडर के गणित के मुताबिक किस दिन जवान बूढ़ा हुआ। आप में से कई लोग बूढ़े हुए, कई लोग बच्चे से जवान हुए। बता सकते हैं, किस दिन यह घटना घटी? किस दिन आप जवान हुए? आप कहेंगे, यह तो कुछ पता नहीं। जिंदगी में ग्रोथ जो है, वह इतना चुपचाप है कि कोई सीमा-रेखा नही बांधी जा सकती कि इस दिन यह घटना घट गई। पूंजीवाद बदलेगा, लेकिन फिर भी हम सोच सकते हैं कि कब बदलेगा। मेरे ख्याल में हैं दो बातें--कहना चाहता हूं।
पहली बात यह कि संपत्ति अतिरिक्त हो; इसके पहले नहीं बदला जा सकता है। उसके पहले बदलने के सब प्रयत्न असफल होंगे। चेकोस्लोवाकिया में, युगोस्लाविया में या और दूसरे कम्युनिस्ट देशों में पूंजीवाद वापस लौट रहा है। जिन्होंने जल्दबाजी की थी वहां पूंजीवाद वापस लौट रहा है। अब उनको समाजवादी ढांचे को फिर शिथिल करना पड़ रहा है। अब भूल पता चल गई। अब वे समझ रहे हैं कि गलती हो गई; ढांचे को शिथिल करो। तीस-चालीस साल के अनुभव ने बता दिया कि यह बात मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल जो है, उसे लाओ। कोई जबरदस्ती एक दिन काम करा सकते हैं, तीन दिन भी, लेकिन अनंत काल तक यह नहीं हो सकता। अनंत काल तक तो जो मनुष्य का स्वभाव है, वही होगा। पूंजीवाद संपत्ति के अतिरेक, बाहुल्य से है, लेकिन संपत्ति का बाहुल्य कैसे होगा? मनुष्य के श्रम से नहीं होगी संपत्ति बाहुल्य कभी। मनुष्य की जगह टेक्नालॉजी को स्थापित करने से होगी। इसलिए बजाय पूंजीवाद की जगह समाजवाद स्थापित करने की पागल चेष्टा में लगने के उचित है कि मनुष्य की जगह टेक्नालॉजी को विकसित करने की हम फिकर करें।

एक मित्र ने पूछा है कि टेक्नालाजी के विकास की आप बात करते हैं, यह कोई बच्चों का खेल नहीं है!

यह बच्चों का ही खेल है टेक्नालॉजी का विकास। जर्मनी को जाकर देखें
या जापान को जाकर देखें। दूसरे महायुद्ध में जापान नेस्तनाबूद हो गया था। जमीन से मिल गया था। इस बुरी तरह बरबाद हुआ कि जैसा कभी कोई मुल्क नहीं हुआ होगा। लेकिन बीस साल में जापान युद्ध के पहले से ज्यादा समृद्ध है।

जर्मनी मिट गया बुरी तरह। सब बर्बाद हो गया, लेकिन फिर बीस साल, बीस साल में खड़ा हो गया। लेकिन वहां भी फर्क दिखेगा। कुछ मेरे मित्र बर्लिन गए हैं। वे कहते हैं कि बर्लिन के उस हिस्से में जो कम्युनिस्टों के हाथ में है और उस हिस्से में जो कम्युनिस्टों के हाथ में नहीं है, जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ता है! जो हिस्सा कम्युनिस्टों के हाथ में है वह अब भी दीन-दरिद्र है। जो हिस्सा कम्युनिस्टों के हाथ में नहीं है, वहां की संपन्नता बहुत बढ़ी है। वह वहां बर्लिन एक प्रतीक की तरह खड़ा है--कम्युनिस्ट व्यवस्था और कैपिटलिस्ट व्यवस्था के बीच सीधा चुनाव साफ वहां हुआ जा रहा है।

मेरे एक मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीवाद की इतनी तारीफ करते हैं। क्या रूस में मशीनें विकसित नहीं हुई? क्या वहां टेक्नालॉजी विकसित नहीं हुई? उन्होंने भी तो चांद तक पहुंचने की कोशिश की। उनके पास भी तो सब है... !

जरूर विकसित हुआ, मैं नहीं कहता कि विकसित नहीं हुआ। मास्को में भी एक गगनचुंबी इमारत है। न्युयार्क में सैकड़ों हैं। मास्को में एक गगनचुंबी इमारत है, लेकिन उस इमारत को आदमी को भूखा रख कर खड़ा किया गया है। उस इमारत के लिए बलिदान देना पड़ा है और वह इमारत सिर्फ दुनिया से जो यात्री आते हैं उनको दिखाने के लिए खड़ी करनी पड़ी है कि रूस कोई गरीब मुल्क नहीं है। हमारे पास भी आकाश को छूने वाले मकान हैं। लेकिन अमरीका में वे मकान चुपचाप अपने आप विकसित हुए हैं--ऐसे जैसे जमीन से पौधा बड़ा होता है। अमरीका में उन मकानों को विकसित करने के लिए किसी पर जोर जबरदस्ती, किसी को कुर्बानी और किसी को त्याग नहीं करना पड़ा। वे मकान अपने से विकसित हुए हैं। रूस के पास भी जमीन के नीचे चलने वाली रेलगाड़ी का मार्ग है और उस मार्ग पर संगमरमर के पत्थर भी लगे हैं, लेकिन रूस को पचास साल में इस सबके लिए त्याग और बलिदान करना पड़ा है। इधर बड़े होटल हैं जिनमें कि यात्री ठहरे हुए हैं और उधर होटल के बगल में ही उन्नीस सौ पैंतीस तक क्यू लगा हुआ है एक-एक रोटी के लिए। वे दोनों बातें एक साथ चल रही हैं, वह हमारे खयाल में नहीं है, उसका हमें पता नहीं चलता। अभी उन्होंने चांद पर पहुंचने की पूरी कोशिश की, फिर उनको पीछे पैर हटा लेने पड़े, क्योंकि अंततः वह बहुत महंगा पड़ने लगा। एक आदमी को उतारने के लिए कोई एक सौ अस्सी अरब रुपये का खर्च पड़ा। आखिर रूस फिर धीरे से पीछे हटा, क्योंकि भीतर नीचे जनता का दबाव बढ़ता चला गया कि इधर हमको भूखों मार रहे हो, उधर चांद पर जा रहे हो।
अमरीका के लिए खिलवाड़ था चांद पर जाना, रूस के लिए महंगा दांव था। विकास उन्होंने भी किया है तकनीक का, लेकिन उनकी तकनीक का विकास एक आरोपित विकास है। वह आरोपित किया गया, इसलिए पिछड़ गया है। अब वहां के आदमी ने पचास साल के बाद अब हिम्मत छोड़ दी, अब वह काम करने को उतना राजी नहीं है। वह दिन गए क्रांति की हवा के और जोश के। बुखार में थोड़े दिन दौड़ाया जा सकता है। जिंदगी दौड़ती है सहज नियमों से। सहज नियम आदमी का पूंजीवाद के पास है।
जब मैं यह कहता हूं कि खेल है टेक्नालॉजी तो मेरा मतलब यह नहीं है कि
वह कोई आज जादू से पैदा हो जाएगी। लेकिन आप यदि यही सोचते हैं कि यह कोई खेल थोड़े ही है जो कि थोड़े वर्षों में विकसित हो जाएगी तो हजार साल में भी विकसित न होगी।
मैंने सुना है कि एक गांव के बाहर एक आदमी बैठा हुआ है सुबह अपनी लालटेन लिए हुएः कोई उसके पास से गुजरा है, उससे पूछा है, आप यहां बैठे क्या कर रहे हैं? उसने कहाः मुझे जाना है दूर--दस मील दूर पहाड़ के ऊपर जो मंदिर है, वहां जाना है। प्रश्नकर्ता ने कहाः चलो चलें, उठते क्यों नहीं? उसने कहा, मेरे पास लालटेन बहुत छोटी है, तीन-चार फुट तक रोशनी जाती है और दस मील का रास्ता है तो मैंने बैठ कर हिसाब लगाया तो देखा कि इससे तो अंधेरा पार हो ही नहीं सकता कभी। तीन फुट की रोशनी, दस मील अंधेरा, हिसाब कैसे चलेगा? इतनी सी लालटेन से काम कैसे चलेगा? उस आदमी ने कहाः पागल उठ, अगर तू यहां बैठा रहा तो मर जाएगा, यह गणित तुझे डुबा देगा। तू उठ और चल, क्योंकि जब तू चलेगा तीन कदम, रोशनी तीन कदम और आगे पहुंचेगी। अगर हिसाब

लगाते बैठा रहा तो तू कभी नहीं पहुंचेगा दस मील और अगर हिसाब नहीं लगाया और चल पड़ा तो एक छोटी सी लालटेन हजार मील की यात्रा भी करा देगी।
हमारी तकलीफ क्या है इस मुल्क में? हम बड़े बुद्धिमान हैं। बहुत दिनों
से हम हर चीज का बहुत हिसाब लगाते रहे हैं। हम कहते हैं, तकनीकी क्रांति कब होगी, बीस साल लग जाएंगे, कैसे होगी--और बड़े-बड़े हिसाब फिर हमें डरा देते हैं। फिर हम वह भयभीत करने वाला हिसाब छोड़--जो हो सकता है अभी, उसे करने में लग जाते हैं। जैसे सांप्रदायिक दंगों में या भाषावार प्रांतों के उपद्रवों में। ऐसे हम कुछ कर रहे हैं, यह प्रण भी बना रहता है और बिना कुछ किए समय भी बीतता जाता है। नहीं, ऐसे नहीं चलेगा। तकनीकीकरण का मार्ग चाहे कितना ही लंबा हो, चलना शुरू करना पड़ेगा आज, अभी--अब हो--तो वह सब हम भी कर पायेंगे जिसे कि कोई और कर पाया है। संकल्प चाहिए, श्रम चाहिए और टुच्चे झगड़ों और व्यर्थ की समस्याओं से मुक्ति चाहिए। अन्यथा हम रोज पिछड़ते जा रहे हैं। जहां खड़े हैं, वहां खड़े-खड़े ही पिछड़ते जा रहे हैं।
अभी मैंने एक हिसाब देखा कि दुनिया भर में, मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में जितने वैज्ञानिक पैदा हुए उनमें से नब्बे प्रतिशत आज जिंदा हैं पूरी मनुष्य-जाति के वैज्ञानिक। इसका मतलब यह हुआ कि नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिक सिर्फ पिछले पचास सालों में पैदा हुए थे। और दस प्रतिशत वैज्ञानिक केवल पिछले दस हजार सालों में पैदा हुए हैं। उन नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिकों में भी पचास प्रतिशत से ऊपर आज सिर्फ अमरीका में ही इकट्ठे हैं। इसका मतलब है कि सारी मनुष्य-जाति के इतिहास में जितने वैज्ञानिक विचार, चिंतन और प्रतिभा हुई है, उसका पचास प्रतिशत एक मुल्क के पास इकट्ठा हो गया है। वह प्रतिभा इकट्ठी होती जा रही है। वह हमसे बहुत जल्दी उस जगह पहुंच जाएंगे जहां हमें बहुत कठिनाई हो जाएगी कि अब हम कैसे पार करें। इसलिए हमें अब तेजी से लग जाना चाहिए, लेकिन हमारे हिसाब दूसरे हैं। हम इस फिकर में लगे हुए हैं कि संपत्ति का बंटवारा कैसे हो। हम इस चिंता में लगे हुए हैं कि हड़ताल कैसे होगी, घिराव कैसे हो, युनिवर्सिटी की परीक्षा एकदम आगे कैसे बढ़ाई जाए, या पीछे हटाई जाए। एक गांव मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में। हमारे पागलपन का कोई हिसाब नहीं है। हम ऐसी बातों में लगे हुए हैं कि चंडीगढ़ पंजाब के पास हो कि चंडीगढ़ हरियाणा के पास हो। चंडीगढ़ जहां है, वहीं है, नाहक परेशान हुए जा रहे हैं।
मैंने सुना है, हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटा, तो एक पागलखाना भी आ गया बीच में। उसके भी बंटवारे का सवाल हुआ। अब बड़ा मुश्किल हुआ, क्योंकि न पाकिस्तानी उत्सुक थे पागलों को लेने में, न हिंदुस्तानी उत्सुक थे। तो उन्होंने कहा कि पागलों से ही पूछ लो। अधिकारी गए और उन्होंने पागलों को समझाया, बहुत समझाया। क्या तो उनकी समझ में आया, यह बड़े मजे की बात है कि बुद्धिमानों को समझ में आ गया कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटना चाहिए, उन पागलों को अधिकारियों ने बहुत समझाया। उन्होंने कहाः बंटना ही क्यों चाहिए? तो उन्होंने कहाः हिंदु-मुसलमान! तो उन्होंने कहाः होंगे। हमारे यहां हिंदु मुसलमान हैं, कई मुसलमान पागल थे, कई हिंदु पागल थे। हममें कोई झगड़ा नहीं होता। तो बाहर के हिंदु-मुसलमान क्या हमसे भी आगे निकल गए? हम तो मजे से जीते हैं। हिंदु के हाथ की चाय मुसलमान पी लेता है। कभी छुरेबाजी नहीं करते, तो फिर हमको पागल क्यों कहते हो?
अधिकारियों ने कहाः भाई, हम तुम्हें इससे ज्यादा नहीं समझाने को--हम तुमसे सिर्फ यह कहते हैं कि तुम्हें जाना कहां है। तुम हिंदुस्तान में जाना चाहते हो कि पाकिस्तान में? उन पागलों ने कहाः हम तो यहीं रहना चाहते हैं। उन अधिकारियों ने कहाः घबड़ाओ मत, रहोगे तो तुम यहीं, लेकिन जाना कहां है? तो उन पागलों ने कहाः आप भी पागल हो गए क्या? जब हम रहेंगे यहीं तो जाने का सवाल ही क्या है?
वे अधिकारी बड़ी मुश्किल में पड़ गए। पागलों को समझाना बहुत मुश्किल हुआ। फिर उन्होंने सोचा, यह तो फिजूल की मेहनत है, ये पागल न समझेंगे। फिर तो उन्होंने एक रेखा खींच कर पागलखाने के दो हिस्से कर दिए। आधा पागलखाना पाकिस्तान हो गया, आधा पागलखाना हिंदुस्तान में आ गया। अब वह बीच में एक दीवाल खिंच गई और अभी मैंने सुना है कि पागल कभी-कभी दीवाल पर चढ़ जाते हैं

और एक-दूसरे से कहते हैं, बड़ा मजा है। हम सब वहीं के वहीं हैं, तुम भी वहीं हो, हम भी वहीं हैं, लेकिन तुम पाकिस्तानी हो गए, हम हिंदुस्तानी हो गए-- सिर्फ इस एक दीवाल की वजह से। और वे बहुत हंसते हैं!
लेकिन हिंदुस्तान-पाकिस्तान का पागलपन तो था ही, पागलपन खत्म नहीं हुआ। अभी मैसूर में रहे एक हिस्सा, एक जिला कि महाराष्ट्र में रहे। महाराष्ट्र के पागल चिल्लाएंगे कि महाराष्ट्र में चाहिए, मैसूर के पागल चिल्लाएंगे कि मैसूर में चाहिए। कोई भी नहीं पूछेगा, जिला जहां का तहां है, काहे के लिए परेशान हुए जा रहे हो? लेकिन सारा मुल्क इस तकलीफ में है। मुल्क के सामने असली सवाल न उठाकर मुल्क के नेता गलत सवाल उठा कर मुल्क के मस्तिष्क को विकृत कर रहे हैं।
मुल्क के सामने असली सवाल दूसरे हैं--मुल्क के माइंड को डेविएट कर रहे हैं पूरे समय। कोई पागल कहेगा कि गौहत्या बंद होनी चाहिए--इधर आदमी मरने के करीब है और कुछ को सवार हुई है सनक कि गौहत्या बंद होनी चाहिए। वह तो किसी को सवार हो जाए कि मच्छर-हत्या नहीं होनी चाहिए, खटमल हत्या नहीं होनी चाहिए। तो वह भी नेता बन सकता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। इधर आदमी मरने के करीब है, यहां पूरा मुल्क सदा के लिए पिछड़ जाने के करीब है। खतरे बड़े हैं हमारे सामने।
सारी दुनिया के समझदार हिसाब लगाने वाले कहते हैं, उन्नीस सौ अठहत्तर
तक हिंदुस्तान में महा अकाल पड़ेगा। जिसमें बीस करोड़ लोग भी मर सकते हैं। लेकिन मैं दिल्ली में एक बड़े नेता से बात कर रहा था। तो उन्होंने कहा, उन्नीस सौ अठहत्तर बहुत दूर है, अभी तो सवाल उन्नीस सौ बहत्तर का है। हमको कोई मतलब नहीं है उन्नीस सौ अठहत्तर से, पहले उन्नीस सौ बहत्तर तो निपट जाए। और अकाल जब होगा होगा, बीस-करोड़ जब मरेंगे--मरेंगे, अभी सवाल कुर्सी का है, उस पर कौन बैठेगा। भाई बैठता है कि बहन बैठती है। कौन बैठता है यह है सवाल, सारे मुल्क को व्यर्थ के सवालों में उलझा रहे हैं। इस समय मुल्क के सामने एक ही महत्वपुर्ण सवाल है, वह यह है कि संपत्ति कैसे पैदा हो, यह मुल्क जीने और खाने लायक अपनी आवश्यकताओं को जरूरी ढंग से पूरी करने लायक तकनीकी क्रांति से कैसे गुजर जाए--यह सवाल है। लेकिन वह हल नहीं होगा। वह हल इसलिए न होगा कि हमारे दिमाग में इतने मकड़ी के जाले बुने हुए हैं जिनका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है और किसी मकड़ी के जाले को तोड़ो तो खतरा होता है, क्योंकि कोई मकड़ी का जाला किसी के लिए पूज्य है, कोई मकड़ी का जाला किसी के लिए पूज्य है। किसी मकड़ी के जाले पर किसी का महात्मा बैठा है, किसी मकड़ी के जाले पर किसी का देवता बैठा है। बड़ी कठिन बात है। वे देवता और महात्मा बड़ी बाधा डाल देते हैं।
अगर मुल्क को टेक्नालॉजिकल क्रांति से गुजारना है तो हमें चरखे की भाषा में सोचना बंद करना पड़ेगा, हमें सोचना पड़ेगा वृहत्-काम यंत्रों की भाषा में। लेकिन इधर हम गांधी का जयकार किए चले जाएंगे और उधर हम टेक्नालॉजी के विकास की बात सोचेंगे। समझते नहीं आप कि इसके भीतर एक इनर कंटराडिक्शन, एकविरोधाभास है। इधर जयकार हम गांधी का करेंगे जो कि उद्योग के विरोधमें, इंडस्ट्री के विरोध में, इंडस्ट्रियलाइजेशन के विरोध में, केंद्रीयकरण के विरोध में, यंत्रों के विरोध में, और जयजयकार उनका करेंगे, जन्म शताब्दी उनकी मनाएंगे, शोरगुल उनका मनाएंगे और फिर उनको टेक्नालॉजिकल रिवोल्यूशन करनी है। मुल्क को तकनीक सिखाना है। वह नहीं होने वाला है।
मुल्क के मन को एकजुट हो जाना पड़ेगा। मुल्क के मन को साफ करना पड़ेगा
कि चाहते क्या हो, करना क्या है? और उसे करने में लग जाना पड़ेगा--लगा जा सकता है। मुल्क के पास श्रम की शक्ति बहुत है, बुद्धि भी बहुत है। सच तो यह है कि आज हमारा मुल्क बुद्धि के ज्यादा होने से भी पीड़ित और परेशान है। हिंदुस्तान में युवकों के पास पहली दफे बुद्धिमत्ता की झलक आई है, लेकिन उनके पास उस बुद्धिमत्ता को सृजनात्मक रूप से नियोजित करने का कोई मार्ग नहीं है। तो वह तोड़-फोड़ कर रहे हैं।
ध्यान रहे, तोड़-फोड़, विध्वंस, हमेशा उसी शक्ति से होता है, जिससे सृजन होता है। सृजन और विध्वंस की शक्तियां दो नहीं होतीं, सृजन और विध्वंस की

शक्ति एक ही होती है। अगर सृजन का मार्ग मिल जाए तो ठीक है, अन्यथा शक्ति विध्वंस के मार्ग पर चली जाती है। मुल्क के पास कोई सृजनात्मक कामना नहीं है। छीन-झपट की कामना है। इसलिए मैं कहता हूं, समाजवाद जो है वह सृजनात्मक कामना नहीं है। वह कोई क्रिएटिव एंबीशन नहीं है। वह सिर्फ यह है कि बांटो, छीनो, झपटो। जिसके पास नहीं है वह उसकी गर्दन दबाना चाहता है जिसके पास है। लेकिन संपत्ति इतने कम लोगों के पास है, ज्यादा लोगों के पास होती तो भी ठीक था, हम बांट लेते। बांटने लायक भी नहीं है मामला। कुछ बंटने जैसा भी नहीं है पास में। लेकिन पैदा करो, क्रिएट! उसका खयाल नहीं है और जब तक हम पूरे मुल्क के युवकों को, पूरे मुल्क की आने वाली शक्ति को सृजन की कोई दृष्टि न दे सकें तब तक यह नहीं होगा। सृजन की दृष्टि लेकिन आए कब, क्योंकि पूरे देश के नेता समझा रहे हैं कि गरीब तुम इसलिए नहीं हो कि सृजन कम है, गरीब तुम इसलिए हो कि शोषण है। गरीब तुम इसलिए हो कि चारित्रिक ह्नास हो गया है। मैं कुछ बात इस संबंध में भी एक दो प्रश्न आए हैं, वह भी मैं कर लेना चाहता हूं। वह जरूरी है।
सारे मुल्क को कहा जा रहा है कि करेक्टरलेसनेस हो गई है, चरित्र का ह्नास हो गया है। पहले चरित्र को ठीक करो तब सृजन होगा, तब संपत्ति आएगी। जब भी सवाल उठता है कहीं भी कि भ्रष्टाचार है, कहीं भी कि विध्वंस है तो लोग कहते हैं, चरित्र नहीं है, बेसिक करेक्टर नहीं है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि गरीबी में चरित्र पैदा हो भी नहीं सकता, होता भी नहीं। एक विसियस सर्किल है फिर। गरीबी में चरित्र पैदा नहीं होता। चरित्र भी एक लग्जरी है, चरित्र भी एक विलास, सुविधा-संपन्नता में ही संभव है, जरूरी नहीं कि हो, संभव है। लेकिन गरीब चरित्रवान कैसे हो पाए, जिंदगी चारों तरफ से उसे कौंधती है, दबाती है और वह चरित्रहीन होने को मजबूर हो जाता है। अब हम यह कहते हैं कि जब तक चरित्रहीनता न मिटेगी तब तक तो कुछ भी नहीं मिट सकता। लेकिन चरित्रहीनता कैसे मिटेगी? इसलिए मैं कहता हूं, चरित्र की बात छोड़ दें, गरीबी मिटाने की फिकर में लगें और गरीबी जिस दिन मिट जाएगी, उस दिन चरित्रहीनता मिट जाएगी। गरीबी मिटे तो चरित्रहीनता मिटेगी, चरित्रहीनता मिटने से गरीबी मिटने वाली नहीं है, क्योंकि चरित्रहीनता ही मिटने वाली नहीं है। गरीबी मिटाएं तो चरित्र का तल ऊपर आना शुरू होता है। एक मजिस्ट्रेट मेरे पास बैठे हुए थे। वे कुछ कह रहे थे कि मैं कभी रिश्वत नहीं लेता। मैंने उनसे कहाः मैं पूछना चाहता हूं कि आपके रिश्वत न लेने की आखिरी सीमा क्या है? उन्होंने कहाः मैं समझा नहीं। मैंने कहाः मैं आपको पांच नये पैसे रिश्वत दूं, आप लेंगे? उन्होंने कहाः आप भी कैसी पागलपन की बात कर रहे हैं। मैंने कहाः पांच रुपये? तो उन्होंने कहाः नहीं। मैंने कहाः पांच सौ रुपये? उन्होंने कहाः नहीं लूंगा, लकिन उनकी "नहीं" कमजोर मालूम पड़ी। मैंने कहाः हजार रुपये? तो उन्होंने कहाः लेकिन क्या मतलब है आपका? यह पूछने से क्या फायदा है? अबकी बार उन्होंने "नहीं" नहीं कहा। मैंने कहाः और लाख रुपये? उन्होंने कहाः सोचना पड़ेगा। चरित्रहीनता का क्या मतलब होता है? पांच नये पैसे रिश्वत न लें तो चरित्रवान हो गए और लाख की रिश्वत लें तो चरित्रहीन? नहीं साहब, आदमी की सीमा है। पांच नये पैसे उसके पास बहुत हैं। अभी वह चरित्रवान रह सकता है। कह सकता है, न लेंगे। और पांच सौ रुपये, तब एक दफे सवाल उठता है कि लेना, कि नहीं लेना। पांच सौ भी एफर्ड कर सकता है, चरित्र के लिए पांच सौ खो सकता है क्योंकि उसके पास पांच सौ से ज्यादा है। लेकिन जब पांच लाख का प्रश्न उठा? तब वह कहता है कि अब जरा चरित्र महंगा पड़ जाएगा। अभी पांच लाख ले लें, चरित्र को फिर सम्हाल लेंगे। ऐसी क्या बात है!
अभी मुझसे किसी मित्र ने आकर कहा कि चित्रभानु जी गए हैं यात्रा पर। जैन मुनि हैं जा नहीं सकते थे। जैनियों ने विरोध किया है, गए हैं। तो उन्होंने मुझसे पूछा कि आपका क्या खयाल है?
मैंने कहा, पहला तो यह है कि मुनि नहीं होंगे। मुनि न होने का यह मतलब नहीं है कि हवाई जहाज पर गए, इसलिए मुनि नहीं हैं। मुनि इसलिए नहीं हैं कि जो जैनी है वह मुनि हो कैसे सकता है। मुनि तो सिर्फ आदमी रह जाता है; जैनी, ईसाई और मुसलमान नहीं। दूसरी बात यह है कि मुनि होकर भी जो कमंडल इत्यादि

प्रतीक हैं जैन मुनि के, वे उनको बचा कर भाग गए हैं नौ बजे कार में बैठ कर। छीनने वाले गए थे एअरपोर्ट पर। छीनने वालों के पास भी वही बुद्धि है, बचाने वाले के पास भी वही बुद्धि है। क्या मुनि-धर्म जो था वह उन चीजों में था? वह चीजें छीनने वाले भी गए थे कि छीन लें। वे उनको बचा कर ले गए, क्योंकि उनको ही छीन लेते तो उनके पास और क्या था? वहां जाकर वह क्या करते? वह जैन मुनि तो उन्हीं चीजों में था।
वह मित्र मुझसे पूछते थे कि आप इसके संबंध में क्या कहते हैं?
मैं कहता हूं कि यह कनिंगनेस है, यह चालाकी है; क्योंकि अगर तुम्हें ठीक लगता है जाना तो जिन लोगों को ठीक नहीं लगता उनके प्रतीक छोड़ दो क्योंकि उनके प्रतीक के द्वारा आदर लेने की बात चालाकी है, बेईमानी है। उनका प्रतीक फेंक दो। तुम्हें जाना है तो तुम जाओ, जाने की गलती और सही का सवाल नहीं है, लेकिन उस प्रतीक का आदर तुम क्यों लोगे फिर? जो कि इनकार करते हैं जाने के लिए, उनका आदर भी लेना फिर उचित नहीं है।
उन मित्र ने मुझसे पूछा है कि अब वह आकर यहां क्या करेंगे?
मैंने कहा, जहां तक होगा वह आकर पश्चात्ताप कर लेंगे। वह कहेंगे, हम क्षमा मांग लेते हैं, प्रायश्चित लिए लेते हैं और प्रायश्चित कोई बड़ा नहीं होगा, जैन-गं्रथों में क्योंकि हवाई जहाज की यात्रा का प्रायश्चित तो लिखा नहीं होगा। हवाई जहाज था नहीं। बैलगाड़ी वगैरह में कोई मुनि बैठ जाए तो उसका प्रायश्चित लिखा होगा, तो प्रायश्चित ले लेंगे, वापस जैन मुनि हो जाएंगे।
असल में उनके सामने सवाल आ गया होगा चरित्र का सवाल। अब तक जैन मुनि थे। खुद भी पैदल चलते थे। उसके एक दिन पहले तक भी कार में नहीं बैठे थे, तब तक वे जैन मुनि थे, आदर ले रहे थे। अब स्विट्जरलैंड से आमंत्रण मिला, मुश्किल हो गई। लाख रुपये की रिश्वत है। छोड़ें कि लें? अब बड़ी दिक्कत हो गई है कि जैन मुनि होने को बचाएं कि स्विट्जरलैंड जाने का मजा और स्व्जिरलैंड जैन मुनि गया। कैसे आदर और प्रतिष्ठा और उसके अहंकार को बचाए, अब यह सवाल महंगा पड़ गया। उनको छोड़ देना पड़ा। अगर आप कहते हैं कि महाराज पूना तक कार में बैठ कर चले चलो तो वे कहते कि पैदल आ जाऊंगा, क्योंकि पांच नये पैसे की रिश्वत थी, पूना तक पैदल आया जा सकता था और न भी आए पूना तक तो हर्ज क्या है। चित्रभानु गए नहीं बहुत दिनों से। बंबई में ही घूमते हैं। पूना तक भी नहीं गए मैं समझता हूं।
लेकिन लोग मोहल्ले बदल कर नगर बदल लेते हैं। जैन मुनि अगर एक मुहल्ले
से दूसरे मुहल्ले में चला जाता है कि नगर बदल लिया, रहता बंबई में ही है-- वही पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी पागलों का हिसाब है। रहता यहीं है, नगर बदल जाता है। मगर अब उनके सामने रिश्वत बड़ी आई, लाख रुपये की तो उन्होंने कहा कि अब ठीक है, अब चले जाओ। लौट कर चरित्र को फिर ठीक कर लेंगे। चरित्र को ठीक करने में देर कितनी लगती है। यह वे एफर्ड नहीं कर पाए, यही हमारे सारे लोगों का चिंतन है।
असल में दीनता, दरिद्रता चरित्र को पैदा नहीं होने देती और दीन और दरिद्र कौन है? चाहे किसी भी तरह की कमी हो, किसी तरह की इनफिरिआरिटी हो जैसे कि हिंदुस्तान के साधु के मन में इनफिरिआरिटी होती है। जब तक वह यूरोप और अमरीका न हो आए तब तक इनफिरिआरिटी रहती है, तब तक उसको यही लगता है कि वह अभी बड़े साधु नहीं हुए, अभी विवेकानंद से मुकाबला होना बड़ा मुश्किल है। तो यूरोप अमरीका जब तक न हो आए तब तक बड़ा साधु नहीं। साधु छोटा ही रह जाता है तो इनफिरिआरिटी सताती है। वह हीनता का भाव सताता है। हीन आदमी दरिद्र आदमी है। धन की हीनता हो, यश की हीनता हो, पद की हीनता हो, कोई भी हीनता हो, हीनता दरिद्रता है। दरिद्रता चरित्रहीनता पैदा करती है। सब तरह की चरित्रहीनता दरिद्रता से जन्मती है। दरिद्रताएं बहुत तरह की हैं, इसलिए बहुत तरह की चरित्रहीनताएं हैं। लेकिन बहुत तरह की समृद्धियां भी हैं। धन की भी एक समृद्धि है, तो फिर धनी को रिश्वत देना मुश्किल हो जाता है।
ज्ञान की एक समृद्धि है तो ज्ञानी को सर्टिफिकेट की रिश्वत देना मुश्किल हो जाता है। आत्म-बोध की भी एक समृद्धि है, फिर उसको अहंकार का

लालच देना मुश्किल हो जाता है। शांति की भी एक समृद्धि है, फिर उसे तनाव की पुकारें व्यर्थ हो जाती हैं। चरित्र पैदा होता है समृद्धि से, सब तरह की समृद्धि से--फुलफिलमेंट! इसलिए हिंदुस्तान यह ठीक से समझ ले कि हमें समृद्धि पैदा करनी है। अभी चरित्र की बकवास में नहीं पड़ना है। समृद्धि पैदा हो, चरित्र हम कभी भी पैदा कर लेंगे और अगर हम उलटे तरफ से चलें और अगर हमने सोचा कि चरित्र पहले पैदा करेंगे तो ध्यान रहे, चरित्र तो पैदा नहीं होगा, देश और गरीब होता चला जाएगा। लेकिन कई बार भूल हो जाती है।
एक किसान खेत में गेहूं बोता है। गेहूं के साथ भूस भी पैदा होती है।
एक अनजान आदमी निकलता हो, वह सोचे कि गेहूं के साथ भूसा पैदा होता है। जब गेहूं बोते हैं तो भूसा निकल आता है तो हम भूसे को बो दें तो गेहूं को भी निकलना चाहिए। नहीं निकलेगा, बल्कि पास का भूसा भी सड़ जाएगा। गेहूं के साथ भूसा आता है। वह उस की बाई-प्रॉडक्ट है, लेकिन भूसे के साथ गेहूं नहीं आता। गेहूं भूसे की बाई-प्रॉडक्ट नहीं है। सुविधा, संपन्नता, शिक्षा, समृद्धि इन सब की बाई-प्रॉडक्ट है, "चरित्र" जिसको आप कहते हैं। लेकिन हम सोचते हैं, चरित्र को बो दें तो फिर सब आ जाएगा। ऐसा नहीं होगा। उलटा नहीं होगा। इस देश को समृद्ध बनाए बिना चरित्रवान बनाना असंभव है और चरित्रवान बनाना हो तो समृद्धि बनाने में लगें।
एक ही लक्ष्य अगर मुल्क के सामने रह जाए आने वाले बीस वर्षों में सारी बकवास बंद हो एक ही लक्ष्य हो, भुला दें... कि इस देश को वहां किसी भी भांति बीस वर्षों में खड़ा कर देना है जहां जापान खड़ा हो गया है बीस वर्षों में, जहां इजरायल खड़ा हो गया है। अत्यंत नया। वहां हम क्यों खड़े नहीं हो सकते? हम भी खड़े हो सकते हैं, लेकिन हमारा माइंड डिवाइडेड है। हमारा माइंड हजार बातों में बंटा है। न मालूम कहां-कहां की फिजूल बातों में बंटा हुआ है। मुल्क की पूरी सृजनात्मक ऊर्जा को गलत रास्तों पर बांटा जा रहा है, लेकिन वह राजनीतिक तंत्र के हित में है। क्योंकि राजनीतिक लोगों को बांट कर ही सत्ता में पहुंचना है।
हिंदुस्तान में राजनीतिज्ञ क मूल्य होना चाहिए। हिंदुस्तान में राजनीतिज्ञ की कीमत बहुत कम करने की जरूरत है। बहुत अति हो गई है। यह जीवन के केंद्र पर बैठ गया है। सारी इज्जत, सारा आदर, सब कुछ उसके पास हो गया है। राजनीति जैसे प्राण बन गई है। राजनीति प्राण नहीं है, लेकिन वह प्राण बन गई है। उसे प्राण के पद से नीचे उतारने की जरूरत है।
एक अंतिम बात--अगर देश का हित चाहिए हो तो राजनीतिज्ञ के सम्मान को नीचे लाएं। उसे जरा नीचे उतारें। उससे कहें, आप अपने बड़े मंच से जरा नीचे आ जाएं। इतने आदर की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन बड़ा मजा है, अगर चेंबर्स आफ कामर्स का भी उदघाटन हो तो प्रधानमंत्री ही करेगा और वह प्रधानमंत्री ही उस चेंबर्स ऑफ कामर्स में व्यापारियों को गाली देगा, बिजनेस मैन को गाली देगा और वह बैठ कर सुनेंगे बड़ी प्रसन्नता से। वह छह इंच की मुस्कान बारह इंच की बना देंगे और बैठे सुनते रहेंगे। युनिवर्सिटी हो, विद्यार्थियों को उदबोधन देना हो, दीक्षांत भाषण हो, राजनीतिज्ञ देगा। जो कभी किसी युनिवर्सिटी में नहीं गए वे दीक्षांत भाषण दे रहे हैं!
राजनीतिज्ञ को हटाएं महिमा की जगह से। उसको इतनी महिमा पूरित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसकी तरफ देखना जरा बंद करें, उसकी तरफ से आंखें जरा हटाएं और सृजनात्मक केंद्रों पर आंखें गड़ाएं। जहां-जहां जीवन सृजन कर रहा है, चाहे धन, चाहे काव्य, चाहे साहित्य, चाहे धर्म, चाहे स्वास्थ, जहां भी जीवन सृजन कर रहा है वह केंद्र पर ले जाएं। वैज्ञानिक को, धार्मिक को, शिक्षाशास्त्री को, लेखक को, कवि को, धनपति को, मजदूर को--जहां-जहां सृजन है वहां मुल्क की आंख गड़े। राजनीतिज्ञ की तरफ पीठ करें तो बीस वर्ष में टेक्नालॉजी भी आ सकती है, समृद्धि भी आ सकती है, चरित्र भी आ सकता है। और देश समृद्ध हो--तो ही हम परमात्मा को धन्यवाद भी दे सकते हैं।
गरीब धन्यवाद भी क्या दे! गरीब भगवान के मंदिर के सामने भी मांग करता है, लड़के की शादी करवादे, लड़के की नौकरी लगवा दे, बीमार पड़ी है औरत, दवा दिलवा दे और देखता है गौर से, सोचता है मन में, दवा तो मिलने वाली नहीं है, पता नहीं यह भगवान सच्चा है कि झूठा है। कहता है, अगर दवा दिलवा दी तो मान

लूंगा कि तू पक्का भगवान है और अगर दवा नहीं मिली तो भगवान झूठा हो जाता है। नौकरी दिलवा दी तो मान लूंगा, नहीं मिली तो सब गड़बड़ हो जाता है।
गरीब भगवान के पास भी मांगने जाता है, धन्यवाद देने नहीं। वास्तविक धर्म थैंक्स गिविंग, धन्यवाद देना है, वास्तविक धर्म अनुग्रह-बोध है, लेकिन अनुग्रह किसके पास है? जिसके पास जीवन का और सब है, वह भगवान को धन्यवाद दे पाता है कि तूने आनंद दिया, तूने शांति दी, तूने जीवन के फूल दिए, तूने वह वीणा दी जहां संगीत पैदा हो पा रहा है। दीन धार्मिक नहीं हो पाता। संपन्न, जिसके भीतर सुर बजता है शांति का, आनंद का, सुख का, वह धन्यवाद दे पाता है। प्रार्थना करता हूं परमात्मा से अंत में, कि वह दिन आए कि हम भगवान के मंदिर में मांगने नहीं, धन्यवाद देने जा सकें। मेरे विचार में, हमारे स्वय के प्रयासों से वह दिन भी आ सकता है। आ सकता है वह दिन।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का ग्यारहवां प्रवचन

समाजवाद क्या--सिर्फ राजनीति है!

मेरे प्रिय आत्मन्!
समाजवाद अर्थात आत्मघात! इस संबंध में कुछ कहूं, उसके पहले एक बात की देना उचित है।
समाजवाद सिर्फ राजनैतिक दृष्टि नहीं है। और अगर समाजवाद सिर्फ राजनैतिक दृष्टि होती, तो इतना खतरा भी नहीं था। समाजवाद में सिर्फ आर्थिक प्रोग्रेस ही होता तो जिंदगी की बहुत बाहर की बात भी बहुत गहरी लगती। समाजवाद समग्र जीवन-दर्शन है। समाजवाद मनुष्य के आमूल जीवन को स्पर्श करता है। और विशेष रूप से इसी कारण इसके खतरे भी बढ़े हैं।
मैं समाजवाद पर समग्र जीवन की तरह विचार करना चाहूंगा।
पहली बात, समाजवादी जीवन-दृष्टि जड़वाद की, मैटीरियलिज्म की है। और इस देश के लिए समाजवाद की जड़वादी, भौतिकवादी दृष्टि बहुत आकर्षक हो सकती है। क्योंकि हम पांच हजार वर्षों से अध्यात्मवाद से पीड़ित लोग हैं। और जब कोई समाज बहुत दिनों तक एकांगी ढंग से जीकर दुख भोग चुका होता है तो बहुत स्वाभाविक रूप से वह विपरीत अति पर, दूसरी एक्सट्रीम पर जाने की तैयारी कर लेता है। पर आदमी खाई से बचने के लिए कुएं में गिर जाता है, और कुएं से बचने के लिए खाई में गिर जाता है। बीच में खड़ा होना सदा मुश्किल है। हिंदुस्तान पांच हजार वर्षों से अध्यात्मवाद के एकांगी दृष्टिकोण से पीड़ित और परेशान है। इसलिए हिंदुस्तान का मन बहुत जल्दी जड़वाद को पकड़ ले सकता है। साधारणतः लोग उलटा सोचते हैं। साधारणतः लोग सोचते हैं कि हिंदुस्तान में समाजवाद की अपील मुश्किल होगी। मैं नहीं सोचता हूं। लोग सोचते हैं, हिंदुस्तान आध्यात्मिक देश है, धार्मिक देश है, इसलिए समाजवादी कैसे होगा? मैं नहीं सोचता हूं, हिंदुस्तान इतने दिनों से अध्यात्मवादी है। अध्यात्मवाद के इतने दुख झेले हैं। अध्यात्मवाद के कारण बहुत सी गरीबी झेली है। अध्यात्मवाद के कारण गुलामी झेली है, अध्यात्मवाद के कारण सारा देश अलाल और शक्तिहीन हो गया है।
यह बहुत स्वाभाविक होगा इस देश के मन को कि वह किसी जड़वादी सिद्धांत
की ओर आकर्षित हो जाए। यह आकर्षण स्वाभाविक होगा, लेकिन खतरनाक है। यह कुएं से बचने के लिए खाई में गिरना है। असल में एकांगी दृष्टियां सभी खतरनाक होती हैं। न तो कोई व्यक्ति शुद्ध शरीरवादी होकर जी सकता है-- क्योंकि तब वह केवल शरीर रह जाता है--यंत्रमात्र! और न कोई व्यक्ति शुद्ध अध्यात्मवादी होकर जी सकता है--तब बिल्कुल शरीर को इनकार करना होता है। इस देश ने एक प्रयोग करके देख लिया है। और उसके दुख भी देख लिए हैं। हमने प्रयोग किए हैं कि हम सिर्फ आत्माएं हैं। और जगत को हमने इनकार कर दिया और हमने कहा जगत माया है, इलुजन है, झूठ है, सत्य तो सिर्फ ब्रह्म है। इस अकेले ब्रह्म को सत्य मान कर हमने इतने दुख झेले हैं कि जिसका हिसाब नहीं, हिसाब लगाना मुश्किल है। इस देश की गरीबी, इस देश की गुलामी इस अकेले ब्रह्म को मानने के कारण ही संभव हो पाई। क्योंकि जब हमने जगत को माया कह कर इनकार कर दिया तो जगत पर हमारी पकड़ छूट गई और जब हमने जगत और पदार्थ को इनकार कर दिया तो विज्ञान हम पैदान कर पाए।
तो, पांच हजार साल से एक अति पर हम जिए हैं। जैसे घड़ी का पेंडुलम बाएं तरफ जाता है तो दाएं तरफ जाने का मोमेंटम इकट्ठा करता है। जब घड़ी का पेंडुलम बाएं जा रहा है तब आप यह मत सोचना कि वह सिर्फ जा रहा है। वह दाएं जाने की तैयारी भी इकट्ठी कर रहा है। और जितनी दूर तक बाएं जाएगा, उतनी दूर तक दाएं जाने की संभावना पैदा कर रहा है। हिंदुस्तान की घड़ी के पेंडुलम के घूमने का वक्त आ गया है। और अब खतरा है कि हम दूसरी अति पर चले जाएं। अब खतरा है कि हम मान सकें कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है, बस आदमी शरीर है। और रोटी मिल जाए तो सब मिल जाता है।
समाजवाद एक जड़वादी जीवन-दृष्टि है, जो मनुष्य में दिखाई पड़ता है उसके पार न दिखाई पड़ने वाले को इनकार करती है। और ध्यान रहे जिस दिन भी मनुष्य

के भीतर जो अदृश्य है उसको इनकार करने को राजी हो जाएंगे, उस दिन मनुष्य के पास कुछ भी नहीं बच रहेगा, सिर्फ रूप-रेखा बच जाएगी।
मनुष्य में जो भी श्रेष्ठ है वह सब अदृश्य है और मनुष्य में जो भी सुगम है वह सब अदृश्य है। और मनुष्य में जो भी चेतना है वह सब अदृश्य है। मनुष्य में जो दृश्य दिखाई पड़ रहा है वह केवल यंत्र है। और यंत्र के भीतर बैठा हुआ मालिक उसका उपभोक्ता, इस घर का निवासी बिल्कुल अदृश्य है। और हम खतरनाक लोग हैं, क्योंकि जब हम दृश्य को झूठ कह कर इनकार कर सके थे तो अदृश्य को झूठ कह कर इनकार करने में कितनी देर लगेगी? जब हम दिखाई पड़ने वाले जगत को माया कह सके तो न दिखाई पड़ने वाले परमात्मा को माया कहने में कितनी देर लगेगी?
जो सामने टकराता था, जिसको सारी जिंदगी कहती थी--"है", उसको हम पांच हजार साल से कहते थे, यह सिर्फ आभास है, यह वस्तुतः नहीं--सिर्फ सपना है। तो जो बिल्कुल सपने जैसा है, जो दिखाई भी नहीं पड़ता, जिसे प्रयोगशाला में जांचा भी नहीं जा सकता, जिसे टेस्ट-ट्यूब में परखने का कोई उपाय नहीं, और जो जिंदगी में कहीं भी टकराता नहीं, उसके इनकार में हमें कुछ देर लग सकती है!
इसलिए मैं यह कह देना चाहता हूं कि भारत जिस बुरी तरह से जड़वादी हो सकता है, उतना जड़वादी होने की संभावना दुनिया में किसी भी कौम को नहीं है। क्योंकि भारत ने जिस पागलपन से अध्यात्म को साधा है, दूसरी एक्स्ट्रीम पर जाने की गति उसने इकट्ठी कर ली है।
और इस समय अध्यात्म के विरोध में जो सबसे बड़ा विचार है वह समाजवाद का है। इस समय धर्म के विरोध में जो सबसे बड़ी फिलासफी है वह समाजवाद की है। अगर काशी को मिटाना है और काबा को मिटाना है तो मास्को के सिवाय कोई विकल्प दिखाई नहीं पड़ता। और अगर गीता और कुरान को जला डालना है तो "कैपिटल" के सिवाय पूजागृह में रखने को और कोई किताब नहीं मालूम पड़ती। भारत के लिए समाजवाद आत्मघात सिद्ध होगा, क्योंकि भारत वैसे ही आधा
मर चुका है। और आधा जो बचा है वह दूसरे विकल्प को चुन कर मर सकता है। हमने आधी जिंदगी को पहले ही इनकार कर दिया था और आधी जिंदगी को इनकार करके हमने, भूत-प्रेतों की जिंदगी स्वीकार कर ली थी--सिर्फ निराकार की, आकार को इनकार करके। अब हम दूसरा खतरा कर सकते हैं। अब हम ऊब गए हैं, हम बुरी तरह ऊब गए हैं। और जो-जो हमने जिंदगी में आधार बनाए थे वह आधार धोखा दे गए हैं, उन्होंने कुछ साथ नहीं दिया। अब हम उनसे विपरीत आधार पकड़ने के लिए बहुत ही आतुर हैं। महावीर, बुद्ध, राम और कृष्ण के बेटे, मार्क्स, एंजिल और माओ को पकड़ने के लिए जितने तैयार हैं उतने जगत में कोई भी तैयार नहीं हैं। थोड़ी बहुत देर लग सकती है, लेकिन तैयारी रोज-रोज प्रकट होती जाती है।
लेनिन ने आज से कोई साठ साल पहले की अपनी एक घोषणा में कहा था कि कम्युनिज्म की यात्रा मास्को से पेकिंग और पेकिंग से कलकत्ता होती हुई लंदन जाएगी। उसकी और बातें चाहे गलत हों, उसकी कम से कम यह खतरनाक घोषणा सही होती मालूम पड़ती है।
पेकिंग तक तो बात सही हो गई। कलकत्ते में भी काफी पगध्वनियां सुनाई पड़ती है। बंबई भी ज्यादा दिन दूर नहीं रह सकता।
हिंदुस्तान की बड़ी संभावना है। इसलिए पहले इस बात को ठीक से सोच लेना चाहिए कि जड़वाद की दृष्टि का अर्थ क्या है? मैटीरियलिस्ट दृष्टि का क्या अर्थ है? भौतिकवाद का क्या अर्थ है?
भौतिकवाद का अर्थ है कि हम सिर्फ मनुष्य के शरीर होने को स्वीकृति देते हैं। शरीर के पार मनुष्य का कुछ नहीं है। इसलिए स्टैलिन लाखों लोगों की हत्या कर सका। क्योंकि अगर "आदमी" सिर्फ होता है तो हत्या में कोई भी हर्ज नहीं है। और अगर आदमी सिर्फ यंत्र है तो मारने में परेशानी क्या है? और आदमी अगर सिर्फ शरीर है और आत्मा नहीं है तो स्वतंत्रता की क्या जरूरत है?
समाजवाद अंततः स्वतंत्रता की हत्या बन जाता है। क्योंकि समाजवाद मौलिक रूप से आदमी की आदमियत को इनकार कर देता है। वह स्वीकार करता है

सिर्फ शरीर को, फिर शरीर के लिए रोटी चाहिए वह समाज दे सकता है। कपड़े चाहिए, वह भी दे सकता है। मकान चाहिए, वह भी दे सकता है।
आत्मा बेच कर कपड़े, मकान और रोटी को पा लेना बहुत महंगा सौदा है। लेकिन आदमी ऐसे सौदे करने को राजी हो सकता है। और इमरजेंसी होती है, संकट के काल होते हैं, जैसा भारत पर आज है। आज भारत के पास रोटी नहीं है। आज भारत के पास कपड़े भी नहीं हैं। आज भारत के पास मकान भी नहीं हैं। इस परेशानी की हालत में हम इस सौदे के लिए राजी हो सकते हैं कि हम आदमी की स्वतंत्रता को बेच कर, और रोटी कपड़े को खरीद लें। एक बार खरीद लेने के बाद पता चलेगा कि यह दुकान फिर वापस लौटाने वाली नहीं है। वे चीजें वापस लौटाई नहीं जा सकतीं, इनको लौटाना फिर असंभव है।
सोवियत रूस में जिन लोगों ने क्रांति की थी वे सोचते थे कि हम स्वतंत्रता के लिए क्रांति कर रहे हैं। लेकिन सोवियत रूस की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर क्रांति करने वाले बड़े नेताओं में सिर्फ एक स्टैलिन बचा था, बाकी सबकी हत्या स्टैलिन ने ही करवा दी। चाहे जियोविएव हों, चाहे कामेनिएव हों और चाहे स्वर्दलाव हों और ट्राटस्की हों, क्रांति के जितने भी महत्वपूर्ण आधार थे उन सबकी हत्या क्रांति ने ही कर दी। खतरा है क्रांतिकारियों से, क्योंकि वे लोग स्वतंत्रता की बातें करते थे, उनको मिटा देना पहले जरूरी था। उनको मिटा देने के बाद जमीन पर सबसे बड़े कारागृह का निर्माण हुआ।
आशा थी कि सबसे बड़ी स्वतंत्रता का निर्माण होगा, लेकिन जो निर्मित हुआ वह सबसे बड़ा कारागृह है। इतना बड़ा कारागृह कहीं भी कभी भी निर्मित नहीं हुआ। न चंगेज खां कर सका था, न नेपोलियन कर सका था, न सिकंदर कर सका था। दुनिया के बड़े से बड़े खतरनाक लोग भी इतना बड़ा कारागृह नहीं पैदा कर सकते थे। समाजवाद ने वह कारागृह संभव कर दिया, क्योंकि चंगेज कितना ही बड़ा हत्यारा हो, आदमी की आत्मा का भरोसा था उसे। और चंगेज कितना ही बड़ा हत्यारा हो, सुबह बैठ कर परमात्मा से क्षमा मांगता था।
स्टैलिन पहला हत्यारा है जिसे किसी से क्षमा मांगने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि आत्मा है ही नहीं। स्टैलिन पहला आदमी है इस मनुष्य-जाति के इतिहास में जो अंदाजन पचास लाख लोगों से लेकर एक करोड़ लोगों की हत्या इतनी सरलता से कर सका, जैसे हम मिट्टी के गुड्डे-गुड्डियों की हत्याएं कर रहे हों। इस हत्या में कहीं कोई मर ही न रहा था। आदमी है ही नहीं मरने को, सिर्फ एक यंत्र है। और आप अगर एक यंत्र को तोड़ दें तो इसके लिए अपराध का भाव पैदा नहीं होता। अगर मैं घड़ी को पटक कर तोड़ दूं तो मेरे मन में ऐसा भाव नहीं होता कि कोई प्रायश्चित करूं। घड़ी सिर्फ यंत्र है।
मार्क्स की दृष्टि में मनुष्य पदार्थ ही है और समस्त चेतना पदार्थ का
ही एपिफिनॉमिना है। सिर्फ पदार्थ में ही पैदा हो गई घटना है। जैसे हम आक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाएं और पानी पैदा हो जाए। तो पानी कोई नई घटना नहीं है, आक्सीजन और हायड्रोजन का जोड़ है। इसलिए पानी के साथ कोई अलग व्यवहार करने की जरूरत नहीं है। जो हम आक्सीजन और हाइड्रोजन के साथ करते थे, वही व्यवहार पानी के साथ किया जा सकता है।
आदमी भी भौतिक तत्वों का जोड़ है, और उस जोड़ के अतिरिक्त उसके भीतर और कुछ भी नहीं है जो जोड़ के बाहर हो। एक बार यह बात अगर स्वीकृत हो जाए कि आदमी सिर्फ जोड़ है हड्डी-मांस-मज्जा और पुदगलों का और उसके भीतर जोड़ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तो जिंदगी फिर दूसरे ढंग से हमको बितानी पड़ेगी। जब कि यह सरासर झूठ है, आदमी कुछ और है, सिर्फ जोड़ नहीं--जब कि यह बात बुनियादी रूप से गलत है। सच तो यह है कि आदमी कुछ और है और उसके आधार पर ही यह जोड़ भी संभव हो पाया है। और जिस दिन वह और अलग हो जाता है, यह जोड़ बिखर जाता है। यह जोड़ अपने आप में नहीं है। वह क्रिस्टलाइजेशन, यह सारी चीजों का जुड़ जाना बीच में किसी और केंद्र के ऊपर है। और वह केंद्र जिस दिन अलग होता है, यह सारा का सारा विस्तार टूट कर बिखर जाता है।
आदमी जोड़ नहीं--जोड़ से ज्यादा है, लेकिन समाजवाद की दृष्टि जो है-- मार्क्स सोचता था कि पदार्थ के अतिरिक्त और कोई सच्चाई नहीं है जगत में।
जिन दिनों में मार्क्स पैदा हुआ, उन दिनों पदार्थवाद बहुत जोर पर था।

लेकिन अब अगर मार्क्स को उसकी कब्र से उठाया जा सके तो वह बहुत हैरान होगा। क्योंकि इधर सौ वर्षों में जो सबसे बड़ा आघात हुआ है वह पदार्थ को हुआ है। आज कोई भी वैज्ञानिक यह नहीं कह सकता कि पदार्थ है।
आज वैज्ञानिक कहेगा कि मैटर इज डेड। पदार्थ तो है ही नहीं, मर गया। असल में जितना खोजा उतना ही पाया कि पदार्थ नहीं है। आज अगर सारी दुनिया के पदार्थवादी लौटें तो बहुत हैरान होंगे। वे इस बात से हैरान होंगे कि उन्होंने आशा बांधी थी कि विज्ञान एक दिन सिद्ध करेगा कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है। विज्ञान यह तो सिद्ध नहीं कर पाया कि आत्मा नहीं है, न यह सिद्ध कर पाया कि परमात्मा नहीं है। एक अजीब बात विज्ञान सिद्ध कर पाया कि पदार्थ नहीं है। और जैसे हम पदार्थ को तोड़ते हैं और नीचे पहुंचते हैं तो सिवाय... विद्युत-कणों को भी कण कहना भाषा की भूल है! कण नहीं हैं वे, क्योंकि कण तो पदार्थ के छोटे टुकड़े को कहते हैं। विद्युत के टुकड़े को क्या कहें? अंग्रेजी में उन्होंने एक नया शब्द गढ़ा है--क्वांटा का मतलब होता है, दोनों चीजें एक साथ--कण भी और लहर भी। कण-तरंग दोनों बातें एक साथ हो नहीं सकतीं। लहर का मतलब ही होता है जिसमें बहुत कण हैं। कण का मतलब है, जो अकेला है, जिसमें कोई लंबाई नहीं है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं, वह जो विद्युत का आखिरी टुकड़ा है वह एक ही साथ कण भी है और तरंग भी है। सब्स्टेंशियल बिल्कुल ही नहीं है। उसमें सब्स्टेंस जैसी कोई चीज ही नहीं--सिर्फ ऊर्जा है, सिर्फ शक्ति है।
सिर्फ शक्ति है पदार्थ। और मार्क्स इनकार करता है कि मनुष्य के भीतर पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और विज्ञान कह रहा है कि सिर्फ शक्ति है, पदार्थ तो है ही नहीं। आज दुनिया में मेटीरियलिज्म की तो बेस गिर गई है, उसके नीचे की बुनियाद गिर गई है। आज मेटीरियलिस्ट होने के लिए कोई भी समझदार आदमी तैयार नही है, नहीं हो सकता है। हालांकि पुरानी सदियों में अधिकतम समझदार आदमी मैटीरियलिस्ट होने के लिए तैयार था। क्योंकि दिखलाई पड़ता था, यह लोहा है, यह लकड़ी है, यह दीवाल है। आज वैज्ञानिक कहता है कि न दीवाल है, न लोहा है, न लकड़ी है, विद्युत की तरंग में कोई मैटर नहीं, कोई पदार्थ नहीं है, वह सिर्फ शक्ति है।
यह सारा जगत ऊर्जा का खेल है। यह सारा जगत शक्ति का एक बहुत बड़ा व्यापक विस्तार है। जिसे धर्म ने कहा है ब्रह्म, उसे विज्ञान आज ऊर्जा कह रहा है। बहुत देर नहीं है कि वह उसे ब्रह्म कह सके। एक कदम और उठाने की जरूरत है और विज्ञानन जिसे ऊर्जा कह रहा है, उसे सचेतन ऊर्जा कह सकेगा। क्यों? क्योंकि विज्ञान के ही आधारभूत नियम इस बात के लिए पूर्व से अपेक्षा तैयार कर रहे हैं।
क्योंकि जगत सिर्फ शक्ति का विस्तार है तो इस शक्ति का विस्तार में विचार पैदा होता है, चेतना पैदा होती है, और वही पैदा होता है। हो सकता है जो पहले से छिपा हो, अन्यथा पैदा नहीं हो सकता। एक बीज से वृक्ष पैदा होता है, भले बीज में वृक्ष दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन बीज में वृक्ष का पूरा बिल्ट इन प्रोग्रेम मौजूद है। बीज मं कैसे फल लगेंगे और वृक्ष कितना बड़ा होगा, और वृक्ष में कैसी शाखाएं होंगी--यह सब उस बीज में छिपा है। सिर्फ प्रकट होने की देर है, अप्रकट है।
ऊर्जा अप्रकट चेतना है, और बीज अप्रकट वृक्ष है। अगर कोई कहे कि बीज में वृक्ष नहीं है, तो फिर वृक्ष के पैदा होने की कोई संभावना ही नहीं है। फिर हर बीज हर वृक्ष को पैदा नहीं करता, सब बीज अलग-अलग वृक्षों को पैद करते हैं, और फिर यदि बीज में वृक्ष नहीं है, तो फिर हम एक कंकड़ का बो दें और आम का वृक्ष पैदा नहीं होगा। क्योंकि कंकड़ में जो नहीं छिपा है वह पैदा नहीं हो सकता।
जो बोया है वही प्रकट होता है। चेतना प्रकट हुई है तो चेतना इसी ऊर्जा में छिपी होनी चाहिए। इस ऊर्जा के विस्तार में अगर ऊर्जा न छिपी हो तो वह कहां से आएगी--वह है। मैं आपको देख रहा हूं, आप मुझे सुन रहे हैं, मैं बोल रहा हूं, आप समझ रहे हैं कि यह घटना घट रही है। यह घटना है समझ की, अंडरस्टैंडिंग की, विचार की, चेतना की। प्रेम की यह घटना ऊर्जा में अंतर्निहित है।

विज्ञान को एक कदम और उठाना है। पदार्थ को विज्ञान ने जब तक नहीं तोड़ा था, तब तक वैज्ञानिक कहते थे पदार्थ ही सत्य है। उसका ही जोड़ है सब, फिर उन्होंने पदार्थ को तोड़ा, उसको एनालाइज्ड किया। एनालिसिस के बाद हैरान हो गए। उन्होंने पाया कि पदार्थ तो तिरोहित हो गया, रह गई सिर्फ ऊर्जा। जिस दिन वह ऊर्जा भी तिरोहित हो गई तो रह गई सिर्फ चेतना।
विज्ञान ने एक कदम जो उठाया है वह धर्म की तरफ से है और अब भविष्य में भौतिकवाद के लिए कोई उपाय नहीं रह गया है। लेकिन मार्क्स जब पैदा हुआ तब भौतिकवाद हवा में था। चारों तरफ डारविन और न्यूटन की बात थी और चर्चा थी। और सब तरफ भौतिकवादी जीतता हुआ मालूम पड़ता था और अध्यात्मवादी हारता हुआ मालूम पड़ता था। स्वभावतः मार्क्स ने भौतिकवाद को पकड़ लिया। लेकिन समाजवाद आज भी भौतिकवाद को पकड़े हुए बैठा है। असल में सब वादी अतीत से जकड़ जाते हैं। कोई वादी गीता से जकड़ जाता है, कोई कुरान से, कोई बाइबिल से, कोई मार्क्स से जकड़ जाता है। असल में वादी जो है वह पीछे को पकड़े रह जाता है। उसे पता नहीं रहता, जिंदगी आगे बढ़ गई।
समाजवाद आउट ऑफ डेट है, पिछड़ी हुई बकवास है। उसका अब कोई भविष्य नहीं है। क्योंकि यह जिन आधारों पर खड़ा है वे सब आधार गिर गए हैं। पहला आधार तो यह गिर गया है कि मैटीरियलिज्म गलत सिद्ध हो गया है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अभी स्प्रिचुअलिज्म सही सिद्ध हो गया है, विज्ञान से। मैं सिर्फ यही कह रहा हूं कि सिर्फ पदार्थवाद गलत सिद्ध हो गया है। लेकिन जगह खाली हो गई है। और मनुष्य की चेतना बहुत दिनों तक वेक्यूम को बरदाश्त नहीं करती। असल में शून्य को बरदाश्त करना कठिन है। इसलिए पिछले बीस वर्षों में वैज्ञानिकों का बड़ा वर्ग धीरे-धीरे अध्यात्म की तरफ गया। एडिंगटन ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि जितना ही मैं सोचता हूं, उतना ही मुझे ऐसा मालूम पड़ा है कि जगत एक वस्तु कम और विचार ज्यादा है।
यह जगत एक वस्तु की भांति कम और एक विचार की भांति ज्यादा है।
एडिंगटन जैसा वैज्ञानिक यह कहता है तो थोड़ी हैरानी होती है। जिम्स जीन ने मरने के पहले एक वक्तव्य दिया और उस वक्तव्य में कहा कि जितना मैंने सोचा, मैंने पाया कि रहस्य बड़ा होता जाता है। और एक किताब लिखी।
एक वैज्ञानिक मिस्टरी शब्द का भी उपयोग करेगा, यह भी थोड़ा ठीक नहीं मालूम होता।
मिस्टरी धार्मिक शब्द है--रहस्य। संत होते हैं रहस्यवादी, वैज्ञानिक रहस्यवादी नहीं होता। वैज्ञानिक कहता ही यह है कि कोई रहस्य नहीं है। सब रहस्य खोले जा सकते हैं। सिर्फ हमारी समझ की कमी है। थोड़ी समझ बढ़ेगी तो जो रहस्य मालूम पड़ता है उसे हम कानून बना देंगे।
हम खोल देंगे सब और इस सदी के पहले, इस सदी के प्रारंभ होते वक्त वैज्ञानिक बहुत आशा से भरा था कि हम सारे रहस्य खोल लेंगे। यह सदी पूरी होते-होते इस दुनिया में कोई रहस्य नहीं बचेगा और विज्ञान रिटायर हो जाएगा। वह विश्राम पर चला जाएगा, क्योंकि कोई रहस्य नहीं बचेगा, सब रहस्य खोल लिए जाएंगे।
जिन लोगों ने फ्रेंच-क्रांति की थी वे लोग इसी आशा से भरे थे कि दुनिया में ज्यादा दिन रहस्य नहीं बचेगा। लेकिन उन बेचारों को कोई पता नहीं है कि विज्ञान ने कितनी खोज की, रहस्य छोटा नहीं हुआ, रहस्य और बड़ा हो गया। और विज्ञान जितना गहरा गया उतना पाया कि गहराइयां आगे हैं। और विज्ञान ने जहां-जहां समझा था कि सतह आएगी वहां पहुंच कर पाया कि यह तो सिर्फ ऊपर ही हम तैरते थे, नीचे और बहुत ज्यादा है। और अब जिम्स जीन वैज्ञानिक कह सकता है कि जगत की मिस्टरी का कभी कोई अंत नहीं है। आइंस्टीन ने अपने जीवन भर के निष्कर्षों के बाद में कहा है कि मेरा मन धार्मिक होता जा रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है। आइंस्टीन जैसा आदमी कहे, मेरा मन धार्मिक होता जा रहा है! क्यों होता जा रहा है? आइंस्टीन को ऐसी कौन सी वैज्ञानिक समझ से पता चला है कि धर्म है। नहीं, यह तो पता नहीं चला, लेकिन एक बात पक्की पता चल गई कि विज्ञान के सब आधार डांवाडोल हो गए

हैं। और अब विज्ञान को पकड़ने के लिए जगह नहीं रह गई। हाथ खाली हो गए हैं।
और आइंस्टीन के हाथ जो खाली हैं, वह धर्म की तरफ झुक रहे हैं।
समाजवाद का बुनियादी आधार अब भौतिकवाद है। इस भौतिकवाद से समाजवाद का
एक दूसरा आधार विकसित हो गया था--वह था हिस्टारिकल मैटीरियलिज्म। वह मैटीरियलिज्म का ही विकास था।
भौतिकवाद और फिर मार्क्स ने एक दूसरी धारणा विकसित की--ऐतिहासिक भाग्यवाद की। समाजवाद का यह मानना है कि आदमी तय नहीं करता कि समाज कैसा हो। समाज की अंधी ऐतिहासिकता (हिस्टोरिकी) तय करती है कि समाज कैसा हो! पूंजीवाद के बाद समाजवाद आएगा ही, यह अनिवार्य है। यह ऐसे ही है जैसे
हम पानी को गरम करेंगे तो वह भाप बनेगा--बनेगा ही। ऐसा नहीं है कुछ कि उसे बनना चाहिए।
इसलिए मैं दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं। जिस भौतिकवाद के आधार पर मार्क्स सोचता था कि ऐतिहासिक सुनिश्चितता हो सकती है... कि भौतिकवाद तो गिर ही गया! भौतिकवाद के सुनिश्चतता के सिद्धांत भी गिर गए। पिछले पंद्रह सालों में भौतिकवाद ने नया सिद्धांत विकसित किया है, जिसका नाम है, प्रोबेबिलिटी--संभावना। पिछले पंद्रह वर्षों में विज्ञान ने सरटेंटी की भाषा छोड़ कर अनसरटेंटी की भाषा बोलना शुरू की है। अब निश्चय की भाषा विज्ञान ने बंद कर दी और अनिश्चय की भाषा शुरू की है। क्योंकि विज्ञान यह कह रहा है कि जो निश्चय दिखाई पड़ रहा है वह बहुत ऊपरी है, और हम भीतर घुसते हैं तो निश्चय टूट जाता है।
जैसे हम निश्चित हो सकते हैं कि पिछले दस सालों का अहमदाबाद की सड़कों
का रिकार्ड पुलिस से पूछा जाए तो पता चल सकता है, कितने एक्सीडेंट हुए। और यह भी पता चल सकता है कि हर साल कितने एक्सीडेंट बढ़ जाते हैं। तो हम घोषणा कर सकते हैं कि अगले साल अहमदाबाद की सड़कों पर कितने एक्सीडेंट होंगे। लेकिन इस आधार पर हम यह नहीं बता सकते कि कौन सा आदमी एक्सीडेंट में मरेगा।
दस लाख आदमी रहते हैं तो हम बता सकते हैं कि दस आदमी अगले साल कार के एक्सीडेंट में मरेंगे। क्योंकि पिछले साल नौ मरे, उसके पहले साल आठ और पहले सात मरे। दस आदमी मरेंगे यह प्रोबेबिलिटी है, यह सरटेंटी नहीं है। यह सिर्फ संभावना है। यदि अहमदाबाद के लोग तय कर लें, जैसा कि बहुत संभव है गुजरात के लोग कर सकते हैं--मरेंगे, तो तब तक हम घर से बाहर ही नहीं निकलेंगे तो यह संभावना गलत हो जाएगी। दस भी न मरेंगे। यह संभावना तभी तक लागू रहेगी जब तक अहमदाबाद के लोग जिस ढंग से रह रहे हैं वे वैसे ही रहते चले जाएं। और यह संभावना बड़े समूह पर लागू होगी। अगर एक
आदमी को पकड़ कर हम कहें कि यह आदमी मरेगा या नहीं मरेगा, तो उसके संबंध में कोई घोषणा नहीं की जा सकती।
जब तक विज्ञान पदार्थ के समूह का अध्ययन कर रहा था, तब तक बहुत सरटेन था। वह जानता था कि नाइट्रोजन का व्यवहार क्या है, वह जानता था कि आक्सीजन का व्यवहार क्या है। लेकिन जब विज्ञान पदार्थ के समूह के नीचे उतरा और उसने एटम को पकड़ा तो वह हैरान रह गया, एटम इंडीविजुअल है। उसके व्यवहार को पक्के रूप से तय नहीं किया जा सकता है कि वह क्या व्यवहार करेगा।
बड़ी हैरानी की बात है कि पदार्थ के भीतर भी व्यक्तियों के अस्तित्व हैं। और जब एटम को भी तोड़ा तब वैज्ञानिक और भी मुश्किल में पड़ गए हैं, क्योंकि इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और पाजेट्रान के व्यवहार को तो बिल्कुल नहीं बताया जा सकता कि वे क्या करेंगे। वे झिग-झिग चलते हैं। उनका कुछ पक्का नहीं कि वे ऐसा ही चलेंगे। वे गलत चल सकते हैं, और कुछ पता नहीं चलता कि वे ऐसी गड़बड़ क्यों करते हैं? क्योंकि पदार्थ को गड़बड़ नहीं करना चाहिए, उसे नियम से चलना चाहिए।
यहां तक हैरानी का अनुभव हुआ है कि जब कोई वैज्ञानिक अपनी बहुत गहरी दूरबीन से या खुर्दबीन से पदार्थ के छोटे अणुओं को देखता है तो एक बहुत आश्चर्यजनक अनुभव होता है। वह समझने जैसा है। वह यह कि उस निरीक्षण करने से पदार्थ के छोटे अणुओं के व्यवहार में अंतर पड़ जाता है। जैसे कि आप अपने बाथरूम में स्नान करते होते हैं तो एक तरह के आदमी होते हैं और मैं आपको

सुराख में से झांक कर देखूं तो आपके व्यवहार मे अंतर पड़ जाता है। क्योंकि जब आप अकेले थे ता आप मुंह चिढ़ा रहे थे आईने के सामने, लेकिन अगर आपको पता चल जाए कि छेद में से कोई झांक रहा हे, तो आप बदल गए। यह आपके बाबत तो समझ में आता है, क्योंकि आप एक व्यक्ति हैं सचेतन, लेकिन एक छोटा सा न दिखाई पड़ने वाला इलेक्ट्रान अगर निरीक्षण से अपना रास्ता बदल देता है, तब बड़ी अजीब बात है।
इसका मतलब यह होता है कि इलेक्ट्रान के पास अपनी आत्मा, अपना व्यक्तित्व है। इलेक्ट्रान भी निरीक्षण से रास्ता बदलता है। आपने कभी अपनी नाड़ी नापी है, आप अपनी नाड़ी नापें, पहली दफा नापें, फिर दस मिनट के लिए निरीक्षण करते रहें नाड़ी का और फिर नापें, आप पाएंगे कि चाल बढ़ गई। जब डाक्टर आपकी नाड़ी नापता है तो चाल उतनी ही नहीं होती जितनी नापने के पहले थी, थोड़ी सी बढ़ जाती है और अगर लेडी डाक्टर हा तो निश्चित ही ज्यादा बढ़ जाती है। क्योंकि लेडी डाक्टर की वजह से नाड़ी पर निरीक्षण ज्यादा हो जाता है, ध्यान ज्यादा चला जाता है।
निरीक्षण चेतन व्यक्ति में फर्क करे--यह समझ में आता है, लेकिन जिसको
हम सदा से जड़ कहते रहे--अचेतन, उसके व्यक्तित्व में भेद पड़ जाए तो सोचना पड़ेगा फिर से कि जिसको हम अचेतन कह रहे हैं, वह भी अचेतन नहीं है। ऑब्जर्वेशन फर्क करता है तो चेतना वहां भी है, तो हो सकता है हम उसकी चेतना को अभी नहीं पहचान पा रहे, लेकिन कल हम उसके चेतन को पहचान लें।
इसलिए विज्ञान पिछले पंद्रह सालों से सरटेंटी की बातें नहीं करता कि ऐसा होगा ही, वह कहता है, ऐसा हो सकता है। क्योंकि वे जो नीचे बैठे हुए व्यक्तिगत अणु हैं वे क्या व्यवहार करेंगे, कहना बहुत कठिन है। उनके व्यवहार को तय करना आसान नहीं है। भीड़ सदा जड़ होती है, व्यक्ति सदा चेतन होता है। और समाजवाद का सारा भरोसा भीड़ पर है। व्यक्ति पर बिल्कुल नहीं है।
व्यक्ति पर कोई जड़ता भरोसा नहीं कर सकती। व्यक्ति स्वतंत्रता है। भीड़
एक जड़ता है। अगर एक मस्जिद को जलाना हो तो पांच हजार हिंदुओं पर भरोसा किया जा सकता है, एक हिंदू पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अगर एक मंदिर मे आग लगाना हो तो पांच हजार मुसलमानों पर भरोसा किया जा सकता है, एक मुसलमान पर भरोसा नहीं किया जा सकता। और मजा यह है कि पांच हजार मुसलमान से अगर एक-एक से पूछा जाए कि क्या तुम मंदिर जलाने के लिए तैयार हो तो वह भी दो बार सोचेगा और कहेगा कि जलाना कि नहीं जलाना; लेकिन पांच हजार मुसलमानों की या पांच हजार हिंदुओं की भीड़ जब मंदिर या मस्जिद में आग लगाती है, तो सोचने की जरूरत ही नहीं होती। भीड़ सिर्फ यंत्रवत काम करती है।
इसलिए दुनिया में जितने बड़े पाप व्यक्तियों ने किए हैं उतने व्यक्ति
ने कभी भी नहीं किए और भीड़ से सावधान रहना और भीड़ से बचने की कोशिश करना। समाजवाद भीड़वाद है, वह व्यक्ति को हटा कर भीड़ को ला देना चाहता है। विज्ञान के नीचे से आधार खिसक गए हैं। इसलिए अब कोई समाजवादी वैज्ञानिक समाजवाद की बातें न करे। मार्क्स के जमाने में साइंटिफिक सोशलिज्म शब्द में कोई अर्थ था, अब कोई अर्थ नहीं है। अब अगर हमारा चिंतन वैज्ञानिक है, तो वह गलत बातें कर रहा है। विज्ञान से आज उसको कोई सहारा या समर्थन नहीं है।
यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब तक स्टैलिन रूस में हुकूमत में था तब
तक उसने ऐसी आज्ञाएं जारी कर रखी थीं कि वैज्ञानिक कोई ऐसा सिद्धांत न खोजें जो समाजवाद के विपरीत जाता हो। बहुत मजे की बात है। राजनीति तय करेगी कि प्रकृति कैसा व्यवहार करे, राजनीति तय करेगी कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिले तो पानी बने, कि न बने। स्टैलिन क्रेमलिन में बैठ कर तय करेगा कि फिजिक्स क्या खोजे और क्या न खोजे और खोज ले, तो भी क्या बताए और क्या न बताए।
स्टैलिन ने पिछले पचास साल रूस में ऐसी सारी दिशाओं को बंद करवा दिया जिनसे समाजवाद की वैज्ञानिकता पर संदेह हो सकता था। लेकिन कोई रूस में ही विज्ञान विकसित नहीं हो रहा है, सारी यूरोपीय दुनिया में विज्ञान का

विकास एक अजीब निष्कर्ष देता है। और वह यह कि जगत एक सचेतन प्रक्रिया (कांशस प्रोसेस) है। और ध्यान रहे कि यह कभी भी भाग्यवादी नहीं हो सकती। हिंदुस्तान के लिए समाजवाद के साथ यह भी एक खतरा है जो मैं आपको बता दूं। हिंदुस्तान हजारों सालों से भाग्यवादी है। उतने भाग्यवादी न मनु हुए, न भाग्यवादी याज्ञवल्क्य थे। कोई हिंदू विचार इतना भाग्यवादी नहीं था, जितना भाग्यवादी मार्क्स है। क्यों? क्योंकि स्वतंत्रता की संभावना चेतना के साथ है। अगर चेतना नहीं है तो स्वतंत्रता नहीं है, स्वतंत्रता नहीं है तो फिर यांत्रिक व्यवस्था सब निर्णय करती है। घड़ी तय नहीं कर सकती कि मैं चलूं या न चलूं। घड़ी का यंत्र तय करता है कि चले या न चले। इसलिए हम घड़ी की गारंटी दे सकते हैं कि दस साल चलेगी। क्योंकि घड़ी कोई आत्महत्यसा नहीं करेगी, लेकिन आप मेरी गारंटी नहीं दे सकते कि दस साल चलूंगा। मैं आज ही आत्महत्या कर सकता हूं।
सारा यंत्र पड़ा रहेगा ठीक जो दस साल चल सकता था, लेकिन मैं आज आत्महत्या कर सकता हूं। आदमी अकेला प्राणी है जो आत्महत्या कर सकता है। यह कभी आपने सोचा, कोई जानवर नहीं कर सकता। अब तक किसी जानवर ने आत्महत्या नहीं की। क्यों? जानवर के पास इतनी चेतना नहीं कि स्वयं का निर्णायक हो सके कि मैं जीऊं या मरू। मनुष्य के मन का हमें पता नहीं है। मनुष्य की चेतना बहुत छोटे से घेरे को प्रकाशित करती है। जैसे एक दीया जलता है तो छोटे से घेरे को प्रकाशित करता है। ऐसे ही मनुष्य की चेतना छोटे से घेरे को प्रकाशित करती है। अगर मेरी पत्नी बीमार है, तो मैं रात भर दौड़ सकता हूं; लेकिन मुझे पता लगे कि राष्ट्र-पत्नी बीमार है, तो हम आराम से सो जाएंगे कि रहने दो, इससे क्या फर्क पड़ता है। अगर मेरी मां बीमार है तो मैं जिंदगी भर उसकी सेवा कर सकता हूं, लेकिन मुझे पता चले कि मनुष्यता की मां बीमार है, होगी बीमार! भारत माता के बीमार होने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अपनी मां बीमार होनी चाहिए।
मनुष्य की चेतना का बहुत छोटा सा पहलू वही परिवार है। रूस ने नहीं मानी यह बात, पचास साल के बाद स्वीकार करनी पड़ रही है। दस सालों से रोज व्यक्तिगत संपत्तियों को जबरदस्ती छीना था। लाखों लोगों की हत्याएं करके जो छीना था, वह उन्हें वापस दिया जा रहा है। और रूस के अखबारों के एडिटोरियल पढ़ें तो रोज उसमें यह बात होती है कि राष्ट्र के लिए श्रम करो। मालूम होता है, कोई श्रम नहीं कर रहा है। नहीं तो बार-बार रोज एडिटोरियल लिखने की कोई जरूरत ही नहीं है कि राष्ट्र के लिए श्रम करो।
हम चिल्लाएं तो समझ में आता है, रूस में सब नेता चिल्लाते हैं कि राष्ट्र के लिए श्रम करो। कोई श्रम नहीं कर रहा है। ख्रुश्चेव अपने पूरे वक्तव्यों में, जो उसने रूस में दिए हैं, निरंतर यह कहता रहा है कि लड़के अलाल होते जा रहे हैं, कोई काम करने को राजी नहीं है। असल में पचास साल स्टैलिन ने काम करवाया बंदूक के कुंदे के बल। जिस दिन से स्टैलिन गया, उस दिन से बंदूक का कुंदा ढीला करना पड़ा और बंदूक का कुंदा ढीला हुआ कि काम ढीला हुआ।
व्यक्ति के पास इनिशिएटिव चाहिए। उसके पाच चेतना है, उस चेतना को प्रेरणा चाहिए। अगर गरीब में प्रेरणा पैदा की जाए कि वह भी अमीर हो तब तो यह मनुष्य समृद्ध हो सकता है, लेकिन गरीब की इस ईर्ष्या का दुरुपयोग किया जा रहा है। राजनीतिज्ञ इसका शोषण कर सकता है। वह कह सकता है कि तुम्हें अमीर होने की जरूरत नहीं है। अमीर को गरीब बनाने की जरूरत है, उससे सब ठीक हो जाएगा।
जिसे हम समाजवाद कह रहे हैं वह गरीब को अमीर बनाने की योजना नहीं है।
वह अमीर को गरीब बनाने की योजना है। कोई हर्जा न था अगर गरीबों को लाभ हो सकता, लेकिन गरीबों को कोई लाभ नहीं हो सकता, सिर्फ गरीबी बढ़ेगी; हां थोड़ी सी राहत मिलेगी। अगर दुनिया में इतने लोग हैं और इसमें दस आदमियों के पास दो-दो आंखें हैं और बाकी लोगों के पास एक-एक आंख है, तो हम मांग सकते हैं कि नहीं यह नहीं चलेगा कुछ लोगों के पास आंखें हैं और कुछ के पास एक, एक उपाय तो यही है कि जिनके पास एक ही आंख है उनकी दूसरी आंख का इलाज हो। और उसमें

उन दस लोगों का उपयोग किया जा सकता है जिनके पास दोनों आंखें हैं। लेकिन दूसरा उपाय यह है कि हम उन दस लोगों की भी एक-एक आंख कर दें।
इससे सबके पास दो-दो आंखें न रह जाएंगी, लेकिन बड़ी राहत मिलेगी कि सबके पास एक-एक हो गई। इससे चित्त को बड़ी शांति मिलेगी। आदमी का मन बहुत अजीब है। आदमी अपने दुख से उतना परेशान नहीं होता जितना दूसरे क सुख से हो जाता है। आदमी अपने दुख से उतना दुखी नहीं होता, जितना दूसरे के सुख से व्यथा में पड़ जाता है। दूसरे का सुख बरदाश्त के बाहर हो जाता है। खुद के दुख को तो
आदमी किसी तरह बरदाश्त कर लेता है। इसलिए अगर सब दुखी हैं तो दुख की पीड़ा कम हो जाती है। अगर सब गरीब हों तो गरीबी का बोझ मिट जाता है। अगर सब लंगड़े-लूले हों तो चित्त को बड़ा विश्राम मिलता है।
मैंने सुना है एक आदमी के संबंध में कि उसने बहुत दिन भगवान की पूजा
और प्रार्थना की और वरदान मांगता रहा और भगवान प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि वरदान ले ले, तो उसने कहा कि आप ही जो ठीक समझें दे दें; पर ऐसा कुछ दें जो सदा काम आता रहे। तो भगवान ने उससे कहा कि ठीक तू जो भी मांगेगा वह तुझे मिल जाएगा, लेकिन साथ ही यह भी कि तेरे पड़ोसी को उससे दुगना मिल जाएगा।
उस आदमी ने सर पीट लिया कि भगवान भी किस तरह का है। पड़ोसियों को नीचा दिखाने के लिए तो इतने दिनों से भगवान की प्रार्थना करता रहा था। यह वरदान किस किस्म का है? उसने घर आकर लाख रुपये मांगे, पता चला कि पड़ोसियों के घर में लाख रुपये बरस गए। उसे लाख रुपया बिल्कुल दिखाई पड़ना बंद हो गया, उसे दो लाख की पीड़ा ने घेर लिया। उसने कहा, मैं खुद ही अपने हाथ से उनके घर में दो लाख गिरा रहा हूं। उसने सोचा, कोई तरकीब सोचनी पड़ेगी। आकर उसने भगवान से कहा कि मेरी एक आंख छीन ले। उसकी एक आंख चली गई, पड़ोसियों की दोनों आंखें चली गईं।
वह बड़ा तृप्त हुआ अंधों में काना राजा हो गया और फिर उसने भगवान से कहा, मेरे घर के सामने एक कुंआ खोद दे और उसके पड़ोसियों के घर के सामने दो- दो खुद गए, और वे अंधे उस कुंए में गिरने लगे। अब दिल को जरा राहत मिलती है। यह भी क्या पागलपन तूने किया कि लाख हमारे घर में गिरे और दो लाख उनके घर में गिर जाएं।
आदमी अपने को भी दुख देने को राजी हो जाता है, अगर दूसरे को दूख देने
का मौका मिल जाए। आदमी के इस चित्त का समाजवाद के नाम से शोषण किया जा रहा है।
सारी दुनिया में समाजवाद समता लाने की बातचीत करता है। ईर्ष्या जगाने
का काम करता है। उसका मूल आधार ईर्ष्या और द्वेष पर है। बड़ा वर्ग भूखा है, दीन है, दुखी है। यह सच है, इसकी दीनता मिटनी चाहिए, इसका दुख मिटना चाहिए। इसकी जिंदगी में कुछ आना चाहिए, यह बिल्कुल जरूरी है। लेकिन जो थोड़ा सा वर्ग सुखी दिखाई दे रहा है, उसकी खुशी पोंछ देने से कुछ भी नहीं होगा। हां, एक फर्क होगा, अगर हम सुखी लोगों को पोंछ डालें तो दुखी लोगों को पता चलना बंद हो जाएगा। उनके पास कोई कंपेरेटिव स्केल नहीं रह जाएगा। इसका बहुत उपयोग किया गया है। जैसे, एक मुल्क में हमने एक उपयोग किया था कि हमने शूद्रों की एक सीमा बांध दी थी। उस सीमा के बाहर शूद्र नहीं जा सकता था। उसको पैसे तो मिलते नहीं थे, खाने को मिल जाता था। पुराने कपड़े मिल जाते थे, बासी भोजन मिल जाता था। शूद्र की एक बंधी हुई जिंदगी थी। उसमें विकास का कोई उपाय न था। इसलिए कभी किसी मेहतरानी ने कभी किसी महारानी से कोई ईर्ष्या नहीं की। ईर्ष्या का कोई उपाय ही नहीं था। फासला इतना ज्यादा था कि कहां महारानी और कहां मेहतरानी। अगर मेहतरानी ईर्ष्या भी करेगी तो पड़ोसी मेहतरानी से, क्योंकि उसने एक लकड़ी का कड़ा और पहन लिया। किसी मेहतरानी ने किसी महारानी से किसी महारानी से कभी ईर्ष्या नहीं की, क्योंकि उसके आस-पास का जो पड़ोस था उस पड़ोस तक उसकी नजर जाती थी और उस नजर में इसको ईर्ष्या योग्य कुछ नहीं दीखता था। बड़ी तृप्ति थी।
समाजवाद इसी तृप्ति को और बड़े पैमाने पर फैला देता है। वह सारे मुल्क
को एक सा गरीब कर देता है। ध्यान रहे, मैं कह रहा हूं एक सा गरीब, एक सा अमीर नहीं, क्योंकि एक सा अमीर करना समाजवाद के हाथ में नहीं है। एक सा गरीब

करना समाजवाद के हाथ में है। एक सा अमीर करना राज्य के हाथ में नहीं है, एक सा गरीब करना आज राज्य के हाथ में है। एक सा अमीर करना हो तो सैकड़ों वर्ष का श्रम चाहिए। एक सा गरीब करना हो तो पार्लियामेंट का एक ही कानून काफी है। निश्चित ही एक सा अमीर करना बच्चों का खेल नहीं है। एक सा अमीर तो हम कर नहीं सकते। फिर कम से कम एक सा गरीब तो कर ही सकते हैं--इसको हम क्यों चूकें--जब तक एक सा अमीर होगा, तब तक हम एक सा गरीब कर दें!
समाजवाद का जो आकर्षण है साधारण जन के मन में, वह आकर्षण ईर्ष्याजन्य है। समाजवाद मनुष्य की ईर्ष्या का दुरुपयोग कर रहा है और उससे कुछ समृद्धि नहीं आ जाएगी, उससे कुछ संपत्ति पैदा नहीं हो जाएगी। क्योंकि संपत्ति पैदा करने का जो नियम है, उन नियमों की बुनियादी बात व्यक्तिगत संपत्ति है। मैं व्यक्तिगत संपत्ति का पक्षपाती नहीं हूं, लेकिन मैं मानता हूं कि व्यक्तिगत संपत्ति उस दिन जानी चाहिए जिस दिन संपत्ति बेकार हो जाए और संपत्ति उस दिन बेकार होगी जिस दिन आवश्यकता से अधिक हो जाएगी। उसके पहले संपत्ति बेकार नहीं हो सकती।
पानी जरूरत से ज्यादा है तो बिना मूल्य के मिल जाता है, हवा जरूरत से ज्यादा है, बिना मूल्य मिल जाती है। असल में मूल्य पैदा ही होता है न्यूनता से। जो चीज कम होती है उसका मूल्य हो जाता है। मूल्य न्यूनता है। व्यक्तिगत संपत्ति तब तक मूल्यवान रहती है जब तक संपत्ति कम है। जिस दिन संपत्ति एफ्लुएंट होगी, जिस दिन संपत्ति इतनी ज्यादा होगी कि उस पर व्यक्तिगत कब्जा करना बेमानी और पागलपन हो जाएगा, उस दिन की व्यक्तिगत संपत्ति समाप्त हो सकती है, उसके पहले नहीं। उसके पहले अगर हमने व्यक्तिगत संपत्ति समाप्त की तो वह जो संपत्ति समाप्त की तो वह जो संपत्ति को पैदा करने की प्रेरणा है, वह भी वहीं समाप्त हो जाएगी। संपत्ति को पैदा करने का उपाय पूंजीवाद के पास है, समाजवाद के पास नहीं है। समाजवाद पूंजी को बांट सकता है, पैदा नहीं कर सकता, और अगर समाजवाद संपत्ति को पैदा करेगा, तो उसे जो व्यक्तिगत प्रेरणा है उसकी जगह फोर्स और वायलेंस का उपयोग करना पड़ेगा। हिंसा का उपयोग करना पड़ेगा। तो जहां आज आदमी संपत्ति पैदा करने के लिए खुद दौड़ता है, वहां फिर पीछे बंदूक लगानी पड़े, तब वह दौड़े। लेकिन बंदूक से बहुत दिन दौड़ना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह जबरदस्ती की व्यवस्था है, सहज व्यवस्था नहीं है। मेरी दृष्टि में संपत्ति अगर अतिरिक्त हो जाए तो अपने आप बेमानी हो जाएगी। जिस दिन अतिरिक्त हो जाएगी उस दिन व्यक्ति को संपत्ति राज्य के हाथों में समर्पित करनी पड़ेगी। जिस दिन अतिरिक्त हो जाएगी उस दिन व्यक्तिगत संपत्ति का जो पशु है, वह अपने आप विदा हो जाएगा बिना राज्य को मालिक बनाए। अभी तो राज्य मालिक बन जाएगा। लेकिन ध्यान रहे, थोड़े से व्यक्तिगत पूंजीपतियों के हाथ में संपत्ति का होना उतना खतरनाक नहीं, जितना राज्य के हाथ में। राज्य की ताकत तो है ही, और धन की भी ताकत राज्य के हाथ में आ जाए तो राजनीति अपने आप टोटलिटेरियन हो जाती है। अपने आप अधिनायक, तानाशाह हो जाती है। क्योंकि तब राज्य के खिलाफ कोई ताकत मुल्क में नहीं रह जाती।
राजनीतिज्ञ के हाथ में दोनों ताकतें इकट्ठी हो जाएं, राज्य की भी और
धन की भी, तो तीसरी कोई ताकत ही नहीं है मुल्क के पास। फिर राजनीतिज्ञ भगवान बन जाता है। स्टैलिन करीब-करीब भगवान की तरह जिया, इसलिए उसे अदृश्य जीना पड़ता था, क्योंकि भगवान दृश्य नहीं होता, सामने प्रकट नहीं होता। मैंने सुना है कि स्टैलिन को अपनी शक्ल का एक डबल भी रखना पड़ा था, एक आदमी रखना पड़ा था; क्योंकि जनता में सलामी वगैरह लेने के लिए उस आदमी का उपयोग करना पड़ता था। क्योंकि कोई गोली मार दे, कोई छुरा भोंक दे तो... जो आदमी रूस में समाजवाद लाया, जो आदमी रूस में संपन्नता लाया, जैसा समाजवादी कहते हैं कि जिस आदमी ने रूस में स्वर्ग उतारा, वह आदमी सड़क पर चलने में उरता है। स्वर्ग जरा संदिग्ध मालूम पड़ता है। मालूम होता है इस आदमी ने नरक उतारा है, अन्यथा डरने का इतना कोई कारण नहीं है।
स्टैलिन का भय बताता है कि रूस की जनता के ऊपर क्या गुजरी। स्टैलिन छिप कर जीया है। सलामी तक लेने का मजा खो दिया--बड़ा मजा है! कभी-कभी ऐसा हो जाता है। एक आदमी सलामी लेने के लिए राज्य की ताकत हाथ में लेता है और

सलामी के लिए दूसरा आदमी भेजना पड़ता है कि कोई गोली न मार दे। तो ऐसे अपने घर ही भले थे। वहां कौन सी तकलीफ थी? एक आदमी राष्ट्र के ऊपर सवार होता है और लोग उसे देखें कि वह कुछ है, लेकिन फिर उसे छिप कर बैठना पड़ता है कि कहीं कोई गोली न मार दे!
रूस में अगर स्वर्ग उतर आया है तो स्टैलिन को भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं थी। रूस में अगर स्वर्ग उतर आया है तो रूस में विचार की स्वतंत्रता को नष्ट करने की कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन विचार का कोई मौका नहीं। कुछ कारण थे। स्वर्ग नहीं उतर आया, सिर्फ दीनता बढ़ गई ओर दीनता ही नहीं बढ़ गई, बल्कि आदमी से काम लेने के लिए जबरदस्ती वायलेंस का उपयोग करना पड़ रहा है। रूस एक मिलिटरी कैंप बन कर खड़ा हो गया और अब चीन मिलिटरी कैंप बन रहा है! कोई नहीं जानता कि हम भी वही नासमझी कर रहे हैं।
एक बार राज्य के हाथ में धन की शक्ति गई तो फिर राज्य को चुनौती देने
की कोई शक्ति मुल्क में नहीं रह जाती और एक बार व्यक्ति की व्यक्तिगत संपत्ति नष्ट हो गई कि व्यक्ति की ताकत नब्बे प्रतिशत समाप्त हो जाती है। आपके पास भी थोड़ी सी ताकत सोचने की मालूम पड़ती है तो उस ताकत में आप अपनी रोटी खुद कमाते हैं। उस ताकत में आपके पास अपना मकान, उस ताकत में आपकी व्यक्तिगत दुनिया है, अगर कल आपकी सारी व्यक्तिगत दुनिया छीन ली गई और रोटी भी राज्य से मिलने लगी, कपड़ा भी राज्य से मिलने लगा, मकान भी राज्य से मिलने लगा तो आप अचानक पाएंगे कि आपकी आत्मा खो गई, आप बिक गए हैं और जिसका नमक उसकी नमकहरामी शुरू हो जाती है, अचानक--सहज ही। फिर राज्य के हाथ में इतनी ताकत होती है कि जरा सा इनकार और मृत्यु के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगता। मैंने सुनी है एक घटना कि ख्रुश्चेव एक कम्युनिस्ट पार्टी की विशेष मीटिंग में बोल रहा था और बोलते वक्त उसने स्टैलिन के संबंध में बताया कि उसने कितनी हत्याएं कीं और कितने लोगों को मारा और कितने लोगों को जेलों में डाला। रूस में जनता को आंकड़े नहीं बताए गए कुछ वर्षों तक। क्योंकि इतने लाखों लोग मार डाले गए थे कि उनका दुनिया को पता चल जाएगा कि इतने नाम अचानक विदा कैसे हो गए। सेंसस लिस्ट में नाम नहीं हैं। ये कहां गए, थोड़े- बहुत लोग नहीं, अंदाज है एक करोड़ लोग रूस में स्टैलिन के वक्त मारे गए। तो फिर क्यों कहना था कि स्टैलिन ने इतने आदमी मारे, इतनी हत्या की। तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि आप भी स्टैलिन के साथियों में से हैं। आप भी प्रतिबिंब के हिस्से थे, आप भी उन दस-बारह लोगों में से थे जो स्टैलिन की ताकत में थे, आपने उस वक्त क्यों नहीं कहा?
ख्रुश्चेव एक क्षण के लिए रुका और फिर उसने कहा, महाशय, आप फिर से खड़े होकर अपना नाम और अपना पता दीजिए। फिर वह आदमी खड़ा नहीं हुआ। ख्रुश्चेव ने कहा, इसी वजह से उस वक्त मैं भी नहीं खड़ा हुआ था। यही कारण है, नहीं तो आज कहने को नहीं बचता, उसी वक्त खत्म हो गया होता। पति भी अपनी पत्नी से रात मन की बातें खोल कर नहीं कह सकता, क्योंकि पता नहीं पत्नी किसी को बता दें। बाप अपनी बेटी से खुल कर नहीं बात कर सकता, क्योंकि पता नहीं बेटी लड़कों की कम्युनिस्ट पार्टी में जाकर किसी को खबर कर दे।
सारा मुल्क जासूस हो गया था। आज भी चीन में वही हालत है। एक दफा राज्य
के हाथ में पूरी ताकत चली जाए तो व्यक्ति की हैसियत टूट जाती है, समाप्त हो जाती है। और जहां विचार की स्वतंत्रता नहीं वहां बड़े पेट को लेकर क्या किया जा सकता है। उसका क्या उपयोग? उसका क्या अर्थ? आदमी को वेजिटेट नहीं करना है। आदमी को सिर्फ खाकर सो नहीं जाना है। आदमी को जिंदगी में खाना और सोना जरूरी है जरूर, लेकिन किन्हीं और बातों के लिए जरूरी है। उसके भीतर की आत्मा विकसित हो सके, असकी चेतना का फूल भी खिल सके; लेकिन नहीं, यह कुछ भी नहीं हो सकता। सिर्फ जड़ों को पानी मिल सकता है। फूल भर खिलाने की कोशिश मत करना। क्योंकि जब फूल खिलाने हैं तो व्यक्ति को मान्यता देना जरूरी है। समाजवाद, समूहवाद (कलेक्टिविज्म) यह समूह को मान्यता देता है। उसका कहना है कि समूह के लिए व्यक्ति की कुर्बानी दी जा सकती है। समूह जब ठीक समझे तो व्यक्ति की हत्या कर सकता है। समूह के हित में न हो तो व्यक्ति को मारा जा सकता है, लेकिन बड़े मजे की बात है--समूह कौन? राज्य! और राज्य कौन? स्टैलिन, माओ!

एक आदमी तय करेगा कि समूह की इच्छा क्या है। एक आदमी तय करेगा कि समूह
के हित में क्या है, एक आदमी तय करेगा कि समूह का मंगल क्या है? और हत्या व्यक्ति की की जा सकती है, और किसी भी व्यक्ति की की जा सकती है, उन्हीं व्यक्तियों की जिनके समूह के लिए सब आयोजित किया जा रहा है और एक-एक व्यक्ति में हम सब आ जाते हैं।
बड़े मजे की बात है--लेकिन तर्क बड़ी फैन्सिज पैदा करता है। सोशलिज्म के पास, समाजवाद का एक फेलसियस तर्क है--एक बहुत भ्रांत तर्क। उसका कहना है, समाज सत्य है व्यक्ति नहीं। जबकि सच्चाई बिल्कुल उलटी है। व्यक्ति सत्य है और समाज तो केवल व्यक्तियों के जोड़ का नाम है। समाज की कोई स्थिति नहीं है। समाज कहीं भी नहीं है। मैं बहुत बार खोजता फिरता हूं कि मुझे कहीं समाजवाद मिले, समाज मिल जाए। जहां भी जाता हूं, व्यक्ति ही मिलता है। आपके घर आता हूं समाज खोजने, आप मिल जाते हैं। दूसरे के घर जाता हूं, दूसरा मिल जाता है। समाज कहीं मिलता नहीं। समाज सिर्फ एक संज्ञा है, एक शब्द। व्यक्ति एक सत्य है और यह जो सत्य-व्यक्ति है, वह शब्द-समाज के लिए कुर्बान किया जा सकता है।
लेकिन मार्क्स की धारणा यह थी कि ऐतिहासिक प्रतिक्रिया समाज की चल रही है। जो भी बाधा डाले उसको समाप्त कर दो। समाज की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया को आगे बढ़ना है, लेकिन कोई ऐतिहासिक प्रक्रिया नहीं चल रही है। मनुष्य अपना नियमतः चुनाव कर रहा है और अगर रूस ने यह तय किया हो कि वह कम्युनिस्ट है, सोशलिस्ट है या चीन ने तय किया है और यह भी पूरे विचार में तय नहीं किया--अगर चीन का पूरा समाज यह तय करे कि समाजवादी होना है तो हिंसा की कोई जरूरत न रह जाए। यह भी एक माइनारिटी तय करती है और पूरे मुल्क पर थोपती है, इसलिए हिंसा की जरूरत पड़ती है।
भाग्यवाद समाजवाद की बुनियादी गलतियों में से एक है। मैंने कहा कि यह मुल्क चुनाव कर सकता है, क्योंकि हम भाग्यवादी हैं पुराने। हम बहुत पुराने भाग्यवादी हैं और हम मानते ही हैं कि जो कर रहा है, भगवान कर रहा है। भगवान की जगह हिस्टरी को रख लेने में बहुत दिक्कत नहीं होगी। भगवान की जगह इतिहास के देवता को बिठा लेने में कौन सी कठिनाई है? मार्क्स कहता है, जो कर रहा है वह इतिहास कर रहा है। हम कहते है, जो कर रहा है वह भगवान कर रहा है।
हम इस मुल्क को ऐसे ही मानते रहे कि आदमी कुछ नहीं कर रहा है। मार्क्स सिर्फ इतना ही कहता है कि भगवान का थोड़ा नाम बदल कर हिस्ट्री कर दो, इतिहास कर दो, बस काम चल जाएगा। मंदिर के देवता के नीचे लिख दो इतिहास का देवता, फिर काम चल जाएगा। हम बहुत जल्दी से यह बदलाहट कर सकते हैं। हम भाग्यवादी कौम हैं। इसलिए मैं मानता हूं कि समाजवाद हमारे लिए बहुत बड़ा खतरा है। वह भी भाग्यवादी विचार है और हमसे भी ज्यादा भाग्यवादी विचार है, क्योंकि हमारे भीतर तो शायद थोड़ी-बहुत सुविधा है कि ज्योतिष को बचा कर निकल गए और भाग्य को बचाने का कोई उपाय कर लें। लेकिन समाजवाद के पास भाग्य से बच कर निकलने का कोई उपाय नहीं। भाग्य चरम और अल्टीमेट है।
समाजवाद आना ही है, यह बड़ी खतरनाक बात है। हम चुनें और आए तब समझ में आता है। आना ही है तो खतरनाक बात है। लेकिन इसके प्रचार का परिणाम होता है। अगर लोगों के दिमाग में यह बात दोहराए चले जाओ कि समाजवाद आना ही है, आना ही है, आना ही है, तो धीरे-धीरे लोग यह सोचने लगते हैं कि आना ही होगा। जब कि चारों तरफ से यह बात चल रही है कि समाजवाद आना ही है। फिर प्रचार ने सौ वर्षों में सारी दुनिया के दिमाग में यह खयाल बिठा दिया है कि समाजवाद आना ही है। कोई लाने की बात नहीं है। लेकिन हम जो मान लेते हैं, वही हो जाता है।
उदाहरण के लिए मैं आपसे कहूं, आज से कोई एक सौ पचास वर्ष पहले यूरोप में एक पादरी ने घोषणा की कि अगले वर्ष प्रलय हो जाने वाला है और जो जीसस ने कहा था कि अब अंतिम दिन करीब आ रहा है और कयामत करीब आ रही है, इसलिए तैयार हो जाओ। पहले लोग हंसे, लेकिन वह चिल्लाए चला गया, समझाए चला गया। और आप हैरान होंगे कि ठीक उस रात जिसके दूसरे दिन प्रलय हो जाने वाली थी, अनेक लोगों ने मकान में आग लगा दी, और अनेक लोग घर छोड़ कर भाग गए और अनेक लोगों

ने संपत्ति का त्याग कर दिया। उन्होंने कहा, जब कल बचना ही नहीं है तो क्यों न हम रिनन्सिएशन कर दें, क्यों न हम छोड़ दें और अनेक लोग जाकर खड़े हो गए सुबह नदियों और समुद्र-तटों के किनारे कि अब महाप्रलय आ रही है। सूरज निकल आया और महाप्रलय नहीं आई। दोपहर हो गई, महाप्रलय नहीं आई। फिर वे बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि कोई घर जला आया था, कोई संपत्ति लुटा आया था, कोई बांट आया था। वह तो जिन्होंने भरोसा नहीं किया था, वे लोग बड़े फायदे में रहे। जब वे लौट कर आए तो देखा कि दुनिया वहीं की वहीं है। फकीर को ढूंढा, पादरी नदारथ था, वह मिला नहीं। उसका कहीं पता नहीं चला, वह कहां गया। उसने जब सूरज को उगते देखा होगा तो मुश्किल हो गई होगी।
रूस में एक आदमी ने यह प्रचार किया कि जीसस का एक वचन है, यही कोई पचास-साठ-सत्तर साल पहले कि जीसस का वचन है, प्रभु के नाम पर यूनॅक हो जाओ, प्रभु के नाम पर नपुंसक हो जाओ। ब्रह्मचर्य का मतलब--न स्त्री रह जाओ, न पुरुष रह जाओ। अपनी जननेंद्रियों को काट डालो। जो आदमी जननेंद्रिय के साथ पहुंचेगा उसको स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं मिलेगा। आप कल्पना नहीं कर सकते कि रूस में पचास हजार लोगों ने जननेंद्रियां काट डालीं। पता नहीं पहुंचे भगवान के घर कि नहीं। रूस के जार को नियम बनाना पड़ा कि कोई आदमी इस तरह का काम करे तो उसे फौरन सजा दी जाए, क्योंकि यह आग फैलने लगी जोर से कि भगवान के राज्य में वही पहुंच सकेगा, जो न स्त्री है, न पुरुष। अजब हैरानी की बात है, आदमी जिस बात के प्रचार से राजी हो जाए, बात सक्रिय हो जाती है तत्काल और उसकी सक्रियता एकदम शीघ्रता से फैलनी शुरू हो जाती है।
सौ वर्षों से सारी दुनिया को कहा जा रहा है कि समाजवाद अनिवार्य है।
वह अनिवार्य हुआ जा रहा है। हिटलर ने अभी हमारे सामने एक मानसिक प्रयोग किया। उन्नीस सौ चौदह के युद्ध में जर्मनी हारा। उस युद्ध में हिटलर एक सिपाही था, साधारण सिपाही। हारने के बाद वह मिलिट्री से निकाल दिया गया। क्योंकि उसके पैर में चोट थी और वह मेडिकली अनफिट हो गया। पांच-सात सिपाहियों ने, जो मेडिकली अनफिट होकर बाहर निकाल दिए गए थे, अपनी पार्टी खड़ी की। कोई सोच भी नहीं सकता था कि ए सात आदमी सारी दुनिया के इतिहास को हिला डालेंगे और एक आदमी इनफिरिआरिटी का इतना उपद्रवी सिद्ध होगा।
उसने एक प्रचार करना शुरू कर दिया। प्रचार बहुत कारगर हुआ, क्योंकि लोगों की ईर्ष्या को अपील कर गया। उसने लोगों से कहा कि हमारे हारने का कारण यहूदियों की अपवित्रता है। यहूदियों का कोई लेना-देना नहीं था। यहूदियों को भी पता नहीं था कि उनकी वजह से जर्मनी हार गया। जब उन्होंने सुना तो वे लोग हंसे। उन्होंने कहा कि क्या पागलपन की बात कर रहे हो। फिर वह पागलपन की बात करता चला गया। उसने जर्मनी के घर-घर यह खबर पहुंचा दी कि यहूदियों की वजह से हम हार गए। पहले तो जर्मनों ने भी सोचा, यह क्या पागलपन की बात है, यहूदियों की वजह से क्यों हारेंगे। यहूदियों बेचारों ने तो कुछ भी नहीं किया। लेकिन यह प्रचार जारी ही रहा। यह प्रचार धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगा। यहूदियों के पास धन था। जर्मनी की सबसे बड़ी शक्तिशाली धन की सत्ता यहूदियों के पास थी, वे परेशान हो गए, गरीब मुल्क राजी हो गया कि यहूदियों ने गड़बड़ की, इनको लूटने की सुविधा है। वे लूटने के लिए राजी हो गए और हिटलर के साथ खड़े हो गए। आखिर यहूदियों की हत्या कर दी गई। कोई एक करोड़ यहूदी काट डाले गए। पूरा जर्मनी जैसा बुद्धिमान मुल्क राजी हो गया। पाकिस्तान बंटने के लिए जिन्ना ने यहां राजी कर लिया। एक दफा पक्का कर लिया कि बंट कर रहेगा और फिर बंट कर रहा।
इस वक्त जो समाजवाद की हवा चलती है कि आकर ही रहेगा, बड़ी खतरनाक बात है। समाजवाद अनिवार्यता नहीं है। हम चुनेंगे तो आ सकता है, वह भी हमारा चुनाव है। और चुनाव हमको सोच कर करने जैसा है। और बहुत से बिंदु हैं जिन पर कल-परसों की चर्चा में आप से बात करूंगा। आपके जो भी सवाल हों, वह मुझे लिख कर दे देंगे, ताकि उन सब पर बात हो सके।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में मैं सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का
बारहवां प्रवचन

समाजवादः दासता की एक व्यवस्था

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल के विचारों के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि समाजवाद का अर्थ क्या है?
समाजवाद का अर्थ है, राज्य-पूंजीवाद--स्टेट-कैपिटलिज्म। समाजवाद का अर्थ है, संपत्ति व्यक्तियों के पास न हो, संपत्ति की मालकियत राज्य के पास हो। लेकिन समाजवाद यह नहीं कहता है कि वह "राज्य-पूंजीवाद" है। वह कहता हे, वह पूंजीवाद का विरोधी है। यह बात झूठ है। समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी नहीं है। समाजवाद, जो पूंजी की सत्ता बहुत लोगों में वितरित है उसे राज्य में केंद्रित कर देना चाहता है। और व्यक्तियों के हाथ में जब पूंजीवाद इतना नुकसान पहुंचाता है तो राज्य के हाथ में कितना पहुंचाएगा, इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है।
जब साधारण जनों के हाथ में बंटा हुआ डीसेंट्रलाइज्ड कैपिटलिज्म, विकेंद्रित पूंजीवाद इतनी तकलीफें देता है तो राज्य के हाथ में सेंट्रलाइज्ड होते ही कितनी तकलीफ देगा, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह किसी बीमारी को दूर करने की जगह बीमारी को कंसंट्रेट करना है। किसी बिमारी को खत्म करने के बजाय उस बीमारी को एक ही जगह, एक ही केंद्र पर इकट्ठा करना है।
इसलिए समाजवाद का दूसरा अर्थ है, गुलामी की, दासता की एक व्यवस्था। समाजवाद का अर्थ है, राज्य मालिक हो जाए और समाज के सारे लोग गुलाम और दास की हैसियत से जीएं। असल में पूंजीवाद ने पहली बार व्यक्ति को हैसियत और स्थिति दी। समाजवाद का मतलब है, सामंतवाद वापस लौट आए। इतना ही फर्क होगा कि जहां राजा थे वहां राजनीतिज्ञ होंगे। राजाओं के हाथ में इतनी ताकत कभी न थी जितनी समाजवाद राजनीतिज्ञ को दे देगा।
समाजवाद भविष्य के लिए भयंकर गुलामी का सूत्रपात है। और अगर स्वतंत्रता के प्रेमियों को थोड़ी सी स्वतंत्रता की आकांक्षा हो तो समाजवाद से बहुत ही सचेत होने की जरूरत है। समाजवाद का अर्थ है कि राज्य के हाथ में देशकी समस्त शक्तियां केंद्रित हो जाएं। राज्य के हाथ में जितनी भी शक्तियां हैं उनका भी राज्य बुरी तरह दुरुपयोग करता है। राजनीतिज्ञ के हाथ में जितनी शक्ति है उससे भी राजनीतिज्ञ सारे जीवन पर छाया रहता है। लेकिन उसका मन बेचैन है, उसकी महत्वाकांक्षा नहीं मानती। अभी भी एक शक्ति उसके हाथ के बाहर है--धन की, उत्पादन की। वह उसे भी अपने हाथ में लेना चाहता है। यह बड़े मजे की बात है कि राज्य है समाज का नौकर, सरवेंट; लेकिन सरवेंट मालिक होना चाहता है, ओनरशिप चाहता है। राज्य चाहता है कि नमाज की मालकियत भी उसके हाथ में हो। हम रास्ते पर एक ट्रैफिक के पुलिस इंस्पेक्टर को खड़ा किए हुए हैं कि रास्ते पर व्यवस्था करे। कोई गाड़ी गलत रास्ते से न गुजरे, और कोई आदमी रास्ते के बीच से न चले, कोई बाएं चलने का नियम न तोड़े। वह पुलिसवाला धीरे-धीरे मालिक हो जाता है, क्योंकि बड़ी से बड़ी गाड़ी भी निकले तो भी उसके इशारे पर रुकती है और सीटी बजाय तो बड़े से बड़ा आदमी सड़क पार नहीं कर सकता। धीरे-धीरे वह पुलिसवाला कह सकता है कि इतनी परेशानी क्यों करते हो? मालकियत भी गाड़ियों की मुझे दे दें और रास्ते पर चलने वाले लोगों की मालकियत भी मुझे दे दें, व्यवस्था बिल्कुल ठीक हो जाएगी।
उस पुलिसवाले को मालकियत के लिए नहीं खड़ा किया है वहां, व्यवस्था के लिए खड़ा किया है। और व्यवस्था का मतलब ही यह है कि मालिक कोई और होंगे। मालकियत भी राज्य के हाथ में जाती है तो व्यवस्थापक और मालिक एक हो जाते हैं। असल में यही हुआ अब तक।
रूस और चीन में जो क्रांति हुई है वह समाजवादी नाम को है, नाम समाजवाद है, क्रांति तो मैनेजेरियल है। असल में व्यवस्थापक मालिक हो गए हैं। जो कल मैंनेजर्स थे, जो मुनीम थे मुल्क के लिए, वे मुल्क के मालिक हो गए।

राज्य को इतनी शक्ति हाथ में देने से बड़ा खतरा और कुछ भी नहीं हो सकता है। पहले इतना खतरा नहीं था। अब खतरा बहुत ज्यादा है, वह मैं आप से कहूं। पहली बात तो यह है कि इधर पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में वैज्ञानिकों ने इतने साधन खोज निकाले हैं कि जो राज्य के हाथ में आदमी की चरम परतंत्रता का कारण बन सकते हैं। वैज्ञानिकों ने वे रासायनिक विधियां खोज निकाली हैं जिनके द्वारा आदमी के भीतर के चिंतन को नष्ट किया जा सकता है। विचार को नष्ट किया जा सकता है। बगावत के भाव को नष्ट किया जा सकता है। रासायनिकों ने वह व्यवस्था भी खोज निकाली है कि बच्चा पैदा हो तभी से उसके भीतर से कुछ नष्ट किया जा सके जो कभी बगावती हो सकता है। माइंडवाश के हजारों उपाय खोज निकाले हैं।
वैज्ञानिकों ने ताकत राज्य के हाथ में दे दी है इतनी बड़ी कि अब अगर कोई राज्य धन का भी मालिक हो जाए, तो उस राज्य से फिर कोई छुटकारा समाज का नहीं है। लोकतंत्र की हत्या और स्वतंत्रता की हत्या अनिवार्य है, अगर राज्य समाज की संपत्ति के उत्पादन का मालिक बन जाए। और एक और बड़े मजे की बात है कि राज्य जितना भी काम करता है, सब में असफल और अकुशल है। उसकी अकुशलता का कोई हिसाब नहीं है। राज्य जो भी काम करता है, मुल्क को हानि पहुंचाता है। उस काम से कोई लाभ नहीं पहुंचता। लेकिन जो थोड़ा-बहुत लाभ व्यक्ति अपनी निजी संपत्ति, श्रम और बुद्धि से मुल्क को पहुंचा सकते हैं, वह उनकी भी मालकियत ले लेना चाहता है। हां, एक फायदा होगा इससे कि राज्य की अकुशलता दिखनी बंद हो जाएगी। और राज्य के हर वर्ष बढ़नेवाले हानि के दावे फिर बुरे मालूम न पड़ेंगे। क्योंकि लाभ का दावा करनेवाला ही कोई नहीं रह जाएगा, हानि के ही दावे रह जाएंगे।
राज्य के हाथ में इतनी अकुशलता है कि उचित तो यह है कि राज्य के हाथ में जो काम है वह भी निजी व्यक्तियों के हाथ में चले जाएं और उचित तो यह है कि राज्य की जितनी ताकत है वह कम हो, क्योंकि राजनीतिज्ञ मनुष्य की छाती पर पत्थर की तरह बैठ गया है। राजाओं को हमने हटाया, उससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ा। राजनीतिज्ञ उसकी जगह छाती पर बैठ गया और इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि "अ" पार्टी का राजनीतिज्ञ बदले और "ब" का बैठ जाए। राजनीतिज्ञ सदा छाती पर रहेगा। "अ" और "ब" से कोई फर्क नहीं पड़नेवाला कि कांग्रेस बैठे, नई कि पुरानी, कि समाजवादी बैठे, कि जनसंधी बैठे। एक बात तय है कि मुल्क की छाती पर राजनीतिज्ञ बैठा होगा।
राजनीति इतनी भी महत्त्वपूर्ण नहीं है कि मुल्क के जीवन को दबा दे। मनुष्य के जीवन में और भी महत्त्वपूर्ण बहुत-कुछ है। लेकिन आज सिर्फ राजनीति महत्त्वपूर्ण है। अगर हमारे अखबारों को कोई पढ़े तो पता चलेगा कि मुल्क में सिवाय राजनीति के और कुछ नहीं हो रहा है। सिर्फ राजनीति हो रही है।
जिंदगी सिर्फ राजनीति है? राज्य सिर्फ व्यवस्था है, फंक्शनल है कि वह मुल्क में अव्यवस्था न होने दे। और राज्य इसलिए नहीं है कि स्वतंत्रता छीन ले। राज्य इसलिए है कि कोई व्यक्ति किसी की स्वतंत्रता न छीन पाए। राज्य इसलिए है कि एक व्यक्ति दूसरे की स्वतंत्रता के जीवन में बाधा न डाल पाए। लेकिन धीरे-धीरे राज्य को पता चला कि हम ही सारी स्वतंत्रता क्यों न छीन लें। राजनीतिज्ञ सदा से पूरी शक्ति पाने का आकांक्षी रहा है। लेकिन आज तक मनुष्य-जाति के इतिहास में राजनीतिज्ञ कभी भी टोटेलिटेरियन, पूरी ताकत नहीं पा सका। अब समाजवाद के नाम से पा सकता है।
असल में अगर सारी मनुष्यता को गुलाम बनाना हो तो पहले मनुष्यों को समझाना जरूरी है कि तुम्हारे कल्याण के लिए यह गुलामी लाई जा रही है। तुम्हारे हित के लिए, तुम्हारे मंगल के लिए यह गुलामी लाई जा रही है। राजनीतिज्ञ को जरूरी है कि वह आप को परसुएड करे, समझाए और फुसलाए कि तुम्हारे हित में ही यह छुरी तुम्हारी छाती पर रख रहा हूं। लेकिन एक दफा छाती पर छुरी रख दी जाए तो हटाने की कोई ताकत फिर आदमी के समाज के पास नहीं है।
इसलिए मैं समाजवाद की सख्त खिलाफत करता हूं। इसलिए नहीं कि समाजवाद जिन बातों के लिए आश्रय और सहारा देता है, ओर जिन बातों को आदर्श की तरह

आपके सामने रखता है उनका मैं विरोधी हूं। सच्चाई तो यह है कि समाजवाद जितने आदर्श कहता है उनमें से कोई भी आदर्श समाजवाद कभी भी नहीं ला सकता और उनमें से कोई भी आदर्श लाना हो तो समाजवाद से सचेत रहना जरूरी है। जैसे, उदाहरण के लिए--मार्क्स का खयाल है कि अगर समाजवाद सफल हो जाए तो दुनिया में वर्ग न रह जाएंगे--क्लासलेस सोसायटी, वर्गविहीन समाज पैदा हो जाएगा। यह असत्य है।
असल में समाजवाद दो नये तरह के वर्ग पैदा कर देगा। राज्य करनेवालों
का वर्ग और राज्य जिन पर किया जाता है उनका वर्ग। और कोई फर्क नहीं पड़ेगा-- मैनेजर्स और मैनेज्ड। और ध्यान रहे, पूंजीपति में और मजदूर में उतना फर्क नहीं है जितना राज्य करनेवाले और जिसके ऊपर राज्य किया जाता है उसमें फर्क और वसला हो जाता है। आज रूस में कम्युनिस्ट पार्टी की मेंबरशिप पाना कठिनतम बात है। क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी राज्य करने वालों की जमात है। आज रूस में पचास साल से पचास आदमियों का छोटा सा गु्रप सारी ताकत हाथ में लिए बैठा है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि स्टैलिन की जगह ख्रुश्चेव आता है कि ख्रुश्चेव की जगह कोई और आता है। लेकिन वह पचास आदमियों का एक ग्रुप, गैंग, पूरे रूस पर पचास साल से ताकत लिए बैठा है। उन पचास में से एक को हिलाना मुश्किल है। और एक ब्युरोक्रेसी, एक तंत्र पैदा हो गया है। वह तंत्र अलग है, जनता अलग है। और दोनों के बीच जो फासला है, उसका हिसाब लगाना कठिन है।
समाजवाद का दावा है कि एक दिन ऐसा आएगा कि "दि स्टेट विल विदर अवे"-- राज्य जो है, वह बिखर कर गिर जाएगा--समाप्त हो जाएगा। यह भी झूठ है, यह नहीं हो सकता। क्योंकि समाजवाद कहता है कि पहले राज्य के हाथ में पूरी ताकत दे दो, ताकि बाद में राज्य एक दिन बेकाम होकर खत्म हो जाए। लेकिन जिस राज्य के हाथ में ताकत दे दी जाएगी वह मजबूत होगा, बिखरेगा नहीं, और जिन लोगों के हाथों में ताकत आएगी वे राज्य के बिखरने के लिए कभी भी पक्ष में नहीं हो सकते।
शक्ति हाथ में आ जाए तो उसे छोड़ने के लिए कोई भी राजी नहीं होता। इसलिए लोकतंत्र एक मात्र व्यवस्था है जिसके आधार पर किसी दिन राज्य बिखर सकता है। लेकिन तानाशाही, डिक्टेटरशिप से राज्य कभी भी नहीं बिखर सकता। लोकतंत्र से क्यों बिखर सकता है? क्योंकि ताकत हम सिर्फ लीज पर देते हैं। एक आदमी को पांच साल के लिए ताकत देते हैं और लोकतंत्र थोड़ा और विकसित हो, जैसा स्विट्जरलैंड में है तो यह भी ताकत हाथ में रखते हैं कि अगर बीच मं हमारा दिल बदल जाए तो इस आदमी को दिल्ली से वापस बुला सकें। इसको पांच साल भी देने की जरूरत नहीं। अगर छह महीने बाद इसको मतदान करने वाले लोग अनुभव करते हैं कि यह आदमी बिगड़ रहा है, गलत रास्ते पर जा रहा है तो मतदान करनेवाले को इसे बुलाने का हक होना चाहिए कि छह महीने बाद उससे कह दे कि अब वापस आ जाओ।
लोकतंत्र लीज पर दी गई ताकत है, और तानाशाही परमानेंट लीज है। परमानेंट लीज से सावधान होने की जरूरत है। जिनके हाथ में इकट्ठी ताकत आ जाए उनसे सावधान होने की जरूरत है। स्टैलिना को निन्यानबे प्रतिशत वोट मिलते थे, लेकिन कोई भी नहीं पूछता कि विरोध में कौन खड़ा था उनके। विरोध में कोई भी नहीं खड़ा था! यह क्या खेल चल रहा है? विरोध में कोई खड़ा ही नहीं है और स्टैलिन के अखबार दुनिया भर में खबर कर रहे हैं कि निन्यानबे प्रतिशत वोट मिले! एक ही पेटी रखी गई है और वोट कंपलसरी है। जिसने नहीं डाला है उसकी जिंदगी खतरे में है। राज्य "विदर अवे" होगा?
समाजवाद कहता है कि हमें एक ऐसी दुनिया लानी है जिसमें राज्य न रह जाए। समाजवाद से नहीं आ सकती, क्योंकि समाजवाद कहता है कि पहले राज्य के हाथ में ताकत दो। फिर राज्य क्या स्युसाइड कर लेगा? फिर राज्य क्या आखिर में आत्महत्या कर लेगा? यह मनुष्य-जाति के पूरे अनुभव से पता नहीं चलता कि जिसके हाथ में ताकत हो वह ताकत हो और बढ़ाता चला जाए। नहीं, राज्य आत्मघात नहीं करेगा। हां, राज्य के पास पूरी ताकत हुई तो समाज की हत्या हो जाएगी। समाजवाद कहता है कि हम समानता लाना चाहते हैं। लेकिन बड़ा मजा यह है,
और इसीलिए समाजवाद कहता है, कि समानता लाने के लिए पहले स्वतंत्रता छीननी

पड़ेगी। समानता लाने के लिए पहले स्वतंत्रता छीननी पड़ेगी, तो हम स्वतंत्रता छीन कर सब लोगों को समान कर देंगे। लेकिन ध्यान रहे, अगर स्वतंत्रता है तो समानता के लिए संघर्ष कर सकते हैं, लेकिन अगर स्वतंत्रता नहीं है तो समानता के लिए संघर्ष करने का भी कोई उपाय आदमी के पास नहीं रह जाता है।
आज एक मित्र मुझसे कह रहे थे कि मैं आपसे बैठकर विवाद कर रहा हूं। और
हम यह तय कर रहे हैं कि सोशलिज्म ठीक है कि कैपिटलिज्म ठीक है। तो मैंने उनसे कहा कि यह विवाद तभी चल सकता है जब तक कैपिटलिज्म है। जिस दिन सोशलिज्म होगा उस दिन हम विवाद न कर सकेंगे। उस दिन फिर विवाद का कोई मौका नहीं है। यह जो हम बात कर पा रहे हैं आज कि समाजवाद उचित है या नहीं, पूंजीवाद उचित है या नहीं--यह बात समाजवादी दुनिया में संभव नहीं है।
रूस में सारे अखबार सरकारी हैं। एक भी गैर-सरकारी अखबार नहीं है। सारा पब्लिकेशन, सारा प्रकाशन सरकारी है। एक किताब गैर-सरकारी नहीं छप सकती है। आप क्या करेंगे? स्वतंत्रता एक बार छिन गई तो समानता की बात भी उठाने का मौका नहीं मिलेगा। इसलिए मैं मानता हूं, अगर समानता कभी दुनिया में लानी है तो स्वतंत्रता छीन कर नहीं, स्वतंत्रता को बढ़ा कर ही लाई जा सकती है।
समानता जो है वह अगर आज नहीं है तो उसका कारण पूंजीवाद नहीं है। समानता न होने का बुनियादी कारण बिल्कुल दूसरा है जिस पर समाजवादी पट्टी डालना चाहते हैं। समाज समान नहीं है, क्योंकि समाज के पास समान होने लायक संपत्ति नहीं है। समाज इसलिए असमान नहीं है कि पूंजीपति है और गरीब है। पूंजीपति और गरीब भी इसलिए है कि संपत्ति कम है। और संपत्ति इतनी ज्यादा नहीं है कि सब अमीर हो सकें। इसलिए असली सवाल राजनैतिक परिवर्तन का नहीं, असली सवाल मुल्क में संपत्ति को अधिक पैदा करने के उपाय खोजने का है। लेकिन यह डेविएशन--भटकाव, जो समाजवादी कहता है... नहीं, असली सवाल यह नहीं है कि जिनके पास संपत्ति है उनसे हम उनके पास पहुंचाना चाहते हैं जिनके पास नहीं है।
असली सवाल यह नहीं है। असली सवाल यह है कि संपत्ति नहीं है। वह कैसे पैदा की जाए? संपत्ति पैदा करने की जो व्यवस्था पूंजीवाद के पास है वह समाजवाद के पास नहीं है। क्योंकि पूंजीवाद के पास व्यक्तिगत प्रेरणा की आधारभूत शिला है। एक-एक व्यक्ति उत्प्रेरित होता है संपत्ति कमाने को, प्रतिस्पर्धा को, प्रतियोगिता को। समाजवाद में न तो प्रतियोगिता का उपाय है, न प्रतिस्पर्धा का उपाय है, और न ही समाजवाद में कोई आदमी कम काम कर रहा है, न कोई आदमी ज्यादा काम कर रहा है कि इन दोनों के बीच तय करने का कोई उपाय है।
सरकारी दफ्तर की जो हालत है वही पूरे मुल्क की हालत बनाने की कोशिश है। सरकारी दफ्तर में जो क्लर्क छह घंटे काम कर रहा है वह बेवकूफ है और जो आदमी छह घंटे काम नहीं कर रहा है और विश्राम कर रहा है वह आदमी समझदार है। और दफ्तर में बीस समझदार हैं और एक नासमझ है और एक नासमझ को परेशान किए हुए हैं वे बीस कि तुम छह घंटे काम क्यों कर रहे हो। पूरे मुल्क को सरकारी दफ्तर बनाने की इच्छा है तो समाजवाद बड़ी उचित व्यवस्था है। सच तो यह है कि सरकारी
दफ्तर भी निजी व्यक्तियों के हाथों मे जाने चाहिए, अन्यथा इस मुल्क में उत्पादन नहीं हो सकता। इस मुल्क में श्रम करने को कोई राजी नहीं हो सकता।
मैं सरकारी कालेज में कुछ दिन था। मैं बहुत हैरान हुआ। सरकारी कालेज में कोई प्रोफेसर पढ़ाने को बिल्कुल उत्सुक नहीं है। गैर-सरकारी कालेज में वह बीस घंटे ले रहा है। उसका ही जो समानांतर शिक्षण गैर-सरकारी कालेज में है, वह बीस घंटे पढ़ा रहा है। क्योंकि उसके पढ़ाने पर ही उसकी नौकरी निर्भर हैं। सरकारी दफ्तर में नौकरी सिक्योर्ड है, पढ़ाने की कोई जरूरत नहीं है। पढ़ाना-वढ़ाना बेकार की बातें हैं। सरकारी कालेज में जो प्रोफेसर पढ़ाता है, वह असल में सरकारी प्रोफेसर होने के योग्य नहीं है। उसको पता नहीं कि वह गलती से गलत जगह आ गया है, यह ठीक जगह नहीं है।

जैसे ही कोई व्यवस्था तंत्र के हाथ में चली जाए वैसे ही अनुत्पादक हो जाती है--अनप्रोडक्टिव हो जाती है। और या फिर एक उपाय है। वह यह कि सरकारी प्रोफेसर के पीछे एक पुलिसवाला खड़ा रहे। और वह उसको बंदूक के हुद्दे देता रहे कि पढ़ाओ, तुम पढ़ाओ। लेकिन यह कितनी देर चलाइएगा? और वह पुलिसवाला भी सरकारी है, उसके पीछे एक पुलिसवाला और... नहीं तो वह सरकारी पुलिसवाला थोड़ी देर में हुद्दे देना बंद कर देगा। वह कहेगा, क्या दिन भर काम करते रहना है? इसलिए सरकार का तंत्र एकदम ही तंत्रबद्ध होता चला जाता है। एक के पीछे दूसरा खड़ा करना पड़ता है।
मैंने सुना है कि रवींद्रनाथ के घर में कोई सौ लोग थे परिवार में। और रविंद्रनाथ के पिता ऐसे आदमी थे कि उनके घर जो कोई मेहमान आ जाता तो फिर उसे लौटने न देते, कहते, यहीं रुक जाओ। शाही परिवार था। मेहमान रुक जाते तो वे घर के हिस्से हो जाते। मनों दूध आता था। रवींद्रनाथ के भाई के मन में यह खयाल उठा कि इस दूध की जांच-पड़ताल कुछ भी नहीं होती, पता नहीं कोई पानी मिला देता है या क्या करता है। मनों दूध घर में आता है, तो उन्होंने एक सुपरवाइजर रखा।
जिस दिन से सुपरवाइजर रखा तो उस दिन से पता चला कि दूध पतला हो गया। क्योंकि सुपरवाइजर का हिस्सा दूध में मिल गया। लेकिन भाई जिद्दी थे, सरकारी दिमाग के थे। पिता ने बहुत समझाया कि पहले जो दूध आ रहा था वह ठीक था। सुपरवाइजर को छुट्टी दो। इनकी तनख्वाह अलग और इसका हिस्सा भी पानी का इसमें मिलना शुरू हो गया। लेकिन भाई जिद्दी थे, सरकारी विभाग के थे। उन्होंने कहा, इसके ऊपर एक ओवर सुपरवाइजर रखेंगे। एक और सुपरवाइजर रखेंगे। उन्होंने एक ओवर सुपरवाइजर रखा। पता चला कि दूध में पानी और आ गया है। मगर भाई जिद्दी थे। तब उन्होंने परिवार के एक संबंधी को सबके ऊपर नियुक्त किया। उस दिन एक मछली भी आ गई दूध में। क्योंकि फिर ऐसा रहा... कि दिखता है दूध में पानी नहीं मिलाया गया था, पानी में ही दूध डाला गया होगा, क्योंकि शेयर इतने हो गए!
सरकारी व्यवस्था यंत्र-व्यवस्था है। उसमें व्यक्ति की प्रेरणा की कोई जगह नहीं है और मनुष्य स्वभावतः आलसी है। मनुष्य स्वभावतः श्रम नहीं करना चाहता है। अगर हमारा मुल्क गरीब है...
एक मित्र ने पूछा है कि इतने गरीब हैं, इनकी जिम्मेवारी अमीरों पर नहीं है?
मैं आपसे कहता हूं, बिल्कुल नहीं है। इनकी जिम्मेवारी इन गरीबों पर
ही है। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा।
बड़े मजे की बात है, अगर एक गांव में दस हजार गरीब हों, और दो आदमी उनमें
से मेहनत करके अमीर हो जाएं तो बाकी नौ हजार नौ सौ अट्ठान्नबे लोग कहेंगे कि इन दो आदमियों ने अमीर होकर हमको गरीब कर दिया। और कोई यह नहीं पूछता कि जब ये दो आदमी अमीर नहीं थे तब तुम अमीर थे? तुम्हारे पास कोई संपत्ति थी, जो इन्होंने चूस ली? नहीं, तो शोषण का मतलब क्या होता है? अगर हमारे पास था ही नहीं तो शोषण कैसे हो सकता है? शोषण उसका हो सकता है जो हमारे पास हो। अमीर के न होने पर हिंदुस्तान में गरीब नहीं था? हां, गरीबी का पता नहीं चलता था। क्योंकि पता चलने के लिए कुछ लोगों का अमीर हो जाना जरूरी है। तब गरीबी का बोध होना शुरू होता है।
बड़े आश्चर्य की बात है--जो लोग मेहनत करें, बुद्धि लगाएं, श्रम करें और अगर थोड़ी संपत्ति इकट्ठी कर लें, तो ऐसा लगता है कि इन लोगों ने अन्याय किया। और जो लोग बैठ कर हुक्का-चिलम पीते रहें और कोई संपत्ति पैदा न करें, तो लगता है इन बेचारों पर बड़ा अन्याय हो गया। सारा मुल्क काहिल और सुस्त है, लेकिन इस का हिलियत और सुस्ती को समझने की हमारी तैयारी नहीं। सारा मुल्क चुपचाप बैठा है, धन पैदा करने की न कोई इच्छा है, न कोई श्रम है, और न कोई बुद्धि है, न उस दिशा में कोई चेष्टा है। और फिर अगर दस आदमी धन कमा लें तो हम कहते हैं इन दस लोगों ने सारे मुल्क को गरीब कर दिया। अन्याय हो रहा है गरीब के साथ। गरीब के साथ अन्याय नहीं हो रहा है, गरीब अपने को गरीब रखने की व्यवस्था में जी रहा है।

मैं दो कबीलों के संबंध में पढ़ रहा था। अमरीका में रेड इंडियंस के एक पहाड़ पर दो कबीले हैं। एक कबीला धनी है और एक कबीला गरीब है। दोनों के पास एक सी जमीन है, एक सा हवामान है। और दोंनो के पास एक ही जाति के लोग हैं। फिर क्या मामला है, एक गरीब है और एक अमीर है? एक अजीब बात है। एक ही पहाड़ पर आधे हिस्से पर एक कबीला रहता है और आधे पर दूसरा कबीला रहता है। सबके साधन बराबर हैं। एक एकदम गरीब है सदा से और एक अमीर से अमीर होता चला गया। जब उन दोनों कबीलों का अध्ययन किया गया तो बड़ी हैरानी का पता चला। वह
जो कबीला अमीर है, और वह जो कबीला गरीब है उनकी जीवन-व्यवस्था भिन्न है। जो गरीब कबीला है उसकी व्यवस्था यह है कि जब एक खेत पर काम हो तो पूरा गांव समाजवादी ढंग से उस खेत पर काम करने जाता है। गांव के एक आदमी के खेत पर काम है तो सारा गांव करने जाएगा। सारे गांव के खेत बेकार पड़े रहेंगे। जब गांव के एक किसान के खेत का पूरा काम हो जाएगा तब दूसरे खेत की शुरुआत होगी। उस पर सारा गांव काम करेगा। यह समाजवादी ढंग है उनके काम करने का। इसके दोहरे परिणाम हुए। एक तो बहुत सी जमीन अनुपयोगी रह जाती है, क्योंकि मौसम समाप्त हो जाता है। और गांव के लोग काम पूरा नहीं कर पाते। दूसरी यह कठिनाई पैदा हो गई कि छोटी जमीन पर इतने लोग इकट्ठे हो जाते हैं कि काम कम होता है, बातचीत ज्यादा होती है। तीसरा परिणाम यह हुआ है कि किसी आदमी को अपने खेत पर काम करने की जो व्यक्तिगत प्रेरणा चाहिए वह उस गांव में नहीं है। फिर जिनके खेत में काम नहीं हो पाता, वे उन खेतों की संपत्ति के लिए हकदार हो जाते हैं जिन पर उन्होंने काम किया है। स्वभावतः उनके खेत पर अगर काम नहीं हुआ है तो उन्होंने दूसरे के खेत पर काम किया है, तो गांव को संपत्ति समाजवादी ढंग से वितरित होती है।
वह कबीला आज तीन हजार साल से गरीब है और भिखमंगे की हालत में जीता है। पड़ोस के कबीले में हर आदमी अपने खेत में काम करता है। कोई समाजवादी व्यवस्था नहीं है, पूंजीवादी व्यवस्था है। वह कबीला अमीर होता चला गया। उस कबीले ने अभी-अभी कारें भी खरीदनी शुरू कर दीं। और बगल का कबीला अभी भी भीख मंगा रहा है। अगर बगल के कबीले ने अपनी समाजवादी नासमझी बंद नहीं की तो वह गरीब होता चला जाएगा।
असल में मतलब मेरा यह है कि पूंजीपति को जब हम कहते हैं कि उसने शोषण
कर लिया तो हम कुछ बातें भूल जाते हैं। एक तो हम भूल जाते हैं कि उसने किसका शोषण किया? किसी के पास संपत्ति थी? उसकी इसने जेब काट ली, किसी का धन गड़ा हुआ इसने निकाल लिया? नहीं। इसने सिर्फ एक बुरा किया है कि किसी के पास श्रम था और किसी को दो रुपया देकर उसका श्रम खरीद लिया। यह नहीं खरीदता तो यह श्रम बेचता नहीं। श्रम गंगा की धार की तरह बह जाता है।
अगर आज मेरे पास श्रम की ताकत है आठ घंटे की और मैं उसका उपयोग न करूं
तो कल मेरे पास दो रुपये नहीं बच जाएंगे, क्योंकि मैंने श्रम का उपयोग नहीं किया। अगर मैं अपने श्रम का उपयोग करूं तो कोई दो रुपये देने को तैयार है। जो मुझे दो रुपया देकर मेरे श्रम को पूंजी में कनवर्ट करता है उसको मैं कहता हूं, यह मेरा शोषण कर रहा है। तो आप शोषण मत करवाइए, आप बैठ जाइए अपने घर और अपने श्रम को तिजोरी मे बंद करके रखिए। फिर पता चलेगा कि शोषण हो रहा है कि क्या हो रहा है। शोषण नहीं हो रहा है।
पूंजीवाद शोषण की व्यवस्था नहीं है। पूंजीवाद एक व्यवस्था है, श्रम
को पूंजी में कनवर्ट करने की। श्रम को पूंजी में रूपांतरित करने की व्यवस्था है। लेकिन जब आपका श्रम रूपांतरित होता है, जब आपको या मुझे दो रुपये मेरे श्रम के मिल जाते हैं तो मैं देखता हूं जिसने मुझे दो रुपये दिए उसके पास कार भी है, बंगला भी खड़ा होता जाता है। स्वभावतः तब मुझे खयाल आता है कि मेरा कुछ शोषण हो रहा है। और मेरे पास कुछ भी नहीं था जिसका शोषण हुआ।
हालांकि इस आदमी ने एक मकान और एक कार खरीदी और व्यवस्था बनाई, जिससे मुझे दो रुपये मिले हैं। ध्यान रहे, यह जो इतने गरीब लोग दिखाई पड़ रहे हैं, इन गरीबों की गरीबी के लिए पूंजीपति जिम्मेवार नहीं है। हां, इन गरीबों को जिंदा रखने के लिए जरूर पूंजीपति जिम्मेवार है। अगर वह कोई अन्याय है, तो अन्याय हुआ है!

आज से पांच सौ साल पहले दुनिया में दस बच्चे पैदा होते और नौ बच्चे मरते थे। क्योंकि दस बच्चों के लिए न भोजन था, न काम था, न जीवन था, न सुविधा थी। आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो नौ बच्चे बचते हैं और एक बच्चा मरता है। यह जो नौ बच्चे बच रहे हैं यह पूंजीवाद ने श्रम को धन में रूपांतरित करने की जो व्यवस्था की है उसका परिणाम है। लेकिन यह नौ बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं और वे गरीब दिखाई पड़ते हैं और ये गरीब बच्चे चिल्लाते हैं कि हमारा शोषण कर लिया गया है।
पूंजीवाद शोषण की व्यवस्था नहीं है। और अगर हम पूंजीवाद सब तक पहुंचाना चाहते हैं कि वह गरीब तक पहुंच जाए तो इसका मतलब यह नहीं है कि पूंजीवाद की व्यवस्था को तोड़ना है। उसका मतलब है, व्यवस्था को बड़ा करें। उसका मतलब है, पूंजीवाद की व्यवस्था गांव-गांव, कोने-कोने तक फैल जाए।
उसका मतलब यह नहीं है कि हिंदुस्तान के दस पूंजीपतियों को हम मिटा दें। उसका मतलब है, हिंदुस्तान में दस करोड़ पूंजीपति पैदा करें। उसका मतलब यह है कि पूंजी का विस्तार हो, पूंजीपतियों का विस्तार हो, उद्योगों का विस्तार हो।
और वह जो काहिल, सुस्त बैठा है, उस काहिल सुस्त को यह बातें न बताएं कि तेरा शोषण हो गया है। उससे हम कहें, तू काहिल है और सुस्त है पैदा नहीं कर रहा है। बड़ी अजीब बात है। मुल्क निरंतर अनुत्पादक, अनप्रोडक्टिव होता चला जाता है। क्योंकि वे जो नेता हैं समझानेवाले, वे कहते हैं, तू इसलिए थोड़े गरीब है कि तू कुछ नहीं कर रहा है। तू इसलिए गरीब है कि कोई तेरा शोषण कर रहा है। सारे मुल्क को अगर आप यह समझा देंगे कि शोषण हो रहा है इसलिए हम गरीब हैं तो आप श्रम के लिए मुल्क को तैयार नहीं कर सकते। और कैसी मूढ़तापूर्ण स्थिति है कि वे ही नेता चिल्ला कर कहेंगे कि श्रम करो। और वे ही नेता लोगों को समझाएंगे कि तुम्हारा शोषण हो रहा है। ये दोनों बातें विरोधी हैं। अगर मुल्क से श्रम करवाना है, उत्पादन करवाना है तो मुल्क को समझाना पड़ेगा कि तुम्हारी गरीबी के लिए तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं। तुम ही जिम्मेवार हो अपनी गरीबी के। और अगर तुम्हें अपनी गरीबी तोड़नी है तो तुम्हें श्रम में लगना पड़े, उत्पादक यात्रा करनी पड़े। लेकिन मुल्क के गरीब को बड़ा संतोष मिलता है यह जान कर कि उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है। वह बच्चे पैदा कर रहा है, भीड़ इकट्ठी कर रहा है, मुल्क को रोज गरीब कर रहा है। उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है, और हमको ऐसा लगता है कि बेचारा गरीब है। लेकिन यह बेचारा शब्द खतरनाक है। यह बेचारा शब्द ठीक नहीं है।
गरीब अपनी गरीबी के लिए जिम्मेवार है, यह उससे हमें कहना ही पड़ेगा। और गरीब अपनी सुस्ती और अपनी अनुत्पादकता के लिए जिम्मेवार है, यह भी उससे कहना पड़ेगा। और गरीब बच्चे पैदा करके, मुल्क को ज्यादा गरीब कर रहा है, यह भी हमें उससे कहना पड़ेगा।
लेकिन नेता नहीं कह सकता, क्योंकि नेता को वोट लेना है उस गरीब से। तो नेता उस गरीब को भड़का रहा है। और वह उससे कह रहा है कि तेरी गरीबी का कारण है, ये कुछ महल जो दिखाई पड़ रहे हैं। इनको गिरा दें तो सारा स्वर्ग उतर आएगा। ये महल गिर सकते हैं, इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। ये महल बहुत ही अल्पमती लोगों के हैं। इनको गिराने का काम एक दिन में पूरा किया जा सकता है। इसलिए ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ेगी।
यह संपत्ति जो थोड़ी सी कहीं दिखाई पड़ रही है, इसको वितरित किया जा सकता है। इसमें बहुत अड़चन नहीं है। यह बहुत छोटा सा अल्पमत है। और अगर बहुत तय करें तो हो जाएगा। लेकिन इससे बहुमत अमीर नहीं हो जाएगा। बल्कि बहुमत और गरीब हो जाएगा। और एक बहुत मजे की घटना घटेगी। वह घटना यह होगी कि रूस में क्रांति के पहले और बाद जैसा हुआ। क्रांति के पहले रूस के नेता कहते रहे कि तुम्हारी गरीबी का कारण अमीर है। क्रांति के बाद फिर गरीबी का क्या कारण था? अमीर तो खत्म हो गया। तब रूस का नेता कहने लगा कि श्रम करो, तुम श्रम नहीं करते हो, यह गरीबी का कारण है। यह बड़े मजे की और बेईमानी की बातें हैं। पूंजीवाद था तो अमीर था गरीबी का कारण और समाजवाद आया तो श्रम नहीं करते! यह गरीबी का कारण है! श्रम नहीं करते हैं ते कोई भी व्यवस्था

हो, गरीबी का कारण यही है। गरीबी का कारण शोषण नहीं है। गरीबी का कारण हमारे श्रम की काहिली, हमारी सुस्ती और आलस्य है। और हमारी अदभुत स्थिति है यह।
अधिकतम लोगों ने इस जगत में सदा आलस्य का जीवन बिताया है। थोड़े से लोगों ने जगत में श्रम किया है। जिन्होंने श्रम किया है उन्होंने आलसियों के लिए भी बहुत सी व्यवस्था दे दी है। लेकिन उसके लिए उनको धन्यवाद नहीं मिलता। उसके लिए उनको गाली मिलती है कि तुमने शोषण किया है।
जैसे उदाहरण के लिए मैं आपसे कहूं--आज साधारण सा मजदूर जैसे कपड़े पहने हुए है, वैसे कपड़े अशोक को उपलब्ध नहीं थे। आज साधारण सा मजदूर जैसे मकान में रह रहा है, जैसे कपड़े पहने हुए है, जिस सिनेमाघर में प्रवेश कर रहा है, जिस होटल में बैठ कर चाय पी रहा है, वह अकबर के लिए मुश्किल से उपलब्ध हो सकता था। साधारण आदमी के लिए इतनी सुविधाएं जुटा दी गयीं, उसके लिए, किसी के लिए कोई धन्यवाद नहीं है। लेकिन हां, साधारण आदमी के पास जो नहीं है, अभी उसके लिए क्रोध जरूर है कि किसी ने शोषण कर लिया है!
आज नहीं कल, हो सकता है कि समाजवादी यह भी कहें कि कुछ लोग बुद्धिमान
हो जाते हैं। ये लोग कुछ लोगों को मूर्ख बना देते हैं, उनका शोषण कर लेते हैं। सच बात तो यह है कि कोई किसी की बुद्धि का शोषण करके बुद्धिमान नहीं बनता है। बल्कि जो बुद्धिमान बनता है वह अपने श्रम से बनता है और वह बुद्धिहीनों के लिए भी बहुत-कुछ जुटाता है जीवन भर। लेकिन उसको बुद्धिहीन धन्यवाद नहीं देंगे।
श्रम शक्ति है, और आलस्य? आलस्य दरिद्रता है। लेकिन मॉसेस, जनता बड़े पैमाने पर सदा से आलसी है। उसने कुछ नहीं किया। ये बिजली के पंखे चल रहे हैं। उसको जनता ने नहीं खोजा है। यह बिजली जल रही है, रात अंधेरे में प्रकाश हो रहा है। यह जनता ने नहीं खोजा है।
आपका जो मकान बन गया है सीमेंट-कांक्रीट का, वह जनता की खोज नहीं है। आपकी जिंदगी में बीमारियां कम हो गई हैं, वह जनता की खोज नहीं है। आपकी उम्र बढ़ गई है, यह जनता की खोज नहीं है। यह थोड़े से चूजन फ्यू, कुछ चुने हुए लोगों के श्रम का परिणाम है, लेकिन उनके लिए कोई धन्यवाद नहीं। और सारी जनता इकट्ठी होकर चिल्लाएगी कि हमारा शोषण कर लिया गया। बड़े आश्चर्य की बात है!
जनता ने क्या दिया है जगत को? जनता ने सिवाय लेने के और कुछ भी नहीं दिया है। लेकिन अब जनता सब चीजों की मालिक जरूर होना चाहती है। मैं नहीं कहता कि न हो मालिक, लेकिन ध्यान रहे, कहीं जनता की मालकियत उन लोगों को निराश न कर दे जो श्रम करते रहे हैं। अन्यथा उन लोगों की निराशा से जगत में जो भी थोड़ी सुगंध, संस्कृति और सभ्यता है उसका विसर्जन हो जाएगा।
अगर एक बार भी जनता मुल्क के ऊपर हावी हो गई--जनता तो क्या हावी होगी, जनता के नाम पर कुछ राजनीतिज्ञ हावी हो जाएंगे--अगर एक बार मनुष्य मुल्क के ऊपर... "मॉसेस" जिन्होंने जगत में कभी कुछ नहीं किया, जिनके पास इतिहास के लिए कोई दान नहीं है, अगर उनके हाथ में पूरी ताकत सौंप दी जाए, तो इसका अंततः परिणाम जो होगा, वह यही हो सकता है कि जो भी संस्कृति, जो भी सभ्यता, जो भी मनुष्य के मूल्य हैं--यह सब बिखर जाएं और चीजें नीचे चली जाएं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि जनता के हाथ में ताकत न हो। मैं मानता हूं कि जनता के हाथ में ताकत हो, लेकिन सारी सूचनाओं को समझते हुए ताकत हो और यह समझते हुए ताकत हो कि जनता अपनी मुसीबतों के लिए खुद ही जिम्मेवार है। और जनता को अपनी मुसीबतें दूर करनी हैं तो श्रम के कदम उठाने पड़ेंगे। यह दूसरे पर दोष थोपने से काम नहीं चलेगा। लेकिन पुरानी आदतें हैं हमारी। पहले हम भाग्य पर दोष थोपते थे कि क्या करें, भाग्य ही ऐसा है इसलिए हम गरीब हैं। पहले हम भगवान पर दोष थोपते थे कि क्या करें, भगवान ने हमें गरीब बनाया। अब हम पूंजीपति को पकड़ बैठे हैं। अब उससे कहते हैं कि अब हम क्या करें? तुमने शोषण कर लिया है, इसलिए हम गरीब हैं। एक बात हम कभी नहीं कहते कि हम गरीब होने के ढंग से जी रहे हैं। इसीलिए हम गरीब हैं। यह भर चूक जाते हैं, बाकी हम सब खोज लेते हैं।

कर्म का सिद्धांत है कि हम गरीब हैं, क्योंकि हमारे कर्म पिछले जन्म में बुरे थे। हम गरीब हैं, क्योंकि भाग्य में लिखा हुआ है। विधाता ने लिख दिया है कि तुम गरीब रहोगे, क्योंकि हम गरीब हैं। क्योंकि भगवान ने चाहा कि हम गरीब हों। और अब हम कह रहे हैं कि हम गरीब हैं क्योंकि पूंजीपति ने शोषण कर लिया, लेकिन हजारों साल से यह जो आदमी गरीब है, यह अपने को जिम्मेवार बिल्कुल नहीं ठहराना चाहता है। ये सब नारे बदल देता है। जिम्मेवारी दूसरे पर टांगता चला जाता है। लेकिन जिम्मेवारी अपने ऊपर कभी नहीं लेता है।
मै आपसे कहना चाहता हूं कि इस देश के भाग्य का उदय न होगा। अगर इस देश
के एक-एक आदमी ने यह न समझा कि गरीबी, दीनता और दुख के लिए हम जिम्मेवार हैं। यह जिम्मेवारी दूसरे पर टांगना खतरनाक है। खूंटियां बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन राजनीतिज्ञ को सुविधा है। उसके लिए समाजवाद की बात बहुत पेइंग है, उसको वह बहुत लाभ पहुंचा सकती है।
एक मित्र ने पूछा है कि इंदिराजी जो समाजवाद लाना चाहती हैं, वह समाजवाद आएगा कि नहीं?
पहली तो बात यह है कि समाजवाद से इंदिरा जी का दूर का भी कोई संबंध नहीं है। इंदिरा जी का संबंध है समजवाद नाम से, शब्द से। इसलिए इंदिराजी भी समाजवाद की बात करती हैं। बड़ी हैरानी की बात है। मोरार जी भी वही बात करते हैं, जरा शब्द बदल कर। जनसंघी भी वही बात करते हैं, जरा शब्द बदलकर। सबको पता है कि गरीब जनता का अगर मत चाहिए तो गरीब जनता को फुसलाओ और उससे कहो कि तुम जिम्मेवार नहीं हो, जिम्मेवार कोई और है।
जनता से मत लेना हो तो समाजवाद अच्छा नारा है। लेकिन जनता को सिर्फ धोखे में डालने की बात है। समाजावाद इंदिरा जी लाएंगी या नहीं! "इंदिरा जी" या कोई भी इस देश में समाजवाद अभी नहीं ला सकता। क्योंकि यह देश अभी पूंजी पैदा नहीं कर पाया है। समाजवाद की संभावना सिर्फ एक है और वह यह है कि इतनी संपत्ति पैदा हो जाए कि मुल्क में किसी को गरीब रहने का कोई कारण न रह जाए। इतनी संपत्ति पैदा हो जाए, हवा-पानी की तरह कि मुल्क में किसी को गरीब रहने का कोई कारण न रह जाए। पूंजीवाद अगर ठीक से विकसित हो, परिपक्व हो, मेच्योर हो जाए तो अपने आप एक सामाजिक समानता आ जाएगी। उसे किसी "इंदिरा जी" को या किसी "और जी" को लाने की कोई जरूरत नहीं है।
यह संपत्ति कैसे पैदा हो?
एक मित्र ने पूछा कि आप यह कहते हैं कि समाजवाद से नहीं होगा तो यह कैसे हो?
... तो मैं दो-चार बातें आपसे कहना चाहूंगा। पहली तो बात यह है, वे मुल्क जो यंत्र पूर्व के जीवन को अभी तक संभाले हुए हैं, संपत्ति पैदा नहीं कर सकते। हम अभी भी प्रो-इंडस्ट्रियल हैं। हम अभी भी औद्योगिक क्रांति से गुजरे नहीं हैं। यूरोप भी गरीब था, अमरीका भी गरीबी था। यह जो अमीरी आई, यह जो संपत्ति आई, यह औद्योगिक क्रांति का परिणाम है। औद्योगिक क्रांति का क्या मतलब? औद्योगिक क्रांति का मतलब है, मनुष्य के श्रम की सीमाएं है। मशीन के श्रम की कोई सीमा नहीं है। अगर आप मनुष्य के श्रम पर ही निर्भर रहेंगे संपत्ति पैदा करने को, बहुत ज्यादा संपत्ति आप पैदा नही कर सकते। मनुष्य के श्रम की सीमा है।
मशीन जब तक संपत्ति पैदा न करे, तब तक कोई मुल्क अमीर नहीं हो सकता। मनुष्य भरोसे के योग्य नहीं है। मनुष्य गरीब होने के लिए पर्याप्त है। मनुष्य अमीर होने के लिए पर्याप्त नहीं है। जरा लौट कर पीछे इतिहास देखें तो आपको खयाल आ जाएगा। जब तक, एक जमाना था कि आदमी सिर्फ वृक्षों के फलों को चुनकर भोजन कमाता था, तब संपत्ति बिल्कुल पैदा नहीं हो सकती थी। क्योंकि भोजन के लायक फल मिल जाए, शिकार मिल जाए, वही बहुत था। अकसर भूखा रहना पड़ता था और जब मिल जाता तो आदमी ज्यादा खा लेता और जब नहीं मिलता तो भूखा रहता। और बड़ी जमीन की जरूरत पड़ती थी। एक छोटे से कबीले के लिए कम से कम सौ वर्गमील का जंगल चाहिए था, शिकार के लिए, फल के लिए।
इसलिए दुनिया की आबादी दो करोड़ से ज्यादा नहीं हो सकी। जीसस के दो हजार वर्ष पहले तक सारी दुनिया की आबादी दो करोड़ से ज्यादा न हो सकी--हो

नहीं सकती थी। और फिर भी आदमी निपट दीनता में जीता था, लेकिन उस दीनता का उसे कोई पता नहीं था, क्योंकि दीनता का पता हमेशा तुलना से चलता है। जब हमारे बीच कोई अमीर हो जाए तब हमें पता चलता है कि हम गरीब हैं, नहीं तो हमें पता नहीं चलता। अगर हम सब काने ही पैदा हों तो हमें कभी पता नहीं चलेगा कि हम काने हैं। एक आदमी दो आंख वाला पैदा हो जाए तो हम उसकी एक आंख का आपरेशन कर देंगे, या फिर हमको काने होने का दुख शुरू हो जाएगा। दो ही उपाय बचते हैं।
लेकिन जब आदमी ने बीज बोकर खेती करना शुरू किया तो उसके पास थोड़ी सी संपत्ति का आना शुरू हुआ। क्योंकि वह प्रकृति पर निर्भर नहीं रहा। उसने प्रकृति का उपयोग करना शुरू कर दिया। लेकिन फिर भी जमीन से पैदावार उतनी ही हुई जितने से आदमी पेट भर सकता था और तन ढंक सकता था।
दुनिया की आबादी आज से पांच सौ साल पहले तक बहुत ज्यादा नहीं बढ़ सकी। फिर इसके बाद आदमी ने अपने को श्रम से मुक्त करना शुरू किया। और अपने श्रम की जगह वह जानवरों को लाया। और जब अपने श्रम की जगह बैल और घोड़े को लाया तो उससे काम बहुत बढ़ गया और थोड़ी संपत्ति अर्जित होनी शुरू हुई। बैल, घोड़े और जानवरों ने मिल कर संपत्ति पैदा की और फ्यूडल, सामंत युग पैदा हुए। लेकिन जानवरों की भी सीमा है, काम करने की। उनसे अत्यंत संपत्ति पैदा नहीं की जा सकती। तो मशीन आई, और मशीन की कोई सीमा नहीं और अब जो आटोमेटिक मशीन आ रही है, स्वचालित उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है।
अगर इस देश को अमीर होना है, तो राजनीतिक व्यवस्था बदलने से नहीं होगा। इस मुल्क की यांत्रिक व्यवस्था बदलने से ही यह मुल्क संपत्ति पैदा कर पाएगा। और कोई उपाय नहीं है। तो इस मुल्क को दो बातें करनी जरूरी हैं। एक तो हम जितनी शीघ्रता से, जितनी शक्ति लगाकर मुल्क को यांत्रिक क्रांति से गुजार सकें, एक टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन से गुजारें, लेकिन कौन गुजारे? मुल्क का नेता मुल्क को सोशलिस्टिक रेवोल्यूशन से गुजार रहा है। वह समाजवादी क्रांति से गुजार रहा है। मुल्क के धर्मगुरु मुल्क को रामराज्य की क्रांति से गुजार रहे हैं और मुल्क में लड़के मुल्क को उपद्रव में डाल रहे हैं। उनका उपद्रव ही उनकी क्रांति है।
नेता को मतलब है चुनाव से, वह समाजवादी क्रांति की बातें कर रहा है। साधु को मतलब है अपने महंत के पद से। शंकराचार्य को मतलब है अपने पीठ से। वे अपने रामराज्य, गीता, रामायण की बातें दोहराए चले जा रहे हैं। लड़कों को कुछ मतलब नहीं अपनी चीज से। उन्हें कोई आशा भी नहीं दीखती भविष्य में। वे उपद्रव करने में लगे हुए हैं, उनके उपद्रव का कोई भी नाम हो। वे उपद्रव करने में लगे हुए हैं।
इस मुल्क को औद्योगिक क्रांति से कौन गुजारे? जो गुजार सकता है उसके
हम सब खिलाफ हैं। इस मुल्क में जो थोड़ा-बहुत उद्योग लाया गया है, वह इस मुल्क के पूंजीपतियों ने लाया है। जो इस मुल्क को पूंजीपति और बड़ी औद्योगिक क्रांति से गुजार सकता है उसको मिटाने में हम लगे हैं। हम इस कोशिश में हैं कि वह बिल्कुल न बचे। तब इस मुल्क में सिवाय दुर्भाग्य के कुछ भी न बचेगा। इस मुल्क के पूंजीपति को हमें राजी करना पड़ेगा। इस मुल्क को औद्योगिक क्रांति में प्रवेश करवाने के लिए उनकी शक्तियों का उपयोग भी करना पड़ेगा। लेकिन अभी हम न कर पाएंगे, क्योंकि हम दुश्मन की तरह खड़े हो गए हैं--पूंजीपति को हमें मिटाना है। और अगर पूंजीपति एक लाख कमाए तो उस पर टैक्स लगेगा, दो लाख कमाए तो और ज्यादा लगेगा, तीन लाख कमाए तो और ज्यादा लगेगा। पांच लाख कमाए तो जितना कमाए उतना टैक्स लग जाएगा। दस लाख कमाए तो बेकार मेहनत कर रहा है। तो पूंजीपति किसलिए मेहनत करे?
इस मुल्क की टैक्सेशन की पूरी व्यवस्था, इस मुल्क को औद्योगिक होने
से रोक रही है। मेरी समझ में जो आदमी जितना कमाए उतना कम टैक्स होता जाना चाहिए और एक सीमा के बाद टैक्स होना ही नहीं चाहिए। एक आदमी दस लाख के ऊपर कमाए तो उसे टैक्स-मुक्त और करोड़ के ऊपर कमाए तो पूरे मुल्क को उसे और कुछ थोड़ी प्रशंसा देनी चाहिए। लेकिन हम अजीब काम कर रहे हैं। लेकिन जो इस मुल्क को इंडस्ट्रियलाइज्ड कर सकते हैं, उनको हम तोड़ रहे हैं। और जो इस

मुल्क को कभी का भूखा रखे हुए हैं, गरीब बैठे हुए हैं उनको हम बढ़ावा दे रहे हैं। इससे नुकसान होगा।
एक तो जरूरत है कि तत्काल, जितनी शीघ्रता से हो सके उतना यांत्रिक क्रांति से गुजरे। इस यांत्रिक क्रांति के लिए हिंदुस्तान के उद्योगपति का हिंदुस्तान के लिए पूरा उपयोग करने की जरूरत है। लेकिन उद्योगपति घबराया हुआ है, डरा हुआ है। उसका डर स्वाभाविक है। उसे लग रहा है कि दो-चार-पांच साल की उसकी जिंदगी है। वह खत्म होने के करीब है। तो उद्योगपति यूरोप के बैंकों में अपना पैसा जमा कर रहा है--करेगा। हम करवा रहे हैं उससे जमा। उद्योगपति पश्चिम में भागने की कोशिश में पड़ा हुआ है। कलकत्ते का उद्योगपति बंगाल छोड़ने की कोशिश कर रहा है। बंबई का उद्योगपति आज नहीं कल बंबई से भागने की कोशिश करेगा। परसों वह पाएगा, हिंदुस्तान में भागने की कोई योग्य जगह नहीं रही। हिंदुस्तान के बाहर भागने के सिवाय कोई उपाय नहीं है।
हम जो इस मुल्क को संपत्ति की व्यवस्था में गतिमान कर सकते हैं, उनके साथ दुश्मन की तरह व्यवहार कर रहे हैं, यह अत्यंत नासमझी से भरा हुआ कृत्य है, जो कोई भी गरीब मुल्क कर सकता है।
दूसरी बात, मुल्क की सारी की सारी जनता इसके किसी बोध में ही नहीं है, उसके दिल में इस बात की कोई कांशियंस, कोई चेतना ही नहीं है, कि कितनी संख्या में यह मुल्क झेल सकता है। अगर हम औद्योगिक क्रांति भी कर लें तो यूरोप औद्योगिक क्रांति के बाद समृद्ध हो गया, क्योंकि उसकी संख्या बहुत कम थी।
आज हमारी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। हम पचास-पचपन करोड़ लोग जब तक हम इस मुल्क को दस साल में औद्योगिक रूप से थोड़ा बहुत आगे बढ़ाएं तब तक ये बीस करोड़ लोग पैदा कर देंगे। तब सवाल फिर वहीं का वहीं खड़ा रह जाएगा। हमारा सारा औद्योगिक विकास ठप्प कर देंगे। इसलिए दूसरी बात है कि जनता के एक-एक आदमी को हम इस बात के लिए तैयार करें कि एक भी नये बच्चे को लाना खतरे से खाली नहीं है और इसके लिए हम सारा इंतजाम करें। इंतजाम सब हमारा उलटा है। इंतजाम हमारा यह है कि जिसके दो बच्चे हैं उसको इनकमटैक्स में उतनी छूट नहीं, जिसको चार हैं उनको ज्यादा छूट है। यह बहुत मजे की बात है। जिसके चार बच्चे हैं उस पर दुगुना इनकमटैक्स होना चाहिए। जिसको बिल्कुल बच्चे नहीं है उस पर इनकमटैक्स ज्यादा है और बैचलर पर और भी ज्यादा है। बैचलर पर बिल्कुल नहीं होना चाहिए।
जो आदमी अविवाहित हैं, उसको तो हमें देर तक अविवाहित रखने का उपाय करना चाहिए। उसको नौकरी पहले मिलनी चाहिए विवाहित के बजाय। उस पर टैक्स नहीं होना चाहिए। उसको सब तरह की जो भी सुविधाएं मिल सकती हैं, मिलनी चाहिए।
मुल्क में ज्यादा देर तक लड़के और लड़कियां अविवाहित रहें, इसका हमें तीव्रता से प्रचार करना चाहिए। जो लोग विवाहित हैं वे अगर बिना बच्चे पैदा किए विवाहित रहें तो उन्हें हमें सुविधाएं देनी चाहिए। बच्चों के साथ असुविधाएं बढ़ानी चाहिए। जैसे बच्चे बढ़ें, वैसे असुविधाएं बढ़ानी चाहिए। लेकिन हम सोचते हैं उलटा। हम सोचते हैं उलटे कि जिसके पास बच्चे हैं वह बेचारा है। लेकिन किसने कहा उस बेचारे से कि पांच बच्चे पैदा करे। बच्चे वह पैदा करेगा, परेशान यह पूरा मुल्क होगा। बच्चों को रोकना पड़ेगा सख्ती से। कुछ खतरनाक घटनाएं घट गई हैं। बड़ा खतरा यह हो गया, हमने मृत्यु- दर कम कर ली है पश्चिम के विज्ञान का उपयोग करके। जहां तक मृत्यु का संबंध है, हमने पश्चिम के विज्ञान का उपयोग कर लिया। और जब हमारा महात्मा भी मरता है तो एलोपैथी की दवा लेने से इनकार नहीं करता। वह यह नहीं कहता कि भगवान मार रहा है तो हम एलोपैथी से न बचेंगे, हम तो मरेंगे। वह मजे से एलोपैथी की दवा लेता है।
पश्चिम की मृत्यु को रोकने की जो-जो खोजें थीं, हमने उन सबका उपयोग कर लिया। लेकिन पश्चिम ने जन्म रोकने की जो-जो खोजें कीं उनके मामले में हम खिलाफ हैं। यह मामला ऐसा है कि जन्म के संबंध में हम भारतीय हैं। और मरने के संबंध में हम पश्चिमी हैं। यह नहीं चलेगा।

अगर आपको मृत्यु की दर कम करनी है तो जन्म-दर उसी मात्रा में कम करनी पड़ेगी और अगर आपको जन्म-दर नहीं कम करनी है तो आपको उसी मात्रा में मरने के लिए तैयार रहना चाहिए, जैसा दवाइयों के पहले हम मरते थे। यह सीधा तर्क है। लेकिन महात्मा मुल्क में लोगों को समझाता है कि बच्चे तो भगवान देता है। लेकिन वह महात्मा लोगों को नहीं समझाता कि महामारी और प्लेग भी भगवान भेजता है, आदमी न रोके। तो जब प्लेग आती है, अकाल आता है, बाढ़ आती है, तब महात्मा सेवा के लिए पहुंच जाता है। वह कहता है कि बाढ़ आ गई, हम सेवा करेंगे वहां जाकर। वह कहता है कि बिहार में अकाल पड़ गया तो हम लोगों को मरने न देंगे। तब वह नहीं कहता कि भगवान अकाल भेज रहा है बिहार में, बिहार के लोगों शांति से मर जाओ, कि सूरत में बाढ़ आ गई है तो सूरत के लागो शांति से बाढ़ में बह जाओ--यह भगवान भेज रहा है।
लेकिन वह महात्मा चालाक है। मरते वक्त लोगों को बचाने पहुंच जाता है
और जब यही लोग बच्चे पैदा करते हैं तो महात्मा कहता है, बर्थ-कंट्रोल? बर्थ-कंट्रोल जीवन के नियम के विपरीत है! यह तो परमात्मा के खिलाफ है। यह नहीं चलेगा। मृत्यु-दर हमने कम कर ली, जन्म-दर हमें कम करनी पड़ेगी।
इस जन्म-दर को कम करना हमारा सबसे बड़ा सवाल है। यह बड़े मजे की बात है
कि आज दुनिया में जो सबसे बड़े सवाल है वह सबसे छोटी चीजों से पैदा हो रहे हैं। तीन बड़े सवाल हैं इस समय दुनिया में, जो सबसे छोटी चीजों से पैदा हो रहे हैं।
एटम--बड़े से बड़ा सवाल है कि कहीं अणु-युद्ध न हो जाए, और अणु छोटी से छोटी चीज है।
वीर्य-अणु--वह सबसे बड़ा सवाल है कि वीर्य-अणु एक्सप्लोजन कर रहा है जनता का। वह बढ़ाए चला जा रहा है। वह बहुत छोटी सी चीज है। वह वीर्य-अणु दुनिया को मार डाल सकता है।
और तीसरा है, रंग-अणु। काले आदमी की चमड़ी में पिगमेंट होता है काले रंग का। सफेद आदमी की चमड़ी में सफेद रंग का पिगमेंट होता है। दो तीन आने के रंग का फर्क होता है कुल जमा। लेकिन नीग्रो और अमरीकी लड़ रहा है। काला और गोरा लड़ रहा है, पीला और सफेद लड़ रहा है और इसमें दो-तीन आने से ज्यादा फर्क नहीं है। दो-तीन आना भी मैं कह रहा हूं फुटकर बिक्री में खरीदें तो। थोक खरीदें तो इतना भी फर्क नहीं है।
शरीर की चमड़ी में थोड़े से रंग के अणुओं का फर्क है। तीन सवाल हैं इस समय--रंग-अणु, वीर्य-अणु और पदार्थ-अणु। और ये तीन छोटी-सी चीजें आज पूरी मनुष्यता को परेशान किए हुए हैं। इनमें सबसे खतरनाक वीर्य-अणु सिद्ध हो रहा है क्योंकि वह सबके पास है। एटम-अणु तो सबके पास नहीं है। एटामिक एनर्जी बनानी हो तो बड़े उपद्रव की जरूरत है। लेकिन यह जो वीर्य-अणु की एनर्जी है यह सबको मुफ्त मिली है। और एक-एक आदमी को इतनी मिली है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। एक साधारण स्वास्थ्य का आदमी अपनी जिंदगी मे चार हजार संभोग कर सकता है। और एक संभोग में एक साधारण आदमी के वीर्य-अणु इतने निकलते हैं कि एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकें। और अगर पूरी वैज्ञानिक सुविधा मिले--जो अब तक नहीं मिल सकी, क्योंकि स्त्री इसमें साथ नहीं देती, वह पुरुषों का बहुत मामलों में साथ नहीं देती, वह साल में एक ही बच्चे को ग्रहण कर पाती है। लेकिन पुरुष साल में करोड़ों बच्चे पैदा कर सकता है, एक पुरुष। इस समय पृथ्वी पर जो आबादी है साढ़े तीन अरब, यह एक आदमी के वीर्य-अणुओं से पैदा हो सकती है, अगर उसके सारे वीर्य-अणुओं का उपयोग हो जाए। इतनी मुफ्त मिली शक्ति सबके पास हो तो इसका सबसे बड़ा खतरा उसी से है। हिंदुस्तान के सामने दो सवाल हैं। एक कि वह जल्दी से जल्दी औद्योगिक, टेक्नालॉजिकल क्रांति से गुजर जाए और जल्दी से जल्दी बच्चों के दरवाजे पर रोक लगाए और बच्चों को न आने दे, अन्यथा खतरा है। अन्यथा खतरा यह है कि अगर बच्चे बहुत बड़ी तादाद में आए ते दो उपाय हैं। या तो हमें मृत्यु-दर फिर से बढ़ाने के लिए कृत्रिम साधन खोजने पड़ें, जो कि बहुत दुखद मालूम पड़ता है-- किन्हीं जिंदा लोगों को मरने के लिए राजी करना पड़े। और दूसरा उपाय महामारियों को हमें सुविधा देनी पड़े। वे हमसे बिना पूछे आ जाएंगी, संख्या एक सीमा के बाहर जाएगी तो महामारियां आ जाएंगी। बीमारियां फैल जाएंगी। और

लोग मरेंगे बड़ी तादाद में। इसके पहले कि लोग बहुत करुण स्थिती में मरें, उचित है कि हम नये बच्चों पर रोक लगाएं और यह कोई अमीर आपको नहीं कह रहा है कि आप बच्चे पैदा करें। लेकिन बच्चे पैदा करने पर सख्ती से नियंत्रण करने की जरूरत है।
सरकार को जो करने योग्य है वह न करके बेकार की बातों में हमारे मुल्क
की सरकार पड़ती है। सख्ती का मेरा मतलब यह है कि हिंदुस्तान में जो भी आदमी जेल जाए, वह आदमी जेल के बाहर बच्चे पैदा करने की ताकत लेकर वापस नहीं लौटना चाहिए। यह दंड का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए। हिंदुस्तान में दो बच्चे के बाद जो आदमी तीसरा बच्चा पैदा करे उस पर बहुत असुविधाएं थोप देनी चाहिए। उसकी फीस दुगनी हो जानी चाहिए, टैक्स ज्यादा होना चाहिए, उस पर सारी मुसीबतें आ जानी चाहिए।
जैसे ही बच्चे आर्थिक रूप से बोझ होंगे तभी हम उन्हें रोकेंगे, लेकिन उसमें एक कठिनाई आएगी। गरीब के लिए बच्चे आर्थिक रूप से सुविधाएं हैं, बोझ नहीं हैं। वे सिर्फ अमीर के लिए बोझ हैं। लेकिन बड़ी अघटनीय घटना घटती है। और वह यह है कि जैसे-जैसे आदमी समृद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे अपने आप बच्चे कम करते जाते हैं। क्योंकि अमीर आदमी के लिए बच्चा उसकी संपत्ति का विभाजक होकर आता है। अगर एक आदमी के पास करोड़ रुपये हैं और वह दस बच्चे पैदा कर ले तो उसके बच्चे लखपति रह जाएंगे, करोड़पति नहीं रह जाएंगे। लेकिन एक गरीब जिसके पास कुछ भी नहीं है, अगर वह दस बच्चे पैदा कर ले तो दस बच्चों की आमदनी शुरू हो जाएगी। दस बच्चे कुछ कमा लाएंगे, गाय, बैल, को ही चराएंगे, कुछ तो काम कर ही लेंगे। अभी गरीब के लिए बच्चों का बढ़ना आर्थिक रूप से उपयोगी है।
पर क्या गरीब के पास कोई सुविधा है कि वह मुल्क की संपत्ति बढ़ाने में अपने बच्चों को प्रेरित कर सके? क्या गरीब के पास पूंजी पैदा करने की कोई क्षमता है? अगर उसके पास वह क्षमता होती तो वह गरीब न होता। उसे भी अपने बच्चों को पूंजीपतियों की सजाई इस दुनिया पर आधारित रखना पड़ेगा।
नहीं, यह नहीं चलेगा। श्रम को पूंजी में रूपांतरित करने वाले पूंजीपति को हमें राजी करना पड़ेगा। उसे प्रेरणा देनी पड़ेगी, स्वतंत्रता व सुविधाएं देनी पड़ेंगी कि वह ज्यादा से ज्यादा पूंजी पैदा करे और मुल्क को जल्द से जल्द औद्योगिक क्रांति से गुजारे।
दूसरे, मुल्क में विस्फोटित जनसंख्या पर आगे सख्ती से पूरी रोक लगानी पड़ेगी। उसके सारे इंतजाम हमें करने पड़ेंगे। तो ही इस मुल्क का कोई भविष्य है, अन्यथा हमारे सामने अंधकार के गर्त के सिवाय कुछ भी नहीं।
और भी प्रश्न रह गए हैं जिनकी चर्चा हम अगली बैठक में करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रमाण करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का तेरहवां प्रवचन

पूंजीवादः ज्यादा मानवीय व्यवस्था

मेरे प्रिय आत्मन्!
बहुत से सवाल पूछे गए हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि समाजवाद परार्थवाद, अलटुइस्टिक व्यवस्था है। पूंजीवाद स्वार्थवादी, सेलफिश व्यवस्था है। और आप परार्थवादी व्यवस्था का विरोध करते हैं और स्वार्थ की व्यवस्था का समर्थन करते हैं। इसका क्या कारण है?

सबसे पहली बात तो यह ध्यान में लेने जैसी है कि जगत में न कोई परार्थवादी कभी पैदा हुआ है, न हो सकता है। इसका कोई उपाय ही नहीं है। परार्थवाद असंभावना है। और इस सत्य को जितना ठीक से समझा जा सके उतना पाखंड से, हिपोक्रेसी से बचा जा सकता है। परार्थवाद के नाम पर सिवाय पाखंड के और कुछ भी नहीं है। असल में मनुष्य की चेतना मूलतः स्वार्थी है और उचित भी है, अनुचित भी नहीं है। बुरा भी नहीं है, स्वाभाविक भी है। हां, स्वार्थ बहुत तल के हो सकते हैं। तीन तरह के स्वार्थ हो सकते हैं। श्रेष्ठतम स्वार्थ, जिसमें मेरे स्वार्थ में आपके स्वार्थ को भी गति मिलती हो। यह भी श्रेष्ठतम इसीलिए है कि आपके स्वार्थ को भी गति मिलती है, और कोई कारण नहीं है। मध्यम स्वार्थ, जिसमें मेरा स्वार्थ तो हल होता है लेकिन किसी और के स्वार्थ को न तो कोई फायदा होता है, न कोई हानि होती है। वह मध्यम इसलिए है कि दूसरे के प्रति पूर्ण उपेक्षा है। न हानि है, न लाभ है। निकृष्ट स्वार्थ वह है, जिसमें मेरा स्वार्थ आपके स्वार्थ को नुकसान पहुंचाता है। वह निकृष्ट इसीलिए है कि आपके स्वार्थ को नुकसान पहुंचाता है। और कोई कारण नहीं है।
तीन तरह के स्वार्थ हैं जगत में। और जगत का सारा विकास निकृष्ट स्वार्थ से श्रेष्ठतम स्वार्थ की तरफ है। जगत का विकास स्वार्थ से परार्थ की तरफ न है और न हो सकता है। लेकिन, हम कुछ ऐसी घटनाएं सोचते रहते हैं जो लगती हैं बिल्कुल परार्थ हैं। एक आदमी नदी में डूब रहा है और मैं किनारे से गुजर रहा हूं। मैं उसे अपनी जिंदगी को जोखिम में डाल कर नदी में कूद कर बचाता हूं तो आप मुझसे कह सकते हैं कि यह तो बिल्कुल परार्थ है, इसमें आपका क्या स्वार्थ? लेकिन नहीं, आप बहुत गहरे नहीं देख रहे हैं और शब्दों की बहुत ऊपरी पकड़ में हैं। जब मैं एक आदमी को नदी में डूबते देखता हूं तब तत्काल मेरे सामने जो सवाल होता है वह उस आदमी को बचाने का नहीं होता। तत्काल वह सवाल यह होता है कि क्या मैं उस आदमी को डूबने का दुख झेल सकता हूं। वह असली सवाल बहुत गहरे स्वार्थ का है।
जो इस दुख को झेल सकता है वह निकल जाएगा नदी के किनारे से, वह फिकर नहीं करेगा उस आदमी की। लेकिन जो इस दुख को नहीं झेल सकता वह उस आदमी को बचाता है। वह उस आदमी को नहीं बचा रहा है। वह उस आदमी को डूबते हुए देखने के अपने दुख से छुटकारा पा रहा है और कोई कारण नहीं है और जब मैं उस आदमी को बचा कर बाहर ले आऊं उस नदी के किनारे, तो मुझे जो सुख मिलता है वह सुख उस आदमी को बचाने का नहीं। वह सुख मुझे जो उस आदमी को डूबते हुए देखने की पीड़ा थी उससे मुक्ति का है। और दूसरा सुख मैंने उसे बचाया है, उसका है। वह आदमी बच गया, यह दूसरी बात है, यह सेकंड्री है, यह गौण है। आज तक दुनिया में कोई आदमी अपने स्वार्थ के बाहर नहीं जा सका।
अगर बुद्ध गांव-गांव घूमते हैं लोगों को समझाने, तो इस भ्रांति में पड़ने की कोई जरूरत नहीं कि वे लोगों के लिए परार्थ के लिए घूम रहे हैं। यह बुद्ध का आनंद है कि वे लोगों के लिए घूम रहे हैं और समझा रहे हैं। जब रास्ते के किनारे एक फूल खिलता है तो आप इस भ्रांति में मत पड़ना कि वह रास्ते पर चलनेवाले लागों को सुगंध देने के लिए खिलता है। यह फूल का आनंद है कि वह खिलता है। रास्ते पर चलनेवालों को सुगंध मिल जाती है, यह दूसरी बात है। यह प्रयोजन नहीं है फूल खिलने का। और चांद अगर आकाश में निकलता है

तो आप यह मत सोच लेना कि आप प्रेम का गीत गा सके इसलिए निकलता है। आप गा लेते हैं, यह बात दूसरी है।
जिंदगी का मूल स्वर स्वार्थ है। स्वार्थ शब्द को हमने बहुत गंदा कर रखा है। वैसे शब्द सुंदर है। स्वार्थ का मतलब होता हैः "स्व" के अर्थ में।
अगर अच्छा शब्द कहें तो आत्म-अर्थ कहें, आत्मा के हित में, अपने हित में। स्वाभाविक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हित में जीए। हां, दृष्टि सिर्फ इतनी होनी चाहिए कि उसका हित धीरे-धीरे सबके हित को समाहित कर ले, यह श्रेष्ठतम होगा। उसका हित सबके विरोध में पड़ जाए यह निकृष्टतम होगा। लेकिन ये दोनों आदमी स्वार्थी हैं, यह मैं स्पष्ट करना चाहता हूं। इसमें परार्थी कोई भी नहीं है।
फिर परार्थी कौन है? जिनकी हम परोपकारियों में, परार्थियों में गणना करते हैं और जिनको हम महात्मा, साधु संत कह कर पूजते हैं, ये कौन लोग हैं, जो अपने किसी गहरे स्वार्थ के गहरे आनंद को पूरा करते हैं। लेकिन परार्थ कर रहे हैं--यह अहंकार भी पूरा कर रहे हैं। कोई परार्थ नहीं कर रहा है। अगर भगतसिंह को इस देश के लिए मरने में आनंद है तो भगतसिंह मर रहा है। यह भगत सिंह का अपना आनंद है। इस देश की लड़ाई आगे बढ़ती है, यह गौण है। और गांधी अगर इस देश की सेवा कर रहे हैं तो यह उनका अपना आनंद है। इसमें परार्थ कहीं भी नहीं है, लेकिन यह श्रेष्ठतम स्वार्थ है और श्रेष्ठतम स्वार्थ होना चाहिए।
मैं पूंजीवादी व्यवस्था का समर्थक हूं, क्योंकि वह मानवीय स्वभाव के अनुकूल है। पूंजीवादी व्यवस्था स्वार्थी व्यवस्था है। समाजवादी व्यवस्था दावा करती है परार्थ का, इसलिए पाखंडी व्यवस्था है। यह मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल नहीं है और दावा ही परार्थ का है, परार्थ हो नहीं सकता है। स्वार्थ वहां भी होगा। स्वार्थ वहां भी हो रहा है।
इस बात को अगर हम ठीक से समझ लें कि स्वार्थी होना मनुष्य का महत्तम, गहरे से गहरा मनोभाव है, उसकी गहरी से गहरी प्रकृति है, तो हम व्यर्थ के पाखंडों से बच जायें और चीजें साफ-सुथरी हो जाएं और गणित ठीक से बैठ सके। तब हम इतना कह सकें कि तुम्हारा स्वार्थ निकृष्ट है, यह श्रेष्ठ हो सके तो शुभ है। लेकिन हम उसे क्यों कह रहे हैं, यह भी हमें समझ लेना चाहिए, इसलिए नहीं कि वह परार्थ है। श्रेष्ठ हम उसे इसलिए कह रहे हैं कि वह भी किसी दूसरे की प्रकृति के स्वार्थ को सहयोग दे रहा है। वह वृहत्तर स्वार्थ है, विराट स्वार्थ है। अगर परमात्मा भी इस जगत को चला रहा होगा तो परार्थ के कारण नहीं। उसका कोई निजी स्वार्थ और आनंद है। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।
यह सारा जीवन भीतर के रस और आनंद से चलता है। और इसलिए मैं कहता हूं कि पूंजीवादी व्यवस्था मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल है। मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल जो भी करने की कोशिश की जाती है वह व्यवस्था ही टूटती है या फिर मनुष्य के स्वभाव को जबरदस्ती तोड़ना पड़ता है। इसलिए जिन पचास साठ देशों में समाजवादी जीवन का प्रयोग हुआ है वहां पता चलना शुरू हो गया है कि आदमी ने श्रम करने की उत्सुकता को खो दिया है। वह उसके स्वार्थ में नहीं मालूम पड़ती। इतना बड़ा स्वार्थ है कि उसकी पकड़ के बाहर हो जाता है।
मैं जानकर ही पूंजीवाद के समर्थन में हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं
है कि मैं सोचता हूं पूंजीवाद मनुष्य को अंतिम जीवन-व्यवस्था है। असल में जो लोग भी किसी व्यवस्था को अंतिम कहते है, वे सदा खतरनाक हैं। लेकिन समाजवादी ऐसा मानते हैं कि समाजवाद का जो श्रेष्ठतम रूप होगा साम्यवाद, वह अंतिम व्यवस्था होगी--अल्टीमेट। उसके आगे फिर कोई विकास नहीं है। असल में सभी सिद्धांतवादी इस मानने के भ्रम में पड़ते हैं कि उन्होंने जो सोचा है वह चरम है, उसके आगे कुछ भी नहीं है। जीवन कहीं भी रुकता नहीं। इसलिए सिद्धांतवादी जीवन को रोकने वाले सिद्ध होते हैं। क्यांकि जब उनकी व्यवस्था के आगे जीवन जाने लगे तो वे बाधा खड़ी करते हैं। पूंजीवाद चरम व्यवस्था नहीं है।
पूंजीवाद से बहुत कुछ नया पैदा होगा। पूंजीवाद एक सीमा पर मरेगा और
नई व्यवस्था को जन्म दे जाएगा। जैसे पिता मरता है और बेटे को जन्म दे जाता

है। लेकिन पिता के खिलाफ बेटे को लड़वाने की और बाप की हत्या करवाने की कोई भी जरूरत नहीं है। बाप, बाप होने की वजह से खुद ही मरता है। असल में जिस दिन बाप, बाप बनता है उसी दिन मरना शुरू हो जाता है। और बेटा जीना शुरू हो जाता है। यह बेटे को भड़का कर बाप की हत्या करवाना फिजूल की मेहनत है। इसमें कोई अर्थ नहीं है। बाप मरने को ही है। और जो बेटा बाप की हत्या करके बाप को मारेगा, ध्यान रखें वह अपने बेटे से सदा सावधान रहेगा। और इसलिए बेटे को पहले ही मार डालेगा। किसी दिन मारने की तैयारी न हो जाए--लेकिन जो बेटा अपने बाप को मारता नहीं, बचाने की आखिरी कोशिश करता है, लेकिन बाप तो फिर भी मर ही जाता है, क्योंकि सभी पुराना मर जाता है और विदा कर आता है रोत हुआ मरघट पर, यह अपने बेटे के प्रति दुश्मनी के भाव से भरा हुआ नहीं होता है। ध्यान रहे, अगर हमने पूंजीवाद की हत्या करके समाजवाद लाया तो समाजवाद हमारी गर्दन पकड़ लेगा, उसके आगे फिर कोई व्यवस्था नहीं पैदा होने देगा। नहीं, यह जिंदगी बड़ी सीधी और साफ है। यहां जैसे आदमी की जिंदगी में गति है ऐसी गति व्यवस्थाओं में भी है। लेकिन मार्क्स के दिमाग में एक बुनियादी रोग था और वह रोग यह था कि वह चीजों को संघर्ष की भाषा में ही सोच सकता था, सहयोग की भाषा में नहीं सोच सकता था। द्वंद्व, डाइलेक्टिक्स की भाषा में सोच सकता था। वह सारे विकास को कान्फ्लिक्ट की भाषा में सोच सकता था कि सारा विकास द्वंद्व है। यह बात पूरी सच नहीं है। निश्चित ही विकास में द्वंद्वता तत्त्व है। लेकिन द्वंद्व ही विकास का आधार नहीं है, द्वंद्व से भी गहरा "सहयोग"--कोआपरेशन विकास का आधार है। असल में द्वंद्व की वहीं जरूरत पड़ती है, जहां असंभव हो जाता है। द्वंद्व मजबूरी है, सहयोग स्वभाव है। और द्वंद्व भी अगर हमें करना पड़े तो उसके लिए भी हमें सहयोग करना पड़ता है। उसके बिना हम द्वंद्व भी नहीं कर सकते हैं। अगर मुझे आपसे लड़ना हो, और आपको मुझसे भी लड़ना हो तो आपको भी पच्चीस आदमियों का कोआपरेशन करना पड़ेगा। मुझे भी पच्चीस आदमियों का कोआपरेशन करना पड़ेगा। लड़ने के लिए भी सहयोग ही करना पड़ता है। लेकिन सहयोग के लिए लड़ना नही पड़ता है। इसलिए बुनियादी कौन है, हम समझ सकते हैं। लड़ने के लिए सहयोग जरूरी है, लेकिन सहयोग के लिए लड़ना जरूरी नहीं है। इसलिए बुनियादी कौन है?
बुनियादी कोआपरेशन है, कान्फ्लिक्ट नहीं। बुनियादी सहयोग है, द्वंद्व नहीं। क्योंकि बिना सहयोग के द्वंद्व संभव नहीं है। लेकिन बिना द्वंद्व के सहयोग संभव है।
लेकिन मार्क्स के दिमाग में यह खयाल था कि सब चीजें लड़ कर विकसित हो रही हैं। असल में जितने भी लोग मानसिक अशांति से पीड़ित होते हैं, जगत में लड़ाई की भाषा में ही सोच पाते हैं। और मार्क्स कोई शांतचित्त आदमी नहीं था। और दुनिया में बुद्ध जैसा कोई शांत चित्त आदमी कुछ कहता है तो उसकी गहराई और होती है, और मार्क्स जैसा अशांत चित्त आदमी कुछ कहता है तो उसका उथलापन साफ होता है।
मार्क्स की अशांति इतनी भयंकर थी कि अगर एक क्षण भी सिगरेट पीने को नहीं मिलती तो वह बेचैन हो जाता था--चेन स्मोकर। और कहते हैं कैपिटल लिखने में उसने जितनी सिगरेट पी उतनी कैपिटल की बिक्री से उसे दाम नहीं मिले। मार्क्स की नींद भी बहुत बेचैन थी। वह शांति से सो नहीं सकता था। मार्क्स का विचार भी बहुत धुंधला था। अकसर विचार करते-करते कई बार वह बेहोश भी हो गया था।
मार्क्स के जीवन में कोई ऐसी गहराई नहीं है कि जीवन के किसी गहरे तत्व
को देखने की क्षमता उसके पास हो। जब चित्त बहुत अशांत, तनावग्रस्त, एंग्जायटी से भरा हुआ, चिंता से भरा हुआ होता है, टेंशन से भरा हुआ होता है, तो जिंदगी में जो भी हमारे मन में होता है, वही हमें दिखाई पड़ने लगता है। सिमोन वेल ने एक संस्मरण में लिखा है कि तीस या तीस साल तक की उम्र तक उसके सिर में दर्द बना रहा। और वह दर्द इतना ज्यादा था कि उसे दुनिया में कुछ भी अच्छा नहीं दिखाई पड़ता था। जिसके सिर में दर्द है, उसे दिखाई पड़ भी नहीं सकता। तो जब उसका दर्द ठीक हो गया तो उसने लिखा है कि मैं बहुत हैरान हूं। जब तक मेरे सिर में दर्द था तब तक मैं नास्तिक थी और जब से मेरा सिर दर्द ठीक हुआ तबसे मैं आस्तिक होने लगी।

असल में अगर चित्त पूरा स्वस्थ हो तो आदमी आस्तिक हो ही जाएगा। लेकिन चित्त अगर विकृत हो, रुग्ण हो, नास्तिक होने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिंदगी में हम वही देखते हैं जो हमारे भीतर है, हम उसी को प्रोजेक्ट करते हैं।
मार्क्स चिंतित, परेशान, द्वंद्वग्रस्त व्यक्तित्व है। असल में मार्क्स को समझने के लिए उसकी साइकोलॉजी में पूरी छान-बीन, पूरी खोज होनी चाहिए। मार्क्स के व्यक्तित्व का हम जितना विश्लेषण करेंगे उतना ही हमें पता चलेगा कि समाजवाद द्वंद्वात्मक क्यों है। यह समाजवाद डाइलेक्टिकल क्यों है? यह समाजवाद इसलिए द्वंद्वात्मक है कि मार्क्स का चित्त द्वंद्वग्रस्त है।
निश्चित ही बुद्ध अगर कोई बात कहेंगे तो द्वंद्वात्मक नहीं होगी। वह समन्वयात्मक होगी, वह सिंथेटिक होगी। उसमें एक संवेदभाव होगा। क्योंकि भीतर जो चित्त है वह समन्वित है, भीतर खंड-खंड में बसा हुआ आदमी नहीं है। हम दुनिया को वैसा ही देख लेते हैं जैसा देखने वाला चित्त हमारे पास होता है। मार्क्स ने दुनिया को रुग्ण मन से देखा है इसलिए दुनिया हमें द्वंद्व से भरी मालूम पड़ती है। इसलिए हर जगह लड़ाई है, बाप और बेटे में लड़ाई है, गुरु और शिष्य में लड़ाई है, पति और पत्नी में लड़ाई है, गरीब और अमीर में लड़ाई है, सबमें लड़ाई है। नहीं, जिंदगी लड़ाई पर ही नहीं खड़ी है।
असल में जिंदगी में जहां सहयोग चूक जाता है वहां लड़ाई प्रवेश करती है। जिंदगी लड़ाई नहीं है, जिंदगी सहयोग है। और जहां जिंदगी सहयोग में असमर्थ हो जाती है, वहां लड़ाई खड़ी करती है। लड़ाई बीमारी है, स्वास्थ्य नहीं।
द्वंद्व मनुष्य का सहज भाव नहीं है। द्वंद्व मनुष्य की मजबूरी है। कोई भी लड़ने को आतुर नहीं है, लड़ना हर हालत में मजबूरी है। लेकिन इस मजबूरी को मार्क्स नियम, दि लॉ, कानून मान कर चलते हैं तो उन्होंने सारी जिंदगी को द्वंद्व में घेर लिया। इसलिए पिछले पचास वर्षों में जहां-जहां मार्क्स के चिंतन का प्रभाव पड़ा, वहां-वहां जीवन के सब तलों पर द्वंद्व हो गया। चाहे वह गरीब-अमीर का हो, चाहे बाप-बेटे का हो, पति-पत्नि का हो, जिंदगी को देखने का ढंग द्वंद्व में से हो गया। पति-पत्नि दो मित्र नहीं हैं, दो दुश्मन हैं। बाप-बेटे भी एक जीवनधारा के दो हिस्से नहीं हैं, दुश्मन हैं। तुर्गनेव ने एक किताब लिखी हैः फादर एण्ड सन्स। पिता और पुत्र। और वहां दिखाई पड़ता है कि पिता और पुत्र भी दो वर्ग हैं दो दुश्मन हैं। सारी जिंदगी दुश्मनी के सूत्र से समाजवाद ने भर दी है जो कि नितांत असत्य है। और न केवल असत्य है, खतरनाक असत्य है। क्योंकि अगर हम एक बार भी उस भाषा में सोचने को तैयार हो जाएं कि सब जगह द्वंद्व है, तो फिर जिंदगी में शांति और जिंदगी में समन्वय और संगीत का कोई उपाय नहीं है। नहीं, मैं नहीं मानता हूं कि पूंजीपति और गरीब में द्वंद्व है। मैं मानता हूं कि पूंजीपति और गरीब के बीच जो सारभूत हिस्सा है वह सहयोग है। और जहां सहयोग असफल होता है वहां द्वंद्व पैदा होता है।
द्वंद्व मूल स्वर नहीं है। द्वंद्व सहयोग की असफलता है। और सहयोग असफल न हो इसकी पूरी कोशिश की जानी चाहिए। लेकिन पूरी कोशिश इसकी की जा रही है कि सहयोग सब जगह खत्म हो जाए और द्वंद्व ही रह जाए। क्योंकि समाजवाद की जीत इसी पर निर्भर है कि सहयोग सभी जगह टूट जाए। कहीं भी अगर सहयोग है तो समाजवाद की संभावना नहीं है। जहां भी सहयोग की थोड़ी संभावना है वहां समाजवाद की संभावना क्षीण हो जाएगी। इसीलिए सब जगह सहयोग टूट जाए तो समाजवाद आ सकता है।
समाजवाद बहुत पैथालाजिकल खयाल है, बहुत रोगग्रस्त खयाल है। अगर हम मनस-विश्लेषण करें समाजवादी चित्त का तो हम पायेंगे कि यह आदमी परेशान है और यह अपनी परेशानी को सारे समाज पर थोप रहा है। और जिंदगी बहुत कुछ देखने पर निर्भर करती है। जो हम देखना शुरू कर देते हैं, मानना शुरू कर देते हैं, उसे हम खोज लेते हैं। वह जगह दिखाई पड़ने लगती है।
अगर एक आदमी गुलाब के फूल के पास जाकर खड़ा हो और कांटों का विश्वासी
हो तो फूल उसे शायद ही दिखाई पड़ें। उसे कांटे ही कांटे दिखाई पड़ेंगे। और

इतने कांटे दिखाई पड़ेंगे कि उसे स्वभावतः यह खयाल आए कि इतने कांटों के बीच एक फूल नहीं हो सकता, फूल झूठा होगा। स्वभावतः जब इतने कांटे हैं तो फूल कैसे हो सकता है कांटों के बीच में? लेकिन अगर कोई आदमी उसी गुलाब के पौधे के पास फूल को देखने की क्षमता रखता हो और फूल को देखने की क्षमता रखना, मनुष्य के श्रेष्ठतम गुणों में से एक है--फूल को देखने की क्षमता रखना। कांटों को देखने की क्षमता रखना कोई गुण नहीं है।
अगर कोई फूल को देखने की क्षमता रखता हो और एक गुलाब के फूल के चारों तरफ हजार कांटे भी हों और गुलाब के फूल को अगर कोई ठीक से देख पाए तो उसे शक होगा कि जहां ऐसा फूल खिला है वहां इतने कांटे कैसे हो सकते हैं? और जब वह जो फूल को देख कर कांटे देखने जाएगा, वह हैरान हो जाएगा, वह पाएगा कि कांटे फूल की रक्षा के लिए ही हैं, फूल के दुश्मन नहीं हैं। और जो कांटों का प्रेमी है, वह जब कांटों को देखेगा तो वह समझेगा कि फूल जो है वह कांटों को धोखे में छिपाए रखने के लिए इंतजाम है। असली चीज तो कांटा है। यह फूल जो ऊपर से दिखाई पड़ रहा है, यह इसलिए है कि आदमी फूल तोड़ने आ जाए और कांटों में फंस जाए। यह कांटों की तरकीब है, यह फूल जो है, कांटों में फंसाने के लिए है।
हम जिंदगी को जैसा देखते हैं वैसी ही दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। समाजवाद जिंदगी को द्वंद्व से मानकर चलता है। खुद मार्क्स को खयाल न था मौलिक रूप से। मार्क्स बहुत मौलिक चिंतक है, ऐसा मुझे दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन मार्क्स के पहले हैगल हुआ। हैगल का खयाल था कि दुनिया द्वंद्व से विकसित हो रही है। यह खयाल मार्क्स को भी पकड़ गया।
हैगल तो कहता था कि विचारों के द्वंद्व से विकास हो रहा है, मार्क्स
ने उसको और पदार्थवादी बनाकर वर्ग का द्वंद्व और यथार्थ बना दिया। वर्गों के द्वंद्व से विकास हो रहा है। लेकिन कोई पूछे कि कम्युनिज्म के बाद क्या होगा? जब दुनिया में साम्यवाद आ जाएगा तो विकास नहीं हो सकता। कैसे विकास होगा? क्योंकि द्वंद किस-किस में होगा। इसलिए समाजवाद की जो आखिरी सीढ़ी है साम्यवाद, उसके बाद दुनिया में कोई विकास नहीं, वहां सब चीजें ठप्प और मुर्दा हो जायेंगी। क्योंकि उसके बाद दुनिया में कुछ नहीं होगा, न गरीब बचेगा, न अमीर बचेगा। बहुत संभावना तो यह है कि न पत्नी बचेगी, न पति बचेगा। बहुत संभावना तो यह है कि न बाप बचेगा, न बेटा बचेगा। ऐसा नहीं कि बेटे पैदा नहीं होंगे, लेकिन वे सरकारी होंगे--ये निजी नहीं हो सकते। क्योंकि एक बार संपत्ति सरकारी होनी शुरू हुई तो बेटा भी निजी संपत्ति ज्यादा दिन नहीं हो सकता। उसके होने का कारण किसी निजी व्यक्तिगत संपत्ति की वजह से था।
असल में व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकारी कोई और न हो जाए इसलिए बाप और बेटे के संबंध को संगठित होने में सुविधा मिली थी। बाप कहता था, उसका बेटा, उसका खून, उसकी संपत्ति का मालिक हो। जिस दिन संपत्ति सरकारी होगी उस दिन बाप क्यों बेटे के उस झंझट पड़े, इससे मतलब क्या, इससे प्रयोजन क्या? बेटा सरकारी हों जाएगा।
मार्क्स के वक्त में यह खयाल चर्चा का विषय बन गया था कि जब व्यक्तिगत संपत्ति समूह की हो जाएगी तो स्त्रियां कब तक व्यक्तिगत रखने का खयाल है। बहुत ज्यादा देर तक नहीं चल सकता। क्योंकि स्त्रियों को व्यक्तिगत रखने की क्या जरूरत है? सामूहिक होना ज्यादा सुविधापूर्ण होगा। समाजवाद का आखिरी कदम जब मनुष्य की पूरी जिंदगी में घुसेगा तो स्त्री भी व्यक्तिगत नहीं हो सकती। ऐसे भी व्यक्तिगत स्त्री महंगी चीज है।
ऐसे अपने घर में कार रखो तो उपद्रव ही है। बस में बैठने से सुविधापूर्ण है। अगर समाजवाद के विचार को उसके लाजिकल कनक्लूजन (तार्किक निष्पत्ति) तक ले जाया जाए तो इसका मतलब ही यह है कि व्यक्तिगत स्त्री की भी क्या जरूरत है। व्यक्तिगत बेटे की भी क्या जरूरत है। असल में व्यक्तिगत की क्या जरूरत है।
समाजवाद व्यक्तिगत पर चोट है। संपत्ति से शुरू होगी, फिर जिंदगी के भीतर प्रवेश कर जाएगी। जिंदगी के भीतर प्रवेश करना स्वाभाविक है। इसलिए मैं मानता हूं कि समाजवाद बड़ी अस्वाभाविक, अप्राकृतिक, अमानवीय, इनह्यूमन

व्यवस्था है। मनुष्य जैसा है--पूंजीवाद आया है--पूंजीवाद लाया नहीं गया है। यह थोड़ा सोचने जैसा है। पूंजीवाद आया है, पूंजीवाद लाया नहीं गया है। यह कोई इम्पोज्ड सिस्टम नहीं है आदमी के ऊपर। इसके लिए किन्हीं लोगों ने प्रचार करके, आंदोलन करके इंतजाम नहीं किया है। कोई क्रांति करके और आदमी को समझा कर और कानून बना कर पूंजीवाद नहीं आया है। पूंजीवाद विकसित हुआ है। समाजवाद को लाने की चेष्टा चल रही है। असल में उसी चीज को लाना पड़ता है जो अप्राकृतिक है--जो प्राकृतिक है, वह अपने से आ जाती है।
आज तक दुनिया की सारी व्यवस्थाएं आई हैं। समाजवाद पहली व्यवस्था है जिसे लाने का इंतजाम करना पड़ रहा है। अब तक जब सब व्यवस्थाएं आ गईं, पूंजीवाद की आगे की व्यवस्था भी पूंजीवाद से आ जाएगी। इसमें इतने अनिश्चित और परेशान होने की क्या जरूरत है? इसे लाने के लिए विशेष आयोजन की क्या जरूरत है? असल में इसे विशेष रूप से तभी लाना पड़ता है।
अगर एक आम वृक्ष पर लगा है और लगा रहे--अपने से पकता है और गिर जाता है। असल में पक जाना और गिर जाना एक ही साथ घटते हैं--युगपत। जिस क्षण पूरा पक जाता है उस क्षण गिरने के सिवाय और कोई मार्ग नहीं रह जाता। राइपननेस इ.ज आल--पक जाना सब कुछ है, फिर गिर जाता है। वृक्ष को पता भी नहीं चलता कि कब गिर गया पका आम। आम को भी पता नहीं चलता कि कब छोड़ा वृक्ष को। यह जब छूट जाता है तभी पता चलता होगा। लेकिन अगर कच्चे आम को तोड़ ले तो वृक्ष को भी पता चलता है, घाव छूट जाता है। आम को भी पता चलता है, क्योंकि अभी जिससे रस लेना था उससे रस नहीं ले पाया था। और फिर कच्चे आम को कृत्रिम इंतजाम करके पकाना पड़ता है। वह जो काम वृक्ष ही कर देता है वह फिर घर में गेहूं में छिपा कर आम को पकाने का इंतजाम करना पड़ता है।
निश्चित ही, गेहूं में छिपा कर पकाया हुआ आम, वृक्ष पर पके हुए आम से भिन्न होता है। वृक्ष पर पका हुआ आम स्वस्थ होता है। गेहूं में पका हुआ आम सिर्फ बीमार होता है, बुखार से पकाया हुआ होता है।
तो जीवन की व्यवस्था सहजता से आती है--स्पांटेनियस! जो जीवन की व्यवस्था पिछली व्यवस्था से जन्म लेती है, उस व्यवस्था में एक स्वास्थ्य, एक सौंदर्य, एक सरलता, निर्दोषता होती है। जो व्यवस्था जबरदस्ती लाई जाती है, उस व्यवस्था में कुरूपता, एक जबरदस्ती, एक हिंसा और खून के दाग होते हैं।
मेरी दृष्टि में मनुष्य स्वार्थी है। इस सीधे से सत्य को गालियां देने की क्या जरूरत है? लेकिन साधु-संत और महात्मा इसको बहुत गालियां देते रहे। और यह बड़े मजे की बात है कि इनकी गालियां धीरे-धीरे स्वीकृत हो गई हैं। हजारों साल का प्रचार है, हमने स्वीकार कर लिया है कि
आदमी का स्वार्थी होना बुरा है। और है आदमी स्वार्थी, तब आदमी क्या करे? रहेगा आदमी स्वार्थी, परार्थ का चेहरा बनाएगा। अच्छा है, एक आदमी दुकान पर बैठ कर दुकान करे और जाने कि यह दुकान है। नहीं, यह आदमी स्वार्थी मालूम पड़ेगा। यह मंदिर बनाएगा। मंदिर में बैठ कर दुकान चलाएगा, यह परार्थ मालूम पड़ेगा।
लेकिन दुकान एक ईमानदारी है और मंदिर एक बेईमानी हो गई, अगर वहां दुकान चल रही है तो। मैंने सुना है कि हम मनुष्य जाति बहुत सजेस्टीबल हैं। ठीक ही है यह बात। बहुत से सुझाव ग्रहण करनेवाली है। अगर हजारों साल तक कोई बात की जाए तो हम उसे स्वीकार कर लेते हैं, उसे ग्रहण कर लेते हैं। हमने यह बात स्वीकार कर ली है कि स्वार्थ कुछ निंदा योग्य है। तो मैं आपसे कहता हूं कि नहीं, निंदा योग्य नहीं है। स्वार्थ स्वभाव है, और अगर स्वार्थ में कुछ निंदा योग्य तत्त्व भी है तो इसलिए है कि किसी दूसरे के स्वार्थ पर चोट पहुंचती है। यह भी स्वार्थ को चोट पहुंचने के कारण है। फिर मैं एक बात आपसे कहता हूं कि जो आदमी दूसरे को चोट पहुंचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वह बहुत समझदार स्वार्थी नहीं है--एनलाइटंड नहीं है। बहुत समझदार नहीं है। क्योंकि दूसरे के स्वार्थी को चोट पहुंच कर बहुत देर तक अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं कर सकता। यह असंभव है।
जो आदमी दूसरों के स्वार्थ को चोट पहुंचा रहा है, दूसरे उसके स्वार्थ
को चोट पहुंचाना शुरू कर देंगे।

देर-अबेर वह आदमी दूसरों को पहुंचाई गई चोटों से खुद भी गिर जाएगा, वह चोटें वापस लौट आने लगेंगी। जो आदमी दूसरों के स्वार्थ को भी अपने स्वार्थ से पानी सींच रहा है, जो अपने स्वार्थ को पूरा करते वक्त दूसरे के स्वार्थ को नुकसान नहीं पहुंचा रहा है, लाभ पहुंचा रहा है, वह आदमी बहुत गहरे अर्थों में होशियार-स्वार्थी है, बहुत एनलाइटंड सेलफिशनेस है उसकी। क्योंकि वह आदमी वस्तुतः दूसरों के स्वार्थों को पूरा करके अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए वातावरण और अवसर भी पैदा कर रहा है। यह जगत सामूहिक जीवन है। यह जगत सहजीवन है। यहां हम अकेले-अकेले नहीं हैं। यहां हम सब दूसरे के साथ हैं। और दूसरे के साथ होने का एक ही मतलब है कि यह साथ तभी गहरा हो पाता है जब मेरा जीवन मेरा आनंद ही नहीं, दूसरों का भी आनंद बन जाता है। मैं परार्थ का पक्षपाती नहीं हूं, तो पूर्ण स्वार्थ का पक्षपाती हूं। और मैं कहता हूं कि यदि आपका स्वार्थ दूसरे को नुकसान पहुंचा रहा है तो आप पूर्ण स्वार्थी नहीं हैं। आप बीज अपनी ही नासमझी से अपने ही अहित में बो रहे हैं। यह हो सकता है कि फल आने में वक्त लग जाए। तो आपको पता न रहे कि अपने ही बोए हुए बीज फल ला रहे हैं। लेकिन जो हम बोते हैं अपने चारों तरफ वह हम तक फिर लौट आता है।
मैं पक्ष में हूं, यह जानते हुए कि पूंजीवादी व्यवस्था स्वार्थी व्यवस्था है। लेकिन स्वार्थ मनुष्य का स्वभाव है। और मैं कहता हूं कि पूंजीवादी व्यवस्था मानवीय है। निश्चित ही पूंजीवाद अंतिम व्यवस्था नहीं है, क्योंकि इस जगत में कोई व्यवस्था अंतिम नहीं हो सकती है।
अंतिम व्यवस्था का मतलब हुआ कि उसके बाद फिर प्रलय के सिवाय और कोई उपाय नहीं रह जाएगा। अंतिम व्यवस्था का मतलब हुआ मौत के सिवाय और कोई गति नहीं रह जाएगी। परफेक्शन और पूर्णता मृत्यु के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जा सकती। कोई भी व्यवस्था परफेक्ट होगी, वह पके आम की तरह गिर जाएगी और क्या करेगी? लेकिन हर गिरती व्यवस्था नई व्यवस्था को जन्म दे जाती है। असल में जब पुराने पत्ते गिरते हैं तो नये पत्ते वृक्ष को भीतर से धक्के देने लगते हैं, आवाज देने लगते हैं, इसीलिए गिरते हैं। पुराना पत्ता गिरता है, नया पैदा हो जाता है।
नई व्यवस्था जब जन्म लेने को तैयार हो जाती है तब पुरानी विदा होने लगती है। इस पुराने का विदा होना, नये का आना शाश्वत है। यह कम्युनिज्म आकर रुक नहीं जाएगा। मार्क्स इस संबंध में नितांत भ्रांत है। और समाजवादी नितांत भ्रांत हैं कि समाजवाद या साम्यवाद की कोई स्थिति चरम और अंतिम हो जाएगी। कोई स्थिति चरम नहीं हो सकती है। न ही कोई स्थिति ऐसी हो सकती है जिसके आगे पाने के लिए कुछ शेष न रहेगा।
हां, इतना ही फर्क पड़ेगा कि रोज-रोज हमारे जीवन के विकास के आयाम बदलते जाते हैं। रोज-रोज हमारा जीवन नये तलों पर प्रकट होने लगता है। आज लड़ाई है कि रोटी नहीं है, कपड़ा नहीं है। जिस दिन रोटी-कपड़ा सारी पृथ्वी पर हो जाएगा, मत सोचना कि उस दिन दुनिया में बड़ा सुख आ जाएगा। उस दिन दुनिया में बड़े किस्म के दुख उभरेंगे। छोटे किस्म के दुख खत्म हो जाएंगे।
इस भ्रांति में कोई मत रहे कि रोटी-कपड़ा-मकान सब मिल जाने से सुख आ जाएगा। नहीं, सिर्फ रोटी-कपड़ा-मकान का दुख मिट जाएगा। जिस दिन रोटी-कपड़ा- मकान का सुख नहीं रह जाता उस दिन और भी अजीब और अनूठे दुख आदमी को घेरने लगते हैं। संगीत घेरने लगता है, काव्य घेरने लगता है, धर्म घेरने लगता है, ध्यान घेरने लगता है, नये दुख पैदा होने शुरू हो जाते हैं। पेट भरा हो आदमी का तो आप यह मत सोचना कि बस वह आराम से घर में बैठ जाता है। वह नये दुखों की तलाश में निकल जाता है।
स्वभावतः नये दुखों की खोज करनी पड़ती है ताकि नये सुख पाए जा सकें। और कोई रास्ता नहीं है। नये दुख की खोज, नये सुख की खोज है। और ऐसा क्षण कभी भी नहीं आएगा जब दुख बिल्कुल नहीं रहेंगे। और अगर किसी दिन आएगा तो उस दिन आदमी मशीन हो चुका होगा, तभी यह हो सकता है।
समाजवाद कहता है कि ऐसा दिन आ सकता है जब दुख नहीं होगा। पूरा भी कर सकता है अपने वायदे को, लेकिन उसके पूरा करने के पहले सचेत हो जाना!

आदमी अगर मशीन हो जाए तो यह हो सकता है कि दुख न आए! क्योंकि सुख भी आने
की बात समाप्त हो जाए! मशीनों के लिए कोई दुख-सुख नहीं होता, आदमी के लिए होता है। और यह बड़े मजे की बात है कि हम जरा खयाल करें, अकबर को कौन सी कमी हुई अशोक को कौन सी कमी हुई। शायद समाजवाद बहुत से बहुत सुविधा जुटा देगा आदमी के लिए, सभी आदमियों के लिए तो अशोक जैसी जुटा देगा, अकबर जैसी जुटा देगा। लेकिन अशोक को क्या तकलीफ है कि मरने के पहले वह पीत वस्त्र पहन कर भिक्षु जैसा रहने लगा। मामला क्या है? इसको खाने की कमी है, इसको कपड़े की कमी है, इसको स्त्रियों की कमी है, इसको धन की कमी है? इसको हो क्या गया? असल में इसके पास सब है। और जब सब होता है तब पहली दफा पता चलता है कि सब बेकार है। जब तक नहीं था तब तक पता नहीं चलता कि बेकार है।
गरीब आदमी आशा में जी सकता है। अमीर आदमी के लिए पुरानी आशा समाप्त हो जाती है। गरीब आदमी इस आशा में दौड़ता रहता है कि एक मकान होगा, एक कार होगी, एक बंगला, एक बगीचा। लेकिन जब सब हो जाता है तब उसे पहली दफा पता चलता है कि यह तो हो गया, लेकिन भीतर तो कुछ भी नहीं हुआ। कुछ अभी खाली का खाली है। वह खाली का खाली नये सवाल उठाना शुरू कर देता है।
जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं। सब अवतार राजाओं के बेटे हैं। बुद्ध राजा के बेटे हैं। इस मुल्क में एक अवतार, एक बुद्ध और एक तीर्थंकर भी ऐसा नहीं है जो गरीब घर से आया हो। कुछ कारण हैं। इनके पास सब था। इनके दिमाग खराब थे? इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी? इनके पास सब था, जो समाजवाद दे सकता है। फिर क्या? लेकिन नहीं, जब इनके पास सब था तो अचानक पता चला कि सब बेकार है। खोज कहीं और करनी पड़ेगी।
मैं नहीं मानता हूं कि समाजवाद कोई अमृत है जिससे सब हल हो जाएगा। कुछ
भी हल नहीं होगा, और समाजवाद यह मान कर चलता है कि रोजी-रोटी और कपड़े से सब हल हो जाएगा तो समाजवाद मनुष्य को पशु के तल पर उतार देगा। इसलिए भी मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। मैं मानता हूं कि जरूर गरीबी मिटनी चाहिए। लेकिन गरीबी मिटनी चाहिए पूंजीवाद के विस्तार से। गरीबी मिटनी चाहिए व्यक्तिगत संपत्ति के फैलाव से। गरीबी मिटनी चाहिए गरीबी के मिटने से, अमीर के मिटने से नहीं।
गरीबी दो ढंग से मिट सकती है। अमीर को मिटा दो। तब भी मिट सकती है। क्योंकि फिर गरीब को गरीब होने का पता नहीं चल सकेगा। एक और ढंग है मिटाने का कि गरीब को मिटा दो तो भी गरीबी मिट सकती है। अमीर को मिटाना हो तो सीलिंग का रास्ता है कि तय कर दो कि इससे ज्यादा नहीं कमा सकते हो। अगर गरीब को मिटाना है तो फ्लोरिंग का रास्ता है। तय कर दो कि इससे कम नहीं कमा सकते।
मैं मानता हूं, फ्लोरिग की जरूरत है, सीलिंग की कोई जरूरत नहीं है। जमीन नीचे की तय करो कि इससे नीचे किसी को न कमाने देंगे। पूरा मुल्क मेहनत करेगा कि हम हर आदमी को उससे नीचे नहीं कमाने देंगे, इससे ज्यादा तो कमाना ही पड़ेगा। सारा मुल्क ताकत लगाएगा कि इस आदमी को कम न कमाने दें। लेकिन हम अभी ताकत लगा रहे हैं कि सीलिंग कर दें--कि कुछ आदमी अगर ज्यादा कमा रहे हैं तो उनकी सीमा बांध दें कि इससे ज्यादा तुम नहीं कमा सकोगे। यह अमीर को मिटा कर गरीबी हटाने का खयाल है। फ्लोरिंग नीचे से हम तय करेंगे सौ रुपया, दो सौ रुपया, कुछ भी--इस सीमा के नीचे हम किसी को नहीं कमाने देंगे। और मैं मानता हूं कि अगर हम फ्लोरिंग तय करें तो अमीर का सहयोग मिल सकता है। और अगर हम सीलिंग तय करें तो अमीर से सिर्फ संघर्ष हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है।
पूंजीवाद द्वंद्व की भाषा में सोचने से बहुत मुश्किल में पड़ गया है। उसे सहयोग की भाषा में सोचना पड़े! जो जिंदगी का मूल स्वर है, उसमें सोचना पड़े! इस सहयोग के संबंध में एक-दो बात और आपसे कहना चाहूंगा। चूंकि हम सदा से ही लड़ने की भाषा से घिरे हुए होते हैं, इसलिए हमें सहयोग दिखाई नहीं पड़ता जीवन में, अन्यथा सारा सहयोग ही से विकास करता रहा है। अब तक का सारा विकास सहयोग का विकास है। और ऐसा भी नहीं कि गुलाम और उसके मालिक के बीच सहयोग नहीं था। अगर सहयोग न होता तो गुलामी और इसके बीच की मालकियत टूट गई होती। उसके एक इंच आगे चलने की गुंजाइश नहीं हो सकती थी। नहीं, सहयोग था।

आज हमें लगता है कि गुलाम और मालिक कैसी बुरी बात है। लेकिन आपको पता नहीं कि जिस दिन गुलाम और मालिक दुनिया में पैदा हुए उस दिन बहुत करुणापूर्ण व्यवस्था थी, बहुत कम्पेशनेट व्यवस्था थी। इसको थोड़ा समझना जरूर है। आज हमें लगता है कि गुलामी कितनी बुरी चीज थी कि आदमी बाजार में बिकता था लेकिन जिस दिन आदमी बाजार में बिका था यह बहुत विकसित अवस्था थी उस दिन के लिए। आज पीछे लौट कर देखने पर लगती है, बहुत पिछड़ी हुई व्यवस्था थी।
आदमी किस दिन गुलाम बना? गुलामी के पहले जो भी कबीला किसी दूसरे कबीले
पर हमला करता था तो उस हमले में सब पुरुषों को काट डालता था। स्त्रियों को बचा लेता था, क्योंकि स्त्रियां कबीलों को बढ़ाने में सहयोगी होती थीं। अगर दस स्त्रियां हों और एक पुरुष हो तो भी दस बच्चे पैदा हो सकते हैं। और दस पुरुष और एक ही स्त्री हो तो एक ही बच्चा पैदा हो सकता है। तो दूसरे कबीले के पुरुषों को मार डाला जाता था, स्त्रियां बचा ली जाती थीं, वह सहज व्यवस्था थी।
जिन लोगों ने पहली दफा आदमी को गुलामी दी उनमें बड़ी दया थी, उन्होंने कहा कि हम मारेंगे नहीं, हम तुम्हें गुलाम बना देंगे। जिस दिन गुलामी आई, उस दिन बड़ी कम्पेशनेट, बड़ी करुणापूर्ण व्यवस्था थी। और गुलाम खुशी से राजी हुआ करते थे कि विकल्प दो ही थे, या तो वह काट डाला जाए, या तो वह झुक जाए। और दो तरह के आदमी थे, एक वे जो काट डालने की तैयारी दिखला रहे थे और दूसरे जो थोड़े दयावान थे कि हम तुम्हें बचा लेंगे। वह गुलाम और मालिक के बीच सहयोग से शुरू हुई थी।
एक सीमा पर जाकर बेकार हो गई, कोई गुलामों की बगावतें नहीं हुई दुनिया में कि गुलामों की बगावतें हुई हों और गुलामों ने कोई आंदोलन में कोई क्रांतियां की हों और मालिकों ने उन्हें मुक्त किया हो। यह झूठी है बात। गुलामों की कोई बगावत नहीं हुई थी। लेकिन एक व्यक्त आया कि मालिक के लिए गुलाम रखना महंगा पड़ने लगा। चौबीस घंटे उसे खिलाना भी पड़ता, उसको मकान भी देना पड़ता, कपड़ा भी देना पड़ता, बीमार हो तो दवा भी करनी पड़ती, मर जाता तो नुकसान भी उठाना पड़ता। स्वभावतः उसने उसे मुक्त कर दिया। उसने कहा छह घंटे काम दे दो और उसके दाम ले लो।
गुलाम के लिए आजादी मिली और मालिक को सुविधा मिली। वह भी एक सहयोग था। उसमें कोई बगावत और क्रांति नहीं हो गई थी। ठीक ऐसे ही पूंजीवाद जिस दिन पूरी तरह विकसित हो जाएगा, उस दिन मजदूर को नौकरी पर रखना महंगा पड़ने लगेगा। मजदूर को भागीदार बनाना ही सस्ता पड़ेगा। असल में पूंजीवाद अगर ठीक से विकसित हो जाए तो मजदूर को नौकर रखने में बहुत नुकसान है। क्योंकि जब तक मजदूर नौकर है तब तक वह अपने स्वार्थ के लिए काम नहीं कर रहा है फैक्ट्री में। तब तक वह किसी दूसरे के स्वार्थ के लिए काम कर रहा है जो कि मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है। उसका स्वार्थ तो पैसा लेने में है। फैक्ट्री से कोई मतलब नहीं है, आग लग जाए तो उससे मतलब नहीं है, फैक्ट्री बंद पड़ जाए तो उसे मतलब नहीं। उसे मतलब है कि उसको कितनी तनख्वाह मिलती है। उसे कितने काम का पैसा मिलता है। फैक्ट्री में कम काम हो कि ज्यादा काम हो, उत्पादन हो कि न हो, हानि हो या लाभ हो, उत्पादन हो या न हो, इससे उसको कोई मतलब नहीं है, क्योंकि फैक्ट्री उसकी नहीं है।
जैसे-जैसे पूंजीवाद विकसित होगा, यह स्वाभाविक परिणाम होगा कि मजदूर
को मजदूर रखना महंगा पड़ेगा। उसकी कुशलता बढ़ाने के लिए उसको शेयर बना लेना, उसको भागीदार बनाना ही सरल है। और जिस दिन मजदूर पूंजीपति का भागीदार हो जाएगा उस दिन जिसे मैं समाजवाद कहूं वह फलित होगा। और जिसे अब तक समाजवाद कहा जा रहा है वह समाजवाद नहीं है। मैं जिसे समाजवाद कहता हूं, वह सहयोग से फलित हो। और सहयोग रोज-रोज सुविधापूर्ण होता जा सकता है, अगर हम समझपूर्वक चलें। नहीं तो सहयोग असंभव हो जाएगा। आज असंभव हो गया है। आज हड़ताल है, स्ट्राइक है, घेराव है। और जो मजदूर यह सोच रहा है कि इस भांति हम पूंजीवाद से लड़ रहे हैं, उसे यह पता नहीं कि इस भांति वह अपनी गरीबी को बढ़ा रहा है। क्योंकि मुल्क रोज गरीब होता जा रहा है, मुल्क का रोज उत्पादन गिरता है और उसे जो भड़का रहे हैं वह समझते हैं कि उसके हित में काम कर रहे हैं। वे उसके

हित में काम नहीं कर रहे हैं। वे अपने हित में काम कर रहे हैं। जितना मजदूर मुश्किल में पड़े उतना ज्यादा भड़काया जाएगा। जितना ज्यादा भड़काया जाएगा उतनी ज्यादा मुश्किल में पड़ेगा। जितनी ज्यादा मुश्किल में पड़ेगा उतना ज्यादा भड़काया जा सकता है। अंततः बगावत और आग लगवाई है पूरे मुल्क में। नहीं, मजदूर नहीं पहुंच जाएगा ताकत में। मजदूर पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट करके किन्हीं और लोगों को ताकत में पहुंचा देगा, जो उसके नेता हैं। न तो रूस में मजदूर ताकत में पहुंच गया है, न चीन में ताकत में पहुंच गया है, न दुनिया में कहीं ताकत में पहुंच सकता है। अगर मजदूर ताकत में ही पहुंच सकता होता तो वह पूंजीपति ही हो गया होता!
हां, इतना ही फर्क पड़ सकता है कि वह मालिक बदल ले। गुलामी बदल ले, इतना फर्क पड़ सकता है। और ध्यान रहे, पूंजीपति के तो यह हित में है कि मजदूर उसे सहयोग दें। क्योंकि सहयोग की जबरदस्ती मजदूर पर पूंजीपति थोप नहीं सकता। परसुएड कर सकता है, फुसला सकता है। अगर सारे मजदूर इनकार कर दें कि हम काम नहीं करना चाहते, तो पूंजीपति के पास कोई बंदूक नहीं है कि आपकी छाती पर बंदूक रख दें। पूंजीपति को परसुएड करना पड़ता है कि आप काम करने को राजी हो जायें और मैं इतना पैसा देने को राजी हूं। यह सीधा सौदा है।
लेकिन, एक बार समाजवादी राज्य पैदा हो जाए तो फिर सौदे का कोई सवाल नहीं है। हम सीधे बिके हुए गुलाम हैं, काम करना पड़ेगा अन्यथा मौत। फिर कोई सौदा नहीं है।
कभी आपने सुना कि रूस में कोई स्ट्राइक हुई हो, कोई हड़ताल हुई हो। क्या रूस में किसी को कोई तकलीफ नहीं है? कोई घेराव नहीं होता। नहीं, कोई स्वर्ग नहीं आ गया है। लेकिन घेराव का कोई उपाय नहीं रह गया है, हड़ताल का कोई मामला नहीं रह गया है। हड़ताल किसके खिलाफ करिएगा? जो हड़ताल, जिनके खिलाफ आपको करनी है वही राज्य है, वही मालिक है, दोनों एक हैं।
अगर आज एक पूंजीपति नुकसान पहुंचाता है मजदूरों को तो मजदूर सरकार से अपील कर सकते हैं। क्योंकि एक दूसरी एजेंसी है न्याय की, एक दूसरी व्यवस्था है। वह मालिक और मजदूर से अलग है। और जो यह बात कर सकती है कि मजदूर के साथ अन्याय हुआ, जो नहीं होना चाहिए। लेकिन एक बार राज्य और मालिक एक हो गया फिर अन्याय के प्रतिकार का भी कोई उपाय नहीं है, तो फिर अन्याय ही न्याय है। क्योंकि चुनाव का कोई उपाय नहीं रह जाता।
मुझसे एक मित्र ने पूछा है कि समाजवादी बड़ी न्यायपूर्ण व्यवस्था है,
आप उसका विरोध कर रहे हैं?
मैं आपसे कहता हूं कि समाजवाद में न्याय का कोई उपाय नहीं है। न्याय मांगिएगा किससे? वहां चोर और पुलिसवाला एक ही है। और कोई उपाय ही नहीं है। वह जो रात में आप के घर सेंध लगाता है, वही सुबह आपके घर के काम में पहरा देता है। कोई उपाय नहीं है।
समाजवाद सबसे अन्यायपूर्ण व्यवस्था है। जस्टिस की मांग समाजवाद में
की ही नहीं जा सकती। किससे मांग करिएगा? कौन मांग करेगा? कोई उपाय नहीं है।
मै नहीं कहता कि समाजवाद न्यायपूर्ण व्यवस्था है। राज्य तभी तक न्याय
कर सकता है जब तक राज्य स्वयं के स्वार्थों से बंध न जाए, स्वार्थों के बाहर हो। मजदूर और अमीर के स्वार्थ के बाहर हो। राज्य एक मुक्त व्यवस्था हो, जिसका आर्थिक जगत से अपना कोई सीधा संबंध नहीं है। तब, तब आसान है, नहीं तो बहुत कठिनाई है।
मैं मानता हूं कि पूंजीवाद बहुत न्यायपूर्ण व्यवस्था है, लेकिन इसका
यह मतलब नहीं है कि जैसा पूंजीवाद है उसको न्यायपूर्ण सिद्ध कर रहा हूं। इसका यह मतलब नहीं है। अगर वह न्यायपूर्ण नहीं है तो उसका मतलब है वह अभी ठीक से पूंजीवाद ही नहीं है। अभी जो पूंजीवाद हमारे मुल्क में है वह पूंजीवाद भी कहां है? अगर तकलीफें हैं तो पूंजीवाद की तकलीफें नहीं हैं, पूंजीवाद के अविकसित रूप की तकलीफें हैं। जैसे छोटा बच्चा चलता है और गिर-गिर पड़ता है। यह पैरों की गलती नहीं है कि पैर काट दो, क्योंकि पैरों से बच्चा गिरता है। निश्चित ही पैरों से गिरता है बच्चा, जब गिरता है तो।

लेकिन जब चलेगा तब भी पैरों से ही चलेगा। पैरों से नहीं गिर रहा है, पैर कमजोर हैं और बच्चे के हैं। अभी चलने योग्य ताकतवर नहीं हो पाए हैं।
इस मुल्क में जो पूंजीवाद की तकलीफ है वह कमजोर पूंजीवाद है, बच्चा है बिल्कुल और उस बच्चे की हत्या की तैयारी चल रही है।
अमरीका में समाजवाद का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि पूंजीवाद सबल है। सिर्फ गरीब मुल्कों में समाजवाद का प्रभाव पड़ता है। क्योंकि वहां पूंजीवाद बिल्कुल निर्बल है। उसकी निर्बलता को वे पूंजीवाद का
दोष बतलाते हैं। वह पूंजीवाद का दोष नहीं है। अमरीका में नहीं दिक्कत होती। अमरीका में समाजवाद का कोई प्रमाव नहीं मालूम पड़ता। बढ़ना तो चाहिए अमरीका में प्रभाव बहुत, क्योंकि अमरीका सबसे ज्यादा पूंजीवादी है। लेकिन वहां कोई प्रभाव नहीं मालूम पड़ता।
कारण है इसका--पूंजीवाद सबल है। और उसने धीरे-धीरे अपनी असंगतियां दूर कर दी हैं। और जो असंगतियां रह गई है वह उन्हें दूर कर सकता है। अगर सहयोग की धारणा विकसित हो जाए--"कनसेप्ट ऑफ को-ऑपरेशन" अगर एक बार हमारे खयाल में ठीक से बैठ जाए कि सहयोग के अतिरिक्त देश का कोई भविष्य नहीं है। सहयोग के अतिरिक्त समाज का कोई भविष्य नहीं है। तो पूंजीवाद ठीक से विकसित हो सकता है। और उसमें जो खामियां हैं, उन खामियों को पूंजीवाद को बिना मिटाए खत्म किया जा सकता है। उसकी खामियां क्या हैं?
अब एक मित्र ने पूछा है कि आपके अच्छे-अच्छे विचारों से गरीबों को रोटी तो न मिल जाएगी?
यह मैंने कब कहा कि मेरे अच्छे विचारों से गरीबों को रोटी मिल जाएगी! लेकिन गरीब को रोटी मिले इसके लिए मैं ही जिम्मेवार हूं, गरीब जिम्मेवार नहीं हैं? यह मैंने कोई ठेका लिया है कि मेरे कहने से गरीब को रोटी मिले? कुछ ऐसा मान लिया गया है कि गरीब को मिलना चाहिए और किसी को देना चाहिए। क्यों किसी को देना चाहिए? यह ठेका है किसी का कि कोई दे! पेट तो गरीब का अपना है, रोटी मेरे विचार से मिले! पेट किससे लेता है गरीब, किससे मांग कर लाता है पेट को? जब पेट उसके पास है, हाथ उसके पास हैं तो वह कुछ करे। हां, इतना हो सकता है कि हम समाज से मांग करें कि उसे करने की सुविधा हो। वह कुछ करना चाहे तो सुविधाएं जुटाएं। लेकिन हम सुविधाएं तोड़ने में लगे हैं। जो थोड़ी बहुत सुविधाएं हैं उनको भी तोड़ने में लगे हैं।
जब से बंगाल में कम्युनिस्टों का प्रभाव हुआ है तो बंगाल का सारा उत्पादन गिर गया है। बड़े मजे की बात है कि मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी, तो माओ के पेम्फलेट से रोटी मिल जाएगी? मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी तो मार्क्स की कैपिटल से रोटी मिल जाएगी?
मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी तो हड़ताल से, घेराव से और दंगा-फसाद
से रोटी मिल जाएगी?
और ट्रामें जलाने से रोटी मिल जाएगी? थोड़ी-बहुत जो रोटी मिलती है, वह
भी खो जाएगी।
हां, गरीबी और हो जाए तो समाजवादी नेता के लिए बड़ा फायदा है। असल में गरीबी बढ़े तो समाजवाद के लिए फसल काटने का मौका कम हो जाता है। यह बड़े मजे की बात है--हमारी जिंदगी में बड़े विपरीत काम चलते हैं। अगर अनैतिकता बढ़े तो महात्मा बड़ा प्रसन्न होता है, क्योंकि उसे उपदेश देने का मौका बढ़ता है।
अगर सब नैतिक हो जाएं तो महात्मा आउट ऑफ प्रोफेशन, धंधे के बाहर हो जाए।
इसका कोई उपाय नहीं है।
इसलिए महात्मा कभी नहीं चाहेगा गहरे में कि सब लोग नैतिक हो जाएं।
कहें कितना, समझाएं कितना, लेकिन देखता रहेगा कि कहीं सब तो नहीं हुए जा रहे हैं। अगर सब हो जाएं तो महात्मा बेमानी हैं।
समाजवादी चिल्लाएगा बहुत कि गरीब की गरीबी मिटनी चाहिए। हालांकि उसे
यह पक्का पता है कि गरीब है इसलिए वह नेता है। जिस दिन गरीब गरीब नहीं है उसके नेता का कोई आधार नहीं रह जाएगा। इसलिए समाजवादी चिल्लाएगा कि गरीबी मिटाओ और कोशिश करेगा गरीबी बढ़ाने की और गरीबी बढ़ाएगा। जितनी गरीबी बढ़ेगी उतना नेतृत्व मजबूत होगा। जितनी गरीबी

बढ़ेगी उतने नेता के आपकों पैर पकड़ने पडेंगे। और धीरे-धीरे यह सिद्ध
कर देगा कि हमारे सिवाय तुम्हारी गरीबी कोई नहीं मिटा सकता।
और मजा यह है कि वह खुद गरीबी बढ़ाने में सहयोगी है। दावा कर रहा है वह
कि पूंजीपति गरीबी बढ़ा रहा है, और मैं आपसे कह रहा हूं कि हिंदुस्तान के सब समाजवादी मिल कर हिंदुस्तान की गरीबी बढ़ा रहे हैं।
अगर ये जितने भी समाजवाद की बातें कर रहे हैं इतने समाजवादी पूंजी के उत्पादन की फिकर करें तो यह गरीबी टूट सकती है, लेकिन वह समाजवादी के हित में नहीं है।
और भी एक सोचने जैसी बात है कि समाजवाद की सारी बातचीत गरीबी की तरफ
से नहीं आती। यह सारी समाजवाद की बातचीत जो है, फ्रस्ट्रेटेड इनटेलिजेंसिया की तरफ से की जाती है। यह बहुत ज्यादा संत्रस्त जो बुद्धिवादी हैं उनकी तरफ से आती है। गरीब की तरफ से नहीं आती।
एंजिल्स खुद एक पूंजीपति था। और मार्क्स पूरी जिंदगी किसी तरह का कोई श्रम किए हों, या मजदूर रहे हों, या कोई प्रोलिटेरिएट हों, ऐसा कोई भी नहीं कह सकेगा। एंजिल्स पूंजीपति था, उद्योगपति था, उसके ही पैसे से मार्क्स जिंदगी पर पला है। एक पूंजीपति के पैसे से ही पला है। लेकिन मार्क्स एक विचारशील व्यक्ति है। कहना चाहिए मार्क्स एक ब्राह्मण है।
दुनिया में जितने उपद्रव आते हैं वे सब ब्राह्मणों की तरफ से ही आती हैं। उसका कारण है। हिंदुस्तान में नहीं आए, उसका भी कारण है। हिंदुस्तान ने एक बहुत सिक्रेट तरकीब आज से पांज हजार साल पहले खोज निकाली थी और वह यह थी कि ब्राह्मणों को समाज का सिर-मौर बना दिया। कह दिया था कि ब्राह्मण सबके ऊपर, क्षत्रिय भी उसके पैर छुएगा। और सम्राट भी उसके झोपड़े पर पैर छूने आएगा। तो हिंदुस्तान का ब्राह्मण गरीब रहा, सदा गरीब रहा। ब्राह्मण के पास हिंदुस्तान में कभी संपत्ति नहीं रही। लेकिन उसकी गरीबी में भी उसकी अकड़ का कोई मुकाबला नहीं था। क्योंकि सम्राट भी उसके पैर छू रहे थे। हिंदुस्तान का ब्राह्मण तृप्त था, फ्रस्ट्रेटेड नहीं था। क्योंकि हिंदुस्तान के ब्राह्मणों को जितना आदर चाहिए उतना आदर उपलब्ध था। गरीबी सही जा सकती है। जो बुद्धिवादी हैं, इनटेलिजेंसिया हैं, वह गरीबी सह सकती है, तकलीफें सह सकती है, बीमारी सह सकती है--अहंकार की तृप्ति होनी चाहिए। यह अहंकार के लिए खिलाफत नहीं सह सकते। हिंदुस्तान बहुत होशियार है इस मामले में। सोशल मैकेनिक्स के मामले में हिंदुस्तान ने बड़ी होशियारी का काम किया जो पृथ्वी पर रूस ने अब किया है, और किसी मुल्क ने कभी नहीं किया। हिंदुस्तान ने उस आदमी से, जो उपद्रव करवा सकता है, उसको सबसे ज्यादा आदर दे दिया है। जैसे स्कूल में शिक्षक होशियार होता है तो सबसे शैतान लड़के को मानीटर बना देता है।
ब्राह्मण श्रेष्ठतम है। भीख मांगता रहे ब्राह्मण, लेकिन उसके पैर पर सम्राट भी झुकता था ब्राह्मण तृप्त था। उसकी कोई कठिनाई नहीं रही। इसलिए हिंदुस्तान में कोई क्रांति न हो सकी। क्योंकि क्रांति करवाए कौन, शूद्र? शूद्र क्या क्रांति करेगा? शूद्र यानी प्रोलिटेरिएट। शूद्र यानी सर्वहारा, शूद्र यानी मजदूर, शूद्र यानी शोषित, जिसको आज हम ये सब नाम दे रहे हैं।
वह शूद्र कभी क्रांति का एक स्वर नहीं उठा पाया, पांच हजार साल के लंबे इतिहास में। भारत में करोड़ों शूद्रों में से एक ने भी उपद्रव नहीं किया। तो बात सोचने जैसी है कि बात क्या थी? भड़काने वाला ब्राह्मण तृप्त था।
अंग्रेजों ने आकर पहली दफा ब्राह्मण को तृप्त नहीं किया, और खतरे शुरू हो गए। अगर अंग्रेज मनु महाराज की तरकीब समझ जाते तो हिंदुस्तान में कोई क्रांति नहीं हो सकती थी, ब्रिटिश साम्राज्य सदा रहता।
हिंदुस्तान के ब्राह्मणों को अंग्रेज तृप्त नहीं कर पाए। और जो नये ब्राह्मण अंग्रेज ने पैदा कर दिए कालेज, स्कूल, इन सबकी शिक्षा से-- अंग्रेज ने नया इनटेलिजेंसिया पैदा कया। जो बुद्धिमान है, विचार कर सकता है, लेकिन न श्रम कर सकता है, न उसके पास पूंजी है। न वह मजदूर है, न वह पूंजीपति है। या तो स्कूल का शिक्षक है या दफ्तर का क्लर्क है या कोई

कालेज का प्रोफेसर है या किसी अखबार में संपादक है या पत्रकार, वह गरीब नहीं है। मजदूर नहीं है, मजदूर के अर्थ में। और पूंजीपति नहीं है, पूंजी उसके पास नहीं है। महत्वाकांक्षा है उसके पास पूंजीपति से ऊपर होने की, पर हालत है उसकी मजदूर से नीचे होने की।
यह आदमी उपद्रवी है। यह सारे समाजवाद की बातें करेगा, कम्युनिज्म की बातें करेगा, ये सारी दुनिया में। लेकिन रूस ने पचास सालों में उसी ट्रिक का उपयोग किया जो हिंदुस्तान में वर्ण व्यवस्था ने किया था। रूस ने उन्नीस सौ सत्तर के बाद से रूस की इनटेलिजेंसिया को सर्वाधिक आदर का पात्र बना दिया। रूस में एक मिनिस्टर होने से ज्यादा एक एकेडेमीशियन होना महत्वपूर्ण हो गया।
रूस में ब्राह्मण बुद्धिवादी आज सर्वाधिक आदृत व्यक्ति हैं। मजदूर में क्रांति का भाव नहीं रहा। मजदूर जाए भाड़ में, बुद्धिवादी को उससे कोई मतलब नहीं है कभी। लेकिन बुद्धिवादी की अगर महत्वाकांक्षा तृप्त हो जाए तो दुनिया में कोई क्रांति--क्रांति की कोई बात भी नहीं करता। हिंदुस्तान की तकलीफ असल में गरीब और अमीर के बीच का संघर्ष नहीं है। हिंदुस्तान की तकलीफ हिंदुस्तान की फ्रस्ट्रेटेड इनटेलिजेंसिया का है। हिंदुस्तान का अतृप्त ब्राह्मण है। और हिंदुस्तान का ब्राह्मण है। और हिंदुस्तान का ब्राह्मण सर्वाधिक अतृप्त है, क्योंकि पांच हजार साल के शानदार जमाने उसने देखे हैं, इसलिए वह सर्वाधिक अतृप्त है। उससे अधिक अतृप्त ब्राह्मण दुनिया में कोई नहीं हो सकता।
स्वभावतः बुद्धिवादी उपद्रव खड़े करेगा। और बुद्धिवादी उपद्रव के अतिरिक्त और कुछ बहुत ज्यादा खड़ा कर भी नहीं सकता। बगावती बातें कर सकता है। ये उसके अपने भीतरी तनाव हैं जो वह प्रकट कर रहा है। यह उसकी भीतरी परेशानियां हैं, जो वह समाज में फैला रहा है। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह समाजवाद की सारी बातजीत दो तलों से पैदा हो रही हैं। एक तो हिंदुस्तान का अतृप्त, परेशान संत्रस्त बुद्धिवादी--और दूसरा हिंदुस्तान का महत्वाकांक्षी राजनैतिक। ये दो आदमी बात कर रहे हैं। इन दोनों के पास हिंदुस्तान के आर्थिक विकास की न कोई कामना है, और न कोई सवाल है। इन दोनों के पास हिंदुस्तान के भविष्य का न कोई नक्शा है, न कोई सपना है। इन दोनों के पास इस स्थिति का, मौजूदा स्थिति का शोषण है।
मैं आपसे कहूंगा कि बुद्धिवादी मुल्क की तनावग्रस्त स्थिति का शोषण करता है। वह लड़ नहीं सकता, क्योंकि खुद ही लड़ सकता तो बात ही और हो जाए, वह भी सर्वहारा हो जाए। लेकिन किसी को लड़ा सकता है। और जिस दिन क्रांति सफल हो जाए, समाजवादी क्रांति, उस दिन मजदूर ताकत में नहीं पहुंचता। उस दिन बुद्धिवादी ताकत में पहुंच जाता है। स्टैलिन से ज्यादा स्कॉलैस्टिक-- शास्त्रीय आदमी खोजना मुश्किल है। जितना स्टैलिन स्क्रिप्चर उद्धृत कर सकता है उतना कोई आदमी कम ही कर सकता है। अगर स्टैलिन कि किताब देखें तो वह सिर्फ उद्धरण है। मार्क्स, लेनिन और एंजिल्स इसके उद्धरण हैं।
स्टैलिन पक्का ब्राह्मण है। अगर स्टैलिन से बचता, तो ट्राटस्की के
साथ में जाता जो महाब्राह्मण था। जो उससे भी ज्यादा स्कॉलैस्टिक था। कौन मजदूर ताकत में आ गया हैं? दुनिया में कौन मजदूर ताकत में आ गया है? माओ पक्का ब्राह्मण है। शास्त्र की भाषा है सब, पूरी। पेकिंग में और क्रैमलिन में जो झगड़ा है वह मक्का और काशी जैसा झगड़ा है। दो तीर्थस्थान लड़ रहे हैं, शास्त्र की व्याख्या के लिए, कि शास्त्र की व्याख्या क्या है! माओ का दावा है, जो हमारी व्याख्या है, वही शास्त्रीय है। और मास्को का दावा है, तुम्हारी शास्त्रीय कैसे हो सकती है जबकि हमारा क्रैमलिन बहुत अनादि है, बहुत सनातन है, तुम तो पीछे आए! तुम तो अभी बच्चे हो, हम तो बड़े अनुभवी हैं। हम जो कहते हैं, उसको मानो। तो मास्को का रुख पेट्रोनाइजिंग है। उससे माओ को तकलीफ होती है कि आप कुछ पितामह बनने की कोशिश कर रहे हैं। ऊपर हाथ रखना चाहते हैं। वही उपद्रव है।
यह दो शास्त्रों का झगड़ा है, व्याख्या का। दुनिया भर में मजदूर मजदूर
ही रहेगा, मैं आपसे कहना चाहता हूं। ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि वह अपना मालिक बदल ले। और मैं आपसे कहूंगा कि पूंजीपति मालिक उतने खतरनाक

नहीं हैं जितना बुद्धिवादी मालिक खतरनाक सिद्ध होगा। इसके कारण हैं। अगर ब्राह्मण के चेहरे को देखें तो ब्राह्मण के चेहरे में तलवार होती है, क्षत्रिय के हाथ में होती है। ब्राह्मण के नाक में तलवार होती है ब्राह्मण की आंखमें तलवार होती है। क्षत्रिय के हाथ में तलवार होती है जो कभी-कभी हाथ से रखनी पड़ती है, विश्राम भी करना पड़ता है। जो नाक में तलवार होती है उसे रखने की भी कोई जरूरत नहीं, वह चौबीस घंटे साथ रहती है, सोते में भी।
ब्राह्मण के हाथ में अगर पूरी ताकत चली जाए तो वह जितना क्रूर, जितना हिंसक हो सकता है, उतना दुनिया में कोई सिद्ध नहीं हो सकता है। इसलिए स्टैलिन इतना क्रूर और हिंसक सिद्ध हो सका, क्योंकि वह ब्राह्मण है। माओ इतना क्रूर और हिंसक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि वह ब्राह्मण है।
थोड़ा सोच कर बुद्धिवादियों के हाथ में ताकत देना। असल में पूजीपति जो
है वह वैश्य है। बनिए से बहुत कठोरता की आशा नहीं की जा सकती। वैश्य के बहुत हिंसक होने की संभावना नहीं है, क्योंकि उसके हिंसक होने का खयाल ही उसे कठिनाई में डाल देता है। मेरे हिसाब से पूंजीवाद वैश्यों की व्यवस्था है, समाजवाद ब्राह्मणों की व्यवस्था है। सामंतवाद क्षत्रियों की व्यवस्था थी, और शूद्रों की व्यवस्था कभी नहीं हो सकती। बस इन तीन के बीच निरंतर चुनाव चल रहा है। कभी क्षत्रिय हावी हो जाते हैं, वे जो लड़ सकते हैं उनका वक्त गया। कभी व्यवसायी हावी हो जाते हैं, वे जो कमा सकते हैं, धन पैदा कर सकते हैं। और कभी ब्राह्मण हावी हो सकते हैं, जो केवल सोच सकते हैं। न तलवार चला सकते हैं, न धन पैदा कर सकते हैं, सिर्फ सोच सकते हैं। और जो सोचने वाले लोग हैं उनकी कठोरता का कोई हिसाब नहीं। क्योंकि उनके मन में व्यक्ति नहीं होते हैं, तर्क होते हैं। जैसे कि मिलिटरी में होता है, एक आदमी मर जाए तो कहते हैं नंबर नौ गिर गया। वह आंकड़ा है। कोई आदमी नहीं मरता है। अब आदमी मरे तो उसकी पत्नी भी होती है, मां भी होती है, बेटा भी होता है। नंबर नौ की कोई मा नहीं होती है। कोई मां मां नहीं होती, कोई बेटा बेटा नहीं होता है। नंबर नौ!
तो ब्राह्मण के हाथ में अभी तक कहीं ताकत नहीं आई और पहली दफे सोशलिज्म तथा कम्युनिज्म ने ताकतें दी हैं। और ब्राह्मण की ताकत लेने में जो रास्ता बना था वह क्या था--वह तलवार चला नहीं सकता था--धन वह कमा नहीं सकता था, शूद्र को वह भड़का सकता है, दीन को, गरीब को, दरिद्र को भड़का सकता है--यही उसकी तलवार है, यही उसका धन है।
ब्राह्मण सारी दुनिया में हावी होने की कोशिश करते हैं। और मैं मानता हूं, क्षत्रिय उतना खतरनाक नहीं हैं। क्षत्रिय कभी दया भी करता है। असल में यह तलवार चलाता है, तलवार के साथ-साथ उसके चित्त में दया भी पैदा होनी शुरू होती है।
यह बड़े मजे की बात है कि जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय के बेटे हैं। इनमें एक भी ब्राह्मण का बेटा नहीं है। जिन लोगों ने इस मुल्क को अहिंसा का पाठ दिया वे क्षत्रिय के बेटे हैं, ब्राह्मण के बेटे नहीं हैं और जिस आदमी ने इस मुल्क में सबसे ज्यादा हिंसा की वह है, परशुराम। जिसने क्षत्रियों से खाली कर दिया पूरी पृथ्वी को, वह ब्राह्मण है। थोड़ा सेचने जैसा है--यह एकदम प्रासंगिक है, अप्रासंगिक नहीं मालूम होता। यह सांयोगिक, को-इनसीडेंटल नहीं मालूम होता।
जिस आदमी ने इस पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया, वह ब्राह्मण है! और जिन लोगों ने दुनिया को शांति और अहिंसा की बात कही वे सब क्षत्रिय हैं। बुद्ध भी क्षत्रिय के बेटे हैं और जैनियों के चौबीस तीर्थंकर भी क्षत्रियों के बेटे हैं!
इस सब पच्चीस क्षत्रियों ने दुनिया को अहिंसा का खयाल दिया। एक भी ब्राह्मण ने अहिंसा का खयाल नहीं दिया।
तीसरी व्यवस्था है--व्यवसायी की, धनपति की, पूंजी पैदा करने वाले की।
और यह पूंजी पैदा करने वाले की व्यवस्था सर्वाधिक मानवीय है, कई कारणों से।

क्योंकि तलवार सबको सुख नहीं दे सकती है। लेकिन धन अंततः सबके सुख का आधार बन जाता है और पहली दफा वैश्यों ने, कैपिटलिज्म ने दुनिया को सर्वाधिक संपन्नता और सुख दिया है। अब ब्राह्मण पीड़ित है। और वह ब्राह्मण कोशिश कर रहा है शूद्र को भड़काने की। लेकिन समझ लें...

मजदूर समझ ले, सर्वहारा, कि वह कभी पहुंच सकता। उस जगह नहीं पहुंच सकता इसलिए कि वह सर्वहारा इसलिए है कि वह न धन पैदा कर सकता है, न तलवार चला सकता है, न यह विचार कर सकता है। कभी तलवार के नीचे दबना पड़ता है उसे कभी धन के नीचे दबना पड़ता है उसे, कभी विचार के नीचे दबना पड़ता है।
मेरी अपनी समझ में तीनों दबावों में धन का दबाव सर्वाधिक न्यून है।
और बहुत से प्रश्न हैं। कल संध्या उनकी बात करना चाहूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का चौदहवां प्रवचन

लोकशाही समाजवादः एक भ्रांत धारणा

मेरे प्रिय आत्मन्!
बहुत से सवाल बाकी रह गए हैं और अंतिम चर्चा होने के कारण मैं अधिकतम सवालों के संबंध में बात करना पसंद करूंगा, इसलिए सवालों के जवाब संक्षिप्त ही हो सकेंगे।
बहुत से मित्रों ने पूछा है कि आप समाजवाद और साम्यवाद का पर्यायवाची
की तरह प्रयोग कर रहे हैं। क्या दोनों में भेद नहीं मानते हैं?
भेद मानता हूं। जैसे टी. बी. के स्टेजेस होते हैं वैसा ही भेद मानता हूं। समाजवाद बीमारी की पहली स्टेज है। साम्यवाद उसकी अंतिम स्टेज है। इधर से मरीज शुरू समाजवाद से करता है, मरता साम्यवाद में है। भेद तो है, लेकिन एक ही बीमारी बढ़ी हुई अवस्था का भेद है। मगर कोई बुनियादी भेद नहीं है। और जो लोग समझाने की कोशिश करते हैं कि समाजवाद साम्यवाद से भिन्न चीज है वे केवल साम्यवाद के नाम पर... ! साम्यवाद के नाम के साथ एक बदनामी जुड़ गई है। उस बदनामी को काटने को नये नाम का प्रयोग कर रहे हैं, अन्यथा कोई फर्क नहीं है।
समाजवादी चेहरे के पीछे साम्यवादी हाथ है।
एक सवाल और बहुत से मित्रों ने पूछा है कि क्या लोकशाही समाजवाद, डेमोक्रेटिक सोशलिज्म की आप बात नहीं करेंगे, क्या वह उचित नहीं हैं? असल में समाजवाद और लोकशाही में विरोध है--कंट्राडिक्शन इन टर्म्स-- लोकशाही और समाजवाद का कोई संबंध नहीं। लोकशाही समाजवाद हो ही नहीं सकता? क्यों नहीं हो सकता! क्योंकि डेमोक्रेसी, लोकशाही का पहला नियम है कि बहुमत अल्पमत पर हावी न हो सके, अल्पमत के हितों को नुकसान न पहुंचे।
एक व्यक्ति के अल्पमत के हित को भी नुकसान नहीं पहुंचना चाहिए। वह लोकतंत्र का आधार है। पूंजीवादी, अल्पमतीय वर्ग है और पूंजीवाद को नुकसान पहुंचाना लोकशाही की हत्या करना है। लोकशाही-समाजवाद का कोई अर्थ नहीं होता। समाजवाद बुनियादी रूप से वर्गीय है, इसलिए वह डेमोक्रेटिक नहीं हो सकता।
समाजवाद की मौलिक दृष्टि पूरे समाज को एक मानने की नहीं है। समाजवाद
की मौलिक दृष्टि सबका उदय हो, ऐसी नहीं है। समाजवाद की मौलिक दृष्टि एक वर्ग के पक्ष में दूसरे वर्ग का विनाश करने की है। इसलिए समाजवाद लोकशाही से कैसे संबंधित हो सकता है? लोकशाही मनुष्य के समाज को एक मान कर चलती है। मनुष्य का पूरा समाज एक है। डेमोक्रेसी समाज को वर्गों में विभाजित नहीं करती और जिस दिन आप वर्गों में विभाजित करते हैं--वे वर्ग चाहे कोई भी हों, अगर कोई हमारे मुल्क में लोकशाही-हिंदुवाद का हम प्रचार करना चाहते हैं, तो वह गलत होगा। क्योंकि लोकशाही-हिंदुवाद जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, क्योंकि मुसलमान का क्या होगा? अगर पाकिस्तान में कोई कहे कि लोकशाही-इस्लाम का प्रचार कर रहे हैं, तो बात गलत होगी। लोकशाही जब किसी भी वर्ग के साथ जुड़ती है तो गलत हो जाती है। लोकशाही अवर्गीय है। लोकशाही वर्गातीत है।
लोकशाही "बियांड क्लासेस" है। चाहे धर्म का वर्ग हो, चाहे धन का वर्ग हो, चाहे शिक्षा का वर्ग हो, लोकशाही किसी वर्ग को स्वीकार नहीं करती। मनुष्य को वर्ग-मुक्त स्वीकार करती है। इसलिए लोकशाही और समाजवाद का कोई संबंध नहीं हो सकता। डेमोक्रटिक सोशलिज्म सिर्फ धोखे का शब्द है।
असल में समाजवाद के साथ तानाशाही अनिवार्य रूप से जुड़ी है। अब वह तानाशाही बहुत बदनाम हो गई है। इसलिए लोकशाही शब्द का प्रयोग करना जरूरी हो गया है। लेकिन शब्दों से धोखा देना बहुत मुश्किल है। लेबल बदल देने से आत्माएं नहीं बदल जातीं। जैसे कोई तलवार के ऊपर अहिंसावादी तलवार लिख दे तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
समाजवाद और लोकतंत्र विरोधी धारणाएं हैं। लोकतंत्र बुनियादी रूप से पूंजीवादी समाज व्यवस्था की आधारशिला है। और अगर समाजवाद को लाना है तो

लोकशाही को मिटाना ही पड़ेगा। हां, यह हो सकता है कि कोई एक बार में न मिटाए, कोई धीरे-धीरे मिटाए। जो एक बार में मिटाते हैं उनको लोग कम्युनिस्ट कहते हैं। जो धीरे-धीरे मिटाते हैं, उनको लोग सोशलिस्ट कहते हैं। कुछ लोग होते हैं न! कुछ लोग ऐसे बकरे को मारकर खाने को धार्मिक मानते हैं जो एक ही झटके में मार डाला जाए। और कुछ लोग एक ही झटके में मारे गए बकरे को खाना अधार्मिक मानते हैं। वह धीरे-धीरे घिस-घिस कर मारते हैं।
समाजवाद जो है वह लोकतंत्र को घिस-घिस कर मारना है और साम्यवाद जो है
वह झटके से मारना है। पता नहीं परेशानी किस में ज्यादा होगी? बकरे से अब तक पूछा नहीं गया। यह बकरा खानेवालों के निर्णय हैं कि कौन सा ठीक रहेगा। लोकशाही समाज का कोई अर्थ नहीं है। वह शब्द ही अनर्थ है। इसलिए मैंने उसकी बात नहीं की है।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि समाजवाद का आप विरोध करते हैं तो क्या
आप समानता के विरोधी हैं?
मैं समानता का विरोधी नही हूं। लेकिन समानता अमनोवैज्ञानिक तथ्य है। समानता कहीं है नहीं, वह तथ्य नहीं है। और किसी दिन हो सकती है, यह भी संभव नहीं है। मनुष्य अनिवार्यरूपेण असमान है। हम कितनी ही आकांक्षा करें और हम कितनी ही प्रार्थना करें और हम कितना ही उपाय करें, मनुष्य की प्रकृति असमान है। मनुष्य जन्म से असमान है। समानता कल्पना से ज्यादा नहीं है। समान दो व्यक्ति भी नहीं हैं, न हो सकते हैं। अगर हम बुद्धि की माप करें तो... अब तो बुद्धि के मापने के लिए उपाय हैं। तो हम भलीभांति जानते हैं कि ईडियट से लेकर जीनियस तक, जड़ से लेकर मेधावी तक बड़ा अंतर है। और आप अगर बायोलाजिस्ट से, जीवशास्त्री से पूछें तो वह कहेगा कि कोई उपाय अब तक तो नहीं है कि जड़बुद्धि को प्रतिभाशाली कैसे बनाया जाए!
जड़बुद्धि बिल्ट इन प्रोग्रेम लेकर आता है। वह जो मां के पेट में जो अणु हैं उसमें "बिल्ट इन प्रोग्रेम" है कि यह आदमी जड़बुद्धि होगा। जब तक हम मनुष्य के वीर्यकण में रासायनिक परिवर्तन करने में समर्थ नहीं होते तब तक हम मनुष्यता को समान नहीं बना सकते। मनुष्यता असमान रहेगी। और जिस दिन वैज्ञानिक मनुष्य के वीर्यकण में प्रवेश कर जाएगा उस दिन मनुष्यता नहीं रह जाएगी, समानता तो आ जाएगी। उस दिन मशीनें रह जाएंगी। तो दो ही विकल्प हैं--या तो असमान मनुष्य को स्वीकार करो या समान मशीनों का निर्माण करो। इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।
जिस दिन वैज्ञानिक बच्चे के अणु में प्रवेश कर जाएगा और रासायनिक फर्क कर सकेगा और यह तय कर सकेगा कि यह गोरा हो कि काला, वह लंबा हो कि ठिगना, इसका बुद्धि-माप, आई. क्यू. कितना हो, जड़बुद्धि हो या प्रतिभाशाली हो, क्रोधी हो कि अक्रोधी हो--जिस दिन रासायनिक प्रकिया से व्यक्ति के अणु बीज में अंतर किया जा सकेगा उस दिन आदमी को आदमी कहना उचित होगा? नहीं, वह उचित नहीं होगा। वह फैक्ट्री प्रोडक्ट हो जाएगा। कारखाने में बनी चीज हो जाएगा। तब आदमी को हम लिख सकेंगे कि "मेड इन इंग्लैंड" कि "मेड इन जर्मनी" कि "मेड इन इंडिया"। वैसे कई लोग हिंदुस्तान में बनाएंगे लेकिन लिखेंगे, "मेड ए.ज जर्मनी"--"एज" जरा छोटा लिखेंगे।
आदमी असमान है। यह तथ्य चाहे दुखद हो। यह तथ्य है, इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। आदमी की असमानता इतनी गहरी है कि पूरी मनुष्यता समान हो--यह तो दूर, दो आदमी भी समान नहीं खोजे जा सकते। लेकिन इसका क्या मतलब? इसका मतलब यह नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर न मिले। नहीं, मैं यह नही कह रहा हूं।
असल में समाजवाद में प्रत्येक व्यक्ति को एक समान अवसर नहीं मिल सकेगा, सिर्फ पूंजीवाद में ही मिल सकता है। इसे थोड़ा समझना जरूरी होगा। क्योंकि समाजवाद जिनके दिमाग में भर गया है, वे सोचना ही भूल गए हैं। फोर्ड या रॉकफेलर या मार्गन या टाटा-बिड़ला समाजवाद में पैदा नहीं हो सकेंगे। इनके लिए कोई अवसर नहीं होगा। लेकिन फोर्ड किसी मार्क्स से कम नहीं है। उसकी अपनी विशिष्टता है। धन पैदा करने की जो लोग क्षमता लेकर पैदा होते हैं, सभी लोग लेकर पैदा नहीं होते। जो लोग धन पैदा करने की

क्षमता लेकर पैदा होते हैं उनके लिए समाजवाद में कौन-सा अवसर होगा? इनके लिए कोई अवसर नहीं होगा! समानता के अवसर की बात बड़ी बेमानी मालूम पड़ती है। समाजवाद में विद्रोही व्यक्तित्त्व के लिए कौन-सा अवसर होगा? अगर मार्क्स सोवियत रूस में पैदा होना चाहे तो नहीं हो सकता। नहीं तो पचास साल में सोवियत रूस ने एकाध तो मार्क्स पैदा किया होता। पूंजीवादी मुल्क ने मार्क्स पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने लेनिन पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने स्टैलिन पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने ट्राटस्की पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने दुनिया के सब समाजवादी पैदा किए। पचास साल के समाजवादी रूस ने मार्क्स की या लेनिन की या ट्राटस्की की हैसियत का एक आदमी पैदा किया? यह बड़े मजे की बात है। पचास साल में रूस में तो पचासों मार्क्स की हैसियत के आदमी पैदा होने चाहिए। लेकिन मार्क्स भी रूस में पैदा नहीं हो सकता। तो उसका कारण विद्रोह व्यक्तित्त्व के लिए रूस में कोई अवसर नहीं है। यह जो रिबेलियस माइंड है उसके लिए कोई अवसर नहीं है। रूस में बुद्ध भी पैदा नहीं हो सकते, महावीर भी पैदा नहीं हो सकते, कृष्ण भी पैदा नहीं हो सकते। लेकिन लोग कहते हैं समाज सबको समान अवसर देगा, मुझे नहीं दिखाई पड़ता। यह सोचने जैसी बात है कि उन्नीस सौ सत्रह के पहले के रूस ने बड़े अदभुत लोग पैदा किए, अनेक दिशाओं में। कुछ दिशाओं में रूस हावी हो गया--दोस्तोवस्की या तुर्गनेव या चेखोव या गोर्की या गोगोल-- सारे के सारे, टाल्सटाय, ये सारे प्रतिभा के ये धनी लोग उन्नीस सौ सत्रह के पहले पैदा हुए। और ऐसी स्थिती हो गई उन्नीस सौ सत्रह में, अगर दुनिया में लिखी गई दस किताबों का नाम लेना पड़े तो कम से कम पांच रूसी किताबों का नाम लेना पड़े--पांच सारी दुनिया की और पांच रूस की। लेकिन उन्नीस सौ सत्रह के बाद दोतोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, टालस्टाय, गोगोल की हैसियत का एक आदमी भी रूस नहीं पैदा कर सका। उसका कारण है। क्योंकि प्रतिभा सदा ही विद्रोही होती है। सिर्फ जड़बुद्धि विद्रोही नहीं होते। अगर हम इडियट्स का एक समाज बना सकें तो वह कोई विद्रोही नहीं होगा। प्रतिभा सदा विद्रोही होती है। लेकिन विद्रोह का कोई मौका समाजवाद में नहीं है। क्योंकि स्वतंत्र विचार का कोई मौका समाजवाद में नहीं है।
पचास वर्षों में रूस में कोई बड़ी इंटेलेक्चुअल कंट्रोवर्सी नहीं हुई। कोई बड़ा बौद्धिक विवाद नहीं चला। क्योंकि रूस पचास साल से बौद्धिक विवाद का उत्तर तलवार से देता है, बंदूक से देता है। बौद्धिक विवाद कैसे चलता?
मैं नहीं मानता हूं कि समाजवाद सबको समान अवसर देता है। नहीं, समाजवाद सबको अवसर नहीं देता। असल में पूंजीवाद सब तरह के लोगों को-- क्योंकि पूंजीवाद के पास कोई जड़-यांत्रिक व्यवस्था नहीं है, पूंजीवाद एक स्वतंत्रता है--सब तरह के व्यक्तियों को पूंजीवाद सुविधा देता है कि वह विकसित हो सके।
जो लोग धन पैदा करना चाहते हैं--उन्हें, जो लोग धर्म का अनुभव करना चाहते हैं--उन्हें, जो लोग काव्य के जगत में प्रवेश करना चाहते हैं-- उन्हें, जो चित्र बनाना चाहते हैं--उन्हें... पिकासो की हैसियत का एक चित्रकार भी रूस ने पैदा नहीं किया पचास साल में। उसके कारण है। क्योंकि रूस की सरकार तय करती है कि चित्रकार क्या बनाए, और सरकार प्रोडक्टिव चीजों में भरोसा करती है, अनप्रोडक्टिव चीजों में नहीं।
सरकार कहती है, उत्पादन बढ़ता हो, ऐसा कोई चित्र बनाओ। और उत्पादन बढ़ता हो, ऐसी कोई कविता लिखो। उत्पादन बढ़ता हो, ऐसा कोई उपन्यास रचो। खेत, किसान, ट्रैक्टर यही तुम्हारे सोच-विचार के क्षेत्र हों। कहानी इनके इर्द-गिर्द घूमे। इसलिए रूस ने पचास साल में जितनी किताबें लिखी हैं उतनी बोर्डम से भरी किताबें
दुनिया के इतिहास में कभी नहीं लिखी गई। क्योंकि वही खेत, वही ट्रैक्टर, वही कथा, वही उत्पादन, इसके सिवाय कुछ भी नहीं है। जैसे जिंदगी सिर्फ खेत है, जैंसे जिंदगी ट्रैक्टर है!
पूंजीवाद सभी तरह के विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्नता का मौका देता है। और किसी की विभिन्नता पर कोई रोक नहीं लगाता। और प्रत्येक व्यक्ति

अपना मार्ग खोजने के लिए मुक्त है। लेकिन आप कहेंगे कि रास्ते में बड़ी बाधाएं पड़ती हैं। हमें कोई बाधा नहीं चाहिए। आप कहेंगे कि गरीब आदमी इसी वक्त करोडपति होना चाहता है। उसके लिए पूंजीवाद में कहां सुविधा है?
कभी पूछा कि समाजवाद में सुविधा है? नहीं, यह खयाल में नहीं आया होगा।
एक गरीब आदमी पूंजीपति होना चाहता है इसी वक्त, पूंजीवाद में कहां सुविधा है!
पूंजीवाद में सुविधा है। इसी वक्त होना तो मुश्किल है, लेकिन किसी वक्त हो सकता है। समाजवाद में किसी वक्त भी नहीं हो सकता। इस वक्त तो हो ही नहीं सकता, किसी वक्त भी नहीं हो सकता।
स्वभावतः एक दिन में न पूंजीपति पैदा होते हैं, न एक दिन में चित्रकार पैदा होते हैं, न एक दिन में दार्शनिक पैदा होते हैं। न तो बुद्ध पैदा होते हैं एक दिन में, न फोर्ड पैदा होता है एक दिन में, न आइंस्टीन पैदा होते हैं एक दिन में। जिंदगी भर की लंबी यात्रा है। लंबा श्रम है, लंबी सृजनात्मक चेष्टा है। और उस चेष्टा में निश्चय ही प्रतियोगिता है। क्योंकि आप अकेले ही तो पूंजीपति नहीं होना चाह रहे हैं, पचास करोड़ के मुल्क में पचास करोड़ लोग पूंजीपति होना चाहते हैं।
नहीं, पूंजीवाद आपको नहीं रोक रहा है पूंजीपति होने से। जितनी पूंजी
है वह कम है और जितने लोग पूंजीपति होना चाह रहे हैं वे बहुत हैं। इसलिए स्वभावतः सभी लोग पूंजीपति नहीं हो सकते हैं।
इस मुल्क में एक आदमी राष्ट्रपति हो सकता है, हालांकि पचास करोड़ आदमी राष्ट्रपति होना चाहते हैं। पचास करोड़ आदमी राष्ट्रपति नहीं हो सकते। और अगर पचास करोड़ को राष्ट्रपति बनाना हो तो फिर राष्ट्रपति ही नहीं होगा। जीवन एक प्रतियोगिता है। अब सवाल यह है कि प्रतियोगिता स्वतंत्र होनी चाहिए। पूंजीवाद में स्वतंत्र है, समाजवाद में स्वतंत्र नहीं है।
असल में समाजवादी व्यवस्था तय करेगी कि आप क्या पढ़े, क्या सोचें, क्या करें। निर्णायक आप नहीं होंगे।
पूंजीवाद आपको पूरा मौका देता है कि आप जो होना चाहें--हां, लेकिन बहुत लोग असफल हो जाते हैं,--होंगे ही। सभी लोग सफल नहीं हो सकते। जो असफल हो जाते हैं, वे सोचते हैं कि हम पर बड़ी ज्यादती हो रही है। जो असफल हो जाते हैं, वे सोचते हैं, जो लोग सफल हो गए; चालाक, बेईमान, धोखेबाज, शोषक हैं। बड़े मजे की बात है--अगर वे भी सफल हो गए होते तब? तो दूसरे उनके संबंध में सोचते कि चालाक, बेईमान, चोर हैं।
असल में असफल हमेशा सफल हो गए आदमी को गालियां देना पसंद करता है। इससे उसके मन को बड़ी राहत और कंसोलेशन मिलता है, हर्जा भी नहीं है। गाली दें तो कोई हर्जा नहीं है। लेकिन उसका वाद बनायें, तब खतरे शुरू हो जाते हैं।

अब एक मित्र ने पूछा कि एक करोड़पति अपनी मेहनत से धन कमा लेता है। वह
तो ठीक है, लेकिन उसका बेटा भी तो मालिक हो जाता है?

उसका बेटा उसने पैदा किया है वह बेटा। उसने धन भी पैदा किया--किया! उसने बेटा भी पैदा किया है।
दोनों के बीच कुछ संबंध होना चाहिए कि नहीं होना चाहिए। शायद हमारा खयाल यह हो कि धन पैदा करे और बेटा हम पैदा करें, दोनों के बीच कोई संबंध हो। यह अन्यायपूर्ण दिखाई पड़ता है। पूछा इसी ढंग से गया है कि कितना बड़ा अन्याय हो रहा है। उसने कमाया था, मान लिया, लेकिन उसके बेटे ने तो नहीं कमाया था। लेकिन बेटा उसका है। यह बेटा तो उसी ने कमाया है। शायद आप सोचते हों, यह ज्यादा न्यायपूर्ण होगा कि धन किसी का हो और बेटा किसी का हो। नहीं, वह कैसे न्यायपूर्ण हो जाएगा? अगर यह अन्यायपूर्ण है तो दूसरी बात तो बिल्कुल अन्यायपूर्ण हो जाएगी।
गरीब एक बेटे को पैदा कर रहा है। उसे दस दफे सोचना चाहिए बेटा पैदा करते वक्त क्योंकि वह बेटे को सिवाय गरीबी के और क्या दे जाएगा? नहीं, लेकिन वह बेटा खड़ा होकर अपने बाप से शिकायत न करेगा कि तुमने मुझे क्यों

पैदा किया, वह शिकायत करेगा कि वह बड़े आदमी का बेटा क्यों धन लूट रहा है।
शिकायत अपने बाप से करनी चाहिए, और तो किसी से करने का कोई उपाय नहीं है।
वैसे बाप से करना बेमानी है, क्योंकि बात हो ही गई है और शिकायत का कोई उत्तर नहीं है।
अगर बाप से शिकायत हो तो बेटे को पैदा करते वक्त खयाल करना, इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। जब अपना बेटा पैदा करने लगो तब सोचना कि बेटे को क्या दे जाऊंगा। अगर दुनिया के गरीब बेटे को पैदा करते वक्त एक दफा सोच लें कि बेटे को क्या दे जायेंगे, तो दुनिया में इतनी गरीबी न हो। लेकिन गरीब बिल्कुल बेफिकर है। उसे बेटा पैदा करते वक्त बिल्कुल फिक्र नहीं होती।
एक सज्जन अभी कोई दो-तीन महीने हुए, मेरे पास आए। अब हम कैसी मुश्किल में पड़ते हैं। कभी-कभी मेरी बातें बिल्कुल कठोर मालूम पड़ती हैं, लेकिन मजबूरी है। क्योंकि सत्य जैसा है, वैसा है, वह कठोर भी हो सकता है। वे सज्जन आए और मुझसे कहने लगे कि मेरी कुछ सहायता कीजिए। मुझे अपनी बेटी का विवाह करना है। मैंने कहा, तुम बेटी को पैदा करते वक्त मेरे पास सहायता के लिए बिल्कुल नहीं आए। तुम बेटी पैदा करो, मेरी कोई गलती है इसमें। कितनी बेटियां हैं तुम्हारी? सात बेटियां हैं, उन्होंने कहा। सब अच्छे आदमी सहायता कर रहे हैं। मैंने कहा, जो अब सहायता नहीं करेगा वह बुरा आदमी हो जाएगा, स्वभावतः। जब अच्छे आदमी सहायता कर रहे हैं तो मैं बुरा आदमी हो जाऊंगा, क्योंकि मैं सहायता नहीं कर रहा हूं। मेरी बात तुम्हें कठोर मालूम पड़ेगी। मैंने उन्हें कहा कि सात लड़कियां पैदा करने को तुमसे कहा किसने? इसका समाज का कोई जिम्मा है?
तुम बच्चियां पैदा करोगे और समाज दोषी ठहर जाएगा। और जो सहायता नहीं करेंगे तुम्हारी वे पापी मालूम पड़ेंगे, अपराधी मालूम पड़ेंगे। बेहुदी है बात। नहीं, हमें गरीब आदमी को साफ-साफ समझाना पड़ेगा कि तुम्हारी गरीबी के लिए तुम्हारे पिता जिम्मेवार होंगे, उनके पिता जिम्मेवार होंगे। पीढ़ियां जिम्मेवार होंगी, तुम पीढ़ियों से गरीब हो और बच्चे पैदा किए जा रहे हो। किसी ने तुमसे नहीं कहा कि तुम बच्चे पैदा करो।
असल में बच्चा पैदा करने का अधिकार भी कमाना चाहिए। लेकिन बच्चा पैदा करने का अधिकार कोई नहीं कमाता। अपने बेटे को क्या दे जाओगे, इसे जाने बिना बेटा पैदा करना अन्याय है। यह बाप का अन्याय है बेटे के ऊपर। यह मां का अन्याय है बेटे के ऊपर। लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि यह अन्याय थोपा जाएगा किसी और पर। कौन जिम्मेवार है उसका?
हमारे मन में कुछ खयाल ऐसा बैठ गया है कि अगर कोई दुखी है तो उसे दुख पहुंचाने के लिए कोई और जिम्मेवार होना चाहिए। वह खुद भी जिम्मेवार हो सकता है, यह हमारे खयाल में नहीं आता। यों हम बड़े भ्रांत तर्कों में भटकते रहते हैं। अगर मैं बीमार हूं तो किसी स्वस्थ आदमी को पकड़ लूं और कहूं कि तुम जिम्मेवार हो, क्योंकि तुम स्वस्थ क्यों हो? मैं बीमार हूं। कल मैं यह कह सकता हूं कि तुम स्वस्थ थे, यह तो ठीक है, लेकिन तुम्हारा बेटा भी स्वस्थ पैदा हुआ।
तुमने व्यायाम किया था, वह तो ठीक है, तुम स्वस्थ थे, लेकिन तुम्हारा बेटा क्यों स्वस्थ पैदा हो गया? तो व्यायाम करने वाले बाप का बेटा स्वस्थ पैदा होगा, इसमें कौन सी तकलीफ है? इसमें कौन सी तर्क की भूल है? नहीं, लेकिन हम पूछते हैं और इस पूछने में बुनियादी भूल हो जाती है और इस भूल के व्यापार परिणाम होते हैं।
एक मित्र ने कहा है कि कुछ लोगों को क्या अधिकार है कि सब लोग गरीब हैं
तो वे अमीर हो जाएं?
बड़े मजे की बात है। इसमें उलटा पूछा जाना चाहिए जब कुछ लोग अमीर हैं
तो इतने लोगों को क्या अधिकार है कि वे गरीब रह जाएं! क्योंकि वह पूछना अर्थपूर्ण है। क्योंकि जो हम पूछेंगे उससे दिशा निकलेगी।
हम पूछते हैं, इतने लोगों को क्या अधिकार है कि वे धनी हो जाएं जब कि इतने लोग गरीब हैं। तो क्या मतलब है? थोड़े गरीब ज्यादा हो जाएंगे तो आनंद आएगा आपको। दस-पच्चीस और आदमी गरीब हो जाएं तो तृप्ति मिलेगी आपको।

जो इस तरह का सवाल है, वह सवाल यह मान कर चलता है कि सभी अगर गरीब हों
तो बहुत अच्छा है। नहीं, मैं ऐसा मान कर नहीं चलता। मैं मान कर चलता हूं कि सभी अमीर हों तो बहुत अच्छा है। इसलिए सवाल को मैं दूसरी तरफ से पूछता हूं।
मैं पूछता हूं, जब इतने लोग अमीर हैं तो बाकी इतने अधिक लोग गरीब रहने
का क्या अधिकार रखते हैं? कोई अधिकार नहीं है गरीब होने का। असले में गरीबी अयोग्यता है। अधिकार नहीं है। सब तरह की अयोग्यता है। लेकिन उस अयोग्यता को स्वीकार करने में पीड़ा होती है। हम सभी मानते हैं कि हम सभी पात्र हैं भोगने के। लेकिन पैदा करने के लिए भी पात्रता चाहिए, उसकी हमें कोई चिंता नहीं है।
इस पृथ्वी पर प्रतियोगिता है, यह सत्य है--होगी ही। सारा जीवन प्रतियोगिता है। लेकिन प्रतियोगिता दुखद हो जाती है, कड़वी हो जाती है जब हम दोषारोपण करना शुरू कर देते हैं दूसरों पर। यह प्रतियोगिता सहज हो जाती है, सरल हो जाती है, सुखद हो जाती है, खेल बन जाती है, स्पोर्टसमेनशिप हो जाती है, जब हम अपनी पात्रता को बढ़ाना और अपनी क्षमता को बढ़ाना शुरू कर देते हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूं गरीब गरीब है क्योंकि उसके जीने का ढंग, उसके सोचने का ढ़ंग, उसका दर्शन, उसका धर्म, उसके विचार, उसकी परंपरा, उसका परिवार, उसके पिता और उसकी पूरीशृंखला गरीबी का निर्माण कर रही है। इसे थोड़ा सोचना जरूरी है कि हम गरीबी किस तरह निर्माण करते हैं। हमारा देश है, अगर हम इसकी गरीबी की तरफ देखेंगे तो हमें पता चलेगा कि यह गरीबी बिल्कुल निर्मित गरीबी है। पहली बात तो यह है कि अमीर होने का सूत्र है, आवश्यकताओं को बढ़ाओ। और गरीब होने का सूत्र है कि आवश्यकताएं कम रखना, सादे जीना। तो रहोगे गरीब ही! जो कौम यह सोचती है कि आवश्यकताएं कम होना अच्छी बात है, वह कौम कभी भी समृद्ध नहीं हो सकती है।
जो आदमी सोचता है कि आवश्यकताएं सदा कम रखी चाहिए और पैर उतने ही फैलने चाहिए जितनी चादर है, तो ध्यान रखें पैर तो रोज-रोज बढ़ते जाते हैं, चादर को बढ़ते कभी नहीं सुना है। अपने आप चादर नहीं बढ़ती है, पैर अपने आप बढ़ते हैं। तो फिर सिकोड़ते जाना पैरों को, क्योंकि चादर जितनी है उतने ही पैर फैलाना। फिर मरेंगे भीतर, क्योंकि चादर बहुत छोटी रह जाएगी और हम बहुत बढ़ जाएंगे। पूरे भारत के ऊपर चादर बहुत छोटी है और आदमी बहुत ज्यादा हैं। सब सदगुरु समझा गए हैं कि आवश्यकताएं बढ़ाना मत। अब यह सब सदगुरु मिल कर हम सबको गरीब कर रहे हैं। क्योंकि जो आवश्यकताएं बढ़ाएगा वह उत्पादन बढ़ाएगा। जो आवश्यकता बढ़ाएगा वह श्रम करेगा, जो आवश्यकता बढ़ाएगा वह सृजन करेगा। अगर मैं चादर के बाहर पैर निकालूंगा तो ही चादर को बड़ा करने का खयाल उठेगा। इसलिए जितनी चादर हो सदा उससे ज्यादा पैर पसारना, क्योंकि पैर बाहर जाएगा, ठंड लगेगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी। गर्मी लगेगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी। तकलीफ होगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी।
गरीब आदमी का पूरा जीवन-दर्शन उसे गरीब बनाता है। और वह उसमें बड़ी खुशी अनुभव करता है, बड़ा आनंद अनुभव करता है। हम गरीबी को पूजा दे रहे हैं। अगर कोई आदमी स्वेच्छा से गरीब हो जाए तो सारा गांव उसके चरणों में सर रखने को राजी है। कभी कोई आदमी स्वेच्छा से अमीर हो गया तो क्या गांव भर ने उसके चरणों में सर रखा है?
नहीं, कोई आदमी जब अमीर हो जाता है तो गांवभर ईर्ष्या से जल जाता है।
और जब कोई आदमी स्वेच्छा से गरीब हो जाता है तो गांव भर में आनंद छा जाता है जैसे कोई घटना घट गई। अगर महावीर--राजा का बेटा सड़क पर भीख मांगने लगता है तो सारा गांव उसके पैर छूने लग जाता है। जरा सोचने जैसा मामला है। और अगर भिखारी का बेटा राजा हो जाए तो पूरा गांव आग से जलता है, नींद हराम हो जाती है पूरे गांव की।
इसमें थोड़ा विचार करने जैसा है। गरीब को देख कर हम इतने प्रसन्न क्यों होते हैं? गरीबों को हम इतना सम्मान क्यों देते हैं? असल में गरीबी को सम्मान देने के दो कारण हैं।
एक तो जब भी कोई अमीर गरीब हो जाता है, स्वेच्छा से, तो हमारे गरीब को बहुत अहंकार की तृप्ति मिलती है कि गरीबी बड़ी ऊंची चीज है, देखो अमीर भी

गरीब हो रहे हैं। यानी हम पहले से ही उस स्थिति को उपलब्ध हैं जो उन बेचारों को करनी पड़ रही है। हम बड़े गौरवांवित होते हैं। हम बड़े प्रसन्न होते हैं। हमारे चित्त के आह्लाद की कोई सीमा नहीं रहती। धन्यभाग हैं हम, भगवान की अपरिसीम कृपा हम पर है कि हमें उसने वही बनाया जो बेचारे महावीर, बुद्ध को बनना पड़ रहा है। उनको चेष्टा करनी पड़ रही है। हम पहले से ही हैं। लेकिन ध्यान रहे, महावीर की गरीबी, गरीबी नहीं है। महावीर की गरीबी अमीर का आखिरी कृत्य है। महावीर की गरीबी "लास्ट लक्.जरी" है, जो अमीर आदमी कर सकता है। आपका सड़क पर पैदल चलना एक बात है और जब रॉकफेलर का बेटा सड़क पर पैदल चलता है तो दूसरी बात है। आप फैक्ट्री में काम करने जा रहे हैं, और वह टहलने जा रहा है। और आप के लिए कार में बैठना संभव नहीं है, और वह कार में बैठ-बैठ कर ऊब गया है और स्वाद बदल रहा है।
अमीर का बेटा जब गरीबी को वरण करता है तो वह अमीरी के स्वाद से ऊब गया
और अब वह गरीबी का रस लेना चाहता है। उसकी गरीबी स्वेच्छा से वरण की गई गरीबी, अमीर का आखिरी विलास है--अंतिम विलास, जो अमीर कर सकता है। और मैं मानता हूं, अमीरही कर सकता है। गरीब तो कर ही नहीं सकता। स्वेच्छा से गरीब हो जाना आखिरी मजा है।
इसलिए आज जब अमरीका के करोड़पति का बेटा, काशी में आकर भीख मांग लेता है, तो उसके मजे का आपको पता नहीं है। जब आपका बेटा भीख मांगता है तो आपको पता नहीं कि इन दोनों में क्या बुनियादी फर्क है।
मैं काशी में था तो मुझसे एक हिप्पी मिलने आए। मैंने उनसे कहा कि तुम
यह क्या पागलपन कर रहे हो? मुझे परिचय में बताया कि वे जो लड़के और लड़कियां मुझसे मिलने आए हैं वह अरबपतियों के लड़के हैं। मैंने उनसे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? काशी की सड़क पर दस-दस पैसे की भीख मांगते हैं। वह कहने लगे कि हमें बड़ा आनंद आता है। डेंजर में भी जी रहे हैं, खतरे में जी रहे हैं। बड़ा मजा आता है कि पता नहीं, आज कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। ये ओवरफेड बच्चे हैं। जिनको इतना मिला है कि अब इनको न मिलने में भी मजा आ रहा है। इनके पास सब था। यह ऊब गए हैं। और ये जब सड़क पर हाथ फैला कर खड़े हैं तो इनकी जिंदगी में एक पुलक, एक एडवेंचर, कि यह आदमी दस पैसे देगा कि नहीं देगा--और यह दस पैसे नहीं देगा तो चाय नहीं मिलने वाली है।
अब इनका जो यह फैला हुआ हाथ है, उसका मजा बहुत दूसरा है। यह अमीर का फैला हाथ है, जो खेल में वह फैला रहा है। इस हाथ को देख कर गरीब बड़े प्रसन्न होते हैं।
इस मुल्क का गरीब आदमी, गरीबी को गौरवांवित समझने लगा है। वह कभी विकसित नहीं हो सकता। और गरीबी को उसने स्वीकार कर लिया है जैसे कोई बहुत पुण्य का काम कर रहा है। अमीर तो अपराधी मालूम पड़ता है, पापी मालूम पड़ता है और गरीब? गरीब संत और साधु मालूम पड़ता है। ग्रामीण आदमी को देख कर हम ऐसे होते हैं जैसे कोई संत-साधु हो। बड़ा भोला है, बड़ा सीधा-सादा है। प्रशंसा हमारे मन में है। वह प्रशंसा गलत है, झूठी है। वह प्रशंसा खतरनाक है, आत्मघाती है, सुसाइडल है। और दूसरी बातः गरीब को सुख मिलता है जब कोई अमीर गरीब होकर खड़ा हो जाता है सड़क पर, तो उसकी सेडिस्ट, उसकी दूसरे को दुख देने की वृत्ति को रस आता है।
जिन मुल्कों में त्याग की प्रशंसा है वह मुल्क बुनियादी रूप से सैडिस्ट हैं। वे मुल्क दूसरे को दुख देने में मजा ले रहे हैं। और जब कोई आदमी खुद अपने को दुख देने लगता है तब तो मजा और भी ज्यादा आता है। हमको दुख देने का कष्ट भी नहीं उठाना पड़ रहा है, वह दुख ही दुख दे ले रहा है।
एक आदमी लेट जाए कांटों पर तो बस हम पहुंच जाते हैं हाथ जोड़ने। अब इसको अस्पताल भेजना चाहिए, इसकी चिकित्सा होनी चाहिए। कांटों पर लेटना-- यह आदमी बीमार है, पैथालॉजिकल है, रुग्ण है। लेकिन हम नमस्कार करते हैं कि परमहंस हो गया वह आदमी।
असल में हम किसी को कांटे पर लिटाते तो जितना मजा आता उससे भी ज्यादा मजा इसमें आ रहा है कि यह अपने आप लेट गए हैं। हमको लिटाने की तकलीफ से भी बचा दिया। तो गरीब को सुख मिलता है देख कर कि अच्छा ठीक है। कभी आपने खयाल नहीं किया होगा। अगर कोई आदमी आपके पड़ोस में एक बड़ा मकान बना ले तो खुशी

नहीं होती, कोई खुशी नहीं होती, पीड़ा होती है। लेकिन उसके मकान में आग लग जाए, तो आप सब दुख, संवेदना प्रकट करने उसके घर जाते हैं। आप कहते हैं, बहुत बुरा हो गया। अब यह मैं मान नहीं सकता, क्योंकि जब यह मकान बना था तब आपके मन में ऐसा नहीं लगा था कि बहुत अच्छा हो गया। इस मकान के जलने से आपके मन में लग नहीं सकता कि बहुत बुरा हो गया। जब यह मकान बना था तब आपके मन में ईर्ष्या जगी थी। और अब आप जाकर कह रहे हैं कि बहुत बुरा हो गया तो आपकी आंख और आपके हृदय की अगर जांच-पड़ताल की जाए तो ज्ञात होगा कि भीतर से आप बड़ा रस और आनंद ले रहे हैं। यह सहानुभूति रुग्ण है और झूठी है। लेकिन हम उस चित्त को पहचान नहीं पाते। और इस चित्त को जो सहारा मिल जाता है, उसको हम इकट्ठा करके जीए चले जाते हैं।
गरीब आदमी का जीवन-दर्शन उसे गरीब बनाता है। अगर आज अमरीका अमीर है तो अमरीका के जीवन-दर्शन की बुनियाद है। अगर हिंदुस्तान गरीब है तो हिंदुस्तान के जीवन-दर्शन की बुनियाद है।
आवश्यकताएं कम करने का सिद्धांत, सिकोड़ने का सिद्धांत समृद्धि नहीं
ला सकता। इसके लिए कोई अमीर जिम्मेवार नहीं है कि मेरा मुल्क गरीब है। इसके लिए पूरा मुल्क जिम्मेवार है कि वह गरीब है। यह कुछ लोग जो कि इस बातचीत के बाहर निकल गए हैं वे अपवाद हैं। मगर यह भी गिल्टी अनुभव करते हैं। हिंदुस्तान में मैंने अमीर आदमी नहीं देखा अभी तक जो गिल्टी अनुभव न करता हो, जो अपने को अपराधी न मानता हो। बड़े से बड़ा अमीर, फिर वह अपने अपराध का प्रायश्चित करता रहता है। कोई मंदिर बनवा कर करता है कोई धर्मशाला बनवा कर करता है, कोई तीर्थ पर घाट बनवाता है, कोई अस्पताल खोलता है, कोई स्कूल खोलता है। वह जो अमीर होने की गलती उसने की है, वह जो धन कमानें की भूल उसने की है उसका वह प्रायश्चित करता है। उसका वह पश्चात्ताप करता है। हिंदुस्तान का कोई अमीर मुझे नहीं मिला जो कि प्रसन्न हो इस बात से कि उसने कुछ काम किया है। और हिंदुस्तान के गरीब की तो बात ही अलग है।
नहीं, यह दृष्टि भ्रांत है। यह दृष्टि जिम्मेवार है। समाजवाद आ जाने
से कुछ नहीं हो जाएगा, यह जीवन-दृष्टि बदलनी चाहिए। यह जीवन-दृष्टि हटनी चाहिए, जीवन विस्तार है। जीवन जितना विस्तृत होता है, उतना प्रफुल्लित होता है। सारा जीवन विस्तार है। संकोच मृत्यु है। जीवन विस्तार है। जितना हम फैलते हैं उतना ही जीवन भीतर से खिलता और प्रफुल्लित होता है। एक छोटे से बीज को बों दें, तो फैल कर वृक्ष बन जाता है। और एक बीज में करोड़ों अरबों बीज लग जाते हैं।
परमात्मा का सारा का सारा आयोजन विस्तार का है। और हिंदुस्तान लोग गरीब आदमी, और गरीब आदमी के दर्शन के संकोच की भाषा में सोचते हैं। वे कहते हैं, और कम कर लो, और कम कर लो। तो कम करने पर आप जोर देंगे तो सृजन नहीं हो सकता है।
मैं नहीं कहता हूं कि कुछ अमीर इस मुल्क की गरीबी के लिए जिम्मेवार हैं। मैं कहता हूं इस मुल्क के गरीब, इस मुल्क की पूरी जनता अपनी गरीबी के लिए जिम्मेवार है। उसे अपनी "फिलॉसफी ऑफ लाइफ" को बदलना पड़ेगा, अन्यथा वह कभी समृद्ध नहीं हो सकती।
समृद्धि का सूत्र हैः आवश्यकताओं को फैलाओ। क्यों? क्यों समृद्धि का सूत्र है कि आवश्यकताओं को फैलाओ? जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना हमें श्रम में रत होना पड़ता है। और बड़े मजे की बात यह है कि हमें पता ही नहीं कि हममें कितनी श्रम की क्षमता है। जब हम आवश्यकताओं को फैलाते हैं तभी हमें पता चलता है। समझ लें... !
मैं आपको दौड़ने को कहूं, ऐसे ही, कि जरा दौडें, और कहूं कि पूरी ताकत से दौड़ें, तो भी आप कितनी ही ताकत लगाएं वह पूरी ताकत नहीं होगी। फिर कल मैं एक और आदमी को आपके साथ दौड़ने को ले आऊं और कहूं कि दोनों में प्रतियोगिता है और यह गोल्ड मेडल रहा! अब जरा ताकत से दौड़ेंगे। आप पाएंगे कि कल जितना आप दौड़े थे, आज उससे ज्यादा दौड़ रहे हैं। हालांकि कल आप समझ रहे थे कि यह आपकी आखिरी ताकत है। आज आप ज्यादा दौड़ रहे हैं। यह ताकत कहां से आई? लेकिन यह भी आखिरी नहीं है।

परसों मैं एक पुलिसवाले को ले आऊं और आपके पीछे एक बंदूक लगवा दूं। और कहूं कि पूरी ताकत से दौड़ें, कहने की जरूरत ही नहीं रहेगी कि पूरी ताकत से दौंड़ें। तब आपको पहली दफा पता चलेगा कि आप हवा में उड़े जा रहे हैं। ऐसे तो आप कभी नहीं दौड़े। यह ताकत कहीं आसमान से आ रही है? यह ताकत आपके भीतर है। जितनी आप चुनौती देते हैं इस ताकत को उतनी यह उठती है।
वैज्ञानिकों का खयाल है कि अधिकतम श्रम करने वाले लोगों ने भी मस्तिष्क की पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा शक्ति का उपयोग नहीं किया है। पंद्रह प्रतिशत, बड़े से बड़ा प्रतिभाशाली आदमी भी अपने मस्तिष्क की पंद्रह प्रतिशत शक्ति का उपयोग करता है। बाकी शक्ति जैसी जन्म के समय रहती है वैसी बेकार, मरने के समय खत्म हो जाती है। शरीर के साथ भी वही हाल है। हम अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं कर पाते क्योंकि आवश्यकताएं तो कम करनी हैं। तो आवश्यकताएं कम करने के लिए कितनी शक्ति का उपयोग करना पड़ता है? जब एक आदमी को पैर ही सिकोड़ने हैं न चादर के भीतर? कितनी ताकत लगी है? लेकिन चादर बड़ी करनी हो तो तब ताकत लगनी शुरू हो जाती है।
आवश्यकताएं ज्यादा होती हैं तो व्यक्तित्व को चुनौती मिलती है। इस मुल्क के व्यक्तित्व को कोई चुनौती नहीं है। इसलिए यह मुल्क गरीब है। और चुनौती देने वाला भी कोई नहीं है। क्योंकि जो चुनौती दे, वह लगेगा कि यह आदमी हमें कैसे तर्क की भाषा बता रहा है? यह कहां हमको नरक ले जाएगा? क्योंकि आवश्यकताएं बढ़ गई तो आग्रह बढ़ जाएगा, आसक्ति बढ़ जाएगी। आसक्ति बढ़ जाएगी तो फिर बंधन बढ़ जाएगा। फिर जीवन के आवागमन से मुक्ति कैसे होगी?
तो आवागमन से मुक्त होना हो तो फिर गरीब रहना बहुत अच्छा है। यह मुल्क आवागमन से मुक्त होने की कोशिश कर रहा है, पांच हजार साल से। जिंदा रहने की कोशिश नहीं कर रहा है। मरने के बाद फिर से जिंदा न होना पड़े इसकी कोशिश में लगा है। होकर तो गरीब--नहीं तो क्या अमीर हो जाएंगे आप? जिंदा रहने की कोशिश से अमीरी पैदा होती है, समृद्धि पैदा होती है। जिंदा रहने का श्रम चुनौती मांगता है, चैलेंज मांगता है। चैलेंज कौन देगा? बैलगाड़ी में बैठे हैं तो बैलगाड़ी में बैठे हैं। तो कार कौन पैदा करेगा, चैलेंज कौन देगा? कार में बैठे हैं तो कार में बैठे हैं। तो फिर हवाई जहाज कौन पैदा करेगा? चैलेंज कौन देगा? जिंदगी चुनौती से गति पाती है। सब तरह की गति, चाहे बुद्धि की हो, चाहे धन की हो, चाहे श्रम की हो, शक्ति की हो, शरीर की हो, मन की हो, आत्मा की हो। समस्त गतियां चुनौती से पैदा होती हैं। और इस मुल्क ने चुनौती को इनकार कर दिया और हम कहते हैं, हम चुनौती मानते ही नहीं। तो फिर ठीक है, कौन जिम्मेवार है? किस की जिम्मेवारी है कि हम गरीब हैं? चुनौती चाहिए। आवश्यकताएं बढ़ती हैं तो उसके परिणाम गहरे शुरू होते हैं। सारा मुल्क कहता है कि बेकारी है। एक तरफ बेकारी है और मुल्क के साधु- संन्यासी, नेता समझा रहे हैं कि सादगी से रहो। बेकारी खत्म कैसे होगी? ज्यादा चीजें पैदा करों तो ज्यादा लोग श्रम में लगेंगे। ज्यादा जरूरतें हों तो ज्यादा लोग श्रम में लगेंगे।
आज अमरीका की आधी से अधिक इंडस्ट्री, पचास प्रतिशत उद्योग स्त्रियों
के साज-श्रृंगार को पैदा करने में लगा है। गांधीजी समझाते हैं कि स्त्री को साज-शृंगार की जरूरत ही नही। उसको तो खादी के कपड़े पहन कर करीब-करीब पुरुष जैसा हो जाना चाहिए।
ठीक है, आप सब स्त्रियों को खादी पहना दें। लिपिस्टिक न लगाने दें, गहने न पहनने दें, बाल न सजाने दें, रंग-रोगन न लगाने दें। इंडस्ट्री का मतलब क्या होता है? स्त्रियां पचास प्रतिशत इंडस्ट्री चलाती हैं सारी दुनिया की, हिंदुस्तान को छोड़ कर। उसका कारण है। एक दफा पाउडर लगाओ फिर साबुन से धोओ, फिर पाउडर लगाओ, फिर साबुन से धोओ, तो पच्चीस इंडस्ट्री चल रही हैं उनके इस पाउडर लगाने से और साबुन से धोने से। वहां मजदूर को काम मिल रहा है।
जिंदगी को हम समझेंगे तो वह कुछ और है। अब अगर सब स्त्रियों को सादा बना दो तो आदमी बेकार हो जाएगा। अब वह आदमी बेकार हो जाएगा तो चिल्लाओ कि आदमी बेकार क्यों है। क्योंकि कुछ लोग शोषण कर रहे हैं। कोई शोषण नहीं कर रहा। आदमी बेकार इसलिए है कि आपके पास काम का विस्तार नहीं है। और काम का

इतना विस्तार हो सकता है और वह तभी हो सकता है जब हमारी आवश्यकताएं रोज बढ़ती जाएं, दिन दूनी रात चौगुनी।
जब अमरीका के जीवन का ढंग है कि कोई आदमी इस फिकर में नहीं है कि कितना
कम करे, हर आदमी इस फिकर में है कि कितना ज्यादा करे। तो स्वभावतः सब चीजें ज्यादा चाहिए। कार का माडल हर साल बदल जाएगा। क्योंकि पिछले साल का कार का मॉडल कौन रखे? आउट ऑफ डेट गाड़ी का रखना, आउट ऑफ डेट आदमी का सबूत है। लेकिन हमारे मुल्क में? हमारे मुल्क में उन्नीस सौ बीस में जो गाड़ी आई थी उसको हम सम्हाल कर रखे हुए है। और पड़ोसी हमारी तारीफ करते हैं, क्या गजब का आदमी है, उन्नीस सो बीस की गाड़ी अभी भी चला रहा है!
बड़े मजे से चलाइए उन्नीस सौ बीस की गाड़ी आप। यह मुल्क मर जाएगा। क्योंकि इस मुल्क का सारा का सारा उत्पादन इस बात पर निर्भर करता है कि लोग कितनी जल्दी चीजें बदलते हैं। जब हम दुकान पर जाते हैं तो हिंदुस्तान में आदमी पूछता है कि टिकाऊ है! कितनी देर चलेगी?
अमरीका में कोई आदमी नहीं पूछेगा। एक आदमी नहीं पूछता कि टिकाऊ है। अमरीका में एक नया शब्द है, वे टिकाऊ नहीं पूछते, वे ड्यूरेबिलिटी नहीं पूछते। वे पूछते हैं, एक्सचेंजेबिलिटी। यह बदली जा सकती है, कितने दिन में बदली जा सकती है? घड़ी लेने एक आदमी जाएगा तो कहेगा तीन महीने में बदली जा सकती है। वह पूछेगा कि एक्सचेंजेबिलिटी कितनी है इसकी। साल भर बाद बदलेंगे तो बदली जा सकती है? छह महीने बाद बदली जा सकती है। कोई नहीं पूछेगा कि ड्यूरेबिलिटी कितानी है? क्योंकि ड्यूरेबिलिटी का मतलब--क्या मरना है कि जीना है? अगर एक ही घड़ी से जिंदगी भर गुजार लिया तो घड़ी की इंडस्ट्री का क्या होगा?
मगर हमारे यहां ऐसे लोग हैं कि एक घड़ी उनके पिता ने बरती, उनके पीता ने
भी बरती, वे भी बरत रहे हैं। बाबा आदम के जमाने में जो घड़ी रही होगी, वह उसे सम्हाले हुए हैं। बड़े सादे हैं, बड़े भोले हैं, इनके पैर पड़ो। ये मार डालेंगे पूरे मुल्क को।
जिंदगी के विस्तार के नियम हैं और जिंदगी की समृद्धि के नियम हैं। और हमारे सारे नियम उलटे हैं। मगर हम बहुत प्रसन्न होते हैं कि देखें, आदमी कितना सादा है। खाने में देखो तो घास-पात खा लेता है। नहीं, ऐसे नहीं, जीवन की समस्त विविधाओं में, जीवन के सब डाइमेन्शन में, रोज नए की खोज, रोज नए की आकांक्षा समृद्ध बनाती है।
पुराने पर पकड़े बैठे रह जाना, गरीब बनाती है। यह मुल्क इसलिए गरीब नहीं है। मेरी अपनी समझ यही है कि मुल्क इसलिए गरीब नहीं है कि पूंजीवादी है और इसलिए अमीर नहीं हो जाएगा कि समाजवादी हो जाऐ। इस मुल्क के सोचने के ढंग गरीब के ढंग हैं। और इस मुल्क के सब महात्मा इसको गरीब होना सिखाते हैं। सब महात्मा इसको जो बातें सिखाते हैं वह सब खतरनाक है। वह इस मुल्क की जड़ को काट डालते हैं। लेकिन वे महात्मा बड़े प्यारे हैं, क्योंकि पांच हजार साल से जो हम सुन रहे हैं वही हमें वे फिर सुनाते हैं। बार-बार सुनी गई बात ठीक मालूम पड़ने लगती है। इसलिए नहीं कि ठीक है। इसलिए कि बार-बार सुनी है। बार-बार सुनते-सुनते हम यह भूल ही जाते हैं कि यह बात झूठ होगी। एक झूठ को बोलते रहें सुबह से शाम तक, दूसरे लोग तो भरोसा करेंगे कि नहीं करेंगे! लेकिन सुबह से शाम तक बोलते-बोलते आप जरूर भरोसा कर लेंगे, खुद ही। क्योंकि शक होने लगेगा कि जो इतनी बार बोला है, यह झूठ हो सकता है! जिसको इतने लोगों ने विश्वास किया वह झूठ हो सकता है?
मनुष्य जाति के बड़े से बड़े दुर्भाग्य ऐसे झूठ हैं जो सच जैसे मालूम पड़ने लगे। और ध्यान रहे, जीवन का एक नियम है कि या तो फैला या सिकुड़ो, बीच में कोई जगह नहीं है।
अगर आप कहें कि हम बीच में खड़े रहेंगे, संतुलन साधेंगे। तब कुछ भी साध सकते आप। जिंदगी का नियम है, या तो फैलो या सिकुड़ो, या तो जीओ या मरो, या तो जीतो या हारो। जिंदगी बीच में नहीं खड़ी रहती कहीं भी। जिस दिन इस मुल्क ने यह तय कर लिया कि हमें फैलना नहीं है उसी दिन हम सिकुड़ने लगेंगे। जिस दिन हमारे आदमी ने यह तय कर लिया कि हमारी कोई बड़ी आकांक्षाएं नहीं हैं तो उसी

दिन सिकुड़ गए, उसी दिन हमारे जीवन की ऊर्जा बैठ गई। उसको चुनौती मिलनी कठिन हो गई।
तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि हम गरीब हैं तो गरीबी के कारण को समझें। हमारी फिलॉसफी, हमारा चिंतन, हमारा धर्म, सब हमें गरीब होने का रास्ता बताता है। और अगर यह सब ठीक है तो फिर गरीब होने से हमें सहमत होना चाहिए।
मैं नहीं कहता कि आप अमीर हो जाएं। फिर मैं कहता हूं कि आप अपनी फिलासफी को समझ लें, फिर आप गरीब होने को राजी रहें। या फिलॉसफी बदलें, अगर गरीबी से नाराजगी है तो, और या फिर राजी रहें। दो के सिवाय और कोई विकल्प नहीं है।
लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम अमीर होना चाहते हैं अमरीका जैसे और दर्शन पकड़ना चाहते हैं भारतीय। हम तो भारतीय हैं, हम भारतीय रहेंगे। भारतीय रहकर आप अमरीका जैसे समृद्ध नहीं हो सकते। आपको अपने भारतीय होने में बुनियादी फर्क करने पड़ेंगे। आपका भारतीय होना बिल्कुल ही समृद्धि के लिए बेमानी है, इररिलेवेंट है, असंगत है। इधर तो हम चिल्ला रहे हैं हम भारतीयकरण करेंगे। हम तो बिल्कुल भारतीय, शुद्ध भारतीय हैं, हंड्रेड परसेंट भारतीय का हमको नशा सवार है।
सौ प्रतिशत भारतीय रहना है तो सौ प्रतिशत गरीब रहना पड़ेगा। आधुनिक से डरे हुए हैं, पश्चिम से डरे हुए हैं कि कहीं ऐसा न हो जाए कि हमारे भारतीय होने में थोड़ी बहुत कमी पड़ जाए। असल में भारतीय होने का क्या मतलब होता है?
भारतीय होने का फिर यही मतलब होता है कि जो हमारी कथा है वही हमारी कथा रहेगी, उसमें हम कोई फर्क नहीं कर सकते। हमें फर्क करना पड़ेगा। हम वैसे ही भारतीय नहीं हो सकते अब, जैसे हम मनु के जमाने में थे। और न हम वैसे ही भारतीय हो सकते हैं जैसे हम पांच सौ साल पहले थे। असल में पिछले वर्ष के भारतीय भी आज नहीं हो सकते और अगर होंगे तो हम परेशानी में पड़े रहेंगे। और मजा यह है कि भारतीय होने के लिए क्या हमको पुराना ही होना पड़ेगा? क्या भारत का अभी भी भविष्य नहीं है? क्या भारतीय होने की, भविष्य की कोई रूप-रेखा नहीं हो सकती? लेकिन यह हमारे पुराने सिद्धांतों से तालमेल नहीं खाता। हमारे पुराने शास्त्र हमको दिक्कत में डाल देते हैं, वे कहते हैं कि तालमेल नहीं बैठता है।
तब फिर हम एक जिद्द में पड़ गए हैं। और इस जिद्द से बाहर निकलने का एक
ही उपाय मुझे दिखाई पड़ता है कि हम उस जिद्द को ठीक तरह से समझ लें, इस झंझट को हम ठीक से समझ लें कि हमारी झंझट क्या है। या तो हमें गरीब रहना है तो गरीब होने को स्वीकार कर लें और गरीब रहें। और अगर गरीबी को मिटाना हो तो गरीबी के सूत्रों को आग लगा दें, और अमीरी के सूत्रों पर जीवन को ढालने की कोशिश करें। अन्यथा इन दोनों के बीच इतने तनाव में पड़ जाएंगे कि न तो हम जी सकेंगे और न हम मर सकेंगे, त्रिशंकु की हमारी हालत हो जाएगी, जो हो गई है।

एक और मित्र ने पूछा है, एक दो छोटे-छोटे सवाल। एक मित्र ने पूछा है कि
यह जो पूंजीवाद आज मौजूद है, इसमें इतना भ्रष्टाचार है, इतनी घूसखोरी है, इतनी रिश्वत है, क्या आप इसके भी समर्थक हैं?

यह घूसखोरी, भ्रष्टाचार, रिश्वत पूंजीवाद के कारण नहीं है। इसके कारण बिल्कुल दूसरे हैं, उनका पूंजीवाद से कोई लेना-देना नहीं है।
जिस देश में इतनी गरीबी हो उस देश में सदाचार हो सकता है, यह चमत्कार होगा। यह संभव नहीं है। जहां जीना इतना कठिन हो, वहां आदमी ईमानदार रह सकेगा, यह मुश्किल है। हां, एकाध आदमी रह सकता है। कोई संकल्पवान रह सकता है, लेकिन इतना संकल्प सबके पास नहीं है और इसके लिए उन्हें दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता।
जिंदगी में जहां जीने के लिए बेमानी शर्त बनाना पड़ता हो--यहां इतने बड़े कमरे में हम सारे लोग बैठे हैं और यहां बीस-पच्चीस रोटी हों और हम सब भूखे हों तो आप सोचते हैं, शिष्टाचार बचेगा? और वह शिष्टाचार, अगर नहीं

बचा, तो क्या इस भवन को आप गाली देंगे कि यह भवन भ्रष्टाचार पैदा करवा रहा है? भ्रष्टाचार भवन पैदा नहीं करवा रहा है! भ्रष्टाचार! पच्चीस रोटियां और पच्चीस सौ खाने वाले भूखे हैं, इनकी वजह से भ्रष्टाचार पैदा हो रहा है। इस कमरे का कोई कसूर नहीं है, भवन का कोई कसूर नहीं, यह पूंजीवाद की व्यवस्था का कोई कसूर नहीं है कि भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार का कारण दूसरा है। भ्रष्टाचार का कारण यह है कि भूख ज्यादा है, रोटी कम है। नंगे शरीर ज्यादा हैं, कपड़े कम हैं। आदमी ज्यादा हैं, मकान कम हैं। जीने की सुविधा कम है, और जीने वाले रोज बढ़ते चले जा रहे हैं। इसके बीच जो तनाव पैदा होगा, वह भ्रष्टाचार ले आएगा। इस भ्रष्टाचार को कोई नेता नहीं मिटा सकता। क्योंकि नेतागण सोचते हैं कि जैसे भ्रष्टाचार को मिटाना... वह जिस ढंग से सोचते हैं, कोई साधु-सेवक-समाज बना लेता है कि इससे हम भ्रष्टाचार मिटा देंगे।
कुछ ऐसा लगता है कि हम जिंदगी के गणित को सीधा देखने से चूक ही जाते हैं। साधु-सेवक-समाज बनाने से क्या भ्रष्टाचार मिटा दोगे? ये साधु जाकर सारे मुल्क को समझायेंगे कि भ्रष्टाचार मत करो। तो क्या भ्रष्टाचार बंद हो जाएगा? यह समझाने का मामला है कि भ्रष्टाचार मत करो!
यह समझाने की बात होती तो हम करते ही न, यह समझाने की बात नहीं है। यह जीने का--"एक्झिस्टेंशियल" प्रश्न है। यहां अस्तित्व खतरे में है। यह प्रवचन से हल होनेवाला नहीं है कि सारे हिंदुस्तान के साधु गांव-गांव जाकर समझाएं कि भ्रष्टाचार मत करो। तो बस भ्रष्टाचार बंद हो जाएगा। यहां कोई शिक्षा की कमी नहीं है और न प्रवचनों की कमी है। और यह न होगा कि बच्चों को गीता और रामायण कंठस्थ करवा दें तो भ्रष्टाचार मिट जाएगा कि नैतिक शिक्षा दे दें, हर स्कूल में। पढ़ लेंगे गीता को, रामायण को, भ्रष्टाचार नहीं मिट जाएगा। क्योंकि भ्रष्टाचार के होने के कारण अस्तित्व में छिपे हैं। यह कोई सिद्धांतों की बात नहीं है। और नेतागण चिल्लाते रहे हैं कि हम भ्रष्टाचार को मिटा देंगे, वे चाहे जो इंतजाम करे। वे जो भी इंतजाम करेंगे वही भ्रष्टाचारी हो जाएगा। और मजा तो यह है कि वह जो नेता जितने जोर से मंच पर चिल्लाते हैं कि भ्रष्टाचार मिटा देंगे, वे उस मंच तक बिना भ्रष्टाचार के पहुंच नहीं पाते। जहां से भ्रष्टाचार मिटाने का व्याख्यान देना पड़ता है, उस मंच तक पहुंचने के लिए भ्रष्टाचार की सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं।
अब यह इतना जाल है कि सिद्धांतों से होने वाला नहीं है। इस जाल की बुनियादी जड़ को पकड़ना पड़ेगा और अगर हम जड़ को पकड़ लें तो बहुत चीजें साफ हो जाएं। हमें मान लेना चाहिए कि आज के भारत में ईमानदारी की बात करना बेकार है। न नेता को करना चाहिए, न साधु को करना चाहिए। हमें मान लेना चाहिए कि बेईमानी नियम है। इसमें झंझट नहीं करनी चाहिए। इसमें झगड़ा खड़ा नहीं करना चाहिए। तब कम से कम बेईमानी सीधी साफ तो हो सकेगी। यानी मुझे आपकी जेब में हाथ डालना है तो मैं सीधा तो डाल सकूंगा। नाहक आप सोएं और रात में आपके घर मैं आऊं, जेब में हाथ डालूं और फिर सुबह मंदिर जाऊं और व्याख्यान करूं कि चोरी करना पाप है। यह सब जाल की जरूरत नहीं है। हिंदुस्तान में बेईमानी जो है आज की समाज-व्यवस्था में, अगर न हो, तो या तो समाज-व्यवस्था टूट जाए, या तो हम मर जाएं। बेईमानी इस वक्त लुब्रीकेटिंग का काम कर रही है। वह लुब्रीकेशन है। वह जरा पहिए को तेल दे देती है और चलने लायक बना देती है। अगर यह मुल्क कसम खा ले ईमानदार होने की, तो मर जाए। वह जिंदा नहीं रह सकता है और जिन लोगों ने कसम खा ली ईमानदारी की उनसे आप पूछ लो कि वे जिंदा हैं कि मर गए। उनकी आवाज शायद ही निकले, क्योंकि वे मर ही चुके होंगे। भ्रष्टाचार हमारी इस समाज-व्यवस्था में, हमारी इस समाज की दीनता और दरिद्रता में, हमारे समाज की इस भुखमरी हालत में इस यंत्र-विहीन अनौद्योगिक संपत्ति शून्य समाज में अनिवार्यता है। इसमें चिल्लाने की कोई जरूरत नहीं है, न किसी को गाली देने की जरूरत है।
मैं जापान की छोटी सी किताब पढ़ रहा था शिष्टाचार के नियमों की। तो उसमें लिखा हुआ है कि किसी आदमी से उसकी तनख्वाह न पूछें। तब बहुत हैरान हुआ कि क्या मामला है। हमसे बड़े अविकसित मालूम होते हैं जापानी। हम तो

तनख्वाह ही नहीं पूछते, यह भी पूछते हैं उससे कि कुछ ऊपर से भी मिलता है कि नहीं। यह बड़े पक्के गंवार मालूम पड़ते हैं। इनको इतना पता नहीं कि भारत जैसा सुसंस्कृत और सभ्य देश वहां आम तनख्वाह के ऊपर क्या मिलता है, यह भी पूछते हैं। न केवल पूछते हैं बल्कि बताने वाला बताता ही है कि कुछ भी नहीं मिलता है, थोड़ा ही मिलता है, कुछ ज्यादा नहीं मिलता। उस किताब में नीचे नोट लिखा हुआ है कि किसी से तनख्वाह पूछना अपमानजनक हो सकता है, क्योंकि हो सकता है उसकी तनख्वाह कम हो और उसे चार आदमियों के सामने तनख्वाह बतानी पड़े, या हो सकता है कि उसे इतना संकोच लगे कि उसे व्यर्थ झूठ बोलना पड़े, जितनी उसकी तनख्वाह न हो उतनी बतानी पड़े, इसलिए तनख्वाह नहीं पूछनी चाहिए।
इस मुल्क में हमें आज की मौजूदा हालत में भ्रष्टाचार, रिश्वत इतनी बात नहीं पूछनी चाहिए। यह अशिष्टता है, घोर अशिष्टता है। यह सीधी साफ बात है, यह स्वीकृति होनी चाहिए। इसमें कोई झगड़ा नहीं करना चाहिए। हां, रह गई बात यह कि अगर हम इसे स्वीकार कर लें तो हम इसे मिटा सकते हैं। इसे हम स्वीकार कर लें तो इसकी बुनियादी जड़ों में जा सकते हैं कि बात क्या है। कोई आदमी अपनी तरफ से बुरा नहीं होना चाहता। बुराई सदा ही मजबूरी की हालत में पैदा होती है। हां, कुछ लोग होंगे जिनको बुरा होने में मजा आता है, वे रुग्ण हैं। उनकी चिकित्सा हो सकती है। लेकिन अधिकतम लोग बुरा होने के लिए बुरा नहीं होते। जब जीना मुश्किल हो जाता है तब बुराई को साधन की तरह पकड़ते हैं।
जब इतनी बुराई है तो इस बात की यह खबर है कि मुल्क इस जगह खड़ा है जहां असंभव हो गया है। इसलिए जीने को हम कैसे संभव बनाएं? कैसे सरल बनाएं? कैसे समृद्ध बनाएं? यह सोचना चाहिए। भ्रष्टाचार कैसे मिटाएं यह सोचिए ही मत। आप सोचिए कि जीवन को कैसे समृद्ध बनाएं। जीवन को कैसे सरल बनाएं। कैसे जीवन को गतिमान करें। जीवन कैसे रोज रोज समृद्धि के नए शिखरों पर पहुंचें, इसकी फिक्र करिए। भ्रष्टाचार वगैरह की व्यर्थ बकवास में मत पड़े रहिए। सिर्फ इंडिकेटर्स हैं। जैसे एक आदमी को बुखार आ जाए, अब घर में नासमझ हों या घर में अगर भारतीय किस्म के लोग ज्यादा हों, तो ठंडा पानी डालना इलाज होना चाहिए। क्योंकि गर्म हो गया उसका शरीर, ठंडा कर दो पानी डाल कर। लेकिन बुखार बीमारी नहीं है। बुखार सिर्फ भीतर की बीमारी की सूचना है। तो इसलिए अगर शरीर गर्म हो गया हो किसी का तो ठंडा पानी मत डालना। ठंडा पानी डालने से बीमारी मिट जाएगी क्योंकि बीमार मिट जाएगा। बुखार इस बात की खबर है कि शरीर में कहीं स्ट्रगल पैदा हो गई है, शरीर में कहीं संघर्ष खड़ा हो गया है। संघर्ष की वजह से शरीर गर्म हो गया है। शरीर में कही कोई कांफ्लिक्ट खड़ी हो गई है, शरीर का सहयोग टूट गया है, शरीर पूंजीवाद न रह कर, समाजवादी हो गया है। कुछ गड़बड़ हो गई है। हार्मनी टूट गई है, क्लास-स्ट्रगल शुरू हो गई है, दो तरह के कीटाणु इकट्ठे हो गए हैं। उस लड़ाई की वजह से शरीर गर्म हो गया है। उस लड़ाई में गर्मी आ ही जाती है। इस गर्मी को ठंडा नहीं करना है। उन कीटाणुओं को मारना है भीतर जाकर कि वह लड़ाई खत्म हो तो शरीर अपने आप ठीक टैम्परेचर पर वापस लौट आए।
भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, स्मगलिंग सब बुखार है। शरीर का तापमान बढ़ गया है, समाज का। लेकिन असली बीमारी कहां है? असली बीमारी नहीं है यह। लेकिन हमारे सब नेता और सब ज्ञानी उन्हीं को ठीक करने में लगे हैं। भारतीय जो ठहरे, शुद्ध--हंड्रेड परसेंट भारतीय। वे उसको ठीक कर रहे हैं, और कहते हैं बिल्कुल ठीक कर देंगे। लेकिन किसी को यह खयाल नहीं है कि भारत की यह बीमारी आज नहीं आ गई है। यह बीमारी भारत में बढ़ते-बढ़ते पांच हजार साल में अब पूरी तरह प्रकट हुई है। पांच हजार साल का भारत का इतिहास कहता है कि परीक्षा में पास होना हो तो हनुमानजी को रिश्वत खिला दो, एक नारियल चढ़ा दो। उनसे कहो कि पांच आने का नारियल चढ़ाएंगे, हमारे लड़के को पास करवा दो। अगर लड़के को पास करवा दिया तो पांच आने का नारियल चढ़ा देंगे। अब यह क्या है? रिश्वत नहीं है तो क्या है? आप समझते हैं, यह कौन सी चीज है?

भगवान से जाकर कह रहे हैं, मंदिर बनवा दूंगा, अगर एक बच्चा पैदा हो जाए। यह क्या है? हां, भगवान और देवताओं को देते-देते, विकास होते-होते आदमियों तक यह बात पहुंच गई, यह दूसरी बात है।
आफिसर से कहते हैं कि नारियल चढ़ा देंगे जरा कुछ काम करवा दें। हम पहले
से ही इसी तरह काम कर लेते रहे। और जब हम भगवान तक से सस्ते में काम लेते रहे तो बेचारा आफिसर किस खेत की मूली है और जब भगवान तक नारियल से राजी होते हैं, तो आफिसर न हों तो गैर भारतीय हैं। तो उसको राजी होना चाहिए, अशिष्टता मालूम होगी।
भारतीय का चित्त रिश्वतखोर है। वह रिश्वत खिला रहा है। वह खुशामदी है। वह भगवान को, देवताओं की, राजाओं की खुशामद भी करता था और अब न देवता दिखाई पड़ते, न भगवान दिखाई पड़ते हैं और राजा ही दिखाई पड़ते हैं। ये बेचारे मिनिस्टर वगैरह दिखाई पड़ते हैं। अफसर दिखाई पड़ते हैं। वह उन्हीं की खुशामद कर रहा है। वह हाथ जोड़े इन्ही के दरवाजे पर बैठा हुआ है।
स्वभावतः गरीब मुल्क है, दीन मुल्क है। जिनके हाथ में थोड़ी ताकत है वह उनके आस-पास पूंछ हिलाने लगता है। और अब तो पूंछ हिलाने तक में बड़ी मुश्किल हो गई है और उतनी समझदारी रखनी पड़ती है, जैसे आमतौर से कुत्ते रखते हैं। आपने कभी कुत्ते को पूंछ हिलाते देखा। अगर अजनबी के सामने कुत्ता आएगा तो भौंकेगा भी और पूंछ भी हिलाएगा, दोनों काम करेगा--डबल रोल एक साथ। क्योंकि अभी पक्का नहीं है कि अजनबी जो है वह मित्रता का रुख लेगा या शत्रुता का रुख लेगा। अगर शत्रुता का रुख लेगा तो पूंछ हिलाना बंद कर देगा, भौंकने को बढ़ा देगा। अगर मित्रता का रुख लेगा तो भौंकना बंद कर देगा, पूंछ की ताकत बढ़ा देगा। अब तो नेताओं के बाबत कुछ पक्का नहीं है कि कौन नेता कब तक नेता रहेगा, किस क्षण सख्त हो जाएगा, भूतपूर्व हो जाएगा, कुछ पता नहीं है। इसलिए थोड़ा आदमी भौंकता भी है, पूंछ भी हिलाता है। अगर स्थिर हो जाए तो पूंछ जोर से हिला देंगे और अगर बाहर निकल गया तो फिर जोर से भौंक कर बता देंगे। अब तो कुछ निश्चित नहीं है। लेकिन यह भारतीय लक्षण है। यह हमारे कौमी लक्षण हैं। इन कौमी लक्षणों का जिम्मा पूंजीवाद पर नहीं है। यह पूंजीवाद से बहुत प्राचीन है और इन प्राचीन लक्षणों की जड़े बहुत गहरी हैं।
और सारे उपद्रव की जड़ हमारी दीनता, दरिद्रता, हमारी गरीबी है। उस गरीबी को मिटाने की दिशा में हम जो भी करें वही कदम भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, सबको मिटाने वाले सिद्ध हो सकते हैं।
और बहुत से प्रश्न रह गए हैं। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि मैंने जो बातें आपसे कहीं, उन बातों को अगर आप सोचेंगे तो जिन प्रश्नों के उत्तर मैं समय की कमी से नहीं दे पाया, वे उत्तर आपके खयाल में आ सकते हैं। अंतिम निवेदन कि मेरी बातों को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं कोई नेता नहीं हूं। और आपसे मुझे कुछ लेना-देना नहीं। आपसे कुछ लेना-देना नहीं कि आप मेरी बातें मानें तो मुझे फायदा हो, और मेरी बातें न मानें तो मुझे कोई नुकसान हो!
मेरी बातों को मानने की इसलिए भी कोई जरूरत नहीं हैं कि मैं कोई महात्मा हूं, कोई साधु हूं, कोई संत हूं कि आपको अनुयायी बनाने की मेरी इच्छा है। मैंने आपसे जो निवेदन किया, वह विचार के लिए है। आप सोचें... ! इतनी कृपा काफी होगी कि आप सोचें... ! और अगर आपको कुछ ठीक दिखाई पड़े तो
वह ठीक, वह आपकी जिंदगी में आपका अपना सत्य हो जाएगा। जो सत्य स्वयं के हो जाते हैं, वे सक्रिय हो जाते हैं। और सत्य थोड़ा सा भी सक्रिय हो जाए, तो उसके परिणाम दूरगामी हो जाते हैं। जैसे हम पत्थर को फेंक दें झील में, जरा सी जगह पर गिरता है, लेकिन उसके वर्तुल दूर-दूर झील के किनारों तक फैलने शुरू हो जाते हैं। तो इस आशा पर मैंने ये बातें कहीं हैं कि आपमें से शायद कुछ लोग भी अगर सोचेंगे तो जो वर्तुल पैदा होंगे वे शायद देश के कोने-कोने तक फैल जाएं! और हो सकता है कि अतीत में हमने भूलें की हों--लेकिन अतीत की भूलों से क्या प्रयोजन? हम भविष्य में भूलें करने से बच जाएं तो भी काफी है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का पंद्रहवां प्रवचन

क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया

प्रश्नः समाज में बहुत दिनों से जो असंतोष की भावना व्याप्त है और आज
जो वातावरण उत्पन्न हो गया है उसको देखते हुए यह निश्चित धारणा बन रही है कि भारत में अब पूर्ण क्रांति की संभावना पैदा हो गई है। इस संबंध में आपका क्या कहना है?

कठिन सवाल है। भारत का यह जो पांच हजार साल का ढांचा है, वह क्रांति के बिल्कुल विपरीत है। शायद दुनिया में कोई समाज इतना क्रांति विरोधी समाज नहीं है, जितना हमारा समाज है और इसलिए हमने कभी कोई क्रांति नहीं की। यह पांच हजार वर्ष के मनुष्य को अगर हम देखें, उसके माइंड, मन को देखे तो हमेशा मालूम पड़ता है कि पूर्ण क्रांति, फुलफ्लेज्ड रिवोल्यूशन हो जाएगी। लेकिन दूसरी तरफ से देखें कि पांच हजार वर्ष तक क्रांति नहीं हुई है, तो या तो ढांचा क्रांति विरोधी है या ढांचे के भीतर भारत की जो आत्माएं हैं, वे क्रांति के पक्ष में होती नहीं दिखाई पड़ती हैं। पांच हजार वर्ष की जो जकड़न है, उससे एक प्रतिक्रिया भी भीतर घनी होती चली गई है। उस प्रतिक्रिया का अगर उपयोग हो सके, तो शायद भारत अकेला मुल्क है जहां क्रांति, रिवोल्यूशन हो सके। और किसी मुल्क में क्रांति हुई भी नहीं।
इसमें दो बातें हैं और दोनों घटित हुई हैं। अगर हम ढांचे को देखे तो ढांचा तो ऐसा है कि क्रांति विरोधी है, लेकिन पांच हजार वर्ष की ढांचे की पीड़ा भी है हमारे साथ। और ढांचे के पीछे बढ़ता विरोध भी है और भीतर ढांचे को तोड़ देने का बीज अंकुरित होता चला गया है। और यह पांच हजार वर्ष की लंबी प्रतिक्रिया है। इसका विस्फोट भी हो सकता है, क्योंकि ज्वालामुखी बिल्कुल सामने से दिखाई पड़ रहा है और ऊपर से देख कर कोई यह नहीं कह सकता है कि आग भड़क जाने वाली है। ऊपर से सब शांत है, पक्षी गीत गा रहे हैं और सूरज निकला है, आभा हो रही है और कहीं कोई अशांति नहीं है, लेकिन भीतर एक अशांति इकट्ठी होती चली गई है। वह ज्वालामुखी घट भी सकता है। और जो ज्वालामुखी हमेशा फूटता रहता है उससे ज्यादा खतरा नहीं होता है, लेकिन जो ज्यालामुखी पांच हजार साल से शांत रहा है, अगर फूट जाए तो भारी विस्फोट होगा।
मेरे अनुभव में दो बातें हैं। ढांचा हमारा क्रांति विरोधी है, लेकिन हमारी आत्मा धीरे-धीरे ढांचे के विपरीत ही होती चली गई, होती ही चली गई। अगर उस तरफ ध्यान दें तो आशा बनती है कि इस मुल्क में रिवोल्यूशन, क्रांति होगी और वह फुलफ्लैज्ड, पूर्णतः होगी। अगर भारत में क्रांति होने वाली होगी तो फुलफ्लैज्ड होगी--एक बारगी ही, पुराने से हम पूरी तरह छुटकारा पा लेंगे। बुरी तरह विद्रोह होगा, साधारण विद्रोह नहीं होगा। साधारण हो ही नहीं सकता है, वह हमारा इतना पुराना हिसाब है।
दोनों ही बाते दिखाई पड़ती हैं, लेकिन अपनी आशा दूसरी बात पर ही बंधी हुई है कि क्रांति हो सकती है और उस दिशा में प्रबल चेष्टा की जाए तो भारत एक बड़ी क्रांति कर सकता है। उसने की नहीं है कभी, यह पक्का है। लेकिन नहीं की है, वह घटना करने के पक्ष में भी सहायक बन सकती है, परंतु हमारा मन जो है वह बहुत विपरीत खंडों में बंटा हुआ चलता है।
मुझे खयाल है, मेरे गांव में एक मुसलमान परिवार था, बहुत अभिजात परिवार था नवाबों का। उनके घर के लोगों को वे कभी किसी के साथ न खेलने दें, न घूमने दें। बहुत ही बांध कर व्यवस्था में रखते थे। उनका एक लड़का मैट्रिक तक मेरे साथ पढ़ता था। उसने कभी सिनेमा नहीं देखा, उसने कभी किसी लड़की से बात नहीं की। उसका कोई दोस्त नहीं था। कार से उस स्कूल में छोड़ देना और ड्राइवर कार लिए खड़ा ही रहेगा। क्लास के दरवाजे से बिठा कर उसको घर ले जाएगा। फिर वह कालेज पहुंचा। कालेज में जाकर देखा तो वह उलटा हो गया, एकदम उलटा हो गया, ठीक उलटा हो गया। सिवाय शराब के और वेश्या के और कुछ काम न रहा। छह साल वह इंटरमीडिएट में फेल होता रहा। आखिर बाप को उसे वापस बुला लेना पड़ा। उसके पिता मुझसे कहने लगे कि इससे ऐसी आशा नहीं थी। मैंने कहा,

ये दोनों संभावनाएं थीं। इतना जो सख्त ढांचा पर बिठाला था। उसके ढांचे को देख कर तो यह आशा नहीं बंधती थी, लेकिन ढांचे के खिलाफ इसका जो मन विद्रोह करता चला गया था उससे यह आशा बंधती थी।
भारत की स्थिति ऐसी है। एक ढांचा है, और एक हम हैं। तो हम तो खिलाफ होते ही चले गए हैं, और ढांचा पुराना, जीर्ण और जर्जर हो गया है! ढांचा बचने की कोशिश करेगा, हर कोशिश करेगा!

प्रश्नः वह अपने आप को सुधारने की कोशिश करेगा?

सुधारने की कोशिश भी करता है, वह भी बचाव के लिए है। मेरी दृष्टि में यही है कि अगर मोरारजी हुकूमत में रहें तो कांग्रेस जल्दी मरेगी, इंदिरा शासक बनती है तो दस साल और जीएगी। इंदिरा उसे भीतर से सुधारने की कोशिश में है और समाजवाद का नारा फिर से उसे बल दे देगा। दस साल फिर वह खींची जा सकती है। ढांचा वही आखिरी बचाव करता है। पहले तो ढांचा जैसा है, वैसा बचने की कोशिश करता है। जब उसे लगता है कि असंभव हो गया है, तो ढांचा ही क्रांति की बातें करनी शुरू कर देता है, जो बिल्कुल ही झूठी होती है। नेहरू भी वही करते रहे इस मुल्क के साथ और नेहरू कांग्रेस को बचा सके। बाप की पुरानी ट्रिक बेटी फिर करती है और वह सिर्फ समजवाद की बात है। उससे फिर क्रांति को धक्का पहुंचता है। क्रांति को धक्के की जरूरत नहीं है। अब तो जिससे हम लड़ने जा रहे हैं वही समाजवाद लाने के लिए तैयार है, बात खत्म हो गई और फिर क्रांति की बात ढीली हो जाएगी और ढांचा अपने को फिर संभाल लेगा। पुराना ढांचा आखिरी स्थिति में आ गया है। इसलिए वह क्रांति की भाषा बोलने लगा है। और यह सबसे खतरनाक मामला है।
ढांचा जब तक साफ बोलता है तब तक उससे हम लड़ सकते हैं, जब वह हमारी भाषा बोलने लगता है तब बहुत मुश्किल हो जाती है। वह ढांचा भी उपाय करेगा पूरी तरह। वह समाजवाद की बात करेगा, वह क्रांति की बात करेगा और वह नव-मूल्यों की बात करेगा और यह सारी बात ऐसी होगी जैसे हम पुराने मकान को गिरने से बचाने के लिए नया रंग-रोगन करते हैं, नई दीवार के ऊपर फर्श चढ़ा देते हैं सीमेंट की, दरारें भर देते हैं और कहते हैं सब नया हो गया, पुराना है ही कहां! यह ढांचे की आखिरी कोशिश है। वह कोशिश भी भारतीय ढांचा करेगा ही। हमने बहुत बार ऐसा किया है।
बुद्ध ने एक वैचारिक क्रांति इस मुल्क को दी। शंकर ने वह पूरा ढांचा स्वीकार कर लिया और उसे हिंदू धर्म बना लिया और बुद्ध की क्रांति खत्म हो गई। बुद्ध को उन्होंने जड़ से काट दिया। शंकर ने कहा, यह तो सब हमारे वेदांत में है और शंकर ने पूरा का पूरा बौद्ध विचार वेदांत में जबरदस्ती आरोपित कर दिया, जो वहां कहीं नहीं था। उन्होंने सब निकाल कर बता दिया कि यह तो वेदांत में है। हम बच गए। बुद्ध को हमने उखाड़ फेका। इस तरह जड़ से उखाड़ दिया है कि जहां बुद्ध जैसा आदमी इस मुल्क में पैदा हुआ, वहां उसके मंदिर में उसका पुजारी भी नहीं रहा। मंदिर का पुजारी भी खोजना मुश्किल हो गया। इस भांति बौद्ध चिंतन यहां से खत्म हुआ और उसे खत्म करने के लिए हमने यह तरकीब अख्तियार की कि हमने बुद्ध की भाषा को हिंदू भाषा में फौरन ढाल दिया।
यह हम कोशिश करेंगे। भारत इस तरह की पहले कोशिश कर चुका है, इसलिए हम कोशिश करेंगे। यह हम कहेंगे कि हमारी सारी की सारी संस्कृति क्रांतिकारी है। साम्यवाद इसमें है, समाजवाद इसमें है, सब इसमें है। गांधी और विनोबा इसी कोशिश में संलग्न रहे हैं, अरविंद भी इसी कोशिश में संलग्न रहे हैं। यहां तो जो भी पश्चिम में नया हुआ है, फौरन उसे हमारी किताब में बता देने की प्रवृत्ति है। अगर हवाई जहाज बन रहा है, तो हमारे वेद में वह पहले से है। और अभी वैज्ञानिक चांद पर पहुंच गया है, तो हमारा पंडित खोजने लगा होगा कि हम कैसे तरकीब निकाल लें, किस प्रकार अर्थ निकाल लें शास्त्रों से कि यह चांद पर पहुंचने की बात नई न रह जाए और हम कह सकें कि चांद पर तो हम पहले पहुंच चुके थे, हमारे ऋषि-मुनि पहले जा चुके हैं। वह हम करेंगे, और

इससे बहुत सचेत होने की जरूरत है क्योंकि यह बहुत धोखेबाज मामला है, इसे पहचानना मुश्किल है।
इसलिए भारत को हमें दो चीजों से सचेत करने की जरूरत पड़ गई है। एक यह कि ढांचा तोड़ना है और दूसरी यह कि ढांचा अपने को बचाने के लिए क्रांति की भाषा बोलगा, इससे सजग होना है। लेकिन आशा बंधती है, आशा बंधने के लिए और कारण भी हैं। बड़ा कारण तो यह है कि पिछले तीन हजार वर्षों से भारत--इधर तीन-चार सौ वर्षों को छोड़ कर--एक बंद मुल्क था। उसका दुनिया से कोई संबंध न था। हम अपने में तृप्त थे और स्वतंत्र थे और कोई तौलने का उपाय न था। लेकिन अब सब नाप और तौल साफ है। सारी दुनिया में जो हो रहा है, उससे ज्यादा दिन अब बचा नहीं जा सकता। वह सब यहां होगा और यह बड़ी आशा है।
बड़ी आशा जो हमारे क्रांति की है, वह हमारे भीतर से कम आ रही है। वह जो बाहर हमारे चारों तरफ हो रहा है, वह हमें धक्का दे रहा है। और यह बहुत जल्दी भारतीय प्रतिभा को स्पष्ट हो जाने वाला है कि अगर हम चूकते हैं समाज के ढांचे को बदलने से, तो हम शायद मनुष्य होने से चूक जाएंगे। दूसरे मुल्क हमारे सीने पर खड़े हो जाएंगे। जैसे आदिवासी में और हममें फासला हो गया है, वैसे ही अमरीका और रूस और हमें फासला हो सकता है। यह फासला बिल्कुल संभावी हो गया है। तो इस भय से और इस दबाव में कुछ हो सकता है और भीतर प्रतिक्रिया इकट्ठी हुई है, इससे भी कुछ हो सकता है।

प्रश्नः इस तरह के रिवोल्यूशन, क्रांति के लिए कोई संस्था होनी चाहिए?

संस्था निश्चित ही होनी चाहिए। संस्था होगी, लेकिन एक सीमा के बाद ही क्रांति में संस्था सहयोगी होती है। सीमा के पहले संस्था बाधा बन जाती है। क्रांति के पहले तो हवा होनी चाहिए, क्योंकि हवा ज्यादा क्रांतिकारी होती है और संस्थाए उतनी क्रांतिकारी नहीं होती, क्योंकि जैसे ही संस्था बनी, संस्था में निहित स्वार्थ शुरू हो जाएगा। तो क्रांति का पहला मामला तो हवा बांधना है, संस्था नहीं। उस हवा से संस्थाएं जन्म लेती हैं। जैसे रूस में हुआ है। रूस में जो हवा थी वह निहिलिज्म की थी। वह सिर्फ हवा थी, उसकी कोई संस्था न थी। निमित्त हवा थी, कोई संगठन न था, कोई एटिट्यूट न था-- जो सब चीजों को इनकार कर रही थी--यह भी गलत है, वह भी गलत है, सब गलत है। पुराना सब गलत है, ऐसी एक हवा थी। यह हवा घनी होती गई। यह सिर्फ हवा थी, इसका कोई स्वार्थ नहीं था, क्योंकि हवा की कोई अपनी जड़ें नहीं थी कि जहां उसे बैठना था। यह सिर्फ एक सरल वातावरण था। इस सरल वातावरण ने पूरे मूल्क की आत्मा को पकड़ लिया। विचार पकड़ते ही कर्म बनना चाहता है। विचार जैसे ही पकड़ा कि वह कर्म बनना चाहता है। आपको बनाना नहीं पड़ता है। एक दफा विचार पकड़ ले, तो वह सहज ही सक्रिय हो जाता है।
तो हवा से बातें आती हैं और हवा के पहले संस्था नहीं आनी चाहिए, जैसा हिंदुस्तान में हुआ।
हिंदुस्तान में क्रांति के नाम पर संस्थाएं खड़ी हो गईं। उनका अपना स्वार्थ है। हवा है नहीं। हवा है नहीं, तो "यह पार्टी है, "वह" पार्टी है। ये मिल जाती हैं, क्योंकि उनके अपने स्वार्थ हैं। और मजा यह है कि उनको अगर अपने स्वार्थ बनाने हैं और संस्था खड़ी रखनी है तो उनका साथ लेना पड़ता है जिसके खिलाफ काम भी करना है। तो यह कैसे होगा? तो धीरे-धीरे जिनके खिलाफ क्रांति करनी है, उनका भी स्वार्थ संस्था को दबा ले जाता है, वह चाहे कम्युनिस्ट हों, चाहे सोशलिस्ट हों, चाहे फलां हों, चाहे ढिकां। उसके पीछे आखिर में वही प्रश्न खड़ा हो जाता है।
तो मेरा मानना है कि अभी हमें बीस साल संस्था की बातें नहीं करनी चाहिए। उन्मुक्त और खुली हवा बनानी चाहिए। और एक दफा हवा पैदा हो जाए तो उससे पच्चीस संस्थाएं निर्मित हो जाएंगी। इसलिए मैं संस्था में उत्सुक नहीं हूं। यह मैं जानता हूं कि संस्था के बिना क्रांति नहीं होती, लेकिन बिना हवा के संस्था नहीं होती। और यही एक प्रक्रिया है कि हवा बन जाए, एक नियमित एटिट्यूट बन जाए इनकार करने का, "नो" करने का। "नो" इनकार करने की

हवा ही नहीं है, "हां" करने की ऐसी पुरानी आदत है, इसको तोड़ देने की मेरी उत्सुकता है। और मेरी मान्यता है कि यह नया काम हो सकता है। यह टूट जाए, और हवा एक बन जाए, तो इस हवा से संस्थाएं मिट नहीं सकतीं, लेकिन एक दफा हवा हो जाए तो संस्थाओं को हवा बचाएगी और तब उसे विरोधी का साथ नहीं देना पड़ेगा। अभी तकलीफ यह है कि अगर आज मैं कोई संस्था बनाना चाहूं तो जिनकी सहायता से भी बनाऊंगा उनके ही खिलाफ मेरा सारा कहना है। तब तो मुश्किल में पड़ गया। वे सारी शर्ते लेकर हाजिर हो जाते हैं। संस्था बनानी है लेकिन वे क्रांति को नहीं मानते हैं। क्रांति चलानी है तो संस्था बनानी पड़ती है लेकिन वे क्रांति को नहीं मानते हैं। क्रांति चलानी है तो संस्था बनानी पड़ती है। इसलिए मैं संस्था में बिल्कुल ही उत्सुक नहीं हूं, यह जानते हुए कि संस्था के बिना कोई क्रांति कभी नहीं होती। लेकिन कुछ लोगों को हिम्मत रखनी चाहिए कि वे संस्था न बनाएं ताकि वे हवा फैला दें, और उनका काम इतना है। हमें इतना तीव्र वातावरण पैदा करना पड़ेगा कि संस्था भी क्रांतिकारी हो सके।

प्रश्नः क्या नक्सलवादियों की क्रांति की दिशा सही है?

नहीं, मैं यह नहीं मानता। मैं इसलिए नहीं मानूंगा कि नक्सलाइट सिर्फ
एक प्रतिक्रिया, रिएक्शन है--क्रांति, रिवोल्यूशन नहीं। रिवोल्यूशन और रिएक्शन में बड़ा फर्क है। नक्सलाइट पुराने ढांचे के प्रति एक क्रोधपूर्ण प्रतिक्रिया है। वह क्रोध उस सीमा पर पहुंच गया है, जहां वह यह नहीं देखता है कि क्या करना है, क्या छोड़ देना है। वह अंधा हो गया है। अंधा क्रोध भी खतरनाक साबित हो सकता है। जितना अंधा कनफर्मिस्ट खतरनाक होता है, उतना ही अंधा रिवोल्यूशनरी भी। और नक्सलाइट की घटना जो है वह कोई रिवोल्यूशन नहीं है और कोई फिलासफी, दर्शन नहीं है। वह एक तीव्र रिएक्शन है, जो बिल्कुल जरूरी था। इसलिए जितने हम जिम्मेवार है नक्सलाइट पैदा करने के लिए, उतने वे बेचारे जिम्मेवार नहीं है। वे तो बिल्कुल निरीह हैं। उनको मैं जरा भी जिम्मा नहीं देता। मैं निंदा के लिए भी उनको पात्र नहीं मानता, क्योंकि निंदा उनकी क रनी चाहिए, जिनको रिसपांसिबिल, जिम्मेवार मानूं। हम रिसपांसिबिल हैं।
हमने पांच हजार वर्ष से जरा भी क्रांति नहीं की है, जरा भी नहीं बदले हैं, एकदम मर गए हैं। तो इस मरे हुए मुल्क के साथ कुछ ऐसा होना अनिवार्य है। लेकिन वह शुभ नहीं है। और उसको अगर हमने क्रांति समझा तो खतरा है। रिएक्शनरी हमेशा उलटा होता है और आप जो कर रह हैं उससे उलटा करता है। रिएक्शनरी वहीं होता है, जहां हमारा समाज होता है। सिर्फ उलटा होता है। वह शीर्षासन करता है। हम जो यहां कर रहें हैं, वह उसका उलटा करने लगता है। जिस जगह आप हैं, उससे गहरा वह कभी नहीं जा सकता है, क्योंकि आपका वह रिएक्शन है। अगर आपने मुझे गाली दी और मैं भी तुरंत गाली देता हूं तो आपकी और मेरी गाली एक ही तल पर होने वाली हैं, क्योंकि उसी तरह मैं भी गाली दे रहा हूं तो मैं भी गहरा नहीं हो सकता, गहरा हुआ नहीं जा सकता। गहरे होने के लिए भारत में नक्सलाइट कुछ नहीं कर पाएगा। नक्सलाइट सिर्फ सिम्पटमैटिक हैं-- सिम्पटम, बीमारी के लक्षण हैं। बीमारी पूरी हो गई है और अब नहीं बदलते हो तो यह होगा। यानी यह भी बहुत है, यह भी बहुत है मेरी दृष्टि में। लेकिन अगर तुम नहीं बदलते हो और इसके सिवाय तुम कोई रास्ता नहीं छोड़ते हो, अगर क्रांति नहीं आती तो यह प्रतिक्रिया ही आएगी।
अब दो विकल्प खड़े होते हैं मुल्क के सामने--या तो क्रांति के लिए तुम
एक फिलॉसफिक रूट, वैचारिक आयाम की बात करो और क्रांति को एक व्यवस्था दो और क्रांति को एक सिस्टम दो और क्रांति को एक क्रिएटेड पोस्ट बनाओ। अगर नहीं बनाते हो तो अब यह होगा यानी नक्सलाइट जो हैं वे हमारी वर्तमान समाज-व्यवस्था के दूसरे हिस्से हैं। ये दोनों जाने चाहिए। सोसाइटी भी जानी चाहिए और उसका रिएक्शन भी जाना चाहिए, क्योंकि यह बेवकूफी ही थी सोसाइटी का साथ देना। ये जो एक्टिविटीज, घटनाएं हैं, ये इसी के "पार्ट एंड पार्श्यिल", सहज परिणाम हैं।

आमतौर से ऐसा लगता है कि नक्सलाइट दुश्मन है। मैं नहीं मानता कि वे दुश्मन हैं। वे इसी सोसाइटी के हिस्से हैं, इसी सोसाइटी ने उसे पैदा कर दिया है। इसने गाली दी है तो उसने दुगुनी गाली दी है, बस इतना फर्क पड़ा है। मगर यह माइंड, चित्त इसी से जुड़ा हुआ है। यह सोसाइटी गई तो वह भी गया। अगर यह नहीं गई, तो वह भी जाने वाला नहीं है। यह बढ़ता चला जाएगा।
अब मेरा कहना यह है कि क्रांतिकारी के सामने दो सवाल हैं। ठीक विचार करने वाले के सामने दो सवाल हैं। वह यह कि या तो सोसाइटी में क्रांति आए-- और सृजनात्मक रूप में--और नहीं आ पाती है तो नक्सलाइट विकल्प रह जाएगा। और वह कोई सुखद विकल्प नहीं है। वह सुखद भी नहीं है, गहरा भी नहीं है, जरा भी गहरा नहीं है। वह उसी तल पर है, जहां हमारा समाज है। वह सिर्फ रिएक्शन कर रहा है, वह जरूरी है। यह मैं नहीं कहता कि बुरा है तो गैर-जरूरी है। बुरा है, नहीं हो, ऐसी हमें व्यवस्था करनी चाहिए।
और वह व्यवस्था हम तभी कर पाएंगे जब हम पूरी सोसाइटी को बदलेंगे। नक्सलाइट को हम रोक नहीं पायेंगे, उनको रोकने का सवाल ही नहीं है। पूरी सोसाइटी उसे पैदा कर रही है। इसका जड़ होना उसको पैदा कर रहा है, इसके न बदलने की आकांक्षा उसको पैदा कर रही है, इसका पुराना ढांचा उसको पैदा कर रहा है, यह ढांचा पूरी तरह गया तो इसके साथ नक्सलाइट गया।
नक्सलाइट एक संकेत है, जो बता रहा है कि सोसाइटी इस जगह पहुंच गई कि अगर क्रांति नहीं होती तो यह होगा। और अब सोसाइटी को समझ लेना चाहिए। वह पुराना ढांचा तो नहीं बचेगा। या तो क्रांति आएगी या यह ढांचा जाएगा। ये दो चीजें आ सकती हैं और अगर आप मर्जी से लाएं तो क्रांति आएगी, अगर आप सोच कर लाएं तो क्रांति आएगी, विचार करके लाएं तो क्रांति आएगी और अगर आप क्रांति न लाएं, इसके लिए जिद में रहे कि नहीं आने देंगे तो यह विचारहीन प्रतिक्रिया आएगी। यानी मेरा कहना है कि नक्सलाइट एक थाटलेस रिएक्शन, विचारहीन प्रतिक्रिया है।

प्रश्नः थॉटलेस रिएक्शन तो है लेकिन इट हेज ए परपज... एण्ड लुकिंग टु
दि परपज, सपोज, सोसाइटी का माइंड, चित्त परिवर्तित हो गया तो यह क्रांति है, तो इसका परपज, लक्ष्य है कि वह प्रचलित मूल्यों को चैलेंज करता है... ?

परपज लक्ष्य वैसा ही है जैसे कि आप बीमार है और जोर से बुखार हो गया है। सारा शरीर गर्म है और एक सौ चार डिग्री बुखार है। एक सौ चार डिग्री में जलना सिर्फ खबर है कि भीतर बीमारी है और यह चीज ऐसी है कि शरीर को अस्वस्थ किए दे रही हैं, बेचैन किए दे रही है, उत्तप्त किए दे रही है। यह बुखार का परप.ज है। यह त्वरा का, फीवर, बुखार का परपज है कि आपको खबर दे रहा है कि भीतर डिसी.ज, बीमारी है। डिसीज मिटेगी तो यह बुखार जाएगा और किसी ने अगर ठंडा पानी डाल कर इस बुखार को कम करने की कोशिश की तो डिसी.ज तो नहीं मिटेगी, आदमी मरेगा। नक्सलाइट को सिर्फ ठंडा करने की कोशिश की तो सोसायटी मरेगी। नक्सलाइट सिर्फ फीवर है। परपज है फीवर का, लेकिन फीवर बचाने योग्य नहीं होता है, मिटाने योग्य होता है।
परप.ज तो उसका है कि उसने खबर दी है आपको, आपके शरीर के ऊपर आकर कि आप बचेंगे नहीं, अगर बीमारी दूर नहीं होती तो। अभी बुखार बढ़ता है, एक सौ चार से एक सौ दस तक जाएगा। अब जल्दी बीमारी अलग करो। सिर्फ इतना परपज है उसका और बीमारी अलग हुई कि परपज इसका खत्म हुआ। मगर खतरा है कि कहीं हम बीमारी को इसका विकल्प न मान लें। कहीं हम ऐसा न समझ लें कि बीमारी का दुश्मन है, यह फीवर जो है। यह दुश्मन नहीं है, बीमारी का ही हिस्सा है, बीमारी की ही खबर है, बीमारी से ही जुड़ा है। तो ऐसा नहीं है कि बीमारी को छोड़ें और बुखार को पकड़ लें। ऐसा परपज नहीं है नक्सलाइट का कि हम आज सोसायटी के पुराने ढांचे को छोड़ दें और नक्सलाइट, जो बेवकूफी की बात कर रहा हो उसे पकड़ लें। यह विकल्प नहीं है।
जानना यह है कि नक्सलाइट आपकी पुरानी सोसाइटी पैदा कर रही है। आप पुरानी सोसाइटी को खत्म नहीं करेंगे तो नक्सलाइट पैदा होगा। यानी नक्सलाइट का एक ही परपज है और वह यह कि वह पूरी खबर दे कि पुरानी सोसाइटी

आखिरी क्षण में है, और अगर नहीं मरती है तो नक्सलाइट को पैदा कर जाएगी और इससे अगर बचना है तो पुरानी सोसाइटी खत्म करो, उस बीमारी को जाने दो। यह इसका रिएक्शन है। इसको बचाना नहीं है, जाने देना है--सोसाइटी के साथ जाने देना है, बचाना नहीं है। इसलिए नक्सलाइट पुरानी सोसाइटी का दुश्मन है और में मानता हूं कि वह उसी का हिस्सा है जो घबड़ा गया है, क्रोध से भर गया है और जो वह सोसाइटी करती था उससे उलटा काम कर रहा है। ठीक उलटा कर रहा है। पुरानी सोसाइटी जैसे आज अमरीका में है, युरोप में है उसके विरोध में प्रतिक्रिया स्वरूप बीटल्स और बीटनिक पैदा हो गए हैं। वे भी उसी पुरानी सोसाइटी के हिस्से हैं। पुरानी सोसाइटी कहती है कि सड़क पर कपड़े ढांक कर चलो, तो वह सड़क पर नंगा खड़ा हो गया है।
गिन्सबर्ग एक बीटनिक है, वह एक जगह छोटी सी कविता सुन रहा है। अमरीका
की घटना है, सुना रहा है किसी को और उसमें नंगी तस्वीर है, भद्दे शब्द हैं, गालिया हैं। एक आदमी खड़ा होकर कहता है कि यह क्या गालियां बक रहे हो। यह कोई बहादुरी नहीं है, कोई बहादुरी का काम दिखाओ। वह गिंसबर्ग कहता है, अच्छी बात! वह अपने सब कपड़े उतार कर नंगा खड़ा हो जाता है। वह नंगा खड़ा हो गया है। उसने कहा, यह बहादुरी का काम है। तुम नंगे हो सकते हो? उस गेदरिंग, सभा में जो लोग इकट्ठे थे, भाग गए वहां से। लोग भाग रहे हैं--औरतें, पुरुष और वह नंगा होकर खड़ा है।
मेरा मानना यह है कि यह जो नंगा खड़ा होना है, यह जो कपड़े पहनने का अति आग्रह है, दबाने का, छिपाने का--उसका ही रिएक्शन है। मानता कपड़े को यह भी है, क्योंकि कपड़े उतार कर बहादुरी दिखा रहा है। यह दिखा रहा है कपड़े उतार कर बहादुरी, हम दिखा रहें हैं... ! लेकिन यह है हमारा ही दूसरा विपरीत हिस्सा, डाइमेट्रिकली अपोजिट, दि पार्ट एण्ड पार्श्यिल, बिल्कुल उलटा रूप है, लेकिन हमसे जुड़ा हुआ है।
जब तक दुनिया में कपड़े पहनने का बहुत आग्रह जिद्दपूर्वक जारी रहेगा, गिंसबर्ग पैदा होगा। अगर हमने मनुष्य के शरीर को इस भांति इनकारा कि इसको देखने ही मत देना, तो कुछ विद्रोही लड़के पैदा होंगे जो कहेंगे कि हम नंगे खड़े होंगे, हम सड़कों पर नंगे चलेंगे। और आज नहीं कल, यह पक्का ही मानना कि लड़के और लड़कियां सड़कों पर नंगे खड़े होकर कपड़ों के खिलाफ बगावत करेंगे, क्योंकि हमने अति आग्रह कर लिया है। कपड़ा पहनना एक सुविधा की बात है, वह एक मॉरेलिटी न बन जाए और कोई पैटर्न न बन जाए कि उघाड़ा होना एक पाप हो जाए। नक्सलाइट जो है वह हमारी सोसाइटी का हिस्सा है। वह ढांचे से छूट कर उलटा खड़ा हो गया है। लेकिन उलटा खड़ा होना उतना ही पागलपन है। बदलना है सोसाइटी को, सोसाइटी को उलटी नहीं करना है।

प्रश्नः सवाल यह उठता है कि पहले पांच हजार वर्ष पुराने ढांचे को हटाना है या पहले इस नई प्रतिक्रिया को हटाना है? और आखिर जो नया है उसको तो सरलता से ही हटा सकते हैं, क्योंकि वह नया हैं!

नहीं, आप इस खयाल में मत रहना, क्योंकि जो नया पांच हजार साल पुराने को हटा देगा वह पांच हजार साल पुराने से मजबूत सिद्ध हो रहा है, तभी तो हटा रहा है। आप ध्यान रखना, नक्सलाइट को हटाना मुश्किल हो जाएगा। पुराने को हटाना आसान है, क्योंकि पुराना जरा-जीर्ण है और मरने के करीब पहुंच गया है, सिर्फ धक्का देने की बात है। पुराने को हटाना बहुत कठिन नहीं है मामला, क्योंकि वह अपने भीतर मर चुका है और नक्सलाइट ने अगर पुराने को हटा दिया तो बहुत जीवन पा जाएगा। फिर इसको हटाना बहुत मुश्किल होगा। इसको हटाने में पांच हजार साल लग सकते हैं।
मेरी समझ यह है कि मोरार जी को हटा देना बहुत कठिन नहीं है, डांगे बैठ जाए तो हटाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। मोरार जी मरी हुई खोल पर खड़े हैं, मरे नहीं हैं, धक्का दिया कि गए, लेकिन इनको हटा कर जो खड़ा हो जाएगा वह नया होगा, अभी जीवंत होगा, अभी यंग होगा, अभी विजयी होगा वह। उसे हटाने में वक्त लग जाएगा जब तक वह उतना नहीं सड़ जाएगा। और जब आप सड़े को नहीं हटा पा

रहे हैं तो आप नक्सलाइट को कैसे हटाएंगे, जो बहुत जिंदा है। यानी सावधानी बहुत बरतने की जरूरत है, खतरा बहुत ज्यादा है।
नक्सलाइट का परप.ज है, लेकिन परपज के आगे खतरा भी बहुत बड़ा है और मैं मानता हूं कि खतरा पुरानी सीढ़ी पैदा कर रही है। और एक दफा देश क्रांति के लिए राजी नहीं होता तो विकल्प नक्सलाइट है और नक्सलाइट एक दफा आ गया तो क्रांतिकारी के लिए बड़ा प्राब्लम होगा। पुराने की एक व्यवस्था है--गलत हो या भला। और व्यवस्था को चलाना भी आसान होता है और हटाना भी आसान होता है। नक्सलाइट की कोई व्यवस्था नहीं है, वह एक अव्यवस्था है। अव्यवस्था को चलाना भी मुश्किल है, हटाना भी मुश्किल है। व्यवस्थित चीज को हटाना बहुत आसान है। उसकी एक सीमा है, एक जगह है। वह कहां है, यह हमें पता है। नक्सलाइट की कोई व्यवस्था या नियम नहीं है, इसलिए उसको हटाना एकदम मुश्किल है। किससे लड़ोगे आप, क्या लड़ोगे? न नियम है, न व्यवस्था है, न कोई ढांचा है-- किससे लड़ने वाले हो आप! एक नक्सलाइट जैसी व्यवस्था किसी सोसाइटी में आ जाए तो बहुत मौके इस बात के हैं कि पुराना ढांचा वापस आ जाए--बहुत मौके ऐसे हैं बजाय क्रांति आने के।
अमरीका में बजाय क्रांति आने के पुरानी व्यवस्था वापस लौट आई है और लोग कहने लगे हैं कि इससे पुराना ही अच्छा है, इसने तो जीना मुश्किल कर दिया है। और मेरा कहना यह है कि वे एक ही पहलू के दो हिस्से हैं, उन्हीं के विकल्प हैं! अगर नक्सलाइट हारेगा तो पुराना वापस लौट पड़ेगा। वे जुड़े हुए हैं। अगर नक्सलाइट आ जाए कल और सारा मुल्क अव्यवस्थित हो जाए तो क्रांति नहीं आ जाएगी उससे। उससे सिर्फ इतना होगा कि पुराना ढांचा जो हार गया था वह फिर खड़ा होकर कहेगा कि देखो, यह हो रहा है नया। फिर हमको वापस लौट कर आने में मजा होगा।
मेरा मानना है कि नक्सलाइट अगर सफल हो जाए तो पुराने ढांचे को दो-तीन
सौ वर्ष में फिर जिंदा कर जाएगा, इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकता। क्रांति वह नहीं है, वह प्रतिक्रिया, रिएक्शन है और इसलिए क्रांति की
दृष्टि जो है उसको दोनों से लड़ना है--पुराने ढांचे से और नक्सलाइट से। उसको फिर भी यह कहना है कि तुम उसी के हिस्से हो, तुम इतने क्रोध में हो, तुम उसी के हिस्से हो, तुम उससे बहुत भिन्न नहीं हो। तुम उससे रिबेलियस स्टाइल, विद्रोही ढंग के हो, लेकिन रिवोल्यूशन तुम्हारे मन में नहीं है, तुमने मूल्यों के बाबत सोचा नहीं है। वे मूल्य गलत नहीं हो गए हैं, सिर्फ तुम मूल्यों से परेशान हो गए हो।
परेशान हो जाना एक बात है, गलत हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। जैसे कि मैं परेशान हो जाऊंगा, यदि समाज कहे कि एक लड़की से तुम नहीं मिल सकते। मैं परेशान हो जाऊंगा और यदि मैं सब नियमों को तोड़ कर उस लड़की से मिल लूं और उसको उठा कर ले जाऊं तो मैं कोई क्रांति नहीं कर रहा हूं, न समाज के ढांचे को तोड़ रहा हूं, मैं सिर्फ परेशानी जाहिर कर रहा हूं। सवाल यह नहीं कि मुझे एक लड़की मिल जाए कि न मिल जाए, सवाल यह है कि स्त्री और पुरुष के बीच के संबंध में कायम का मूल्य बदले। मुझे कोई मिल जाए, इससे क्या फर्क पड़ने वाला है। पुराना मूल्य जारी रहेगा बिल्कुल। जिस पर मन आए उसको उठा कर ले जाऊं तो पुराना मूल्य और मजबूत हो जाएगा कि देखो, यह गलत काम हो गया और इस आदमी की बात नहीं सुननी चाहिए। यह एक उलझी हुई बात है।
तो मेरी दृष्टि में नक्सलाइट का जो परपज है वह सिर्फ इतना है कि जो विचारशील लोग हैं वह समाज को कह दें कि अब अगर पुराने की कोशिश करोगे तो यह होगा, और यह तुमसे हो रहा है। हालांकि पुराना यह समझाने की कोशिश करेगा कि तुम्हारी नई बातों से हो रहा है यह उपद्रव। पुराना यह समझाने की कोशिश करेगा कि देखो, क्रांति का यह फल हो रहा है।
अभी मैं एक घर में ठहरा, जमशेदपुर में। उस घर के सदस्य कलकत्ता गए हुए थे, तो कलकत्ते की हालत गंभीर हो गई थी। एक गली में दो लोगों ने उन्हें पकड़ लिया। हाथ घड़ी उतार ली और कहा कि आप दूसरी ले लेना, दुकान पास में है। इधर दुकान दूर नहीं है, आप ले लेना। वे मुझसे बोले कि तो मैं क्या करता! यह तो हद्द अभद्रता है। स्त्रियों के कपड़े उतारने, गहने छीनने की बात हद्द अभद्रता है।

यह कोई क्रांति नहीं है। इससे कोई मूल्य नहीं बदलते। इससे कोई मतलब
हल नहीं होता। बल्कि डर इस बात का है कि कहीं पुराने मूल्य और मजबूत न हो जाएं, क्योंकि नक्सलाइट्स जैसे पुराने आदमी को पुनः पुराने ढांचे में लगाएंगे तो यह तो निपट बेवकूफी और गंवारी होगी। इससे जीना मुश्किल हो जाएगा। तो यह हो सकता है कि नक्सलाइट जो है पुराने ढांचे के लिए बल सिद्ध हो, निर्बल न कर पाए, क्योंकि यह क्रांति नहीं है। इसलिए मेरी जो चिंतना है, मुझे ऐसा लगता है कि नक्सलाइट से उतना ही सावधान रहना है, जितना शंकराचार्य से।
दूसरी बात यह है कि क्रांति का मूल्य उभरे, उसकी हवा मजबूत हो, इसके लिए बीस वर्ष तक इमीजिएट प्राब्लेम, तात्कालिक समस्याओं को छूना नहीं चाहिए। हमारे लिए यह भी कठिन है। क्रांति इमिजिएट मामला नहीं है कि आज एक मजदूर को दो पैसा ज्यादा मिल जाए। यह क्रांति का मामला नहीं है, मसला नहीं है। मजदूर की उत्सुकता इसी में है। क्रांति का मामला यह नहीं है, क्रांति का मामला वेल्यूज का मामला लंबा है, गहरा है। बीस, पच्चीस, पचास साल लगेंगे, क्योंकि पांच हजार साल का झंझट है हमारे पास। मुल्क के विचारशील आदमी को तात्कालिक प्रश्नों की चिंता ही छोड़ देनी चाहिए। उसे तो मुल्क में निगेटिव माइंड पैदा करने की फिकर करनी चाहिए कि निगेट, निषेध करने वाला माइंड पैदा हो जाए, एंग्री माइंड नहीं, निगेटिव माइंड!
निगेटिव माइंड गुस्से में नहीं, अत्यंत शांति में है, अत्यंत शांति
से सोच रहा है और देख रहा है कि यह मूल्य व्यर्थ हो गया है। इसकी व्यर्थता को समाज को दिखा देना है और इसकी जगह कैसे नया मूल्य आए, इसके बाबत चिंतना करनी है।
पुराने को तोड़ देना बहुत कठिन नहीं है। क्रोध में तोड़ा जा सकता है। लेकिन पुराना फिर बन जाएगा, क्योंकि क्रोध स्थायी नहीं होता, फिर थोड़ी देर में वापस लौट आता है। बल्कि कई बार आश्चर्य होता है कि मैंने आपको क्रोध में गाली दे दी तो घंटे भर बाद आपसे क्षमा मांगने आ जाऊंगा और न भी मांगना हो तो भीतर क्षमा मांग लेंगे, पश्चात्ताप तो करेंगे ही। गाली का ही दूसरा हिस्सा पश्चात्ताप है। अगर नक्सलाइट गाली का दूसरा हिस्सा है तो समाज बहुत बदलेगा नहीं।

प्रश्नः अब जो क्रांतिकारी है--सच्चा क्रांतिकारी--इसके बारे में पूछूंगा। क्या आपका विश्वास है कि क्रांतिकारी "पाथ ऑफ वर्चू", नैतिकता के मार्ग का अनुगमन करे! क्या क्रांतिकारी को सदा सत्यवादी होना चाहिए? क्या उससे किसी भी गलत काम की अपेक्षा नहीं होनी चाहिए? और क्या अगर ये बातें उसमें हैं तो वह समाज में क्रांति लाने में जल्दी सफल होगा?

अगर कोई चीज वर्चू, सदगुण है, रिवोल्यूशनरी माइंड, क्रांतिकारी चित्त, यह तय करेगा कि वर्चू क्या है और वर्चू क्या नहीं है। तो पहला सवाल यह नहीं है कि कौन सा वर्चू? वह पहले यह तय करेगा कि वर्चू क्या है और वर्चू क्या नहीं है। यह भी हो सकता है, जिसे हम अब तक नीति और वर्चू कहते थे वह वर्चू है ही नहीं। यह भी हो सकता है कि उसके पीछे बहुत अनीति और बहुत अवगुण छिपाने का सिर्फ उपाय चला आ रहा हो और वह सिर्फ नाम हो, धोखा हो। तो रिवोल्यूशनरी माइंड किसी तरह यह तय करना चाहेगा कि वरच्यू क्या है। और जो वर्चू है उसे तो फॉरगो, उपेक्षित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसे फॉरगो किया तो रिवोल्यूशन असंभव है।
तो बुनियाद में हमें यह सोचना है कि वर्चू क्या है। अगर स्ट्रक्चर, ढांचा होना वर्चू है तो फॉरगो नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसको फॉरगो करके कोई क्रांति नहीं लाई जा सकती, क्योंकि फॉरगो करके पूरी सोसायटी चल रही है। और क्रांतिकारी भी फॉरगो करे तो इसी सोसायटी का हिस्सा बना रह जाएगा। अगर सत्य बदलना वर्चू है तो क्रांतिकारी को कहीं तो इनसिस्ट करना पड़ेगा, चाहे जहां जाए।
मेरा मानना है कि सफलता का मूल्य भी क्रांतिकारी का मूल्य नहीं, यानी असफल होने की तैयारी भी क्रांतिकारी के चित्त का हिस्सा है। असल में यह

प्रतिक्रियावादी के चित्त का हिस्सा है कि हर हालत में सफल होना। यह कंफर्मिस्ट मांइड, मताग्रही चित्त का हिस्सा है। सक्सेस, सफलता, एण्ड-- अंतिम लक्ष्य की तरह मालूम होती है कंफर्मिस्ट माइंड को और इसीलिए वह कंफर्म, निश्चित करता है, क्योंकि कंफर्म, निर्धारित होना ज्यादा आसान है। सोसायटी जो कहती है उसके साथ राजी होने से मैं जल्दी सक्सेसफुल, सफल हो सकता हूं। रिवोल्यूशनरी हारने के लिए तैयार है। यह तैयारी भी रिवोल्यूशनरी माइंड का हिस्सा है। पूरी तरह हार जाने को तैयार है, लेकिन नॉन-रिवोल्यूशनरी होने को तैयार नहीं।
जिस सोसायटी में हम जी रहे हैं, इसमें रिवोल्यूशन असफल हो सकती है, होती रही है और होगी। कोई जल्दी नहीं है कि सफल हो ही जाए आज। हो सकती है सफल, यानी सफल होने की उसकी आकांक्षा नहीं होनी चाहिए और इसके पहले तो तय करना चाहिए कि वर्चू क्या है और यह सारी चीजें तय करनी होंगी, यानी मूल्य का उसे रि-कंसीडरेशन, पुनर्विचार करना कि--क्या है नीति, क्या है वर्चू! जैसे समझ लीजिए कि कल तक यह वरच्यू मानते थे कि एक आदमी ने जिस पत्नी
से शादी की है उसके साथ सोना पाप नहीं है। किसी और औरत के साथ जिससे उसकी शादी नहीं हुई है, उसके साथ सोना पाप है। हो सकता है, वैल्यू यह कहे कि जिस स्त्री से प्रेम नहीं है उसके साथ सोना पाप है, चाहे वह पत्नी हो या न हो, यह सवाल नहीं है। जिसके साथ प्रेम है, वह चाहे पत्नी हो या न हो, उसके साथ सोने में कोई पाप नहीं है। वह कहेगा कि जिस औरत से मेरा कोई प्रेम नहीं रह गया है, उससे शादी निर्मूल्य हो गई। बात खत्म हो गई, क्योंकि प्रेम ही शादी का अर्थ है! बात खत्म हो गई और अगर मैं उसके साथ सोए चला जाता हूं तो मैं पापी हूं, क्रिमिनल हूं, क्योंकि जिससे मेरा प्रेम नहीं है, उससे मेरा क्या संबंध है! फिर उससे मेरा संबंध वैश्या का संबंध हो गया, वह मेरी पत्नी नहीं है। क्रांतिकारी यह कह सकता है।
एक लड़की ने अमरीका में एक बड़े न्यायालय को लिखा है कि मैं मां बनना चाहती हूं, लेकिन पत्नी बनने को तैयार नहीं हूं। पत्नी बनना मुझे अपमानजनक मालूम पड़ता है और मां बनना मुझे गौरवपूर्ण मालूम पड़ता है। ऐसा लगता है, जब तक मां नहीं बनती हूं तब तक अतृप्ति रह जाएगी। फिर सोसायटी मुझे क्यों मजबूर करती है। मां बनने के लिए मुझे पत्नी बनना पड़ेगा, यह जबरदस्ती मुझ पर क्यों थोपी जाए। पत्नी बनना मुझे अपमानजनक मालूम पड़ता है और मां बने बिना मैं कभी पूर्ण संतृप्ति नहीं अनुभव कर सकती हूं। और आप केवल यह विकल्प देते हैं कि पत्नी बने बिना मैं मां नहीं बन सकती या बनी तो मेरा बच्चा अपमानित होगा। तो मैं यह पूछना चाहती हूं कि समाज का क्या हक है, इस तरह की अनीति थोपने का!
क्रांतिकारी चित्त का मतलब यह होगा कि वह वरच्यू के बाबत रि- कंसीडरेशन, पुनर्विचार करेगा, लेकिन यह उसे वरच्यू मालूम होगी। जैसे मैं एक लड़की को कहूंगा कि तू मां बन और तू पत्नी मत बनना और इसके लिए तू लड़ना और तब मैं कहूंगा कि तेरी जिंदगी में एक वरच्यू है। तू क्यों झुके? और अपने लड़के को इस बात के लिए तैयार करना कि वह इनकार करे कि मेरा कोई पिता है या मुझे पता नहीं कि कौन मेरा पिता है और पिता का नाम बताने की कोई जरूरत नहीं है और इसमें कोई पाप नहीं है। मेरी मां काफी है। उसको ऐसा तैयार करना। और मैं मानूंगा कि यह लड़का पापी नहीं है, न यह नाजायज है, न यह बुरा है, सिर्फ सोसायटी की धारणा गलत है।
तो वर्चू क्या है? अगर सोसायटी बदलनी है तो पहले वरच्यू की धारणा बदलनी पड़ेगी। इसीलिए मैं हवा पैदा करना चाह रहा हूं और वह हवा पैदा हो जाएगी, लेकिन जो वर्चू मालूम पड़े उस पर तो क्रांतिकारी को खड़ा होना ही पड़ेगा। असफल हुआ तो कोई फिकर नहीं। असफलता का क्या ड़र है? असफलता का डर ही कनफर्मिस्ट, रूढ़िवादी बनाता है। यानी मुझे लगे कि एक स्त्री के साथ बिना शादी किए रहूं तो समाज में असफल हो जाऊंगा तो शादी कर लेनी चाहिए, शादी का ढ़ोंग पूरा कर देना चाहिए। लेकिन तब मैं सफलता के लिए उत्सुक हूं और ठीक से क हा जाए तो तब मैं सदगुणी, "मैन ऑफ वर्चू" नहीं हूं। और अगर यह लगता है कि मित्रता पर्याप्त है और एक स्त्री मेरे साथ रह सकती है और शादी को जोड़ना अनिवार्य नहीं है, ताकि कल सुबह यदि हमें लगे कि अलग हो जाना उचित है तो

नमस्कार कर सकूं और कोई कहने वाला न हो कि नहीं, तुम्हारे ऊपर मुकादमा चलेगा। हम स्वतंत्र हों और हम एक क्षण में अलग हो सकें। अब शक यह है कि जिससे हम एक क्षण में अलग हो सकते हैं, उसके साथ ही सिर्फ रहने का आनंद है और जिससे हम अलग हो ही नहीं सकते, उनके साथ रहने का आनंद खत्म हो गया है। तो वर्चू की पूरी धारणा बदलनी पड़ेगी। और जो वर्चू मालूम पड़े, क्रांतिकारी उस पर जिद्द करेगा, नहीं तो वह क्रांतिकारी नहीं है।

प्रश्नः क्रांतिकारी का उसके दुश्मन के साथ क्या संबंध होना चाहिए? उसका बिल्कुल सफाया कर देना चाहिए या उसे सुधारना चाहिए? क्या दृष्टि होनी चाहिए?

असल में उसे मिटा देने का खयाल भी क्रांतिकारी नहीं है। कनफर्मिस्ट
भी तो यही सोचता है न कि क्रांति की जो बात करे, मिटा दो उसे और अगर क्रांतिकारी भी ऐसा ही सोचता है तो मैं मानता हूं कि वह भी कनफर्मिस्ट है। क्रांतिकारी नहीं कर सकता है मिटाने की बात, क्योंकि क्रांतिकारी यह भी तो मानता है कि एक-एक व्यक्ति को अपने सोचने, अपने रहने, अपने जीने का हक है कि मैं अपनी बात कहूं, समझाऊं।
मिटाने का हक तो क्रांतिकारी को नहीं हो सकता। इसलिए मैं लेनिन या स्टैलिन या माओ को बहुत क्रांतिकारी नहीं मानता। इनका बेसिक जो माइंड है वह वही है--कनफर्मिस्ट वाला। कनफर्मिस्ट कहता था, जेल में डाल दो इस आदमी को, जान ले लो इसकी, इसकी जड़ें काट दो, इसको बचने मत दो। वही हम कर रहे हैं उसके साथ। इस मामले में तो कम से कम हम क्रांतिकारी बिल्कुल नही हैं। हमने उसी के रास्ते अख्तियार किए हैं। ठीक क्रांतिकारी इस भाषा में नहीं सोच सकता है, क्योंकि क्रांतिकारी पहले तो व्यक्ति के मूल्य को परम मानता है, अल्टीमेट मानता है और इसीलिए तो वह सोसाइटी के खिलाफ खड़ा है, नहीं तो खड़ा रहने का मतलब क्या है! अगर व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है तो मेरी अकेले की बात क्या मतलब रह जाएगा! जब चालीस करोड़ लोग कहते हैं कि यही बात ठीक है तो ठीक है। बात खत्म हो गई। मुझे अपनी जिद छोड़ देनी चाहिए। मैं अकेला चिल्लाऊं कि यह गलत है तो मैं यह मान कर चल रहा हूं कि प्रत्येक आदमी को यह हक है कि वह अपनी बात कह सके। आप अपनी आवाज उठाएं और यदि कल मैं आपकी गर्दन काट दूं, अगर मेरे हाथ में ताकत आए, तो मैंने क्रांति की हत्या कर दी है। इसीलिए अक्सर कमजोर क्रांतिकारी सत्ता में आते ही गैर क्रांतिकारी हो जाते हैं। क्योंकि उनका आंतरिक चित्त, बेसिक माइंड क्रांतिकारी नहीं है, इसलिए मैं मानता हूं कि स्टैलिन क्रांतिकारी आदमी नहीं है। उसके पास दिमाग जो है वह रूढ़िवादी है, वह क्रांति के चक्कर में आ गया है। लेकिन जैसे ही हुकूमत में आया, वह जार बन गया। फिर उसने वही किया जो जार ने उसके साथ किया। उससे भी ज्यादा शक्ति से वही इसने भी किया।
ठीक क्रांतिकारी का तो मतलब यही है कि वह व्यक्ति के परम मूल्य को स्वीकार करता है इसलिए आपको दबाना, आपको धमकाना, आपको मारना गैर-क्रांतिकारी कृत्य होगा। मैं तो यहां तक मानता हूं कि गांधीजी की वृत्ति भी क्रांतिकारी नहीं है। क्योंकि वे धमकियां देते हैं, सत्याग्रह के नाम पर। आपके सामने मैं उपवास करके बैठ जाऊं, तो मैं धमकी दे रहा हूं कि मैं मर जाऊंगा। अंबेदकर ने कहा कि मेरा हृदय बिल्कुल परिवर्तन नहीं हुआ। गांधी सोचते हैं कि हृदय परिवर्तन हुआ है, तो गलत सोचते हैं। मेरा हृदय परिवर्तन हुआ, सिर्फ यह सोच कर कि एक अच्छा आदमी मर जाएगा इसलिए मैं हट जाऊं। इसलिए मैं मानता हूं कि अंबेदकर ज्यादा अहिंसक हैं--हट जाने में, गांधी ज्यादा हिंसक हैं--उपवास करने में। अंबेदकर भी जिद्द कर सकता है कि मरें अपने आप, हम तो जिम्मेवार नहीं हैं। तुम अपनी जिद्द करते हो तो मर जाओ। अंबेदकर हट गया बिन ह्नदय परिवर्तन के और बिना राजी हुए। और मेरी
दृष्टि में अंबेदकर ज्यादा क्रांतिकारी सिद्ध हुआ उस घटना में, बजाय गांधी के। अंबेदकर व्यक्ति के जीवन को ज्यादा मूल्य दे रहा है, अपने विचारों से भी। और हट रहा है, बिना राजी हुए। और मेरी दृष्टि मों ज्यादा

क्रांतिकारी की दृष्टी दे रहा है यह आदमी। और कनफर्मिस्ट माइंड का होता तो वह कहता, मरो, तुम गलत हो तो अपने आप मर रहे हो। मैं जो कहता हूं, ठीक है।

प्रश्नः क्रांतिकारी को सत्ता में कब और कैसे जाना चाहिए?

अब तक क्या हुआ है कि जिसको मैं हवा कह रहा हूं वह पूरी नहीं बन पाई और क्रांतिकारी को सत्ता मिल गई। अभी तक क्रांति माइनारिटी, अल्प संख्या का ही खयाल था और मैजारिटी, बहु-संख्या कभी उस पर राजी नहीं हुई है। इसलिए तो माइनारिटी को जब सत्ता मिली तो उसको कष्ट सहना पड़ा गालियां सहनी पड़ीं। मेरा मानना है कि जब तक माइनारिटी मैजारिटी की हालत में न हो, तब तक गाली मिलेगी ही। इसलिए मेरा मानना है क्रांतिकारी को थोड़ी प्रतीक्षा करनी चाहिए। हवा पैदा हो, लोक मानस तैयार हो जाए तब क्रांतिकारी को सत्ता मिले। तो जिस बड़ी मात्रा में लोक मानस तैयार होगा उसी बड़ी मात्रा में हिंसा मुश्किल हो जाएगी। फिर भी मैं यह कहता हूं कि जो मैं कह रहा हूं वह परम आइडियल, आदर्श की बात है। थोड़ी हिंसा मैजारिटी के साथ भी शायद रह जाए। ध्यान में यही होना चाहिए कि किसी भी क्रांतिकारी को सत्ता से तभी संबंधित होने को राजी होना चाहिए, जब मैजारिटी उसके साथ हो, नहीं तो नहीं। नहीं तो वृहत हिंसा होगी और हिंसा के करने में वह क्रांतिकारी कनफर्मिस्ट हो जाने वाला है। एक सर्किल पैदा हो गई है। मेरी दृष्टि यह है कि मूल रूप से क्रांतिकारी, गहरे से गहरा क्रांतिकारी तभी राजी होगा सत्ता में जाने को, जब बहुमत उसकी बात के लिए राजी हो गया हो, उसने उसको परसुएड किया हो। मेरा मानना है कि जल्दी की आदत भी गैर-क्रांतिकारी है, अधैर्य है। लेकिन सभी क्रांतिकारी हमें दिखाई पड़ते हैं कि बहुत अधैर्य में हैं। यह ऐसा हो गया है कि क्रांतिकारी को हम सोचते हैं कि इसमें अधैर्य होना चाहिए। मेरा मानना यह है कि अधैर्य जो है वह इस बात की खबर है कि मैं जो मान रहा हूं, सोच रहा हूं उस पर मुझे पक्का विश्वास नहीं है। मुझे भी डर है और तब इसका मतलब है कि क्रांतिकारी पूरा क्रांतिकारी चित्त का नहीं है बहुत गहरे में। ऊपर इसके थोड़ी बहुत क्रांति की बात आई होगी, विचार आया होगा। लेकिन वह भी कनफर्मिस्ट है और उसके हाथ में सत्ता जाना खतरनाक सिद्ध हो सकता है। क्योंकि सत्ता आते ही क्रांति का हिस्सा विदा हो जाएगा। कनफर्मिस्ट पैदा हो जाएगा। क्योंकि फिर यह जो सोसायटी बना रहा है, उससे भिन्न वह बरदाश्त नहीं करेगा। इसलिए क्रांतिकारी सत्ता में जाते ही गैर-क्रांतिकारी हो जाते हैं।
मेरी दृष्टि में ट्राटस्की ज्यादा क्रांतिकारी है, स्टैलिन से और ज्यादा बेसिक क्रांतिकारी है। स्टैलिन सत्ता में गया, तो ट्राटस्की की हत्या करना जरूरी हो गया। रूस में सबसे पहला काम उसने क्रांतिकारियों की हत्या करने का किया। क्योंकि वह सबसे ज्यादा खतरनाक एलिमेंट, तत्व था, क्योंकि जब वह क्रांतिकारी चित्त था तो स्टैलिन से भी राजी नहीं होगा, यदि वह गलत है तो इनकार करेगा। वही माओ कर रहा है कि जितना क्रांतिकारी माइंड है, उसको पहले खत्म कर दो। तो मैं जानता हूं कि ये ठीक क्रांतिकारी लोग नहीं है।
मेरा मानना है कि सत्ता भी बहुमत को परसुएड, राजी करने से बहुत उपाय
कर सकती है। सारी एजुकेशन सत्ता के हाथ में है। हम अधैर्य की वजह से दिक्कत में पड़ जाते हैं। नहीं तो हम सारी शिक्षा को बदलने की फिकर करेंगे। बीस साल देर लगेगी, बीस साल बाद जब नई पीढ़ी आएगी, हम उसे परसुएड करने की पूरी कोशिश करेंगे। रेडियो हाथ में है, अखबार हाथ में है, साहित्य हाथ में है, हम सब तरह से परसुएड करेंगे। तलवार ही हाथ में नहीं है और बहुत कुछ हाथ में है। लेकिन जल्दी है, जल्दी तलवार से हो जाती है, लेकिन क्रांति भी मर जाती है। हम परसुएड करें, मुल्क को सोचने और चिंतन का मौका दें।
मेरा मानना है कि क्रांतिकारी हुकूमत में आए तो पूरे मुल्क के चित्त
को क्रांतिकारी बनाने का प्रयास उसे करना चाहिए, बजाय इसके कि क्रांति लाने की जल्दी करे। बजाय इसके कि वह समाज की व्यवस्था बदलने की कोशिश करे, उसे फिकर करनी चाहिए कि समाज का मन बदले। मन बदल जाए तो व्यवस्था अहिंसा,

नॉन-वायलेंस में बदल जाए, उसमें कोई बहुत झंझट नहीं है। मन तो बदलता नहीं और व्यवस्था तोड़नी शुरू कर देते हैं, तो वायलेंस, हिंसा शुरू हो जाती है। समझ लें कि अगर एक क्रांतिकारी हुकूमत में आता है, तो उसके सामने दो विकल्प हैं--एक विकल्प तो यह है कि वह ढांचे को तोड़ दे अभी, ढांचा तोड़ेगा तो हिंसा होनेवाली है और ढांचा तोड़ने में और हिंसा करने में जो सबसे बड़ा नुकसान होनेवाला है वह यह रहेगा कि आदमी क्रांतिकारी न रह जाएगा।
बीस साल की हिंसा और ढांचे की तोड़-फोड़ में और नये ढांचे के खिलाफ कठिनाइयां न हों इसकी चेष्टा में वह कनफर्मिस्ट हो जाने वाला है। माइंड कोई ऐसी एंटायटी, चीज नहीं है कि क्रांतिकारी कंफर्मिस्ट न हो सके। माइंड बहुत लिक्विडिटी, तरलता है और हम जो करते हैं, वह हो जाते हैं। तो माइंड क्या करेगा? और मुझे अगर ऐसा लग गया कि माइंड ठीक है तो क्रांति खत्म हो गई। क्रांतिकारी का हिस्सा है कि वह जानता है कि मैं गलत भी हो सकता हूं, मेरे गलत होने की संभावना जारी है, इसलिए तलवार उठाना गलत है, क्योंकि इस आदमी को मार डालूं और वह आदमी ठीक हो सकता है। तो क्रांतिकारी के हाथ में सत्ता आई तो मेरी दृष्टि में जो काम उसे करने का है वह माइंड बदलने का है, ढांचा बदलने का नहीं, क्योंकि माइंड पुराना था तो ढांचा पुराना था, माइंड नया हो तो ढांचा नया हो सकेगा, उसमें अड़चन नहीं है।
तो माइंड बदलने की कोशिश करें, ढांचे को गिराने की जल्दी न करें या जिस मामले में बहुमत राजी हो ढांचा बदलने में, तो ठीक है और जिस मामले में बहुमत राजी न हो, उस मामले में माइंड को बदलने की फिकर करें। प्रक्रिया लंबी होनी है और क्रांति लंबी ही हो सकती है। अब तक हमारा यही खयाल रहा कि क्रांति दो-चार साल में हो जाए। यह बेवकूफी की बात है। क्रांति जैसी चीज! और कोई मुल्क अगर सौ साल तक क्रांतिकारी होने की हिम्मत न जुटा सकता हो तो, उसे क्रांति की झंझट में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि यह जल्दबाजी में सब दावा कर लेगा। यह जल्दबाजी का मामला नहीं है क्रांति। हमें शिक्षा बदलनी चाहिए, शिक्षा में नये तत्व डालने चाहिए, मुल्क में नये ढांचे की हवा पैदा करनी चाहिए। निगेटिव माइंड कैसे पैदा हो, इसकी फिकर करनी चाहिए। तीव्र और गहन चिंतन पैदा करनी चाहिए मुल्क में और उसमें सत्ताधिकारी को स्वयं से भी प्रश्न करने चाहिए तो मुल्क में जो माइंड बदलने से निगेटिव माइंड पैदा होगा, वह ढांचा तोड़ देगा और तब कोई वायलेंस, हिंसा न होगी, लेकिन अगर हमने फिकर की कि अभी ढांचा बदल देना है तो वाइलेंस शुरू होगा, क्योंकि हमसे कोई पूरी तरह राजी नहीं है।
सच बात तो यह है कि दो आदमी कभी पूरी तरह एक दूसरे से राजी नहीं होते हैं, होना भी नहीं चाहिए, कोई कारण भी नहीं है होने का। हम जब पूरे निकट होते हैं तब भी राजी नहीं होते, लेकिन क्रांतिकारी और कनफर्मिस्ट में यही फर्क है कि कनफर्मिस्ट कहेगा, राजी हो? और नहीं होते हो तो बस खत्म करते हैं। क्रांतिकारी कहेगा कि तुम इस समय राजी नहीं हो तो हम दोनों भिन्न हैं और जहां तक हम राजी हैं, वहां तक हम साथ खड़े हैं। जहां हम भिन्न हैं एक दूसरे से, वहां समझने की कोशिश करें। हो सकता है तुम ठीक हो और हो सकता है मैं ठीक हूं, हम करीब आने की कोशिश करें।
तो मेरा मानना है कि मुल्क में चिंतन की, मनन की, विचार की हवा बननी चाहिए। पुराने ढांचे ने हवा पैदा नहीं होने दी तो यह स्वाभाविक है, क्योंकि उसके लिए तो यह खतरनाक है। लेकिन क्रांतिकारी को इससे खतरा नहीं होना चाहिए, क्योंकि क्रांतिकारी को खतरे का क्या सवाल है। क्रांतिकारी कह यही रहा है कि हम सब खतरे लेने को तैयार हैं, लेकिन जो सही है वह आए तो एक वैल्यू, मूल्य प्रस्तुत होगी। अभी जो भी क्रांतियां हुई हैं वे सब मात्र रूपांतरण हैं, इसलिए खुद ही हम आत्मघात कर लेते हैं। आत्मघात इस अर्थ में कि वह जो क्रांति करता है, सत्ता में पहुंच कर वह वही करता है जो उसका दुश्मन कर रहा था। और तब इस करने की प्रक्रिया में वह वहीं पहुंच जाता है जहां उसका दुश्मन पहुंच जाता है। और जो क्रांतिकारी था उसके साथी वहीं पहुंच जाते हैं जहां वह क्रांति के पहले खड़ा हुआ था। ट्राटस्की ने लिखा है कि क्रांति हो जाने के बाद रूस में यह अनुभव हुआ कि हमें क्रांतिकारियों से भी लड़ना पड़ेगा। जब सत्ता आई हाथ में तो काम ठप्प हो गया, मामला बदल गया।

मैं बहुत दिनों तक शिक्षक था तो मेरा अनुभव था कि कि कक्षा में सबसे ज्यादा रिबेलियस, विद्रोही लड़का है, उसे कैप्टन बना दो तो मामला खत्म हो गया, सब रिबेलियन गया और वह कनफर्मिस्ट हो गया, क्योंकि वह दूसरे को ठीक करने में लग जाता है। अब तो उसकी प्रतीक्षा इसमें है कि व्यवस्था कैसे बना ले। सारे शिक्षक यह प्रयोग करते हैं कि जो सबसे बदमाश लड़का है, उसे कैप्टन बना दो तो मामला खत्म हो जाए। इतना सा पद और मामला खत्म हो गया।
यह जो क्रांतिकारी है, यह क्रांतिकारी है सिचुएशन, परिस्थिति से और ऐसे बहुत कम लोग हैं जो सिर्फ रिवोल्यूशनरी हैं। परिस्थिति विशेष में रिबेलियस, विद्रोही होना साधारण बात है। जैसे कि मैं मजदूर हूं तो मैं कम्युनिस्ट हूं। कल मैं मालिक हो जाऊं तो कैपिटलिस्ट हो जाऊंगा। यह परिस्थिति--वह, सिचुएशन की रिवोल्यूशन है। रिवोल्यूशनरी माइंड नहीं था वह। मजदूर कहता है कि हमें पूंजीपति बरदाश्त नहीं है, तो हम सारे पूंजीपतियों को मिटा देंगे, लेकिन हम मजदूर नहीं रह सकते। अब ये सभी पूंजीपति हो गए, बात खत्म हो गई। सिचुएशन से जो रिवोल्यूशनरी है, वह कनफर्मिस्ट सिद्ध होगा हुकूमत में पहुंचते ही। क्रांतिकारी माइंड का मतलब यह है कि मर जाना, लेकिन गलत को स्वीकृत नहीं करना।

प्रश्नः आपने जैसा अभी बताया कि बिना प्रेम के विवाह अच्छा नहीं है, यदि ऐसा होगा तो डाइवोर्स, तलाक का जो मार्ग है, जो प्रोसीजर, विधि है वह बहुत सरल बनाना चाहिए। लेकिन डाइवोर्स के नियम को यदि सरल बना दिया तो समाज में स्थिरता कैसे रहेगी?

स्थिरता मूल्यवान नहीं है। स्थिरता की दृष्टि ही मूल्यवान नहीं है और स्थिरता की वैल्यू ही झूठी है। जीवन स्थिर है ही नहीं, जीवन गतिमान है इसलिए तो हमने जगह-जगह हिच, अवरोध पैदा कर दी है और मेरा मानना यह है कि स्थिरता का मूल्य भी ओल्ड माइंड का हिस्सा था। क्रांतिकारी का मूल्य जीने का है, और जीने में एक गति है। गति रहते हुए अगर जीवन की व्यवस्था चलती हो तो स्वीकार्य है, गति को रोक कर जीवन की व्यवस्था चलती हो तो अस्वीकार्य है। मेरा तो कहना यह है कि डाइवोर्स के लिए एक पार्टी खबर कर दे रजिस्ट्रार को। दो का क्या सवाल है! पत्नी ने या पति ने खबर कर दी कि हमारा मामला खत्म हो गया है, इसको खत्म कर दिया जाए, बात खत्म हो गई। दूसरे से पूछने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि अलग होने के लिए दूसरे से पूछने का क्या सवाल है।
डाइवोर्स इतना सरल होना चाहिए। विवाह की व्यवस्था कठिन होनी चाहिए और डाइवोर्स की सरल। डाइवोर्स की व्यवस्था इतनी नामिनल, नाममात्र की हो कि जिसका कोई सवाल नहीं है। जैसे सुबह मन में हुआ तो हम जाकर खबर कर दें और तार दे दें और मामला खत्म हो जाए। विवाह की व्यवस्था कठिन होनी चाहिए। आज एक आदमी दरख्वास्त दे तो उसे एक साल का एक्सपेरिमेंटल मैरिज, प्रायोगिक विवाह का लाइसेंस मिलना चाहिए सिर्फ। एक साल साथ रह लें, सोच लें समझ लें। साल भर बाद वे दुबारा आ जाएं दोनों और कहते हों कि हम आगे रहने के लिए विचार करते हैं तो शादी होनी चाहिए।
शादी में उतनी बाधा डालनी चाहिए जितनी हम अभी डाइवोर्स मे डालते हैं, क्योंकि हम तीन साल की बाधा डाल देते हैं डाइवोर्स में और लंबी झंझट में डाल देते हैं। यह सब झंझट शादी में डालनी चाहिए, क्योंकि दो आदमी अगर साथ होने को राजी हो रहे हैं तो हमें, सोसाइटी को पूरी तरह फिकर कर लेनी चाहिए कि क्या वे साथ रह सकेंगे? इसकी पूरी फिकर करनी चाहिए। मजा यह है कि शादी के बाद हम उसकी फिकर करते हैं, लेकिन तब वह बेमानी है। लेकिन एक साल एक्सपेरीमेंटल मैरिज की व्यवस्था करनी चाहिए। इसमें वे पति-पत्नी नहीं हैं, मित्र की तरह साथ-साथ रहेंगे, समझेंगे एक दूसरे को। अब तो कृत्रिम साधनों का इतना उपाय है कि बच्चे पैदा होने का कोई सवाल नहीं है, अब बहुत सुविधा है।
एक्सपेरिमेंटल मैरिज में साल भर के बाद अगर वे आकर अपना अनुभव कहेंगे
और भ्रम टूटना हो तो साल भर काफी लंबा वक्त है, दो महीने में टूट जाता है।

साल भर बाद अगर वे आकर कहते हैं कि हम दोनों साथ रहने को स्वीकार करते हैं पूरी तरह, तो सारी इंक्वायरी और क्वेश्चनिंग, जांच और पूछताछ होनी चाहिए। उनकी सारी जांच-पड़ताल कर ली जाए, उनके ही कहने को न मान लिया जाए, साइकोलाजिस्ट, मनोवैज्ञानिक से भी सलाह ली जाए कि ये ये क्वेश्चन किए गए और ये ये जवाब मिले हैं, क्या ये साथ रह सकेंगे? और उनको बता दिया जाए कि साइकोलाजिस्ट कहता है कि तुम दो साल से ज्यादा साथ नहीं रह सकोगे, तो तुम और सोच लो। तुम साइकोलाजिस्ट से मिल लो, बात कर लो, समझ लो! तुम तो कहते हो साथ रह सकेंगे, तुम्हारा कहना काफी नहीं है, तुम्हारे पूरे माइंड को जो समझ सकता है, उससे बात कर लो और साइकोलाजिस्ट से तुम समझ कर करते हो तो ठीक है, तुम शादी कर लो।
मैरिज में हमें रुकावट डालनी चाहिए और डाइवोर्स एकदम सरल होना चाहिए, क्योंकि मैरिज खतरनाक है, एक क्षण के निर्णय से मैरिज बहुत खतरनाक है, जीवन भर का स्पष्ट निर्णय चाहिए। और असफल विवाह उसमें होने वाले बच्चों के लिए बहुत हानिप्रद है। लेकिन मैं कहता हूं कि अभी नहीं है इसमें आपका इंट्रेस्ट, रुचि बिल्कुल या आपकी सोसाइटी का इंट्रेस्ट हो तो ऐसी बेवकूफियां नहीं चलें। मैं मानता हूं कि इंट्रेस्ट होना चाहिए, क्योंकि अंततः बच्चा सोसाइटी का हिस्सा होने वाला है--आपका ही नहीं--सिर्फ एक स्त्री और एक पुरुष का ही निर्णय नहीं है बच्चा। बच्चा पूरी सोसाइटी का सवाल है। पूरी सोसाइटी को सोचना चाहिए, लेकिन सोसायटी ने कभी कुछ नहीं सोचा है। सिर्फ इतना ही सोच लिया है कि बच्चे का खाना-पीना, कपड़े की व्यवस्था पूरी तरह हो जाए तो मामला खत्म हो जाए।
ये दो पति-पत्नी जिंदगी भर लड़ते रहें और यह बच्चा, उनके बीच बड़ा होता रहे तो झगड़े करने से क्या परिणाम होने वाला है। इसके माइंड पर, क्या होने वाला है इसका फल! जिसने प्रेम कभी न जाना हो अपने मां बाप से, उसका फल क्या होने वाला है। यह पूरी स्किजोफ्रेनिक हो जाने वाला है, इसका मस्तिष्क रुग्ण हो जाने वाला है और ये शादी के पहले पूरी तरह भयभीत हो जाने वाला है और जानता है कि क्या होने वाला है शादी के बाद। उसकी पूरी तरह अनकांशस, अचेतन तैयारी है। और वह शादी में वही सब खोज लेगा जो उसने अपने मां बाप में देखा था और यह सब रिपीटेड सर्किल, दुष्चक्र शुरू हो जाएगा।
सोसाइटी अगर सच में बच्चों में उत्सुक है, तो बहुत दूसरा ढंग सोचना पड़ेगा। सच तो यह है कि अगर सोसायटी पूरी तरह से उत्सुक है तो आज नहीं कल बच्चा मां-बाप की प्रापर्टी नहीं समझी जानी चाहिए। वह सोसाइटी की प्रापर्टी है। आज नहीं कल बच्चों के पालने का जिम्मा सोसाइटी का होना चाहिए, मां-बाप का नहीं। उनके पैदा करने का लाइसेंस भी सोसाइटी का होना चाहिए, मां-बाप की इच्छा नहीं। हर मां-बाप को बच्चा पैदा करने का हक भी नहीं होना चाहिए। क्योंकि बीमार हैं, पागल हैं और बच्चे पैदा किए जाएं, यह निपट गंवारी और बेवकूफी की बात है। वे खुद तो खराब थे ही, खराब सिलसिला जारी कर रहे हैं। तो सोसाइटी जब तक तय न करेगी कि कौन औरत बच्चा पैदा करेगी, किस आदमी के साथ, इनके बिना बच्चा पैदा नहीं किया जा सकता।
आज यह संभावना हो गई है कि हम सेक्स को और बच्चे पैदा करने को डिसकनेक्ट, अलग कर सकते हैं। यह पहले मुश्किल था। अगर मेरी पत्नी हो और मैं इस योग्य नहीं हूं कि उससे बच्चा पैदा हो, तो मैं किसी का वीर्य उधार मंगा सकता हूं, बात खत्म हो गई। मेरा उससे सेक्स का संबंध हो सकता है, उसमें कोई बाधा नहीं है। और उचित होगा कि मेरा बच्चा स्वस्थ से स्वस्थ हो और जब मैं उसे अच्छी से अच्छी शिक्षा देता हूं तो उसे अच्छे से अच्छा बेसिक बीज, नस्ल क्यों न दूं। उसे अच्छे से अच्छा बीज मिले, सुंदर से सुंदर, स्वस्थ आदमी का वीर्य उसे मिल जाए--यह मैं क्यों न करूं। यह बेवकूफी की बात है कि वह वीर्य मेरा ही हो। इसमें कुछ सेंस, अर्थ नहीं है, यह बिल्कुल नॉनसेंस, अर्थहीन है।
सोसाइटी अगर पूरी तरह फिकर करे--और आज कर सकती है, आज तक कर भी नहीं सकती थी--तो सभी मां बाप को बच्चे पैदा करने का हक नहीं होना चाहिए, उन पर रोक होनी चाहिए कि कौन बच्चा पैदा करेगा, कौन नहीं। हो सकता है, एक युगल, पति-पत्नी में एक ही बच्चा पैदा करने का हकदार हो सकता है, तो उसका हमें

बच्चा पैदा करने में उपयोग करना चाहिए। दूसरे व्यक्ति के फिजिकल प्रेजेंस, सशरीर उपस्थिति की जरूरत नहीं है, इसलिए बात खत्म हो गई है। पत्नी का उपयोग हो, तो उसका करना चाहिए।
एक कल्चरल ब्रीडिंग और साइंटिफिक ब्रीडिंग शुरू हो, तो वहां से सोसाइटी का काम शुरू होता है। फिर ये बच्चे कहां पाले जाएं, कैसे पाले जाएं, कैसे वातावरण में पाले जाएं, कैसे साइकिक एटमास्फियर में पाले जाएं, उसकी भी हमें चिंता करनी चाहिए। उनका मां बाप से कितना कांटेक्ट, संपर्क हितकर है, और कितना उन्हें दूर रखना है वह भी समझने की जरूरत है। मेरा मानना है कि बच्चों का चौबीस घंटे मां बाप के पास रहना बहुत अहितकर है। थोड़ी देर के लिए, सात दिन, आठ दिन में, पंद्रह दिन में मां-बाप से मिलना हितकर है। क्योंकि तब उनकी प्रेम-मूर्ति ही प्रकट होती है और बच्चे के मन में एक प्रेम की धारणा बनती है और तब जिनसे वह प्रेम करना सीखता है उनके संबंध में वह उलटी धारणा नहीं बनाता है।
एक मां के पास बच्चा पलता है। मां लड़ती भी है, मां गाली भी देती है। पति उसको प्रेम भी करता है, घृणा भी करता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इस तरह बच्चे का माइंड पहले से स्किजोफ्रेनिक हो रहा है। वह एक ही व्यक्ति को प्रेम भी कर रहा है और घृणा भी कर रहा है। उसका माइंड, मन टूट रहा है और वह जिसको भी कभी प्रेम करेगा, उसको पीछे से घृणा भी करता रहेगा और यह उसके माइंड का हिस्सा हो जाएगा। वह अपनी पत्नी को प्रेम भी करेगा और घृणा भी करेगा। वह कभी सोचेगा कि जान ले लूं और कभी सोचेगा कि अरे, इसके बिना तो मैं जी भी नहीं सकता और ये दोनों एक साथ चलेंगे और इसका कुल कारण है बच्चे का मां के पास निरंतर पलना।
और भी मजे की बात है कि एक ही मां के पास बच्चा बड़ा होता है। उसकी जो फिक्स्ड इमेज, स्थाई छाप स्त्री की बन जाती है उसके भीतर तब वह ऐसी ही पत्नी मांगता है। अनजाने, अनकांशस में उसकी आकांक्षा रहेगी कि उसको ऐसी ही पत्नी मिल सके। और यह तो मिलने वाला नहीं है। यह पत्नी हो नहीं सकती। इसका भी कोई उपाय नहीं है कि मेरी मां मेरी पत्नी हो जाए और यह हो नहीं सकता कि मां जैसा दूसरा व्यक्ति उसको मिल जाए। तो जिंदगी भर उसका जो इमेज है माइंड का वह एक है, पत्नी दूसरी है। इन दोनों में द्वंद्व, कान्फ्लिक्ट है और वह हमेशा परेशानी का कारण है। लड़की को अपने बाप का इमेज, छाप है, वह अपने बाप जैसा पति चाहती है, वह मिलने वाला नहीं है।
मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि मां-बाप से बहुत थोड़ा कांटेक्ट, संपर्क चाहिए, वह सुखद है। थोड़ी देर मिल लिए, दिल खिल गया। लेकिन बच्चे के पालने की सारी साइंटिफिक, वैज्ञानिक व्यवस्था होनी चाहिए। जैसे एक जमाना था। जब घर में बच्चे को पढ़ाया जाता था ट्यूशन रख कर। वह कुछ रईस लोग पढ़ा सकते थे अपने बच्चे को ट्यूशन रख कर। यह तो असंभव है कि सबके घर ट्यूशन पढ़ाया जा सके। तो हमको स्कूल खोलना पड़ा। यह ज्यादा साइंटिफिक हुआ और उसमें एक रईस के बच्चे को जो शिक्षा मिलती थी, यह गरीब से गरीब बच्चे को भी मिलना संभव हुआ। रईस भी इतनी व्यवस्था नहीं करता था जो आज गरीब के बच्चे के लिए संभव है। तो आज नहीं कल, बच्चों का पालन-पोषण भी इसी तरह सोशल, सामाजिक बनाना चाहिए। एक-एक परिवार में बच्चे को बड़ा नहीं करना चाहिए। क्योंकि अब हम पूरी साइंटिफिक व्यवस्था कर सकते हैं। साइंटिस्ट, साइकोलॉजिस्ट, एनालिस्ट, नर्स, डाक्टर, व्यायाम कराने वाला, पूरी तरह माइंड को समझने वाला, इन सबका सारा इंतजाम हम वहां कर सकते हैं। वहां बच्चे बड़े होने चाहिए।
सोसाइटी ने अभी तक उत्सुकता ली ही नहीं है और सिर्फ सोसाइटी ने इतना
ही काम कर दिया कि बच्चे पैदा हो गए। वह उसको खिलाएगा, पिलाएगा, बड़ा करेगा। यह जिम्मा उसका है, वह उसको छोड़ कर भाग नहीं सकता। यह कोई इंतजाम नहीं रहा। इसी से यह सोसाइटी पैदा हुई है और हमारे लिए बिल्कुल अजीब सा संसार पैदा हो गया है।
मेरा मानना है कि एक वैज्ञानिक समाज की व्यवस्था में सोसाइटी को बहुत खयाल रखना पड़ेगा और जैसे ही बच्चा पलता है दूर मां-बाप से, तो मां-बाप की कलह का कोई असर नहीं है। डाइवोर्स से कलह का कोई संबंध नहीं है। कलह करें

क्यों? कलह को इंच भर भी जगह देने की क्या जरूरत है। मेरा मानना है कि डाइवोर्स अगर सीधा सामने खड़ा हो तो नब्बे प्रतिशत मौके आप छोड़ देंगे, कलह एकदम कम हो जाएगा, क्योंकि बेमानी है। दोनों व्यक्ति अलग नहीं हो सकते इसलिए कलह है। आपसे कह दूं कि जाइए, बात खत्म हो गई। इसमें झगड़ा क्या है। मगर जाने को कह नहीं सकता, जा सकते नहीं आप, मैं जा नहीं सकता, बैठना यहीं है तब कलह जारी रहेगी। डाइवोर्स इतना सरल होना चाहिए जैसे एक मित्र से मित्रता है और मित्रता छूट गई है। इससे ज्यादा उसका कोई अर्थ नहीं है और बच्चे की व्यवस्था धीरे-धीरे सोसाइटी के हाथ में चली जानी चाहिए तभी डाइवोर्स इतना सरल हो सकता है।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का सोलहवां प्रवचन

क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार

मेरे प्रिय आत्मन्!
भीतर देखता हूं तो एक अपूर्व आनंद है और बाहर देखता हूं तो दुख का एक सागर खड़ा है। अगर भीतर ही जीना चाहूं तो मुझे कोई भी दुख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं है। और इस देश के भीतर जीने वाले लोग सदा ही बाहर से आंख बंद करके जीने वाले रहे हैं। निश्चित ही भीतर न कोई दुख है, न कोई पीड़ा है, न कोई अशांति है। एक ऐसी दुनिया भी है भीतर, जहां सरक जाने पर, बाहर के जगत की कोई भी तरंग नहीं पहुंचती। एक ऐसा लोक भी है भीतर जहां उठ जाने पर पृथ्वी का कोई पता नहीं रह जाता है। स्वयं के भीतर भी एक ऐसा बिंदु है, जहां समाज मिट जाता है, राष्ट्र मिट जाते हैं, मनुष्यता मिट जाती हैं--सब जो बाहर हैं मिट जाता है। बहुत आनंदपूर्ण है वह जगत। सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो वहां प्रविष्ट हो जाते हैं। उस लोक में प्रत्येक को प्रविष्ट होने की चेष्टा करनी चाहिए यही निरंतर मैं कहता हूं। लेकिन वे लोग भी अभागे हैं जो वही रह जाते हैं और बाहर के दुख को बिल्कुल भूल जाते हैं।
अपने दुख को मिटा लेना काफी नहीं हैं। चारों तरफ जो दुख खड़ा है उसे मिटाने मे सहयोगी होना भी अत्यंत जरूरी हैं। और जिस देश के साधु-संत अपना दुख ही मिटाने कि चेष्टा में रत है, उस देश के साधु-संत आधे साधु-संत हैं, ठीक अर्थों में पूरे संत और पूरे साधु नहीं हैं। यह बहुत स्वार्थपूर्ण मालूम पड़ता है कि मैं अपने आनंद में डूब जाऊं और बाहर जो जगत दुख और पीड़ा में सरकता हुआ जो कारवां है, वह सरकता रहे और मैं आंख बंद किए अपनी खुशी में डूबा रहूं, यह अत्यंत स्वार्थपूर्ण, बहुत निम्न और बहुत ओछे मन की वृत्ति मालूम पड़ती है। लेकिन इस देश के साधु-संतों ने आज तक यही निर्णय लिया था कि अपनी शांति खोज लो और किसी से कोई प्रयोजन नहीं हैं।
इस देश के दुर्भाग्य में इसी निर्णय का हाथ है। इस देश से ज्यादा अदभुत लोग शायद ही पृथ्वी पर कहीं पैदा हुए हों। इस देश से ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा शांत, ज्यादा आचरणशील, ज्यादा सत्य को उपलब्ध व्यक्ति भी कहीं पैदा हुए हों; यह संदिग्ध है। लेकिन इस देश से ज्यादा दुखी और पीड़ित कोई देश नहीं हैं। इस समाज से ज्यादा कुरूप और गंदा कोई समाज नहीं हैं। जिस समाज में महावीर होते हों, बुद्ध होते हों, कबीर होते हों, गांधी होते हों, वह समाज ऐसा निम्न, ऐसा ओछा, ऐसा बुरा कुरूप हो तो जरूर इसके पीछे कोई कारण होगा। और वह कारण यह है कि भारत का कोई भी महापुरुष समाज के प्रति जरा भी उत्सुक नहीं है, सिवाय अपनी शांति और आनंद के।
और भारत का समाज भी अदभुत आत्मघाती समाज है। वह उसी आदमी की पूजा करेगा और संत कहेगा, जो आदमी अपनी आंख बंद करके अपनी शांति में खो जाएगा और जिंदगी को भूल जाएगा। मुझे भी यही आनंदपूर्ण है, यही सरल है कि अपने में खोया रहूं। वहां मुझे कोई तकलीफ नहीं, कोई पीड़ा नहीं। लेकिन यह मुझे अमानवीय, इनह्यूमन मालूम होता है कि बाहर जब इतना दुख का सागर हो तब यह कैसे संभव है कि कोई चुपचाप अपने भीतर के आनंद को लेता रहे। यह कैसे संभव है कि जब चारों तरफ बीमरी हो, तब कोई आदमी अपने भीतर के सुख मे, अपने सुख के मंदिर में बैठा रहे।
मुझे लगता है कि जो व्यक्ति आनंद को उपलब्ध होता है, आनंद को उप्लब्ध होते ही उसके ऊपर जैसे परमात्मा की तरफ से एक कर्तव्य आ जाता है कि वह दूसरे के लिए भी आनंद के रास्ते पर पत्थर रखे। दूसरों के लिए भी आनन्द की सीढ़ियां बनाए, और दूसरों के लिए भी दुख के गड्डों में जाने से रोकने का प्रयास करे। और जिस समाज का साधु, जिस समाज का विचारशील व्यक्ति, जिस समाज के शांत लोग ऐसा निर्णय नहीं लेते, मुझे लगता है उनकी शांति अधूरी है, कमजोर है। उनकी शांति डरती है कि बाहर के दुख मिटाने में संलग्न हुए तो टूट जाएगी। और हमारी तो आदत इतनी पुरानी हो गई है इस बात को जानने की कि संत को साधु को क्या प्रयोजन है दुनिया से। निश्चित ही कोई प्रयोजन नहीं है संत को और साधु को दुनिया से, अपने लिए कोई भी प्रयोजन नहीं है। लेकिन

अपने अतिरिक्त और भी वृहत समाज है, उसके लिए बहुत प्रयोजन है। मुझे निरंतर पूछा जाता है कि मुझे क्या अर्थ है के मैं समाज की क्रांति की बात करूं? मुझे क्या जरूरत है कि मैं फिकर करूं कि समाज कहां विकृत हो रहा है, कहां कुरूप हो रहा है? मैं क्यो चिंता करूं के लोगो को क्या हो रहा है। और बड़ा आश्चर्य तो यह है कि जिन लोगों के लिए चिंता करो वे ही आकर कहेंगे कि क्यो चिंता करते हैं आप?
जिनके लिए परेशानी उठाओ वही आकर कहेंगे कि आप हमारे लिए परेशानी उठाते हैं तो हमें शक होता है, कि आप कही कोई राजनैतिक व्यक्ति तो नहीं है? उनका कहना भी ठीक है। हजारों साल से इस देश का धार्मिक आदमी एस्केपिस्ट रहा है, पलायनवादि रहा है। इस देश के धार्मिक आदमी का अर्थ था--भागा हुआ आदमी जो जिंदगी से आंख बंद कर लेता है। लेकिन ऐसे आदमी का मैं अधूरा धार्मिक आदमी कहता हूं। अपने आनंद को खोज लो यह ठीक है, परंतु ऐसे आनंद की क्या कीमत है जो दूसरों के दुख को मिटाने में सहयोगी नहीं बनता हो? और ऐसा आनंद कमजोर और नपुंसक है जो डरता हो कि मैं दूसरों का दुख मिटाने की कोशिश करूंगा तो नष्ट हो सकता हूं। मेरा आनंद नष्ट हो सकता है। जो शांति दूसरों की अशांति मिटाने में नष्ट हो जाती हो ऐसी शांति की दो कौड़ी भी कीमत नहीं है।
तो एक तो पहलि बात मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत का प्रत्येक युवक भारत के प्रत्येक साधु-संत को मजबूर कर दे, इस समाज को बदलने के लिए उत्सुक कर दे। युवक क्रांति दल, युथ फोर्स के लिए पहली बात मैं यह कहना चाहता हूं कि सारे हिंदुस्तान में हिंदुस्तान के सत पुरुषों को पकड़ो और कहो कि जिंदगी में आओ, हम तुम्हें जिंदगी से भागने नहीं देंगे--बहुत हो चुका, तुम जिंदगी से बहुत भाग चुके, हजारों वर्षों से तुम जिंदगी से भागते रहे और हम तुम्हारी पूजा करते रहे। अब यह नहीं होगा। हम तुम्हारी पूजा करेंगे, लेकिन भागो मत, जिंदगी में आओ। जिंदगी रद्दी से रद्दी होती चली जा रही है और तुम अपना मोक्ष ही खोजते रहोगे! अगर हम हिंदुस्तान के एक-एक साधु को मजबूर कर दें और प्रार्थना करें और खींच लाए जिंदगी में, तो इस देश के भाग्य को बीस वर्षों में बदला जा सकता है। कोई बहुत कठिनाई नहीं है।
पचास लाख संन्यासी भारत में हैं। पचास लाख संन्यासी अगर उत्सुक हो जाए जिंदगी को बदलने को, तो दुनिया में इतनी बड़ी शक्ति कहीं भी नही है, किसी के भी पास नहीं है। लेकिन वे पचास लाख संन्यासी क्या कर रहे है? पचास लाख संन्यासी अपने-अपने स्वार्थ में रत हैं। आप अपनी दुकान पे आपने स्वार्थ में रत हैं कि अपने लिए धन कमा रहे हैं। वे अपने स्वार्थ में रत हैं कि अपने लिए सुख कमा रहे हैं, लेकिन स्वार्थ में कोई भी फर्क नहीं है। और मैं यह कहना चाहता हूं कि आपका स्वार्थ बहुत छोटा और साधारण है। उनका स्वार्थ बहुत गहरा और मजबूत है। आप अगर दुकान पर रोटी भी कमा रहे हैं तो आपकी रोटी की कमाई आपके धन की कमाई सौ पचास लोगों का हित बनेगी। आपके बच्चे होंगे, आपकी पत्नी होगी, आपके मित्र होंगे, और आप जो समाज में संपत्ति पैदा करेंगे वह भी न मालूम कितने लोगों के लिए रोटी रोजी देने का कारण बनेगी। लेकिन एक साधु जिस शांति को खोजता है, वह शान्ती न उसकी पत्नी को मिलती है न उसके बच्चे को, न उसके मित्रों को। वह शांति निपट उसकी अपनी है।
साधु का स्वार्थ तोड़ना पड़ेगा। साधु को प्रार्थना करनी पड़ेगी कि हम साधु को तभी मानेंगे जब तुम्हारा सुख हमारे लिए बंटने को आतुर हो। तुम्हारी शांति की खोज हमारे लिए आनंद की खोज मे सहयोगी बने। और तुम्हारे जीवन में जो क्रांति हुई है, वह चिन्गारी हमारे समाज को भी बदल देने का आधार बने तो ही हम पूजा देंगे, अन्यथा यह पूजा बंद कर देंगे। हिंदुस्तान में आने वाले भविष्य में साधु को पूजा मिलनी बंद हो जानी चाहिए, अगर वह साधु जिंदगी से आंखें बंद करके भागता है। उससे तो हम आशा कर सकते हैं कि जिसने भीतर कुछ पाया हो वह बाहर के लोगों के लिए भी कुछ करे। उससे भी आशा न हो तो किससे आशा हो सकती है?
भारत का सारा अतीत स्वर्णयुग बन सकता था। लेकिन जो उसे स्वर्णयुग बना सकते थे वे सारे लोग पीठ फेर कर चले गए। जिंदगी तो चलेगी--काम तो चलेगा,

चाहे कोई भाग जाए, चाहे कोई जंगलों में छिप जाए--कोई और चलाएगा जिंदगी को। मैं यह कहना चाहता हूं--दुनिया के दूसरे राष्ट्र हमसे आगे हैं, क्योंकि उनकी प्रथम कोटि का आदमी राष्ट्र को चलाता है। हमारा हमेशा द्वितीय और तृतीय कोष्टी का आदमी राष्ट्र को चलाता है। प्रथम कोटि का आदमी भाग जाता है। जो फर्स्ट रेट माइंड है हमारे मुल्क का, वह भाग जाता है। सेकेंड रेट, थर्ड रेट, मुल्क को चलाते हैं। निश्चित ही जिन मुल्कों को फर्स्ट रेट माइंड चलाता हैं, हम उनके मुकाबले नही खडे रह सकते, हम कैसे खड़े हो सकते हैं उनके मुकाबले? उनके मुल्क को चलाने वाली जो सूझ है, वह प्रथम कोटि के मस्तिष्क से आती है। हमारा प्रथम कोटि का मस्तिष्क आंखें बंद करके बैठ जाता है। द्वितीय और तृतीय कोटि के लोग मुल्क की नौका को हजारों साल से चला रहे हैं। हम दुनिया में पिछड़ते चले गए। हम प्रथम कोटि के लोगों के सामने द्वितीय-तृतीय कोटि के लोगों को नहीं टिका सकते।
यह पहली बात ध्यान में रख लेनी जरुरी है कि भारत के प्रथम कोटि की प्रतिभा को समाज के जीवन में उत्सुकता लेनी होगी। और डर क्या है उसे? अगर तुम्हें अपना आनंद मिल गया है तो घबड़ाते क्यों हो? जो आनंद खो सकता हो उस आनंद का कोई भी मूल्य नहीं है और जो आनंद एक विशेष सिक्लुजन मे, एक खास स्थिति में बना रहता हो, अपनी झोपड़ी में बैठ कर, अपनी गुफा में बैठ कर या अपने मंदिर के दरवाजे बंद करके जो आनंद बना रहता हो, वह आनंद धोखा है। आनंद की कसौटी यह है कि जहा जिंदगी दुख से जूझ रही है वहां आकर खड़े हो जाओ। और वहां आनंद बना रहे, तो समझना कि वह आनंद आत्मिक है, अन्यथा समझना कि वह आनंद आत्मिक नहीं है। वह आनंद है ही नहीं, वह केवल दुख की स्थितियों से बच जाना है।
एक आदमी दुकान पर बैठा है, परेशान है, बच्चों की चिंता करनी पड़ती है, उन्हें पढ़ाना है, वह बीमार है, घर की चिंता करनी पड़ती है, दस लोगों की चिंता उठानी पड़ती है--परेशानी है। वह दसो की चिंता छोड़ कर जंगल में भाग जाता है-- सोचता है बड़ा आनंद मिला। आनंद नहीं है यह। सिर्फ दस आदमियों की चिंता का आभाव है। और ध्यान रहे जो आदमी दस आदमियों कि चिंता छोड़ कर छोड़ कर भागता है, वह आदमी उस आदमी से बदतर है जो दस आदमियों की चिंता का बोझ उठाता है और ढोता है। और यह सोचता हो कि मैं आनंद में पहुंच गया, तो वह गलती में है। यह आदमी आनंद में नहीं पहुंच गया है।
इस आदमी ने जो दायित्व थे जिंदगी के, वे दायित्व भर छोड़ दिए। यह आदमी इररिस्पांसिबल हो गया। यह उत्तरदायित्वहीन हो गया है। और अगर इसे सच में आनंद मिल गया है तो वापस लौट आओ। जिंदगी पुकारती है और यहां जरूरत है। वहां जंगल में बैठने की कोई जरूरत नहीं है। परमात्मा तुम्हें मिल गया है तो आ जाओ, और इन सारे लोगों को भी परमात्मा की खोज में संलग्न करो। लेकिन नहीं, हमारा साधु कहता है कि वह नहीं आएगा।
अगर हिंदुस्तान के युवक इसको और आगे बरदाश्त करते हैं तो इसने मुल्क
की रीढ़ को तोड़ दिया है। ये मुल्क के भविष्य को बिल्कुल अंधकारपूर्ण कर देंगे--यह बात है! हिंदुस्तान के युवकों को प्रार्थना करनी चाहिए कि मंदिरों से हम खींच कर ले आएं उनको, जो वहां बैठे हैं। जंगलों से खींच लाए उनको जो वहां बैठे हैं। उनको खींच लाएं जो जिंदगी से भाग गए। न हीं हम उनसे कहते हैं कि तुम जिंदगी मे आके दुकान चलाओ। न हीं हम उनसे कहते हैं कि तुम जिंदगी में आकर हम जैसे हो जाओ। लेकिन ईतना तो हम उनसे कह सकते हैं कि तुम्हें जो मिल गया है, वह हमें भी मिल सके, तुमने जो पा लिया है, जिन सूत्रों पर तुमने अपनी जिंदगी को बदल लिया है, यह पूरा समाज भी उन्हीं सूत्रों से जिंदगी को बदल सके। अब तुम्हें मिल गया है। अब तुम अपनी चिंता छोड़ दो, हमारी चिंता करो, जिन्हें कि नहीं मिला।
लेकिन ऐसा लगता है कि हमने इसपर कोइ ध्यान नही दिया। भारत के समाज ने साधु की पूजा की, साधु का कोई उपयोग नहीं किया। हां, एक उपयोग किया है कि साधु व्याख्यान देता है, और समझाता है हमे, वह क्या समझाता है, वह समझाता है कि जिस भांति--"मैं छोड़ कर भाग गया हूं, उसी भांति तुम भी छोड़ कर चले जाओ।" तुम कहा पाप में पड़े हुए हो? तुम कहां जिंदगी को गंवारी में गंवा रहे हो! हम बड़े आनंद में हो गए हैं, तुम भी भाग आओ। हालांकि वे अच्छी भाति जानता

हैं कि वह आनंद में जिंदगी गुजार रहा है, क्योंकि इतने लोग श्रम कर रहे हैं अन्यथा ये पचास लाख लोग एक दिन भी जिंदा नहीं रह सकते। कोई आदमी दुकान कर रहा है, दुकान पर पाप कर रहा है, इसलिए एक आदमी स्थानक मे या मंदिर मे बैठा हुआ आनंद कर रहा है। न इसे रोटी मिलेगी, न इसे कपड़ा मिलेगा, न यह जी सकता है एक दिन।
या तो साधुओं से कह दिया जाना चाहिए कि तुम चले जाओ हिमालय पर, फिर मत लौटना। फिर ठीक है। हमसे संबंध ही टूट गया। लेकिन कोई साधु बंबई छोड़ कर नहीं जाना चाहता, बंबई में रहना चाहता है। मोहल्ले बदल लेता है। बहाने कर लेता है कि माटुंगा से घाटकोपर चला गया तो गांव बदल गया। बेईमानी की भी हद होती है। बंबई में ही जमे हुए हैं वर्षों से और समाज को छोद दिया है इन्होने। बंबई का ही शोषण करते रहेंगे! और ये भीतर की शांति में लीन हो गए है! और इनकी भीतर की शांति को जिंदगी की इतनी कुरूपता नहीं दिखाई पड़ती! जिंदगी की बेईमानी नहीं दिखाई पड़ती!
जिन नेताओं की वजह से मुल्क सड़ रहा है, उनकी ये साधु-संन्यासी खुशामद करते रहेंगे। उनके साथ चित्र उतरवाने में आनंदित होते रहेंगे। और इनको आनंद मिल गया है! परमात्मा मिल गया है! जिनको परमात्मा मिल जाता है, उनकी जिंदगी एक आग बन जाती है, उनकी जिंदगी एक पुकार बन जाती है, सब कुछ बदल डालने की एक तीव्र आकांक्षा बन जाती है।
लेकिन हमने साधु-संन्यासियों के साथ अदभुत मामला किया हुआ है। यह मैं पहली बात कहना चाहता हूं कि युवक-क्रांति दल--"युक्रांद" या "यूथफोर्स" सारे मुल्क में ताकत इकट्ठी करे और साधुओं को कहे कि हमारी जिंदगी को बदलने के लिए संलग्न हो जाओ। मगर हम पचास वर्षों तक हिंदुस्तान के साधु को संलग्न करने के लिए राजी हो जाएं तो हिंदुस्तान की जिंदगी में सुगंध आ जाएगी। उनकी जिंदगी कुछ और हो जाएगी।
साधु के पास बड़ी शक्ति है। लेकिन साधु की सारी शक्ति एक काम में लगती
है कि वह आपसे अपनी पूजा कैसे करवा ले। उसकी सारी शक्ति इसमे नष्ट होती है। बड़ी शक्ति है उसके पास लेकिन वह सारी ताकत उसमें लगाई है कि वह आपसे पूजा कैसे करवा ले। और हम भी ऐसे मूढ़ हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं है, कोइ हिसाब रखना मुश्किल है कि हमारि मूढ़ता कैसी है। हम साधु का एक ही काम कर रहे हैं--पूजा करने का--और अगर वह पूजा के योग्य नहीं ठहरता, तो निंदा करने का। इसके सिवाय हम उससे कोई और उपयोग नहीं ले रहे। या तो साधु की निंदा होती है या प्रशंसा होती है। यह दोनों बातें फिजूल हैं, न निंदा का कोई उपयोग है, न प्रशंसा का कोइ उपयोग है। साधु पूरे वक्त कोशिश में लगा है चारों तरफ देखने में कि आप किन-किन बातों से आदर देते हैं, और वह बेचारा वही-वही बातें किए चला जा रहा है।
आप कहते हैं कि आदमी नंगा खड़ा होगा तो हम आदर देंगे तो वह बेचारा नंगा खड़ा है। आप कहते हैं एक दफे खाना खाएगा तो वह एक दफे खाना खा रहा है। आप कहते हैं--स्त्री को नहीं छुएगा तो वह स्त्री को नहीं छू रहा है। आप जो कहते हैं, वह बेचारा कर रहा है, क्योंकि उसको आदर चाहिए। और आपके आदर देने की शर्तें हैं। और वह उन शर्तों का पालन करने में पूरी जिंदगी गंवा रहा है। वह उन शर्तों का पालन करेगा, आप आदर दे देंगे--नहीं कर सकेगा, आदर छूट जाएगा। इतना समाज का और साधु का संबंध है। इससे ज्यादा कोई संबंध नहीं। और वह आपको चौबीस घंटे समझाता रहेगा कि तुम भी भाग जाओ जिंदगी से। और जितनी वह आपको गाली देगा उतना अच्छा लगेगा। जितना वह कहेगा कि तुम पापी हो, नरक में पड़ोगे--उतना लगेगा कि वह बड़े हित की बातें कर रहा है। नरक से बचाने की कोशिश कर रहा है।
साधु अगर हिंदुस्तान के जीवन में उत्सुक नहीं होते हैं, और हिंदुस्तान में जो साधुमना लोग हैं वे भी साधु होते चले जाते हैं, तो हिंदुस्तान की आत्मा खो जाती है। यह कल्पना करना भी हैरानी से भर देता है मन को, अगर हिंदुस्तान के पांच हजार वर्ष के साधुओं ने जिंदगी को बदलने की कोशिश की होती, सिर्फ आदर पाने की चिंता न की होती... और ध्यान रहे, जिंदगी को बदलने वाला आदमी आदर मुश्किल से पा सकता है, अनादर आसानी से पा सकता है। क्योंकि जिंदगी को बदलने का मतलब है, वेस्टेड इंट्रेस्ट को तोड़ना, न्यस्त

स्वार्थ है, उसको बदलना और तोड़ना। जिंदगी को बदलने का मतलब है, जिनके हाथ में ताकत के पद है, उनसे विरोध लेना। जिंदगी को बदलने का मतलब है कि जो आज हावी है समाज पर, उससे दुश्मनी लेना, क्योंकि जिंदगी बदलती है तो आज जो हावी है वह नीचे गिर जाएगा, जो पदों पर है वह बिना पदों के हो जाएगा, जो आज शोषण कर रहा है वह शोषण नहीं कर सकेगा, जो आज गर्दन दबाए हुए है उसके हाथ से गर्दन छूट जाएगी।
जिंदगी को बदलने का मतलब है, समाज का जो ऊपर का वर्ग है, उस वर्ग से विरोध लेना। और जिंदगी से आदर पाने का एक ही सूत्र है, कि समाज के ऊपर के वर्ग को प्रसन्न रखना। अगर ऊपर के वर्ग को प्रसन्न रखना है तो जिंदगी कभी नहीं बदली जा सकती। लेकिन आदर बहुत मिल सकता है। साधु को दो बातें में से एक बात तय करनी है, या तो वह जिंदगी को बदलने के लिए आतुर होगा या आदर को लात मार देगा। हो सकता है; लोग उसे संत कहने न आएं। हो सकता है, कहें "महात्मा!" पहले हम तुम्हें "महात्मा" समझते थे, लेकिन अब बात खत्म हो गई। अब तुम महात्मा नहीं हो।
यह हमें पता नहीं है, कि समाज की जो मेकेनिज्म है, समाज का जो यंत्र है,
वह बहुत तरकीब से चलता है। वह तरकीब ये हैं कि "समाज का न्यस्त स्वार्थ", जिसके हाथ में स्वार्थ के मुद्दे हैं--जो नहीं चाहता कि समाज जराबी बदले-- चाहे धर्मगुरु हो, चाहे राजगुरु हो, चाहे राजनेता हो, चाहे धनरति हो, चाहे और तरह के प्रतिष्ठित लोग हों, जो नहीं चाहते कि समाज बदले। वे समाज की प्रतिभा को आदर देते हैं रिश्वत में, ताकि समाज की प्रतिभा समाज को बदलने की कोशिश न करे। और अगर समाज की प्रतिभा समाज को बदलने की कोशिश करती है तो वह अनादर देना शुरू कर देते है। और एक-एक आदमी के भीतर इतना अहंकार है, कि झंझट की झंझट लो और पूजा भी छोड़ो, बिल्कुल पागलपन है।
लेकिन साधु से हम आशा कर सकते हैं कि वह आदर की फिकर नहीं करेगा। क्योंकि आदर की फिकर वही करता है जो अपने अहंकार का पोषण करना चाहता है। आदर की क्या फिकर है? आदर की चिंता का अर्थ एक ही है कि जो अपने अहंकार का पोषण करना चाहता है। आदर अहंकार का भोजन है। मैं आपसे आदर मांगूंगा अगर मुझे अहंकार का भोजन भरना है। और अगर अहंकार का भोजन मुझे भरना है तो कहां की आत्मा! कहां का परमात्मा! कहां की शांति! कहां का आनंद! अहंकार ही तो दुख है।
हिंदुस्तान के साधु को समझाना है कि बहुत पूजा तुम ले चुके। अब हम उसी
को साधु कहेंगे जो पूजा लेने से इनकार कर देंगे। अब हम उसी को साधु कहेंगे जो अनादरत होने को तैयार है, जो आदर की चिंता छोड़ता है। अब हम उसी को साधु कहेंगे जो समाज की जिंदगी को बदलने के लिए आतुर है। अब हम उसी को साधु कहेंगे जो परमात्मा का इस काम को करने को आगे आता है।
अब साधु से सिर्फ प्रवचन नहीं सुनने हैं। अब साधु से हमे जीवन में क्रांति भी चाहिए। हिंदुस्तान के साधु ने क्रांति तो नहीं लाई। हिंदुस्तान का साधु प्रति-क्रांतिवादी, रिएक्शनरी साबित हुआ है। हिंदुस्तान का साधु जितने जोर से क्रांति को रोकता है उतना कोई भी नहीं रोकता। इसलिए क्रांति का रुकना जिनके हित में है, वे साधु को आदर देते हैं। क्योंकि साधु मुद्दा है क्रांति को रोकने का। वह गढ़ है जहां से क्रांति रुकती है। और इसलिए हिंदुस्थान के पांच हजार वर्षों में एक भी क्रांति नहीं हुई--न कोई वैचारिक क्रांति, न कोई सामाजिक क्रांति, न कोई राजनैतिक क्रांति, न कोई सांस्कृतिक क्रांति। दुनिया के दूसरे मुल्कों में क्रांतियां होती रहीं। हिंदुस्तान में क्रांति क्यों नहीं हुई। हिंदुस्तान में क्रांति नहीं हुई क्योकि क्रांति और समाज के बीच में साधु की ब.हुत शक्तिशाली जमात खड़ी है, जो दुनिया में और कहीं भी नहीं है। फ्रांस में क्रांति हो सकी, रूस में क्रांति हो सकी। साधु की जमात नहीं है समाज के और क्रांति के बीच में।
साधु एक अदभुत काम कर रहा है। रेल के डिब्बे में बफर लगे होते हैं बीच में, उसकी वजह से धक्का नहीं लगता। कार में स्प्रिंग लगे होते हैं, उनकी वजह से रास्ते के झटके नहीं लगते। साधु इस हिंदुस्तान के समाज में बफर और

स्प्रिंग का काम कर रहा है। उसकी वजह से कोई धक्का समाज तक नहीं पहुंच पाता।
यह हालत बदलनी पड़ेगी। युवक इसको बदल सकते है। कैसे बदल सकते हैं? एक
तो निर्णय करों कि साधु को आदर तब देगें जब वह जिंदगी में रस लेगा और जिंदगी को बदलने के लिए तैयार होगा। और जिंदगी को बदलने को ही प्रार्थना और साधना मानेगा। तब हम आदर देंगे, नहीं तो नहीं देंगे आदर।
अगर युवकों की जमात यह तय कर ले तो साधु को दो वर्ष के भीतर रास्ते पर लाया जा सकता है, कि तुम रास्ते पर आ जाओ और जिंदगी को बदलने की फिकर करो। लेकिन युवक एक भूल कर रहे हैं। युवक साधु से दूर ही चले गए हैं। वृद्धजन साधु के चरण छू रहे हैं। युवक साधु के पास ही नहीं जाते हैं। युवकों को साधु के पास जाना चाहिए। पैर छूने नहीं, साधु को जिंदगी और समाज में खींच लाने के लिए। और जरूर पैर छूना, जिस दिन साधु जिंदगी को बदलने के लिए आतुर हो जाए, उसे आदर देना। क्योंकि वह बहुत अनादर झेलने को राजी हो रहा है। लेकिन यह करना पड़ेगा। कितनी बड़ी जमात है युवकों की, अगर युवक निर्णय करेंगे और एक सत्याग्रह की धारण उनके मन में होगी कि हम साधु को जिंदगी में खींच के ले आएंगे, तो बदलाहट हो सकती है।
बर्ट्रेंड रसल ने एक लेख लिखा है। उस लेख का शीर्षक मुझे बहुत पसंद पड़ा। उस लेख के शीर्षक में लिखा हैः दि हार्म दैट गुड मैन डू--मैं बहुत हैरान हुआ कि यह कैसा शीर्षक है? नुकसान जो अच्छे आदमी पहुंचाते हैं। अच्छा आदमी भी कभी नुकसान पहुंचाता है? कभी सुनी आपने यह बात? बुरे आदमियों ने उतना नुकसान कभी नहीं पहुंचाया क्योंकि बुरा आदमी कमजोर होता हैं। बुरे आदमी की ताकत क्या है? बुरा आदमी दुनिया को ज्यादा नुकसान कभी नहीं पहुंचा सकता क्योंकि बुरे आदमी के पास ताकत नहीं होती, आत्मा नहीं होती। दुनिया को नुकसान हमेशा अच्छा आदमी पहुंचाता है। क्योंकि अच्छे आदमी के पास ताकत होती है, बल होता है। अच्छा आदमी दुनिया को लाभ भी पहुंचा सकता है, नुकसान भी। नुकसान वही पहुंचा सकता है, जो लाभ पहुंचा सकता है। जो लाभ नहीं पहुंचा सकता वह नुकसान भी नहीं पहुंचा सकता। इसको समझ लेना जरूरी है। बुरा आदमी कोई लाभ नहीं पहुंचा सकता दुनिया को। तो ध्यान रहे, जिसकी लाभ पहुंचाने की कोई ताकत नहीं है, उसकी नुकसान पहुंचाने की भी कोई ताकत नहीं हो सकती। और जितने दूर तक वह नुकसान पहुंचा सकता है उतने ही दूर तक वह लाभ पहुंचा सकता है। लाभ और नुकसान पहुंचाने की ताकत एक होती है। उससे लाभ भी पहुंचाया जा सकता है और नुकसान भी पहुंचाया जा सकता है। अच्छा आदमी नुकसान पहुंचा सकता है, क्योंकि अच्छा आदमी लाभ पहुंचा सकता है। पहला नुकसान तो वह यह पहुंचा सकता है कि लाभ न पहुंचाए, बस रुक जाए। लाभ न पहुंचाए तो भारी नुकसान हो जाएगा, और कोइ उससे कहने भी नहीं जाएगा कि आपने हमें नुकसान पहुंचाया--क्योंकि निगेटिव--उसने कोइ पॉजिटिव नुकसान नहीं पहुंचाया!
समझ ले कि गांधी भी संन्यासी हो जाते, और हिमालय चले जाते तो कोई जिम्मा नहीं ठहरा सकता था कि गांधी ने आपको नुकसान पहुंचाया। आज हम कहते हैं कि गांधी ने कितना ज्यादा फायदा पहुंचाया। लेकिन अगर गांधी गेरुआ वस्त्र पहन कर जंगल में चले जाते तो आप कहने जाते कि, आपने कितना नुकसान पहुंचाया? हमे पता ही नही चलता कि निगेटिव नुकसान का कोई पता नहीं चलता कि कितना पहुंच जाता है। एक गांधी के हट जाने से हिंदुस्तान की जिंदगी और ही होती, बिल्कुल दूसरी होती। हिंदुस्तान की आत्मा ही नहीं खड़ी हा पाती। एक गांधी के हट जाने से यह हालत हो जाती कितने गांधी हिंदुस्तान के हट गए, क्या हिसाब है आपको? अगर वे कोई भी न हटे होते तो ये मुल्क और ही मुल्क होता। इसकी रौनक, इसकी चमक और होती। इसकी प्रतिभा और होती। इसका बल और होता। सब कुछ और होता, लेकिन नहीं वे हट गए। जो हट गए उनका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन हम समझ सकते हैं कि नुकसान पहुंचा है। वे क्यों हट गए? और हमने क्यों हटने दिया? यह समाज क्यों हटने देता है, अपने अच्छे आदमी को? और ध्यान रहे, जब अच्छा आदमी हटता है तो उसकी जगह बुरा आदमी भर देता है। जगह खाली नहीं रहती, इस दुनिया में वैक्यूम नहीं रहता कि आप हट गए तो जगह खाली रहेगी, कि जब अच्छा आएगा तब भर जाएगी। बुरा आदमी चारों तरफ मौजूद है।

वह प्रतीक्षा कर रहा है कि महाराज आप हटो, हम आपकी जगह आजाएंगे। वह बुरा आदमी हटने वाले आदमी की बहुत प्रशंसा करता है कि आप बहुत महात्मा पुरुष हैं। आप हट गए आपने बड़ा अच्छा किया। क्योंकि अच्छा आदमी अगर समाज में हो तो बुरा आदमी उंचे स्थानो पर नही हो सकता है। अच्छा आदमी समाज में हो तो बुरा आदमी समाज को गति नही दे सकता है। अच्छा आदमी समाज में हो तो बुरा आदमी समाज का नेतृत्व नहीं ग्रहण कर सकता है। लेकिन अच्छा आदमी भाग जाता है, बुरा आदमी उसकी जगह बैठ जाता है।
हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ इस बात से बहुत खुश हैं कि हिंदुस्तान का अच्छा आदमी जंगल चला जाता है। क्योंकि जंगल जाता हुआ अच्छा आदमी बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर जाता है। इसलिए तो उसको गांव के बाहर लेने और नमस्कार करने जाते हैं। गांव के बाहर राजनीतिज्ञ जाता है, मिनिस्टर जाता है। फलां साधु आ रहे हैं, उनका स्वागत करने। फिर गांव के बाहर विदा करने भी जाता है। वह जानता है कि वह बहुत अच्छा आदमी है ने बड़ी कृपा की। यह होता जिंदगी में तो हम यहां नहीं हो सकते थे, जहां हम हैं। यह बहुत मुश्किल था होना इसका। बुरे आदमी के लिए जगह खाली की जा रही है।
भारत के भविष्य को बदलना है तो अच्छे आदमी को रोकना पड़ेगा। मजबूती देनी पड़ेगी कि खड़े रहो, भागो मत। क्योंकि बुरा आदमी हम पर बहुत दिनों से नेतृत्व कर रहा है। वह हमें गड्ढे में गिराए चला जा रहा है-गिराए चला जा रहा है। अच्छे आदमी को खड़ा होना पड़ेगा जिंदगी में। सब रूपों में अच्छे आदमी को खड़ा होना पड़ेगा। अच्छे आदमी ने नुकसान पहुंचाया है।
क्या हम अच्छे आदमी को जिंदगी में वापिस लाने की कोइ व्यवस्था कर सकते हैं? यह युवक क्रांति दल को सोचना और विचार करना चाहिए। उस संबंध में चिंतन होना चाहिए। सारे मुल्क में एक डायलाग की जरूरत है कि पूरे मुल्क में युवक सोचें। एक-एक युनिवर्सिटी कैंपस में सोचें, अच्छे आदमी को कैसे रोकें। अच्छे आदमी के भागने की आदत इतनी प्राचीन हो गई है कि उसे तोड़ना मुश्किल है। भागने मैं सुख भी बहुत है क्योंकि भाग गया और झंझटों के बाहर हो गए। युद्ध के मैदान पर लड़ना कष्टपूर्ण बात है, भाग जाना हमेशा आसान है। जिंदगी के मैदान पर भी वही हालत है। युद्ध के मैदान पर हम कायरों को सम्मान नहीं देते, इसलिए बहादुर आदमी युद्ध के मैदान पर खड़ा रहता है। जिंदगी के मैदान में हम भागने वाले कायरों को सम्मान देते हैं। इसलिए जिंदगी में जिसको भी सुविधा मिलती है भागने की वह निकल भागता है।
जिंदगी के संघर्ष पर भी हमें उनको ही आदर देना है। हमें आदर का वैल्यूएशन, पूरी की पूरी "वैल्यू" बदल देनी है--उनको आदर देना है जो जिंदगी के मैदान में भी खड़े होकर लड़ते हैं, हां, साधु की तरह लड़ते हैं, असाधु की तरह नहीं। साधु की तरह लड़ने का मजा और है। असाधु की तरह लड़ना बड़ा दुखद है। साधु की तरह लड़ना ब.हुत आनंदपूर्ण है। और जो साधु की तरह नहीं लड़ सकते और असाधु की तरह लड़ने से बचते हैं वे भाग जाते हैं। लेकिन न वे साधु रह जाते हैं, न वे असाधु रह जाते हैं। वे जिंदगी को ही छोड़ कर भाग गए, जहां कसौटी थी, जहां परीक्षा थी।

क्या हिंदुस्तान के चिंतन में यह क्रांति लाई जा सकती है कि हम अच्छे आदमी को रोक सकें? और जो अच्छा आदमी चला गया उसे भी कहें, कि लौटो, जिंदगी को बदलो। यह जिंदगी बहुत गंदी हो गई। यहां बगीचा सब उजड़ गया। यहां फूल खिलने बंद हो गए। तुम अपनी शांति कब तक खोजते रहोगे? आगर खोज ली है तो आ जाओ। और क्या यह नहीं हो सकता कि हमारी अशांति को दूर करना भी आंतरिक शांति को खोजने का मार्ग हो? यह है। मुझे तो दिखाई यह पड़ता है कि जो आदमी दूसरे का दुख दूर करने में लग जाता है उसके अपने दुख तत्काल समाप्त हो जाते हैं। जब तक आदमी अपना दुख दूर करने में लगा रहता है तब तक दुखि बना रहता है। और जिस दिन ये संकल्प करता है कि दूसरे का दुख तोडूंगा, उसी दिन वह पाता है कि भीतर के सब दुख मिटने शुरू हो गए। क्योंकि सबसे बड़ा दुख--"मैं" केंद्रित होना है, ईगो सेंटर्ड होना है! उससे बड़ा न कोई दुख नही है। और जो आदमी अपने पर ही "सेंटर" बना कर जीता है कि मुझे अपना दुख दूर

करना है, अपनी अशांति दूर करनी है, अपना तनाव दूर करना है, वह आदमी दुखी से दुखी होता चला जाता है। क्योंकि सबसे बड़े दुख का कारण है, "मैं!
अगर एक आदमी जिंदगी के चारों तरफ के दुख को दूर करने में लग जाता है,
वह पाता है कि मैं तो टूट गया, मैं तो खो गया, मैं तो गया, अब मैं हूं कहां? इतने दुख हैं जिंदगी में कि किससे कहूं, मैं भी अशांत हूं! और अगर एक आदमी दूसरे का दुख दूर करने में लग जाए, संलग्न हो जाए तो बड़े आश्चर्य की घटना घटती है कि उसका दुख मिटना शुरू हो जाता है। क्योंकि वह खुद मिटना शुरू हो जाता है। लेकिन यह खयाल पैदा करना पड़ेगा, यह खबर ले जानी पड़ेगी गांव-गांव, एक-एक आदमी तक। और केवल खबर नहीं ले जानी पड़ेगी, इसके लिए कुछ सक्रिय कदम उठाने पड़ेंगे। मैं तो चाहता हूं कि हजार-हजार युवक एक-एक साधु के पास जाकर डेरा डाल दें, घेराव डाल दें, और कहें कि भागो मत, जिंदगी में लौट आओ, हमें बदलो। यहां जिंदगी बहुत कष्ट भोग रही है। यहां जिंदगी में बहुत अनीति है, बहुत व्यभिचार है, बहुत अनाचार है, इसको तोड़ो। इसको कैसे तोड़ा जा सकता है-- सोचो, और बाहर आओ! मंदिरों में हम तुम्हें नहीं रहने देंगे, क्योंकि हम पूरे समाज को मंदिर बनाना चाहते हैं। यहां आ जाओ, ये बंद मंदिर, छोटे-छोटे क्लोज्ड मंदिर नहीं चलेंगे। हम पूरे समाज को मंदिर बनाना चाहते हैं।
एक बार, हिंदुस्तान के अच्छे आदमी को जिंदगी में रस लेने के लिए आतुर करना है, सम्मान की धारणा बदलनी है। और ध्यान रहे, सम्मान की धारणा बदलते ही क्रांति आ जाती है। हमें पता नहीं कि आदमी का दिमाग कैसे चलता है! राहुल सांकृत्यायन पहली दफे रूस गए, उन्नीस सौ बत्तीस तैंतीस सौ में। उनके हाथ बहुत खूबसूरत थे। उनके हाथ बहुत कोमल और मुलायम थे--स्त्रैण थे कहना चाहिए--हाथ बिल्कुल स्त्रियों जैसे थे। कभी कोई काम नहीं किया था। हाथ में कोइ मजदूर के गट्ठे नहीं थे। यहां तो जो भी उनका हाथ देखता था, हाथ पकड़ कर कहता था, आह! इतना खूबसूरत, इतना कोमल, इतना मुलायम, इतना मखमली हाथ! वे पहली दफा रूस गए। जिस व्यक्ति ने उनका स्टेशन पर स्वागत किया, उसने हाथ मिलाया और हाथ खींच लिया और कुछ इस तरह हाथ खींच लिया कि वे हैरान हो गए कि बात क्या है? उन्होंने पूछा कि क्या बात है? उसने कहा कि आपको सब जगह तकलीफ होगी, जो भी आप से हाथ मिलाएगा, वह समझ जाएगा कि यह आदमी मुफ्तखोर है। यह हाथ बिल्कुल इतना लोच है कि इसने कभी काम नहीं किया। आप रूस में जरा हाथ सम्हल के मिलाना। क्योकि हम उस आदमी को आदर देते हैं जिसके हाथ में कुछ मेहनत-मजदूरी का सबूत हो, नहीं तो हम मुफ्तखोर समझते हैं आदमी को। आप मुफ्तखोरों में से एक मालूम पड़ते हो। राहुल ने लिखा कि रूस भर में मै डरा रहा--हाथ की प्रशंसा की तो बात दूर, जिसने भी हाथ मिलया... मुझे उसके चेहरे पर लगा कि यह आदमी मेरे हाथ के बाबत में अच्छा निर्णय नहीं ले रहा। आश्चर्य की बात है, लेकिन हम उस आदमी को सबसे ज्यादा आदर देते हैं जो सबसे कम श्रम करता हो। तो फिर ठीक है, तो सबसे कम श्रम करने वालों को सबसे ज्यादा आदर दोगे और मुल्क अगर कायर और सुस्त होता जाए तो रोना क्यों? रोने की क्या जरूरत?
हमारा मूल्यांकन गलत है। नेहरू जी के बाबत मुझे पता है कि उनके बाप के बाप एक चपरासी थे, लेकिन उनका उन्होंने उल्लेख नहीं किया। इसिलिए कि चपरासी का कैसा उल्लेख किया जाए? मोतीलाल जी की बहुत चर्चा की है उन्होंने, लेकिन अपने दादा की बिल्कुल चर्चा नहीं की। बात ही नहीं उठाई। क्योंकि दादा एक चपरासी थे। उसकी बात ही नहीं उठाई क्योंकि चपरासी का पोता होना बड़ी दुखद बात है। और एक व्यक्ति ने यह बात उठा दी एक भाषण में कि नेहरू जी के दादा चपरासी थे तो नेहरू जी बहुत नाराज हो गए, और कहने लगे कि तुम मेरे परिवार के संबंध में, रिसर्च करते हो? मैं भी नहीं चाहता कि कोइ किसी के परिवार के संबंध में रिसर्च करें। यह कोइ अच्छे आदमी का लक्षण नहीं। लेकिन चपरासी होना कुछ बुराई भी नहीं है। चपरासी होने में क्या बुराई है? श्रम में बुराई है, तो चपरासी होने में बुराई है।
मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं, हमारे मूल्य क्या हैं? उससे समाज निर्मित होता है। अगर श्रम को हम आदर देंगे तो एक संकल्पशाली और श्रमिक समाज निर्मित होगा। अगर श्रम शून्य को हम आदर देंगे--ऐसे लोगों को आदर देंगे जो श्रम नहीं करते तो एक काहिल और सुस्त और ढीला-ढीला समाज निर्मित

होगा। अगर हम अच्छे लोगों को आदर देंगे, वह जिंदगी में सक्रिय हों, तो अच्छे लोग जिंदगी में सक्रिय होंगे। और अगर हम भागते हुए लोगों को आदर देंगे तो अच्छे लोग भाग जाएंगे। जिंदगी में सक्रिय भी हों और अनादर भी पाओ, बहुत कम लोग इतनी हिम्मत जुटा पाएंगे--वे भाग जाएंगे।
आपको शायद पता नहीं कि गांधी को हजारों चिट्ठियां पहुंचती थीं, कि आप महात्मा होकर इस कहां के गोरखधंधे में पड़े हो? छोड़ो इसको। अपने परमात्मा की खोज करो। गांधी हिम्मतवर आदमी रहे होंगे--इन चिट्ठियों की फिकर नहीं की। वैसे ये चिट्ठी वाले उनको रास्ता सरलता का बता रहे थे। कहां की झंझट में पड़े हो? फिजूल जेल जाओ--परेशान हो--ये सब दिक्कतें उठाओ और महात्मागिरी में भी संदेह पैदा करवाओ? यह जो, आगर हम यूथफोर्स के युवक और युवतियां इस तरफ थोड़ा ध्यान दें और साधु को जिंदगी की क्रांति के लिए सैनिक बना सकें तो हिंदुस्तान बदल सकता है। यह पहली बात--और एक दूसरी बात, फिर मैं अपनी बात यहां खत्म कर दूंगा।
हिंदुस्तान में अच्छे आदमी को सक्रिय होना है--एक सूत्र; और दूसरा सूत्र--हिंदुस्तान अब तक शब्दों में सोचने का आदी रहा है--तथ्यों में सोचने का नहीं। हम हमेशा शब्दों के खेल में खो जाते हैं। हमें याद ही नहीं रहता कि शब्द में और तथ्य में बहुत फर्क है। तथ्य, फैक्ट्स एक बात है और शब्द बिल्कुल ही दूसरी बात है। लेकिन यह हमारी आदत इतनी पुरानी हो गई है कि हम शब्दों में खो जाते हैं और शब्दों में विचार करने लगते हैं। और शब्दों की अलग यात्रा शुरू हो जाती है। और तथ्य पड़ा रह जाता है उसकी हमे फिकर ही नहीं रहती कि तथ्य क्या है? फैक्ट क्या है? धीरे-धीरे शब्दों का एक जाल खड़ा हो जाता है और जिंदगी उदास होती चली जाती है क्योंकि जिंदगी बदलती है तथ्यों से। जिंदगी शब्दों से नहीं बदलती है। क्योंकि हम शब्दों के आदी हो गए हैं--तथ्यों की हमारी आदत ही नहीं रही। इसलिए भारत में विज्ञान पैदा नहीं हो सका। साइंस पैदा नहीं हो सकी। फिलासफी तो पैदा हुई--क्योंकि फिलासफी तो शब्दों का खेल है। साइंस पैदा नहीं हुई क्योंकि साइंस तथ्यों से चलती है--"फैक्ट्स" से चलती है। हिंदुस्तान का भविष्य बुरे से बुरा होता चला जाएगा, अगर हिंदुस्तान में साइंटीफिक माइंड पैदा नहीं होता। इसलिए "यूथफोर्स" के मित्रों से मैं कहूंगा कि दूसरी मेहनत करो कि हिंदुस्तान में एक वैज्ञानिक चिन्तन की धारा पैदा हो जाए। बहुत फिलासफी हमने सोच ली। फिलासफी हमें बहुत गड्ढे में ले गई। बहुत खतरनाक हो गया फिलासफी का मामला। हमने शब्दों की खाल इतनी उखाड़ी कि हम भूल ही गए कि हाथ में शब्द ही रह गए। तथ्य ही नही और उनकी खाल उखाड़ते ही चले गए और बारीक से बारीक करते चले गए तर्क को।
अभी, एक किताब देखता था। एक पश्चिमी यात्री डेनीज भारत आया। उसने स्वामी शिवानंद की एक किताब पढ़ी। उस किताब में लिखा हुआ है कि ओम का पाठ करने से सब तरह की बीमारियां तत्काल दूर हो जाती हैं। ऐसी तो हमारे पास बहुत किताबें हैं। कोइ स्वामी शिवानंद बेचारों का कसूर नही है। सब धर्मों के पास किताबें है कि नमोकार मंत्र पढ़ो और सब दुख दूर हो जाते हैं, सब बीमारियां दूर हो जाती हैं। ओम के पाठ करने से दूर हो जाति है, बल्कि यह भी लिखा है कि ओम का पाठ कोई पूरी निष्ठा से करे तो मृत्यु को भी विजय कर सकता है--मृत्यु को भी जीत सकता है। वह डेनीज ने--वह किताब पढ़ी तो उसको लगा कि यह तो बड़ी अदभुत बात खोज ली है--स्वामी शिवानंद ने। अगर इस राज का पता चल जाए तो सारी दुनिया में मृत्यु को जीता जा सकता है--बीमारियां खत्म! ये मेडिकल कालेज खड़े करो और आयुर्वेद और एलोपैथी और होमियोपैथी--ये सब पागलखाने बंद करो--इनकी क्या जरूरत है? बात खत्म हो गई। एक छोटा सा सूत्र मिल गया। यह तो बिल्कुल "फाउंडेशनल" बात मिल गई इस आदमी को। के इस शब्द के जाप करने से सब ठीक हो जाता है।
वह भागा हुआ स्वामी शिवानंद के आश्रम गया। उसने जाकर कहा कि मैं इसी वक्त मिलना चाहता हूं। मैं एक क्षण खोना नहीं चाहता। क्या पता मैं मर जाऊंगा और वह पाठ न सीख पाऊं, ओम का पाठ। मुझे स्वामी जी से अभी मिला दीजिए। स्वामी जी के सेक्रेटरी ने कहाः अभी मिलना नहीं हो सकता! स्वामी जी बीमार है!! उनकी डाक्टर चिकित्सा कर रहा है!!!

वह आदमी कहने लगा, क्या आश्चर्य? स्वामी जी कभी बीमार नहीं पड़ सकते! स्वामीजी बीमार कैसे पड़ सकते हैं? स्वामी जी को तो तरकीब मिल गई है, बीमार तो हो ही नहीं सकते! वे कभी मर भी नहीं सकते! सेक्रेटरी से कहा कि तु झूठ बोल रहा है। तो सेक्रेटरी ने कहाः मैं झूठ क्यों बोलूंगा? स्वामी जी बीमार हैं! डाक्टर अभी उनको देखने गए हुए हैं। आपको घड़ी भर रुकना पड़ेगा। वह डेनिज तो चकित हो गया। क्योंकि स्वामी शिवानंद साधु होने के पहले डाक्टर थे। एक डाक्टर को तो इतनी अक्ल होनी चाहिए कि क्या लिख रहा है? क्या कह रहा है? लेकिन हिंदुस्तान में यह सवाल कोई भी नहीं उठाएगा--स्वामी शिवानंद के पास जाकर। कोई भी किताब पढ़ लेगा और कहेगा "वाह-वाह", क्या बढ़िया बात कही है! कोई सवाल नहीं उठाएगा। कोई जाकर स्वामी शिवानंद को पकड़ नहीं लेगा कि इसका जवाब दीजिए और प्रयोग करके बताइए कि तथ्य कहा है? अगर ओम के पाठ से मृत्यु को जीता जा सकता है तो तुम्हारे ऋषि-मुनियों को कभी किसी को मरना नहीं चाहिए था--एक भी मौजूद नहीं है!
लेकिन तथ्यों में हम सोचते नहीं। फैक्ट्स में हम सोचते नहीं हम सिर्फशब्दोमे सोचते है और मरते चले जाते हैं। और बेवकूफी की बातें दुहराए चले जाते हैं। और कभी कोई नहीं खड़े होकर कहेगा कि यह क्या कह रहे हो? इसका क्या मतलब है? क्या अर्थ हुआ?
वह आदमी तो घबडा गया, वह आदमी तो सोच कर आया था कि एक बहुत, जिसको ऐलिकि्.जर कहें, अमृत की तरकीब मिल गई। पारस पत्थर मिल गया, तो सब कुछ जिंदगी बदल जाएगी। वह आदमी एकदम उदास हो गया। वह जब देखने गया तो उसने देखा कि स्वामी शिवानंद को दो आदमी पकड़ कर उठाते हैं तब वे उठते हैं। अरे! उसने कहाः यह क्या हो गया? और उसने देखा कि यह आदमी तो जल्दी मरेगा। ज्यादा देर टिकने वाला नहीं। इसकी हालत बिल्कुल खराब है। मगर हम कहेंगे-- यह आदमी नास्तिक है। यह आदमी धार्मिक नही है, यह आदमी संदेह करता है स्वामी पर! यह आदमी गड़बड़ है। विश्वास करना चाहिए, संदेह नहीं करना चाहिए। स्वामी कहते है तो ठीक ही कहते होंगे। और अगर हममें से कोई बैठा होता वहा धार्मिक पुरुष तो वह कहता कि तुम समझते नहीं। स्वामी लीला दिखा रहे हैं, बीमार होने की। यह सब लीला है, यह सब माया का खेल चल रहा है! तुम समझ नहीं रहे। डाक्टर भी लीला है! बिमारी भी लीला है, स्वामी तो अमर हैं! स्वामी कहां बीमार हैं! वे तो सच्चिदानंद स्वरूप हैं! वे कभी बीमार नहीं पड़ते। इतना काइयांपन, इतनी कनिंगनेस हमारे दिमाग में है, जिसका कोई हिसाब नहीं। हिंदुस्तान के युवकों को इस काइयांपन को आग लगा देनी है और तथ्यो मे सिधे ओर साफ सोचने की हिम्मत पैदा करनी है। कोई फिकर नहीं, हमारे बहुत से भ्रम टूट जाएंगे। कोई फिकर नहीं, हमारे बहुत से "चैरिश्ड इलुजंस" है हजारों साल के, उनमें आग लग जाएगी। लेकिन कोई फिकर नहीं, जिंदगी के जो नग्न तथ्य हैं, सीधे और साफ हैं, उन्हें हम पकड़ सकेंगे, और पकड सकेंगे तो उनको बदलने के लिए कुछ कर सकेंगे।
बीमारी बदली जा सकती है! और इस बात की संभावना है, कि किसी दिन आदमी मरने पर रोक लगा दे। लेकिन ओम के पाठ से यह नहीं होगा। यह सब संभावनांए है, इस बात की संभावना है कि आदमी एक ऐसा स्वास्थ निर्मित कर ले कि आज नहीं कल बीमारी असंभव हो जाए। अगर बीमारी कम हो सकती है, ज्यादा हो सकती है, तो असंभव भी हो सकती है, लेकिन ओम के पाठ करने से यह नहीं होगा। यह तो बीमारी की कैजुएलिटी को खोजने से, यह तो बीमारी के क्या कारण हैं, स्वास्थ का क्या राज है, उस दिशा में सारे तथ्योंकि खोज करने से, आज नहीं कल ये हो सकता है कि मनुष्यता स्वस्थ जीए। बीमारी एक रेयर घटना हो जाए, कभी कोई आदमी बीमार पड़े। आजकल उलटा है, कभी कोई आदमी स्वस्थ होता है।
इससे उलटा हो सकता है। इस बात की संभावना है कि, उम्न लम्बी की जा सके।
इस बात की भी संभावना है कि, मृत्यु को भी बहुत दूर तक ठेला जा सके। अनंत तक ठेला जा सके, लेकिन ओम के पाठ से यह नहीं हो जाएगा, और जो कौम यह समझती रहेगी कि ओम के पाठ से यह हो जाएगा, वह कौम कभी तथ्यों को नहीं खोजेगी। इधर बीमारी में मरेगी, उधर किताबों में लिखेगी कि ओम के पाठ से सब बीमारियां दूर हो जाती हैं। हमसे ज्यादा बीमार दुनिया में कोइ भी नहीं। हमसे ज्यादा अस्वस्थ कोई नहीं। हमसे ज्यादा कम उम्र का कोई समाज नहीं। और हमसे ज्यादा

ऊंची बातों का किसी को पता नहीं कि ओम के पाठ से सब ठीक हो जाता है। इन दोनों कंट्राडिक्शंस को कभी देखते हैं? फिर कभी खयाल आता है कि शायद हम बहुत बीमार हैं, बहुत अस्वस्थ हैं, कि क्या खोज भी नहीं पाते। इसलिए इस तरह बेईमानी की तरकीबें किताबों में लिख कर मन को राहत देते हैं, संतोष देते हैं कि अरे! ओम के पाठ से सब ठीक हो जाता है।
नहीं, इस तरह नहीं चल सकता है आगे। वैज्ञानिक बुद्धि चाहिए। और वैज्ञानिक बुद्धि पैदा होती है, थिंकिंग इन फैक्ट्स, तथ्य क्या है, उसे पकड़ो और उघाड़ो। शब्दों की खोल को छोड़ो। शब्द चाहे कितने ही पुराने, कितने ही सॅक्नएड हों, कितने ही महापुरुषों के कहे हुए हों, शब्द, शब्द हैं। उनको खोलो पीछे--और तथ्य न मिले तो शब्दों को फेंक दो। हिंदुस्तान के ऊपर शब्दों का भारी कचरा जमा हुआ है, उन शब्दों को उघाड़ कर अलग कर देना है। नीचे तथ्य न मलूम कहां खो गए हैं, उनको पकड़ कर खोज निकालना है, तो शायद हम जिंदगी को बदलने का कुछ खयाल कर सकें।
लेकिन हर तरफ यह बात है। हर तरफ यह बात है। आदमी गरीब क्यों है? तो हम कहेंगे कि पुनर्जन्म की वजह से गरीब है। कोई फिकर नहीं करेगा कि गरीबी की क्या वजह है। खोजें, जाएं, देखें कि गरीब आदमी गरीब क्यों है? हमें तो पता है, शब्द हमें मालूम है कि पिछले जन्म में इसने बुरे कर्म किए हैं, इसलिए वह गरीब हैं। एक साधु से लेकर पूरे पचास लाख साधु पूरे मुल्क को यह समझा रहे हैं कि, आदमी इसलिए गरीब है कि उसने पिछले जन्म में बुरे कर्म किए हैं। इस झूठ को तोड़ने के लिए कोई खड़ा नहीं है कि यह सरासर झूठी बात है। लेकिन यह झूठ, पूंजीवाद को टिकने के लिए आसरा बनता है। इसलिए पूंजीपति कहेगा कि बिलकूल ठीक कह रहे हैं महाराज। यही तो है असली बात कि हम अपने पिछले जन्मों के कर्मों की वजह से धनपति हैं। वह आदमी पिछले जन्मों के कर्मों की वजह से गरीब है। इसमें हम क्या कर सकते हैं, वह क्या कर सकता है? अच्छे कर्म करेगा तो आगे वह धनपति हो जाएगा, हम बुरे कर्म करेंगे तो हम आगे गरीब हो जाएंगे। सुरक्षा समाज की बन गई है। और पचास लाख साधु ये सुरक्षा बना कर, दूसरों को बना रहे हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि ये बफर हैं, वे स्प्रिंग का काम कर रहे हैं। वे चोट ही नहीं लगने देते। गरीब आदमी को खयाल ही पैदा नहीं हो पाता कि गरीबी सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। अमीर आदमी को भी खयाल ही नहीं हो पाता कि अमीरी भी सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। और मजे की बात यह है कि गरीब भी दुखी है। और अमीर भी दुखी हैं। और दोनों का दुख सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है।
मैं आपसे यह कहना चाहता हूं--जब तक समाज गरीब है तब तक कोई अमीर आदमी सुखी नहीं हो सकता। यह असंभव है कि पूरा गांव बीमारी से भरा हो, कैंसर और कोढ़ गांव भर में फैले हो और एक आदमी अपने बंगले कि बडी परकोटा उठा कर और उसके भीतर स्वस्थ बच सके। यह असंभव है। और अगर बचेगा तो न रात सो सकेगा, न दिन सो सकेगा। रात भर पहरेदार लगा कर रखने पड़ेंगे दिन भर, कि कोई बीमारी भीतर न घुस जाए, वह इतनी चिंता में रहेगा सुरक्षा की कि सुरक्षा खत्म हो जाएगी। सुरक्षा में इतना चिंतित हो जाएगा कि कैसे सुरक्षा करूं? आप आसानी से अगर आप के पास या मेरे पास पैसा है तो आसानी से पैसे को नहीं बचा सकोगे। चारों तरफ इंतजाम करना पड़ेगा और इतना इंतजाम करना पड़ेगा कि उस इंतजाम में मैं घिर जाऊंगा और कैदी हो जाऊंगा। और जिंदगी एक मुसीबत हो जाएगी। अमीर मुसिबत में हैं अमीरी की वजह से और गरीब मुसीबत में है गरीबी की वजह से।
दोनों मानते हैं कि पिछले जन्म का मामला है इसलिए कुछ किया नहीं जा सकता।
और पिछले जन्म का मामला आपको कैसे पता चला? क्योंकि किताब में लिखा है! बड़ी मजे की बात है, कि किताब में लिखा होने से कोई बात सच हो जाती है। पहले तो किताब में लिखे होने से सच हो जाती थी। आजकल तो बात और बदल गई। अखबार में लिख जाए तो भी सच हो जाती है। पहले तो कम से कम थोड़ा सा हिसाब था कि कृष्ण की किताब है। कृष्ण कम से कम सच ही कहेगा। लेकिन "जन्म-भूमि" भी सच हो सकती है? फिर बड़ा मुश्किल--मामला है। फिर मामला बड़ा मुश्किल है! अक्षर, छपा हुआ, कुछ हमें ऐसा प्रभावित करता है कि छपा हुआ होने का मतलब सत्य होना होता है। छप गया कि सत्य हो गया। इस छपे अक्षर का जादू खत्म करना चाहिए। अक्षर का ही जादू खत्म करना चाहिए। शब्दों का ही जादू खत्म

करना चाहिए। तथ्य खोजने चाहिए। क्या फैक्ट्स हो सकते हैं? क्या तथ्य हो सकता है? लेकिन तथ्यों के बाबत हमारी कोई खोज नहीं--कोई खोज नहीं है। समझदार से समझदार आदमी कुछ भी आकर कह देगा कि--फलां आदमी ने कहा है, फलां किताब में लिखा है, फलां अखबार में छपा है! फिर वह कोई फिकर नहीं करेगा कि तथ्य क्या हो सकते हैं?
शब्दों में जीने वाला समाज झूठ में जीने लगता है। अगर समाज को जीवन के सत्य की तरफ ले जाना है तो हमें शब्दों के जाल को तोड़ कर, तथ्यों की खोज करनी चाहिए। यह दूसरी बात करना चाहता हूं। अच्छे आदमी को आतुर करो जिंदगी को बदलने को। और पूरे समाज को तैयार करो कि वह तथ्यों को देखे। शब्दों में अब और न भरमाए। अगर यह दो काम हो सकते हैं तो भारत की जिंदगी में एक अदभुत क्रांति हो सकती है। मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूं कि यह हो सकता है।
लेकिन यह आशा जवान आदमी की तरफ देख कर थोड़ी सी ढीली पड़ जाती है। आशा मेरे भीतर बहुत है कि यह हो सकता है। लेकिन जब जवान आदमी को देखता हूं तो बहुत ढीला पड़ जाता हूं। वह जवान आदमी ठीक से जवान ही नहीं मालून पड़ता। वह समझ रहा है कि जवानी का मतलब टाई-वाई लगा कर और अच्छे कपड़े पहन कर घूमने निकल पड़े तो जवान हो गए। सीटी बजाना आ गया तो जवान हो गए। बेवकूफ हो--कहीं ऐसे सीटी बजाने से कोई जवान हो जाता है? एक फिल्मी गाने की तर्ज सीख ली तो जवान हो गए? जवानी एक बहुत गहरी जिंदगी और ताकत की बात है, और बड़े साहस की और बड़े एडवेंचर की बात हैं! जवान आदमी का मतलब है कि वह कुछ करने की प्रेरणा से भरा हो।
जवान आदमी का मतलब है कि जिंदगी को जैसा उसने पाया वैसा ही नहीं छोड़ देगा--बदलेगा--नया करेगा। जवान आदमी का मतलब है, जिस बगीचे में फूल नहीं उगते वहां फूल लाने की कोशिश करेगा--खप जाएगा, खाक बन जाएगा और फूलों को ला देगा। जवान आदमी का मतलब है, कुछ करने की हिम्मत, कुछ करने की आकांक्षा! जवानी का मतलब है, कोई प्यास! जवानी का मतलब है, कोई अभीप्सा! जवानी का मतलब है, कि मै जैसा हूं समाज जैसा है, वैसा होने को मैं राजी नहीं हूं-- बदलूंगा!
जवानी का मतलब है, क्रांति। जवानी का मतलब है, क्रांति, उसका मतलब है-- रिवोल्यूशन--उसका मतलब है के "रिवोल्यूशनरी माइंड।" तो युवक क्रांति दल-- या आपके यूथफोर्स के मित्र--युवक और युवतियां हिंदुस्तान में एक जवान आदमी को तैयार करें! एक जवानी पैदा करें और जिंदगी को बदलें। परमात्मा की सारी कृपा उनको उपलब्ध होंगी--जो जिंदगी को बदलने को उत्सुक है। लेकिन परमात्मा की सुनता कौन है? वह शायद चिल्ला रहा है--कि बदलो! बदलो! बहुत कचरा इकट्ठा हो गया है, लेकिन कोई सुनता नहीं!
यह मेरी थोड़ी सी बातें आपने सुनीं, यह भी बड़ी कृपा है। कोशिश तो बहुत चलती है कि मेरी बात ही आप न सुन पाओ। लेकिन सुन लेते हैं आप मेरी बात, यह बड़ी कृपा है। मैं नहीं कहता कि मेरी बात मान लेनी चाहिए। मैंने जो कहा उस पर सोचना चाहिए--ठीक हो ठीक, गलत हो गलत। गलत हो, उसको भूल जाना चाहिए। ठीक हो, तो ठीक होने का एक ही मतलब होता हैः जो चीज ठीक लगे--अगर ठीक लगी है तो उसके लिए कुछ करना चाहिए, अन्यथा वह ठीक नहीं लगी हैं! फिर अच्छा है कि समझ लो कि ये बातें गलत हैं! और अगर भूल से भी यह खयाल आता है कि ये बातें ठीक हैं, तो फिर आपके आदमी होने का सबूत इससे मिलेगा कि उन ठीक बातों के लिए आप क्या करते हैं?

इतने प्रेम से सुनी मेरी बातें, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का सत्रहवां प्रवचन

प्रगतिशील कौन?

मेरे प्रिय आत्मन्!
सुना है मैंने, एक बहुत विचारशील महिला गुरड्रिस स्टेन अपनी मरणशय्या
पर पड़ी थी। आखिरी घड़ी उसने आंख खोली है और पास में बैठे अपने एक मित्र से पूछाः "आह! अलास, वॉट इ.ज द आनसर?" पूछा अपने पास बैठे मित्र से कि अलास, उत्तर क्या है? पास बैठा मित्र बहुत हैरान हो गया होगा। क्योंकि सवाल न पूछा गया हो तो उत्तर कोई भी नहीं हो सकता है। लेकिन मरते हुए व्यक्ति से यह भी कहना उचित नहीं था कि सवाल क्या है। कोई उत्तर न पाकर उस मरती हुई महिला ने वापस दुबारा पूछाः इन दैट केस, वॉट इ.ज दि क्वेश्चन? अगर सवाल का पता नहीं है, तो उस हालत में जवाब का पता नहीं हो तो उस हालत में सवाल क्या है? लेकिन सवाल का भी कोई पता नहीं है इसलिए अच्छा हो कि इसके पहले मैं जवाब दूं, सवाल ठीक से आपकी समझ में आ जाए। हू इ.ज प्रोग्रेसिव? कौन है प्रगतिशील?
पहली बात, रूढ़िवादी कौन है? हू इ.ज ऑर्थोडाक्स? इसे बताना बहुत आसान है। ऑर्थोडाक्स एक पत्थर की तरह है। वजन भी है उसमें, ठोसपन भी है उसमें। अतीत का इतिहास भी है उसके पास, रूप-रेखा भी है। हाथ में पकड़ा भी जा सकता है, इसलिए सदा से तय है कि रूढ़िवादी कौन है? ऑर्थोडाक्स कौन है? लेकिन प्रगतिशील कौन है--हू इ.ज प्रोग्रेसिव? हवा की तरह है बात! न कोई आकार है, न कोई रूप-रेखा है और हवा को जितनी जोर से पकड़ो उतनी ही मुट्ठी के बाहर हो जाती है। और जिस दिन प्रोग्रेसिव पकड़ में आ जाता है कि यह रहा प्रोग्रेसिव उस दिन वह ऑर्थोडाक्स हो चुका होता है। इसीलिए पकड़ में आ जाता है। अगर परिभाषा हो सके कि कौन है प्रगतिशील, अगर यह पकड़ में आ सके, अगर यह मुट्ठी में बंद हो जाए तो समझना कि प्रगतिशील मर चुका है। ऑर्थोडाक्स ही सिर्फ पकड़ में आता है। वह डिफाइनेबल है, उसकी व्याख्या हो सकती है।
प्रगतिशील का अर्थ ही यही है कि जिसका कोई संबंध अतीत से नहीं है, भविष्य से है। भविष्य अभी पैदा नहीं हुआ। जो पैदा हो गया है उसके संबंध में निश्चित हुआ जा सकता है कि वह क्या है और जिसका संबंध भविष्य से है उसके संबंध में बहुत निश्चित नहीं हुआ जा सकता है कि वह क्या है। क्योंकि उसका संबंध अनबार्न से है, वह जो नहीं पैदा हुआ है उससे। हम एक बूढ़े के संबंध में निश्चित हो सकते हैं कि वह क्या है। हम एक बच्चे के संबंध में निश्चित नहीं हो सकते हैं कि वह क्या है क्योंकि बच्चा अभी होने को है और जिस दिन हो चुका होगा उस दिन बच्चा नहीं होगा। उस दिन वह बूढ़ा हो गया होगा। तो प्रगतिशील को ठीक से पकड़ने की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह हवा की तरह है। और इसी से एक दूसरी बड़ी महत्वपूर्ण बात खयाल में आ सकती है, वह यह कि, दुनिया में जितनी ऑर्थोडाक्सी हैं वे सब कभी प्रगतिशील थीं। बुद्ध अपने जमाने में प्रगतिशील थे लेकिन जिस दिन पकड़ में आ गए हैं उस दिन से ऑर्थोडाक्स हो गए हैं। महावीर अपने जमाने में प्रगतिशील थे लेकिन जैन प्रगतिशील नहीं है। वे महावीर को पकड़ लिए हैं, महावीर बंद हो गए हैं, मुट्ठी बंद हो गई है। जीसस क्राइस्ट अपने जमाने में प्रगतिशील थे। ईसाई, प्रगतिशील नहीं हैं। क्राइस्ट मुट्ठी में, पकड़ में आ गए हैं। जिस क्षण भी प्रगतिशील पर मुट्ठी बंध जाती है, उसी क्षण रूढ़ि पैदा हो जाती है, उसी क्षण परंपरा पैदा हो जाती है।
इसलिए पहली कठिनाई आपको साफ कर दूं कि प्रगतिशील शब्द इनडिफाइनेबल है, उसकी व्याख्या नहीं हो सकती। हां उसकी व्याख्या ऐसे ही हो सकती है जैसे हम स्वास्थ्य की व्याख्या करते हैं। हम कहते हैं, जो आदमी बीमार नहीं है वह स्वस्थ है। लेकिन यह स्वास्थ्य की परिभाषा न हुई, यह तो बीमारी की चर्चा हुई। जब भी हमें स्वस्थ आदमी की व्याख्या करनी हो कि कौन स्वस्थ है तो कहना पड़ता है, जो बीमार नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। सिर्फ बीमारी की परिभाषा होती है। और जब बीमारी नहीं होती है तो जो शेष बच जाता है, दि रिमेनींग, वह स्वास्थ्य होता है।

रूढ़ि की परिभाषा हो सकती है, ऑर्थोडाक्सी की परिभाषा हो सकती है। और जिस आदमी के भीतर रूढ़ि नहीं होती है वह प्रगतिशील होता है। प्रगतिशील की सीधी परिभाषा नहीं हो सकती है। वह जो रूढ़िग्रस्त नहीं है, वह जो ऑर्थोडाक्स नहीं है--निगेटिव, नकारात्मक परिभाषा ही हो सकती है। और यह बड़े मजे की बात है कि जिंदा चीजों की परिभाषा सदा नकारात्मक होती है। सिर्फ मरी हुई चीजों की परिभाषा पाजिटिव होती है। जो चीज मरी होती है, "वी कैन डिफाइन इट पाजिटिवली एण्ड दैट व्हीच इ.ज लिविंग कैन ओनली बी डिफाइंड निगेटिवली।" असल में जिंदगी मुट्ठी में पकड़ में नहीं आती, सिर्फ मौत पकड़ में आती है। तो जो चीज मरी हुई है उसकी हम परिभाषा कर सकते हैं। हम कह सकते हैं, मशीन क्या है। हम कह सकते हैं कि कुर्सी क्या है। हम नहीं कह पाते कि आदमी क्या है। हम कह सकते हैं कि बीमारी क्या है। हम नहीं कह पाते कि स्वास्थ्य क्या है। जो भी चीज जीवित है, जो भी लिविंग है वह मुट्ठी के बाहर हो जाती है, वह हवा की तरह हो जाती है।
प्रेम की परिभाषा नहीं हो सकती, विवाह की परिभाषा हो सकती है। क्योंकि मैरिज मरी हुई चीज है। प्रेम एक जिंदा चीज है। इसलिए विवाह के संबंध में अदालतों में मुकदमे लड़े जा सकते हैं और डेफिनेशन हो सकती है। लेकिन प्रेम के संबंध में कोई डेफिनेशन नहीं हो सकती। अब तक प्रेम पर बहुत कविताएं लिखी गई हैं लेकिन डेफिनेशन अब तक नहीं लिखी गई। उसकी कोई परिभाषा न हो सकी--प्रेम क्या है। विवाह की परिभाषा सुनिश्चित है। विवाह क्या है, इसे तय किया जा सकता है, वह मरी हुई चीज है। सब मरी हुई चीजें तय हो जाती हैं। जिंदा चीजें तय नहीं होतीं। यह जिंदा होने का एक लक्षण है। तो पहली बात तो मैं यह कहना चाहूंगा कि प्रगतिशील चित्त जिंदा चित्त है, लिविंग माइंड। इसलिए उसकि परिभाषा नकारात्मक होगी, निगेटिव होगी--वह जो रूढ़िगस्त नहीं है। तो ठीक से समझें कि रूढ़िग्रस्त कौन है, तो शायद प्रगतिशील कौन है उसकी तरफ इशारा हो सके।
साधारणतः हमारा मन अतीत से निर्मित होता है--पास्ट ओरिएंटेड होता है।
हम जो भी जानते हैं वह अतीत से आता है। यह बड़े मजे की बात है कि जो भी हम जानते हैं वह अतीत से आता है और जो भी जीवन है वह भविष्य से आता है। इसीलिए जीवन और जानने में तालमेल कहीं भी नहीं होता। जो बहुत ज्यादा जानने को जोर से पकड़ लेते हैं, जो ज्ञान को बहुत जोर से पकड़ लेते हैं उनके जिंदगी से संबंध टूट जाते हैं। और जिन्हें जिंदगी से संबंध जोड़ना है उन्हें ज्ञान से संबंध तोड़ने पड़ते हैं। ज्ञान बहुत रूपों में उपलब्ध होता है-- शास्त्रों में उपलब्ध होता है, परंपराओं में उपलब्ध होता है, गुहाओं में उपलब्ध होता है, फिलासफी में, आइडियोलॉजी में उपलब्ध होता है। जहां से भी ज्ञान कोई पकड़ लेगा जोर से वह प्रगतिशील नहीं रह जाएगा। प्रगतिशील होने के लिए अनिवार्य है कि हम अतीत के ज्ञान को न पकड़ें। भविष्य के लिए ओपनिंग तभी हो सकती है जब हम अतीत के प्रति जोर से पकड़ नहीं लिए गए हैं। जिसने अतीत को जोर से पकड़ लिया है वह भविष्य के प्रति बंद हो जाता है। वह प्रगतिशील नहीं रह जाता।
अगर कोई आदमी कहता है--मैं जैन हूं, तो वह प्रगतिशील नहीं हो सकता। क्योंकि जैन होना अतीत से बंधा हुआ है। भविष्य से उसका क्या नाता है! वह पच्चीस सौ वर्ष पहले महावीर हुए, उनसे बंधा हुआ है। अगर कोई कहता है कि मैं ईसाई हूं तो वह दो हजार साल पहले जो जीसस क्राइस्ट हुए उनसे बंधा हुआ है। भविष्य से उसका क्या नाता है! अगर कोई कहता है, मैं हिंदू हूं तो वह प्रगतिशील नहीं हो सकता। क्योंकि हिंदू होने की सारी व्यवस्था अतीत से आती है, भविष्य से हिंदू होने का क्या नाता है! अगर कोई कहता है, भारतीय हूं, पाकिस्तानी हूं, चीनी हूं, तो वह प्रगतिशील नहीं हो सकता। क्योंकि ये सारी की सारी बातें अतीत से जुड़ी हुइ हैं। इनका भविष्य से कोई नाता नहीं है।
पहली बात ठीक से समझ लेनी जरूरी हैः हम अपने व्यक्तित्व को अतीत से निर्मित करते हैं, अतीत से बांधते हैं।... टु दि पास्ट। बंधे हैं जैसे बैल खूंटियों में बंधे होते हैं ऐसे हम अतीत की खूंटियों से बंधे हैं। अगर हम अतीत की खूंटियों से बंधे हैं तो हम प्रगतिशील नहीं हो सकते। हम बीमार

हैं, रुग्ण हैं, रूढ़िग्रस्त हैं, परंपरावादी हैं, ट्रेडिशनलिस्ट हैं, प्रोग्रेसिव नहीं हो सकते। अतीत से जो चित्त मुक्त है वह भविष्य के प्रति खुला हुआ हो जाता है। अतीत से जो बंधा है, वह बंद हो जाता है और यह भी ध्यान रहे कि अतीत अब कभी नहीं आएगा--न राम लौटेंगे, न बुद्ध, न कृष्ण, न क्राइस्ट, न मोहम्मद। इसलिए जो भी उनसे बंधे हैं वे कब्रों से बंधे हैं। उन्हें यह ठीक से समझ लेना चाहिए। न गीता फिर लौटेगी, न रामायण लौटेगी, न वेद लौटेंगे, न बुद्ध के वचन, न बाइबिल। जो उन किताबों से बंधे हैं वे अतीत की राख से बंधे हैं। जो अतीत की राख से बंधा है, किसी भी स्थिति में वह प्रगतिशील नहीं है। इसलिए पहली नकारात्मक परिभाषा मैं यह करना चाहूं कि जो अतीत से मुक्त है, जो अतीत से बंधा नहीं है और जिसकी आंखें भविष्य को देखने के लिए खुली हैं, जिसकी कोई धारणा नहीं है, जिसके पास बंधा हुआ कोई ज्ञान नहीं है, जिसके पास कोई शास्त्र नहीं है, जिसके पास कोई "इज्म" नहीं है।
ध्यान रहे, यह तो हमारी समझ में आ जाता हैं कि हिंदू प्रगतिशील नहीं है, यह भी समझ में आ जाता है कि ईसाई प्रगतिशील नहीं है, लेकिन शायद हम सोचते हों, कम्युनिस्ट प्रगतिशील हैं तो हम भूल में पड़ जाते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप दो हजार साल पुरानी बात से बंधे हैं कि सौ साल पुरानी बात से बंधे हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि आप बाइबिल से बंधे हैं, कैपिटल से बंधे हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मोहम्मद से बंधे है, मार्क्स से बंधे हैं। पीछे की तरफ जो बंधा है वह आदमी प्रगतिशील नहीं है। और आगे की तरफ कोई "इज्म" नहीं होता। आगे की तरफ कोई वाद नहीं होता, आगे की तरफ कोई शास्त्र नहीं होता। क्योंकि जो शास्त्र अभी पैदा हुआ है उससे बांधिएगा कैसे! और जो सिद्धांत अभी निर्मित नहीं हुआ है उससे बंधने का उपाय नहीं है। जो खूंटी अभी गढी नहीं गई उससे अपने को कैसे जंजीर में बांधिएगा?
प्रगतिशील होने का अर्थ हैः वह जो अतीत है, वह जो बीता हुआ है, जो मर चुका है, जो जा चुका है, वह जो राख हो चुका है, वह जो मरघट में है, कब्रिस्तान में है--उससे मुक्त। लेकिन बहुत कठिन है यह बात। बहुत कठिन है यह बात, क्योंकि इतने रास्तों से हमें अतीत जकड़ता है कि हमें पता भी नहीं लगता। हमें छोटी-छोटी बातों का खयाल नहीं रह जाता कि वे हमारे अतीत से जकड़ी हुई हैं। दो-चार छोटे उदाहरण दूंः
आदमी ने सबसे पहले कपास पैदा किया और फिर आपने कपड़े बनाए। अब आदमी ने सिंथेटिक चीजें पैदा कर ली हैं जिनसे कपड़ा बनता है। लेकिन वह उन सिंथेटिक चीजों के साथ वही व्यवहार करता है जो उसने दस-बीस हजार साल तक पहले कपास के साथ किया था। अब प्लास्टिक का कपड़ा बन सकता है, और सिंथेटिक कपड़े बन सकते हैं लेकिन पहले इस सिंथेटिक मैटीरियल से हम सूत निकालेंगे। इसके निकालने की कोई जरूरत नहीं है। कपास से सूत निकालना जरूरी था। सूत को निकाल कर फिर हम बुनते हैं, फिर दर्जी उसे काटता है, फिर कपड़ा बनाता है। यह बीस हजार साल पहले ठीक था लेकिन आज हमने वह चीजें बना ली हैं। जिनसे कपड़े सीधे ढाले जा सकते हैं। जिनको अब सूत बनाना, पागलपन है। जिनसे कपड़ा सीधा ही ढल सकते हैं और अब कपड़े को दर्जी काटे और बनाए, यह भी पागलपन है क्योंकि कमीज सीधी ही ढाली जा सकती है, कोट सीधा ही ढाला जा सकता है। कपास से हम मुक्त हो गए हैं लेकिन कपास के साथ जो व्यवहार हमने किया था वह हम किए चले जायेंगे। उसकी अब कोई जरूरत नहीं है।
हम सात साल मे बच्चों को स्कूल भेजते हैं। कोई नहीं बता सकता दुनिया में कि सात साल कैसे तय किए हैं आपने स्कूल में भेजने के लिए। कैसे तय कर लिया? कौन सा मापदंड है इसके तय करने का? सात साल में बच्चे की कौन सी मानसिक व्यवस्था है जिससे हम उसे सात साल में स्कूल भेजें। अगर हम आधुनिक खोजों का अन्वेषण करें तो बड़ी हैरानी मालूम पड़ती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहता है कि चार साल में बच्चा अपनी जिंदगी का पचास प्रतिशत सीख लेता है, फिर बाकी पचास प्रतिशत शेष उम्र में सीखेगा। तो सात साल के बच्चे को भेजना तो खतरनाक है। वह आधा तो सीख ही चुका, वह आधा प्रौढ़ तो हो ही चुका। लेकिन सात साल कैसे तय किए हैं। बड़ा आरबिट्री है, लेकिन बड़ी अजीब

बात से तय हए थे। स्कूल थे थोड़े, और बहुत दूर-दूर से बच्चों को आना पड़ता था। सात साल से कम उम्र के बच्चे भेजे नहीं जा सकते थे। इतना कारण था। लेकिन अब स्कूल बहुत पास हैं, भेजने की पूरी व्यवस्था है लेकिन सात साल के बच्चे ही भेजे जाते रहेंगे। जैसे-बच्चे की उम्र बड़ी होती है उसके सीखने की क्षमता कम होती चली जाता है। सात साल के बच्चे को स्कूल भेजना करीब-करीब ऐसे बच्चे को स्कूल भेजना है जो इतना सीख चुका कि अब नया सीखना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
वेजनर एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ था। अपने घर के सामने उसने एक तख्ती लगा रखी थी। उसमें उसने लिखा हुआ था कि जो संगीत बिल्कुल नहीं जानते उनकी फीस... और जो लोग संगीत जानते हैं वह अगर सीखने आएं तो उनकी फीस... जो संगीत जानते थे उनकी डबल फीस लिख रखी थी। जब भी कोई संगीत जानने वाला आता, वह कहता कि हम तो काफी सीख चुके हैं, तो हमसे तो कुछ कम फीस लेना चाहिए। हम आपको कम तकलीफ देंगे। वेजनर कहता है कि तुमसे ही मुझे तकलीफ पड़ेगी क्योंकि तुम जो सीख चुके हो, पहले वह भुलाना पड़ेगा। तुम्हारे साथ दोहरी झंझट है। तुम कोरी स्लेट नहीं हो, पहले तुम्हें पोंछना पड़ेगा। सात साल के बच्चे को भेजना खतरनाक है। लेकिन एक बड़ी अजीब सी बात ने तय की थी यह बात, कि सात साल से छोटे बच्चे को अकेले दूर की यात्रा पर नहीं भेजा जा सकता था। उतने दूर भेजने के लिए कम से कम सात साल का हो जाना जरूरी था। तो हम सात साल के बच्चे को भेजते रहे।
हमने अपनी जितनी नैतिकता तय की है, हमारे खयाल में नहीं है कि उसके तय करने के कारण बहुत पहले समाप्त हो चुके हैं। लेकिन नैतिकता जारी है और अगर उसमें से कुछ टूटता है तो हम बड़े बौखला जाते हैं, हम बड़े परेशान हो जाते है। हमेशा बाप को आदर था सारी दुनिया में। और नैतिक भेद हो, लेकिन पिता को सदा आदर था। उसके आदर का कारण पिता होना नहीं था। क्योंकि अगर पिता होना ही आदर का कारण हो तो आज भी मिट नहीं सकता क्योंकि पिता आज भी पिता ही है। आदर का कारण दूसरा था, वह कारण समाप्त हो गया लेकिन पिता आदर को मांगे चला जा रहा है। आदर का कारण बहुत ही अजीब था।
जीसस के मरने के साढ़े अठारह सौ वर्षों में जितना ज्ञान विकसित हुआ उतना पिछले डेढ़-सौ वर्षों में हुआ और जितना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ उतना पिछले पंद्रह वर्षों में हुआ और जितना पिछले पंद्रह वर्षों में हुआ उतना पिछले पांच वर्षों में हुआ और जितना पिछले पांच वर्षों में हुआ, आने वाले ढाई वर्षों में होगा। अठारह सौ वर्षों में जब ज्ञान इतना बढ़ता था जितना अब ढाई वर्ष में बढ़ता है तो बाप सदा बेटे से ज्ञानी होता था, अनिवार्य रूप से। अनिवार्य रूप से बाप ज्यादा जानता था, बेटा कम जानता था। अब हालत बिल्कुल उलट गई है, बदल गई है। अब बेटा बाप से ज्यादा जानता है और रोज-रोज ज्यादा जानेगा। इसलिए अब बाप को पुराना आदर दिया जाना संभव नहीं है। लेकिन आदत पुरानी है। वह जिसको हम प्रगतिशील बाप कहते हैं वह भी सोचता है कि बेटा उसे आदर दे। नहीं, आदर का कारण ज्ञान था।
पुरानी दुनिया में जितनी ज्यादा उम्र होती उतना ज्यादा ज्ञान होता था, स्वभावतः। क्योंकि अनुभव से ज्ञान मिलता था। अब बाप तीस साल पहले युनिवर्सिटी में पढ़ा था। तीस साल में दुनिया में सारा ज्ञान बदल गया है। बेटा तीस साल बाद पढ़ कर आ रहा है। बेटा ज्यादा ताजी खबर लेकर आ रहा है। बाप एक अर्थ में आउट आफ डेट है, और अब अगर बाप को सीखना है तो बेटे से पूछना चाहिए कि नया क्या है, लेकिन बाप की आदत पुरानी है। पुरानी-सदियों से उसकी आदत है, बेटे को सिखाने की। अगर अब वह जिद्द करेगा बेटे को सिखाने की और बेटा बगावत करे तो हम कहेंगे, यह बड़ी अनैतिकता है, बड़ी इम्मॉरेलिटी, बड़ी इनडिसिप्लिन पैदा हो रही है। नहीं, कोई इनडिसिप्लिन नहीं पैदा हो रहा है, कोई अनैतिकता पैदा नहीं हो रही है, सिर्फ आपकी नैतिकता समय के बाहर हो गई है। सिर्फ आपकी नैतिक व्यवस्था जिस जीवन व्यवस्था में मौजूद थी वह जीवन व्यवस्था बदल गई है और आप उसको ही थोपे चले जा रहे हों। गुरु का पैर छूता था विद्यार्थी, छूने योग्य थी बात। गुरु और विद्यार्थी के बीच इतना डिस्टेंस था, कि गुरु के पैर ही छू ले विद्यार्थी, यह भी बहुत निकट आना हो जाता था। यह भी बड़ी निकटता थी। गुरु और विद्यार्थी के बीच बड़ा फासला था।

आज युनिवर्सिटी का अगर ठीक बुद्धिमान विद्यार्थी हो तो प्रोफेसर और उसके बीच घंटे भर से ज्यादा का फासला नहीं होता। वह जो घंटे भर पहले तैयार करके आया है उतना ही फासला होता है। अब घंटे भर के फासले पर पैर छुआने की आकांक्षा खतरनाक है। यह नहीं हो सकता। और अगर विद्यार्थी बुद्धिमान है, तो शिक्षक से सदा ज्यादा जान सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गई। मीडियाकर शिक्षक और अगर प्रतिभाशाली विद्यार्थी है तो ज्यादा जान सकता है। अब इस विद्यार्थी को अगर हम पैर छूने का आग्रह करें तो हम इसको सिर तुड़वाने के लिए निमंत्रण दे रहे हैं और कुछ भी नहीं कर रहे हैं।
यह नहीं हो सकता। यह बात समाप्त हो गई है। लेकिन हमें समझने में बहुत देर लगती है। जिंदगी बदल जाती है और आदतें हमारी पुरानी बनी चली जाती हैं। हम उन्हीं को दोहराए चले जाते हैं। हम जिंदगी के बहुत से तलों पर ऑर्थोडाक्स ही होते हैं लेकिन हमें अपनी ऑर्थोडाक्सी दिखाई नहीं पड़ती। हमारी रूढ़िवादिता दिखाई नहीं पड़ती है। हो सकता है, हम मंदिर न जाते हों तो हम सोचते हों कि हम प्रगतिशील हैं। लेकिन मंदिर न जाने वाले लोग जमीन पर सदा से रहे हैं। और वेद के जमाने में भी चार्वाक था। जितना वेद पुराना है उतना ही चार्वाक भी पुराना है। अगर आप मंदिर नहीं जाते तो आप कोई प्रगतिशील नहीं हो जाएंगे। अगर एक आदमी ईश्वर को इनकार कर देता है, सोचता है, प्रगतिशील है! ईश्वर को इनकार करने वाले लोग उतने ही पुराने हैं जितने ईश्वर को स्वीकार करनेवाले लोग हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि आप बहुमत की ऑर्थोडाक्सी के पक्ष में हैं कि अल्पमत की ऑर्थोडाक्सी के पक्ष में हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है। नास्तिक हमेशा अल्पमत में रहा है। उसके पास माइनारटी रही है। लेकिन वह भी बहुत पुराना है। इसलिए कोई आदमी नास्तिक होकर समझता हो कि मैं प्रगतिशील हो गया हूं तो वह भ्रम में है। क्योंकि आस्तिकता जितनी पुरानी है नास्तिकता उतनी ही पुरानी है। दोनों ही रूढ़ियां हैं।
फिर प्रगतिशील कौन है? जो आदमी आस्तिकता और नास्तिकता दोनों से मुक्त
हो गया है, उसे मैं प्रगतिशील कहता हूं। लेकिन बड़ा मुश्किल है। आस्तिक से नास्तिक बन जाना आसान है, नास्तिक से आस्तिक बन जाना आसान है, दोनों से मुक्त हो जाना बहुत कठिन है। क्योंकि वैक्यूम में डर लगता है, खाली में डर लगता है। कुछ तो होना ही चाहिए। अगर मैं हिंदू नहीं हूं तो मुझे मुसलमान होना चाहिए। अगर मुसलमान नहीं हूं तो ईसाई होना चाहिए। अगर ईसाई, हिंदू, मुसलमान कोई नहीं हूं तो कम्युनिस्ट होना चाहिए--कुछ न कुछ मुझे होना चाहिए। ध्यान रहे, जो आदमी कुछ भी है वह ऑर्थोडाक्स होगा। प्रगतिशील आदमी कुछ भी न होने की हिम्मत का नाम है। वह इस करेज का नाम है कि वह कहता है कि मैं किसी भी लेबल के साथ नहीं हूं। सब लेबल पुराने हैं। मैं बिना लेबल के जीने की कोशिश करूंगा।
अभी एक ट्रेन में मैं सवार हुआ। एक मित्र यहां से सवार हुए, बंबई से ही। बहुत से मित्र मुझे छोड़ने आए थे। किसी ने फूलमाला पहनाई, किसी ने पैर छुए। वह मित्र खड़े-खड़े देखते रहे और हम आमतौर से सोचते हैं कि बच्चे नकल करते हैं--ऐसा नहीं है। बूढ़े भी आमतौर से नकल ही करते हैं। जब सब मित्र मेरे पैर छूकर के चले गए तो उन्होंने जल्दी साष्टांग जमीन पर छुआ, और पैर छुआ। मैंने उनसे कहाः यह पैर आप मेरे छू रहे हैं या उन लोगों के छू रहे हैं जो मेरे पैर छूकर चले गए हैं? उन्होंने कहाः उनसे क्या मतलब, मैं आपके पैर छू रहा हूं। आप महात्मा हैं। मैंने कहाः तुमने पहले पक्का पता भी नहीं लगाया कि मैं महात्मा हूं या नहीं। तुमने पैर छू लिए। अब अगर मैं महात्मा न निकला तो तुम यह वापस कैसे लोगे? उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, आप मजाक कर रहे हैं। लेकिन उनके चेहरे पर घबड़ाहट आ गई कि पता नहीं--क्योंकि ऐसा महात्मा मिलना मुश्किल है जो इनकार करता हो कि महात्मा नहीं हैं। महात्मा प्रचार करता है, महात्मा होने का। उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, आप मजाक कर रहे हैं। मैंने कहा कि महात्मा और मजाक कैसे करेगा। अगर मजाक कर रहा हूं तो इससे भी तय होता है कि मैं महात्मा नहीं हूं। उन्होंने मुझे गौर से देखा और कहा कि आप हिंदू तो हैं? उन्होंने सोचा, छोड़ो महात्मा नहीं है, जाने दें, लेकिन कहीं किसी मुसलमान के पैर तो नहीं छू लिए। मैंने कहाः

इतना तो पक्का मानो कि मैं हिंदू नहीं हूं। उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, आप कैसी बात कर रहे हैं, आप बिल्कुल देखने से हिंदू मालूम पड़ते हैं। मैंने कहाः देखने से कोई हिंदू होने का संबंध हो सकता है? देखने से क्या वास्ता है? नहीं, उन्होंने कहाः मैं नहीं मान सकता। आप बिल्कुल हिंदू मालूम पड़ते हैं। मैंने कहाः तुम अगर अपने पैर छूने की तकलीफ से बचना चाहते हो तो मान ले सकते हो कि मैं हिंदू हूं। लेकिन मैं हिंदू नहीं हूं। वह आदमी थोड़ी देर चुप बैठा रहा। उसने कहाः फिर कृपा करके बताइए, आप हैं कौन? तो मैंने कहाः मैं क्या, "मैं" ही नहीं हो सकता हूं? मुझे कोई लेबल होना ही पड़ेगा? आप कोई तो होंगे, उस आदमी ने कहा। मैंने कहाः जो मैं हूं, मैं सामने "मौजूद" हूं। लेकिन वह आदमी किसी खांचे में रखना चाहता है, क्योंकि हम खांचे में रख दें किसी को, तो वह मुर्दा हो जाता है। उसके साथ फिर आसानी हो जाती है। जिंदा आदमी के साथ कठिनाई है। अगर उसे पक्का पता चल जाए कि मैं महात्मा हूं तो रात शांति से सो सकता हूं। अगर पता लग जाए कि मैं गुंडा हूं तो रात भर शांति से नहीं सो सकेगा। अगर उसे पता चल जाए कि हिंदू हूं तो सजातीय, अपनी ही जाति का जानवर है। अगर पता चला जाए कि मुसलमान हूं तो जरा विजातीय जाति का जानवर हूं। फिर जरा सचेत रहना पड़ेगा। पता नहीं छुरा भोंक दे, पता नहीं क्या करे। तो वह आदमी मेरे साथ एट इ.ज होना चाहता है। असल में वह यह मानना चाहता है कि मैं आपके बाबत पूरी जानकारी कर लुं तो खतरा न रह जाए। अनजान से खतरा होता है। लेकिन मैंने कहा, मुझे यह पता नहीं कि रात मैं क्या करूंगा। मुझे खुद भी पता नहीं। रात अभी आई नहीं। मैं बाथरूम में गया। उस आदमी ने कंडक्टर को कहा कि मेरा सामान दूसरे कमरे में रखवा दें। जब मैं लौट कर आया तो मैंने कहा, वह आदमी कहां गया। तो उस कंडक्टर ने कहा कि वह बहुत घबड़ा गया है और दूसरे कमरे में चले गए है। सुबह मैं उनके कमरे के सामने से निकलता था तो मैंने कहा, आप भी मजाक में आ गए! उस आदमी ने वापस मेरे पैर छुए। उसने कहा मैं तो रात ही कह रहा था कि आप महात्मा हैं। मैंने कहा, अब तुम फिर गलती कर रहे हो। मैं मजाक ही कर रहा हूं!
हमें कुछ न कुछ होना ही चाहिए। यह ऑर्थोडाक्स चित्त का लक्षण है, रूढ़िग्रस्त चित्त का लक्षण है। असल में जिस आदमी ने चाहा कि मैं यह हूं, उसने भविष्य में और कुछ होने से इनकार कर दिया। वह आदमी मर गया उसी दिन जिस दिन हो गया। जिस दिन उसने कहा, मैं यह हो गया हूं उस दिन वह मर गया। अब भविष्य नहीं है उसका कोई। इसलिए अकसर ऐसा होता है कि हमारे मरने का दिन और होता है, दफनाए जाने का दिन और होता है। इसमें चालीस साल का फासला होता है। अक्सर लोग तीस साल में मर जाते हैं और सत्तर साल में दफनाए जाते हैं। दफनाए जाने की वजह से हम सोचते हैं कि सत्तर साल में मरे।
अभी हिप्पियों ने अमरीका में एक नया नारा दिया है, वह बहुत बढ़िया नारा है। उनका नारा यह है कि तीस साल के ऊपर के आदमी का भरोसा ही मत करो। बात ठीक लगती है। तीस साल के ऊपर का आदमी का भरोसा जरा मुश्किल है। क्योंकि तीस साल के ऊपर का आदमी इतना चालाक हो जाता है कि जिंदा नहीं रह सकता। तीस साल के ऊपर का आदमी इतना समझदार हो जाता है कि जिंदगी उसे खतरनाक मालूम पड़ने लगती है। वह मरना शुरू कर देता है। वह आदमी कम रह जाता है--यंत्र-व्यवस्थित, एस्टैब्लिशमेंट सेटल्ड ज्यादा हो जाता है। रूढ़िग्रस्त आदमी का मतलब यह है कि जिसके संबंध में हम कह सकते हैं, वह यह है, कम्युनिस्ट है, हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, जैन है। प्रगतिशील आदमी के संबंध में हम कुछ भी नहीं कह सकते। वह जीवन की अज्ञात धारा है। उसके बाबत कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वह क्या है। वह मरते क्षण तक कुछ होता रहेगा। वह मर नहीं गया है। वह होता ही रहेगा।
इसलिए दूसरी बात आपको याद दिलाऊं, कि ऑर्थोडाक्स आदमी हमेशा कंसिस्टेंट होता है, हमेशा संगत होता है। उसकी बातों में, उसके जीवन में एक संगति होती है। उसकी जिंदगी में एक गणित होता है, एक व्यवस्था, एक सिस्टम होती है। प्रगतिशील आदमी की जिंदगी में व्यवस्था नहीं हो सकती है। उसमें एक अराजकता होती है, एक अनारकी होती है। लेकिन ध्यान रहे, जितना जीवन होगा उतनी अराजकता होगी। और जितनी मृत्यु होगी उतनी व्यवस्था होगी। अगर हम प्रगितिशील आदमी के संबंध में एक बात कहना चाहें तो यह कह सकते हैं,

ही इज कंसिस्टेंटली इनकंसिस्टेंट। एक ही उसमे सातत्य होता है, एक ही संगती होती हैं, कि वह रोज जो उसने कल कहा था उसे गलत कर सकता है। क्योंकि वह कल समाप्त नहीं हो गया। वह आज भी जिंदा है। वह आज फिर निर्णय लेगा। वानगॉग एक दिन अपना चित्र बना रहा था और एक मित्र उससे मिलने आए हैं। उसने वानगॉग से पूछा कि तुम्हारा सबसे अच्छा चित्र कौन सा है तो वानगॉग ने कहा, जो मैं बना रहा हूं। उसके मित्र ने कहाः इसके पहले बनाए गए चित्र? उन्होंने कहाः वह वानगॉग भी मर गया, वह चित्र भी मर गया। जो मैं बना रहा हूं यह मेरा सबसे अच्छा चित्र है। क्योंकि अभी मैं भी जिंदा हूं। अभी चित्र भी जिंदा है। कंसिस्टेंट होने का मतलब यह है कि हम सदा पीछे की तरफ देख कर जीएंगे। हम अपनी जिंदगी को सदा अतीत से निर्भर करेंगे--पास्ट ओरिएनटेड होगी जिंदगी।
एक युवती कल मेरे पास आई और उसने कहा कि मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेना चाहती हूं। मैंने कहाः तुम व्रत लोगी, लेकिन कल जो तुम्हारे जीवन में आएगा उसने अगर व्रत न माना तो क्या करोगी! उसने कहा कि नहीं, मैं इसीलिए तो आपके पास कसम खाने आई हूं। आप गवाह हैं कि मैं व्रत को पालूंगी। तो मैंने कहा कि क्या तुम्हें पता है, इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि कम समझदार ज्यादा समझदार के बाबत निर्णय ले रहा है। कल चौबीस घंटे बीत चुके होंगे। चौबीस घंटे ने जिंदगी को और समृद्ध किया होगा। लेकिन तुम चौबीस घंटे पीछे के निर्णय से बंधी होओगी। वर्ष बीत जाएंगे, जिंदगी और बहुत कुछ जानेगी, जो तुमने व्रत लेते वक्त नहीं जाना था। जिस दिन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था उस दिन तुम्हारे ज्ञान से ज्यादा ज्ञान होगा दो साल बाद। लेकिन तुम्हारा व्रत बाइंडिंग होगा। दो साल वाले आदमी के लिए बाइंडिंग होगा। मैं अपने बेटे के लिए कसम नहीं खा सकता। मैं अपने भविष्य के लिए भी कैसे कसम खा सकता हूं!
प्रगतिशील व्यक्ति भविष्य के संबंध में अतीत से बंधन नहीं मानता। निश्चित ही बड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि हम अगर एक व्यवस्था में जीते हों तो समाज हमारे बाबत निश्चिंत हो सकता है कि यह आदमी क्या करेगा और क्या नहीं करेगा! क्या है, क्या नहीं है! इसलिए समाज सदा ही आर्थोडाक्सी को पंसद करता है। समाज प्रगतिशील व्यक्ति को पंसद नहीं करता। और बड़े मजे की बात है कि दुनिया को, समाज को जो भी श्रेष्ठ दिया है वह प्रगतिशील लोगों ने दिया है। जिंदगी में जो भी समृद्धि आई है, ज्ञान आया है, सुख आया है वह प्रगतिशील लोगों ने दिया है। लेकिन समाज प्रगतिशील लोगों को सूली देने के सिवाय और कुछ देना नहीं जानता। उसका प्रत्युत्तर सिर्फ सूली का है। क्योंकि समाज के लिए खतरा है। समाज चाहता है कंसिस्टेंसी, समाज चाहता है, जो कह रहा है, कल उसे जिंदगी भर पूरा करना। समाज चाहता है कि बच्चा पैदा हो और मरने तक की कसम खाले और मरने तक वही हो जो बचपन में पैदा होकर उसने शुरू किया... यह असंभव है। यह जिंदगी के खिलाफ है और इसीलिए हम सब मिल कर बच्चों को मारने में लग जाते हैं।
हम जिसे संस्कार कहते हैं, शिक्षा कहते हैं वह सबका सब बच्चों को मारने की चेष्टा है। इसके पहले कि बच्चों की जिंदगी प्रकट हो, हम उसको मार कर सब तरफ से खत्म कर देंगे। और एक मुर्दा आदमी बना देंगे जो जिंदगी भर कंसिस्टेंट होगा। खाई हुई अतीत की कसमों के साथ दिए गए अतीत के वचनों के साथ, लिए गए सिद्धांतों के साथ सदा ही संगत होगा। यह आदमी नहीं है, यह मशीन है। लेकिन मशीन कुशल होती है, मशीन एफिशिएंट होती है, क्योंकि मशीन वही करती है जो करती है--जो सदा उसने किया है। आदमी उतना कुशल नहीं होता। क्योंकि आदमी मशीन नहीं है। वह कुछ भूलें भी करता है, वह कुछ नया भी करता है, वह रास्ते से भी उतरता है।
प्रगतिशील आदमी वह है, जो अपने भविष्य के लिए परतंत्र नहीं बनाता। रूढ़िग्रस्त आदमी वह है, जो अतीत को अपनी मालकियत दे देता है। अतीत के हाथ अपने को बेच डालता है। जो अतीत के लिए गुलाम हो जाता है। अगर आप किसी भी तरह से अतीत के गुलाम हैं तो आप प्रोग्रेसिव नहीं हो सकते। और ध्यान रहे, ऐसा नहीं हैं कि आप एक चीज में प्रगतिशील हो सकते हैं और दूसरी चीज में प्रगतिशील न हों, ऐसा नहीं होता। यह असंभव है।

यह तीसरी बात भी मैं आपसे कहना चाहता हूं। जो आदमी प्रगतिशील है, क्योंकि प्रगतिशील होना वन-डाइमेंशनल नहीं है, प्रगतिशील होना मल्टी- डाइमेंशनल है। प्रगतिशील होना कोई एक अप्रोच नहीं है। प्रगतिशील होना एक व्यक्तित्व हैं। प्रगतिशील होना कोई एक पैटर्न और ढांचा नहीं है, प्रगतिशील होना जिंदगी का एक ढंग है। जिंदगी के एक ढंग का मतलब? जिंदगी के ढंग का मतलब यह है कि जो आदमी प्रगतिशील है वह सारी चीजों में ही प्रगतिशील होगा। वह सारी चीजों में ही नॉन-कनफर्मिस्ट होगा। वह जिंदगी के सारे रुखों के संबंध में कनफर्मिज्म, रूढ़ि, बंधन, गुलामी को नहीं मानेगा-- नहीं मान सकेगा। लेकिन इसका क्या मतलब है? क्या इसका मतलब है, वह दिन-रात रूढ़ियों से लड़ता रहेगा! क्या इसका यह मतलब है कि वह दिन-रात रूढ़ियों की प्रतिक्रिया में बगावत करता रहेगा? क्या इसका यह मतलब है कि वह अपनी जिंदगी को रूढ़ियों से लड़ने में लगा देगा? नहीं, यह मतलब नहीं है। इसलिए प्रगतिशील जरूरी नहीं है कि रिएक्शनरी हो, जरूरी नहीं है, प्रतिक्रिया वादी हो!
सच तो यह है कि जो आदमी चौबीस घंटे जिंदगी में रूढ़ियों से लड़ता है वह प्रगतिशील नहीं हो पाता। वह सिर्फ विपरीत रूढ़िवादी हो जाता है। आप जिस रूढ़ि से चौबीस घंटे लड़ेंगे, ध्यान रखें, जाने-अनजाने आप उससे विपरीत रूढ़ि में ग्रस्त हो जाएंगे। असल में जिससे हम लड़ते हैं धीरे-धीरे हम उसी जैसे हो जाते हैं। मित्र तो कोई बिना समझे चुन ले तो हर्जा नहीं है, शत्रु बहुत समझ कर चुनना चाहिए। क्योंकि शत्रु से लड़ने में हमें शत्रु जैसा ही हो जाना पड़ता है। कम्युनिज्म धर्म के खिलाफ लड़ाई शुरू किया और आज कम्युनिज्म एक धर्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कम्युनिज्म ने मक्का-मदीना के खिलाफ लड़ाई शुरू की और आज मास्को और पेकिंग मक्का-मदीना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कम्युनिज्म ने ईश्वर के खिलाफ लड़ाई शुरू की और लेनिन और मार्क्स को, और स्टैलिन को ईश्वर बना कर छोड़ा! यह बड़े मजे की बात है। यह बहुत हैरानी की बात है कि अगर कोई आदमी अपनी चौबीस घंटे की जिंदगी को रूढ़ियों से लड़ने में लगा दे तो वह नई तरह की रूढ़ियां पैदा करनेवाला हो जाता है। और कुछ भी नहीं होता है। यह पूरे इतिहास की कहानी है।
बुद्ध ने लोगों से कहा हैं कि मूर्ति मत पूजना। बुद्ध की जितनी मूर्तियां है जमीन पर उतनी किसी आदमी की नहीं हैं। जितने मंदिर बुद्ध के हैं उतने किसी आदमी के नहीं हैं। सारी जमीन पर पचास हजार विराट मंदिर बुद्ध केलिए समर्पित हैं। और एक-एक मंदिर ऐसा है चीन में जिसमें दस-दस हजार बुद्ध की मूतियां हैं। कोइ का मंदिर नहीं है ऐसा जिसमें दस हजार मूर्तियां हों। और बुद्ध जिंदगी भर लड़े लेकिन अगर कोई मूर्ति के खिलाफ लड़ेगा तो जाने-अनजाने वह मूर्ति के संबंध में कुछ खयाल पैदा करवा देगा। मूर्ति के खिलफ लड़ने वाला आदमी कब मूर्ति बनवाने का कारण बन जाएगा, कहना कठिन है--बन जाएगा।
महावीर हिंदुस्तान में वर्णाश्रम के खिलाफ लड़े और महावीर के अनुयायियों ने लड़ाई छेड़ी कि कोई वर्ण नहीं होने चाहिए। लेकिन आज एक बड़े मजे की बात है, हिंदू मंदिर में शूद्र अगर प्रवेश करे तो जैन कहते हैं, कर सकता है। लेकिन जैन मंदिर में नहीं कर सकता, क्योंकि वह हिंदू है। जैन मंदिर में प्रवेश का सवाल ही नहीं है। वह जैन है ही नहीं। महावीर की लड़ाई यह थी कि वर्ण न रह जाए और आज जैन अदालतों में जाकर लड़ाई करते हैं कि, हमारे मंदिर में शूद्र प्रवेश नहीं कर सकता। क्योंकि हम जैन हैं। हिंदू मंदिर में प्रवेश करे, उसके लिए आप कानून बना सकते हैं। क्योंकि वह हिंदू है। और हिंदू मंदिर में प्रवेश का अधिकारी है। लेकिन कोई इनसे पूछे कि महावीर की लड़ाई क्या थी? महावीर की लड़ाई यह थी कि वर्ण मिट जाए और वर्णहीन समाज बने। लेकिन जैन जितना वर्णवादी है उतना हिंदू भी नहीं है। हां, एक बड़े मजे की बात है, हिंदू शूद्र को शूद्र कहता है, लेकिन कम से कम अपने समाज के भीतर स्वीकार करता है। जैन ने बड़ी तरकीब निकाली। उसने शूद्र को स्वीकार भी नहीं किया। वह एक वर्ण का ही रह गया। वह वैश्य ही रह गया। इसके भीतर दूसरे वर्णों को उसने प्रवेश ही नहीं करने दिया। एक ही वर्ण रह गया वह, उसमें न

क्षत्रिय रह गया, उसमें न ब्राह्मण रह गया, न उसमें शूद्र रह गया। वह सिर्फ वैश्य रह गया।
अगर हम इस बात को गौर से देखें कि जीसस को सूली लगी और जीसस को सूली जिन यहूदियों ने लगाई उन यहूदियों के खिलाफ ईसाई कितने यहूदियों को सूली लगाए हैं, उसका हिसाब लगाना मुश्किल हैं। एक जीसस को लगाई गई सूली करोड़ों यहूदियों को लगाई गई सूली में बदली, यह बड़े मजे की बात है। लेकिन ईसाई इसीलिए यहूदियों को सूली पर चढ़ा रहा हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि जीसस को सूली लगाई, यह बुरा किया। जीसस को सूली लगाना बुरा था। लेकिन ईसाई को पता होना चाहिए कि जीसस यहूदी बेटा था। यहूदी आदमी था। यहूदी ही पैदा हुआ, यहूदी ही मरा। एक यहूदी को जो सूली लगाई गई थी वही दूसरे यहूदियों को ईसाई सारी दुनिया में सूली लगा रहे हैं। जीसस यहूदी था, ईसाई नहीं था--होने का उपाय भी नहीं था। लेकिन करोड़ों यहूदियों को सूली पर लटकाया गया है। क्योंकि वह जीसस का बदला लिया जा रहा है! बदला किस बात का लिया जा रहा है? जीसस को सूली लगाई, यह गलत काम था। तो तुम करोड़ों को सूली लगा कर गलत काम को मिटा रहे हों? असल में गलत काम के खिलाफ जो लड़ना शुरू करता है, कब गलत हो जाता है, पता लगाना मुश्किल है।
इसलिए प्रगतिशील का मतलब यह नहीं है कि वह रूढ़िवाद का विरोधी है। प्रगतिशील का मतलब यह है कि वह रूढ़िवाद का विरोधी नहीं है। रूढ़िवाद व्यर्थ है, ऐसा जानता है। विरोधी नहीं है। विरोधी तो सार्थकता देता है। विरोधी तो कहता है, बड़ी सार्थक बात है। एक मुसलमान है। वह कहता है कि हम मूर्ति तोड़ कर रहेंगे। क्योंकि किसी मूर्ति में भगवान नहीं है। अब बड़े मजे की बात है, जिसमें भगवान नहीं है उसको तोड़ने से भी क्या फायदा होगा। एक आदमी कहता है, मूर्ति में भगवान है। हमे पूजा करेंगे। यह भी मूर्ति
के साथ कुछ करता है, पूजा करता है। दूसरा आदमी कहता है, मूर्ति में भगवान नहीं है। हम इसे तोड़ कर रहेंगे। यह भी मूर्ति के साथ कुछ करता है। ये दोनों ही मूर्ति पर केंद्रित हैं। ये दोनों ही मूर्ति के साथ कुछ कर रहे हैं। पूजा करने वाला पूजा कर रहा है, तोड़ने वाला तोड़ रहा है। जिनको हम मूर्तिभजंक कहते हैं वे भी मूर्ति की तलाश करते फिरते हैं। मूर्ति कहां है, उसे तोड़ें। लेकिन मूर्ति उनके दिमाग में भी घूम रही है। ध्यान रहे, सारी दुनिया के मूर्ति-पूजक मूर्ति को जितना महत्व देते हैं उससे ज्यादा महत्व मुसलमानों ने दिया है। महत्व मिल ही जाएगा। अगर मूर्ति से लड़ना शुरू किया तो महत्व मिल जाएगा। नहीं, प्रगतिशील रूढ़ि-विरोधी नहीं है। प्रगतिशील इतना ही कर रहा है कि रूढ़ि व्यर्थ है, इररिलेवेंट है, असंगत है, जीवन से उसका कोई संबंध नहीं है। हम उससे लड़ते नहीं जाते। हम जीवन आगे हैं, उसमें बढ़ते हैं।
प्रगतिशील जीवन जो आगे है, उसमें बढ़ता है। रूढ़ि-विरोधी, रूढ़ि जो पीछे है, उससे लड़ता है। और ध्यान रहे, चाहे रूढ़ि की पूजा करना हो, तो भी पीछे देखना पड़ता है; चाहे रूढ़ि से लड़ना हो, तो भी पीछे देखना पड़ता है। पीछे देखने वाला आदमी प्रगतिशील नहीं है। प्रगतिशील वह है जो आगे देखता है। जो कहता है, यह जो रियर व्यू मिरर लगा होता है गाड़ी में, पीछे की तरफ देखने का, यह वक्त-बेवक्त के लिए है, यह चौबीस घंटा देख कर गाड़ी चलाने के लिए नहीं हैं। गाड़ी आगे देख कर चलानी पड़ती है, पीछे के देखने के लिए जो आईना लगा है वह कभी-कभी जरूरी होता है, वह चौबीस घंटे देखने के लिए नहीं है। लेकिन रूढ़िवादी और रूढ़िविरोधी दोनों, वह जो रेयर व्यू मिरर है, उसी में देखते रहते हैं। हां एक कहता है पीछे को पूजेंगे, और एक कहता है कि पीछे से लड़ेंगे। आगे देखने से बच जाते हैं। इसलिए रूढ़िविरोधी को मैं प्रगतिशील नहीं कहता हूं।
प्रगतिशील होना और बड़ी घटना है। प्रगतिशील होने का अर्थ यह है कि हम पीछे को असंगत मानते हैं। हम पीछे को इररिलेवेंट मानते हैं। हम मानते हैं, जो हो चुका, वह हो चुका, आगे जाना है। इसलिए प्रगतिशीलता फ्यूचर ओरिएंटेशन मैं है, भविष्य में हैं। लेकिन भविष्य के प्रति हमारा खयाल बड़ी कठिन बात है। क्योंकि विचार करना आसान है उसके संबंध में जो हो चुका, जो नहीं हुआ है उसके संबंध में विचार करना बहुत मुश्किल है क्योंकि उसके लिए हमारे पास

कोई आधार नहीं होते। अब जैसे उदाहरण के लिए--सारी दुनिया में जनसंख्या बढ़ रही है। इस सदी के पूरे होते-होते जमीन पे इतनी संख्या होगी कि जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा और अगली सदी के पूरे होते-होते जिंदा रहने की बात ही गलत है, खड़े होना ही मुश्किल हो जाएगा। इक्कीसवीं सदी के पूरे होते-होते एक आदमी के पास एक वर्गफुट जमीन बचेगी--चाहे रहें, चाहे सोएं। फिर सभाएं करने की जरूरत नहीं होगी, जहां होंगे सभा में ही होंगे। बस जिसके पास तख्त होगा वह अपने तख्त पर खड़ा हो जाएगा। पूरी दुनिया हाइड पार्क हो जाएगी। खड़ा हो गया अपने साबुन के डिब्बे पर और बोलना शुरू कर देगा।
यह संख्या बढ़ रही है, लेकिन क्या किया जाए? रूढ़िवादी उसे हम कहेंगे, जो कहता हैः भगवान देता है, भगवान समझेगा, वह जाने! लेकिन यह रूढ़िवादी भी पूरा रूढ़िवादी होता तो ठीक था। लेकिन जब कोई बीमार पड़ता है तो यह अस्पताल पहुंच जाता है। तब वह यह नहीं कहता है कि कैंसर भगवान ने दिया है, भगवान समझे! नहीं, इलाज आदमी से करवाता है और जब आदमी को पैदा करने से रोकने की बात हो तब भगवान का नाम लेता है। यह बेईमान है, यह सिर्फ रूढ़िवादी नहींहैं, बेइमान रूढ़िवादी हैं। सिर्फ आनेस्ट टे्रिडशनलिस्ट आदमी भी समझ में आता है कम से कम उसकी आनेस्टी तो समझ में आती है। कि वह कहता है कि हम बीमारी का इलाज करवाएंगे, क्योंकि भगवान ने बीमारी दी है। लेकिन यह आदमी इलाज करवाते वक्त आदमी के पास जाता है। दस बच्चों में नौ बच्चे मरते थे अतीत में, अब दस बच्चे में एक बच्चा मरता है, नौ बच जाते हैं। ये बच्चे बचाने के लिए तो पहुंच जाता है आदमी के ज्ञान के--विज्ञान के पास, लेकिन जब बच्चे को रोकना हो तो कहते हैं भगवान की बात है।
लेकिन जिसको हम प्रगतिशील कहें, वह क्या कर रहा हैं? प्रगतिशील भी जो सुझाव देता है कि कैसे रोकें कि सुझाव, बहुत प्रगतिशील नहीं है, बहुत भविष्यगामी नहीं है। वह भी जो सुझाव देता है बहुत भविष्यगामी नहीं हैं। उसको भी एक ही सुझाव दिखाई पड़ता है कि किसी तरह से मृत्यु-दर को रोक दो, बर्थ-कंट्रोल कर लो। बस! लेकिन अगर दुनिया के सारे डाक्टर, सारी नर्सें, वे सारे लोग जो आपरेशन कर सकते हैं और बर्थ कंट्रोल ला सकते हैं, सारे लोग चौबीस घंटे लगा दिए जाएं काम में तो भी डेढ़ सौ वर्ष लगेंगे, जब संख्या जगह पर आ जाए! डेढ़ सौ वर्ष--आदमी बचेगा? इसलिए जो प्रगतिशील कह रहा है कि बस बर्थ-कंट्रोल हो जाए तो सब ठीक हो जाएगा। उसे पता नहीं कि वह चम्मच से सागर को खाली करने की बात कर रहा है। अगर सारे एक्सपर्ट, अगर सारी दुनिया के भी इकट्ठे... चौबीस घंटे काम में लग जाएं और एक मिनट विश्राम न करें तो डेढ़ सौ वर्ष लग जाएगा, तब कहीं हम दुनिया की संख्या दुनिया के भोजन के अनुपात में ला पाएंगे। इसलिए बेमानी है बात। इससे कुछ होने वाला नहीं है। रूढ़िवादी भगवान पर छोड़ रहा है, वह एक्सपर्ट पर छोड़ रहा है, बाकि दोनों छोड़ रहे हैं। जिंदगी का मतलब बहुत बड़ा है और उसके लिए हम अतीत के ही तरफ देखते हैं। एक देखता है कि भगवान ने सदा सहारा दिया था। महामारी भेज दी थी, अकाल भेज दिया था, बाढ़ भेज दी थी। अब हमने उन सबको रोकने के इंतजाम कर लिए हैं और भगवान के हाथ काट दिए। दूसरा आदमी देख रहा है कि जन्म-दर बढ़ गई है, मृत्यु-दर कम हो गई है तो जन्म-दर कम कर दो। यह भी पीछे की तरफ ही से देखना है, यह भी भविष्योन्मुख देखना नहीं है। भविष्योन्मुख देखने के क्या मतलब होंगे? जैसे उदाहरण के लिए मैं दो तीन बातें कहूंः
पहली बातः जमीन आदमी के लिए कम पड़ गई है, तो हम समुद्र पर रहने का विचार क्यों न करें! एक प्रगतिशील विचारक बकमिलर ने समुद्र पर मकान बनाने की योजना दी, लेकिन कोई सुनने को राजी नहीं था। लोग उसको पागल कहते थे। अभी पागल कहेंगे, जब तक कि पूरी जमीन पागल न हो जाए। उसने जो योजना दी है, वह सीमेंट-कांक्रीट के मकानों की है, और एक बड़े मकान में एक लाख आदमी रह सकें, इतनी बड़ी योजना है। और सीमेंट-कांक्रीट का इतना बड़ा मकान पानी पर तैराया जा सकता है। उसके भीतर का जो हवा का वॉल्युम होगा उसी की वजह से वह डूबेगा नहीं। उसको डूबने से बचने के लिए और कोई इंतजाम करने की जरूरत नहीं है। वह चारों तरफ से बंद होगा, बस उसके भीतर का हवा का वॉल्युम ही उसे नहीं डुबाएगा, लेकिन उसकी कोई मानने को तैयार नहीं। वह दस साल से चिल्ला रहा है

कि समुद्र पर रहने का इंतजाम करो, लेकिन उसकी कोई खयाल में हमारे बात नहीं आएगी।
और दूसरी बातः एक दूसरा वैज्ञानिक कह रहा है कि जमीन के भीतर अंडरग्राउंड रहने की व्यवस्था करो। जमीन से हट जाओ नीचे। अगर आदमी जमीन से नीचे हट जाए, जो कि कठिन नहीं है, अंडरग्राउंड रहा जा सकता है। अब हमारे पास सारी सुविधाएं हैं, हम जमीन के नीचे जा सकते हैं तो पूरी जमीन पैदावार के लिए मुक्त हो जाए। लेकिन वह हमारे खयाल में नहीं आएगा। सच यह है कि आदमी को पानी पे भी हटना पड़ेगा और पानी पर भी ज्यादा दिन काम नहीं चलेगा। जमीन के नीचे ही हटना पड़ेगा। जमीन के नीचे बहुत गुंजाइश है। जितने मंजिल मकान हम जमीन के ऊपर उठा रहे हैं उससे ज्यादा गहरे मंजिल मकान हम जमीन के नीचे ले जा सकते हैं। लेकिन किसी प्रगतिशील मस्तिष्क को हिम्मत करनी पडेगी भविष्य को देखने की। सारी दुनिया में हम फिकर करते हैं, ज्यादा उत्पादन करो, ज्यादा जमीन से पैदावार करो, लेकिन जमीन थक गई है और बूढ़ी हो गई है। और आदमी ने उसका बहुत शोषण कर लिया है। हम सब उपाय करके भी बहुत कुछ न कर पाएंगे। और कितने ही सिंथेटिक खाद हम डाले और कितना ही हम कुछ करें, ये सब उपाय पुराने हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पहले हम गोबर डालते थे। वह पुराने दिनों का खाद था और हम फैक्ट्री बना कर फर्टिलाइजर डालते हैं। वह नये ढंग का खाद है। लेकिन खाद को ही हम दस हजार साल, बीस हजार साल से डाल रहे हैं।
नहीं, हमें बहुत जल्दी खयाल कर लेना चाहिए कि अब पृथ्वी उतना भोजन पैदा नहीं कर सकेगी। हमें सिंथेटिक फूड पर सरक जाना चाहिए। असल में रोटी खाने की आदत हमें छोड़ देनी चाहिए। गोली खाने की आदत पर आ जाना चाहिए। क्यों? ऐसे भी मैं मानता हूं कि ज्यादा स्वास्थ्यकर होगा, ज्यादा हितकर होगा, ज्यादा आनंदपूर्ण होगा। क्योंकि पुराना ढंग बहुत ही कनवेनशनल, बहुत ही नासमझी से भरा हुआ है। सेर भर खाना खाइए फिर थोड़ा सा पचता है फिर बाकी को निकालने की मेहनत करनी है। वह बिल्कुल बेमानी है। इतना ज्यादा भोजन शरीर में फेंक कर फिर उसको बाहर निकालना पड़ता है। आपके शरीर की जिंदगी भीतर डालने और बाहर निकालने में खत्म होती है। भीतर डाल कर उसको पचाने के लिए आठ घंटे की नींद जरूरी हो जाती है। आदमी साठ साल जिंदा रहता है तो बीस साल सोने में खराब हो जाता है और वह बीस साल सोना जरूरी होता है। क्योंकि उसके खाने का जो ढंग है, वह बहुत ही पुराना है। उसके लिए उसे इतनी देर सोना ही पड़ता है, नहीं तो पचा नहीं सकता। फिर इस पचाने में बड़े मजे की बात है कि बहुत थोड़ा सा उसके काम आता है बाकी बेकार बाहर फेंकना पड़ता है।
अब हम उस स्थिति में आ गए हैं कि जितना काम आता है उतना ही क्यों न लें। शरीर पर ईतनी जोखम डालने की कोइ जरूरत नहीं है। सिंथेटिक फूड आदमी की उम्र करीब-करीब दुगुनी कर देगा। क्योंकि आदमी की आधी ताकत खाना पचाने और शरीर से खाना फेंकने में बाहर होती है। जिस दिन से सिंथेटिक फूड होगा, डेढ़ सौ साल औसत उम्र हो सकती है। और डेढ़ सौ साल में सोने के लिए हमें बहुत कम समय देने की जरूरत रह जाएगी। ध्यान रहे, जानवर को आदमी से ज्यादा सोना पड़ता है। इसलिए जानवर उतना विकसित नहीं हो पाया। बच्चे को मां के पेट में चौबीस घंटे सोना पड़ता है। फिर पेट से निकल कर बाईस घंटे सोना पड़ता है। कभी आपने खयाल किया है कि बच्चा जैसे-जैसे विकसित होता है उसकी नींद
कम होती चली जाती है। किसी न किसी दिन मनुष्यता को वह घड़ी पैदा करनी पड़ेगी जब नींद बेमानी हो जाए--हो सकती है। आज वह जगह आ गई है, लेकिन भविष्य की तरफ हमारा खयाल हो तब। हम सोच ही नहीं पाते, हम सदा पीछे की तरफ सोचते चले जाते हैं। अगर आज हम दस हजार साल पीछे लौटें तो जो बातें हमारे दिमाग में बैठी थीं वे आज भी बैठी हुई हैं। असल में दिमाग हमारे पास कलेक्टिव होता है। अतीत से मिला हुआ होता है। पीछे से हमारे पास आता है। हम उसको पकड़ कर जीते रहते हैं। वही हम सोचते चले जाते हैं। हमारे खाने का एक कनवेंशनल ढंग है। दिन में तीन बार हमें खाना है, तीन बार शरीर में डालना है। पर बिना इस बात के खयाल किए कि न तो अब भोजन रहा तीन बार डालने के लायक, न जमीन है तीन बार डालने के लायक, न जरूरत है तीन बार डालने की, न आवश्यकता है कि आदमी इतना समय खाने में, इतना समय पचाने में व्यय करे। लेकिन नेता चिल्लाए चले

जाएंगे कि ज्यादा खेती-बाड़ी करो, ज्यादा उपजाओ, खाद का उपयोग करो। ये करो, वह करो, वह चिल्लाएं चले जाता हैं।
पुराने दिनों में आदमी जब गरीब था तो हमने कुछ सिद्धांत विकसित किए थे। वह हम अभी भी चिल्लाए जा रहे हैं। अमरीका में भी ऐसे विचारक हैं जो उन्हीं सिद्धांतों को कहे जा रहे हैं जो गरीब दुनिया में विकसित हुए थे। एफ्लुएंट सोसाइटी के लिए खतरनाक हैं। गरीब दुनिया में एक सिद्धांत था कि श्रम करना बहुत बड़ी कीमत की बात है। अब अमरीका में बड़ी दिक्कत हो रही है। अभी भी स्कूल में सिखाए चले जा रहे हैं कि श्रम बहुत कीमत की बात है जब कि अमरीका का जो विचारशील प्रगतिशील आदमी है, वह कह रहा है कि स्कूल में ये बातें मत समझाओ कि श्रम करना बहुत जरूरी है, क्योंकि बीस साल में सारा श्रम मशीन करेगी और आदमी श्रम की मांग करेगा तो हम श्रम कहां से देंगे! बीस साल बाद अमरीका में श्रम की मांग पूरी करनी असंभव हो जाएगी। क्योंकि श्रम आदमी पर नहीं छोड़ा जा सकता है, श्रम तो मशीन कर देगी, लेकिन हजारों साल की शिक्षा है कि श्रम भगवान है, श्रम देवता है, श्रम करना बड़े गुण की बात है! और जो आदमी बेकार है वह बहुत बुरा आदमी है। यह बदलनी पड़ेगी आपको।
आने वाले बीस साल के बाद आपको हर किताब में लिखना पड़ेगा कि जो आदमी बेकार रहने को राजी है वह बड़ा कृपालु है। बडा दयावान हैं। क्योंकि जो आदमी पुराने ढंग से कहेगा कि मुझे काम ही चाहिए वह बड़ी मुश्किल पैदा करेगा। वह एंटी-सोशल होगा। जैसे पुराना आदमी एंटी-सोशल था। जो कहता था, मैं काम नहीं करूंगा लेकिन खाना चाहिए। हम उसको कहते थे, यह आदमी समाज विरोधी है, समाज का दुश्मन है, काम नहीं करता है और खाना मांगता है। कपड़े मांगता है। इसको खाना, कपड़ा नहीं दिया जा सकता। बीस साल बाद जो आदमी कहेगा, मुझे काम चाहिए, उसको हम काम नहीं दे सकेंगे। हम कहेंगे, यह आदमी एंटी-सोशल है। क्योंकि यह आदमी जो काम करेगा, उससे हजार, लाख करोड़ गुना अच्छा काम मशीन कर देंगी। इस आदमी को हम काम कैसे दे सकते हैं! इसलिए बीस साल बाद भविष्य में जो आदमी काम भी मांगेगा और तनख्वाह भी मांगेगा उसे दोनो चीजें नहीं मिलेंगी। अगर काम चाहिए तो तनख्वाह कम मिलेगी और अगर बेकार रहने को राजी हो तो तनख्वाह ज्यादा मिलेगी। तनख्वाह तो देनी ही पड़ेगी। क्योंकि अगर तनख्वाह नहीं देंगे आप तो लोग खरीदेंगे कैसे! तनख्वाह तो देनी ही पडेगी। आप आटोमेटिक मशीनों से चीजें पैदा कर ले लेकिन बाजार में खरीदेगा कौन! खरीदने के लिए लोगों को तनख्वाह देनी पड़ेगी। और जितनी अच्छी चीजें आप पैदा करेंगे उतनी अच्छी तनख्वाह देनी पड़ेगी। जो आदमी बेकार होने को राजी होगा--मछली मार सकेगा, ताश खेल सकेगा--शतरंज खेल सकेगा--कविता कर सकेगा, वह आदमी बड़ा ही समाजमान्य नैतिक पुरुष हो जाएगा। लेकिन हमारी लाखों साल की बिल्ट-इन, दिमाग में जो व्यवस्था है, वह यही कहती है कि श्रम बहुत ऊंची चीज है।
श्रम बहुत ऊंची चीज नहीं है। श्रम को बहुत ऊंची चीज हमने कहा था किसी मजबूरी में। क्योंकि श्रम के बिना जीना असंभव था। अब हम श्रम के बिना जी सकते हैं। अब श्रम बहुत ऊंची चीज नहीं है। और जो अकबर को, औरंगजेब को, नेपोलियन को, अशोक को, बुद्ध को, महावीर को घर में जों विलास मिल सका था वह अब हर एक को मिल सकता है। और ध्यान रहे, दुनिया में सारी संस्कृति का विकास लक्.जरी में होता है, श्रम में नहीं होता। दुनिया की सारी डिस्कवरी, दुनिया का सारा संगीत, सारा विज्ञान, सारा काव्य, सारे महाकाव्य--यह कालिदास जमीन खोद कर महाकाव्य पैदा नहीं करत हैं। यह राजा भोज के दरबार में काव्य पैदा होता है। यह तानसेन गिट्ठी तोड़ कर संगीत पैदा नहीं करता है, यह अकबर के दरबार में संगीत पैदा होता है। अब मनुष्य उस स्थान के करीब आ रहा है जहां प्रत्येक आदमी को तानसेन होने का और कालिदास होने की सुविधा होगी। आप न हों, वह आपके पुराने दिमाग की मजबूरी होगी। आप कहें कि हम तो गिट्ठी फोड़ेंगे, क्योंकि रवींद्रनाथ की कविता में लिखा है कि जो गिट्टी फोड़ता है वह भगवान है--वह नहीं चलेगा। रवींद्रनाथ लौटेंगे तो कविता बदलनी पड़ेगी। क्योंकि गिट्टी फोड़ने वाला सिर्फ पागल होगा--भविष्य में भगवान नहीं हो सकता।

लेकिन कुछ लोग ऑब्सेस्ड होंगे। वे कहेंगे, हमें काम चाहिए ही। क्योंकि बिना काम के हम कैसे जी सकते हैं! अभी भी जो आदमी रिटायर्ड हो जाता है वह मुश्किल में पड़ जाता है। इसलिए कोई रिटायर्ड नहीं होना चाहता।
अब हमें इस बात का पता नहीं है कि आज से कोई दस हजार साल पहले कि जितनी
भी लाशें मिली हैं उसमें पच्चीस साल से ज्यादा की उम्र की लाशें नहीं मिली हैं। मतलब यह हुआ कि पच्चीस साल का आदमी बूढ़ा से बूढ़ा आदमी रहा होगा। आज रूस में कोई एक हजार आदमी डेढ़ सौ साल को पार कर गए हैं। सारी दुनिया में कई मुल्कों की औसत उम्र अस्सी साल के करीब है या ऊपर पहुंच गई है। अब बूढ़े बढ़ते जा रहे हैं। अब बूढ़ों को रिटायर करना पड़ेगा। वे रिटायर होना नहीं चाहते। वह चाहे चपरासी हो या राष्ट्रपति हो--इससे कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। वे रिटायर नहीं होना चाहते, वे कहते हैं कि हममें अभी पूरी ताकत है। हम दौड़ सकते हैं। आप दौड़ सकते हैं, आपकी बड़ी कृपा है। लेकिन आप खाली दौड़ें, राष्ट्रपति होकर न दौड़ें। आपको दौड़ने के लिए हम मना नहीं करते और अगर आपने जिद्द रखी कि हम राष्ट्रपति रह कर ही दौड़ेंगे तो फिर बच्चों के मन में आपके प्रति अनादर होता चला जाए, बगावत फैलती जाए तो कुछ हैरानी न होगी। क्योंकि बच्चों को बूढ़ों से कभी भी संघर्ष नहीं करना पड़ा--पुराने समाज में। इसके कारण थे। एक तो पुराने समाज का काम ऐसा था कि बाप को अनिवार्य रूप से बेटे को सौंपना पड़ता था। किसान का काम था, बैल जोतने थे, लकड़ी काटनी थी, पत्थर तोड़ना था, जमीन गोड़नी थी, ताकत की जरूरत थी। बाप जैसे ही बूढ़ा हो जाता, जवान बेटे को उसको अपने आप काम सौंपना पड़ता था। जवान बेटा अपने आप मालिक हो जाता था। बाप अपने आप हटता जाता था। आज हालत बदल गई है। आज बाप चाहे तो बिल्कुल न हटे। क्योंकि आज कोई श्रम का काम नहीं है। लेकिन बेटा प्रतीक्षा करता है कि आप कब हटोगे। मैं खुद भी बाप हुआ जा रहा हूं। कहीं ऐसा न हो कि मैं बीच में ही समाप्त हो जाऊं। और दूसरी पीढ़ी आगे आ गई। तो बेटे चिंतित हो गए हैं।
कभी आपने खयाल किया कि गरीबों के बेटों का बापों से कभी झगड़ा नहीं हुआ। लेकिन सम्राटों के बेटों का झगड़ा सदा हुआ। सम्राटों के बेटे कोई बुरे बेटे नहीं थे। वही बेटे थे जो गरीब के बेटे थे। लेकिन गरीब के बेटे को बाप का काम अपने आप मिल जाता था। सम्राट अपने आप काम नहीं छोड़ता था। वह काम ऐसा था कि सम्राट छोड़ना नहीं चाहता था और वह काम ऐसा था कि उसके लिए कोई जवान और ताकत की जरूरत न थी। बेटों को छीनना पड़ता था। औरंगजेब बुरा बेटा नहीं था। अगर औरंगजेब गरीब का बेटा होता तो कोई कठिनाई ना आती। बाप को कैद न करना पड़ता। क्योंकि बाप खुद ही कहता कि बेटा अब तुम जवान हो गए हो, अब जुतों। अब तुम बैल की जगह काम करो। लेकिन औरंगजेब का बाप राजा था, वह हटना नहीं चाहेगा। आज करीब-करीब दुनिया के बाप उस हालत में आ गए हैं जहां कि उन्हें बेटों को काम बिना दिए चल सकता है। इसलिए सारी दुनिया में बाप और बेटे के बीच में क्लास स्ट्रगल पैदा हो गई है। जो कभी भी नहीं थी। इसे ठीक से समझ लेना चाहिए। जो प्रगतिशील है, उन्हें यह बात ठीक से समज लेनी चाहिए कि हमें काम न करने को भी गौरव देना पड़ेगा। और जितनी जल्दी जो आदमी रिटायर होता है उसे उतना सम्मानित करना पड़ेगा। क्योंकि उतने ही जल्दी वह बेटों को काम दे देता है अभी। और कल तो हमें धीरे-धीरे पूरी सोसायटी को रिटायरमेंट में, बिना काम में गए, रिटायरमेंट के लिए तैयार करना पड़ेगा। ये सारी की सारी कठिनाइयां... हमारा पुराना मन हमें दिक्कत देता है!
तो जब मैं कहता हूं कि प्रगतिशील कौन? तो मेरा मतलब है कि जो अतीत से नहीं सोच रहा है, बल्कि जो भविष्य से सोच रहा है। भविष्य में सोचने में सरटेंटी नहीं हो सकती हैं, सदा परहेप्स है। सदा एक स्याद होगा। इसलिए एक आखिरी बात आपसे कहूं। ऑर्थोडाक्स हमेशा एब्सल्यूट होता है, उसकी बात परफेक्ट होती है, पूरी होती है। ऑर्थोडाक्स हमेशा दावेदार होता है। वह कहता है, ऐसा ही है। ए इ.ज "ए", उसका जो तर्क है वह अरिस्टोटेरियन होता है। वह कहता है, ए इ.ज "ए", यानी ए कैन नाट बी "बी"।" अ "अ" है और अ "ब" नहीं हो सकता। यह रूढ़िग्रस्त चित्त का तर्क होता है। प्रगतिशील चित्त एब्सल्यूट नहीं हो सकता है, रिलेटिव ही हो सकता है, सापेक्ष हो सकता है। उसके हर

वक्तव्य के साथ परहेप्स जुड़ा होगा। वह कहेगा, शायद ऐसा हो। अगर कोई भी आदमी यह कहता हैं किः ऐसा ही होगा तो समझना कि वह रूढ़िवादी है।
अगर कोई आदमी प्रगति के संबंध में भी कहे कि "ऐसा होगा ही" तो समझना कि
वह प्रगति के संबंध में रूढ़िवादी है। लेकिन जो आदमी कहे, "ऐसा हो सकता हैं... ! ध्यान रहे, जगत उस जगह आ गया है, जहां एब्सल्यूट स्टेटमेंट की कोई जरूरत नहीं रह गई है। सिर्फ नासमझ ही भविष्य में अब एब्सल्यूट स्टेटमेंट कर सकेंगे। अतीत में भी अज्ञानियों के सिवाय एब्सल्यूट स्टेटमेंट किसी ने नहीं दिए, सिर्फ अज्ञानी यह कह सकता है कि जो मैं कहता हूं वह परम सत्य है। ज्ञान हेजीटेट करेगा, वह कहेगा, कि जो हम कहते हैं वह हो सकता है, या नहीं भी हो सकता है। इससे अन्यथा भी हो सकता है। हजार ऑल्टरनेटिव हैं, भविष्य अनिश्चित है, अनसर्टन है, उसके साथ "स्याद" जुड़ा है, परहेप्स जुड़ा है, ऐसा हो भी सकता है, ऐसा नहीं भी हो सकता है।
प्रोग्रेसिव का तर्क अरिस्टोटेरियन नहीं हो सकता। प्रोग्रेसिव तर्क कहना चाहिए झेन जैसा होगा। झेन फकीर कह सकता है--ए इ.ज "ए" एण्ड इ.ज "बी" आलसो। वह कह सकता है, अ "अ" भी है और अ "ब" भी है। तर्क के लिए बड़ी कठिनाई हो जाती है, क्योंकि तर्क सीधी रेखाएं पसंद करता है कि हम कहें कि यह काला है और यह सफेद है लेकिन जिंदगी में न कोई काली होती है चीज, न कोई सफेद होती है। जिंदगी में सिर्फग्रे होता है। हां, ग्रे की एक एक्सट्रीम होती है, जिसको हम काला कहते हैं। ग्रे की दूसरी एक्सट्रीम होती है जिसको हम सफेद कहते हैं। जिंदगी ग्रे है, जिंदगी में सफेद और काली जैसी कोई चीज नहीं है, जिंदगी में ठंडी और गरम जैसी कोई चीज नहीं है, ठंडी और गरम एक ही चीज की, एक ही तापमान की डिग्रियां हैं। इसलिए कभी एक छोटा सा प्रयोग करें और आपकी जिंदगी में फल होगा। एक हाथ को गरम कर लें और एक हाथ को ठंडा कर लें। दोनों को एक ही बाल्टी में डाल दें और फिर बताएं कि पानी गरम है कि ठंडाः एक हाथ कहेगा ठंडा, एक हाथ कहेगा गरम। गरम और ठंडी दो चीजें नहीं हैं। गरम और ठंडे एक ही चीज के अनुपात हैं।
प्रोग्रेसिव लॉजिक, प्रगतिशील तर्क अ और ब के विरोध को तोड़ता है। प्रगतिशील तर्क काले और सफेद के विरोध को तोड़ता है, प्रगतिशील तर्क अच्छे और बुरे के विरोध को तोड़ता है। वह यह नहीं कहता है कि दिस इ.ज ईविल एण्ड दिस इ.ज गुड। वह यह नहीं कहता कि दिस इ.ज हेल एण्ड दिस इ.ज हेवन। वह ये नहीं कहता कि यह है पापी, यह है पुण्यात्मा। वह कहता है, पाप और पुण्य एक ही चीज की डिग्रियां हैं और पापी कभी पुण्यात्मा भी होता है और पुण्यात्मा कभी पापी भी होता है और महात्मा के भी क्षण हैं, जब महात्मा छुट्टी पर होता है और पापी के भी क्षण हैं जब पापी महात्मा होता है। जिंदगी जटिल है। प्रगतिशील चित्त जिंदगी कि जटिलता को स्वीकार करता हैं। और प्रगतिशील चित्त इसलिए डागमेटिक नहीं हों सकता हैं। मैंने कहा कि प्रगतिशील कौन नहीं हैं? और आप पर छोड़ता हूं कि आप थोड़ा सोचना। थोड़ी सी दिशाएं मैंने दीं, उन पर थोड़े और आगे जाकर आप सोचना, तो आपको खयाल में आ सकेगा कि प्रगतिशील कौन है?
और सबसे उचित तो यह होगा कि सोचना मत, होकर देखना, क्योंकि प्रगतिशीलता जिंदगी है। उसे होकर जाना जा सकता है। उसे सोच कर पढ़ कर नहीं जाना जा सकता, समझ कर नहीं जाना जा सकता है। लेकिन धन्य हैं वे लोग जो प्रगतिशील हो पाते हैं। क्योंकि जिंदगी उनकी है, जो प्रगतिशील हैं और वे मृत हैं जो प्रगतिशील नहीं हैं। मैने ये थोड़ी सी बातें कहीं, मेरी कोई भी बात मान मत लेना, अन्यथा मैं आपको रूढ़िवादी बनाने में कारण बन जाऊं, इतना भी पाप मैं नहीं लेना चाहता हूं। मैंने कुछ बातें कहीं, सोचना! इसमें बहुत कुछ गलत होगा, बहुत कुछ ठीक भी हो सकता है। गलत और ठीक इतनी अलग-अलग बातें नहीं हैं। लेकिन अगर आप सोचने की यात्रा पर निकल सके तो पर्याप्त है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमत्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

एक सवाल है कि आपके विचार से रूढ़िवाद का विरोधी और अपने दृष्टिकोण को भविष्य की ओर बना कर रखने वाले किस स्थल पर मिलते हैं?

किसी स्थल पर नहीं मिलते। नहीं मिलते इसलिए हैं कि जिसे भविष्य की ओर देखना है उसे अतीत की ओर पीठ करनी पड़ती ती है और जिसे अतीत से लड़ना है उसे अतीत की ओर मुंह करना पड़ता है। अगर वे मिलते भी हैं तो दोनों की पीठ मिल सकती है, और कुछ नहीं मिलता है। अतीत लड़ने योग्य भी नहीं है। जो मर गया है, उससे लड़ कर आप मर ही सकते है और कुछ भी नहीं कर सकते। अतीत लड़ने योग्य भी नहीं है, अतीत मुक्त होने योग्य है।

दूसरी बात उन्होंने पूछी हैः रूढ़िवाद को तोड़ने वाला यदि स्वयं नये प्रकार की रूढ़िवादता को श्रेय देने लगता है तो वह प्रगतिशील कब होगा?

वह कभी नहीं होगा। रूढ़िवाद को तोड़ने वाला अगर नये रूढ़िवाद को प्रश्रय देता है तो वह स्वयं भी रूढ़िवादी है लेकिन किसी तरह के रूढ़िवाद के विरोध में हो और किसी तरह के रूढ़िवाद के पक्ष में हो--उसकी च्वाइस है, उसका चुनाव है। रूढ़िवाद का वह विरोधी नहीं है, किसी रूढ़ि का विरोधी होगा और किसी दूसरी रूढ़ि को लाना चाहता है। प्रगतिशील किसी रूढ़ि को नहीं लाना चाहता। प्रगतिशील का अर्थ ही यहि है कि हम एक ऐसा समाज चाहते हैं जहां हम किसी को रूढ़ि में नही बांधेंगे। आप पूछ सकते हैं कि रूढ़ि में नहीं बांधेंगे तो समाज कैसे चलेगा? समाज बिना रूढ़ियों के चल सकता है और सभी नियम रूढ़ियां नहीं होतीं। जिन नियमों को हम भावावेश से पकड़ते हैं वे रूढ़ियां हो जाती हैं। जैसे उदाहरण के लिए--यह रास्ते का नियम है कि आप बाएं चलिए। किन्हीं मुल्कों में रास्ते का नियम है कि दाएं चलिए। यह कोई रूढ़ि नहीं है। यह कोइ ट्रेडिशनलिज्म नहीं हैं। यह सिर्फ फार्मल, स्ट्रक्चरल, फंक्शनल व्यवस्था है।
इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि आप बाएं चलते हैं कि दाएं चलते हैं। एक व्यवस्था बना ली है कि बाएं चलिए। उससे चलने वालों को सुविधा होती है। लेकिन बायां चलना कोई वेद वाक्य नहीं है और बाएं चलने की तख्ती लगा कर इसकी पूजा करने की कोई जरूरत नहीं है। और बाएं चलने के नियम को अगर किसी दिन बदलना पड़े, और हम सोचें कि दाएं चलने का नियम बना लें तो किसी को झंडा लेकर यह चिल्लाने की जरूरत नहीं है कि हमारे धर्म पर हमला हो गया। किसी के धर्म पर हमला नहीं हो रहा है। जिस दिन दुनिया में प्रगतिशीलता होगी उस दिन नियम तो होंगे, रूढ़िया नहीं होगीं। नियम नहीं होंगे, यह मैं नहीं कह रहा हूं। रूढ़ि और नियम में फर्क है जब किसी नियम को हम पागल की तरह पकड़ लेते हैं तब वह रूढ़ि बन जाती है। और जब किसी रूढ़ि का हम उपयोग करते हैं युटिलिटेरियन तब वह नियम रह जाता है। सब नियम रूढ़ियां बन सकते हैं और सब रूढ़ियां नियम हो सकती हैं। अभी हमने सब नियमों को रूढ़ियां बना लिया है, अभी हर चीज रूढ़ि है। होना चाहिए हर चीज नियम। नियमहीन समाज नहीं हो सकता है, रूढ़िहीन समाज हो सकता है।
प्रगतिशील होने का मतलब यह नहीं है कि हम किसी ऐसे समाज की बात कर रहे हैं जहां कोई नियम नहीं होगा, कि रास्ते पर जिसको जहां चलना हो, वहीं चल सकेगा। ऐसा रास्ता नहीं हो सकता और अगर ऐसा रास्ता बनाना हो तो रास्ता ही नहीं होगा, सिर्फ जंगल में आदमी जहां चाहे वहां चल सकता है। अगर आपको कभी ऐसा समाज बनाना है कि जिसका कोई नियम न हो, उसका रास्ता भी न होगा सिर्फ जंगल हो सकता हैं। जंगल में कोई नियम न होगा। अगर रास्ता है और चलने वाले लोग हैं तो नियम होगा। लेकिन नियम को रूढ़ि बनाने की कोई जरूरत नहीं है। जिंदगी नियम से चले, तब नियम को बदलने में कभी कठिनाई नहीं आती क्योंकि हमारा कोई रागात्मक संबंध नहीं होता नियम से। अब बाएं चलना, यह न तो कोई हिंदू का नियम है, न मुसलमान का नियम है, न यह ईसाई का नियम है।
जिंदगी के सारे नियम बाएं और दाएं चलने जैसे होने चाहिए। जब हमें जरूरत पड़े हम बदल लें, जब अनुपयोगी हो जाए, हटा दें। लड़ने की जरूरत न आए। उनसे लड़ने की जरूरत इसलिए आती है कि कुछ लोग उनको जोर से पकड़ लेते हैं,

फिजुल ही पकड़ लेते हैं। अकारण पकड़ लेते हैं। मैं जो कह रहा हूं, अगर कोई रूढ़ि तोड़ने वाला नई रूढ़ि को प्रश्रय देता हो तो वह आदमी रूढ़िवादी है। सिर्फ पुरानी रूढ़ि से ऊब गया है और ध्यान रहे, पुरानी रूढ़ि अच्छी नई रूढ़ि से। क्यों? क्योंकि पुरानी रूढ़ि को टूटने की स्थिति आ जाती है। नई रूढ़ि फिर नई है, मजबूत होती है, ज्यादा दिन चलती है। आदमी मरघट जाता है, लाश को कंधे पर रख कर अरथी को। कंधा दुखने लगता है तो कंधा बदल लेता है। एक कंधे से दूसरे कंधे पर अरथी को कर लेता है। उससे कोई बोझ में फर्क नहीं पड़ता। थोड़ी देर राहत मिल जाती है। नये कंधे पर वजन थोड़ी देर कम मालूम पड़ता है, और कोई फर्क नहीं पड़ता है। पुरानी रूढ़ि से नई रूढ़ि पर नहीं जाना है, रूढ़ियों से नियम पर जाना है। इसमें बुनियादी फर्क है।

हां, एक सवाल और, इसको आखरी मान लें।

किसी ने पूछा है कि वॉट इ.ज दि डिफरेंस बिटवीन मैडनेस एण्ड प्रोग्रछ्व्हनेस?

बहुत कम, बहुत कम फर्क है, बहुत बारीक फर्क है। असल में साधारणतः पागल
हम उसे कहते हैं जो हमारे समाज के बीच मेलएडजस्टेड हो जाता है। जो हमारे समाज के बीच एडजस्टमेंट खो देता है, जरूरी नहीं है कि वह पागल हो। हो सकता है, पूरा समाज ही पागल हो और इसलिए वह आदमी एडजस्ट न हो पाता हो क्योंकि जीसस को जिन लोगों ने सूली दी थी उन्होंने पागल समझ कर दी थी और सुकरात को जिन लोगों ने जहर पिलाया था उन्होंने पागल समझ कर पिलाया था और महावीर पर जिन लोगों ने पत्थर फेंके थे उन्होंने पागल समझ कर फेंके थे। समाज उस आदमी को पागल कहता है जो समाज के ढांचे में मोज नहीं पड़ता। यह पागल भी हो सकता है, यह प्रोग्रेसिव भी हो सकता है। यह दोनों हालत में समाज के ढांचे में मोज नहीं पड़ेगा। फर्क क्या है? फर्क एक ही है।
फर्क एक ही है कि यह जो आदमी पागल है इससे कोई भविष्य नहीं निकलेगा और
यह जो आदमी प्रगतिशील है, इससे भविष्य निकलेगा और यह जो आदमी पागल है इस आदमी से कुछ भी निकलने वाला नहीं है और यह जो प्रगतिशील है, जिसे हम पागल की तरह आज अनुभव करेंगे, कल इसे हम भगवान की तरह पूजेंगे भी। हमने सब पागलों को पूजा है बाद में।
असल में, अगर जीसस को पैदा होना पड़े, तो उन्हें दो-चार-पांच हजार साल रुक कर पैदा होना चाहिए, तब वे एडजस्ट हो सकेंगे। लेकिन वे पांच हजार साल पहले पैदा हो जाते हैं। यह उनकी गलती है। अब पागल के संबंध में हमारी दृष्टि बहुत बदलती जा रही है। जैसा हम पहले सोचते थे, वह दृष्टि नहीं रह गई। पागल के संबंध में पता नहीं आप क्या सोचते हैं? तीन तरह के पागल साधारणतः होते हैं। एक तो पागल वह है जिसको फिजियोलॉजिकली डिरेंज है। इस तरह के पागल को बीमार मानना चाहिए। इस तरह के पागल को पागल नहीं मानना चाहिए। जैसे एक आदमी के पास आंख नहीं है, एक आदमी के पास मस्तिष्क का कोई हिस्सा नहीं है, यह पागल है। अंधे को पागल नहीं कहते आप। काने को पागल नहीं कहते। लंगड़े को पागल नहीं कहते। फर्क क्या है इस आदमी और उस आदमी में? उसके यंत्र में भी कोई चीज कम है। इसके यंत्र में भी कोई चीज कम है। उसके देखने के यंत्र में कमी है, इसके सोचने के यंत्र में कमी है। इसको बीमार कहना चाहिए। पागल नहीं कहना चाहिए। दूसरी बड़ी संख्या उन पागलों की है जो हमारे समाज के कारण पागल हो जाते हैं, जिनके लिए जिम्मेवार हम हैं। वे जिम्मेवार नहीं हैं।
अब एक आदमी को हम एक स्त्री के साथ शादी करवा देते हैं जिसने उसे कभी देखा नहीं, जिसने उसे कभी चाहा नहीं। अब हम पूरी जिंदगी आशा करते हैं कि वह उसे प्रेम करे। अगर यह प्रेम नहीं हो पाता, वह अगर आदमी सीधा व भला है तो प्रेम करने की कोशिश करेगा। और ध्यान रहे कि कोशिश से प्रेम कभी भी नहीं हो सकता हैं। वह पागल हो जाएगा। बदल भी नहीं सकता। जिसे प्रेम कर सकता था उसे कर भी नहीं सकता, जिसे नहीं कर सकता है उसे करने की कोशिश करता है। हम उसे दबा डालेंगे।

वह पागल हो सकता है। अब जब यह पागल हो जाएगा तो हम कहेंगे कि यह आदमी पागल है। यह आदमी पागल नहीं है, यह आदमी पागल समाज में पैदा हुआ है। और हो सकता है कि इसकी जगह अगर थोड़ा कम सेंसिटिव आदमी होता तो चला लेता और पागल नहीं होता। इसलिए मनोविज्ञान की नई खोजें यह कहती हैं कि जिनको हम पागल कहते हैं उनमें कई बार हमसे ज्यादा सेंसिटिव और हमसे ज्यादा पोटेंशियल लोग होते हैं, क्योंकि वे बेचारे नहीं सह पाते। साधारण आदमी, मीडियाकर माइंड का आदमी होता, तो वह कहता, ठीक है, प्रेम-व्रेम की जरूरत भी क्या है! बच्चे पैदा करते हैं, काम चलता है। वह चला लेता। लेकिन एक आदमी है जो बच्चे पैदा होने से तृप्त नहीं हो सकता, जो सेक्स से तृप्त नहीं हो सकता, जो कहेगा, यह तो बहुत ही बॉयोलॉजिकल तल पर बात है। जिसकी कोई और भीतरी आकांक्षा है, जो प्रेम चाहता है वह प्रेम नहीं मिल रहा है, तो वह पागल हो जाएगा। और वह जो मीडियाकर है, जो पागल नहीं हो गए, वह उसको कहेंगे कि यह आदमी पागल हो गया है। दूसरा वर्ग उन पागलों का है जो इसीलिए पागल हो जाते हैं कि जो हमने समाज निर्मित किया है वे अभी भी सेन नहीं हैं। सोसाइटी इनसेन हैं। उसका सारा ढांचा पागलपन का है। वह हजार तरह के पागलपनों की व्यवस्था किए बैठी है, और उन पर थोप रही है लोगोंपर उनमें जो कम संवेदनशील हैं, कम बुद्धिमान हैं, वे राजी हो जाएंगे। जो संवेदनशील है, ज्यादा बुद्धिमान है, वह पागल हो जाएगा।
तीसरे तरह के पागल वे हैं जो न तो समाज की वजह से पागल हैं, न किसी फिजियोलॉजिकल कारण से पागल हैं बल्कि भविष्य के लोग हैं, आज के लोग ही नहीं हैं। बहुत फासला उनका और आज में। हमारे और उनके बीच कोई कामन लैंग्वेज नहीं है। हमारे और उनके बीच कोई कम्युनिकेशन नहीं हो पाता। पागल हम उसे कहने लगते हैं, जिससे हमारा कोई तालमेल नहीं बैठता है, कोई संबंध नहीं बनता है। वे हमें पागल दिखाई पड़ने लगता हैं, दिखाई पड़ेगा ही, क्योंकि वह दो या तीन हजार या पांच हजार साल आने वाले भविष्य की भाषा बोलता रहा है। प्रोफेट पागल हैं इसी अर्थ में कि वे भविष्य की बात कर रहे हैं। वे ऐसी बात कर रहे हैं--जैसे कि कृष्ण अगर आज वे पैदा हो जाएं तो पागल होंगे। उस दिन भी पागल थे। अगर आज भी पैदा हो जाएं और कृष्ण मोरमुकुट बांध कर और बांसुरी लगा कर नाचने लगें, तो वह जो उनके मंदिर में पूजा करते हैं वे भी पुलिस में खबर कर देंगे कि इनको जरा सम्हालो, क्योंकि पूजा ठीक थी, मंदिर में थे तो ठीक था, चलता था, कोई झंझट न थी। लेकिन सड़क पर ये बांसुरी बजाएं, यह ठीक नहीं है। और ये किसी और की राधा के साथ नाच लेते थे, वह ठीक है, हमारी राधा के साथ नाचे तो बहुत खतरा है, यह नहीं चलेगा।
अब कृष्ण उस भविष्य की दुनिया के आदमी हैं, जिस दिन प्रेम पजेसन नहीं
रह जाएगा, उस दिन कृष्ण कम्युनिकेट कर सकेंगे। उस दिन तो पागल नहीं होंगे जिस दिन प्रेम पजेसन नहीं होगा। जिस दिन प्रेम स्थायी कांट्रेक्ट नहीं होगा, जिस दिन प्रेम क्षणिक घटना होगी, और जिस दिन प्रेम की कोई मालकियत नहीं होगी, उस दिन कृष्ण शायद अर्थपूर्ण हो जाएं। कृष्ण उस दिन अर्थपूर्ण हो सकते हैं जिस दिन कोई आदमी बांसुरी बजाए चौबीस घंटे तो भी भूखा नहीं मरेगा, नाचे, रास करे, तो भी भूखा नहीं मरेगा। कृष्ण उस दिन भविष्य के आदमी हो सकते हैं, जिस दिन हम सुख को भी स्वीकार करेंगे। हम इतने दुखी लोग हैं कि हम किसी को सुखी देख कर स्वीकार नहीं कर सकते, ईर्ष्या से भर जाते हैं। कृष्ण जैसे आदमी की हम गर्दन दबा देंगे कि इतना सुखी आदमी हमारे बीच--कि हम रोए चले जा रहे हैं और तुम बांसुरी बजा रहे हो। नहीं, यह बहुत ही सुखी समाज में, बहुत ब्लिसफुल समाज में, जहां किसी दूसरे का सुख ईर्ष्या पैदा नहीं करेगा, जहां दूसरे का सुख हमें भी नाच में ले जाएगा, कृष्ण उस दिन स्वीकृत हो सकते हैं। ऐसे लोग भी पागल हैं।
तो मैं मानता हूं कि प्रोग्रेसिव थोड़े बहुत अर्थों में पागल के करीब होगा। दो कारणों से करीब होगा। एक तो समाज उसको दबाएगा इसलिए, और एक वह भविष्य ओरिएंटेड होगा इसलिए। पागल और उसके बीच समानता है। लेकिन जिस समाज में हम जीते हैं उसमें न पागल होने से पागल होना बेहतर है!

(श्रोताओं में से कोई सवाल पुछ रहा है)

मैं दोहरा देता हूं।
सवाल आपका अलग है, लेकिन आप पूछे हैं इसलिए बात कर लें दो मिनट।
आप पूछते हैं कि आत्मा एक कंटिन्युटी, एक सातत्य है, तो उसके उपर तो पिछले कर्मों का भार है?

दो बातें समझ लें, यह बहुत बड़ा सवाल है, फिर कभी दुबारा आऊं तो करना तो अच्छा होगा।
पहली तो बात यह है कि "ए सोल इ.ज नॉट ए कंटिन्युटी। इट इ.ज एन इटरनिटी।"
इन दोनों में फर्क है। आत्मा सातत्य नहीं है, शाश्वतता है। इन दोनों में फर्क है। कंटिन्युटी जो है, उसके बीच में डिसकंटिन्युअस गैप होते हैं। कंटिन्युटी के बीच में हमेशा बीच में खाली जगह होती हैं। इसलिए हम कहते हैं कंटिन्युटी। बीच में डिसकंटिन्युअस गैप होते हैं। हम कहते हैं कि इस सड़क पर जो प्राकाश लगा हैं वह कंटिन्युअस, पूरे रास्ते पर लगा है। उसका मतलब ही यह है कि बीच में जगह छुटी है। हम कहते हैं, नदी कंटिन्युअस बह रही है, इसका मतलब यह है कि नदी के दो कणों के बीच में फासला है, गैप है। एवरी कंटिन्युटी प्रीसपोजेस डिसकंटिन्युअस गैप्स। आत्मा कंटिन्युटी नहीं है। आत्मा इटरनिटी है। इटरनिटी का मतलब हैः नो गैप! कोई बीच में जगह नहीं है। इसलिए दूसरी बात खयाल में रख लें कि जहां कंटिन्युटी है, वहां प्रोसेस होती है। सोल इ.ज नॉट ए प्रोसेस। सोल इ.ज एक्झिस्टेंस। वह एक प्रक्रिया नहीं है, एक बहाव नहीं है, वह एक अस्तित्व है। यह भी नहीं कह सकते हैं कि वह ठहरा हुआ है, क्योंकि ठहरता वहीं है जो बहता है। वह ठहरा हुआ भी नहीं है और बहता हुआ भी नहीं है।

तीसरी बात जो आपने पूछी है कि आत्मा के ऊपर तो कर्म का भार होगा?

नहीं, आत्मा के ऊपर कभी कर्म का भार नहीं है। कर्म का सारा भार मन के उपर है, माइंड के उपर है, माइंड इ.ज दि पाथ। आत्मा तो महावीर के पास भी है-- जब उन्हें ज्ञान हो गया, और तब भी थी जब ज्ञान नहीं हुआ था। फर्क क्या है? जब ज्ञान नहीं हुआ था तब वह अपने मन को ही आत्मा समझ रहे थे। वह अपने पास्ट को ही आत्मा समझ रहे थे। और जब ज्ञान हो गया तब उन्होंने अपने मन को आत्मा नहीं समझा, वह अब उनका पास्ट नहीं रहा। आत्मा सदा स्वतंत्र है, वह कभी बंधन में नहीं है। मन सदा बंधन में है, वह कभी स्वतंत्र नहीं है। और हम आडेंटिफाइड हैं। हम समझ रहे हैं कि मैं मेरा मन हूं। यह मन जो है वह कर्म का बोझ है, आत्मा पर कर्म का कोई भी बोझ नहीं है। आत्मा पर बोझ ही नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो आत्मा का अर्थ ही वेटलेसनेस है। उस पर बोझ हो ही नहीं सकता। वह परिपूर्ण स्वतंत्रता है। लेकिन कौन जान पाएगा इस स्वतंत्रता को। इस स्वतंत्रता को वह जान पाएगा जो मन के बोझ को अलग फेंक देता है। और आत्मा कि परिपूर्ण स्वतंत्रता में खड़ा हो जाता है।
इसलिए धर्म कि दृष्टि से भी मैं धार्मिक आदमी को प्रगतिशील कहता हूं। धार्मिक आदमी को, रिलिजस माइंड को। रिलिजस माइंड वहीं है जो धर्म कि दुनिया में अतित से मुक्त हो रहा है। अपने अतित से, अपने पास्ट लाइफ से, या अपने कर्मों से।
लेकिन हम तो उस आदमी को धार्मिक कहते हैं जो अच्छे कर्म कर रहा है-- मंदिर बना रहा है, धर्मशाला बना रहा है, पानी पिलवा रहा है, भोजन करवा रहा है। कुछ अच्छे कर्म कर रहा है। इस पर अच्छे कर्मों का बोझ होता चला जाएगा। फर्क पड़ेगा, इस पर बुरे कर्मों का बोझ नहीं होगा, अच्छे कर्मों का बोझ होगा। लेकिन होने वाला बोझ ही है। यह मुक्त नहीं है। इस पर तो कभी अलग से पूरी बात करनी पड़ेगी।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का अठारहवां प्रवचन

धर्म और राजनीति

मेरे प्रिय आत्मन्!
धर्म जीवन को जीने की कला है, जीवन को जीने का विज्ञान है। हम जीवन को उसके पूरे अर्थों में कैसे जीएं, धर्म उसकी खोज-बीन है। धर्म यदि जीवन-कला की आत्मा है, तो राजनीति जीवन-कला का शरीर है। धर्म अगर प्रकाश है जीवन का, तो राजनीति पृथ्वी है। न आत्मा अकेली हो सकती है, न शरीर अकेला हो सकता है। शरीर न हो तो आत्मा अदृश्य हो जाती है और खो जाती है और आत्मा न हो तो शरीर सड़ जाता है, दुर्गंध देने लगता है। धर्म के बिना राजनीति सड़ा हुआ शरीर हो जाती है। लेकिन स्मरण रहे, राजनीति से विहीन धर्म भी अदृश्य हो जाता है और विलीन हो जाता है। इसलिए धर्म और राजनीति पर कुछ कहने के पहले उन दोनों के बीच के एक आंतरिक संबंध को समझ लेना जरूरी है।
जीवन में जो सक्रिय सत्ता है, जीवन को बदलने का जो सक्रिय आंदोलन है, जीवन को चलाने और निर्मित करने की जो व्यवस्था है, उस सबका नाम राजनीति है। राजनीति के भीतरी अर्थ भी हैं, शिक्षा भी है। राजनीति के भीतर हमारे पारिवारिक संबंध भी हैं। राजनीति के भीतर हमारे जीवन के सारे अंतर्संबंध हैं। लेकिन भारत का दुर्भाग्य समझा जाना चाहिए कि हजारों वर्षों से राजनीति और धर्म के बीच कोई संबंध नहीं रहा। भारत में राजनीति और धर्म दोनों जैसे विरोधी रहे हैं--एक-दूसरे की तरफ पीठ किए खड़े हैं। और यह आज की ही बात नहीं है, हजारों वर्षों से ऐसा हुआ है और उसका दुष्परिणाम भी हमने भोगा है। एक हजार वर्ष की गुलामी उसका दुष्परिणाम है। हिंदुस्तान गुलाम हुआ, क्योंकि हिंदुस्तान के धार्मिक लोगों के मन में ऐसा नहीं लगा नि उन्हें कुछ करना है। धर्म का राजनीति से कोई संबंध न था। धार्मिक आदमी को लगता था, "कोई हो नृप, हमें क्या हानि?" कोई भी हो राजा, हमें क्या प्रयोजन है? कोई भी हो सत्ता में, हमें क्या विचार की बात है।
धर्म को हमने हजारों वर्षों से राजनीति निरपेक्ष बना दिया है। इसका बदला हिंदुस्तान की राजनीति ने अभी-अभी लिया है। उसने राजनीति को धर्म निरपेक्ष बना दिया है। हजारों वर्षों तक हिंदुस्तान का धर्म राजनीति निरपेक्ष था, उसका एक ही परिणाम होने को था। और अंतिम परिणाम यह हुआ कि हिंदुस्तान की राजनीति अब धर्म निरपेक्ष है। हजारों वर्षों तक धार्मिक आदमी कहता रहा कि राजनीति से हमें कुछ लेना-देना नहीं है और राजनीति ने अभी बीस साल पहले उसका बदला दिया और उसने कहा--धर्म से हमें कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन कोई राजनीति धर्म निरपेक्ष कैसे हो सकती है? राजनीति के धर्म निरपेक्ष होने का क्या अर्थ हो सकता है? एक ही अर्थ हो सकता है कि जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी श्रेष्ठ है, राजनीति को उससे कोई प्रयोजन नहीं। मनुष्य के ऊंचे उठने की जो भी संभावनाएं हैं, राजनीति उसके संबंध में कोई भी सक्रिय भाग अदा नहीं करना चाहती।
धर्म से निरपेक्ष होने का अर्थ होता है--सत्य से निरपेक्ष होना, प्रेम
से निरपेक्ष होना, जीवन के गहनतम ज्ञान से निरपेक्ष होना। कोई भी राजनीति अगर धर्म से निरपेक्ष होगी, तो वह मनुष्य के शरीर से ज्यादा गहरा प्र्रवेश नहीं कर सकती और जो समाज केवल शरीर के आस-पास जीने लगता है, उस समाज के जीवन में उसी तरह की दुर्गंध पैदा हो जाएगी जैसे मरी हुई लाश में पैदा हो जाती है। इधर वीस वर्षों में आजादी के बाद भारत का सारा जीवन दुर्गंध से, कुरूपता से, ग्लानि से, दुख और पीड़ा से भर गया। शायद मनुष्य-जाति के इतिहास में कोई भी देश स्वतंत्र होकर इस भांति कभी पतित नहीं हुआ है। यह दुर्घटना कैसे घट सकी? यह दुर्घटना घट सकी इसीलिए कि जीवन को ऊंचे उठाने वाले जो भी सिद्धांत हैं, उन सब सिद्धातों का इकट्ठा नाम धर्म है। और हमारे देश की राजनीति धर्म के प्रति निरपेक्ष है! धर्म का उससे कोई प्रयोजन नहीं! लेकिन राजनीतिज्ञों को यह दोष देना गलत होगा। अगर हम पुराना इतिहास उठा कर देखें तो पता चलेगा कि हिंदुस्तान के धार्मिक लोगों ने भी राजनीति के साथ इतना ही गलत व्यवहार किया है। वे आज तक कह रहे थे कि धर्म राजनीति

से निरपेक्ष है। राज्य गुलाम हो कि स्वतंत्र, देश दुष्टों के हाथ में जाए कि अच्छे लोगों के हाथ में जाए, कि कौन हुकूमत करे कि किस भांति हुकूमत करे, इससे धार्मिक आदमी को कोई प्रयोजन न था। एक हजार वर्ष तक मुल्क गुलाम था और हिंदुस्तान के साधु-संन्यासियों ने जरा भी इस गुलामी को उखाड़ फेंकने के लिए कोई प्रयास नहीं कियाः एक हजार वर्ष की लंबी गुलामी के इतिहास में हिंदुस्तान के संत ने एक बार भी यह आवाज नहीं दी कि इस मुल्क को आजाद होना है, क्योंकि वह कहता था कि हमें राजनीति से क्या प्रयोजन! आश्चर्य की बात है कि अच्छे लोगों को गुलामी बुरी नहीं मालूम पड़ी। आश्चर्य की बात है कि मुल्क की छाती पर दुश्मन सवार रहा, मुल्क का खून दुश्मन पीता रहा और मुल्क के साधु-संन्यासी स्वर्ग और परलोक की चर्चाएं करते रहे। मंदिरों में बैठ कर निमित्त महत्त्वपूर्ण है कि उपादान, इस पर वे विचार करते रहे। कितने नर्क होते हैं, सात या आठ, कि देवताओं के कितने रूप है, कि सिद्ध भगवान का क्या स्वरूप है, इस संबंध में ये विचार करते रहे और मुल्क गुलाम और पतित होता चला गया।
हिंदुस्तान गुलाम रहा आया, क्योंकि हिंदुस्तान के धार्मिक लोगों के
मन में ऐसा नहीं लगा कि उन्हें कुछ करना है। धर्म का राजनीति से कोई संबंध न था। एक हजार वर्ष तक हिंदुस्तान के साधुओं और संन्यासियों और धार्मिक लोगों ने हिंदुस्तान के भाग्य को बदलने के लिए कुछ भी नहीं किया। स्वाभाविक था कि जब धर्म इतना निरपेक्ष रहा हो राजनीति से तो जब राजनीति मुल्क में सत्ता में आई तो उसने कहा कि धर्म से हमें क्या लेना-देना है, धर्म से हमको कुछ भी लेना-देना नहीं है। यह बदला था। लेकिन गलत चीज का बदला भी कभी सही नहीं होता है, बदला भी गलत होता है। गलत चीज का जो बदला लेते हैं वे भी गलत होते हैं।
पुनः अब विचारणीय हो गया है कि हम अपनी मनःस्थिति को पुनः तौल लें और विचार कर लें कि क्या राजनीति और धर्म को इतने दूर रखना हितकर है। क्या यह उचित है, क्या यह योग्य है? राजनीतिज्ञों को यह सहूलियत की बात थी कि धर्म राजनीति से दूर रहे। क्योंकि जैसे ही राजनीतिज्ञ के सामने धर्म के प्रतीक खड़े हो जाते है, राजनीतिज्ञ को नीचे गिरने की आसानी कम हो जाती है।
धर्म एक चुनौती है, ऊपर उठाने के लिए, धर्म एक पुकार है कि निरंतर ऊपर उठते रहो, धर्म एक आह्वान है कि मनुष्य को ऊंचे से ऊंचे शिखरों पर चढ़ना है। राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि धर्म से राजनीति का कोई संबंध हो, क्योंकि जैसे ही धर्म से राजनीति का संबंध होता है, राजनीतिज्ञ को अपने भीतर आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ जाती है। जैसे ही धर्म राजनीति से संबंधित होगा, वैसे ही राजनीतिज्ञ को अपने को बदलना पड़ेगा। राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि धर्म का कोई संबंध राजनीति से हो। क्योंकि जब धर्म से कोई संबंध नहीं होता तो उसे षडयंत्र करने, उसे निम्नतम व्यवस्था देने, उसे चोरी और बेईमानी और असत्य का उपयोग करने की पूर्णतम सुविधा उपलब्ध हो जाती है। उसके पीछे कोई भी आह्वान नहीं रह जाता कि वह ऊपर उठे।
राजनीति धर्म से अलग होकर सिर्फ कूटनीति रह जाती है, राजनीति नहीं रह जाती। वह पॉलिटिक्स नहीं होती, सिर्फ डिप्लोमेसी होती है। वहां झूठ और सच में कोई फर्क नहीं रह जाता। हिटलर ने अपने कमरे के ऊपर लिख रखा था कि "सत्य के अतिरिक्त और कोई नियम नहीं है।" ट्रूथ इ.ज द ओनली लॉ, यह उसने अपने कमरे के बाहर लिख रखा था और हिटलर से ज्यादा झूठ बोलने वाला आदमी पृथ्वी पर कभी नहीं हुआ। एक मित्र उसके घर ठहरा हुआ था। उसने हिटलर को पूछा कि आप लिखे हुए हैं कि ट्रूथ इ.ज द ओनली लॉ, सत्य एकमात्र नियम है, लेकिन आप? हिटलर ने कहा कि हां, जिसे झूठ बोलना हो उसे घोषणा करनी पड़ती है कि सत्य एकमात्र नियम है। अगर झूठ ठीक से बोलना है तो सत्य की बातें करना जरूरी है। यह तो सीधी राजनीति है, हिटलर ने कहा।
राजनीति अगर जीवन के उच्चतम उसूलों की तरफ आकर्षित नहीं है, तो वह निम्नतम उसूलों के आधारों पर जीएगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। एक बात ध्यान में रख लेना जरूरी है कि जिसके जीवन में ऊंचे से पुकार नहीं आती, उसके जीवन में नीचे से पुकार आनी शुरू हो जाती है। जीवन में दो तरह की पुकारें हैं--एक पुकार है मनुष्य के ऊपर से आने वाली, पहाड़ों से आने वाली।

मनुष्य ने एक यात्रा पूरी की है पशुओं के साथ और मनुष्य को एक यात्रा करना है परमात्मा के द्वार तक। ऊपर से आने वाली पुकार उसे परमात्मा तक ले जाती है। नीचे से आने वाली पुकार, पशुओं की पुकार है, जो उसके भीतर छिपे हुए हैं। जो राजनीति यह कहेगी कि धर्म से हमारा कोई संबंध नहीं है, वह मनुष्य की निम्नतम जो वृत्तियां हैं, उनका खुला खेल हो जाती है।
राजनीतिज्ञ सदा चाहता है कि धर्म से दूर रहे, क्योंकि धर्म के सामने उसे आत्मग्लानि होनी शुरू हो जाती है। कुरूप आदमी नहीं चाहता कि आइने लगे हों मकान में। द्वार-द्वार पर, दरवाजे-दरवाजे पर बड़े-बड़े दर्पण लगे हों, यह कुरूप आदमी नहीं चाहेगा, क्योंकि कुरूप आदमी के सामने दर्पण का जाना बहुत दुखद हो जाता है, उसे बार-बार कुरूपता पीड़ा देने लगती है। धर्म एक दर्पण बन जाता है राजनीतिज्ञ के सामने। धर्म के सामने खड़े होकर उसे बार-बार लगने लगता है कि मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? मैं कैसा गलत हूं? राजनीतिज्ञ चाहता है कि धर्म से छुटकारा हो, राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि धर्म से संबंध रहे, क्योंकि धर्म दर्पण बन जाता है और उसमें राजनीतिज्ञ के सारे विकार और सारे कैंसर दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। इसलिए राजनीतिज्ञ खुश है कि धर्म से हमारा कोई संबंध नहीं है। और जो कमजोर धार्मिक हैं, वे भी नहीं चाहते कि राजनीति से उनका कोई संबंध हो, क्योंकि जो कमजोर धार्मिक हैं वे हमेशा उन चीजों से भयभीत होते हैं, जहां उनकी कमजोरी टूट जाने का डर होता है। अगर एक कमजोर ब्रह्मचारी है, तो वह स्त्रियों से सदा भयभीत होगा। अगर एक कमजोर अपरिग्रही है, तो वह धन से डरेगा कि कहीं आस-पास कोई धन दिखाई न पड़ जाए।
अगर एक व्यक्ति है जिसका त्याग कमजोर है और जबरदस्ती त्याग किए हुए है, तो वह हमेशा डरेगा कि कहीं सत्ता हाथ में न आ जाए। कमजोर आदमी हमेशा उस अवसर से डरता है, जिसमें उसकी कमजोरी टूट सकती है। जिस आदमी ने उपवास किया है, और जबरदस्ती उपवास किया है, वह भोजनालय के पास से निकलने में बहुत डरेगा। लेकिन जिस आदमी की आत्मा से उपवास आया है, उसके भोजनालय में बैठे रहने में कोई भय नहीं है, भय का कोई कारण नहीं है, लेकिन जिस आदमी ने जबरदस्ती उपवास कर लिया है और पूरे प्राणों में एक ही पुकार है कि भोजन... उपवास करने वाले इसलिए दिन भर मंदिरों में समय गुजारते हैं, ताकि भोजनालय से इतनी दूर रहा जाए कि भोजन का खयाल भी न आए, ऐसी जगह बैठ कर समय गुजार देना है। क्योंकि भीतर तो भोजन का स्मरण आ रहा है। भोजन का जिसके मन में भय है और उपवास कर लिया है, ऐसा आदमी कमजोर है। और इस कमजोरी से वह भोजन से भयभीत होगा और डरेगा।
कमजोर धार्मिक व्यक्ति राजनीति से सदा डरेंगे, क्योंकि उन्हें मालूम
है कि उनके हाथों में ज्यों ही शक्ति आई कि उनकी सारी धार्मिकता बह जाएगी और उनके भीतर जो असली आदमी है, बुरा आदमी छिपा है, वह प्रकट हो जाएगा। बुरा आदमी ताकत में प्रकट होता है, कमजोरी में कभी प्रकट नहीं होता। बुरे आदमी के प्रकट होने के लिए ताकत चाहिए। एक गरीब आदमी है, वह कह सकता है कि मुझे महलों से कोई प्रयोजन नहीं है, लात मार सकता हूं महलों को, क्योंकि महल उसके पास नहीं है। लेकिन कल अगर उसे महल मिलने की सुविधा उपलब्ध हो जाए, फिर बहुत मुश्किल होगा यह कहना कि मैं महलों को लात मारता हूं। फिर पता चलेगा कि यह बहुत कठिन है। पैसे पास में न हों तो धन को गाली दी जा सकती है, लेकिन धन पास में हो तब धन का उपयोग करने का मन होता है, तब धन को गाली देना मुश्किल होता है। जिन लोगों के पास धन था और धन को वे छोड़ सके, उन लोगों के धर्म में तो कोई बल था। महावीर के धर्म में कोई बल रहा होगा। राज्य था हाथ में, उसे लात मार सके। उनमें तो कोई बल रहा होगा, लेकिन जिनके हाथ में राज्य नहीं है, वे बहुत भयभीत होते हैं। फिर अगर राज्य हाथ में आ जाए तो उनके भीतर जो बुरा आदमी छिपा होता है, वह पुनः प्रकट होना शुरू हो जाएगा। उसके पास ताकत नहीं है, इसके लिए वह दबा हुआ है। अगर उसके हाथ में ताकत आ जाएगी तो वह प्रकट होगा। तो कमजोर धार्मिक आदमी भी डरता है कि सत्ता से जितना दूर रहे उतना अच्छा।
हम अभी ही देख चुके हैं कि गांधीजी के पीछे चलनेवालों की एक अच्छी जमात थी। वे अच्छे लोग थे, हिंदुस्तान ने कभी कल्पना भी न की थी कि ये सारे

लोग बुरे साबित होंगे। जब तक उनके हाथ में सत्ता न थी, ये जेल जाते थे और झोली लगा कर गांवों में क्रांति का नारा देते थे, तब तक उनके भीतर सच्चाई और अच्छे आदमी के दर्शन हुए थे और कोई यह नहीं कह सकता था कि ये लोग बुरे थे, वे लोग अच्छे मालूम पड़ते थे। लेकिन ये लोग कमजोर अच्छे आदमी थे। ताकत आते ही अच्छाई चली गई और बुराई प्रकट हो गई। हिंदुस्तान का बीस साल का इतिहास यह बताता है कि कमजोर अच्छे आदमी को ताकत मिलने पर उसकी कमजोरी प्रकट हो गई और अच्छाई बह गई। जैसे ही उनके हाथ में ताकत आई, दिल्ली का सिंहासन आया, वैसे ही साधारण आदमी साबित हुए, जैसे दूसरे कोई भी आदमी साबित होते। बल्कि एक बात आश्चर्यजनक हुई कि वे साधारण आदमी से भी बुरे साबित हुए। और उसका एक ही कारण था कि भीतर सच्चाई नहीं थी। सच्चाई उपर से ओढ़ी गई थी। सच्चाई ऊपर से सीखी गई थी, सच्चाई ऊपर से ढांकी गई थी। भीतर! ... भीतर एक साधारण आदमी था--कमजोर, वासनाओं से भरा हुआ। ऊपर से एक अच्छा आदमी बन गया, भीतर काला आदमी था। वे खादी के सफेद कपड़े सब ऊपर से थे। उन सफेद कपड़ों ने भीतर के काले आदमी को छिपाने में सुविधा दी थी, लेकिन उसे मिटा नहीं सके थे। कोई कपड़ा भीतर के आदमी को नहीं मिटा सकता। भीतर का आदमी मिट जाए तो काले कपड़ों से भी उसकी रोशनी प्रकट होनी शुरू हो जाती है, जो भीतर है। और भीतर अगर काला आदमी बैठा हो, तो सफेद से सफेद कपड़े भी रुकावट डालने में असमर्थ हैं, लेकिन ऊपर से धोखा पैदा होता है कि सफेद कपड़े पहनने वाला आदमी जरूर अच्छा आदमी होगा, लेकिन जब तक उसके हाथ में ताकत नहीं है तब तक यह भ्रम पाला जा सकता है। हाथ में ताकत आते ही उसके सफेद कपड़े इतने मजबूत नहीं हैं कि उसके भीतर के असली आदमी को रोकने में समर्थ हो जाएं।
दुनिया के सारे कमजोर धार्मिक आदमी सदा भयभीत रहे हैं कि सत्ता उनके हाथ में आ जाए। इसलिए उन्होंने कहा है कि राजनीति से उनको कुछ नहीं लेना है। धर्म अलग बात है, राजनीति अलग बात है। राजनीतिज्ञ डरता है धर्म से, धार्मिक डरते हैं राजनीति से। और इसलिए एक खाई पैदा हो गई है, धर्म और राजनीति के बीच। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जब तक यह खाई है, तब तक अच्छी दुनिया निर्मित नहीं की जा सकती? क्यों? अच्छी दुनिया दो कारणों से निर्मित नहीं हो सकती। एकः जो राजनीति धर्म के आदर्शों से प्रभावित नहीं होगी, वह मनुष्य को कहां ले जाएगी? वह कहां ले जा सकती है? किस यात्रा में मनुष्य को प्रवेश कराएगी? मंजिल क्या है? उसके पास कोई मंजिल नहीं है। तब राजनीतिज्ञ उस पागल आदमी की तरह है, जो दौड़ता तो बहुत है लेकिन अगर उससे पूछें कि कहां जा रहे हो, तो वह कहने मैं असमर्थ है कि वह कहां जा रहा है। उसे पता नहीं है, वह कहेगा कि मुझे रोको मत। मुझे जल्दी है, मुझे जाने दो। और अगर हम उससे कहें कि तुम कहां जा रहे हो, तो कहेगा कि मुझे इसके लिए समय नहीं है। मुझे पता भी नहीं है कि मुझे कहां जाना है, लेकिन मुझे रोको मत। मैं जल्दी में हूं, मुझे कहीं जाना है।
राजनीति जो धर्म के बिना है, भागती हुई दिखाई पड़ेगी लेकिन कहां? उसे जाना कहां है? क्योंकि जीवन की मंजिल तो धर्म है। जीवन में जो भी मंजिल है, उसी का नाम धर्म है। जीवन को जहां पहुंच जाना चाहिए, उसका नाम धर्म है। ऐसी राजनीति कोल्हू के बैल की तरह वहीं-वहीं घूम कर वापस आएगी, जहां से उसने चलना शुरू किया था, क्योंकि जिस आदमी को यह पता नहीं है कि मुझे कहां जाना है, उसका सब जाना एक चक्कर में होता है। वह चक्कर में घूमता है और वापस लौट आता है। नहीं, राजनीति धर्म के अभाव में कहीं भी नहीं ले जा सकती है।
और यह भी मैं आपको कह दूं कि धर्म भी राजनीति के बिना जीवन को बदलने में एकदम नपुंसक साबित होता है। क्योंकि जिंदगी को बदलना है तो शिक्षा बदलनी पड़ेगी, जिंदगी बदलनी है तो जीवन के सारे कानून बदलने पड़ेंगे। गलत हो शिक्षा, गलत हो अर्थ व्यवस्था, गलत हो जीवन के सारे नियम और धर्म चिल्लाता रहे कि लोगों को अच्छा होना चाहिए तो वह चिल्लाहट अंधेरे में खो जाएगी और आदमी नहीं हो सकेगा। जिस समाज में बुराई के लिए पुरस्कार मिलता हो और अच्छाई के लिए पाप जैसा भुगतान भोगना पड़ता हो, उस समाज में धर्म कितना ही चिल्लाता रहे कि लोगों को अच्छा होना चाहिए तो भी लोग अच्छे नहीं हो सकेंगे।

धर्म तभी जीवन की व्यवस्था बदल सकता है जब राजनीति से भयभीत न होगा, भागे न, एलायनवादी, ऐस्केपिस्ट न हो, वह यह न कहे कि हम भाग जाएंगे। जिस दिन धर्म ऐसे साधु पैदा करेगा जो सैनिक भी हो सकते हैं, जिस दिन धर्म ऐसे संत पैदा करेगा जो सत्ता पर भी पैर रखकर जीवन को संचालित कर सकते हैं, तभी हम जीवन को बदलने में समर्थ हो सकते है, अन्यथा नहीं।
गांधी ने एक हिम्मत की थी और इस लिहाज से गांधी का नाम दुनिया में एक विशेष आदर से लिया जाना चाहिए। गांधी शायद दुनिया के पहले धार्मिक आदमी थे जिन्होंने राजनीति से भागने की कमजोरी जाहिर नहीं की। उन्होंने हिम्मत के साथ खड़े होकर एक संघर्ष किया। हिंदुस्तान के साधु-संतों को यह बहुत बुरा लगा कि यह कैसा महात्मा है, यह कैसा धार्मिक आदमी है। नहीं, यह धार्मिक आदमी नहीं हो सकता जो राजनीति के बीच में खड़ा है। यह कैसा धार्मिक आदमी है? धार्मिक तो हम उसे कहते हैं, जो राजनीति से भाग जाता है, जो राजनीति को छोड़ देता है। ये महात्मा गांधी कैसे धार्मिक आदमी हैं! हिंदुस्तान के लोगों को बहुत मुश्किल से यह स्वीकृत हो पाया कि गांधी धार्मिक आदमी हैं।
गांधी ने एक बड़ी हिम्मत की। लेकिन वह हिम्मत भी अधूरी पड़ गई और मरने
के पहले गांधी पूरी हिम्मत नहीं जुटा पाए और उनकी कमजोर अंत-अंत में प्रकट हो गई। हिंदुस्तान को जब राज्य मिला तब गांधी के मन में हिंदुस्तान की वह पुरानी आदत फिर बल पकड़ गई और गांधी ने खुद सत्ता न लेकर दूसरों के हाथों में सत्ता देकर भारत का जो अहित किया है, उसको हजारों साल तक पूरा नहीं किया जा सकता। अगर गांधी को हिंदुस्तान की ताकत मिली थी और गांधी स्वयं सत्ता में गए होते तो हिंदुस्तान का भाग्य दूसरा हो सकता था। यह जो हमने पतन की बीस सालों की लंबी कथा देखी, यह जो हमने नरक की यात्रा देखी, यह जो आदमी का चरित्र रोज-रोज नीचे गिरते देखा, हो सकता था कि गांधी स्वयं सत्ता में होते तो यह नहीं हो पाता, लेकिन अंतिम क्षणों में गांधी हिम्मत खो गए। और वह पुराने हिंदुस्तान का जो महात्मा है और जो हिंदुस्तान की पुरानी आदत है, वह जो राजनीति को हमेशा गाली देने वाला चित्त है, वह अंत में प्रभावी हो गया। आखिर में जब सत्ता गांधी के हाथ में आई तो वे डांवाडोल हो गए। उनके सामने दो ही विकल्प थे, या तो उन्हें हिंदुस्तान की नजरों में सदा कि लिए धार्मिक न होने की हिम्मत करनी पड़ती, धार्मिक होने का खयाल छोड़ना पड़ता। इस बात का डर था कि हिंदुस्तान कि हिंदुस्तान फिर शायद उनको महात्मा न कहता। और जब गांधी ने सत्ता छोड़ दी तो हिंदुस्तान के लोग बहुत खुश हुए और हमने जगह-जगह यह कहा कि यह है सच्चा महात्मा, इतनी बड़ी ताकत आई और उन्होंने सिंहासन पर लात मार दी, लेकिन हमें पता नहीं कि यह गांधी का सिंहासन पर लात मारना हमारे भाग्य पर लात मारना सिद्ध हो गया!
हम ऐसे अभागे लोग हैं कि हम दुर्भाग्य की निरंतर प्रशंसा करते है। हिंदुस्तान में अगर थोड़ी सी समझ होती तो हिंदुस्तानभर में उपवास किए जाने चाहिए थे, अनशन किए जाने चाहिए थे, गांधी के खिलाफ और सारे हिंदुस्तान को जोर डालना था कि एक अच्छे आदमी के हाथ में ताकत जा सकती है, तो आप सत्ता में बैठें। हम किसी और को सत्ता नहीं देना चाहते। लेकिन हिंदुस्तान यह न कर सका, क्योंकि हिंदुस्तान की पुरानी आदत! उसको बहुत अच्छा लगा कि ये महात्मा हैं, ये कैसे सत्ता में जा सकते हैं। बल्कि हम खुश हुए और हमने गांधी की प्रशंसा की।
सारे देश को गांधी पर दबाव डालना था कि चाहे तुम महात्मापन को छोड़ दो लेकिन हिंदुस्तान को एक मौका मिला है अच्छे आदमी के हाथ में आने का, उसे हम नहीं छोड़ना चाहते। चाहे तुम्हें नरक जाना पड़े और तुम्हारा मोक्ष छूट जाए तो इसकी फिकर मत करो। इस गरीब मुल्क के लिए, इस दीन-हीन मुल्क के लिए इतना त्याग और कर दो। एक दफे और जन्म ले लेना और तपश्चर्या कर लेना। लेकिन हिंदुस्तान के एक भी आदमी ने यह नहीं कहा, क्योंकि हिंदुस्तान की मूर्खता बहुत पुरानी है, बहुत प्राचीन है।
हमारे मन में यह खयाल है कि अच्छे आदमी को राजनीति में जाना ही नहीं चाहिए। हम बड़े अजीब लोग हैं। हम बहुत कंट्राडिक्ट्री, असंगत लोग हैं। हम एक तरफ कहते हैं कि राजनीति बुरी होती चली जा रही है, एक तरफ हम गाली देते

हैं कि राजनीति गुंडागिरी होती चली जा रही है और दूसरी तरफ हम कहते हैं कि अच्छे आदमी को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। इन दोंनों बातों में क्या कोई संगति है! जब आप कहते हैं कि राजनीति में अच्छे आदमी को भाग नहीं लेना चाहिए तो फिर दोष क्यों देते हैं कि राजनीति में बुरे लोग घुस गए है। इन दोनों बातों में मेल क्या है, तुक क्या है, संगति क्या है? या तो यह मान लीजिए कि अच्छे आदमी को राजनीति में भाग नहीं लेना है, तो फिर बंद कर दीजिए यह निंदा और आलोचना कि राजनीति में बुरे लोग हैं। बुरे लोगों के सिवाय वहां कोई हो कैसे सकता है, क्योंकि आप अच्छे आदमी को तो राजनीति में जाने नहीं देना चाहते हैं।
लेकिन हम अजीब लोग हैं, एक तरफ हम कहेंगे कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना है और जब कोई अच्छा आदमी राजनीति की ओर जाने लगे तो लोग कहेंगे कि अरे! यह आदमी भी डूबा, यह आदमी भी गया, हो गया भ्रष्ट। और दूसरी तरफ हम कहेंगे कि राजनीति बुरे लोगों के हाथों में जा रही है--किसके हाथ में जाएगी? क्या आप चाहते हैं कि राजनीति किसी के हाथों में न जाए? अगर अच्छे आदमी वहां नहीं होंगे तो बुरे आदमी के हाथों में राजनीति जाएगी। और मैं आपसे कहता हूं कि इसका जिम्मा अच्छे आदमी पर है कि राजनीति बुरे हाथों में जाती है, क्योंकि अच्छे आदमी जगह छोड़ देते हैं और बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर देते हैं।
गांधी ने सबसे बड़ा काम किया कि उन्होंने मुल्क की राजनीति में भाग लिया, लेकिन यह प्रयास ऐसा था कि जैसे कोई आदमी डूब रहा हो और मैं उसे बचाने जाऊं और उसे बचा कर किनारे तक ले आऊं और ठेठ किनारे पर छोड़ कर फिर बाहर निकल जाऊं, और वह किनारे पर डूब जाए... वह तो मंझधार में डूब रहा था! गांधी ने हिंदुस्तान को बचाने की कोशिश की, लेकिन आखिरी क्षणों में गांधी डगमगा गए और गांधी ने हिंदुस्तान की सत्ता दूसरों के हाथों में देकर नुकसान पहुंचाया।
जिन लोगों के हाथ में ताकत आई, उन लोगों ने पहले तो सबसे बड़ा काम यह किया कि धर्म से राजनीति का संबंध तुड़वा दिया। नेहरू के मन में धर्म के लिए कोई जगह नहीं थी, नेहरू के चित्त में धर्म के लिए कोई आदर नहीं था। नेहरू शुद्ध राजनैतिक व्यक्ति थे, नेहरू और गांधी जैसे विरोधी खोजना कठिन है जो एक ही साथ शिष्य और गुरु की तरह समझे जाते हों। गांधी बिल्कुल अलग तरह के आदमी हैं, नेहरू बिल्कुल अलग तरह के आदमी हैं। गांधी के लिए अहिंसा जीवन और मरण का प्रश्न है, नेहरू के लिए अहिंसा पालिसी से ज्यादा नहीं है-- एक तरकीब, एक राजनैतिक चाल। गांधी एक धार्मिक व्यक्ति हैं, नेहरू एक शुद्ध राजनैतिक व्यक्ति हैं। एक धार्मिक व्यक्ति के हाथों में ताकत जाती तो मुल्क का भाग्य बदलता, हम और ढंग से सोचते। लेकिन वह ताकत एक धार्मिक आदमी के हाथों में नहीं जा सकी, क्योंकि धार्मिक आदमी हमेशा कमजोर साबित हुआ और उसने कहा कि मैं ताकत कैसे ले सकता हूं। नहीं, मैं ताकत नहीं ले सकता, मैं लात मारत हूं राज-सिंहासन पर!
राज-सिंहासन राजनीतिज्ञ के हाथों में चला गया और फिर गांधी के बड़े शिष्य हैं विनोबा। एक तरफ गांधी ने राजनीति से अपना हाथ अलग किया, सत्ता दूसरों के हाथ में दी, दूसरे हिंदुस्तान में विनोबा ने यह काम किया कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना चाहिए, उसे भूदान का काम करना चाहिए, सर्वोदय का काम करना चाहिए। जो बचे-खुचे अच्छे लोग राजनीति में थे, उन्हें विनोबा बुरी तरह ले डूबे, जयप्रकाश जैसे अच्छे आदमी को डुबा दिया उन्होंने। पहले तो अच्छे आदमी, गांधी की हिम्मत टूट गई, फिर विनोबा ने अच्छे आदमी को कहा कि राजनीति में जाना नहीं है तुम्हें। तुम्हें तो गांव की सेवा करनी है। यह करना है, वह करना है। राजनीति में तुम्हें नहीं जाना है। विनोबा ने ऐसे अच्छे लोगों को रोक लिया राजनीति में जाने से। अब हिंदुस्तान की राजनीति अगर बुरे लोगों के हाथ में पड़ गई तो जिम्मेवार कौन है? मैं नंबर एक गांधी को, नंबर दो विनोबा को जिम्मेवार ठहराता हूं।
मैं आपसे यह कहता हूं कि हिंदुस्तान की राजनीति हर पांचवें वर्ष और रद्दी हाथों में जाएगी। क्यों? क्योंकि नियम है जीवन का और वह यह है कि अगर बुरे आदमी को ताकत से हटाना हो तो आपको बुरा होना पड़ता है। इसके बिना

आप उसको हटा नहीं सकते। अगर वह चालाक है तो आपको ज्यादा चालाक होना चाहिए; अगर वह बेईमान है तो आपको ज्यादा बेईमान होना चाहिए। अगर वह छुरे से धमकी देता है, तो आपको पिस्तौल से धमकी बताना चाहिए। तो उस आदमी को आप हटा सकते हैं। पिछले पंद्रह-बीस सालों में हर पांच साल के बाद पुराने आदमी को हटाया गया और उनकी जगह जो लोग गए वे उनसे भी बदतर थे। और आप यह पक्का मानिए कि उनको उनसे भी बदतर लोग ही हटा सकेंगे। तीस सालों में हिंदुस्तान में गुंडों का राज्य सुनिश्चित है? तीस साल के भीतर हिंदुस्तान में सिवाय गुंडों के ताकत में कोई नहीं पहुंच सकेगा और अगर उनको हटाना पड़े, तो आपको उनसे बड़ा गुंडा सिद्ध होना पड़ेगा, इसके अतिरिक्त और कोई योग्यता नहीं रह जाने वाली है।
आज भी हालत यह है कि लोग हुकूमत से हट गए हैं, वे सिर्फ इसीलिए हट गए हैं कि उनसे ज्यादा बुरे लोग वहां पहुच गए हैं। और अगर कल ये लोग उनको हटा सकें तो आप पक्का समझना कि ये उनसे ज्यादा बुराई पांच साल से सीख गए हैं इसलिए हटा पाए, अन्यथा हटा नहीं सकते थे। मगर यह बहुत
दुर्भाग्यपूर्ण है कि रोज मुल्क बुरे से बुरे हाथों सें चला जाए। दूसरा नियम भी मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर एक बुरे आदमी को हटाना हो तो आपको उससे बुरा होना पड़ता है और अगर एक अच्छे आदमी को हटाना हो तो आपको उससे अच्छा आदमी साबित होना पड़ता है, तब आप उसे हटा सकते हैं। ये दोनों नियम एक साथ ही काम करते हैं। अगर हिंदुस्तान की राजनीति में हमने अच्छे लोगों को जगह दी होती, तो हिंदुस्तान तीस साल में अच्छे से अच्छे लोगों के हाथ में पहुंच गया होता। क्योंकि एक अच्छे आदमी को हटाने के लिए जिस आदमी को हमें आगे लाना होता है वह उससे अच्छा आदमी सिद्ध होता, तभी हटा सकता था अन्यथा नहीं हटा सकता था। लेकिन अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना है, धार्मिक आदमी को राजनीति में नहीं जाना है, तो फिर राजनीति अधार्मिक हाथों में जाएगी, तो परेशान क्यों होते हैं, फिर पीड़ित क्यों होते है? अच्छे आदमी ने मनुष्य-जाति के कुछ नुकसान किए है, उनमें से एक नुकसान
यह है कि अच्छा आदमी हमेशा बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर देता है। वह हमेशा हट जाता है और कहता है कि आप आ जाइए, क्योंकि मैं तो अच्छा आदमी हूं, मैं झगड़ा-झंझट नहीं करता हूं। अच्छा आदमी भगोड़ा है, अच्छा आदमी भाग जाता है, खड़ा होकर टक्कर नहीं ले पाता। क्या किया जाए? हमारी अब तक की जो मूल्य की दृष्टि थी, अब तक की जो वेल्यू थी, वह बदलनी पड़ेगी। हमें यह कहना होगा कि धार्मिक आदमी का एक लक्षण यह भी है कि वह बुराई के साथ टक्कर लेगा और जहां भी बुराई होगी, वह संघर्ष में खड़ा रहेगा, भागेगा नहीं। धार्मिक आदमी का एक लक्षण हमें यह भी बताना होगा कि वह बुरे आदमी के हाथों जीवन की सत्ता को न जाने दे। हमें अच्छे आदमी की योग्यता एक यह भी माननी होगी कि वह बुराई से लड़ने के लिए सदा तत्पर है--चाहे राजनीति, चाहे धर्म, चाहे समाज, चाहे जीवन का कोई भी पहलू हो, बुरे आदमी को जगह देने को वह तैयार नहीं होगा।
इसी संबंध में मैं आपसे यह भी कहना चाहूंगा कि हमारे मुल्क के बाहर पश्चिमी मुल्कों की समाज व्यवस्था हम से बहुत बेहतर हो सकी, उनके राज्य की व्यवस्था हम से बहुत संगत हो सकी, उन्होंने जीवन में ज्यादा समृद्धि, ज्यादा व्यवस्था, ज्यादा सुनियोजन उपलब्ध कर लिया, उसका एक ही कारण है कि दुनिया के दूसरे मुल्कों में अच्छा आदमी राजनीति से भयभीत नहीं है। तो दुनिया के दूसरे मुल्कों के जो अच्छे आदमी हैं, प्रथम कोटि के वे राजनीति में पहुंच जाते हैं। हमारे यहां प्रथम कोटि का आदमी जंगल चला जाता है, तपश्चर्या करने लगता है, राजनीति से बच जाता है। अच्छा आदमी भाग जाता है जिंदगी को छोड़ कर। अच्छा आदमी रामधुन करता है, रामायण पढ़ता है--ऐसे सब काम करता है, लेकिन अच्छा
आदमी जिंदगी के संघर्ष से हट जाता है। जब अच्छे आदमी जिंदगी के संघर्ष से हट जाएंगे, तो जिंदगी को अच्छा कौन बनाएगा, जिंदगी को बदलेगा कौन?
ताकत बुरे आदमियों के हाथ में और उपदेश अच्छे आदमियों के हाथ में, यह स्थिति बहुत सुखद नहीं है। ताकत बदलती है। ताकत है बुरे आदमी के हाथ में और अच्छे आदमी के हाथ में है एक ही काम--उपदेश। कौन सुनता है उसका उपदेश?

उसके उपदेश बूढ़े लोग सुनते हैं, जिनका जिंदगी से कोई संबंध नहीं रह गया है। मंदिरों में जाइए, मस्जिदों में जाइए, बूढ़े और बूढ़ियां वहां इकट्ठे हैं। ये वे औरतें वहां इकट्ठी हैं, जिनको घर में बातचीत के लिए मौका नहीं मिलता है, वे मंदिरों में आती हैं। लेकिन मंदिर में युवक कहां है, जवान कहां है, जो जिंदगी को बदलते और बनाते हैं। बच्चे कहां हैं, जिनसे जिंदगी बनती और विकसित होती है। वे कहां हैं, वहां। वे उपदेश सुनने को तैयार नहीं हैं।
जिंदगी को बदलना है तो अच्छे लोगों के हाथ में सत्ता का होना अनिवार्य है। इसलिए मैं कहता हूं कि गलत हैं ये बातें विनोबा की कि अच्छे आदमी सत्ता से भागें। मेरा तो अपना विचार यह है कि गांव-गांव में नागरिक समितियां होनी चाहिए, एक-एक मोहल्ले में नागरिक समितियां होनी चाहिए। और यह नागरिक समिति तय करेगी कि हमारे मोहल्ले में कौन अच्छा आदमी है, उससे हम प्रार्थना करें कि तुम इलेक्शन, चुनाव में खड़े हो जाओ। हम उस आदमी को वोट नहीं देंगे जो खुद अपने आप खड़ा हो जाता है और लोगों से आकर कहता है कि मैं अच्छा हूं, मुझे वोट दो। हम यह मानते हैं कि जो आदमी खुद अपने को अच्छा कहता है, वह अयोग्यता सिद्ध करता है। वह आदमी अच्छा आदमी नहीं है, जो अपने को अच्छा कहता है, वह अयोग्यता का एक लक्षण होना चाहिए। यह डिसक्वालिफिकेशन होना चाहिए कि जो आदमी खुद आकर कहता है कि मैं अच्छा आदमी हूं, मुझे वोट दो! गांव के लोगों को कहना चाहिए कि क्षमा करिए, हम आपको वोट इसलिए नहीं देंगे कि आप खुद यह कहते हैं कि हम अच्छे आदमी हैं। हम उस आदमी को वोट देंगे, जो कहता है, मेरी कोई मर्जी नहीं है लेकिन गांव जोर डालता है कि मुझे खड़ा होना चाहिए तो मैं खड़ा हो जाता हूं।
एक-एक गांव में नागरिक समिति होनी चाहिए। एक-एक मोहल्ले में नागरिक समिति होनी चाहिए, जो यह निर्णय करे कि हम किस आदमी को भेजें, क्योंकि हमारा अच्छा आदमी पुरानी आदत के कारण पीछे खड़ा रहता है, यह आगे आता ही नहीं। उसको अच्छा भी नहीं मालूम पड़ता कि खुद ही डंका पीटता हुआ, घंटा पीटता हुआ चिल्लाता फिरे कि मैं अच्छा आदमी हूं, कि मैं इलेक्शन में खड़ा हूं, मैं अच्छा आदमी हूं, चाहे वह कांग्रेस का हो, चाहे वह जनसंघ का हो, चाहे वह कम्युनिस्ट हो, चाहे वह सोशलिस्ट हो, वह आदमी गलत है। उसे भूल कर वोट मत देना, क्योंकि जो आदमी अपना प्रचार कर रहा है, वह ठीक नहीं हो सकता। यह आदमी खतरनाक है।
एक-एक मोहल्ले की नागरिक समिति होनी चाहिए, जो अच्छे आदमी के पास जाए
और उससे प्रार्थना करे कि हम तुम्हें खड़ा करेंगे और अगर तुम खड़े नहीं होते तो हम अनशन करेंगे। हम तुम पर दबाव डालेंगे, हम घेराव डालेंगे कि तुम्हें खड़ा होना पड़ेगा, हम अच्छे आदमी को भेजना चाहते हैं। और अच्छे आदमी को भेजने में हिंदुस्तान को आगे के दस वर्षों तक कम से कम, पार्टी की फिकर छोड़ देनी चाहिए कि वह आदमी किस पार्टी का है। वह कम्युनिस्ट है, कि सोशलिस्ट है, कि लीगी है, कि कांग्रेसी है, कि जनसंघी है, इसकी फिकर छोड़ देनी चाहिए। एक ही शर्त है कि वह आदमी अच्छा है।
एक बार हिंदुस्तान में अच्छा आदमी सत्ता में पहुंच जाए तो हम दस साल बाद यह भी विचार कर सकेंगे कि अच्छे समाजवादी को भेजें कि अच्छे कांग्रेसी को भेजें। अभी तो अच्छा आदमी ही प्रश्न है। अभी तो अच्छे आदमी को ही भेजना है। अभी यह सवाल नहीं है कि कांग्रेसी को भेजें कि जनसंघी को भेजें। क्योंकि अगर दोनों बुरे आदमी हैं, तो तुम किसी को भी भेजो, कोई फर्क नहीं पड़ता है। और आज हालत ऐसी है कि चाहे गलत आदमी किसी भी तरह का झंडा हाथ में लिए हो, वे सब चचेरे भाई-बहिन हैं, उनमें कोई फर्क नहीं है, उनमें जरा भी फर्क नहीं है। उनके लेबिल अलग हो सकते हैं, कि यह ग्यारह नंबर की बीड़ी है, यह इक्कीस नंबर की बीड़ी है, यह तेईस नंबर की बीड़ी है। लेकिन बीड़ी, बीड़ी है और खतरनाक है। इस बात पर जोर देने की जरूरत नहीं है कि किस नंबर की बीड़ी पीनी है, सवाल यह है कि बीड़ी पीनी है कि नहीं पीनी है, कि हम कांग्रेसी बीड़ी पिएंगे कि जनसंघी बीड़ी पिएंगे, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि बीड़ी पीनी है कि नहीं पीनी है। कि हम बुरे आदमी को भेजना चाहते हैं कि नहीं भेजना चाहते। लेकिन राजनीतिज्ञ बहुत होशियार है, वह आपकी नजर से यह समस्या,

प्राब्लम हटा लेता है, वह यह समस्या हटा लेता है कि अच्छे आदमी को भेजना है कि बुरे को। वह एक नई समस्या खड़ी करता है। वह कहता है कि कांग्रेस को भेजना है कि जनसंघी को।
मैंने सुना है कि अगर आप जर्मनी की होटल में जाएं, तो वे खाने के बाद आपसे पूछेंगे कि आप चाय लेंगे। इसमें आपके समक्ष वे दो विकल्प छोड़ रहे हैं--हां या नहीं का। लेकिन फ्रांस में ऐसा नहीं है। वहां वे ऐसा नहीं पूछते। वे आपसे खाने के बाद पूछेंगे कि आप काफी लेंगे या चाय। इसमें वे आपके समक्ष कोई नहीं कहने का अवसर नहीं दे रहे। पचास प्रतिशत मौके काफी के हैं और पचास प्रतिशत मौके चाय के हैं और बहुत संभावना इस बात की है कि आप दो में से एक चुन लेंगे। वे आपको चुनने का मौका नहीं दे रहे हैं कि मैं चाय लूंगा कि काफी लूंगा, कि आप सोचेंगे कि दूध लूं या कोको लूं। लेकिन "नहीं" का खयाल वे आपके सामने नहीं रख रहे हैं, जिसको चुना जा सके। इसके प्रयोग करके देखे गए और पाया गया कि जिन होटलों में वे यह पूछते हैं कि आप चाय लेंगे, वहां चाय अथवा काफी कम बिकती है। जिन होटलों में यह पूछते हैं कि आप चाय लेंगे या काफी, वहां दोनों में से एक जरूर बिक जाता है।
दुनिया के राजनीतिज्ञ आपके सामने गलत विकल्प, ऑल्टरनेटिव पेश करते हैं, वे कहते हैं कि कांग्रेस को चुनिएगा कि जनसंघ को। यह सवाल है कि अच्छे आदमी को चुनना है कि गलत आदमी को। भले आदमी के हाथ मजबूत करने हैं या बुरे और गलत आदमी के हाथ मजबूत करने हैं। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि आने वाले दिनों में अगर भारत की जिंदगी को हमें धार्मिक और अच्छा बनाना है तो हमें अच्छे आदमी को भेजने की फिकर करनी चाहिए। हमें कोई चिंता नहीं करनी है कि वह किस दल का हो। अच्छा आदमी किसी भी दल का हो, बुरा होता है। दल से कोई फर्क नहीं पड़ता है, लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि हम धर्म और राजनीति को अब तक अलग ही मानते रहे और इकट्ठा मानने की हमारी कल्पना अभी भी मजबूत नहीं हुई है। अभी हमें ऐसा लगता है कि दोनों जुड़े हैं, अभी भी हमारा खयाल यह है कि राजनीति एक अलग चीज है। चलने दो उसे, क्या बनता-बिगड़ता है। लेकिन हमें पता नहीं, सब कुछ बनता-बिगड़ता है।
हमारा खून, हमारे विचार, हमारा भाग्य, हमारा शरीर, हमारा भविष्य सब कुछ राजनीति तय कर रही है। हमें क्या पढ़ाया जाए कालेज में, स्कूल में, वह राजनीति तय कर रही है। हमारे बच्चों के मन कैसे निर्मित किए जाएं, वह राजनीति तय कर रही है। रूस की राजनीति बदली। आज बीस करोड़ का मुल्क है रूस। आज रूस में ईश्वर को मानने वाला एक आदमी खोजना मुश्किल है। क्योंकि चालीस वर्षो में जो राजनीतिज्ञ वहां आए, उन्होंने कहा कि ईश्वर नहीं है। उन्होंने जो किताबें पाठ्यक्रम में रखीं, वे ईश्वर विरोधी हैं। उन्होंने जो पाठ्यक्रम बनाया वह आत्मा को नहीं मानता है। बीस-तीस साल की शिक्षा के बाद रूस के बीस करोड़ लोग मानने को राजी हो गए कि न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा। तो फिर राजनीति से धर्म निरपेक्ष कैसे रह सकता है? यह कैसे संभव है! और जो लोग समझा रहे हैं कि राजनीति से कुछ नहीं लेना-देना है धार्मिक आदमी को, उन्हें पता नहीं है कि आने वाले बीस वर्षों में अगर धर्म ने उत्सुकता नहीं ली, तो धर्म की पूरी व्यवस्था को मटियामेट किया जा सकता है। चीन सत्तर करोड़ का मुल्क है। राजनीति वहां साम्यवादी हो गई तो चीन के सारे मंदिर और मस्जिद खतरे में हैं। वहां के सारे आश्रम खतरे में हैं। वहां के धर्मग्रंथ खतरे में हैं, वहां के साधु-संन्यासी, फकीर खतरे में हैं। आज चीन में किसी का जीवन सुरक्षित नहीं है। आने वाले दस वर्षों में चीन साधु-संन्यासियों को समाप्त कर देगा। चीन की पृथ्वी पर एक संन्यासी खोजने से नहीं मिलेगा, एक भिक्षु खोजने से नहीं मिलेगा। एक मंदिर और मस्जिद खोजने से नहीं मिलेगा। तो फिर राजनीति से धर्म कैसे निरपेक्ष रह सकता है? आज नहीं तो कल हिंदुस्तान में भी यह होगा।
इसलिए जो धार्मिक लोग समझाते हैं कि अपने मंदिरों में पूजा करो, तुम्हें क्या करना है राजनीति से, अच्छे आदमी को क्या प्रयोजन है? उन्हें पता नहीं है कि राजनीतिज्ञ के हाथ में कितनी ताकत है। और इतना ताकत उसके पास भी नहीं थी जितनी आज उसके हाथ में है। आज चीन में माइंड-वॉश के लंबे आंदोलन चल रहे हैं। लाखों लोगों को पकड़ कर उनके दिमाग में जबरदस्ती जो

हुकमत डालना चाहती है, डाल रही है। आपको पता नहीं है कि आज इस तरह के रासायनिक ड्रग्ज खोज लिए गए हैं कि आपको एक इंजेक्शन दिया जाए और आपकी सारी स्मृति मिटाई जा सकती है। आपकी सारी स्मृति नई की जा सकती है। एक आदमी जो ईश्वर को मानता था और समझता था कि परमात्मा है, उस आदमी को एक इंजेक्शन और कुछ रासायनिक द्रव्य देने के बाद उसकी स्मृति मिटाई जा सकती है, और उसको समझाया जा सकता है कि ईश्वर नहीं है और महीने, दो महीने बाद वह बाहर आकर लोगों से कहेगा कि ईश्वर नहीं है, वह जो मैं समझता था, गलत समझता था।
आज चीन में वे यह सब कर रहे हैं, रूस में उन्होंने यह किया और सारी दुनिया में वह होगा। इसलिए धार्मिक आदमी अगर चुपचाप बैठा रहा तो पता नहीं कि वह किस जगह पर बैठा हुआ है! वह जगह नीचे से खिसक रही है। जिस जगह को वह सहारा समझे हुए हैं, वह बहुत दिन सहारा नहीं रहेगी। नाव में छेद हो गए हैं, वह डूबने के करीब है। दुनिया में अगर धर्म को बचाना है, तो धार्मिक लोगों को हिम्मत के साथ खड़ा होना होगा और सत्ता के जगत में प्रवेश करना होगा। मेरी अपनी दृष्टि में तो हिंदुस्तान का भाग्य उसी दिन बदलेगा जिस दिन हिंदुस्तान के साधु-संन्यासी और भिक्षु, हिंदुस्तान के अच्छे और सज्जन लोग सारी राजनीति को अपने हाथ में ले सकेंगे, उसके पहले कभी भी हिंदुस्तान में कोई सदाचरण की व्यवस्था नहीं हो सकती। लेकिन अच्छा आदमी तो भागता है। उस अच्छे आदमी पर तो विश्वास करना मुश्किल है, वह तो सोचता ही नहीं। वह तो विचार भी नहीं करता। उसकी कल्पना में तो खयाल भी नहीं आता कि जिंदगी को बदलने का उसका कोई भी जिम्मा है। अच्छा आदमी पीठ किए हुए खड़ा है। इसलिए जब मुझे कहा गया है कि मैं जाऊं और राजनीति और धर्म पर कुछ कहूं तो मुझे अच्छा लगा कि जरूर कुछ बातें कहने जैसी हैं।
संक्षिप्त में मैं अपनी बातें दुहरा दूं कि मैंने क्या कहा। मैंने आपसे यह कहा कि धर्म है आत्मा, राजनीति है शरीर। धर्म है विचार, राजनीति है क्रिया। धर्म है आकाश, राजनीति है पृथ्वी। न हम आकाश में जी सकते हैं, न हम पृथ्वी पर जी सकते हैं। हमारा सिर धर्म से संबंधित होना चाहिए और हमारे पैर राजनीति से। हमारे जीवन की सारी क्रिया राजनीति के बिना नहीं चल सकती और हमारी आत्मा का विकास धर्म के बिना नहीं हो सकता। अगर ऊपर उठना है तो आकाश का भ्रमण करना होगा, अगर संभलकर खड़े रहना है तो पृथ्वी पर पैर मजबूत जमे हुए होने चाहिए।

हिंदुस्तान के पैर पृथ्वी पर हमेशा कमजोर रहे। इसलिए एक हजार साल तक हमने गुलामी झेली--इतने बड़े मुल्क ने एक हजार वर्षों तक! साधारण सी ताकत के लोग आए और हमें गुलाम बना लिया। उसका कारण क्या था? उसका बड़ा कारण यह था कि हिंदुस्तान की धार्मिक जनता यह मानती है कि राजनीति से हमें क्या लेना- देना है। हिंदुस्तान का बड़ा हिस्सा, जनसंख्या का बड़ा भाग यह मानता था कि हमें कोई प्रयोजन नहीं। जब जनता इतनी उपेक्षा रखती हो तो मैं आपसे कहता हूं कि हिंदुस्तान के पचहत्तर प्रतिशत लोग अभी भी राजनीति में कोई उत्सुकता नहीं रखते। अगर कल हिंदुस्तान पर चीन आ जाए तो वे लोग तमाशबीन की तरह देखेंगे और वे कहेंगे कि अच्छा, चीन आ गया, तो वे देखेंगे कि देखो, अब क्या होता है, पहले अंग्रेज थे, फिर कांग्रेस आई, अब फिर चीनी कम्युनिस्ट आ गए। अब देखो, आगे क्या होता है! वे खड़े होकर देखेंगे, जैसे वे तमाशबीन हैं, जैसे वे दर्शक हैं!
दूसरे महायुद्ध में जर्मनी ने हमला किया हालैंड के ऊपर। हालैंड छोटा मुल्क है और गरीब मुल्क है। हालैंड की गरीबी, हालैंड की कमजोरी कई कारणों से है। बड़ा कारण तो यह है कि हालैंड की जमीन समुद्र से नीची है, समुद्र ऊंचा है और जमीन नीची है। तो हालैंड के गांवों को दीवारें बनवा कर समुद्र से रक्षा करनी पड़ती है। हालैंड की आधी ताकत समुद्र से बचाव करने में नष्ट हो जाती है। हालैंड के पास बड़ी फौजें नहीं हैं, हालैंड के पास बड़ी मशीनगन नहीं हैं, हालैंड के पास हवाई जहाज नहीं हैं, युद्ध का सामान नहीं हैं। जर्मनी ने तय किया कि हालैंड को तो मिनटों में जीता जा सकता है। जर्मनी के सामने हालैंड कैसे टिकात! जर्मनी का हमला हुआ और हालैंड के लोगों ने सोचा,

हम क्या करें? तो हालैंड के लोगों ने तो जो बात सोची वह सोचने जैसी है, समझने जैसी है। हिंदुस्तान वैसी बात कभी नहीं सोच सकता। तो उन्होंने सोचा कि हम तो गुलाम हो जाएंगे, लेकिन गुलाम होकर जिंदा रहना ठीक नहीं। आजाद रहते हुए जिंदा मर जाना बेहतर है। उन्होंने कहाः जिस गांव पर जर्मनी का हमला हो, उस गांव के लोग उस गांव की दीवार तोड़ दें। पूरा गांव समुद्र में डूब जाए और साथ में जर्मनी की फौजें भी डूब जाएं। हम अपने गांव डूबाते चले जाएंगे, जो गाव हारेगा उसको डुबा देंगे। हम पूरे मुल्क को डुबा देंगे, समुद्र के नीचे। लेकिन हालैंड नहीं बचेगा, एक बच्चा नहीं रहेगा हालैंड का जिंदा, लेकिन गुलाम हम नहीं होंगे। तीन गांवों पर हिटलर की फौजें गईं और वापस लौट गईं।
हिटलर ने कहाः ऐसे मुल्क से लड़ना मुश्किल है। तीन गांव डूब गए, फौजें
भी डूब गईं, तीन गांव पानी के नीचे आ गए। और हिटलर ने पहली दफे अपनी डायरी में लिखवाया कि "आज मुझे पता चला कि संगीनों, बंदूकों और बमों से भी ज्यादा ताकतवर लोगों की आत्मा होती है।" अगर लोग मरने को तैयार हैं तो उसको दुनिया में कोई गुलाम नहीं बना सकता। कौन बना सकता है गुलाम!
चालीस करोड़ लोगों को तीन करोड़ लोग गुलाम बनाए रखे, हजारों मील दूर बैठकर हुकूमत करते रहे और हम पर हुकूमत चलती रही। राजनीतिज्ञ हमें समझाते हैं हममें फूट थी, इस कारण यह हुकूमत चली। गलत समझाते हैं। राजनीतिज्ञ गलत समझाते हैं, सरासर झूठ समझाते हैं। फूट वगैरह कुछ भी नहीं थी। जितनी फूट हममें हैं, दुनिया में सब तरफ है। असली बात यह थी कि यहां कि जनता के मन में यह भाव था कि राजनीति से हमें क्या लेना-देना है, क्या करना है। कोई भी राजा दिल्ली में बैठे, हमको क्या फर्क पड़ता है! मेहतर को अपने पाखाने धोने पड़ेंगे, चाहे मुगल बादशाह हो, चाहो हिंदू बादशाह हो, चाहे अंग्रेज बादशाह। चमार को जूते सीने पड़ेंगे। किसान को खेती का काम करना पड़ेगा, हल-बखर चलाना पड़ेगा। हमको क्या फर्क पड़ता है! हमारी जिंदगी में क्या फर्क आता है। और हिंदुस्तान में जो लोग शिक्षा देनेवाले थे, साधु-संन्यासी, उन्होंने बिल्कुल बात भी नहीं उठाई, एक शब्द भी नहीं उठाया। अगर कोई हिंदुस्तान का इतिहास उठा कर देखेगा एक हजार वर्ष का, तो वह पाएगा कि यहां के संतों ने एक बार भी नहीं कहा कि लगा दो आग इस गुलामी में। तो दुनिया के लोग बाद में सोचेंगे कि संत बड़े कमजोर और नपुसंक रहे होंगे। उनमें कोई बल न रहा होगा। क्या आत्मा की बातें करते रहे होंगे, जो गुलामी को नहीं तोड़ सकते? उसका कुल कारण इतना था कि हमने धर्म को राजनीति से कभी संबंधित नहीं माना है। इसलिए मैं कहता हूं, धर्म के बिना राजनीति केवल मरा हुआ शरीर है और राजनीति के बिना धर्म केवल एक प्रेतात्मा है, जिसके पास कोई शरीर नहीं है। भूत की तरह जो आत्मा भटकती है, जिसका जिंदगी में कोई स्थान नहीं रह जाता। अतः इन दोनों में संबंध अनिवार्य है। ये दोनों संयुक्त हों और संयुक्त होने में भी सदा ध्यान रहे, धर्म सदा ऊपर रहे, राजनीति सदा नीचे रहे। धर्म सिर है, राजनीति है पैर। धर्म आत्मा है, शरीर है राजनीति। राजनीति कभी धर्म के ऊपर नहीं बिठाई जा सकती। धर्म जीवन का लक्ष्य है, राजनीति साधन है। धर्म है साध्य, राजनीति है साधन। धर्म है मंजिल, राजनीति है मार्ग। मार्ग कभी मंजिल के ऊपर नहीं हो सकता। अगर यह हमारे ध्यान में हो तो हम आने वाले दिनों में अच्छे आदमी को ताकत दें, बल दें, अच्छे आदमी के लिए जीवन को बदलने की और सत्ता को हाथ में लेने की सुविधा जुटाएं तो कोई कारण नहीं कि भारत का आने वाला भविष्य स्वर्णिम और सुंदर नहीं हो सकता है।
लेकिन जैसा आज चल रहा है, ऐसा अगर आगे भी चलता है तो भारत रोज अंधेरे में गिरता चला जाएगा। और मैं आपको कह देना चाहता हूं कि अगर बुरे व्यक्तियों के राज्य से भारत को बचाना हो तो भारत के साधु और संन्यासियों को हिम्मत करनी पड़ेगी। चाहे उनका मोक्ष खो जाए, चाहे उनका परलोक बिगड़ जाए। फिर जन्म ले लेना। जन्म अनंत हैं। कोई जल्दी भी क्या है इतनी। बहुत जन्म पड़े हैं। बहुत जन्मों की सुविधा है। फिर उपाय कर लेना साधना का। लेकिन एक बार हिंदुस्तान के सारे अच्छे आदमियों को इकट्ठे होकर एक बीस साल हिंदुस्तान के भाग्य को सुंदर बनाने की कोशिश जरूर करनी चाहिए।

ये थोड़ी सी बाते मैंने रखीं। मेरी बातों से सहमत होना जरूरी नहीं है। अगर आप मेरी बातों को सोचेंगे भी तो मेरा काम पूरा हो जाता है। हिंदुस्तान सोच भी नहीं रहा है। जय महात्मा गांधी की, बस इतना काम है हमारा। सोचना विचारना नहीं है। गांधी पर बस जय जयकार करो, लेकिन सोचो मत कि गांधीजी ने क्या नहीं किया! सोचना मत कि गांधी जी से क्या भूल हो गई! सोचो मत कि गांधीजी की भूल कहीं महंगी तो नहीं पड़ गई है और उसे बदलने के लिए कुछ किया जाए या नहीं किया जाए! मैंने जो कहा, मुझसे सहमत होने की जरा भी जरूरत नहीं है। लेकिन मेरी बातों पर अगर सोचना हो सकता है, सोच-विचार पैदा हो तो मार्ग स्पष्ट हो सकता है, और जिंदगी को बदलने में हम समर्थ हो सकते हैं।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का उन्नीसवां प्रवचन

समाज परिवर्तन के चौराहे पर

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछली चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। संक्षिप्त में सभी प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करूंगा।
एक मित्र ने पूछा है कि समाज के परिवर्तन में, और परिवर्तन के लिए युवक-वर्ग क्या कर सकता है?

पहली बात, जो युवक वर्ग को करनी है, और कर सकता है, वह है युवक होने की।
इस देश में युवक मुश्किल से कोई कभी होता है। बच्चे होते हैं, बूढ़े होते हैं, युवक कोई भी नहीं होता है। और हमने ऐसी व्यवस्था की है कि बचपन से सीधा बुढ़ापा आ जाता है, युवा अवस्था नहीं आ पाती है। उसे हम टाल जाते हैं। युवक होने का मतलब क्या है?
युवक होने का मतलब उम्र से नहीं है, और इसलिए कोई आदमी बूढ़ा होकर भी युवक हो सकता है। और कोई युवक होकर भी बूढ़ा हो सकता है।
पहला कर्तव्य तो यह है युवक का कि वह सिर्फ उम्र से युवक न हो, चित्त
से युवक हो। और भारत के युवक ने वह कर्तव्य अब तक पूरा नहीं किया है। युवा मन के कुछ लक्षण हैं। जैसे युवा मन पीछे की तरफ नहीं देखता, आगे की तरफ देखता है। जैसे युवा मन स्मृतियों में समय व्यतीत नहीं करता, योजनाओं में शक्ति लगाता है। जैसे युवा मन, स्वर्ग की, मोक्ष की, परलोक की नहीं सोचता, पृथ्वी को बदलने का विचार करता है। इस देश के सारे धर्म चूंकि वृध्द हैं और वृध्द ने इसे निर्मित किए हैं, इसलिए कोई भी धर्म इस पृथ्वी को बदलने का खयाल नहीं करते।
हमारे देश में एक भी धर्म ऐसा पैदा नहीं हो सका, जो इस पृथ्वी को रूपांतरित करने की कल्पना करता है। इस देश के सभी धर्म कहते है, इस पृथ्वी को छोड़ना है, जन्म को छोड़ना है, जीवन को छोड़ना है, सब छोड़ कर, आवागमन से मुक्ति पानी है। दुख है जीवन में। तो बूढ़ा चित्त कहेगा, भाग जाओ जीवन से, युवा चित्त कहेगा कि दुख को बदलें, इतना फर्क होगा। अगर इस मकान में आग लगी है, तो बूढ़ा चित्त कहेगा कि इस मकान से दूर निकल जाओ। युवा चित्त कहेगा, इस आग को बुझाना है, भाग नहीं जाना है।
इस देश में हम निरंतर ही, भागने की, ऐस्केप की, पलायन की बात सोचते रहे हैं।
वह हमारे पुराने चित्त का लक्षण था। युवक को उससे बचना पड़ेगा। उसे इस पृथ्वी को बदलने की चिंता करनी पड़ेगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि इस जीवन के बाद कोई जीवन नहीं है। लेकिन इस जीवन के बाद कोई जीवन है, उसे भी युवा चित्त ही पा सकता है। उसे बूढ़ा चित्त नहीं पा सकता है। और इस जीवन के पार जो जीवन है, जिन्होंने इस जीवन को निर्मित नहीं किया, वे उस जीवन को भी निर्मित नहीं कर सकेंगे। सीढ़ी है यह जीवन, यह व्यर्थ और अकारण नहीं है। परमात्मा की इस विराट योजना में, यह जीवन अकारण नहीं है। लेकिन साधु-संत और महात्मा यही समझा रहे है कि परमात्मा की कोई भूल हो गई है। और हमें इस जीवन से बचने की कोशिश करनी है।
यह जीवन एक सीढ़ी है, उस जीवन के लिए। शरीर एक सीढ़ी है, आत्मा के लिए, संसार एक सीढ़ी है, परमात्मा के लिए। लेकिन कुछ हमारी परम्परा उस सीढ़ी को मिटा डालने को उत्सुक हैं। वह कहती हैं, यह सीढ़ी नहीं चाहिए। हम बिना सीढ़ी के सीधे ऊपर पहुंच जाना चाहते हैं। सीढ़ी टूट जाती हैं, ऊपर तो नहीं पहुंचते। फिर सीढ़ी पर भी नहीं पहुंच पाते, सीढ़ी से नीचे तड़फते रह जाते हैं।
युवा चित्त को पलायनवादी, जो हमारे देश की पुरातन धारा हैं, उसे तोड़ देना पड़ेगा। और उसे तोड़ने को एक सूत्र हमें समज लेना चाहिए। यह हमारी पूरी परम्परा जीवन निषेध की है, लाइफ निगेटिव हैं। यह जीवन का निषेध करती हैं।
बूढ़ा चित्त जीवन का निषेध करता है--बूढ़ा आदमी नहीं कह रहा हूं, बूढ़ा चित्त।

बूढ़ा चित्त जीवन का निषेध करता हैं। वह ऐसा नहीं होता हैं, जैसा कि सुना हो ईसप की कहानी--एक लोमड़ी अंगूर के बगीचे से निकली। अंगूर के झुपकोंका निमंत्रण मिल रहा हैं और उसने छलांग लगाई, लेकिन झुपके दूर हैं। बहुत कोशिश की है, लेकिन झुपकोंका तक नहीं पहुंच सकी हैं और तभी झाड़ी के पास से एक खरगोश ने पूछा है कि मौसी, क्या बात हैं? अंगूरों तक पहुंच नहीं पा रही हैं! वह थकी लोमड़ी अकड़ कर खड़ी हो गई और उसने कहा, मैं और अंगूरों तक न पहुंच पाऊं? लेकिन अंगूर खट्टे हैं, पहुंचने योग्य नहीं हैं।
यह बूढ़ा चित्त है, जो अपने अहंकार को भी बचा लेता है, नहीं पहुंच पाने
की क्षमता को भी छिपा लेता है, और फिर जहां नहीं पहुंच पाता, वहां हम पहुंचना ही नहीं चाहते हैं, इसलिए उस जगह की निंदा में रस हो जाता है। इस देश के युवक को, इस बूढ़े चित्त से बचना पड़ेगा। बड़ा काम है बूढ़े चित्त से बचना और बहुत कठिन काम भी हैं। बहुत कठिन काम है--युवा होना चौबीस घंटे खतरे में जीना है, बूढ़ा होना सुरक्षा में जीना है। इसलिए जो आदमी सुरक्षा के लिए आतुर होता है, वह बूढ़ा हो जाता है। जो खतरे में जीने की तैयारी रखता है, वह युवा रह पाता है। जैसे कोई तलवार म्यान में रख दे तो जंग खाती है, खाली जाएगी, सुरक्षित म्यान में रखी-रखी जंग खा जाएगी। तलवार को जिन्दा रहना हो और धार बचानी हो तो उसे युद्ध में होना चाहिए, चौबीस घंटे खतरे में। चित्त भी तभी युवा रहता है, जब चौबीस घंटे खतरे में जीता है। लेकिन हमारे देश में खतरे में कोई जीना नहीं चाहता है।
युवा आदमी भी इस फिकर में लगता है कि कैसे बिना खतरे के जिंदगी बीत जाए। बिना खतरे से जिंदगी बिताने का मतलब है कि फिर जिंदगी कुनकुनी, ल्युकवार्म होगी। फिर जिंदगी ऐसी होगी, मरी-मरी होगी।
सुना है मैंने कि एक सम्राट ने अपनी सुरक्षा के लिए एक महल बनाया और
उस महल को एक ही दरवाजा रखा ऐसा, ताकि कोई चोर, कोई हत्यारा, कोई डाकू महल में प्रवेश न कर जाए। पड़ोस का सम्राट उसके महल को देखने आया। देख कर प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि अदभुत है महल। ऐसी सुरक्षा मुझे भी चाहिए। मैं भी ऐसा ही महल बनाऊंगा--एक ही द्वार है, फिर न कोई द्वार है, न कोई खिड़की है, और उस द्वार पर हजारों सैनिकों का पहरा है। आप बिल्कुल सुरक्षित हैं, सिक्योर्ड हैं, आपकी जिंदगी में खतरा नहीं है। भवनपति प्रसन्न हुआ है, प्रशंसा सुन कर। मित्र सम्राट को द्वार पर छोड़ने आया है। फिर दुबारा उस मित्र से सम्राट ने कहा कि आप बड़े अदभुत विचार के आदमी हैं। इतना सुरक्षित भवन बनाया, मैं भी बनाऊंगा। जब यह कह रहा है, तभी सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी हंसने लगा है।
वे दोंनों युवक हैं--वह सम्राट जिसने मकान बनाया है, वह सम्राट जो विदा हो रहा है। वह भिखारी बूढ़ा है। वह जोर से हंसने लगा है। उस मकान के मालिक ने कहा, क्यों हंस रहे हो? क्या भवन में कोई भूल रह गई है? उस वृद्ध भिखारी ने कहा, मैं यहीं बैठा हुआ, इस मकान को बनता देख रहा हूं। आज आप सामने दिखाई पड़ गए है तो पूछ पड़े--कह दूं, एक भूल रह गई है। सम्राट ने कहाः बोलो, कौन सी भूल है? उसे हम ठीक कर देंगे। उस भिखारी ने कहाः वह जो एक दरवाजा है, आप भीतर हो जाएं और उसको भी बंद कर लें। फिर आप पूरी तरह सुरक्षित हो जाएंगे। अभी खतरा है। इस एक दरवाजे से भी दुश्मन भीतर जा सकता है। और दुश्मन न भी जा सके, तो मौत तो इस दरवाजे से भीतर चली ही जाएगी। आप बंद कर लें इसें, पत्थरों से जुड़वा दें और स्वयं भीतर हो जाएं, फिर मौत भी भीतर न जा सकेगी।
उस सम्राट ने कहाः तुम बड़े पागल मालूम होते हो। अगर मैं एक दरवाजा और बंद कर दूंगा तो मौत के आने की जरूरत न रह जाएगी, मर ही जाऊंगा। यह मकान नहीं, कब्र हो जाएगा। उस बूढ़े ने कहाः कब्र तो यह हो गया है, थोड़ी सी कमी है, इस दरवाजे की। सम्राट को बात तो खयाल में आई। उसने उस बूढ़े फकीर से कहा, तुम आखिर हो कौन? उस बूढ़े फकीर ने कहाः कभी इसी तरह के कपड़े में रहने के हम आदी थे। लेकिन जब यह पता चला कि जितने दरवाजे बंद होते चले जाते हैं जिंदगीमें उतनी कब्र बन जाती हैं जिंदगी, तो हमने सब दरवाजे ही तोड़ डाले, हमने सब दीवालें ही हटा डालीं। अब हम खुले आकाश के नीचे ही रहते हैं। खतरे हैं बहुत, लेकिन जिंदगी भी है बहुत।

युवा चित्त खतरे में जीने का नाम है।
युवक के सामने एक ही कर्त्तव्य है, सुरक्षा से बचें। सुरक्षा हमें खायगा ही। सुरक्षा के कारण हम नयें की खोज नहीं कर पाते। क्योंकि सुरक्षा सदा पुराने के साथ होती है। नयें में सदा भूल-चूक हैं, नये में सदा असफलता हैं। नया पुराने के बराबर प्रमाणित होगा या नहीं होगा, यह सदा डर हैं। नयें से कहीं पहुंचेंगे, नहीं पहुंचेंगे, यह भय है। नये का डर, नये का भय, हमें पुराने के साथ की उपलब्धता है। सुरक्षा पुराने को पकड़ा देती है और नये से--इसलिए हम नया अविष्कार न करेंगे, नई खोज न करेंगे, जिन्दगी के लिए नये नीयम न निकालेंगे, जीवन के संबंधो में नये संबंध स्थापित न करेंगे। पुरानी लीक को पकड़ेंगे और चलेंगे।
बूढ़ा चित्त पुरानी लीक पर चलने वाला चित्त है। भटकता नहीं कभी, भूलता नहीं कभी, लेकिन जीता भी नहीं कभी। भटकन भी चाहिए, भूल भी चाहिए, असफलता भी चाहिए। ध्यान रहे, जो असफल होने की हिम्मत जुटाते हैं, उनके ही सफल होने की संभावना भी है। जो असफलता से बच जाते हैं वे सफलता से भी बच जाते हैं। ये दोनों चीजें साथ हैं। जो भूल नहीं करते हैं, वे कभी ठीक भी नहीं कर पाते हैं। और जो भूल करने की हिम्मत जुटाते हैं, उनमें कभी ठीक भी हो सकता है। तो मैं इतना ही कहूंगा संक्षिप्त में कि युवक युवक होने की फिकर करे! इतना ही काफी है। इस फिकर में सब आ जाएगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा हैः उन्होंने पूछा हैं कि विश्वास नहीं करना चाहिए, आपने कहा, विचार करना चाहिए, और आपने गंगाऔरअमेजान के उदाहरण दिए हैं। उन मित्र ने पूछा है कि गंगा और अमेजान भी तो समुद्र पर विश्वास करके समुद्र तक जाती हैं। अगर उनको विश्वास ही न हो कि समुद्र है, तो वे समुद्र की तरफ जाएंगी कैसे? तो हम भी विश्वास करके ही जा सकेंगे, अन्यथा जाएंगे कैसे?

इस बात को थोड़ा ठीक से समझना उचित होगा। अमेजान और गंगा समुद्र के विश्वास के कारण समुद्र तक नहीं जाती। अमेजान और गंगा अपने अति बल के कारण समुद्र तक जाती हैं, नहीं तो छोटे-मोटे नाले भी विश्वास करके सागर तक पहुंच जाएंगे। अति बल है, प्रवाह है, शक्ति है, वह शक्ति सागर तक ले जाती है। कोई विश्वास नहीं हैं अमेजान को कि सागर है कहीं। पता ही नहीं है, तो विश्वास कैसे होगा? और अमेजान के पास कोइ शास्त्र भी नहीं हैं जो पुरानी नदियों ने लिखे हों और पुराने गुरु छोड़ गए हों, जिस पर वे भरोसा कर लें। पुरानी नदियों ने लौट कर भी नहीं बताया है, नई नदियों को कि सागर है! जो गई हैं, वह तो सागर में चली गई, उनके पास कोई परंपरा भी नहीं है, विश्वास का कोई उपाय नहीं है। अमेजान जाती है, अपने भीतर की ओवरफ्लोइंग, भीतर-ए-ताकत, वह सागर तक ले जाती है।
आदमी भी विश्वास से नहीं पहुंचता परमात्मा तक, पहुंचता है ओवरफ्लोइंग एनर्जी से।
उसके भीतर भी अतिरेक में बहती हुई शक्ति चाहिए, और जब कोई भी व्यक्ति अतिरेक में बहता है तो सागर तक पहुंच जाता है। सागर का कोई कृपा नहीं है उस पर। अतिरेक और बहाव सागर में अनिवार्य रूप सें ले जाते हैं। और जो आदमी विश्वास करता है, पहली बार, जो आदमी विश्वास करता है, उसमें शक्ति का अभाव होता है। असल में इंपोटेंसी ही विश्वास करती है। कारण हैं उसके। क्लीवता विश्वास करती है। क्योंकि ध्यान रहे, दूसरे में विश्वास अपने में विश्वास की कमी का द्योतक है।
असंदिग्ध रूपेण विश्वास आत्म-विश्वास की कमी का प्रमाण है।
जिस आदमी को अपने में जितना कम विश्वास है, उतना वह दूसरों में ज्यादा विश्वास करता है। और जिस आदमी को अपने पर पूरा विश्वास है, उसे दूसरे में विश्वास की कोई जरूरत नहीं रह जाती। अपने में विश्वास और बात है, दूसरे में विश्वास और बात है। और अपने में विश्वास करना नहीं पड़ता कि आप कोशिश करके करेंगे। अगर कोशिश करके करेंगे तो वह झूठ होगा। जो आदमी अपने में कोशिश करके विश्वास करेगा, दो बातें तय हो गयीं--एकः मूलतः उसको अपने में

अविश्वास है। तब तो उसे कोशिश करनी पड़ रही है। कोशिश करके विश्वास कर लेता है। और जिसको अपने में अविश्वास था उसका अपने पर विश्वास से कितना बलवान हो सकता है? नहीं, कोई बलवान नहीं होगा, सिर्फ ऊपर से लेबल चिपका हुआ लेबल होगा, जो जरा में फाड़ा जा सकता है। स्किन-डीप भी नहीं होगा, जरा चमड़ी उखाड़ी और सब बह जाएगा।
हम दूसरे में विश्वास इसलिए कर रहे हैं। कोई बुद्ध में, कोई महावीर में, कोई राम में, कोई मोहम्मद में, कोई कृष्ण में--इसमें राम, बुद्ध, कृष्ण का कोई कसूर नहीं है, हम कमजोर हैं। हमें डर लगता है कि अकेले में खड़े न हो सकेंगे, तो किसी का सहारा लेकर खड़े हो जाएं। डर लगता है, के अपने में तो विश्वास न कर सकेंगे, किसी और में कर लें। यह और में विश्वास सब्स्टीट्यूट है, यह अपने में विश्वास की कमी को भरने का उपाय है, लेकिन भरती नहीं है कमी, भर सकती नहीं है। किसी दूसरे का विश्वास आत्म-विश्वास को बढ़ा नहीं सकता है, घटाता चला जाएगा। और घटाता चला जाएगा।
यह जो मैंने कहा है कि विश्वास मत करें, यह नहीं कहा है कि अपने में विश्वास मत करें। असल में अपने में विश्वास का सवाल नहीं है, अपने को पहचानें। उस पहचान में शक्ति आएगी। उस शक्ति से भरोसा आएगा, उस भरोसे से श्रद्धा जन्मेगी, वह करनी नहीं पड़ेगी।
एक बच्चे को अपने पैर में विश्वास नहीं करना होता है। चलना होता है, चलने से विश्वास आ जाता है कि पैर है और चलते हैं। एक बच्चे को पहले यह नहीं सीखना पड़ता है कि मैं अपने पैर में विश्वास करूं, तब चल सकूंगा। चलता है, तो विश्वास आता है, क्योंकि चलना बता देता है कि मेरे पैर चलते हैं, पहले से विश्वास करके नहीं चलता। विश्वास करके चल भी नहीं सकता। हां, कोई लंगड़ा हो तो वह पहले विश्वास करेगा। चलूंगा, चल कर बताऊंगा, और तब पाएगा, पहले कदम से कि गिर पड़ा है और विश्वास सब खंडित हो गया है। तब वह दूसरे पर विश्वास करेगा, कोई और चला देगा। भगवान की कृपा से, लंगड़े-लूले भी पहाड़ चढ़ जाते हैं! शास्त्र पढ़ेगा, सोचेगा, चलो भगवान की कृपा से चढ़ जाएंगे, चलने से भरोसा आता है।
जब मैंने कहा कि विचार करो, तो जितना आप विचार करेंगे उतना आत्म-विश्वास आएगा। क्योंकि जितना आप विचार करने में समर्थ होंगे, उतना, जैसा बच्चे को चलने में विश्वास आता है, आपको अपनी आत्मा में विश्वास आएगा। वह विश्वास, वह बहती हुई शक्ति, सागर तक ले जाती है। सागर तक पहुंचने का सवाल नहीं है, सागर तक पहुंच ही जाएंगे। सिर्फ इतनी शक्ति होनी चाहिए कि बह सकें और देखें।
नदी को, अगर सागर तक पहुंचने का मार्ग समझेंगे, कुछ पता नहीं, कहीं कोई रास्ते पर मील के पत्थर नहीं लगे हैं नदी के लिए, कि जब यहां से जाओ, बाएं मुड़ो, चौरस्तों पर पुलिसवाले नहीं खड़े हैं, कि बताएं कि सागर पूरब की तरफ है, कहां पश्चिम की तरफ भागी जा रही हो? नदी भागती है! भागती है! अनजान, अपरिचित रास्तों को तोड़ती भागती चली जाती है। जहां रास्ता मिलता है, बनता है, भागती चली जाती है और पहले से बना हुआ कोई रास्ता नहीं है कि तैयार है, उस पर से पहुंच जाए। रेल की पटरी थोड़े ही है नदी कि रेल की पटरी बनी है तैयार, रेल के डिब्बे दौड़ रहे हैं!
आदमी नदियों जैसा नहीं है, रेल के डिब्बों जैसा हो गया है, होना नदियों जैसा चाहिए। बंधी हुई पटरियां है, हिंदुओं की रेल की पटरी बंधी है, मुसलमानों की पटरी बंधी है। दौड़ रहे हैं डिब्बे। जरा सी भी पटरी इधर-उधर हो जाती, तो डिब्बे टकरा जाते हैं, हिंदू-मुस्लिम दंगे हो जाते हैं। फिर डिब्बे में बैठ कर अपनी-अपनी पटरियों में सवार हो जाते हैं, और दुगनी ताकत से अपनी पटरी को पकड़ लेते हैं।
लेकिन, नदियां ऐसे नहीं जा रही हैं। बंधी हुई लीक नहीं है वहां। सागर
का कोई पता नहीं है। अपना भरोसा है सिर्फ। असल में अगर हम ठीक से समझें तो नदी अपने भरोसे बढ़ते-बढ़ते सागर हो जाती है, यह कोई सागर की खोज में नहीं जाती। आदमी भी अपने पर भरोसा रखें, बढ़ते-बढ़ते परमात्मा हो जाता है। परमात्मा को खोजने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता। आदमी ही अपने भरोसे बढ़ते- बढ़ते एक दिन अचानक पाता है कि मैं आदमी नहीं हूं, मैं तो सागर हो गया हूं।

यह भरोसा नहीं है, विश्वास नहीं है पहले से किया गया, यह बिलीफ नहीं है। एक दिन यह ज्ञान बन जाता है। विचार से जो चलता है, वह ज्ञान तक पहुंच जाता है। विश्वास से जो चलता है, वह अज्ञान में सदा के लिए ठहर जाता है। क्योंकि विश्वास चलाता ही नहीं हैं, विश्वास चला ही नहीं सकता। विश्वास में कोई गति ही नहीं है।

एक मित्र ने पूछा हैः चमत्कारों के संबंध में आपका क्या खयाल है?

चमत्कार शब्द का हम प्रयोग करते हैं, तो साधु-संतों का खयाल आता है। अच्छा होता कि पूछा होता कि मदारियों के संबंध में आपका क्या खयाल है? दो तरह के मदारी हैं--एकः जो ठीक ढंग से मदारी है, आनेस्ट। वे सड़क के चौराहों पर चमत्कार दिखाते हैं। दूसरेः ऐसे मदारी हैं, डिसआनेस्ट, बेईमान! वे साधु-संतों का वेश सिद्ध करके, वही चमत्कार दिखलाते हैं, जो चौरस्तों पर दिखाए जाते हैं। ईमानदार मदारी तो स्वागत योग्य है, क्योंकि उसकी एक कला है। बेईमान मदारी सिनर है, अपराधी है, क्योंकि मदारीपन के आधार पर, वह कुछ और मांग कर रहा है।
अभी मैं पिछले वर्ष एक गांव में था। एक बूढ़ा आदमी आया। मित्र लेकर आए
थे, उन्होंने कहा कि आपको कुछ काम दिखलाना चाहते हैं। मैंने कहा, दिखाएं। उस बूढ़े आदमी ने बडें अदभुत काम दिखलाए। रुपयों को मेरे सामने फेंका, वह दो फीट ऊपर जाकर हवा में विलीन हो गया। फिर पुकारा, वह दो फीट पहले हवा में प्रकट हुआ, हाथ में आ गया। मैंने उस बूढ़े आदमी से कहा, बड़ा चमत्कार करते हैं आप। उसने कहा, नहीं, यह कोई चमत्कार नहीं है। सिर्फ हाथ की तरकीब है। मैंने कहा, तुम पागल हो! सत्य साईंबाबा हो सकते थे, क्या कर रहे हो? क्यों इतनी सच्ची बात बोलते हो? इतनी ईमानदारी इस युग में उचित नहीं है। लाखों लोग तुम्हारे दर्शन करते। तुम्हें मुझे दिखाने न आना पडता, मैं ही तुम्हारे दर्शन करने आता।
वह बूढ़ा आदमी कहने लगा, चमत्कार कुछ भी नहीं है। सिर्फ हाथ की तरकीब है। उसने सामने ही--कोई मुझे मिठाई भेंट कर गया था--एक लड्डू उठा कर मुंह में डाला, चबाया, पानी पी लिया। फिर उसने कहा कि नहीं, पसंद नहीं आया। फिर उसने पेट जोर से खींचा पकड़ कर, लड्डू को वापस निकाल कर सामने रख दिया। मैंने कहा, अब तो पक्का ही चमत्कार है। उसने कहा कि नहीं। अब दुबारा आप कहिए, तो मैं न दिखा सकूंगा, क्योंकि लड्डू छिपा कर आया और वह लड्डू पहले मैंने ही भेंट भिजवाएं थें। इसके पहले जो दे गया है, अपना ही आदमी है।
मगर यह ईमानदार आदमी है, एक अच्छा आदमी है। यह मदारी समझा जाएगा। इसे अगर कोई संत समझता तो बुरा न था, कम से कम सच्चा तो था। लेकिन मदारियों की जमात हैं, और वह कर रहे हैं यही काम। कोई राख की पुड़िया निकाल रहा है, कोई ताबीज निकाल रहा है, कोई स्विस मेड घड़ियां हवा से निकाल रहा है। और छोटे, साधारण जन नहीं हैं--जिनको हम साधारण नहीं कहते हैं, गवर्नर हैं, वाइस चांसलर हैं, हाईकोर्ट के जजेस हैं, वह भी ईन मदारियों के आगे हाथ जोड़े खड़े हैं। इससे सिर्फ एक पता चलता है कि हमारे जजेस, हमारे वाइस चांसलर, हमारे गवर्नर भी ग्रामीण से ऊपर नहीं उठ सके हैं। उनकी बुद्धि भी साधारण ग्रामीण आदमी से ज्यादा नहीं। फर्क इतना है कि ग्रामीण आदमी के पास सर्टिफिकेट नहीं है, उनके पास सर्टिफिकेट हैं। ये सर्टिफाइड ग्रामीण हैं।
यह चमत्कार--इस जगत में चमत्कार जैसी चीज सब में होती नहीं, हो नहीं सकती। इस जगत में जो भी होता है, नियम से होता है। हां, यह हो सकता है, नियम का हमें पता न हो। यह हो सकता है कि कार्य, कारण का हमें बोध न हो। यह हो सकता है कि कोई लिंक, कोई कड़ी अज्ञात हो, जो हमारी पकड़ में नहीं आती, इसलिए बाद की कड़ियों को समझना बहुत मुश्किल हो जाता है।
बाकू में--उन्नीस सौ सत्रह के पहले, जब रूस में क्रांति हुई थी--उन्नीस
सौ सत्रह के पहले, बाकू में एक मंदिर था। उस मंदिर के पास प्रति वर्ष एक मेला लगता था। वह दुनिया का सबसे बड़ा मेला था। कोई दो करोड़ लोग वहां इकट्ठे होते थे। और बहुत चमत्कार की जगह थी वह, वह जो मंदिर की रेती थी, वह

अग्नि का मंदिर था और एक विशेष दिन को, एक विशेष घड़ी में, उस अग्नि के मंदिर में, अपने आप अग्नि उत्पन्न होती थी। वेदी पर अग्नि की लपटें प्रकट हो जाती थीं। लाखों लोग खड़े होकर देखते थे। कोई धोखा न था, कोई जीवन न था, कोई आग जलाता न था, कोई वेदी के पास जाता न था। उस वेदी पर अपने आप अग्नि प्रकट होती थी, चमत्कार भारी था। सैकड़ों वर्षों से पूजा होती थी, भगवान प्रकट होते, अग्नि के रूप में अपने आप!
फिर उन्नीस सौ सत्रह में वहां क्रांति हो गई। जो लोग आए, वह विश्वासी
न थे, उन्होंने मड़िया उखाड़ कर फेंक दी और गड्ढे खोदे। पता चला, वहां तेल के गहरे कुएं हैं--मिट्टी के तेल के। मगर फिर भी यह तो बात साफ हो गई कि मिट्टी के तेल के घर्षण से भी आग पैदा होती है, लेकिन खास दिन ही होती थी। तब तो और खोज-बीन करनी पड़ी, तो पता चला कि जब पृथ्वी एक विशेष कोण पर होती है, अपने झुकाव के, तभी नीचे के तेल में घर्षण हो पाता है। इसलिए निश्चित दिन पर प्रतिवर्ष वह आग पैदा हो जाती है। जब यह बात साफ हो गई, तब वहां मेला लगना बंद हो गया। अब भी वहां आग पैदा होती है, लेकिन अब कोई इकट्ठा नहीं होता है। क्योंकि कार्य, कारण पता चल गया है, बात साफ हो गई है। अग्नि देवता अब भी प्रकट होते हैं, लेकिन वह केरोसिन देवता होते हैं, अब वह अग्नि देवता नहीं रह गए! चमत्कार जैसी कोई चीज नहीं होती। चमत्कार का मतलब सिर्फ इतना ही होता है कि कुछ है जो अज्ञात है, कुछ है जो छिपा है, कोई कड़ी साफ नहीं है, वह हो रहा है।
एक पत्थर होता है अफ्रीका में, जो पानी को, भाप को पी जाता है, पोरस होता है, थोड़े से उसमें छेद होते हैं, वह भाप को पी लेते हैं। तो वर्षा में वह भाप को पी जाता है, काफी भाप को पी जाते हैं। उस पत्थर का पोरस होना दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन वह स्पंजी है। उसकी मूर्ति बन जाती है। वह मूर्ति जब गर्मी पड़ती है, जैसे सूरज से अभी पड़ रही है, उसमें से पसीना आने लगता है। उस तरह के पत्थर और भी दुनिया में पाए जाते हैं। पंजाब में एक मूर्ति है, वह उसी पत्थर की बनी हुई है। जब गर्मी होती है, तो भक्तगण पंखा झलते हैं, उस मूर्ति को, कि भगवान को पसीना आ रहा है। और बड़ी भीड़ इकट्ठी होती है, क्योंकि बड़ा चमत्कार है--पत्थर की मूर्ति को पसीना आए!
तो जब मैं उस गांव में ठहरा था, तो एक सज्जन ने मुझे आकर कहा कि आप मजाक उड़ाते हैं। आप सामने देख लीजिए चल कर। भगवान को पसीना आ रहा है। और आप मजाक उड़ाते हैं! आप कहते है, भगवान को सुबह-सुबह दतौन क्यों रखते हो, पागल हो गए हो? पत्थर को दतौन रखते हो? पागल हो गए हो! कहते हो, भगवान सोएंगे, अब भोजन करेंगे। जब उनको पसीना आ रहा है, तो बाकी सब चीजें भी ठीक हो सकती हैं। वह ठीक कह रहा है, उसे कुछ पता नहीं है, कि वह जो पत्थर है, पोरस है। वह भाप को पी जाता है, गर्मी पड़ती है, उसमें से पसीना निकलता है। जिस ढंग से आप में पसीना बह रहा है, उसी ढंग से उसमें भी बहने लगता है। आप में भी पसीना कोई चमत्कार नहीं है। आपका शरीर पोरस है, तो वह पानी पी जाता है, और जब गर्मी होती है, तो शरीर की अपनी एअरकंडीशनिंग की व्यवस्था है। वह पानी को छोड़ देता है, ताकि पानी भाप बन कर उड़े, और शरीर को ज्यादा गर्मी न लगे। वह पत्थर भी पानी पी गया है। लेकिन जब तक हमें पता नहीं है, तब तक बड़ा मुश्किल होता है। फिर इस संबंध में, जिस वजह से उन्होंने पूछा होगा, वह मेरे खयाल में है। दो बातें और समझ लेनी चाहिए।
एक तो यह कि चमत्कार संत तो कभी नहीं करेगा! नहीं करेगा, क्योंकि कोई संत आपके अज्ञान को न बढ़ाना चाहेगा और कोई संत आपके अज्ञान का पोषण न करना चाहेगा। संत आपके अज्ञान को तोड़ना चाहता है, बढ़ाना नहीं चाहता। और चमत्कार दिखाने से होगा क्या? और बड़े मजे की बात है, क्योंकि हम कभी पूछते नहीं कि जो लोग राख कि पुड़िया निकालते हैं, आकाश से ताबीज गिराते हैं, इन सबको कहना चाहिए कि काहे को मेहनत कर रहे हैं, राख की पुड़िया से किसका पेट भरेगा? एटामिक भट्टियां आकाश से उतारो, कुछ काम होगा! जमीन पर उतारो, गेहूं उतारो--गेहूं के लिए अमरीका के हाथ जोड़ो! और असली चमत्कार हमारे यहां हो रहे हैं। तो गेहूं क्यों नहीं उतार लेते हो? राख की पुड़िया से क्या होगा, गेहूं बरसाओ!

जब चमत्कार ही कर रहे हो, तो कुछ ऐसा चमत्कार करो कि मुल्क का कुछ हित
हो सके। सबसे ज्यादा गरीब मुल्क है दुनिया का, और सबसे ज्यादा चमत्कार यहां हो रहा है! धन बरसाओ, सोना बरसाओ, मिट्टी को सोना बना दो। चमत्कार ही करने हैं तो कुछ ऐसे करो। स्विस मेड घड़ी चमत्कार में निकले, तो क्या फायदा होगा? कम से कम मेड इन इंडिया तो निकालो। तो क्या होने वाला है? मदारीगिरी से होगा क्या? कभी हम सोचें कि हम इस पागलपन में किस भ्रांति में भटके हैं? पिछले दो ढाई हजार वर्षों से, इन्हीं पागलों के चक्कर में लगे हुए हैं। और हम कैसे लोग हैं कि हम यह नहीं पूछते कि माना कि आपने राख की पुड़िया निकाल ली, अब क्या मतलब है, होना क्या है? चमत्कार किया, बिल्कुल चमत्कार किया, लेकिन राख की पुड़िया से होना क्या है? कुछ और निकालों, कुछ काम की बात निकालो। वह कुछ निकल सकती नहीं! नहीं, तो यह मुल्क दीन क्यों हो, दरिद्र क्यों हो? यहां तो एक चमत्कारी संत पैदा हो जाए, तो सब ठीक हो जाए! एक हजार साल गुलाम रहे थे, और यहां ऐसे चमत्कारी पड़े हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। गुलामी की जंजीरें नहीं कटतीं। ऐसा लगता है कि अंग्रेज के सामने चमत्कार नहीं चलता। चमत्कार के लिए हिंदुस्तानी होना जरूरी है क्योंकि अगर खोपड़ी में थोड़ा भी विचार चलता हो, तो चमत्कार के कटने का डर रहता है। तो जहां विचार बिल्कुल न चलता हो वहा चमत्कार ही हो। सब से बड़ा चमत्कार यह नहीं है कि लोग चमत्कार कर रहे हैं। सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि हम खुद भी होते हुए चमत्कार देख रहे हैं, देखे चले जा रहे हैं और घरों में बैठ कर चर्चा कर रहे हैं कि चमत्कार हो रहा है! और कोई इन चमत्कारियों की जाकर गर्दन नहीं पकड़ लेता कि जो खो गई घड़ी है, उसको बाहर निकलवा ले, कि क्या मामला है, क्या कर रहे हो? वह नहीं होता है।
हम हाथ पैर जोड़ कर खड़े... उसका कारण है! हमारे भीतर कमजोरियां है। जब राख की पुड़िया निकलती है तो हम सोचते हैं कि भई, शायद और भी कुछ निकल आए, पीछे। राख की पुड़िया से कुछ होने वाला नहीं है न, आगे कुछ और संभावना बनती है। आशा बंधती है। और कोई बीमार है, किसी को नौकरी नहीं मिली है, किसी की पत्नी मर गई है, किसी का किसी से प्रेम हो गया है, किसी का मुकदमा चल रहा है, सबकी तकलीफें हैं। तो लगता है, जो आदमी ऐसा कर रहा है, अपनी तकलीफ भी कुछ कम कर रहा है। दौड़ो इसके पीछे।
बीमारी, गरीबी, परेशानी, उलझनें कारण हैं कि हम चमत्कारियों के पीछे भाग रहे हैं। कोई धार्मिक जिज्ञासा कारण है? धार्मिक जिज्ञासा से इसका कोई संबंध नहीं है। धार्मिक जिज्ञासा से इसका कोई वास्ता नहीं है। धार्मिक जिज्ञासा का क्या हल होगा, इन सारी बातों से? लेकिन लोग करते चले जाएंगे, क्योंकि हम गहरे अज्ञान में हैं, गहरे विश्वास में हैं। लोग करते चले जाएंगे और शोषण होता चला जाएगा। पुराने चित्त ने चमत्कारी आदमी पैदा किया था। लेकिन जिन-जिन कौमों ने चमत्कारी चित्त पैदा किए उन-उन कौमों ने विज्ञान पैदा नहीं किया।
ध्यान रहे, चमत्कारी चित्त वहीं पैदा हो सकता है जहां एंटी साइंटिफिक माइंड हो, जहां विज्ञान विरोधी चित्त हो। जहां विज्ञान आएगा वहां चमत्कार मरेगा। क्योंकि विज्ञान कहेगा, चमत्कार को कि हम का.ज और इफेक्ट में मानते हैं। हम मानते हैं, कार्य और कारण में। विज्ञान किसी चमत्कार को नहीं मानता। अब कितना अदभुत है मामला। विज्ञान किसी चमत्कार को नहीं मानता है, उसने हजारों चमत्कार किए हैं। जिनमें से अगर एक भी कोई संत कर देता, तो हत हजारों-लाखों साल तक उसकी पूजा करते। अब यह पंखा चल रहा है, यह माइक आवाज कर रहा है। यह चमत्कार नहीं होगा, क्योंकि यह विज्ञान ने किए हैं और विज्ञान किसी चीज को छिपाता नहीं है। सारे कार्य-कारण प्रकट कर देता है। आदमी का हृदय बदला जा रहा है। दूसरे का हृदय उसके काम कर रहा है। आदमी के सारे शरीर के पार्ट बदले जा रहे हैं।
आज नहीं कल, हम आदमी की स्मृति भी बदल सकेंगे। उसकी भी संभावना बढ़ती
जा रही है। कोई जरूरी नहीं है कि एक आइंस्टीन माइंड, वह मर ही जाए! आइंस्टीन मरे--मरे, उसकी स्मृति को बचा कर हम एक नये बच्चे में ट्रासप्लांट कर सकते हैं। इतने बड़े चमत्कार घटित हो रहे हैं, लेकिन कोई नासमझ न कहेगा कि ये चमत्कार हैं। कहेगा, यह चमत्कार क्या है? और कोई आदमी

की फोटो में से राख झड़ रही है, हम हाथ जोड़ कर खड़े है कि चमत्कार हो रहा है, बड़ा आश्चर्य है! अवैज्ञानिक विज्ञान विरोधी चित्त है। विज्ञान ने इतने चमत्कार घटित किए हैं कि हमें पता ही नहीं चलता, क्योंकि विज्ञान चमत्कार का दावा नहीं करता। विज्ञान खुला सत्य है, ओपन सीक्रेट है।
और यह जो बेईमानों की दुनिया है यहां... इसलिए अगर किसी आदमी को कोई तरकीब पता चल जाती है, तो उसको खोल कर नहीं रख सकता, क्योंकि खोले तो चमत्कार गया। इसलिए ऐसे मुल्क का ज्ञान रोज बढ़ जाता है। अगर मुझे कोई चीज पता चल जाए और चमत्कार करना हो तो, पहली जरूरत तो यह है कि उसके पीछे जो राज है, वह मैं प्रकट न करूं। आयुर्वेद ने बहुत विकास किया, लेकिन आयुर्वेद का जो वैद्य था, वह चमत्कार करता था। इसलिए आयुर्वेद पिछड़ गया। नहीं तो आयुर्वेद की आज की स्थिति एलोपैथी से कहीं बहुत आगे होती। क्योंकि एलोपैथी की खोज बहुत नई है। आयुर्वेद की खोज बहुत पुरानी है। इसलिए एक वैद्य को जो पता है, वह अपने बेटे को भी न बताएगा, क्योंकि चमत्कार गड़बड़ हो जाएगा। मजा लेना चाहता है!
टीका, टापू लगा कर और साफा वगैरह बांध कर बैठा रहेगा और मर जाएगा। वह
जो जान लिया था, वह छिपा जाएगा, क्योंकि वह कड़ी अगर पूरी बता दे, तो फिर चमत्कार नहीं होगा, लेकिन तब साइंस बंद करनी पड़ी। हिंदुस्तान में कोई साइंस नहीं बनती। जिस आदमी को जो पता है, वह उसको छिपा कर रखता है। वह कभी उसका पता किसी को चलने नहीं देता, क्योंकि पता चला कि चमत्कार खत्म हो गया। इस वजह से हमारे मुल्क में, ज्ञान की बहुत दफे किरणें प्रकट हुईं, लेकिन ज्ञान का सूरज कभी न बन पाया, क्योंकि एक-एक किरण मर गई। और उसे कभी हम बपौती न बना पाए कि उसे हम आगे दे सकें। उसको देने में डर है, क्योंकि दिया तो कम से कम जिसको देंगे उसे तो पता ही चल जाएगा कि अरे... !
एक महिला मेरे साथ प्रोफेसर थी--वह संस्कृत की प्रोफेसर थी। वह इसी तरह एक मदारी के चक्कर में आ गई, जिनकी फोटो से राख गिरती है और ताबीज निकलते हैं। उसने आकर मुझे से आशीर्वाद मांगा कि मैं अब जा रही हूं, सब छोड़ कर। मुझे तो भगवान मिल गए हैं। अब कहां यहां पड़ी रहूंगी? आप मुझे आशीर्वाद दें। मैने कहा, यह आशीर्वाद मांगना ऐसा है, जैसे कोई आए कि अब मैं जा रहा हूं कुएं में गिरने और उसको मैं आशीर्वाद दूं। मैं न दूंगा। तुम कुएं में गिरो मजे से, लेकिन इसमें ध्यान रखना कि मैंने आशीर्वाद नहीं दिया। क्योंकि मैं इस पाप में क्यों भागीदार होऊं। मरो तुम, फंसू मैं। यह मैं न करूंगा। तुम जाओ, मजे से गिरो। लेकिन जिस दिन तुम्हें पता चल जाए कि कुएं में गिर गई हो और अगर बच सकती हो, तो मुझे खबर जरूर कर देना।
पांच-सात साल बीत गए, मुझे याद भी नहीं रहा, उस महिला का क्या हुआ, क्या नहीं हुआ। पिछले वक्त बंबई में बोल रहा था सभा में, तो वह उठ कर आई और उसने मुझे आकर कहाः आपने जो कहा, वह घटना हो गई है। तो मैं कब आकर पूरी बात बता जाऊं, लेकिन कृपा करके किसी और को मत बताना। मैंने कहा, क्यों? उसने कहा, वह भी मैं कल बताऊंगी। वह कल आएगी! उसने कहाः अब बड़ी मुश्किल हो गई, जिन ताबीजों को आकाश से निकलते देख कर मैं प्रभावित हुई थी, अब मैं उन्हीं संत की प्राइवेट सेक्रेट्री हो गई हूं। अब मैं ही वह ताबीज बाजार से खरीद कर लाती हूं, बैग में रखती हूं, बिस्तर के नीचे छिपा आती हूं। प्रकट होने का सब राज पता हो गया है। अब मैं भी प्रकट कर सकती हूं। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। उसी चमत्कार से तो मैं आयी। अब वह चमत्कार सब खत्म हो गया है। अब मैं क्या करूं? मैने कहाः अब छोड कर आ जा। उसने कहाः अब मैं छोड़ कर आ जाऊं, तो उसमें तो और भी मुश्किल है।
कालेज में नौकरी करती थी, तो मुझे सात सौ रुपये मिलते थे। अब मुझे कोई दो-ढाई हजार रुपये का फायदा महीने का हो रहा है। और इतने रुपये आते हैं मेरे पास कि जितने उसमें से उड़ा दूं, वह अलग है, उसका कोई हिसाब नहीं है। इसलिए मैं आ तो नहीं सकती। इसलिए मैं आपसे कहती हूं। कृपा करके किसी और को मत कह देना। अब मेरा काम अच्छा चल रहा है। अब नौकरी है, लेकिन अब तो चमत्कार व अध्यात्म का कोई लेना-देना नहीं है।
इसलिए पता न चल पाए--वह सारा का सारा... चल रहा है! ज्ञान सदा प्रकट होने को उत्सुक होता है। बेईमानी सदा अप्रकट रहना चाहती है। ज्ञान सदा

खुलता है, बेईमानी सदा छिपती है। नहीं, कोई मिरेकल जैसी चीज दुनिया में नहीं होती, न हो सकती है। और अगर होती होगी, तो पीछे जरूर कारण होगा। यह हो सकता है, आज कारण न खोजा जा सके, कल खोज लिया जाए, परसों खोज लिया जाए।
यह हो सकता है, जीसस ने किसी के हाथ पर रखा हो और आंख ठीक हो गई हो, लेकिन फिर भी चमत्कार नहीं है। क्योंकि पूरी बात अब पता चल गई है। अब पता यह चल गई है कि कुछ अंधे तो सिर्फ मानसिक रूप से अंधे होते है। वे अंधे होते ही नहीं, सिर्फ मेंटल ब्लाइंडनेस होती है। उनको सिर्फ खयाल होता है अंधे होने का और यह खयाल इतना मजबूत हो जाता है कि आंख काम करना बंद कर देती है। अगर कोई भी आदमी उनको भरोसा दिलवा दे कि तेरी आंख ठीक हो गई, तो वह तत्काल उनका मन वापस लौट आएगा और आंख के तल पर काम करना शुरू कर देगा।
आज तो यह बात जाहिर हो गई है कि सौ में से पचास बीमारियां मानसिक हैं, इसलिए पचास बीमारियां तो ठीक की ही जा सकती हैं, बिना दवा के और सौ बीमारियों में से भी, जो बीमारियां असली हैं, उनमें भी पचास प्रतिशत हमारी कल्पना से बढ़ोतरी हो जाती है। वह पचास प्रतिशत कल्पना भी काटी जा सकती है। सौ सांप में से केवल तीन सांप में जहर होता है--तीन प्रतिशत सांपों में। सत्तानबे प्रतिशत सांप बिल्कुल ही बिना जहर के होते हैं। लेकिन सत्तानबे प्रतिशत सांपों के कांटने से भी आदमी मर जाते हैं। इसलिए नहीं कि जहर था, इसलिए कि सांप ने काटा। सांप के काटने से कम मरता है, सांप ने काटा मुझे, इसलिए ज्यादा मरता है।
तो जिस सांप में बिल्कुल जहर नहीं है, उससे आपको कटवा कर भी आपको मारा
जा सकता है। तब एक चमत्कार तो हो गया। क्योंकि जहर था नहीं। कोई कारण नहीं मरने का। लेकिन सांप ने काटा, यह भाव इतना गहरा है, यह मृत्यु बन सकती है। तब फिर मंत्र से आपको बचाया भी जा सकता है। झूठा सांप मार रहा है, झूठा मंत्र बचा लेता है। झूठी बीमारी को झूठी तरकीब बचा जाती है।
मेरे पड़ोस में एक आदमी रहते थे। वह सांप झाड़ने का काम करते थे। उन्होंने सांप पाल रखे थे। तो जब भी किसी सांप का झड़वाने वाला आता, तब वह बहुत शोरगुल मचाते, ड्रम पीटते और पुंगी बजाते और बडा शोरगुल मचाता, धुआं फैलाते। फिर उनका ही पला हुआ सांप आकर एकदम सिर पटकने लगता। जब वह सांप, जिसको काटे, वह आदमी देखता रहे कि सांप आ गया, वह सांप को बुला देता है। वह कहता, पहले सांप को मैं पूछूंगा कि क्यों काटा? मैं उसे डांटूंगा, समझाऊंगा, बुझाऊंगा। उसी के द्वारा जहर वापस करवा दूंगा। तो वह डांटते, डपटते, वह सांप क्षमा मांगने लगता, वह गिरने लगता, लोटने लगता। फिर वह सांप, जिस जगह काटा होता आदमी को, उसी जगह मुंह को रखवाते। बस वह आदमी ठीक हो जाता।
कोई छह या सात साल पहले उनके लड़के को सांप ने काट लिया, तब बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि वह लड़का सब जानता है। वह लड़का कहता है, इससे मैं न बचूंगा, क्योंकि मुझे तो सब पता ही है सांप अपने घर का ही है। वह भागे हुए मेरे पास आए और कहा कि कुछ करिए, मेरा लड़का मर जाएगा, सांप ने काट लिया। मैंने कहा, आपका लड़का और सांप के काटने से मरे, तो चमत्कार हो जाएगा। आपने कितने लोगों को सांप का जहर उतारा है। उसने कहा कि मेरे लड़के पर न चलेगा। क्योंकि उसको सब पता है कि सांप अपने ही घर का है। वह कहता है, यह तो घर का ही सांप है। वह बुलाइए, जिसने काटा हैं। तो आप चलिए, कुछ करिए, नहीं तो मेरा लड़का जाता है। सांप के जहर से कम लोग मरते हैं, सांप के काटने से ज्यादा लोग मरते है। वह काटा हुआ दिक्कत दे जाता है। वह इतनी दिक्कत दे जाता है कि जिसका हिसाब नहीं।
मैंने सुना है कि एक गांव के बाहर एक फकीर रहता था। एक रात उसने देखा
कि एक काली छाया गांव में प्रवेश कर रही है। उसने पूछा कि तुम कौन हो, कहां जा रही हो? उसने कहा, मैं मौत हूं, और आपने पूछ लिया तो आपसे कहती हूं कि गांव में मुझे एक हजार आदमी मारने हैं, उनको लेने जा रही हूं। फकीर निश्चिंत रहा। गांव में महामारी फैल गई, लोग मरने शुरू हो गए। महीने भर में, दस हजार से ऊपर लोग मर गए। फकीर ने कहा, मौत भी झूठ बोलने लगी? हद्द हो गई, कहा था हजार मारने हैं। महीने भर बाद मौत वापस लौटती थी, तो फकीर ने कहाः रुक! हद्द हो गई, हम तो सोचते थे, जिंदगी बेईमान हो गई है, मौत भी

बेईमान हो गई? तूने कहा था, एक हजार मारने हैं, दस हजार आदमी मर चुके हैं और अभी मरते ही जा रहे हैं।
उस मौत ने कहा, मैंने तो एक ही हजार मारे, नौ हजार तो घबड़ाहट में मर गए हैं। और मैं तो आज जा रही हूं और पीछे लोग मरते रहेंगे, उनसे मेरा कोई संबंध नहीं है। वह खुद मर रहे हैं। वह आत्महत्याएं हैं। एक आत्महत्या तो वह है, जो हमें दिखाई पड़ती है कि एक आदमी कुएं में डूब कर मर गया, एक आत्महत्या वह है, जो आदमी भरोसा करके मर जाता है, यदि मर गया, वह भी आत्महत्या हो गई। ऐसी आत्महत्याओं पर मंत्र काम कर सकते हैं, ताबीज काम कर सकते हैं, राख काम कर सकती है। इसमें संत-वंत का कोई लेना-देना नहीं है। अब हमें पता चल गया है कि उसकी मानसिक तरकीबें हैं, तो ऐसे अंधे आदमी हैं!
एक अंधी लड़की मुझे भी देखने को मिली, जो मानसिक रूप से अंधी थी, जिसको डाक्टरों ने कहा कि उसको कोई बीमारी नहीं है। जितने लोग लकवे से परेशान हैं, उनमें से कोई सत्तर प्रतिशत लोग मनसिक रूप से लकवा पा जाते हैं। पैरालिसिस पैरों में नहीं होती है, पैरालिसिस दिमाग में होती है, सत्तर प्रतिशत।
सुना है मैंने, एक घर में दो वर्ष से एक आदमी लकवे से परेशान है। उठ नहीं सकता है, न हिल सकता है। सवाल ही नहीं है उठने का--सूख गया है। एक रात आधी रात घर में आग लग गई है। सारे लोग घर के बाहर पहुंच गए है। घर के बाहर जाकर पता चला कि अरे! घर के प्रमुख को तो हम भीतर ही छोड़ आए, अब क्या होगा? लेकिन देखा कि प्रमुख तो भागे चले आ रहे हैं! वह तो बिल्कुल चमत्कृत हो गए। आग की तो बात भूल गए। देखा कि चमत्कार हो गया। लकवा जिसको दो साल से लगा है, वह भागा चला आ रहा है। उन्होंने कहाः अरे! आप, आप तो चल सकते हैं! उसने कहाः मैं! मैं कैसे चल सकता हूं? वह वहीं वापस गिर गया। मैं चल ही नहीं सकता। अभी लकवे के मरीजों पर सैकड़ों प्रयोग किए गए हैं। लकवे के मरीज को हिप्नोटाइज करके, बेहोश करके चलवाया जा सकता है। और वह चलता है, तो उसके अंग में तो कोई गड़बड़ नहीं है, हिप्नोसिस में तो वह चलता है। बेहोशी में चलता है। और होश में आकर लकवा होता है। चलता है, चाहे बेहोशी में ही चलता हो, एक बात का तो सबूत है कि उसके अंगों में कोई खराबी नहीं है, क्योंकि बेहोशी में अंग कैसे चल सकते हैं, अगर खराब हों। लेकिन होश में आकर वह लकवे में पड जाता है। तो इसका मतलब साफ है।
बहुत से बहरे हैं, जो झूठे बहरे हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि उनको पता है। उनको पता नहीं है, क्योंकि उनके अचेतन मन ने उनको बहरा बना दिया है। बेहोशी में सुनते हैं, होश में बहरे हो जाते हैं। ये सब बीमारियां ठीक हो सकती हैं, लेकिन इसमें चमत्कार कुछ भी नहीं है--इसमें चमत्कार कुछ भी नहीं है! चमत्कार नहीं है। विज्ञान जो भीतर काम कर रहा है, साइकोलॉजी, वह भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। वह आज नहीं कल, पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगा और तब ठीक ही बातें हो जाएं!
आप एक साधु के पास गए। उसने आपको देख कर कह दिया, आपका फलां नाम है? आप फलां गांव से आ रहे हैं? बस आप चमत्कृत हो गए। हद्द हो गई। कैसे पता चला मेरा नाम, मेरा गांव, मेरा घर? क्योंकि टेलीपैथी अभी अविकसित विज्ञान है। अभी दूसरे के मन के विचार को पढ़ना पूरी तरह विकसित नहीं हो सका, लेकिन बुनियादी सूत्र प्रकट हो चुके हैं। दूसरे के मन को पढ़ने की साइंस धीरे- धीरे विकसित हो रही है और साफ हुई जा रही है। उसका साधु से कोइ लेना-देना नहीं है। कोई भी पढ़ सकेगा, कल जब साइंस हो जाएगी, कोई भी पढ़ सकेगा, अभी भी काफी काम हुआ है। और दूसरे के विचार को पढ़ने में बड़ी आसानी हो गई है। छोटी सी तरकीब आपको बताता हूं, आप भी पढ़ सकते हैं। एक, दो-चार दिन प्रयोग करें, तो आपको पता चलेगा कि यह तो बड़ा आसान खेल है। दो-चार दिन में हो सकता है। लेकिन जब आप खेल देखेंगे तो आप समझेंगे भारी चमत्कार हो रहा है।
एक छोटे बच्चे को लेकर बैठ जाएं। रात अंधेरा कर लें, कमरे में। उसको दूर कोने में बिठा लें, आप यहां बैठ जाएं और उस बच्चे से कह दें कि हमारी तरफ ध्यान रख। और सुनने की कोशिश कर कि हम तुमसे कुछ कहने की कोशिश कर रहे हैं। और अपने मन में एक ही शब्द ले लें और उसको जोर से दोहराएं। अंदर ही दोहराएं, गुलाब! गुलाब को जोर से दोहराएं, गुलाब, गुलाब, गुलाब! आप तीन दिन

के भीतर पाएंगे कि बच्चे ने पकड़ना शुरू कर दिया। वह वहां से कहेगा, क्या आप गुलाब कह रहे हैं? तब आपको पता चलेगा कि बात क्या हो गई है!
जब आप बहुत जोर से भीतर गुलाब दोहराते हैं, तो दूसरे तक उसकी विचार तरंगें पहुंचनी शुरू हो जाती हैं। बस, वह जरा रिसेप्टिव होने की कला सीखने की बात है। बच्चे रिसेप्टिव हैं। फिर इससे उलटा करना शुरू करें, बच्चे को कहें कि वह एक शब्द दोहराए और आप उस तरफ ध्यान रख कर, बैठ कर पकड़ने की कोशिश करें। बच्चेने तीन दिन में पकड़ा है, तो आप छह दिन में पकड़ लेंगे कि वह क्या दोहरा रहा है। और जब एक शब्द पकड़ा जा सकता है, तो फिर कुछ भी पकड़ा जा सकता है।
हर आदमी के भीतर विचार की तरंगें मौजूद हैं, वह पकड़ी जा सकती हैं। लेकिन इसका विज्ञान अभी बहुत साफ न होने की वजह से, कुछ मदारी इसका उपयोग कर रहे हैं। जिनको वह तरकीब पता है, वह कुछ उपयोग कर रहे हैं। फिर वह आपको दिक्कत में डाल देते हैं।
यह सारी की सारी बातों में कोई चमत्कार नहीं है। न चमत्कार कभी पृथ्वी पर हुआ है, न कभी होगा। चमत्कार सिर्फ एक है कि अज्ञान है, बस और कोई चमत्कार नहीं है! इग्नोरेंस है, एक मात्र मिरेकल है! और अज्ञान में सब हिप्नोटिक होते रहते हैं। जगत में विज्ञान है, चमत्कार नहीं। प्रत्येक चीज का कार्य है, कारण है, व्यवस्था है। जानने में देर लग सकती है। जिस दिन जान ली जाएगी, उस दिन हल हो जाएगी। उस दिन कोई कठिनाई नहीं रह जाएगी।

एक आखिरी प्रश्न और है--

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि चेतना बिगड़ गई है। उन्होंने पूछा
है, चेतना यानी आत्मा, आत्मा बिगड़ कैसे सकती हैं? आत्मा तो कभी बिगड़ ही नहीं सकती है। वह तो सदा शुद्ध-बुद्ध हैं!

इसे थोड़ा समझना उचित है। जब मैं कहता हूं, चेता बिगड़ गई है, तब मेरा मतलब वही है, जैसे सागर शांत, मौन है, कोई तूफान नहीं है, तब भी सागर है। और जब तूफान उठता है और लहरें उठती हैं और सागर बिल्कुल विक्षिप्त हो जाता है, तब भी सागर है। लेकिन तूफान की हालत में सागर बिगड़गया है। बेचैन हो गया है, परेशान हो गया है। ब्रह्म ही सागर है। वह जो शांत था, वह भी सागर था। यह जो अशांत है, यह भी सागर है। असल में शांत के भीतर अशांत होने की क्षमता सदा प्रसुप्त है। अशांत के भीतर, शांत होने की क्षमता प्रसुप्त है। तो जब मैं कहता हूं, चेतना बिगड़ गई है तो मेरा मतलब इतना ही है कि, जो हमारे भीतर छिपा है, वह तूफान में हैं, अशांत है, रुग्ण है, अस्वस्थ है--बेचैनी में है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह बेचैनी में है, तो वापस नहीं लौट सकता। वापस लौट सकता है। वह चैन में हो सकता है, शांत हो सकता है, स्वस्थ हो सकता है।
लेकिन शास्त्र कहते हैं, आत्मा तो शुद्ध-बुद्ध है। उनका मतलब उतना ही है, जैसे तूफान... जब तूफान में हो... सागर, और सागर से कोई कहे कि पागल, इस तूफान में होने को अपना स्वरूप मत समझ लेना। तू तो शांत सागर है। इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब यह नहीं है कि सागर में तूफान नहीं है, सागर में तूफान है। लेकिन सागर से हम कह रहे हैं कि इस तूफान को तू अपना स्वभाव मत समझ लेना। तू शांत हो सकता है। तूफान ही नहीं है तू, तू तूफान के बाहर भी हो सकता है।
जिन्होंने कहा है कि आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, वे सिर्फ तुम्हें स्मरण दिला रहे हैं कि तुम अपनी इस रुग्ण अवस्था को ही अपनी चरम स्थिति मत समझ लेना। यह सिर्फ विकार है तुम्हारा, तुम निर्विकार में लौट सकते हो। लेकिन हम भी बहुत चालाक लोग हैं। हम इतना विकार से भरे हुए हैं कि हम कहते हैं, अच्छा, शुद्ध बुद्ध है, तब तो कुछ करना ही नहीं है। आत्मा शुद्ध बुद्ध है, तो करना क्या है। आत्मा तो सदा शुद्ध है, तो करना क्या है? कुछ भी नहीं करना है।

हिंदुस्तान को बिगाड़ने वाली शिक्षाओं में यह सबसे बड़ी शिक्षा सिद्ध हुई है। हिंदुस्तान के चरित्र को नीचे गिराने में हिंदुस्तान के व्यक्तित्व को नष्ट करने में, यह बहुत ऊंची बात जो बिल्कुल सही है, सहायक हुई है। इस बात ने कि हम शुद्ध-बुद्ध हैं तो फिर क्या सवाल है? एक चोर से कहो, वह कहेगा, आत्मा चोरी करती ही नहीं। यह चोरी वगैरह सब माया है। एक हत्यारे से कहो, वह कहेगा, न कोई मरता है, न कोई मारता है। गीता में लिखा हैः न हन्यते हन्यमाने शरीरे--न कोई मरता है, न मारता है, न हमने मारा, न कोई मरा। आत्मा तो मरती ही नहीं, आत्मा अमर है। क्या करिएगा, कैसे समझाइएगा इसको?
एक ब्रह्मवादी को आप समझा नहीं सकते। क्योंकि बात तो ठीक ही कह रहा है, लेकिन ठीक बात को, गलत परिणामों में उपयोग कर रहा है। हिंदुस्तान के ब्रह्मवाद ने, हिंदुस्तान के व्यक्तित्व को रुग्ण किया, बीमार किया, क्योंकि बात तो सच थी। लेकिन सच बात होने से ही उसको हम सत्य के लिए उपयोग करेंगे, यह जरूरी नहीं है। हमने कहा कि सब ठीक है। तब कुछ भी नहीं करना है, यह सब माया है। यह सब बुराई है, विकार है, यह सब असत्य है, यह सपने की भांति है। सत्य में तो कभी कोई विकार होता ही नहीं, बस सत्य ठीक है।
इसलिए साधु-संतों, जहां यह समझाया जाता है, आत्मा शुद्ध-बुद्ध है, ब्रह्म निर्विकार है, वहां सब तरह से पापियों को आप बैठा हुआ पाएंगे। वह सिर हिला रहे हैं कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, महाराज! आत्मा तो निर्विकार है। वह अपने को समझा रहे हैं कि आत्मा तो निर्विकार है, इसलिए अब विकार करने में कोई डर नहीं है, कोई भय नहीं है। क्योंकि यह विकार वगैरह सब सपना है। यह मैटाफिजिकल कनिंगनेस है, यह आध्यात्मिक ढंग की बेईमानी है, जिसको हम कर सकते हैं, जिसको हमने किया है। इसलिए हिंदुस्तान एक तरफ ऊंची से ऊंची बात करेगा और दूसरी तरफ नीचा से नीचा आदमी पैदा करेगा।
पश्चिम के लोग हमारा भरोसा नहीं करते है। ओरिएंटल कनिंगनेस कहते हैं हमें। पश्चिम के लोग जानते हैं कि पूरब के लोग बदमाश हैं और उसका कारण है उसे जानने का, कि हमारे संबंध में जब भी आते हैं, तो हम तरफ की शरारत करते हैं। हां, एक ही बात में वह हमारा मुकाबला नहीं कर सकते, ब्रह्मवाद की जब चर्चा चले, तो वे एकदम हार जा सकते हैं, क्योंकि वह हमें तरकीब पता है, क्योंकि सब असत्य है, सब सपना है!
ध्यान रहे, जब जगत सपना है तो चोरी भी सपना है और साधु भी सपना है, फिर फर्क क्या है? दो सपने में कोई फर्क होता है? कोई फर्क नहीं होता है। जब सभी माया है, तो बुरा आदमी भी माया है, अच्छा आदमी भी माया है। दो माया में कुछ फर्क होता है? कोई फर्क नहीं होता। और आत्मा निर्विकार है, सदा अपनी स्थिति में है। वह न कहीं आई, न कहीं गई, न उसने कुछ बुरा किया, न कुछ भला किया, चलते में वह अचल है, बोलते में वह अबोला है। पाप करने में पुण्य में है। वह... हैं!
नहीं, मैं इस तरह की बातों में सहयोगी नहीं हो सकता हूं। यह हमें तोड़ना पड़ेगा--अगर इस देश के चरित्र को बदलना है। और परिवर्तन के चौराहे पर चरित्र सबसे बड़े से बड़ा सवाल है हमारा। अगर चरित्र को बदलना है, तो हमें समझना पड़ेगा कि यह गलत चरित्र पैदा करने में हमने कौन सी तरकीबों का उपयोग किया है। सब से बडी तरकीब यह है हमारी, कि हमने इस चरित्र को कहा कि यह माया का हिस्सा है। जब माया का हिस्सा है, तो बात खत्म हो गई। इस माया के हिस्से के कारण बात खत्म हो गई। हमने ऐसे साधु पैदा किए, जो शराब पी रहे हैं, भांग पी रहे हैं, भोग कर रहे हैं। और उनसे जब कहा, तो उन्होंने कहा कि आत्मा तो कभी करती नहीं, आत्मा तो कभी भांग खाती नहीं। भांग डालो तो शरीर में ही जाती हैं, आत्मा तक जाती नहीं, जा सकती है? आप कितनी ही भांग डालो, वह शरीर में चली जाती है। यह शरीर तो सब असार है। सार तो आत्मा है, उसमें कुछ होता नहीं है।...
हमारे चरित्र की बुनियादी कमी, हमारे ब्रह्मवाद की छाया से पैदा हुई है। नहीं, जरूरी न था कि ब्रह्मवाद से यह पैदा होती, लेकिन हमने पैदा कर ली है! और हमें यह समझ लेना चाहिए। नहीं, हम जैसे हैं, हम जो हैं, उस होने में हम पूरी तरह विकार से ग्रस्त हैं। हम जो हैं, वहां पूरी तरह पाप है।। हम जो

हैं, वहां पूरी तरह बीमारी है। लेकिन आत्मा शुद्ध-बुद्ध है, इसका मतलब? इसका मतलब है, आत्मा का शुद्ध-बुद्ध होना उसकी परम संभावना है, उसकी अल्टीमेट पॉसिबिलिटी है, हम चाहें तो इन सबके बाहर होकर शुद्ध-बुद्ध हो सकते हैं। हम जैसे हैं, यह हमारा होना परम स्वभाव नहीं है। यह होना हमारा विकार है। यह हमारा स्वभाव से च्युत होना है। लेकिन हम लौट सकते हैं।
उस लौटने की याद जब हम दिलाते हैं और सोने से कहते हैं कि तू कचरा नहीं है, तू कचरा हो ही नहीं सकता। लेकिन सोने में कचरा हो सकता है। सोना कचरा नहीं हो सकता, लेकिन सोने में कचरा हो सकता हैं। सोने में धूल हो सकती है, मिट्टी हो सकती है, पत्थर कंकड़ हो सकते हैं। सोने से हम कहते हैं, सोना, तू कभी मिट्टी नहीं हो सकता। लेकिन सोने में मिट्टी हो सकती है। और तब अगर सोना समझ ले कि मैं मिट्टी हो ही नहीं सकता, तो आग में जाने की क्या जरूरत है? मैं तो शुद्ध-बुद्ध सोना हूं। तो वह सोना मिट्टी में मिला जुला ही रह जाएगा। नहीं, सोने को आग में जाना पड़ेगा। मिट्टी जल जाए, कचरा जल जाए, सोना बच जाए। वह जो सोने से हम कहते हैं, तू मिट्टी नहीं हो सकता, वह हम उसे उसकी परम स्थिति के स्मरण के लिए कह रहे हैं, वह उसकी आज की स्थिति का स्थापन नहीं है, उसकी परम स्थिति की स्मृति है।
लेकिन उस स्मृति का हमने दुरुपयोग किया है। यह ऐसा ही है, जैसे अस्पताल में हम जाएं और लोगों से हम कहें कि आत्मा तो स्वस्थ है, अस्पताल में क्या कर रहे हो? लेकिन जो स्वामी कहता है कि आत्मा तो स्वस्थ है, वह भी अस्पताल में इलाज करवा रहा है। फिर, आत्मा स्वस्थ है, तो तुम यह क्या करवा रहे हो? यह तो शरीर बीमार है, रहने दो, जाओ। आत्मा स्वस्थ है, इसका मतलब ही यह होता है कि रुग्ण हो सकती है। स्वास्थ्य में रुग्णता की संभावना निहित है। जो रुग्ण भी नहीं हो सकता, वह स्वस्थ भी नहीं हो सकता। संभावना है सदा विपरीत, और प्रत्येक चीज में पोलेरिटी है, प्रत्येक चीज में विपरीत मौजूद है। सिर्फ मरा हुआ आदमी नहीं मर सकता है। जिंदा आदमी मर सकता है। जन्म के साथ मौत की पोलेरिटी है। मौत का... हैं। स्वस्थ आदमी बीमार हो सकता है। विपरीत सदा मौजूद है। उस विपरीत को झूठा कह कर हलना होगा। अगर हमने उसको झूठा कहा, तो फिर बदलने के लिए हम कुछ भी न करेंगे। इस परिवर्तन के चौराहे पर, जहां समाज खड़ा है वहां हमें यह भी निर्णय लेना होगा कि हमारे अतीत के विचार की तर्कना ने यह चरित्र दिया, यही चरित्र हमें आगे भी बचाए रखना है? या कि हमें इस चरित्र को रूपांतरित करना है? यह चरित्र को रूपांतरित करना है, तो हमें चरित्र के पीछे की आधार भूमियों में भी परिवर्तन करने होंगे। फिलासफी भी बदलनी होगी, दर्शन भी बदलना होगा। तब यह चरित्र बदलेगा, क्योंकि दर्शन ही हमारे चरित्र का फैलाव बन जाता है।
और थोड़े से प्रश्न रह गए हैं। बहुत से आपके मन में रह गए होंगे, लेकिन सभी प्रश्नों के उत्तर मैं दूं, यह जरूरी भी नहीं है, यह उचित भी नहीं है। मैंने जिन प्रश्नों के उत्तर दिए हैं, वह इसी आशा से दिए कि वे उत्तर मेरे हैं, आपके नहीं हैं और भूल कर आप उनको अपना मत समझ लेना, अन्यथा आप विश्वास में पड़ जाएंगे। ये उत्तर मेरे हैं, और मेरे भी कल होंगे, इसका भी वायदा नहीं है, क्योंकि मैं अपने आपसे अपनेपन को नहीं बांध सकता हूं। सिर्फ मरा हुआ आदमी बांध सकता है। सिर्फ मरा हुआ आदमी कंसिस्टेंट हो सकता है, जिंदा आदमी को इनकंसिस्टेंट होना ही पड़ेगा, अगर वह जिंदा है। आज जो मैंने कहा, वह कल मैं कैसे कहूंगा, क्योंकि चौबीस घंटे में गंगा का बहुत पानी बह जाएगा। ये उत्तर आज तक जो मैं हूं, उसके हैं, कल मैं जो होऊंगा उसके लिए नहीं, उसके लिए नहीं हैं। आपके होने का सवाल ही नहीं है। आप आप हैं, मैं मैं हूं। लेकिन यह मैंने उत्तर क्यों दिए हैं? उत्तर मैंने इसलिए नहीं दिए हैं
कि आपके प्रश्न मर जाएं। उत्तर इसलिए दिए हैं कि आपके प्रश्न और जिंदा हो जाएं। उसमें और निखार आ जाए। आप सोचने पर निकल पड़ें, आपकी सोचने की यात्रा शुरू हो जाए। मुझसे राजी और नाराजी होना सवाल नहीं है। मुझे सुनने वालों में निरंतर यह भूल होती है। कोई मुझसे राजी हो जाता है, वह कहता है, हां मैंने आपको मान लिया, कोई मुझसे नाराज हो जाता है, तो कहता है, हम आपको मानते नहीं। ये दोनों नासमझ हैं। मुझे मानने, न मानने का सवाल ही नहीं है। मैं अनुयायी खोजने निकला ही नहीं हूं, इसलिए अकारण कोई मेरा अनुयायी बन

जाता है, कोई मेरा शत्रु बन जाता है, अकारण। मेरा कोई संबंध ही नहीं है। मैं आपसे कहता हूं, सिर्फ इसलिए कि आप सोचने लगें, विचारने लगें। और अगर इन दिनों में आपके मन में कुछ भी विचार पैदा हुआ हो, स्वीकृति नहीं, विचार-- अस्वीकृति नहीं, विचार, तो यह श्रम सार्थक हुआ।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का बीसवां प्रवचन

आज की राजनीति

मेरे प्रिय आत्मन्!
आज की राजनीति पर कुछ भी कहने के पहले दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
एक तो यह कि जो आज दिखाई पड़ता है, वह आज का ही नहीं होता, हजारों-हजारों वर्ष के बीते हुए कल, आज में सम्मिलित होते हैं। जो आज का है उसमें कल भी जुड़ा है, बीते सब कल जुड़े हैं। और आज की स्थिति को समझना हो तो कल की इस पूरीशृंखला को समझे बिना नहीं समझा जा सकता। मनुष्य की प्रत्येक आज की घड़ी पूरे अतीत से जुड़ी है--एक बात! और दूसरी बात--राजनीति कोई जीवन का ऐसा अलग हिंस्सा नहीं है, जो धर्म से भिन्न हो, साहित्य से भिन्न हो, कला से भिन्न हो। हमने जीवन को खंडों में तोड़ा है सिर्फ सुविधा के लिए। जीवन इकट्ठा है। तो राजनीति अकेली राजनीति ही नहीं है, उसमें जीवन के सब पहलू और सब धाराएं जुड़ी हैं। और जो आज का है, वह भी सिर्फ आज का नहीं है, सारे कल उसमें समाविष्ट हैं। यह प्राथमिक रूप से खयाल में हो तो मेरी बातें समझने में सुविधा पड़ेगी।
यह मैं क्यों बीते हुए कलों पर इसलिए जोर देना चाहता हूं कि भारत की
आज की राजनीति में जो उलझाव है, उसका बहुत गहरा संबंध हमारी अतीत की समस्त राजनीतिक दृष्टि से जुड़ा है।
जैसे, भारत का पूरा अतीत इतिहास और भारत का पूरा चिंतन, राजनीति के प्रति वैराग सिखाता है। अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना है, यह भारत की शिक्षा रही है। और जिस देश का यह खयाल हो कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं जाना है, अगर उसकी राजधानियों में सब बुरे आदमी इकट्ठे हो जाएं, तो आश्चर्य नहीं है। जब हम ऐसा मानते हैं कि अच्छे आदमी का राजनीति में जाना बुरा है, तो बुरे आदमी का राजनीति में जाना अच्छा हो जाता है। वह उसका दूसरा पहलू हैं।
हिंदुस्तान की सारी राजनीति धीरे-धीरे बुरे आदमी के हाथ में चली गई है; जा रही है, चली जा रही है। आज जिनके बीच संघर्ष नहीं है, वह अच्छे और बुरे आदमी के बीच संघर्ष है। इसे ठीक से समज लेना जरूरी है। उस संघर्ष में कोई भी जीते, उससे हिंदुस्तान का बहुत भला नहीं होने वाला है। कौन जीतता है, यह बिल्कुल गौण बात है। दिल्ली में कौन ताकत में आ जाता है, यह बिल्कुल दो कौड़ी की बात है; क्योंकि संघर्ष बुरे आदमियों के गिरोह के बीच है। हिंदुस्तान का अच्छा आदमी राजनीति से दूर खड़े होने की पुरानी आदत से मजबूर है। वह दूर ही खड़ा हुआ है। लेकिन इसके पीछे हमारे पूरे अतीत की धारणा है। हमारी मान्यता यह रही है कि अच्छे आदमी को राजनीति से कोई संबंध नहीं होना चाहिए। बर्ट्रेंंड रसल ने कहीं लिखा है, एक छोटा सा लेख लिखा है। उस लेख का शीर्षक--उसका हेडिंग मुझे बहुत पसंद पड़ा। हेडिंग हैः दि हार्म, दैट गुड मैन डू--नुकसान, जो अच्छे आदमी पहुंचाते हैं।
अच्छे आदमी सबसे बड़ा नुकसान यह पहुंचाते हैं कि बुरे आदमी के लिए जगह खाली कर देते हैं। इससे बड़ा नुकसान अच्छा आदमी और कोई पहुंचा भी नहीं सकता। हिंदुस्तान में सब अच्छे आदमी भगोड़े रहे हैं। एस्केपिस्ट रहे हैं। भागने वाले रहे हैं। हिंदुस्तान ने उनको ही आदर दिया है, जो भाग जाएं। हिंदुस्तान उनको आदर नहीं देता, जो जीवन की सघनता में खड़े हैं, जो संघर्ष करें, जीवन को बदलने की कोशिश करें।
कोई भी नहीं जानता कि अगर बुद्ध ने राज्य न छोड़ा होता, तो दुनिया का ज्यादा हित होता या छोड़ देने से ज्यादा हित हुआ है। आज तय करना भी मुश्किल है। लेकिन यह परंपरा है हमारी, कि अच्छा आदमी हट जाए। लेकिन हम कभी नहीं सोचते, कि अच्छा आदमी हटेगा, तो जगह तो खाली नहीं रहती, वैक्यूम तो रहता नहीं।
अच्छा हटता है, बुरा उसकी जगह भर देता है। बुरे आदमी भारत की राजनीति में तीव्र संलग्नता से उत्सुक हैं। कुछ अच्छे आदमी भारत की आजादी के आंदोलन में उत्सुक हुए थे। वे राजनीति में उत्सुक नहीं थे। वे आजादी में

उत्सुक थे। आजादी आ गई। कुछ अच्छे आदमी अलग हो गए, कुछ अच्छे आदमी समाप्त हो गए, कुछ अच्छे आदमियों को अलग हो जाना पड़ा, कुछ अच्छे आदमियों ने सोचा, कि अब बात खत्म हो गई।
खुद गांधी जैसे भले आदमी ने सोचा कि अब कांग्रेस का काम पूरा हो गया है, अब कांग्रेस को विदा हो जाना चाहिए। अगर गांधी जी की बात मान ली गई होती, तो मुल्क इतने बड़े गड्ढे में पहुंचता, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। बात नहीं मानी गई, तो भी मुल्क गड्ढे में पहुंचा है, लेकिन उतने बड़े गड्ढे में नहीं, जितना मान कर पहुंच जाता। फिर भी गांधी जी के पीछे अच्छे लोगों की जो जमात थी, विनोबा और लोगों की, सब दूर हट गए। वह पुरानी भारतीय धारा फिर उनके मन को पकड़ गई, कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं होना चाहिए।
खुद गांधी जी ने जीवन भर बड़ी हिम्मत से, बड़ी कुशलता से भारत की आजादी
का संघर्ष किया। उसे सफलता तक भी पहुंचाया। लेकिन जैसे ही सत्ता हाथ में आई, गांधीजी हट गए। वह भारत का पुराना अच्छा आदमी फिर मजबूत हो गया। गांधी ने अपने हाथ में सत्ता नहीं ली, यह भारत के इतिहास का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जिस हमें हजारों साल तक, जिसका नुकसान हमें भुगतना पड़ेगा। गांधी सत्ता आते ही हट गए। सत्ता दूसरे लोगों के हाथ में गई। जिनके हाथ में सत्ता गई, वे गांधी जैसे लोग नहीं थे। गांधी से कुछ संभावना हो सकती थी कि भारत की राजनीति में अच्छा आदमी उत्सुक होता। गांधी के हट जाने से वह संभावना भी समाप्त हो गई।
फिर सत्ता के आते ही एक दौड़ शुरू हुई। बुरे आदमी की सबसे बड़ी दौड़ क्या है? बुरा आदमी चाहता क्या है? बुरे आदमी की गहरी से गहरी आकांक्षा अहंकार की तृप्ति है, ईगो की तृप्ति है। बुरा आदमी चाहता है, उसका अहंकार तृप्त हो और क्यों बुरा आदमी चाहता है कि उसका अहंकार तृप्त हो? क्योंकि बुरे आदमी के पीछे एक इनफिरिआरिटी काम्पलेक्स, एक हीनता की ग्रंथि काम करती रहती है। जितना आदमी बुरा होता है, उतनी ही हीनता की ग्रंथि ज्यादा होती है। और ध्यान रहे, हीनता की ग्रंथि जिसके भी भीतर हो, वह पदों के प्रति बहुत लोलुप हो जाता है। सत्ता के प्रति, पॉवर के प्रति बहुत लोलुप हो जाता है। भीतर की हीनता को वह बाहर के पद से पूरा करना चाहता है।
बुरे आदमी को मैं, शराब पीता हो, इसलिए बुरा नहीं कहता। शराब पीने वाले अच्छे लोग भी हो सकते हैं। शराब न पीने वाले बुरे लोग भी हो सकते हैं। बुरा आदमी इसलिए नहीं कहता, कि उसने किसी को तलाक देकर दूसरी शादी कर ली हो। दस शादी करने वाला, अच्छा आदमी हो सकता है। एक ही शादी पर जन्मों से टिका रहने वाला आदमी भी बुरा हो सकता है। मैं बुरा आदमी उसको कहता हूं, जिसकी मनोगं्रथि हीनता की है, जिसके भीतर इनफिरिआरिटी का कोई बहुत गहरा भाव है। ऐसा आदमी खतरनाक है, क्योंकि ऐसा आदमी पद को पकड़ेगा, जोर से पकड़ेगा, किसी भी कोशिश से पकड़ेगा, और किसी भी कीमत, किसी भी साधन का उपयोग करेगा। और किसी को भी हटा देने के लिए, कोई भी साधन उसे सही मालूम पड़ेंगे। हिंदुस्तान में अच्छा आदमी--अच्छा आदमी वही है, जो न इनफिरिआरिटी से पीड़ित है और न सुपिरिआरिटी से पीड़ित है। अच्छे आदमी की मेरी परिभाषा है, ऐसा आदमी, जो खुद होने से तृप्त है, आनंदित है। जो किसी के आगे खड़े होने के लिए पागल नहीं है, और किसी के पीछे खड़े होने में जिसे कोई अड़चन, कोई तकलीफ नहीं है। जहां भी खड़ा हो जाए वहीं आनंदित है। ऐसा अच्छा आदमी राजनीति में जाए तो राजनीति शोषण न होकर सेवा बन जाती है। ऐसा अच्छा आदमी राजनीति में न जाए, तो राजनीति केवल पॉवर पॉलिटिक्स, सत्ता और शक्ति की अंधी दौड़ हो जाती है। और शराब से कोई आदमी इतना बेहोश कभी नहीं हुआ, जितना आदमी सत्ता से और पॉवर से बेहोश हो सकता है। और जब बेहोश लोग इकट्ठे हो जाएं सब तरफ से, तो सारे मुल्क की नैया डगमगा जाए, इसमें कुछ हैरानी नहीं है!
यह ऐसे ही है--जैसी किसी जहाज के सभी मल्लाह शराब पी लें, और आपस में लड़ने लगें प्रधान होने को! और जहाज उपेक्षित हो जाए, डूबे या मरे इससे कोई संबंध न रह जाए, वैसी हालत भारत की है।
राजधानी में भारत के सारे के सारे मदांध, जिन्हें सत्ता के सिवाय कुछ
भी दिखाई नहीं पड़ रहा है, वे सारे अंधे लोग, बेहोश लोग इकट्ठे हो गए हैं। और

उनकी जो शतरंज चल रही है, उस पर पूरा मुल्क दांव पर लगा हुआ है। पूरे मुल्क से उनको कोई प्रयोजन नहीं है, कोई संबंध नहीं है। भाषण में वे बातें करते हैं, क्योंकि बातें करनी जरूरी हैं। प्रयोजन बताना पड़ता है। लेकिन पीछे कोई प्रयोजन नहीं है। पीछे एक ही प्रयोजन है भारत के राजनीतिज्ञ के मन में, कि मैं सत्ता में कैसे पहुंच जाऊं? मैं कैसे मालिक हो जाऊं? मैं कैसे नंबर एक हो जाऊं? यह दौड़ इतनी भारी है, और यह दौड़ इतनी अंधी है... कि इस दौड़ के अंधे और भारी और खतरनाक होने का बुनियादी कारण यह है कि भारत की पूरी परंपरा अच्छे आदमी को राजनीति से दूर करती रही है।
तो मैं आप से कहना चाहूंगा, अगर भारत के लिए कभी भी एक स्वस्थ राजनीति
को जन्म देना हो, तो भारत की इस पुरानी धारणा को बिल्कुल मिट्टी में फेंक देना, आग में डाल देना, पानी में डुबा देना। यह धारणा नहीं मिटेगी, तो भारत के लिए सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता है--एक बात।
दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं, कि भारत का पूरा का पूरा अतीत नॉन-डेमोक्रेटिक है। भारत का दिमाग लोकतांत्रिक नहीं है। भारत का दिमाग अत्यधिक अलोकतांत्रिक है। भारत की पूरी की पूरी परंपरा मनुष्य को समान स्वीकार नहीं करती है। नहीं तो शूद्र और ब्राह्मण असंभव हो जाते। भारत की पूरी धारणा आदमी-आदमी के बीच वर्गों, वर्णों को स्वीकार करती है। एक आदमी जन्म से ही नीचा है और एक आदमी जन्म से ही ऊंचा है, ऐसी हमारी मान्यता है। यह मान्यता बड़ी खतरनाक है। यह कुछ लोगों को पैदायशी गुलाम बना देती है। और कुछ लोगों को पैदाइशी मालिक होने का भ्रम दे देती है। लोकतंत्र की जो हम नई रचना करने में लगे हैं, उसके विपरीत है यह सारी धारणा। लोकतंत्र प्रत्येक व्यक्ति को बराबर मूल्य देता है। जन्म से नहीं तय करता है कि कौन छोटा है, कौन बड़ा है! धन से तय नहीं करता, कौन छोटा है, कौन बड़ा! पद से तय नहीं करता है, कौन छोटा है, कौन बड़ा है!
प्रत्येक व्यक्ति बराबर है। ऐसे लोकतंत्र की संरचना में हम लगे हों
और हमारे पूरे माइंड की, हमारी पूरी की पूरी संस्कृति, हमारे मन की पूरी आधारशिलाएं एंटी-डेमोक्रेटिक हों, लोकतंत्र विरोधी हों तो बड़ी अड़चन हो जाएगी। मन तो हमारे पास लोकतंत्र विरोधी है, लोकतंत्र का हम निर्माण कर रहे हैं। तो लोकतंत्र की बातें करते हैं, भीतर हमारे मन में लोकतंत्र कहीं भी नहीं है। इसलिए जो आदमी भी सत्ता पर बैठ जाता है वही पागल हो जाता है, वही तानाशाह होने की कोशिश में संलग्न हो जाता है। वही डिक्टेटोरियल हो जाने की कोशिश में संलग्न हो जाता है।
गद्दी पर बैठते ही इस मुल्क में कोई आदमी लोकतांत्रिक नहीं रह जाता। लोकतांत्रिक आदमी ही नहीं है। जब तक ताकत नहीं है, तब तक वह हाथ जोड़ कर आपके द्वार पर खड़ा होता है। जैसे ही ताकत आती है, वह आपको पहचानना बंद कर देता है। यह बड़ी अजीब बात है। और अगर यह बात जारी रहती है, तो भारत आज नहीं कल, किसी न किसी तरह की ताना शाही में फंस जाने को आबद्ध होगा।
आज जो दिल्ली में हो रहा है, वह किसी आने वाली तानाशाही की सूचनाएं हैं। वह आज नहीं कल, इस वर्ष नहीं अगले वर्ष, हम उसी गड्ढे में गिरेंगे, जहां दुनिया के सभी लोकतंत्रों के गिरने का डर होता है। हमारा डर सबसे ज्यादा है। हमारा डर सबसे ज्यादा इसलिए है कि हमने स्वीकार ही यह किया है कि राजा को हम मानते थे भगवान! जो देश राजा को भगवान मानता रहा हो--अब भी उसके मन में वही भाव है। भाव कहीं खो नहीं गया है, और आदमी आदमी के बीच समानता की हमारी कोई दृष्टि नहीं है।
तो बहुत खतरा है इस बात का--कि आज नहीं कल, लोकतंत्र की हत्या हो जाए।
और शक्ति के पीछे अंधे लोग किसी भी क्षण हत्या कर सकते हैं। वे लोकतांत्रिक तभी तक हैं, जब तक लोकतंत्र उन्हे सत्ता तक पहुंचाए। सत्ता में पहुंचते ही उनका लोकतंत्र विदा हो जाता है। किसी ने कहा--मुझे लगता है, भारत में सही हो जाएगा। शायद किसी ने कहा है--लोकतंत्र तानाशाहों को चुनने की एक प्रक्रिया है! लोकतंत्र भी तानाशाहों को चुनने की एक प्रक्रिया है? तानाशाह भी आपकी मर्जी से चुने जाएं ऐसी प्रक्रिया है! अगर लोकतंत्र का यही मतलब हो, तो भारत में वह दिखाई पड़ता है। और जो संघर्ष हमें दिखाई पड़ रहा है सब तरफ, वह हमारे भीतर मनों में जो उपद्रव है, कांफ्लिक्ट है--मन है

एंटी-डेमोक्रेटिक! और व्यक्तित्व हम देश का बनाना चाहते हैं-- लोकतांत्रिक!
नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। लोकतांत्रिक व्यक्तित्व तभी बन सकता है जब भीतर मन भी लोकतांत्रिक हो! भारत का पूरा मन बदल जाए, तो भारत की राजनीति स्वस्थ, सुंदर, सुखद हो सकती है। और वह तब सत्ता का आग्रह और दौड़ ही नहीं रह जाएगी। भारत सदा व्यक्ति का पूजक है और जो कौमें भी व्यक्ति की पूजा करती है, वह लोकतांत्रिक नहीं हो सकतीं। व्यक्ति की पूजा का मतलब ही यह है, कि एक व्यक्ति महान है और दूसरे लोग हीन हैं। एक व्यक्ति महात्मा है, दूसरे लोग हीन-आत्मा हैं। एक भगवान है, दूसरे लोग साधारण हैं। व्यक्ति की पूजा करने वाली कोई कौम, कभी लोकतांत्रिक नहीं हो सकती क्योंकि लोकतंत्र की घोषणा यही है कि कोई महान नहीं है, कोई छोटा नहीं है, सब समान हैं।
समानता का यह भाव हमारे भीतर बिल्कुल नहीं है। हम सदा से पैर छूते रहे हैं, हम सदा से सिर झुकाते रहे हैं, हम सदा से किसी को बड़ा और किसी को छोटा मानते रहे हैं। यह छोटा और बड़ा मानने की, हमारी जो अब तब की पूरी-पूरी कल्पना और धारणा रही है, वही धारणा आज भी काम कर रही है। इसीलिए तो एक आदमी राजनैतिक पद पर खड़ा हो जाए, तो भगवान हो जाता है। सारे अखबार उसकी खबरों से भर जाते हैं, सारी खुशियां उसको मिल जाती हैं। फिर मुल्क में कोई नहीं रहता, वही रह जाता है। पद से वह आदमी नीचे उतरा और वह बिल्कुल भूल जाता है; उसका कोई पता नहीं चलता। राधाकृष्णन कहां खो गए? पता लगाना मुश्किल है। कहां रहते हैं? यह भी पता लगाना मुश्किल है। एक आदमी सत्ता से नीचे उतरा, कि गया; वह हमारे लिए फिर भगवान नहीं रह गया। सत्ता पर पहुंचा कि एकदम भगवान हो जाता है।
यह जो हमारी स्थिति रही और हम व्यक्ति को इस भांति सत्ता पर बल देते रहे, और पद को इतना मूल्य देते रहे; तो फिर इस मुल्क में स्वस्थ वातावरण निर्मित होना मुश्किल हो जाएगा। मुझे लगता है, कि हम शायद सर्वाधिक रूप से पद-पीड़ित समाज हैं। पद सब कुछ है। पद से हीन व्यक्ति की कोई हमें चिंता और विचार नहीं है। अगर ऐसा होगा, तो सभी एंबीशियस और महत्वाकांक्षी लोग पदों की तरफ दौड़ने लगेंगे।
आज कोई आदमी अच्छा शिक्षक नहीं होना चाहता। क्यों हो? शिक्षकों के दिवस पर मैं दिल्ली बोलने गया था। तो मैंने शिक्षकों से कहा कि मैं बहुत हैरान हूं। राधाकृष्णन शिक्षक थे और राष्ट्रपति हो गए; इसीलिए तुम शिक्षक-दिवस मना रहे हो? मुझे तो समझ नहीं आता कि इसमें क्या फर्क है? मैंने उनसे प्रार्थना की, जब कोई राष्ट्रपति शिक्षक हो जाए तब तुम शिक्षक-दिवस मनाना। अभी तो शिक्षक-दिवस मनाने जैसा कुछ भी नहीं लगता है।
एक शिक्षक राजनीतिज्ञ हो जाए, तो यह शिक्षक का अपमान हुआ कि सम्मान?
एक राजनीतिज्ञ शिक्षक हो जाए और कहे, कि अब दिल्ली छोड़ता हूं और जाकर बड़ौदा के पास एक गांव में शिक्षक हो जाऊंगा; तो तुम शिक्षक-दिवस मनाना। लेकिन शिक्षक राजनीतिज्ञ हो जाए तो शिक्षक-दिवस शुरू हो जाता है। और इसका परिणाम यह होता है कि सब शिक्षक थोड़ी-बहुत कोशिश करके कुछ न कुछ होने की दौड़ में लग जाते हैं। हिंदुस्तान का एक भी शिक्षक अब शिक्षा में उत्सुक नहीं है। कम से कम उप-शिक्षामंत्री हो जाए, शिक्षामंत्री हो जाए, इंस्पेक्टर ही हो जाए कम से कम! दौड़ जारी है।
कोई शिक्षक शिक्षा में उत्सुक नहीं है; क्योंकि शिक्षा का कोई सम्मान नहीं है। जर्मनी में कोई किसी शिक्षक को कहे कि चलो, मंत्री बना देते हैं; तो वह कहेगा, "पता नहीं, मैं प्रोफेसर हूं।" वह इस तरह से कहेगा, "क्या मुझे अपदस्थ करना चाहते हो? नीचे उतारना चाहते हो? मैं प्रोफेसर हूं विश्वविद्यालय का! मंत्री होने का क्या सवाल है?"
कब ऐसा दिन इस मुल्क में होगा? उस दिन राजनीति स्वस्थ हो सकेगी। जब यह सारा का सारा मुल्क एक ही महत्वाकांक्षा से भर जाए पद की; तो एक बहुत ही उपद्रवपूर्ण कलह शुरू हो जाएगी। हमें बहुत दिशाओं में सम्मान बांटना चाहिए। शिक्षक का अपना सम्मान है, संगीतज्ञ का अपना है, चित्रकार का अपना है, अभिनेता का अपना है, संन्यासी का अपना है। लेकिन सब विलीन हो गया, अब किसी का सम्मान नहीं है। पद पर जो खड़ा हो, उसका ही सम्मान है।

आज अगर किसी संन्यासी को भी सम्मानित होना हो, तो पहले किसी मिनिस्टर
को खोजना पड़ता है। मिनिस्टर संन्यासी के पास आकर हाथ जोड़ कर बैठ जाए, तो संन्यासी भी प्रतिष्ठित हो जाता है; नहीं तो संन्यासी का भी अब प्रतिष्ठित होने का कोई उपाय नहीं। अगर ऐसी स्थिति हमने बनाई, तो स्वाभाविक होगा कि सभी एंबीशियस, सभी महत्वाकांक्षी लोग राजनीति की तरफ दौड़ें।
सभी ओछे, क्षुद्र मन के, हीन मन के लोग राजनीति की तरफ दौड़ें, तो वहां अगर एक अंतर-कलह की... और जहां बहुत लोग संघर्ष करने में लगें, वहां के साधन अशुद्ध हो जाएं तो आश्चर्य नहीं! दिल्ली वैसा ही अड्डा बन गया! छोटे अड्डे--अहमदाबाद है, भोपाल है, पटना है। सब छोटे अड्डे हैं। और छोटे-छोटे अड्डे हैं। फिर एक-एक गांव छोटा-छोटा अड्डा हो गया।
सारा मुल्क, सारा देश सत्ता पाने की चेष्टा में इस भांति पागल है कि समझ के बाहर है; कि यह मुल्क कुछ और भी सोचेगा? और भी विचारेगा, कोई और दिशा नहीं है? कोई जिंदगी में और क्रिएटिव, सृजनात्मक दिशा नहीं है? कोई दिशा नहीं मालूम पड़ती। सब अखबार उनके, सब रेडियो उनके लिए, सब सम्मान उनके लिए, तो फिर सभी आदमी पागल हो जाएंगे। और जो आदमी जितना पागल होता है उतना ज्यादा पद का आकांक्षी होता है।
पागल आदमी कहीं ऊंची जगह खड़े होकर घोषणा करना चाहता है; कि मैं कुछ हूं। समबडी होने की बड़ी गहरी आकांक्षा पागल आदमी में होती है। अगर दुनिया कभी अच्छी हुई, तो शायद हमें पता चले कि दुनिया के आधे पागल इसीलिए पागल होने से बच गए, कि उन्हें राजनीति में जाने का मौका मिल गया। अगर हिटलर राजनीति में न जाए, तो पागलखाने में हो। अगर माओ राजनीति में न जाए, तो राजनीति में जाने के सिवाय और कोई जगह नहीं मिल सकती, जहां वह हो।
हमारे राजनीतिज्ञ उतने बड़े पागल नहीं होते हैं। उतने बड़े राजनीतिज्ञ
भी नहीं हैं। छोटे-मोटे पागलखानों में इनकी भी जगह हो सकती है, बहुत बड़े पागलखाने में इनके लिए जगह नहीं हो सकती है। लेकिन पागलपन पैदा हुआ है। और एक मैडनेस है। यह भी अगर हम गौर करें; तो हमारे अतीत की धारणाओं से ही निकलती बात। पद के बड़े ही सम्मान करनेवाले लोग रहे। सत्ता और शक्ति के, धन के और व्यक्ति-पूजा के हम इतने दीवाने रहे हैं कि वह हमारा सब जारी है। अब भी वैसे का वैसा ही जारी है। लोकतंत्र ऐसे निर्मित नहीं हो सकता। यह धारणा हमें छोड़नी पड़ेगी। यह रुग्ण धारणा है, छोड़नी पड़ेगी कि व्यक्ति पूजा के योग्य है या व्यक्ति छोटे और बड़े हैं।
इंग्लैंड में चर्चिल की जरूरत थी, बुला लिया। युद्ध आया, चर्चिल की जरूरत थी; चर्चिल हुकूमत में आ गया। युद्ध गया, दुनिया सोच भी नहीं सकती कि चर्चिल ऐसे चुपचाप विदा कर दिया जाएगा। हम कभी विदा नहीं करते। हम कभी कर ही नहीं सकते थे; क्योंकि हम सोचते कि इतना बड़ा काम किया चर्चिल ने, अब हम कैसे छोड़ सकते हैं! तो पूजा करो, मूर्तियां खड़ी करो, मालाएं पहनाओ, गुणगान करो। अब हम यह काम करते हैं। चर्चिल को हम कभी नहीं छोड़ सकते थे। इंग्लैंड ने ऐसी सरलता से छोड़ दिया, जैसे काम पूरा हो गया। बुलाया था, काम पूरा हो गया, आदमी गया। व्यक्ति की कोई पूजा नहीं है, व्यक्ति का उपयोग है।
हम व्यक्ति की पूजा करते हैं, व्यक्ति का कोई उपयोग नहीं। तो एक दफा
एक आदमी छाती पर बैठ जाए, उसकी जरूरत भी पूरी हो जाए, तो वह आदमी फिर बैठा ही चला जाता है। और कोई आदमी इस
देश में रिटायर तो होना नहीं चाहता। कोई कभी रिटायर नहीं होना चाहता।
वह तो जो लोग मर गए है, अगर उनको फिर मौका मिल जाए, तो कब्रों से वापस लौट आएं। वह तो अगर मरघटों में खबर कर दी जाए कि राष्ट्रपति का चुनाव हो रहा है, मुर्दे भी खड़े हो सकते हैं। तो मुर्दे सब खड़े हो जाएंगे। कोई आदमी सत्तर-पचहत्तर साल का, कितना ही हो जाए, वह किसी पद से हटना नहीं चाहता है। भारत की राजनीति में एक उपद्रव यह है कि वृद्धजन हटना नहीं चाहते। तो जो युवा हैं, जो उनकी जगह जाना चाहते हैं, संघर्षरत हैं, वह इस कलह का कारण बन गए हैं।
वृद्धों को हटाने योग्य क्षमता आनी चाहिए। सच तो यह है, कि वृद्धों को पता होना चाहिए, कि बच्चों का खेल है कुछ। उम्र ज्यादा हो जाए, प्रौढ़ता बढ़

जाए, तो दूसरे बच्चों को खेलने का मौका होना चाहिए। उन्हें हट आना चाहिए। कोई हटना नहीं चाहता, जब तक उसे धक्का न दिया जाए। और धक्का देने पर भी जब तक वह कुर्सी को पकड़ रहे किसी तरह से, आखिरी दम तक; तब तक वह पकड़े रहेगा, छोड़ नहीं सकता। ऐसी बेहूदगी... पर एब्सर्डिटी हो गई है, कि उस सब में बड़ा अजीब मालूम पड़ रहा है, कि यह मुल्क कैसे आगे बढ़े!
वृद्ध को हटने के योग्य क्षमता जुटानी चाहिए। जो काम कर सकते हैं, व्यक्तियों की पूजा नहीं--काम का सम्मान होना चाहिए। और काम पूरा हो जाए तो व्यक्तियों को हटना चाहिए और हमें हटाने की हिम्मत होनी चाहिए। यह अकृतज्ञता नहीं है। वह कोई ग्रेटिट्यूट की कमी नहीं है। यह सिर्फ इस बात की स्वीकृति है कि बीमार था आदमी, हमने डाक्टर को बुला लिया था। अब बीमारी खत्म हो गई, अब डाक्टर को हम वहीं बिठाए हुए है; तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। डाक्टर को अब विदा कर देना चाहिए, सम्मानपूर्वक।
हिंदुस्तान आजाद हुआ। जिन लोगों ने स्वतंत्रता का संघर्ष किया, जरूरी नहीं है कि वे सत्ता करने में भी कुशल हों। यह बिल्कुल उलटी बात है। इससे कोई संबंध नहीं है। सच तो यह है कि जो लोग सेवा करने में कुशल हैं, उनके हाथ में सत्ता देना बड़ा खतरनाक हो सकता है। जो लोग युद्ध के--जो लोग स्वंतत्रता के युद्ध में लड़ने में, जिन्होंने बड़ी क्षमता दिखलाई है, जरूरी नहीं है कि वे सत्ता करने में भी उतनी ही कुशलता दिखाएं। लेकिन ऐसा ही हो गया है।
वह जेल जाना सर्टिफिकेट हो गया सत्ता करने का। जेल जानेवाले को हमें सम्मान देना चाहिए, लेकिन सम्मान देने का मतलब यह नहीं कि वह सत्ता में बैठ जाए। तो कोई भी ऐरा-गैरा आदमी, जो किसी भी तरह जेल गया था, या किसी तरह से अब भी जेल का झूठा सर्टिफिकेट ला सकता हो, तो वह सत्ता का हकदार हो गया। हमें व्यक्तियों की फिकर है, हमें कामों की जरा भी फिकर नहीं है। इसलिए सारी की सारी राजनीति अजीब हालत में पड़ गई। देश आजाद हुआ था। सोचा जाना चाहिए था कि कौन लोग काम के साबित हो सकते हैं? नहीं, यह नहीं सोचा गया। किन लोगों ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी। आजादी की लड़ाई लड़ना एक बात है, सत्ता करना बिल्कुल दूसरी बात है! जीवन को व्यवस्था देना, समाज को गति देना बिल्कुल दूसरी बात है।
तो ऐसी हालत हो गई कि जो लोग अंगूठा से निशान लगाते हैं, वे शिक्षामंत्री होकर बैठ गए हैं। इसकी कोई फिकर ही नहीं रही, कि शिक्षामंत्री होने का क्या मतलब हो सकता है! एक अत्यंत अव्यवस्था और अराजकता पैदा हुई है। वह अब भी जारी है। उसमें अभी भी कोई फर्क नहीं हो गया है। व्यक्ति की पूजा होनी छोड़ देनी चाहिए। काम महत्वपूर्ण है, व्यक्ति नहीं। और राष्ट्र महत्वपूर्ण है, समाज महत्वपूर्ण है, व्यक्ति नहीं! कौन हितकर है, उसे हम पुकारेंगे; कौन हितकर नहीं है, उसे हम विदा कर देंगे। विदा अपमान नहीं है, विदा केवल काम का पूरा हो जाना है। लेकिन वह कोई भाव मुल्क में पैदा नहीं होता है।
और तीसरी आखिरी बात आपसे कहना चाहता हूं, जिससे उलझन भारी होती चली जाती है। भारत का जो मन है, वह जो हमारा नेशनल माइंड है, उस राष्ट्रीय चित्त में एक बहुत गहरी बात है और वह बात बिल्कुल असामाजिक है, एंटी-सोशल है। भारत के पांच-छह हजार वर्ष के चिंतन ने एक-एक व्यक्ति को निपट स्वार्थी बना दिया है। अपने तक केंद्रित कर दिया है। हर व्यक्ति का अपना मोक्ष है भारत में। हर व्यक्ति का अपना सुख है।
सामूहिक सुख, सामूहिक मुक्ति, सामूहिक आनंद की कोई कल्पना ही नहीं है--है ही नहीं। हमने कभी सोचा ही नहीं इस तरह। हम तो हरेक को समझाते हैं, पति को हम कहते हैं, तू अपनी फिकर कर, पत्नी अपनी फिकर करे, तेरा बेटा अपनी फिकर करे। कोई किसी के सुख में भागीदार नहीं है। हमने एक-एक व्यक्ति को इस तरह तोड़ दिया है, कि जिसको कम्युनिटी कहें, समाज कहें, वह भारत में पैदा ही नहीं हुआ। प्रत्येक व्यक्ति अपनी फिकर कर रहा है, अपना मोक्ष, अपना स्वर्ग खोज रहा है। अपने पाप-पुण्यों का हिसाब रख रहा है।
दूसरे से क्या संबंध है? दूसरे से कोई संबंध नहीं है। एक अंतर्संबंधी
की भावना ही पैदा नहीं हुई। इसलिए समुदाय कैसे सुखी हो? समाज कैसे सुखी

हो? समाज कैसे बढ़े, आगे विकसित हो? यह हमारे मन में नहीं है। एक-एक व्यक्ति अपनी-अपनी फिकर में लगा है। एक-एक व्यक्ति पहले मोक्ष की फिक्र करता था, अब एक-एक व्यक्ति पद की, धन की! एक-एक व्यक्ति अपनी-अपनी फिकर कर रहा है। इसलिए पूरा मुल्क एक बड़ी अंतर-कलह में, एक कांफ्लिक्ट में और युद्ध में पड़ा हुआ है। जहां भी व्यक्तियों के व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत महत्वपूर्ण हों और समाज का कोई स्वार्थ न हो, वहां यह हो जाना सुनिश्चित है। राजनीति में उसके सब फफोले और घाव और फोड़े फूटने शुरू हो गए हैं। यहां एक-एक व्यक्ति अपने में उत्सुक है। यहां कोई व्यक्ति किसी दूसरे में उत्सुक नहीं है।
एक किताब मैं पढ़ रहा था--"उन्नीस सौ पचहत्तर" किताब का नाम है। लेखकों
ने घोषणा की है--बड़े अर्थशास्त्री हैं, तीन लेखक--उन्होंने घोषणा की है, कि भारत में उन्नीस सौ अठहत्तर तक, उन्नीस सौ पचहत्तर और अस्सी के बीच इतना बड़ा अकाल पड़ेगा कि जिसमें दस करोड़ से बीस करोड़ तक लोग मर सकते हैं। और मुझे लगता है कि उन्होंने जो दलीलें दी हैं, वे सब सही हैं, उनमें कुछ कमी नहीं है। यह हो सकता है। दिल्ली में एक बहुत बड़े नेता से, नाम उनका नहीं लूंगा-- नाम लेने से इस मुल्क में बड़ी मुश्किल होती है; बड़ी झंझटें खड़ी हो जाती हैं--उनका नाम नहीं लूंगा, उनसे मैंने कहा कि आपने यह किताब पढ़ी है? उन्नीस सौ अठहत्तर में अर्थशास्त्री कहते हैं--भारत में मुल्क के इतिहास का सबसे बड़ा अकाल पड़ेगा। उन्होंने कहा, उन्नीस सौ अठहत्तर अभी बहुत दूर है, अभी तो उन्नीस सौ बहत्तर का सवाल है। उन्नीस सौ अठहत्तर से किसको मतलब है? न हम रहेंगे, न सवाल है। वह जो रहेंगे, वह जानेंगे।
किसी को मतलब नहीं है पूरे देश से। प्रत्येक को अपने से मतलब है कि मैं कितनी देर सत्ता में, संपत्ति में, रह सकता हूं। इसके बाद बात खत्म हो जाती है। पूरा मुल्क--हमारा पूरा मुल्क व्यक्तियों की भीड़ है, समाज नहीं है। हम एक भीड़ हैं, न हम राष्ट्र हैं, न हम समाज हैं, हम एक क्राउड हैं, बड़ी। इसलिए हम कभी भी गुलाम हो सकते हैं। गुलाम रहे हम एक हजार साल इसीलिए! क्योंकि इस मुल्क में कोई समाज था ही नहीं। अगर एक आदमी का कोई कत्ल कर रहा था--दूसरे लोगों ने सोचा, हमें क्या मतलब है? अगर एक प्रांत जीत लिया गया, एक राज्य हर गया--दूसरे राज्यों ने सोचा, हमें क्या मतलब है? लोग हारते चले गए, किसी को मतलब न था।
दुश्मन बहुत कम आए थे हिंदुस्तान में। शायद बाबर हजार-पांच सौ आदमियों को लेकर प्रविष्ट हुआ था। करोड़ों के मुल्क को जीत लेना कितना कठिन था; लेकिन यहां एक-एक आदमी था, यहां मुल्क था ही नहीं। तो पांच सौ आदमी एक आदमी के खिलाफ बहुत मजबूत पड़ गए। इतने थोड़े से अंग्रेज इतने बड़े मुल्क पर, इतने दिन हुकूमत कर सके, उसका और कोई कारण न था। यहां कोई समाज था ही नहीं। उनका एक समाज था। अगर तीन लाख अंग्रेज भी भारत में थे, तो वे हमसे ज्यादा थे। हम चालीस करोड़ बेकार थे। वे तीन लाख का एक समाज था, एक कम्युनिटी थी। यह चालीस करोड़ की भीड़ है। इस भीड़ में कोई अर्थ नहीं, किसी को किसी से कोई प्रयोजन नहीं।
अगर भारत को कहीं भी, इन जीवन की सारी गंदगियों को, राजनीति के सारे उपद्रवों को शांत करना हो, और एक ठीक राजपथ पर भारत के भविष्य को ले जाना हो, तो भारत की व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रवृत्ति को तोड़ना ही पड़ेगा। एक-एक बच्चे को सिखाना पड़ेगा, कि "तुम्हारा सुख" जैसी चीज नहीं होती। "हमारा सुख" जैसी चीज होती है। "तुम" जैसा कुछ नहीं होता, "हम" जैसी कोई चीज होती है। सुख व्यक्ति का नहीं होता, हम सबका सामूहिक अंतर्सम्बंध है। और दुख भी अंतर्संबंध है। लेकिन हम भारत को समझा रहे हैं। एक आदमी गरीब है, तो हम कहते हैं, अपने कर्मों का फल भोग रहा है। हम समाज से तोड़ देते हैं उसको। हम यह नहीं कहते कि समाज की गलत व्यवस्था का फल भोग रहा है। हम कहते हैं, अपने कर्मों का फल भोग रहा है।
राष्ट्र की कोई आत्मा, समाज की कोई अपनी आत्मा न हो, तो जो हो रहा है,
वह होगा। और विघटन होगा, और डिसइंटीग्रेशन होगा। मद्रास कहेगा--मैं अलग। बंगाल कहेगा--मैं अलग। केरल कहेगा--मैं अलग। और अभी तो यह प्रांतों की बातें हैं, जिले भी पीछे नहीं रहेंगे। बड़ौदा कहेगा, अहमदाबाद के साथ बंधे

रहने की जरूरत क्या है? और अगर भारत की बुद्धि को पूरा खुल कर खेलने का मौका दिया जाए... मैंने सुना है, बुद्ध के जमाने में भारत में दो हजार राज्य थे... अगर भारत की बुद्धि को पूरा मौका दिया जाए या भारत की प्रतिभा को, "जीनियस" को, जिसको हम बड़ा आदर करते हैं--तो दो हजार से ज्यादा राज्य फिर हो सकते हैं। कोई कठिनाई नहीं है।
हमारी बुद्धि ही अजीब है। नर्मदा किसकी है, मध्यप्रदेश की है कि गुजरात की? झगड़ा चलेगा वर्षों तक। वहां प्यासा कोई मर जाए, खेत में पानी न पहुंचे, यह झगड़ा चलता रहेगा। नर्मदा का पानी किसका? कौन कितना ले? यह तय नहीं हो सकता। नर्मदा हिंदुस्तान की नहीं है। या तो मध्य प्रदेश की है या गुजरात की है। और एक जिला मैसूर में रहना चाहिए कि महाराष्ट्र में, इस पर गोलियां चलेंगी, दंगे-फसाद होंगे--आश्चर्यजनक है! आने वाले बच्चे हमारे सोचेंगे, क्या हमारे मां-बाप पागल थे? क्या था इनके दिमाग में? हो क्या गया था? जिला गुजरात में होता है कि महाराष्ट्र में, फर्क क्या पड़ता है? जिला हिंदुस्तान का है। लेकिन हिंदुस्तान का न कोई जिला है, न कोई नदी है, न कोई पहाड़ है। सब पहाड़, सब नदियां, सब जिले किसी प्रदेश के हैं। और चीजें आगे बढ़ती चली जाएंगी।
अभी मैं पटना में था, बिहार में। वहां वे कहते हैं, हमारा झारखंड अलग होना चाहिए। मध्य प्रदेश में बुंदेलखंड के लोग कहते हैं, बुंदेलखंड अलग होना चाहिए। तैलंगाना अलग होना चाहिए, विदर्भ अलग होना चाहिए। सब अलग होना चाहिए। अगर हम पूरा मौका दें तो एक-एक आदमी, आखिरी जो नतीजा है एनालिसिस का, वह यह है--कि मैं अलग, तुम अलग। मैं एक अलग राष्ट्र, तुम एक अलग राष्ट्र! इसने हमें तीन हजार वर्ष तक पीड़ित किया था, वह फिर वैसा होना शुरू हो गया है।
यह हैरानी की बात है, कि हमने अंग्रेजी की गुलामी में पहली दफे एक राष्ट्र की शक्ल ली है। हम इसके पहले कभी राष्ट्र नहीं थे। यह इतना दुखद है कि गुलाम कौम राष्ट्र बनी और आजाद कौम कभी राष्ट्र नहीं थी।
चर्चिल ने हिंदुस्तान की आजादी के दिन, पंद्रह अगस्त को यह कहा था--कि तुम फिकर मत करो, उनको आजाद हो जाने दो, तुम एक पंद्रह-बीस साल में देखोगे, कि उन्होंने गुलामी की सब व्यवस्था फिर से पैदा कर ली है। दो सौ साल का हमारा उन्हें अनुभव है। और उसने कहा--कि सब टूट जाएंगे और बिखर जाएंगे। वह आपस में लड़ जाएंगे, टूट जाएंगे, बिखर जाएंगे। और हमने वह सारा बिखराव शुरू कर दिया है; लेकिन इन बिखरावों को अगर हमने इमिजिएट समझा, कि अभी का मामला है, तो गलती हो जाएगी। फिर हल... फिर हल नहीं होगा। इसलिए मैंने कहा, "आज" बिल्कुल आज नहीं है। हमारा पूरा अतीत उसके पीछे खड़ा है। आज की राजनीति बिल्कुल आज की नहीं है। पूरा अतीत पीछे से धक्के दे रहा है। उसे अगर हम समझेंगे, तो हम कॉ.जेज, कारण अलग कर सकते हैं। और अगर हमने समझा कि पीछे का कोई सवाल नहीं है, यह सवाल बिल्कुल आज का है, तो हम जो भी हल करेंगे, वे हल दस परेशानियां खड़ी करंगे और हल नहीं हो सकता है। पूरे भारत के चित्त को बदलना जरूरी है।
तीन चार बातें मैंने कहीं--उन्हें दोहरा दूं--पहली बात! अच्छा आदमी राजनीति के प्रति वैराग छोड़े और बुरे आदमी को राजनीति में जाने से रोकने के सब उपाय होने चाहिए। लेकिन बुरे आदमी की अपनी तरकीबें हैं। वह कहता है, यह सवाल अच्छे-बुरे आदमी के चुनाव का थोड़े ही है। यह सवाल तो कम्युनिस्ट, कांग्रेसी और सोशलिस्ट का है। अच्छे और बुरे के बीच विकल्प ही नहीं होता है। वह कहता है, सोशलिस्ट को चुनो, कम्युनिस्ट को चुनो, कांग्रेस को चुनो! किसको चुनना है? और तीनों बुरे आदमी खड़े हैं। सवाल अच्छे और बुरे के बीच नहीं है, सवाल कम्युनिस्ट और कांग्रेसी, जनसंघी और कांग्रेसी के बीच है। और दोनों मौसेस भाई हैं, इसमें कोई फर्क नहीं है।
अभी मुझसे किसी ने पूछा कि मोरार जी को चाहेंगे? मोरार जी भाई को चाहेंगे आप कि इंदिरा को? तो मैंने कहा, इंदिरा बहन हैं, और मोरार जी भाई हैं। भाई-बहन में कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं है। झगड़े घरेलू हैं और भीतरी! और कोई आ जाए तो फर्क नहीं पड़ता। भाई उतने साबित होंगे, जितनी बहन साबित होने

वाली है। भाई-बहन के झगड़े हैं, चुनाव बहुत ज्यादा नहीं है। लेकिन हम इस चुनाव में पड़ जाते हैं, कि इसको चुनें या उसको।
मैंने सुना है कि जापान में बैरे बहुत कुशल हैं। सारी दुनिया में आप जाएं, तो वह आपसे पूछेंगे कि आप भोजन के बाद चाय लेंगे कि नहीं लेंगे? जापान में ऐसा नहीं पूछेंगे। वह पूछेंगे--भोजन के बाद चाय लेंगे या काफी? विकल्प आपको "नहीं" का देते ही नहीं। चाय लेंगे या काफी? तो आदमी को सीधे ही सूझता है कि क्या लूं, चाय लूं कि काफी? अगर किसी ने पूछा कि भोजन के बाद चाय लेंगे कि नहीं लेंगे, तो विकल्प दो है, कि लेना है कि नहीं लेना है। पहले वाला बैरा ठीक पोलिटिकल नहीं है, राजनीतिक नहीं है। उसकी समझ कम है। वह आदमी को गलत विकल्प दे रहा है, इनकार करने का विकल्प भी दे रहा है। नहीं, विकल्प यह देना चाहिए कि चाय लोगे कि काफी? तो कुछ आदमी सोचेगा, कि यह ले लूं कि वह। उसे "नहीं" का खयाल ही नहीं आता, इमिजिएट नहीं का खयाल नहीं आता।
हमारे सामने आदमी खड़े होते हैं। एक लाल रंग की टोपी लगाए है, एक सफेद रंग की टोपी। वह दोनों एक जैसे हैं। वह कहते हैं, किसको चुनते हैं, सफेद टोपी कि लाल टोपी को? और हमको खयाल आता है कि इसको चुनें कि उसको? लेकिन यह खयाल नहीं आता कि बुरे आदमी को चुनें कि अच्छे आदमी को? इसका विकल्प नहीं है।
बुरे आदमी को हटाना जरूरी है--सब तरफ से, चाहे वह कांग्रेसी हो और चाहे कम्युनिस्ट हो, चाहे सोशलिस्ट हो, यह सवाल नहीं है। हिंदुस्तान के सामने सवाल यह है, कि अच्छा आदमी कैसे जाए और एक नई हवा पैदा करनी चाहिए कि अच्छे आदमी को चुनो; वह किस पार्टी का है, यह दो कौड़ी की बात है? पार्टियों का मूल्य उतना बड़ा नहीं है। अंततः आदमी कैसे जाए? बुरे आदमी को हटाने की, अच्छे आदमी के वैराग को तोड़ने की जरूरत है।
दूसरी बात आपसे मैंने कही कि यह जो इतने लंबे दिनों से हम जिस भाषा में सोचते रहे हैं, जो हमारे सोचने की कैटेगरीज हैं, धारणाएं हैं, उन धारणाओं ने "व्यक्ति" को ज्यादा मूल्य दे दिया है, "समाज" का कोई मूल्य नहीं! समाज का मूल्य स्थापित करना जरूरी है। यह मैंने कहा--कि हम व्यक्ति को आदर देते हैं, पूजा देते हैं, काम की कोई चिंता नहीं है। व्यक्तियों का कोई आदर और पूजा नहीं होती है, और हम गैर लोकतांत्रिक हैं। हमारी चिंतना छोटे और बड़े की भाषा में सोचती है। अब तक हमारा लोकतांत्रिक मन नहीं हो सका और लोकतंत्र खड़ा करने चले हैं! यह मैंने कहा कि हीनभाव के लोग राजनीति में तीव्रता से दौड़ते हैं, और हीनभाव का आदमी खतरनाक है। क्योंकि एक तरह से रुग्ण है, बीमार है। उन आदमियों को भेजने, सोचने, तैयार करने की जरूरत है, जो न हीन हैं, न श्रेष्ठ हैं--जो, जो हैं, वह होने में आनंदित हैं--जो कहीं से भी हट सकते हैं बिना कठिनाई के, कहीं भी काम में लाए जा सकते हैं। व्यक्ति-पूजा बंद करनी जरूरी है। और समाज का हित कैसे हो, यह चिंतन ज्यादा मूल्यवान है।
राष्ट्र नहीं है, समाज नहीं है हमारे पास। वह पैदा करना है। वह पैदा नहीं होगा हमारे पुराने ढांचे में सोचने से, और हम उस पुराने ढांचे के कारण जो भी सोचते हैं, उससे राष्ट्र टूटता है। उससे राष्ट्र टूटता चला जाता है। हम जो भी सोचते हैं--कहीं सोचते हैं, भाषावर प्रांत हो, तो राष्ट्र टूटता है। अब हम सोचते हैं, एक राष्ट्रभाषा हो, उससे भी राष्ट्र टूट रहा है। हम जो भी करते हैं, उससे चीजें टूटती हैं, बिखरती हैं, बनती नहीं है। कोई जरूरत नहीं है राष्ट्रभाषा की। जब राष्ट्र ही नहीं है, तब राष्ट्रभाषा कैसे होगी? राष्ट्र हो तो राष्ट्रभाषा भी हो सकती है। राष्ट्र है ही नहीं, आप राष्ट्रभाषा के लिए चिल्ला रहे हैं। नहीं हो सकता। देश में पच्चीस राष्ट्र हैं, पच्चीस राष्ट्रभाषाएं रहेंगी अभी। और अगर एक लादने की कोशिश की, तो ये पच्चीस टूट जाने वाले हैं, एक लादी नहीं जा सकती। अभी तो राष्ट्र को पैदा करो। उन पच्चीस को निकट लाओ और राष्ट्र बनेगा, तो राष्ट्रभाषा बन जाएगी। राष्ट्रभाषा राष्ट्र की छाया है, इसके पहले नहीं आती। राष्ट्र है ही नहीं, तो राष्ट्रभाषा भी और राष्ट्र को तोड़ने का कारण बनेगी। राष्ट्रभाषा तो बन नहीं सकती।

मैं आपसे कहता हूं--राष्ट्रभाषा अभी पचास साल नहीं बन सकती; क्योंकि राष्ट्र है नहीं। तो बेहतर है, मत उपद्रव खड़े करो। जितनी भाषाएं हैं, उनको स्वीकार कर लो। थोड़ी मेहनत होगी, अनुवाद से काम चलाओ; लेकिन राष्ट्रभाषा का सवाल छोड़ दो। जो भी तोड़ता हो, वह सवाल छोड़ दो; जो जोड़ता हो, वे सवाल इकट्ठे करो। जिससे हम जुड़ते हों, इकट्ठे होते हों, करीब आते हों, वह सब हम करें और एक राष्ट्र और एक समाज बने। एक लोकतांत्रिक चित्त पैदा हो, और भले आदमी के लिए हमने जो दीवालें उठाई हैं, वह हम अलग कर दें, तो शायद जैसा उलझाव हमें दिखाई पड़ती है, वह बदल सकता है।
मैं नहीं जानता, क्योंकि मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं, लेकिन दिखता
जो है, वह मैंने आपसे कहा। आपने शायद सोचा होगा कि आज की राजनीति पर मैं उन्हीं सब बातों की बातें करूंगा, जो रोज सुबह आप अखबार में पढ़ रहे हैं, तो आपने गलत सोचा होगा। उससे मुझे कोई मतलब नहीं है। सिर्फ वह लक्षण हैं बीमारियों के, लक्षण हैं सिर्फ ऊपर के। भीतरी बीमारियां और हैं।
लक्षणों के सोचने से कुछ हल नहीं होता है। एक आदमी को बुखार चढ़ा है, एक आदमी हाथ को गरम देख कर समजे कि गरम होना बीमारी है, ठंडा पानी डालो, ठंडा करो इस आदमी को। हो जाएगा आदमी ठंडा! बिल्कुल ठंडा हो जाएगा! नहीं, बीमारी है, बुखार नहीं है, बीमारी। वह जो गर्मी मालूम हो रही है, वह बीमारी नहीं है, बीमारी कहीं भीतर है, बुखार सिर्फ खबर है। बुखार सिर्फ खबर दे रहा है, कि आदमी भीतर कहीं रुग्ण हो गया है। उस भीतर के रोग को खोजो, तो यह बुखार चला जाएगा। बुखार सिर्फ सिंबालिक है। तो यह जो हमें दिखाई पड़ रहा है, सब फीवर है, सब बुखार है, इसको बीमारी मत समझ लेना। नहीं तो ठंडा पानी डालने से और मुश्किल होगी। इसको नहीं, इसके भीतर कहां कारण छिपे हैं।
कुछ कारण मैंने सुझाए, आप सोचना। हो सकता है ठीक हों, हो सकता है गलत हों। कोई मेरी बात ठीक होनी चाहिए, ऐसा सवाल नहीं है। वह पुराने जो व्यक्तिवादी लोग थे, उनका दावा था यह, कि हम जो कहते हैं वह ठीक है। वह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं, समाज सोचे। मैंने कहा, आप सोचें। सोचने से ठीक निकलेगा, मेरे कहने से ठीक नहीं होता। न आपके कहने से ठीक होता है।
हम सब एक डायलॉग में जुड़ जाएं। हम सोचें, विचारें। समाज सोचे तो धीरे- धीरे मंथन होगा और ठीक निकलेगा। ठीक निकल सकता है। आशा खोने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन दिल्ली की तरफ देखो, तो बहुत निराशा होती है। दिल्ली की तरफ देख कर एकदम निराशा होगी। दिल्ली की तरफ देखें ही मत। यह बड़ा देश है, दिल्ली तो कुछ भी नहीं है। बड़े देश की तरफ देखें, इसके एक-एक आदमी को सोचने- विचारने के लिए तैयार करें। हवा पैदा करें, तो शायद एक दिन आ सकता है, कि इस तरह की बेवकूफियां जो चलती हैं रोज, इनसे छुटकारा हो जाए। छुटकारा न हुआ तो देश का बहुत नुकसान पीछे अतीत में हुआ है, आगे भी होगा।
हम विकसित मुल्कों से कम से कम तीन सौ वर्ष पीछे हैं। अमरीका जहां है, वहां से हम तीन सौ वर्ष पीछे हैं; ज्यादा हो सकते हैं। अगर हमें हमारे साधन पर छोड़ दिया जाए तो हम तीन सौ साल बाद भी चांद पर नहीं पहुंच सकते। बहुत पीछे हैं, और उनकी गति रोज बढ़ती चली जा रही है। मैं एक आंकड़ा पढ़ रहा था--कि जीसस से मरने के अठारह सौ वर्ष तक मनुष्य का जितना विकास हुआ अठारह सौ वर्षो में उतना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ है, और पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना विकास हुआ, उतना पिछले पंद्रह वर्षों में हुआ है, और पिछले पंद्रह वर्षों में जितना विकास हुआ, वह आने वाले डेढ़ वर्ष में होगा। लेकिन हम कहां होंगे? हम अपनी बैलगाड़ी लिए अपना चरखा चलाते रहेंगे। हमारी मर्जी। कोई हमें रोक नहीं सकता, धक्का नहीं दे सकता। लेकिन दुनिया आगे चली गई है, आदमी बहुत आगे चला गया है, हम बहुत पीछे रह गए हैं। हमारे झगड़े भी बहुत टुच्चे हैं, ओछे हैं, छोटे हैं, बहुत छोटे हैं। झगड़े भी बड़े हों तो भी दुख मालूम पड़ता है। झगड़े भी बड़े हों, तो मुल्क ऊपर उठता है। झगड़े ही बड़े छोटे हैं। कोई बहुत बड़े झगड़े नहीं हैं। यह सोचने की आपसे प्रार्थना की।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत आनंदित हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का इक्कीसवां प्रवचन

भारत किस ओर

मेरे प्रिय आत्मन्!
भारत किस ओर, यह सवाल भारत की जिंदगी में पहली बार उठा है। पांच हजार साल के इतिहास में यह सवाल कभी उठा नहीं था। क्योंकि भारत किसी ओर जाने की हालत में नहीं है। जहां है, वहीं ठहरने की हालत में खड़ा है। पिछला पूरा हमारा अतीत का इतिहास, ठहराव का है--खड़े होने का इतिहास, ठहर जाने का इतिहास, उसमें कोई गति नहीं है--मूवमेंट नहीं है। हम कभी भी किसी तरफ भी नहीं गए हैं। एविंग्टन ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मनुष्य की भाषा में बहुत से शब्द झूठे हैं। उन झूठे शब्दों में एक शब्द उसने गिनाया है, अवेट ठहराव। मर गया एडिंग्टन। ओर मेरा मन होता है, किसी ने उसको कहा कि हो आओ भारत, और देखो! व्यर्थ ही एक असली शब्द देखोगे, भारत रूका है। एडिंग्टन ने इतिहास में कहा है, कि ठहरते हुए परिवर्तन के नियम हैं, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। लेकिन भारत ने इस नियम के विरुद्ध पांच हजार वर्षों तक लड़ाई की है, और ठहरने की कोशिश की है। हम ठहर गए हैं। जैसे कोई पानी रुक जाए किसी नदी का। गति बंद हो जाए, सागर की यात्रा बंद हो जाए, तो सिर्फ सड़ता है... ! ठीक ऐसे ही पांच-छह हजार वर्षों के इतिहास में भारत की जीवन-धारा के प्रति हुआ है। सब ठहरा हुआ है। सब रुका हुआ है। हम यही भूल गए हैं कि इतिहास जैसी भी कोई चीज है। अगर सब ठहरा हुआ हो तो इतिहास का कोई अर्थ नहीं होता है। इसलिए भारत ने कभी इतिहास नहीं लिखा। भारत के पास अपना कोई लिखा हुआ इतिहास नहीं है। कहानियां लिखी हैं, पुराण लिखे हैं लेकिन इतिहास नहीं लिखा। सोचता है, इतिहास की बुद्धि पैदा नहीं हुई; क्योंकि जब चीजे वहीं की वहीं, सदा वहीं की वहीं हैं, तो इतिहास क्या लिखना है? बदलाहट होती है, परिवर्तन होता है, तो इतिहास का बांध पैदा होता है।
लेकिन सौभाग्य से... मेरी दृष्टि से, और अब बहुत लोगों की दृष्टि से... दुर्भाग्य से--आज भारत उस जगह खड़ा हो गया है, कि या तो उसे कहीं जाना होगा या मरना होगा। इसके सिवाय तीसरा कोई विकल्प नहीं है। अगर हम कहीं नहीं जाते हैं, तो मनुष्य के विराट जगत से हमारा संबंध विच्छिन्न हो जाएगा। और इसिलिए सोचना और विचार करना जरूरी है। किधर, किस तरफ, कहां जाने की बात है? कहां हम जा रहे हैं?
इसे समझना जरूरी है, कि भारत का पूरा मन कैसा है? इसे समझ लेना उचित है। क्योंकि भारत यानी क्या--नहरें, महासागर, नदियां, पहाड़? नहीं, भारत का यह मतलब नहीं है। भूगोल भारत नहीं है। भारत का आदमी, और आदमी से क्या मतलब है? उसके हाथ-पैर हैं? नहीं, आदमी से मतलब--उसका मन, बुद्धि! भारत का मन क्या है? भारत का मन गतिविरोधी है। भारत का मन रुक जाने और ठहर जाने का आग्रही है। अगर कोई धक्के दे दे मजबूरी में, तो हम स्थान छोड़ दें। लेकिन जगह छोड़ने का हमारा मन नहीं करता। जो जहां है, वहां ठहर जाने की हमारी हजारों साल की मन की चेष्टा रही है; इसिलिए सब चीजें ठहर गई हैं। बैलगाड़ी जैसी बनी थी, ठीक वैसी ही है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा है कोई फर्क नहीं पड़ा।
शायद हम सोचते नहीं है। बैलगाड़ी में फर्क पड़े, तो बैलगाड़ी में फर्क पड़ते-पड़ते ही जेट प्लेन बनता है। वह बैलगाड़ी में ही हुआ निरंतर-निरंतर विकास है। आज बैलगाड़ी पर बैठ कर और जेट प्लेन पर बैठ कर सोचना मुश्किल है, कि इन दोनों में क्या संबंध है। क्योंकि बीच की सीढ़ियां नहीं होती हैं; लेकिन वहीं दिक्कत होती है। हम बैलगाड़ी पर ही खड़े हैं। वहां से हम नहीं बदलते हैं; बल्कि हम उसमें गौरव अनुभव करते हैं।
न बदलना गौरवपूर्ण है हमारे मन में! और हम निरंतर यह क हते हैं, कि मिस्त्र कहां है अब! यूनान कहां है, सीरियां कहां है, बेबीलोन कहां है! सारी संस्कृतियां दुनिया की पैदा हुई और मर गईं। चीनी सबसे पुरानी संस्कृति है, खो गई। एक हम हैं, जिनकी पुरानी संस्कृति अभी भी जिंदा है। हम इसमें भी गौरव अनुभव करते हैं। जब कि सच्चाई यह है कि जैसे एक व्यक्ति

पैदा होता है, जवान होता है, बूढ़ा होता है और मरता है। यही नैसर्गिक व्यवस्था है। ऐसे ही संस्कृति भी पैदा होती है, जवान होती है, बूढ़ी होती है और मरती है। मरनी चाहिए ही! जन्मने के साथ ही अनिवार्य प्रक्रिया है।
अगर कोई संस्कृति मरने से इनकार कर दे, तो नये जीवन के अंकुर पैदा होने बंद हो जाते हैं। नया जीवन, उसका आगमन, उसके सब द्वार बंद हो जाते हैं। भारत की संस्कृति ने मरने की इनकार कर दिया है। कोई आदमी तो मरने से इनकार नहीं कर सकता, मर जाएगा, मर ही जाएगा। बदल जाएगा। लेकिन कोई समाज, कोई संस्कृति किसी व्यक्ति को बदलते चले जाते हों, लेकिन अगर मन पर शक कर ले, तो ठहर सकता है। ठहराव के कुछ परिणाम भी हमने भोगे हैं। हम सदा से गरीब हैं, और गरीब ही बने रहे।
ठहरा हुआ समाज समृद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि ठहरा हुआ समाज किसी भी आयाम में किसी भी दिशा में, संपत्ति को ज्ञान को, कोई प्रयास नहीं करता। ठहरा हुआ समाज भी उसके पास है, उसमें ही तृप्त होता है। तृप्त न हो, तो ठहर नहीं सकता है। ठहरने का सूत्र है, कंटेंटमेंट। ठहर जाओ--उसकी आधारशिला है, संतोष कर लो। संतुष्ट ठहर जाता है, असंतुष्ट गति करता है।
अगर भारत को आगे गति करनी है तो उसको अपने पुराने संतोष के मानसिक ढांचे को तोड़ देना पड़ेगा। एक असंतोष चाहिए ही। जो है उससे तृप्त होना गलत है। क्योंकि जो हो सकता है, अगर हम तृप्त हो सकते है, वह कभी नहीं होगा। जो है, उसके अतिरिक्त होना जरूरी है ताकि जो हो सके, उस तरफ गति होती रहे, हम आगे बढ़ते रहें। भारत तृप्त है। गरीबी है, उससे तृप्त हैं। गुलामी आएं, उससे तृप्त है।
एक हजार साल तक हम गुलाम न रहते; अगर हमारी तृप्ति की यह गहरी आस्था न होती। हम गुलामी से भी तृप्त हो गए। एक हजार साल इतनी बड़ी कौम गुलाम रहे, यह हैरान करने वाला है। जब तक कि उस कौम का पूरा मानसिक ढांचा गुलामी का न हो। एक हजार साल तक किसी को गुलाम रखना बहुत मुश्किल है, जब तक कि वह कौम किसी दूसरे ढंग से गुलामी के लिए राजी न हो। हम राजी हैं। राजी होने का कारण यह था कि हम हर चीज को स्वीकार करते हैं। वह जैसी है, उसके साथ वैसे ही होने को राजी हैं।
दो रास्ते हैं समाज के--या तो जिंदगी गलत हो तो जिंदगी को बदलो। और अगर जिंदगी गलत हो, तो एक रास्ता यह है कि अपने को गलत जिंदगी के साथ राजी कर लो। या तो दुनिया को बदलो या बाहर की दुनिया के साथ राजी हो जाओ।
भारत ने दूसरा रास्ता पकड़ा हुआ है। जैसी भी स्थिति हो उसके साथ मनुष्य को ही राजी हो जाना है, बदलना नहीं है बाहर की स्थिति को। गरीबी हो, तो गरीबी में राजी हो जाना हैं, बीमारी हो, बीमारी में राजी हो जाना है। और राजीपन के लिए हमने बड़ी फिलासफीज खोजी हैं, बड़े दर्शन खोजे हैं। वह हमें समझाते हैं। जो कर रहा है, वह भगवान कर रहा है। तो फिर हम कुछ कर नहीं सकते। गरीबी है, तो भगवान कर रहा है। बीमारी है, तो भगवान कर रहा है। हमने रास्ते खोजे है कि हर आदमी के भाग्य में जो लिखा है, वही हो रहा है। कुछ अन्यथा हो नहीं सकता है। हम एक-एक आदमी को समझाते रहे हैं कि तुम्हारे पिछले जन्मों के फल तुम भोग रहे हो। अब कुछ हो नहीं सकता, फल भोगने के बारे में। गरीब आदमी अपने पिछले जन्मों का फल भोग रहा है। अमीर आदमी भी पिछले जन्मों को फल भोग रहा है। इसलिए दोनों के बीच कोई झगड़ा नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। दोनों ही अपने पिछले जन्मों से बंधे हैं। और दोनों का आज की जिंदगी से कोई संबंध नहीं है, आज की जिंदगी से कोई मतलब नहीं है, गरीबी-अमीरी का। गुलामी भी हम भोग रहे हैं। वह भी हमारे भाग्य, हमारे कर्मों का फल है। डाल हमने एक व्याख्या विकसित की, कि जिसमें जिंदगी जैसी है, हम उसके साथ राजी हो सकते हैं। उस व्याख्या ने भारत को ठहरा दिया, खड़ा कर दिया। वह ठहरा ही रहा, लेकिन दुनिया की हवाएं आई, हमारी सब दीवालें टूट गईं, हमारे सब घेराबंदी- मोर्चे टूट गए, हमारे सब ज्ञान-व्याख्याएं टूट गईं। चारों तरफ से दुनिया आई और हमको बहुत हिला दिया और बहुत तकलीफ में डाल दिया हम फिर भी आंखे बंद करने के आदी हैं। अगर दुनिया हमें हिलाती भी हो, तो हम आंख बंद करके अपनी पुरानी सुरक्षा के घर में पहुंच जाते हैं।

अभी पुरी के शंकराचार्य ने कहा कि चांद पर आदमी पहुंच ही नहीं सकता है, हमारी किताब में लिखा है। तो यह आर्मस्ट्रांग और उसके साथी जो पहुंचे, यह सब झूठी अफवाह है। यह सब चल नहीं सकती। यह आंख बंद करने की तरकीबें हैं। तो हम आंख बंद कर लेंगे, सोचेंगे नहीं? और शंकराचार्य ने कहा, अगर कोई पहुंच भी गया हो, तो फिर पक्का है कि वह चांद नहीं है, जो हमारे शास्त्रों में लिखा है। वह चांद-सूरज से भी आगे है। ये आंखें बंद हैं। जिंदगी के तथ्य अगर उघड़ जाएं तो हम फिर आंख बंद करने की कोशिश करते हैं, कि आंख बंद कर लो और इनकार कर दो, कि यह चांद तो चांद ही नहीं है। हम तो दूसरे ही चांद की बात करते हैं। उस चांद पर आदमी का पैर पड़ ही कैसे सकता है?
हम पिछले दो-तीन सौ वर्षों से जब से विश्व संपर्क में आए हैं तब से हम इसी तरह निरंतर इनकार करने की कोशिश कर रहे हैं, और अपनी आंख बंद करने की कोशिश कर रहे हैं बहुत। यह हो गई बात! और इस आंख बंद करने में हमने बहुत सी तरकीबें उपयोग की हैं। जैसे अगर हम पिछले तीन सौ वर्षों का भारत का विचार देखें तो अतीत का गुणगान है! एक ही रास्ता था आशा का, वह यह, कि हम अतीत का गुणगान करें। तो पिछले दो सौ वर्षों में हमारे अच्छे से अच्छे आदमी से लेकर, बुरे से बुरे आदमी, अतीत के गुणगान में लगे हुए हैं। वे सिर्फ यह कह रहे हैं, कि कभी हम बहुत अदभुत थे। सब ज्ञान हमारे पास था। अगर लोगों की किताबें हम पढ़ें, तो घबड़ाने वाली होंगी। वे कहते हैं, एटम बम हमारे वेद में लिखा हुआ है। उसी से निकला हुआ है। यहां तक वे कहते हैं कि जर्मनी हमारे ग्रंथ चले गए, उन्हीं से ही खोज-बीन करके सारे विज्ञान की बात निकली है। हमारे ग्रंथों में सब है। कभी हम सब जानते थे, सब हमने जान लिया था। हम पीछे की तरफ लौट गए।
ध्यान रहे, मनोविज्ञान का एक छोटा सा नियम है और कीमती है भारतीय संस्कृति को समझाने के लिए। फ्रायड ने इसे रिडक्शन का, रिग्रेशन का नियम कहा है। अगर कोई आदमी बहुत मुसीबत में पड़ जाए, एक जवान आदमी अगर बहुत मुसीबत में पड़ जाए, तो फौरन उसका चित्त बचपन में वापस लौट जाएगा। वह रोने लगेगा बच्चों की तरह, और हाथ-पैर पटकने लगेगा और वह बच्चा ही हो जाएगा। वह भूल जाएगा कि वह जवान आदमी है; क्योंकि बचपन में सब सुरक्षा थी, सब खतरा था, कोई चिंता न थी। फिर सोचता, वापस बचपन में लौट जाएगा।
यहां तक कि घटनाएं हैं, कि बहुत चिंता के दबाव में कई बार आदमी इतने बचपन में उतर जाता है कि चालीस साल के आदमी को भी चम्मच से दूध पिलाना पड़े, तो ही वह खाना खा सकता है; नहीं तो नहीं खा सकता है। वह बिल्कुल बच्चा हो गया है। जब आप भी, हम भी, मुसीबत में होते हैं तो चाहते हैं, कि किसी के गोद में सिर रख लें। वह बचपन में लौट जाने की इच्छा है। कोई सिर पर हाथ फेरे, कोई समझाए--वह बचपन में लौट जाने की इच्छा है।
चिंता घबड़ा देती है, पीछे लौटने को मजबूर कर देती है। भारत चिंतित हो गया है पूरी तरह से! एक हजार साल की गुलामी, और हजारो साल की बीमारी और दरिद्रता, चिंता, और कोई आशा नहीं। क्यों?
दरिद्रता और बढ़ेगी, दीनता और बढ़ेगी। वह घबड़ा गया है, तो पीछे का गुणगान करने लगा है। वह क हने लगा अतीत में हमारा गोल्डन-ए.ज था। पीछे हमारा स्वर्ण-युग था, रामराज्य था। वहां हम बिल्कुल सुख से थे। सब शांति थी। सब आनंद था।
ये सब बातें सरासर व्यर्थ हैं। पीछे न सुख था, न शांति थी। पीछे और भी दुख थे, और भी अशांतियां थीं; लेकिन उनका हमको पता नहीं चलता। और न पीछे आदमी अच्छा था, जैसा हमको खयाल में होता है, कि पीछे सारे लोग अच्छे लोग थे--सतयुग था। यह सब हमारी आज की स्थिति से पीछे भाग जाने की प्रवृत्ति के सिवाय और कुछ भी नहीं है। पीछे अच्छा आदमी क्या, कौन सा सुख था? कौन सी शांति थी? गरीबी इतनी है, कि इससे ज्यादा थी? गरीबी, पीछे जितना हम लौटते हैं, बढ़ती चली जाती है; लेकिन गरीब आदमी का हमने कोई इतिहास नहीं लिखा। हमने कुछ राजाओं की, बड़े लोगों की कुछ कहानियां याद रखी हैं, उन्हीं को हम दोहराए चले जाते हैं। राम, सुख में होंगे? लेकिन राम के पास विराट मनुष्य का समूह था, उसकी हमें क्या खबर है? राम अच्छे रह हैं। लेकिन राम के आस-पास

जो विराट समूह था, वह अच्छा है, इसकी हमें क्या खबर है? खबर तो नहीं है; बल्कि कुछ उलटी ही खबर मालूम पड़ती है।
ऐसा लगता है कि बाद में सिर्फ महापुरुष याद रह जाते हैं और सामान्यजन भूल जाते हैं। अभी, अभी हम सब जिंदा हैं, हम सब आज नहीं कल, "नहीं" हो जाएंगे। हजार-दो हजार साल बाद इस युग में शायद गांधी का नाम याद रह जाएगा, और तो सब नाम भूल जाएंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे। गांधी का युग "गांधी-युग" कितना अदभुत रहा होगा। गांधी कितना अदभुत आदमी है--कितना अदभुत युग रहा हो, लेकिन हमारा गांधी से क्या संबंध है? दो हजार साल बाद गांधी की तस्वारे के आधार पर हमारी धारणा बनेगी और दो हजार साल में गांधी की तस्वीर को बनाते चले जाएंगे, आदमी से भगवान बनाते चले जाएंगे। वह तस्वीर बिल्कुल झूठी हो जाएगी, बहुत बड़ी हो जाएगी। और तस्वीर के आधार पर हम सोचेंगे, दो हजार साल पीछे के आदमी के बाबत कि क्या सुनहरा स्वर्ण युग रहा होगा?
लेकिन गांधी के जमाने में कौन सा स्वर्ण युग था? यह तो हो भी सकता है
कि हमारा गोडसे से कुछ मेल-जोल हो, गांधी से क्या मेल-जोल है? गांधी के शिष्यों का तो गोड़से से मेल-जोल ज्यादा मालूम पड़ता है। गांधी से कोई मेल-जोल नहीं मालूम पड़ता। लेकिन दो हजार साल बाद गांधी हमारे प्रतीक की तरह बचेंगे, रिप्रेजेंटेटिव रहेंगे। हमारे वह, प्रतिनिधि हो जाएंगे। और उनके आधार पर पूरे युग का नाम होगा--"गांधी-युग"। वह सब नाम झूठा हो जाएगा।
आज राम हमें याद हैं, आम आदमी का हमें कुछ भी पता नहीं है, आज हमें बुद्ध याद है, महावीर याद हैं। आम आदमी का कुछ भी पता नहीं है। लेकिन लगता ऐसा है, कि अगर दुनिया बहुत अच्छी होती, तो बुद्धि और महावीर की याद नहीं रह सकती थी। यह ध्यान रहे, एक छोटे प्राइमरी स्कूल का शिक्षक भी जानता है, कि अगर काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखो, तो ही दिखाई पड़ता है। दीवार पर लिखें खड़िया से, तो दिखाई नहीं पड़ता है। लिख तो जाएगा, दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर महावीर और बुद्ध का जमाना बहुत अच्छे लोगों का जमाना होता तो सफेद दीवार पर महावीर और बुद्ध कभी के खो गए होते, उनका पता नहीं चलता।
दीवाल काली थी। उस काली दीवाल पर एक महावीर या बुद्ध या राम या कृष्ण जैसा आदमी हो जाता है। सफेद रेखाएं लिए हुए। वह हजारों वर्ष तक दिखाई पड़ रहा है। दीवार बहुत काली रही होगी। चारों तरफ का समाज बहुत काला रहा होगा। जिस समाज ने बुद्ध को भगवान क हा होगा, जिस समाज ने कृष्ण को भगवान कहा होगा, जिस समाज ने राम को कहा होगा, सर्वोत्तम तुम्हीं हो, वह समाज अंधेरे, काले ब्लैक बोर्ड की तरह रहा होगा। तभी ये सफेद रेखाएं उभर आई हैं। अगर समाज भी अच्छा रहा हो, तो अच्छा आदमी खो जाएगा। होगा तो, लेकिन उसका कोई पता नहीं चलेगा। हमें पता है, हमारे सारे महापुरुषों का, दस-पांच महापुरुषों को हम गिनती कर सकते हैं। और पीछे जो समाज है, उस समाज का हमें कोई पता नहीं है, लेकिन अंदाज हम लगा सकते हैं।
दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब, भारत की या भारत के बाहर--कोई किताब यह नहीं कहती, कि आज का जमाना अच्छा है। सारी किताबें यह कहती हैं, पहले के जमाने अच्छे थे। और एक भी किताब ऐसी नहीं है पहले के जमाने की, क्योंकि वह किताब भी मिल जाए, तो वह भी कहती है, पहले के जमाने अच्छे थे। चीन में कोई छह हजार वर्ष पुरानी एक किताब है, जो यह कहती है--अगर उसकी भूमिका पढ़ें तो ऐसा लगता है, कि आज के सुबह के अखबार का एडिटोरियल है। उसकी भूमिका में लिखा हुआ है, आजकल के लोग एकदम पापी हो गए हैं। बेटे बाप की नहीं सुनते। शिष्य गुरु की नहीं सुनते। छह हजार साल पुरानी किताब है। कोई किसी की नहीं मानता। पत्नियों की, पतियों में कोई आस्था नहीं रह गई है। सब तरफ चोरी है, बेईमानी है, भ्रष्टाचार है।
क्या हो गया है जगत का? जगत कहां जा रहा है। पहले सब अच्छा था, अब सब खराब हो गया है। छह हजार साल पहले भी अगर यही लिखना पड़ता है, तो वह पहले कब था, जब सब अच्छा था? दस हजार साल पुरानी ईंट मिली है बेबीलोन में, किसी मंदिर के द्वार पर लगी ईंट होगी, जिस पर लिखा हुआ है, सत्य बोलना धर्म है। लोग जरूर असत्य बोलते रहे होंगे। नहीं तो, दस हजार साल पहले मंदिर के सामने एक पत्थर लगाने की जरूरत नहीं पड़ती, अगर लोग सत्य बोल रहे हों।

जहां लोग असत्य बोलते हैं, वहीं सत्य की शिक्षा देनी पड़ती है। जहां लोग अधार्मिक होते हैं, वहीं धर्म की चर्चा चलती है। धार्मिक लोगों में क्यों चलेगी? बीमार आदमी अस्पताल जाता है, स्वस्थ आदमी तो नहीं जाता है। बुद्ध सुबह उठते हैं और रात सोते तक लोगों को समझा रहे हैं--झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, संयम ग्रहण करो, व्रत रखो। तो ठीक है! सुबह से सांझ तक बुद्ध का दिमाग खराब मालूम होता है। लोग अगर सच बोलते हों, तो बुद्ध किसको समझा रहे हैं? महावीर किसको समझा रहे हैं कि हिंसा मत करो, अगर लोग अहिंसक थे? निश्चित ही जो शिक्षाएं हैं, वह बताती हैं, कि लोग हिंसक रहे होंगे, इसलिए अहिंसा की शिक्षा देनी पड़ती है। लोग झूठ बोलते रहे होंगे, इसलिए सत्य बोलने को समझाना पड़ता है। लोग बुरे रहे होंगे, इसलिए अच्छे आदमी का-- अच्छे आदमी के निर्माण का निरंतर श्रम करना पड़ता है।
नहीं! अतीत का हमने एक भ्रम पाला है। एक हजार साल की गुलामी ने हमारे
मन को ऐसा दलित कर दिया है। ऐसा अपमानित हमने अनुभव किया है, कि हमारे पास कुछ भी नहीं है, और आगे अगर भविष्य में हमें आशा होती, तो हम भविष्य की तरफ देखते। भविष्य में कोई आशा न देखी, क्योंकि हम कोई करनेवाले लोग नहीं। भविष्य के प्रति केवल वे आशावान होते हैं, जो पैदा करते हैं, सृजन करते हैं, श्रम करते हैं। हम तो बैठकर जो होता है, उसे झेलने वाले लोग रहे हैं। तो भविष्य की तरफ तो हम देख नहीं सकते थे। इसलिए एक हजार साल की गुलामी में हमें मजबूरी में पीछे की तरफ देखना पड़ा और वर्तमान देखने योग्य नहीं था। छाती पर अंग्रेज के जूते थे, या छाती पर किसी और के जूते थे। जूते बदलते चले गए, पैर बदलते चले गए, छाती हमारी वही रही। एक हजार साल तक, किसी न किसी का जूता हमारी छाती पर था। इस तरफ आज देखना कठिन है, क्योंकि सिवाय जूतों के तलुओं के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।
तो या तो आगे देखो--आगे वह देख सकता है, जो सृजन की चिंता रखता हो। या
तो पीछे देखो! बच्चे सदा आगे देखते हैं, बूढ़े सदा पीछे देखते हैं। अगर किसी बूढ़े को आरामकुर्सी पर बैठे देखें, तो यह मत सोचना कि वह आगे की सोच रहा है। वह हमेशा पीछे की सोच रहा है, जब वह जवान था, जब वह बच्चा था। आगे तो मौत है, आगे तो कुछ है ही नहीं। और अगर कोई बूढ़ा व्यक्ति भी आगे की तरफ देखते मिल जाए, तो फिर कहना कि वह बूढ़ा नहीं है, वह जवान है।
बच्चे पीछे की तरफ नहीं देखते--पीछे क्या देखना है? पीछे कुछ है ही नहीं देखने का। सब आगे है। बच्चे भविष्य की तरफ देखते हैं। बूढ़े अतीत की तरफ देखते हैं। नये समाज भविष्य की तरफ देखते हैं। पुराने समाज अतीत की तरफ देखते हैं। समाज भी बच्चे और बूढ़े होते है। एक हजार साल में हम वर्तमान की तरफ देख नहीं सके; क्योंकि बहुत दुखद था, देखने योग्य नहीं था। भविष्य अंधकारपूर्ण था, कुछ आशा न थी। अतीत ही भर एक उपाय था, एक विकल्प था, कि हम पीछे की तरफ देखें। हमने "पीछे" के खूब गीत गाए। हमने पीछे की खूब कहानियां--हमने पीछे की फिलासफी के बहुत बड़े-बड़े चित्र बनाए, और उन चित्रों ने हमें बड़ी दिक्कत में डाल दिया है।
दिक्कत में यह डाल दिया है, कि अब, जब हम उस जगह खड़े हैं, जहां हमें तय करना है कि भारत कहां जाए, तो उन एक हजार वर्ष की गुलामी के दमन के भीतर अतीत की बनाई गई झूठी स्मृति हमारे मन को कहती है कि पीछे लौट चलो। वही अच्छा था। इसलिए तो हम रामराज्य की बातें करते हैं कि हम पीछे लौट चलें। राम का राज्य ही अच्छा था। पीछे लौट चलें। राम-राज्य का सवाल नहीं है, वह प्रतीक है। पीछे लौटने का हमारा मन है, पीछे सब अच्छा था। बड़े शहर मिटाओ, छोटे-छोटे गांव अच्छे थे। हालांकि जो आदमी यह कहता हुआ मिलेगा, वह रहेगा दिल्ली में, रहेगा अहमदाबाद में, रहेगा बड़ौदा में। वह छोटे गांव में नहीं रहता है। पर वह कहता है, बड़े गांव नहीं चाहिए, छोटे-मोटे गांव बड़े सुंदर थे। उससे कहो, रहो छोटे गांव में!
छोटे गांव गंदगी के घर हैं। छोटे गांव बीमारी के घर हैं। और छोटे गांव
एक बहुत भीतरी गुलामी से पीड़ित हैं। छोटे गांवों में किसी व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नहीं था। किसी व्यक्ति की कोई हैसियत नहीं थी। लेकिन छोटे गांव का हम एक पोएटिक, एक काव्यात्मक रूप खींच लेते हैं और उस पोएट्री में छोटे गांव की कीचड़ और गंदगी और बदबू, और बीमारी और गुलामी सब छिप जाती है।

सिर्फ हरे वृक्ष और चांद--सब वही, वही रह जाता है कविता में! असली दौड़--असली दौड़ बिल्कुल मिट जाती है।
हम पुराने दिनों की जितनी भी तस्वीरें खींचे हुए हैं, सब कविता से भरी हुई हैं, तथ्यों से नहीं। तथ्य बड़े खतरनाक मालूम पड़ते हैं। तथ्य बहुत ही पीड़ादायी मालूम पड़ते हैं। जब तथ्य बहुत पीड़ादायी होते हैं, तो समाज कविताओं में जीने लगता है। हमने बहुत सी कविताएं कर ली हैं अतीत की। अब जब कि हमें, चुनाव खड़ा हो गया है, तो कहां जाएं? कहां है रास्ता? कौन सी दिशा होगी भारत के लिए? तो हमारा मन कहता है, आगे तो क्या हो सकता है? एक हजार साल की गुलामी ने बताया, कि आगे कुछ भी नहीं है। पीछे ही कुछ हो सकता है। हम पीछे लौट चलें। हम पुरानी व्यवस्था ले आएं। हम बड़े उद्योग न बनाएं, बड़ी इंडस्ट्री न लाएं, टेक्नालॉजी से बचें। हम तो पीछे लौटें। विज्ञान से बचें, हम तो अपने घरों में बैठ कर गीता रामायण पढ़ते थे, या बरसात में आल्हा- ऊदल पढ़ते थे, मंच पर। पीछे लौटें--आगे जाने में खतरा मालूम पड़ता है।

खतरा क्या है, आगे जाने में? खतरा एक ही है कि हमारे पास बूढ़ा चित्त है, जो आगे जाने की हिम्मत नहीं जुटा सकता है। वह कहता है, अतीत ही अच्छा था और जो हो चुका था, वही अच्छा था, उसी में बैठ जाएं। लेकिन बूढ़े चित्त के समाज को, अगर पीछे जाने की धुन सवार हो जाए तो दो परिणाम होते हैं--पीछे जाया नहीं जा सकता--पहली बात। असंभव है यह--पीछे जाना असंभव है। लेकिन जाने की कोशिश में हम जो लोग जा सकते थे, वह भी असंभव हो जाता है। पीछे जाने की कोशिश तो असंभव है। यह संभव नहीं है कि हम मनुष्य को पीछे ले जाएं। यह उतना ही असंभव है, जैसे किसी व्यक्ति को हम वापस गर्भ में पहुंचा देना चाहें, उतना ही असंभव है। तो उसे छोटा-छोटा करके, उसे अंग बना लें, और मां के गर्भ में बड़ी व्यवस्था है, सिक्योरिटी की। उतनी सिक्योरिटी फिर जिंदगी में कभी भी नहीं हो सकती। बहुत सुरक्षा थी मां के पेट में। न भोजन की चिंता है, न नौकरी की, न इंप्लायमेंट की, न कुछ करना पड़ता है--जीना है सिर्फ। और इतनी सुखद है मां के पेट की व्यवस्था कि हमने बड़ी से बड़ी कीमती कोच बनाई है, गद्दे, तकिए बनाए हैं, लेकिन मां के पेट में जो आराम बच्चे को उपलब्ध होता है, अभी तक हम ऐसी व्यवस्था नहीं कर पाए हैं। अब शायद हम कर पाएं। अभी जो अंतरिक्ष में यात्री जा रहे हैं, उनके लिए जो हमने केप्सूल बनाए हैं, वे शायद मां के गर्भ से मिलते-जुलते हैं। उतना आराम देने को उसमें कोशिश की है।
बच्चा इतने आराम में जीया है मां के गर्भ में, कि कई बार मन हो सकता है,
कि वापस लौट जाएं। लेकिन क्या वापस लौटा जा सकता है? जिंदगी पीछे नहीं जाती, जिंदगी सदा आगे जाती है। गंगा कितनी ही कोशिश करे कि "गंगोत्री में वापस चली जाऊं"... वही छोटा सा झरना, वही ऊंचा पहाड़! वही चांद का निकलना! वही सूरज! फिर पीछे वापस लौट जाऊं! लेकिन गंगा पीछे नहीं लौटती। सोचती रहेगी कि पीछे लौटूं, जाती आगे ही है।
जाने का श्रम आगे है। समय की कोई रेखा पीछे नहीं छूटती है। समय सदा आगे है। समय का मतलब है भविष्य। समय का मतलब अतीत नहीं है। समय के साथ एक खूबी है कि जहां से हम गुजर आए, वह मिट गया है, अब कहीं भी नहीं है। न वे रास्ते हैं, न वे ब्रिज हैं। वह पीछे जो था वह गया, खो गया! अब सब आगे है। लेकिन हम यह कह सकते हैं, कि कोई कौम पीछे की तरफ सोचती रहेगी, कि कैसे पीछे जाएं? जितनी देर हम यह सोचेंगे, कि कैसे पीछे जाएं, और पीछे की असफल कोशिश करेंगे--उतनी देर में जितना आगे जा सकते थे, उसमें अवरोध पड़ेगा, और कुछ भी नहीं होगा। भारत के मन में पीछे जाने का बड़ा अवरोध है, भारी मोह है पीछे जाने का--एकदम पीछे लौट जाने का। कितनी खतरनाक बात है कि अगर यह हमारे मन से नहीं मिट जाती, तो हम पीछे तो जाएंगे ही नहीं, क्योंकि प्रकृति में उपाय नहीं है, पीछे जाने का; लेकिन आगे जाने में हमारे कदम हाल्टिंग हो जाते हैं, बहुत मुश्किल से उठते हैं, मजबूरी में उठते हैं, और जाने में जो आनंद अनुभव होना चाहिए, उसकी जगह विषाद अनुभव होता है, कि चलना है हमें पीछे और जा रहे हैं आगे। विषाद अनुभव होता है, कुछ मालूम होता है, चिंता मालूम होती है और एक कंडेमनेशन, एक निंदा चलती रहती है, कि यह सब क्या हो रहा है? यह सब

बुरा हो रहा है! यह सब ठीक नहीं हो रहा है! और धक्के मिलते ही, जाना पड़ता है आगे।
जो आनन्द से आगे की तरफ जाते हैं, उनकी गति तीव्र हो जाती है। जो प्रेम
से आगे की तरफ जाते हैं, उनकी गति नृत्य बन जाती है। जब दुख से, जबरदस्ती, परेशानी में आगे जाते हैं--जाना पड़ता है जिन्हें आगे, उनके पैर बोझिल हो जाते हैं। पत्थर हो जाते हैं और हर एक नया कदम उन्हें और दुख से भर जाता है। और ध्यान रहे कि आदमी का जो पुराना मन है, वह नये के हमेशा विरोध में है। और इस भारत में तो पुराना ही मन है। जवान से जवान आदमी के पास भी नया मन मुश्किल से मिलता है। पुराना ही मन मिलता है। ओल्ड माइंड है, वह भीतर बैठा हुआ है।
एक जवान आदमी है, एम. एससी. में पढ़ता है। आशा करनी चाहिए कि विज्ञान का विद्यार्थी है, तो वह तर्क बुद्धि का प्रयोग करता होगा--करता है; लेकिन परीक्षा के वक्त हनुमान जी के मंदिर के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता है। वह जो ओल्ड माइंड है भीतर वह लौट आता है घबड़ाहट के क्षण में। जब डर लगता है कि परीक्षा सामने आई है, कहीं मैं असफल न हो जाऊं तो सोचता है, क्या हर्जा है, हनुमान को भी मना लो--पता नहीं, हों। एक नारियल फोड़ने में भी क्या हर्जा है? लेकिन हमें पता नहीं कि हनुमान के सामने नारियल फोड़ना रिश्वत का ही एक रूप है, और जो समाज हजारों साल से भगवान को रिश्वत देता रहा है, वह अगर मिनिस्टरों को देने लगे तो कोई हैरानी की बात नहीं होगी।
हमारा मन नया नहीं है, यद्यपि कि सारे जगत से नई हवाएं आईं। बहुत मुश्किल से हमने आने दीं। हम द्वार दरवाजे बंद किए रहेते हैं, अंदर न आ जाएं वे हवाएं। हम तो अपने मंदिर में सब तरफ से बंद करके, धुआं करके, दीप जला कर, घंटे का नाद करके, हम भीतर बैठे रहना चाहते हैं, बाहर का कुछ सुनाई भी न पड़े। मंदिर में ही अपने बंद हैं, बंद थे हजारों वर्ष तक; लेकिन बंद नहीं रह सके। जिंदगी ने चारों तरफ से आकर हमारी दीवालें गिरा दीं, सूरज कई तरफ से झांकने लगा, आकाश दिखाई पड़ने लगा।
बहुत तरफ से हवाएं आई हैं, वह आ गई हैं। विज्ञान आया है, विचार आया है, तर्क आया है। सारा तर्क हममें प्रविष्ट हो गया है; लेकिन हमारे पास मन पुराना है। तो हम एक युवक को विज्ञान पढ़ा देते हैं, लेकिन फिर भी हम वैज्ञानिक नहीं कहे जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा टेक्नीशियन बन कर, वह आदमी बन जाता है। वह जान लेता है। वह जान लेता है कि बिजली कैसे काम करती है? वह जान लेता है कि बिजली कैसे पैदा की जाए? वह सब जान लेता है, लेकिन टेक्नीशियन होकर रह जाता है। साइंटीफिक माइंड, एक वैज्ञानिक बुद्धि उसमें पैदा नहीं हो पाती। वह हो ही नहीं पाती, क्योंकि पीछे जो मन है... ! मैं एक डाक्टर के घर ठहरा हुआ था कलकत्ते में। बड़े डाक्टर हैं। सांझ
को मुझे लेकर निकलते हैं--ले जा रहे हैं सभा में, लड़की को छींक आ गई, कहाः एक मिनट रुक जाएं। मैंने उनसे कहाः तुम डाक्टर हो। कहाः हां, मैं डाक्टर हूं। मैंने कहाः तो फिर आगे बढ़ो, रुकना नहीं, क्योंकि डाक्टर को तो कम से कम जानना चाहिए, कि छींक क्यों आती है? और तुम्हारी लड़की को छींक आए, इसमें मेरा क्या संबंध है? डाक्टर मुश्किल में पड़ गए। कहा, कि आप ठीक कहते हैं, छींक आने के तो कारण दूसरे हैं, फिर भी एक मिनट के रुक जाने में हर्ज क्या है? मैंने उनसे कहा, हर्ज बहुत ज्यादा है। एक मिनट रुकने का नहीं, मैं दिन भर रुक जाऊं! वह सवाल नहीं है। लेकिन यह जो माइंड है हमारा, जो कहता है, रुक जाओ, हर्ज क्या है! यह पुराना मन बहुत हर्ज देने वाला है। यह मुल्क की सारी गति को रोक देगा। तुम्हारी लड़की की छींक पर रुकता है, तो रुकता है, और रुकने वाला मुल्क को हजार तरह की बाधाएं पहुंचाता है। मैंने कहाः अगर मेरा वश चले तो तुमसे डाक्टरी का सर्टिफिकेट वापस ले लूं। तुम्हारे पास जो मन है वह एक ओझा का है, गांव के बाहर जो भूत-प्रेत झाड़ता है--तुम ओझा बन जाओ, भूत-प्रेत झाड़ो। डाक्टर होने की तुम्हें जरूरत नहीं है, और तुम खतरनाक डाक्टर हो। यह तुम्हारी आस्था अवैज्ञानिक है और काम तुम वैज्ञानिक का कर रहे हो। तुम्हारा चित्त विरोध में खड़ा हुआ है। और यह छोटे-छोटे लोगों की बात नहीं है, बड़े-बड़े लोगों के साथ भी यही है।

पिछले कुछ वर्ष पहले आपको पता होगा, आचार्य विनोबा भावे बीमार पड़ गए, उन्होंने दवा लेने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहाः दवा मैं नहीं लूंगा। सारा मुल्क चिंतित हुआ कि इतना अच्छा आदमी साधारण से बुखार में मर जाए और बुखार तेज था, बुखार बढ़ता चला गया। मेरे एक मित्र के घर में वह मेहमान हुआ। उस मित्र ने मुझे कहा कि मैंने समझाया कि बाबा, आप मकान के भीतर सो जाएं... आंगन में मत सोएं, इतना तेज बुखार है। दवा आप लेते नहीं, खुला आकाश है, ओस भी पड़ती है। आप भीतर आ जाएं। विनोबा ने कहाः तुम पक्का विश्वास दिलाते हो, कि भीतर कोई कभी नहीं मरता है! अगर भीतर कोई मर सकता है तो फिर क्या डरने की जरूरत है? वह मित्र बेचारे चुप रह गए, अभी इसका क्या जवाब दें? भीतर भी आदमी मर तो सकता है। भीतर भी मर जाता है। दवाइयों का आग्रह किया गया। तो उन्होंने कहा, कि क्या तुम कहते हो कि दवा लेने वाला नहीं मरता? तो फिर क्या फायदा है दवा लेने से? सारे मुल्क से दबाव आया, मुल्क के सभी लोग चिंतित हुए, हजारों लोग वहां पहुंच गए। दो पैसे की दवा से ठीक हो सकते थे। लाखों रुपये खर्च हो गए मुल्क के। सारे, सब लोग गए, राष्ट्रपति हैरान हुए, दिल्ली परेशान हुई, पटना परेशान हुआ, कलकत्ता परेशान हुआ, सब राजधानियां डांवाडोल हो गईं, सारे लोग पहुंच गए। बड़े-बड़े डाक्टरों को लेकर पहुंचे। बंगाल के मुख्यंमत्री थे डाक्टर, उन्होंने जाकर कहा कि यह प्रार्थना करते हैं कि दो पैसे की दवा ले लें। उन्होंने कहा--विनोबा ने, एक ही शर्त पर ले सकता हूं, कि दवा लेने से अगर मैं बच जाऊं, तो तुम यह नहीं कह सकोगे कि दवा के कारण बचा! बचा तो मैं भगवान की इच्छा से। अगर यह शर्त मानते हो, तो मैं दवा ले लेता हूं। डाक्टर बेचारे ने शर्त मान ली। जिन मित्र के घर ठहरे थे, उन मित्र ने कहा कि हद्द का पागलपन है।
हमारी आस्थाएं, हमारा पुराना मन, सब पागलपन से भरा हुआ है। सारी दुनिया आदमी की उम्र बढ़ाए ले रही है और हम कह रहे हैं कि हमारी उम्र भगवान तय कर रहे हैं। दवाओं ने हजारों बीमारियों को खत्म कर दीं, जो भगवान ने कभी खत्म नहीं कीं, लेकिन हम यही कहते चले जा रहे हैं कि भगवान बीमार करेगा या भगवान ठीक करेगा। बीच में हम किसी को, आदमी को, आदमी की बुद्धि को, विचार को, विकास को स्वीकार करने को राजी नहीं है। छोटे आदमी से लेकर बड़े आदमी के मन का जो ढांचा है, वह ढांचा वैज्ञानिक नहीं है--अवैज्ञानिक है। वह ढांचा रूढ़ियों, बहुत पुरानी रूढ़ियों में सोचने का आदी है। वह यही कहता है कि अगर बीमारी भगवान चाहता है, तो भगवान ठीक करेगा तो ठीक होगी, नहीं ठीक करेगा तो नहीं ठीक होगी।
बच्चे पैदा हो रहे हैं मुल्क में। जोर से एक चीज पैदा होती है हमारे मुल्क में, बच्चे पैदा होते है, और कुछ तो पैदा होता नहीं। तो सब कहे चले जा रहे हैं कि भगवान दे रहा है। हम क्या कर सकते हैं? अब भगवान अकाल लाएगा दस-पांच साल में और करोड़ों बच्चे मरेंगे, क्योंकि हम जो बच्चे पैदा कर रहे हैं, उनके लिए भोजन कहां है? उनके लिए वस्त्र कहां हैं? और परेशानी बढ़ती चली जाएगी, बीमारी, गरीबी बढ़ती चली जाएगी; क्योंकि जिस बड़े पैमाने पर हम बच्चे पैदा कर रहे हैं, उस पैमाने पर तो अब जीना मुश्किल है। वह तो पुरानी तरकीबें टूट गई हैं।
बुद्ध के जमाने में हिंदुस्तान की आबादी दो करोड थी। पाकिस्तान बंटा
तो हमने सोचा कि बड़ा हिस्सा मुल्क का चला गया, लेकिन सिर्फ जमीन गई। बीस साल में हमने पाकिस्तान से ड्योढ़े बच्चे फिर पैदा कर लिए। हम कोई खोने देंगे संख्या अपनी? हम तो चालीस कोटि हैं, और वह बढ़ते चले जाएंगे। यह संख्या तो हमने पैदा कर ली। बीमारी हमने रोक ली। मौत को हमने लंबा किया है। मौत हमने आगे बढ़ाई है। आज से सौ साल पहले दुनिया में दस बच्चे पैदा होते थे, तो कम से कम सात बच्चे मर जाते थे। आज यह हालत नहीं है। आज गरीब से गरीब मुल्क में दस बच्चे पैदा होते हैं, तो तीन बच्चे मर पाते हैं। सात बच्चे, और कुछ मुल्कों में तो मुश्किल से एक बच्चा मरता है। कुछ मुल्कों में यह अनुपात भी कम हुआ है। और इस बात की आशा है, कि कोई बच्चा पैदा होगा तो मरेगा नहीं। क्यों मरा बच्चा पैदा हो? लेकिन जिस भांति हम पैदा करते हैं, बच्चों को... हमने मरने से रोक लिया है, उम्र बढ़ी है।

रूस की औसत उम्र उन्नत्तिस वर्ष थी, जब क्रांति हुई उन्नीस सौ सत्रह में। आज रूस की औसत उम्र बहत्तर वर्ष है। निश्चित ही लंबी औसत उम्र बढ़ गई, बीमारियां दूर हो गईं। कुछ बीमारियां बिल्कुल ही पता नहीं हैं बच्चो को। अगर रूस में जाएं तो उन बीमारियों के बाबत पूछें, तो बच्चे कहेंगे, हां, इतिहास में लिखी हुई बीमारी है। अब इनका कुछ पता नहीं चलता। कुछ बीमारियां विदा हो गई हैं बिल्कुल। सौ, दो सौ वर्ष बाद आदमी विश्वास न कर सकेगा, कि ये बीमारियां कैसी होती थी? आदमी स्वस्थ हुआ, बीमारी दूर हुई, आगे उम्र बढ़ी है और वैज्ञानिक कहते है, कि अगर कोशिश जारी रही, तो कोई वजह नही है कि हम किसी आदमी को इनडिफेनिट, अनिश्चित समय के लिए जिंदा न रख सकें! कोई कारण नहीं है।
लेकिन भारत का पुराना मन यही कहे चला जा रहा है, जो भगवान करेगा वह होगा, जो भाग्य करेगा वह होगा। दवा क्या करेगी? डाक्टर क्या करेगा? चिंतन क्या करेगा? विज्ञान क्या करेगा? कोई कुछ नहीं करेगा। जो होना है सो होगा। यह जो भाव हमारे मन में बैठा हुआ है तो हम भविष्य का निर्माण कैसे करेंगे? फिर भगवान जो करेगा वह होता रहेगा। हम खड़े होकर देखते रहेंगे। हम तटस्थ, दर्शक की भांति खड़े रहेंगे। यह जिंदगी जीना है! एक तमाशबीन की तरह हम खड़े हुए हैं! तमाशबीन की तरह खड़े रहने पर भी जिंदगी तो जीनी ही पड़ती है; लेकिन तब बहुत कष्टपूर्ण हो जाती है, बहुत दुखद हो जाती है।
युवक के पास भी, विज्ञान की शिक्षा देने के बाद भी, हम नया मन पैदा नहीं कर पा रहे हैं, यंग माइंड पैदा नहीं हो पा रहा है। जो सोचे, जो लड़े, जो जिंदगी को बदले, जो संघर्ष के लिए आतुर हो; कि जिंदगी जैसी मिलेगी हम उसे वैसा ही नहीं छोड़ेंगे, अच्छा बनाएंगे, बेहतर बनाएंगे। जमीन स्वर्ग बनाई जा सकती है। और आज पहली दफा यह संभव है, कि हम जमीन को स्वर्ग बना सकें। भारत भी आज सुखी हो सकता है।
भारत सुखी कभी नहीं हुआ है। शायद आपको खयाल न हो कि भारत में मोक्ष की
और स्वर्ग की जो इतनी चर्चा चलती है, उसका कारण यह नहीं है कि इतने लोग धार्मिक है। लाख-दो लाख आदमियों में मुश्किल से एक आदमी धार्मिक होता है। क्योंकि सत्य की खोज किसकी है? और इतने लोग धार्मिक क्यों मालूम पड़ते है? भारत में इतना दुख है और सुख की कोई आशा नहीं है। तो स्वर्ग में सुख की आशा बांधनी पड़ती है। दुख के कारण स्वर्ग की यह आकांक्षा पैदा होती है। और बर्ट्रेंड रसल ने कहीं कहा है और मैं भी सोचता हूं, भारत के लिए तो बिल्कुल लागू होगा--उसने तो पूरी मनुष्यता के लिए कहा है, कि अगर आदमी पूरी तरह सुखी हो सके तो धर्म विदा हो जाएगा।
शायद भारत के अभी जो धार्मिक लोग दिखाई पड़ते हैं, ये तो धार्मिक नहीं
रह जाएंगे, अगर भारत सुखी हो सके। क्योंकि इनके धार्मिक होने का कुल कारण दुख है। इतना दुख घेरे हुए है कि कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती। तो अगले जन्म में आगे पृथ्वी से दूर, मृत्यु के बाद फिर हम सुख की कल्पना करते हैं। हमने कल्पना क्या की है सुख की, वह भी देखने लायक है। स्वर्ग में हमने कल्पना क्या की है? वह भूखे आदमी की खबर है उस कल्पना में, गरीब की खबर है।
अगर आप तिब्बती का स्वर्ग देखेंगे, तो आप हैरान हो जाएंगे। तिब्बती कहता है, स्वर्ग में बड़ी उत्तप्त हवाएं बहती हैं। बड़ी गर्मी है, सूरज निकलता है और बड़ा गरम है, उष्ण है। तिब्बत का स्वर्ग उष्ण है क्योंकि तिब्बत में आदमी ठंड से पीड़ित है तो स्वर्ग में भी उसने सब्स्टीट्यूट... इधर तो नहीं हो रहा है, इधर तो ठंड में मरे जा रहे हैं। तिब्बत के स्वर्ग में है, कि वहां लोग रोज स्नान करते हैं। तिब्बत में एक
दिन स्नान करना वर्ष में मुश्किल पड़ जाता है। तो तिब्बत के स्वर्ग के लोग रोज स्त्रान करते हैं। इतना बड़ा आनंद है यह। तो हम कहेंगे--यह कैसा आनंद? यह क्या तुम सोच रहे हो? हम तो दिन में दो बार स्नान यहीं करते हैं। लेकिन तिब्बत के आदमी के मन को इतनी पीड़ा है, इतनी ठंड है, कि स्त्रान भी नहीं कर सकता है। नदी में तैर भी नहीं सकता है। तिब्बती स्वर्ग में लोग नदियों में घंटों तैरा करते हैं। बड़ा उष्ण है। सूरज निकलता है और सब तरफ धूप ही धूप है। बर्फ बिल्कुल नहीं है तिब्बत के स्वर्ग में। तिब्बत के नरक में बर्फ है। और ऐसी बर्फ है जो इटर्नल कभी नहीं पिघलती, जमी हुई है। और जो

शरारत करेंगे, पाप करेंगे, उनको उस नर्क में डाल दिया जाएगा; जहां वह बर्फ में गलेंगे।
हमारा नरक बिल्कुल उलटा है। हमारे नरक में बर्फ का पता नहीं है। अगर बर्फ मिल जाए, तो मजा आ जाए नरक के लोगों को। वहां आग ही आग जल रही है हमारे नर्क में। कड़ाहे जल रहे हैं आग के और लोगों को कड़ाहों में डाला जा रहा है। हम गर्मी से पीड़ित लोग हैं, तो नरक में गर्मी है। हमारा स्वर्ग बिल्कुल एअरकंडीशंड है, बिल्कुल वातानुकूलित है। वहां शीतल मंद समीर दिन भर बहा करती है। सूरज उगता है तो भी गर्म नहीं होता है, ठंडा ही बना रहता है। हमारे स्वर्ग में, ठंडक की हमने व्यवस्था की है, क्योंकि हम गर्मी से पीड़ित है। स्वर्ग हमारी मनोकामना है, जो हम यहां नहीं पूरा कर पा रहे हैं, वह वहां है।
हमारे स्वर्ग में और क्या-क्या कल्पनाएं हैं, वह सोच कर हम समझ ले सकते हैं कि हमारी तकलीफें क्या है? स्वर्ग में वृक्ष हैं--कल्पवृक्ष! जिनके नीचे बैठ कर आप जो भी भोजन बुलाना चाहें, फौरन आ जाएगा। कल्पवृक्ष के नीचे जो भी कामना करें--यह कपड़े चाहिए आपने कामना की, वे मौजूद हो गए। आपने कहा--यह भोजन चाहिए, कामना की, वह मौजूद हुआ। यह कल्पवृक्ष क्या है? यहां न कपड़े मिल रहे हैं, न भोजन मिल रहा है, न कोई कामना पूरी हो रही है। अब एक ही उपाय है कि मरने के बाद कल्पवृक्ष मिल जाए, तो उसके नीचे बैठ जाएं। यह कल्पवृक्ष हमारी भूख, हमारी गरीबी, हमारी परेशानी का सबूत है। इस कल्पवृक्ष की कल्पना हम इसीलिए कर रहे हैं।
हिंदुस्तान जैसे मुल्कों में स्त्रियां बहुत जल्दी बूढ़ी हो जाती हैं--हो ही जाएंगी। क्योंकि जो दुर्व्यवहार हम करते हैं, उन्हें बूढ़ा करने वाला है। तीस साल की लड़की है--पांच-सात-आठ बच्चे भी खड़े हो सकते है। वह बूढ़ी हो ही जाएगी। तो हमारे स्वर्ग में जो कल्पना है, वह पता है, क्या है? वहां कोई स्त्री कभी बूढ़ी नहीं होती। वहां सोलह साल के ऊपर उम्र बढ़ती ही नहीं। बस सोलह पर एकदम डैड-स्टॉप आ जाता है। सोलह के बाद उम्र नहीं बढ़ती, सोलह पर ही ठहरी रह जाती है। वह हमारी कामना है। हम अपने चारों तरफ स्त्रियों को जवानी में बूढ़ा होते देखते हैं। वह हमारी कामना है कि ऐसा होता है, वह यहां तो नहीं हो पा रहा है, तो हम स्वर्ग में कर लेते हैं। वहां हम व्यवस्था कर लेते हैं। स्वर्ग हमारी आकांक्षाओं के सबूत हैं, तथ्यों के नहीं। जो यहां संभव नहीं है वह वहां संभव बना लिए गए हैं। और उनकी हम आशा कर रहे हैं।
भारत में इतने लोगों के धार्मिक होने का कारण धर्म नहीं है। अगर धर्म होता इतने लोगों के धार्मिक होने का कारण, तो जिंदगी बिल्कुल दूसरी हो जाती। जिंदगी एक आनंद होती, एक शांति होती, एक मौज होती, एक परमात्मा का प्रसाद होती। लेकिन जिंदगी वैसी नहीं है। परमात्मा के प्रसाद में फूल खिलते हैं, सूरज निकलता है, पक्षी गीत गाते हैं। यहां न सूरज निकलता है, न फूल खिलते हैं, न कोई गीत होता है, सब उदास है।
आदमी धार्मिक नहीं है। आदमी सब दुखी हैं, और दुखी आदमी क्या करे? दुख
को मिटाए--एक रास्ता है। या सुख को किसी सपने में खो जाए--दूसरा रास्ता है। भूखा आदमी रात सोता है, तो आप यह मत सोचना कि रात में वह लोगों को भोज देने का सपना देखेगा। नहीं, भोज लेने का सपना देखेगा। भूखा आदमी सोता है रात, तो लगता है कि राजा का राजपूत आ गया है, और कहता है, चलिए। राजा ने आपके लिए आज भोजन का निमंत्रण भेजा है, वह बैठा है, राजा की मेज पर भोजन कर रहा है। रात भर भोजन करता है, भूखा आदमी।
अगर आप भूखे न हों, तो एक आधा दिन उपवास करके देख लें, तो पता चल जाएगा,
कि रात भर भोजन ही भोजन का सपना चलता है। उपवास जिसने किया, वह रात भर भोजन में ही जीएगा। साधारण आदमी दो दफे खाना खाता है, उपवास वाला चौबीस घंटे खाता है, मन ही मन खाता है, बाहर नहीं खाता। बाहर तो उपवास किए हुए है और प्रतीक्षा करता है, कि कब सुबह हो कि असली भोजन शुरू हो जाए। हमारे भीतर सपने जो हैं--हम उन्हीं चीजों को देखने लगते हैं, जो बाहर नहीं मिल रहा है, जो बाहर नहीं है!

इसलिए भारत ने स्वर्ग बना लिया है, परलोक बना लिया है। उन स्वर्गों और परलोकों की कोई जरूरत नहीं है। हम इस पृथ्वी को ही स्वर्ग और परलोक बना ले सकते हैं। लेकिन उसके लिए संघर्ष करने का--यह सपना काफी नहीं होगा। उसके लिए किताब में कल्पवृक्ष बनाना काफी नहीं होगा। कल्पवृक्ष बनाया जा सकता है और विज्ञान ने करीब-करीब कल्पवृक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। और इस बात की संभावना है कि सौ वर्षों में कुछ देश तो निश्चित ही कल्पवृक्ष के नीचे हो जाएंगे।
अमरीका करीब-करीब कल्पवृक्ष के आस-पास उसकी गाड़ी पहुंच रही है। वह करीब पहुंच रहा है, जहां जिंदगी की सारी जरूरतें शायद पूरी हो जाएं। अभी बिहार में अकाल पड़ा था तो मैंने एक अखबार में खबर पढ़ी। एक अमरीकी मां ने यह खबर दी थी। एक अमरीकी मां से उसकी छोटी छोटी बेटी ने पूछा, कि यह अकाल क्या है? क्योंकि अकाल अमरीका के नये बच्चों को बिल्कुल ही ऐतिहासिक घटना है, वहां तो नहीं पड़ता है। उसने पूछा कि अकाल क्या है? उसकी मां ने कहाः अकाल! वहां बिहार में आदमियों के पास खाने को रोटी नहीं है। तो उस लड़की ने कहाः फिर वे पेस्ट्री क्यों नही खा लेते? क्योंकि उस लड़की को पता है कि जिस दिन घर में रोटी वगैरह नहीं बनती, उस दिन केक-पेस्ट्री से काम चल जाता है। उसने कहाः रोटी नहीं है तो केक-पेस्ट्री खा लें। उसकी मां ने कहाः पागल! इनके पास केक-पेस्ट्री भी नहीं है, तो फिर कैसे काम चला सकते हैं। उसकी मां ने कहाः तुझे पता ही नहीं, उनके पास फल भी नहीं है! तो उसकी मां ने कहाः कि फ्रीज ही अगर उनके पास होता, तो फिर क्या था? फ्रीज भी तो नहीं है। उस लड़की को समझाना मुश्किल पड़ गया उसकी मां को, कि अकाल का क्या मतलब है? ओवर फैड अमरीका तो अतिरिक्त भोजन पा रहा है इसलिए अमरीका में उपवास के कल्ट शुरू हो गए है।
जहां भी ओवर फीडिंग हो जाता है, वहां उपवास करवाने की जरूरत शुरू हो जाती है। बुद्ध के घर में बहुत भोजन रहा होगा, महावीर के घर में बहुत भोजन रहा होगा, ओवर फैड थे। इसलिए उपवास करने का मजा उनको आया। गरीब आदमी को उपवास करवाइए, बड़ी मुश्किल हो जाती है। अमरीका में उपवास की कल्ट चल पड़ी है। नेचरोपैथी है, और होमियोपैथी है, और पच्चीस पैथी और पच्चीस आश्रम हैं, जहां लोग जा-जा कर उपवास कर रहे हैं। उस उपवास से मजा आ रहा है। उसका कारण है शरीर ने बहुत अतिरिक्त इकट्ठा कर लिया है। वे ओवरलोड हो गए हैं, उसको निकालना जरूरी है और ज्यादा खा रहे हैं, ज्यादा खाने को मिल रहा है। यहां बिहार में, हिंदुस्तान में गरीब आदमी को समझाएं कि उपवास बड़ी ऊंची चीज है, तो वह कहेगा, उपवास तो हम रोज ही करते हैं। भोजन ऊंची चीज है, उपवास ऊंची चीज नहीं है।
लेकिन, हमने किया क्या है? हमने किया यह है कि जो हमें करना था संघर्ष,
वह संघर्ष न करके हम सपने देखते रहते हैं। हम एक सपना देखनेवाली कौम हैं। क्या हम भविष्य में सपना ही देखना चाहते हैं? या हम भारत को एक संघर्षशील समाज बनाना चाहते है? सपना देखना है, तो फिर अतीत की बातें दोहराए चले जाएं और अगर संघर्ष करना है, तो अतीत से मन को मुक्त करें। बहुत कठोर है यह प्रक्रिया--अतीत से मन को मुक्त करने के लिए। लेकिन मुक्त करना पड़ेगा और अगर हमारा मन पास्ट से, अतीत से मुक्त नहीं होगा, तो हम भविष्य को निर्माण करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतीत से मुक्त हो जाएं। इस पृथ्वी पर अभी जो दो घटनाएं घटी हैं, वे इसी बात की खबर लाती हैं।
अमरीका नई कौम है, तीन सौ वर्ष से पुरानी उसकी कहानी नहीं है। तीन सौ वर्ष पहले यूरोप के कुछ भगोड़े जाकर अमरीका में बस गए। तीन सौ वर्ष की कुल कथा है, कोई इतिहास नहीं है। अगर वे कितने ही पीछे जाएं, तो भी बहुत पीछे नहीं जा पाते। तीन सौ वर्ष के पीछे सब खत्म हो जाता है। अमरीकी कौम नई है। नई कौम होने की वजह से, अतीत न होने के कारण, अमरीका को भविष्य में देखने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। इसलिए अमरीका इतनी संपत्ति पैदा कर सका। इतनी सुव्यवस्थित व्यवस्था, इतना जीवन को इस लायक बना सका कि वह चांद पर जाने के खेल में भी सम्मिलित हो सके और जीत भी सके।
यह जो तीन सौ वर्षों का नया समाज है, यह नया मन हमारे पास भी हो सकता है। रूस ने उन्नीस सौ सत्रह में पुराने मन को इनकार कर दिया। उसने कहा, अब

विदा करते हैं। अब एक नई तारीख शुरू होती है। उन्नीस सौ सत्रह के पहले, और उन्नीस सौ सत्रह के बाद! रूस दो दफों में तोड़ दिया उन्होंने। जीसस क्राइस्ट के आगे-पीछे टूटता था इतिहास। रूस ने तोड़ दिया उन्नीस सौ सत्रह के पहले और उन्नीस सौ सत्रह के बाद। पुराने को नमस्कार कर लिया, कि अब नहीं हमें पीछे देखना है, आगे देखना है। तो पचास वर्षों में रूस ने जो काम किया है, वह पुरानी कौमें पांच हजार वर्षों में भी करने में समर्थ नहीं हो पाती।
अभी हम देख रहे हैं कि चीन हमारे बाद खड़ा हुआ है; लेकिन अतीत को इनकार करने के कारण आज इतनी बड़ी शक्ति उसने अर्जित कर ली, कि आज बड़ी से बड़ी ताकत को धमकी देने की स्थिति में है। रूस को धमकी देने की स्थिति में हैं। और हम, हम उसके पहले आजाद हुए हैं, बहुत कमजोर हो गए हैं। उन्नीस सौ सैंतालीस में जो हमारी हालत थी, उससे हमारी हालत और नीचे है, पैर डगमगा गए हैं। सारा मुर्दाघर हुआ चला जाता है। हम और अराजक हुए चले जाते हैं। शक्ति पैदा नहीं होती, संपत्ती पैदा नहीं होती, भविष्य निर्मित होता दिखाई नहीं पड़ता, तो फिर डर के मारे हम पीछे के घर में लौट जाते हैं। लेकिन पीछे कोई घर नहीं है, सिवाय स्मृति के। वहां कोई घर नहीं है कहां जाएंगे? भारत बहुत लाचार हालत में है--बहुत आवारा हालत में है।
चीन ने भी अतीत को इनकार कर दिया है, और नया सृजन शुरू हो गया है। वह ठीक है या गलत! यह दूसरी बात है। रूस ठीक है या गलत, यह दूसरी बात है। मैं जो कह राहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि जिन कौमों ने भी अतीत को इनकार कर दिया है और नये होकर खड़े हो गए हैं, उनके जीवन में एक ऊर्जा, एक एनर्जी पैदा हुई है जो क्रिएटिव है।
इजरायल नये से नया मुल्क है, नई जमीन मिली है, नया देश बना है, सब नया है। पिछले अरबों के युद्ध में इजरायल ने जो ताकत दिखाई है, वह अभूतपूर्व है। उसका क्या कारण है? उसका कारण हैं, अरबों के पास पुराना मन है, पुराना जराजीर्ण चित्त है। और इजरायल के पास युवा चित्त है। युवा चित्त बूढ़े चित्त को हरा कर सदा सफल हो जाता है।
हमारे पास युवा चित्त नहीं है। हम अतीत से जकड़े हुए हैं। जब कि हम पीछे और पीछे, सिवाय पीछे देखने के हम आगे देखते ही नहीं। हमारा हाल ऐसा है, वह ऐसा कहो कि फोर्ड ने गाड़ियां बनाईं, कारें बनाईं, बस आगे लाइट लगा दिए। अगर हिंदुस्तान में हम गाड़ी बनाते, तो हम लाइट पीछे लगाते--गाड़ी आगे, लाइट पीछे। उड़ती हुई धूल दिखाई देती, बड़ा मजा आता। जो छूट गया वह दिखाई पड़ता। और आगे, आगे सिवाय दुर्घटना के और क्या हो सकता था? पूरी कौम के चित्त का प्रकाश जो है वह पीछे की तरफ लगा हुआ है। गर्दन लकवा खा गई है, पैरालाइज्ड हो गई है, पीछे देखती है। आगे देखती ही नहीं, और चलना आगे है। रोज गड्ढे मिल जाते हैं, रोज मुश्किल खड़ी हो जाती है, रोज और बड़ी मुश्किलें खड़ी होंगी। गुलाम कौम को मुश्किलें ज्यादा नहीं होती हैं, क्योंकि मालिक को मुश्किलों का ध्यान रखना पड़ता है।
स्वतंत्र कौम की मुश्किलें ज्यादा हो जाती हैं क्योंकि ध्यान उन्हें रखना है, कोई मालिक नहीं है। अगर अब भी हमारी आंख पीछे की तरफ लगी है--रूस में जाएं और छोटे बच्चों से पूछें, वह क्या सोच रहे हैं? सोच रहे हैं, मंगल पर कैसे घर बनाए? छोटे स्कूल के बच्चे भी डिजाइन बनाने की कोशिश करते हैं कि चांद पर घर कैसा बने? अमरीका के बच्चे आंदोलित है कि और अंतरिक्ष में कैसे प्रवेश कर जाएं। वे किसी दूर भविष्य की यात्रा पर निकल रहे हैं। हमारे बच्चे... ? वे सब रामलीला देख रहे हैं, और कुछ भी नहीं। रामलीला बुरी नहीं है। रामलीला बड़ी प्रीतिकर है, लेकिन बार-बार देखना दुखद है, और खतरनाक है। और उसी-उसी को देखे चले जाना अतीत की उड़ती धूल को देखना है। भविष्य के सपने नहीं हैं हमारे मन में, अतीत की राख है। भविष्य का सूरज नहीं है हमारे मन में, बीते हुए सूर्योदय और सूर्यास्त हैं। यह उनकी स्मृति रह गई है।
भारत कहां जाएगा? भारत कहां जा रहा है? अभी तो कहीं जाता हुआ मालूम नहीं पड़ता है। लेकिन दो विकल्प हैं--या तो भारत लौट कर अतीत में ड़ूबने की कोशिश करे, जो असंभव होनी निश्चित है। और या अतीत को छोड़े, भविष्य को

अंगीकार करे, नया सोचे और नया बनाए और पुराने ढ़ांचे तोड़े और पुराने मकान गिराए और पुरानी जिंदगी के बहुत बीते सूत्रों को हटाए।
भूल-चूक थोड़ी हो सकती है, लेकिन भूल-चूक से कोई ड़रने की जरूरत नहीं है।
एक ही भूल-चूक दुबारा नहीं होनी चाहिए, बस। नई भूल तो रोज करनी ही चाहिए।
नई भूल कोई रोज करता है, तो सीखता है। फिर पुरानी भूल ही दोहराने लगें, तो नासमझ हैं। लेकिन कोई भूल के डर से कुछ करे ही नहीं, तो इससे बड़ी भूल कोई भी नहीं हो सकती।
भविष्य नया! पुराने को विदा! हमें कोई तारीख तय करनी चाहिए, जिस दिन हम पुराने को नमस्कार कर लें। और क हें कि उसके बाद हम आगे की तरफ देखेंगे। आने वाली पीढ़ी तय कर सकती है, और आने वाली पीढ़ी को तय करना पड़ेगा। लेकिन आने वाली पीढ़ी भी कुछ सोच नहीं रही है।
आने वाली पीढ़ी प्रतिक्रिया में है, सिर्फ रिएक्शन में है। पुरानी पीढ़ी से परेशान है, गुस्से में है, गुस्सा और परेशानी ठीक है; लेकिन अकेले गुस्से और परेशानी से कुछ भी नहीं होगा। पुरानी पीढ़ी की प्रतिक्रिया से कुछ भी नहीं होगा। थोड़े-बहुत दिन यह युनिवर्सिटी में पढ़ता रहता है तब तक वह कुछ नई बातें करता हुआ दिखाई पड़ता है। और फिर घर गया और घोड़े पर सवार होकर शादी तरने निकल जाता है। घोड़े पर सवार हो जाता है वह। पहन लेता है वही पुराने कपड़े और किसी लड़की को, जिसे न उसने कभी देखा है और न कभी चाहा, न कभी प्रेम किया, उससे विवाह करने चल पड़ता है।
कैसा नया मन है यह? नया मन नहीं है यह, पुराना ही मन है। वही पुराना ढांचा है। कोई लड़का नहीं कह सकता अपने पिता को कि जिस लड़की को मैंने प्रेम नहीं किया, उसके साथ जीना तो बहुत ज्यादा क्रिमिनल है, अपराध की बात है। कोई लड़की अपने पिता से नहीं कहती, कि जिस युवक को मैंने नहीं देखा, जिसे मैंने कभी चाहा नहीं, जिसने मेरे मन में कोई जगह नहीं बनाई, तुम उसके साथ मुझे बांध देते हो, इसका कारण क्या है? नहीं, लेकिन हमारे पास चित्त नहीं है। नया चित्त नहीं है। हम पुराने चित्त से ही घिरे हैं। जवानी हमें मिलती है, वह शरीर की है, मन हमारा जवान नहीं हो पाता है।
मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर भारत का कोई भविष्य, कोई सृजनात्मक, कोई आशापूर्ण बनाना हो, तो पुराने को विदा तर दें। कष्टपूर्ण है! पिता मर जाए तो मन यही होता है, कि लशा घर में रख दें। दुख तो भारी होता है। पिता मर गए हों, किसको दुख नहीं होता है। प्राण कंपते हैं विदा देते; लेकिन फिर भी रोते हुए हम मरघट जाते हैं। रोते हैं, दुखी होते हैं, लेकिन क्या उपाय है? मरघट विदा करना पड़ता है।
संस्कृतियां भी मर जाती हैं, सभ्यताएं भी मर जाती हैं। दुख भी होता है। पीड़ा भी होती है। उस दिन उनको मरघट पहुंचा कर जलाने की हिम्मत भी जुटानी चाहिए। अर्थी बांध लें पुरानी संस्कृति की, सभ्यता की! और मरघट में जला आएं!
एक दफा मुल्क खाली हुए भविष्य को देखें। इतनी ऊर्जा पैदा होगी, इतनी शक्ति, जो सब तरफ से बंद है, वह मुक्त हो जाएगी। जैसे किसी झरने के ऊपर से पत्थर हट जाएं।
भारत के जीवन में नये के अंकुर फूटें, यह नई पीढ़ी को सोचना है, लेकिन
नई पीढ़ी क्या सोचती है? वह तो कभी घर के कांच फोड़ देती है। कभी खिड़कियां तोड़ देती है। कभी किसी गरीब मास्टर को, जो वैसे ही बहुत गरीब है, पत्थर मार देती है। नई पीढ़ी प्रतिक्रिया में है। नई पीढ़ी सृजनात्मक विचार में नहीं है।
पुरानी पीढ़ी पुराने से चिपकी है। नई पीढ़ी पुराने पर पत्थर मार कर चुपचाप खड़ी हो जाती है। जैसे कुछ टूट जाएगा। कुछ भी नहीं टूटेगा। कांच तोड़ने से क्या टूटता है? खिड़कियां मिटाने से क्या मिटता है? एक शिक्षक को पत्थर मार देने से क्या होने वाला है? नहीं, बड़े सवाल नहीं हैं। छोटी बातों में नई पीढ़ी उलझती है, तो खतरा है।
और मैं आपसे कहना चाहता हूं--हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ नई पीढ़ी को इन्हीं बेवकूफी की बातों में उलझाए रखना चाहते हैं। अगर नई पीढ़ी उन चीजों से उलझी रही, तो भारत का पुराना ढांचा जिंदा रहेगा, बरकरार रहेगा, वह कभी

टूटने वाला नहीं है। क्योंकि नई पीढ़ी को डाइवर्ट किया जाता है। उसे फिजूल की बातें सिखाई जा रही है। नये लड़कों को कहा जाता है कि कारखाना बड़ौदा में बने कि अहमदाबाद में। नया लड़का युनिवर्सिटी में पढ़ रहा है। वह गोली खा रहा है, इसके लिए कि कारखाना बड़ौदा में बने, कि कारखाना अहमदाबाद में! नया लड़का कहेगा--कहीं भी बने, नये लड़के के लिए कारखाना बन रहा है। वह अहमदाबाद का नया लड़का होगा कि बड़ौदा का, यह सवाल नहीं है। युनिवर्सिटी कहां खड़ी हो जाए? गोली चलेगी। एक गांव की रेखा, एक काम की रेखा, कहां खत्म हो? नये लड़के को इसमें उलझाया जा रहा है। नये लड़के से कोई भी बेवकूफियां करवाई जा रही हैं।
हिंदुस्तान का राजनीतिज्ञ नये लड़कों का बुरी तरह शोषण कर रहा है। और उससे कुछ भी गलत करवा रहा है। और मजा यह है कि मंच पर खड़े होकर वह गालियां भी देता है कि कांच क्यों तोड़ दी है?
दीवाल क्यों फोड़ दी है? गड़बड़ क्यों की? और पीछे के रास्ते से वह चाहता है, कामना करता है कि नया लड़का इसमें ही उलझा रहे। जिस दिन नया लड़का इससे मुक्त हो जाएगा, पहला काम उस राजनीतिज्ञ को नीचे उतारने का होने वाला है। भारत भटक सकता है, अगर नई पीढ़ी ने थोड़ी भूल-चूक की। नई पीढ़ी को बहुत सोचने का वक्त है। और एक नया मुल्क और एक नया समाज कैसे निर्मित करे? एक-एक विश्वविद्यालय चर्चा का, डायलॉग का स्थान बन जाना चाहिए--जहां हम मिल कर भविष्य के लिए सोचें, विचार करें। क्या हो सकता है, पुराने को कैसे विदा करें? कैसे नये का जन्म दें! अगर इसका विचार चल पड़े तो कोई कठिनाई नहीं है। हमारे पास दुनिया में किसी भी युवक से कम ताकत नहीं है। हमारे युवा के पास उतनी ही ताकत है, शायद थोड़ी ज्यादा है। ज्यादा इसलिए है, कि जैसे कोई खेत बहुत दिन तक बंजर पड़ा रहे, उसमें कोई खेती न हो! पड़ोस के खेत में खेती होती रहे, तो पड़ोस का बहुत सा खेत धीरे-धीरे शक्तिहीन हो जाता है। जिस खेत में खेती न हुई हो, उस खेत में आज कोई अगर दाने फेंक दे कि बहुत से खेत झेंपे खड़े रह जाएं!
भारत ने तीन-चार हजार वर्षों से चिंतन नहीं किया है। उसके मन की उर्वर शक्ति बिल्कुल पड़ी हुई है। अगर कहीं हमने चिंतन किया, तो हम पच्चीस साल के भीतर पृथ्वी पर किसी को भी पीछे छोड़ देने में समर्थ हैं। बड़ी उर्वर शक्ति पड़ी है बंद। उसका उपयोग हो जाए, तो बहुत कुछ हो सकता है। लेकिन भारत कहां जाएगा, यह प्रश्न नहीं है। यह हम पर निर्भर है, कि कहां हम ले जाएंगे? जो पीछे की तरफ ले जाना चाहते है, उनसे बचना। वह हजारों साल से मुल्क को नुकसान पहुंचा रहे हैं। देश को आगे की तरफ, नये की तरफ, नवीन की तरफ, परिवर्तन की तरफ ले जाना है। सोचना, विचार करना, खोजना, मार्ग निकालना--यह हो सकता है। एक बहुत निर्णायक क्षण है, बहुत निर्णायक, डिसिसिव मूवमेंट है भारत की जिंदगी में। अगर हमने उसको खो दिया, तो हो सकता है हजारों साल बाद फिर निर्णायक क्षण आए। लेकिन खोने की कोई जरूरत नहीं है।
यह थोड़ी सी बातें मैंने इसी आशा में कहीं कि सोचना! मेरी बातें मान लेना जरूरी नहीं है, हो सकता है, मैं जो कह रहा हूं सब गलत हो। हो सकता है, मैं भी जो कह रहा हूं, वह कहीं न ले जाए। मेरी बातें मान मत लेना, सोचना, विचार करना। मुल्क अगर दस साल सिर्फ विचार करने में लग जाए, सब तरफ संदिग्ध हो जाए, डाउटफुल हो जाए, सोचने लगे, खोजने लगे... ! गीता, कुरान, बाइबिल सबको एक तरफ उठा कर रख दें। कृष्ण, बुद्ध, महावीर को कहें नमस्कार! हमें खुद सोचने दो। बहुत दिन हम तुम्हारी छाया में सोचते रहे, तो शायद कुछ हो सकता है। यह जो मैं कह रहा हूं; इसी आशा में कि आप सोचेंगे। अगर मेरी बातों को गलत पाएं, फेंक दे कचरे में। अगर कोई बात ठीक मालूम पड़ जाए, तो वह आपकी अपनी हो जाती है। और जो सत्य अपना हो जाए, वह सक्रिय हो जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का बाईसवां प्रवचन

नये भारत की दिशा

प्रश्नः यदि अच्छे लोगों के हाथों में राजनीति आ जाए तो क्या परिवर्तन हो सकता है?

वे मित्र पूछ रहे हैं कि मैंने अच्छे-बुरे आदमी की बात की। वे पूछते हैं कि अगर अच्छे आदमी के हाथ में राजनीति आ जाए, तो क्या परिवर्तन हो सकते हैं?
अभूतपूर्व परिवर्तन हो सकते हैं। क्यों? कुछ थोड़ी सी बातें हम खयाल में ले लें। बुरा आदमी बुरा सिर्फ इसलिए है कि अपने स्वार्थ के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं सोचता। अच्छा आदमी इसलिए अच्छा है कि अपने स्वार्थ से दूसरे के स्वार्थ को प्राथमिकता देता है, प्रिफ्रेंस देता है। अच्छा आदमी इसलिए अच्छा है, कि वह अपने लिए ही नहीं जीता है, सब के लिए जीता है। तो बड़ा फर्क पड़ेगा। अभी "राजनीति" व्यक्तियों के निहित "स्वार्थ" बन गई है, तब राजनीति समाज का स्वार्थ बन सकती है--एक बात।
बुरा आदमी सत्ता में जाने के लिए सब बुरे साधनों का उपयोग करता है और
एक बार सत्ता में जाने में, अगर बुरे साधनों का उपयोग शुरू हो जाए, तो जीवन की सब दिशाओं में, सब तरफ जाने में, बुरे साधन प्रयुक्त हो जाते हैं। जब एक राजनीतिज्ञ बुरे साधन का प्रयोग करके मंत्री हो जाए, तो एक गरीब आदमी बुरे साधनों का उपयोग करके अमीर क्यों न हो जाए? और एक शिक्षक बुरे साधनों का उपयोग करके वाइस-चांसलर क्यों न हो जाए? और एक दुकानदार बुरे साधनों का उपयोग करके करोड़पति क्यों न हो जाए? क्या बाधा है?
"राजनीति" थर्मामीटर है पूरी जिंदगी का। वहां जो होता है, वह सब तरफ जिंदगी में होना शुरू हो जाता है--सब तरफ। तो राजनीति में बुरा आदमी अगर है, तो जीवन के सभी क्षेत्रों में बुरा आदमी सफल होने लगेगा और अच्छा आदमी हारने लगेगा। और बड़े से बड़ा दुर्भाग्य हो सकता है किसी देश का कि वहां बुरा होना सफलता लाता हो, भला होना असफलता ले आता हो।
आज इस देश में भला होना असफलता की पक्की गारंटी है। किसी को असफल होना हो, तो भले होने से अच्छा गोल्डन रुल नहीं है। बस भला हो जाए, असफल हो जाएगा। और जब भला होना असफलता बन जाए, और बुरा होना सफलता की सीढीयां बनने लगे, तो जिंदगी सब तरफ विकृत और कुरुप हो जाए, तो आश्चर्य क्या है! राजनीति जितनी स्वस्थ हो, जीवन के सारे पहलू उतने ही स्वस्थ हो सकते हैं। क्योंकि राजनीति के पास सबसे बड़ी ताकत है। ताकत अशुभ हो जाए तो फिर कमजोरों को अशुभ होने से नहीं रोका जा सकता है। मैं मानता हूं कि राजनीति में जो अशुद्धता है, उसने जीवन के सब पहलुओं को अशुद्ध किया है। राजनीतिज्ञ! पहले पुरानी कहावत थी--सत्ता जिसके पास है, वह दिखाई पड़ता
है पूरे मुल्क को, और जाने-अनजाने हम उसकी नकल करना शुरू कर देते हैं।
सत्ता की नकल होती है, क्योंकि लगता है कि सत्ता वाला आदमी ठीक होगा।
अंग्रेज हिंदुस्तान में सत्ता में थे, तो हमने उनके कपड़े पहनने शुरू किए।
वह सत्ता की नकल थी। वे कपड़े भी गौरवपूर्ण, प्रतिष्ठापूर्ण मालूम पड़े। अगर अंग्रेज सत्ता में न होते और चीनी सत्ता में होते तो मैं कल्पना नहीं कर सकता, कि हमने चीनियों की नकल न की होती। हमने चीनियों के कपड़े पहने होते। सत्ता में जो होता हैं--सत्ता में अंग्रेज था, तो उसकी भाषा हमें ज्यादा गौरवपूर्ण मालूम होने लगी। सत्ता के साथ सब चीजें नकल होनी शुरू हो जाती हैं। सत्ताधिकारी जो करता है, वह सारा मुल्क करने लगता है।
तो राजनीति पर तो अत्यंत शुद्धि की जरूरत है। वहां सबसे ज्यादा जरूरत
है कि अच्छा आदमी वहां हो, क्योंकि वह हमारे बीच खड़ा होकर नमूना बन जाता है और चारों तरफ लोग उसकी तरफ देख कर वैसा होना शुरू कर देते हैं। और जब एक बार यह पता चल जाए--अनुयायी को यह पता चल जाए, कि सब नेता बेईमान हैं, तो अनुयायी को कितनी देर तक ईमानदार रखा जा सकता है। नहीं, अच्छे आदमी के तो आने से आमूल परिवर्तन हो जाएंगे। फिर अच्छे आदमी की बड़ी से बड़ी जो खूबी है,

वह यह है, कि वह कुर्सी को पकड़ नहीं लेगा, क्योंकि अच्छा आदमी कुर्सी की वजह से ऊंचा नहीं हो गया है। ऊंचा होने की वजह से कुर्सी पर बिठाया गया है। इस फर्क को हमें समझ लेना चाहिए। बुरा आदमी कुर्सी पर बैठने से ऊंचा
हो गया है, वह कुर्सी छोड़ेगा, फिर नीचा हो जाएगा। तो बुरा आदमी कुर्सी नहीं छोड़ना चाहता है। अच्छा आदमी, अच्छा होने की वजह से कुर्सी पर बिठाया गया है। कुर्सी छोड़ने से नीचा नहीं हो जाने वाला है। अच्छा आदमी कुर्सी को छोड़ने की हिम्मत रखता है। और जो लोग कुर्सी को छोड़ने की हिम्मत रखते हैं-- जो लोग भी--किसी भी चीज को चुपचाप छोड़ सकते हैं, बिना किसी जबरदस्ती किए उनके साथ, वह मुल्क की जीवनधारा का अवरोध नहीं बनते।
रोज बदलाहट होनी चाहिए। बीस वर्ष में पीढ़ी बदल जाती है। नये बच्चे जवान हो जाते हैं। नई खबरें लाते हैं। नई दुनिया के सपने ले आते हैं। उनको ताकत हाथ में आनी चाहिए, ताकि वे नये सपने ढाल सकें। पुराना जमाना गया। पुराने जमाने में बूढ़ा आदमी जवान आदमी से ज्यादा उपयोगी था।
ध्यान रहे, अब बूढ़ा आदमी, जवान आदमी से ज्यादा उपयोगी नहीं है। उसका कारण है। क्योंकि पुरानी दुनिया का ज्ञान सीमित था। बूढ़ा आदमी जो जानता था, जवान उससे कम जानता था। आज हालत उलटी है। बूढ़ा आदमी जो जानता है, जवान उससे तीस साल आगे का जानता है। इसलिए बूढ़ा आदमी अब उपयोगी नहीं है। उसको जगह जगह से विदा होना चाहिए।
अगर आज कोई गणित पढ़ कर निकलता है, तो बीस साल पहले जो गणित पढ़ कर निकला था, वह उससे ज्यादा जानता है। अगर आज कोई फिजिक्स पढ़ कर आया है, तो बीस साल पहले की फिजिक्स से उसका ज्ञान ज्यादा है। तो अब जमाना बदल गया। पुरानी दुनिया का नियम था, कि बूढ़े के हाथ में सारी ताकत हो, अब नियम बदलना पड़ेगा। बूढ़ा आदमी पिछड़ जाता है। गति बहुत तीव्र हो गई है। नया बच्चा ज्यादा जानकर आता है, नया जान कर आता है। उसको जगह होनी चाहिए। तो अब जवान पर केंद्रित होनी चाहिए सारी व्यवस्था।
लेकिन वह अच्छा आदमी छोड़ सकता है। बुरा आदमी पकड़ लेता है। छोड़ता नहीं है। अच्छा आदमी जब भी पाएगा, कि मुझसे बेहतर आदमी काम करने आ रहा है, तो वह कहता है, अब आ जाओ, मैं हट जाता हूं। अच्छे आदमी की हटने की हिम्मत, बड़ी कीमत की चीज है। बुरे आदमी की हटने की हिम्मत ही नहीं होती है। वह जोर से पकड़ लेता है। एक ही रास्ते से हटता है वह। उसको या तो बड़ी कुर्सी दो, तो वह हट सकता है, नहीं तो नहीं हट सकता, और या फिर मौत आ जाए, तो मजबूरी में हटता है। नहीं तो वह, वैसे नहीं हटता है।
आमूल परिवर्तन हो सक ते हैं! आमूल परिवर्तन हो सकते हैं, और अच्छा आदमी वहां होगा, तो अच्छे आदमी को पैदा करने की व्यवस्था करता है। क्योंकि बुरा आदमी जो प्रतिक्रिया पैदा करता है, उससे और बुरे आदमी पैदा होते हैं। और यह भी ध्यान रहे, कि बुरा आदमी जब चलन में हो जाता है, तो अच्छे आदमी को चलन से बाहर करता है, खोटे सिक्के की तरह।
अगर खोटा सिक्का बाजार में जाए, तो अच्छा सिक्का एकदम बाजार से नदारद
हो जाता है। खोटा सिक्का चलने की कोशिश करता है, अच्छे सिक्कों को हटा देता है। बुरे आदमी जब ताकत में हो जाते हैं, तो अच्छे आदमी को जगह जगह से हटा देते हैं।
जीसस को किसने मारा? बुरे आदमियों ने, एक अच्छे आदमी की संभावना को! सुकरात को किसने जहर दिया? बुरे आदमियों ने, पोलिटीशियंस ने, एक अच्छे आदमी को! अच्छा बुरे आदमियों के लिए बहुत अपमानजनक है, उसे बरदाश्त नहीं करता है। और इसलिए अच्छे की संभावना तोड़ता है, जगह-जगह से तोडता है। बुरा आदमी अपने से भी बुरे आदमी चाहता है, जिनके बीच वह अच्छा मालूम पड़ सके। और इसलिए बुरा आदमी अपने चारों तरफ, अपने से बुरे आदमी इकट्ठे कर लेता है। बुद्धू अपने से ज्यादा बुद्धू इकट्ठा कर लेता है, उनका वह गुरु हो सकता है। तो मैं मानता हूं, कि अच्छे आदमी से तो आमूल परिवर्तन होंगे--हो सकते है?

प्रश्नः आपने कहा, व्यक्तिगत चुनाव होना चाहिए, न कि पार्टी के ऊपर जाना चाहिए। क्या यह व्यक्तिगत चुनाव व्यावहारिक है?

समझा! नहीं, किसी देश में आज तक ऐसा नहीं है, कि हम अच्छे और बुरे आदमी
को चुनने का विचार करें और इसलिए किसी देश में अभी भी, आज भी ठीक लोकतंत्र पैदा नहीं हो सका है। लेकिन यह हो सकता है। और संभव है, व्यावहारिक भी है। लेकिन एक खयाल जकड़ जाता है, तो उससे अन्यथा सोचने में हमें कठिनाई मालूम पड़ती है। दल का एक खयाल पकड़ गया है, कि दल के बिना राजनीति हो नहीं सकती। दल तो होना ही चाहिए। और दल अगर होगा, तो अच्छा आदमी कभी प्रवेश नहीं कर सकता। दल प्रवेश करेगा, आदमी का सवाल नहीं है।
सारी दुनिया की तकलीफ है, भारत की ही नहीं है। भारत की तो बहुत तकलीफ है, क्योंकि हम बहुत नये लोकतंत्र के जगत में खड़े होकर प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन एक अर्थ में हमें सुविधा हो सकती है, कि हम ठीक प्रयोग करने की कोशिश भी कर सकते हैं। क्या हर्ज है, पूरा मुल्क अच्छे-आदमियों को चुने? उनके अपने-अपने विचार होंगे, अपनी धारणाएं होंगी। हम पार्टी बेसिस पर उन्हें नहीं चुनते। उनके अच्छे होने की वजह से चुनते हैं।
वे पचास आदमी इकट्ठे होकर दिल्ली में निर्णय करेंगे, वे पचास आदमी अपने बीच से चुनेंगे, वे ही निर्णय करेंगे। वहां दिल्ली की उनकी लोक-सभा में पार्टियां हो सकती हैं, लेकिन पूरा मुल्क अच्छे आदमी की चिंता करके चुनेगा। वे वहां निर्णय करेंगे, उनके वहां दल होंगे। दस अच्छे सोशलिस्ट चुन जाएंगे, दस अच्छे कांग्रेसी चुन जाएंगे। वे ऊपर जाकर निर्णय करेंगे। हमारे चुनाव का आधार पार्टी नहीं होगी, आदमी होगा। ऊपर पार्टियां होंगी, वह अपना निर्णय करेंगी, अपना प्रधान मंत्री बनाएंगी। वह दूसरी बात है। लेकिन मुल्क अच्छे आदमी की दृष्टी से चुनाव करेगा, तो बड़ा परिवर्तन
हो जाएगा, क्र ांति हो जाएगी। चूंकि अच्छे आदमियों की बड़ी जमात वहां इकट्ठी हो, तो मैं नहीं मानता हूं, कि कोई पार्टी की सरकार होनी भी जरूरी है। अगर अच्छे लोगों की जमात हो, तो अच्छे लोगों की सरकार हो सक ती है। वह मिली-जुली हो सकती है। और मिली-जुली सरकार अच्छे आदमियों की हो सकती है। बुरे आदमियों की तो मिली-जुली सरकार नहीं हो सकती, असम्भव है।
यह तो प्रयोग करने की बात है। अव्यावहारिक लग सकता है, लोकतंत्र भी अव्यावहारिक था। प्रयोग किया है, तो लग रहा है। समानता अव्यावहारिक थी, प्रयोग किया है, तो बढ़ती जा रही है--जिंदगी तो प्रयोग करने से आगे बढ़ती है। जिंदगी तो प्रयोग करने से आगे बढ़ती है! मेरा मानना यह है, कि पार्टियों के दल पर देश को चुनाव करना नहीं चाहिए। देश का आम-जन तो व्यक्ति की फिकर करे, कि कैसा व्यक्तित्व, उसको चुने। ऊपर पार्टियां हो सकती हैं, वे मिल-जुल कर ही काम कर सकती हैं, इकट्ठे भी काम कर सकती हैं।
और भारत जैसे देश में मिल-जुल कर ही काम हो तो अच्छा है। क्योंकि भारत जैसे देश में अभी जब तक पार्टियों का रुख पकड़ जाए, तो एक पार्टी अगर मुल्क के अच्छे की बात भी करे, तो दूसरी पार्टी को सिर्फ इसलिए विरोध करना पड़ता है, कि वह विरोधी है। उसे सब बाधाएं खड़ी करनी पड़ती हैं, सब विरोध करना पड़ता है। भारत जैसे अविकसित देश को तो सबका साथ मिले, सहयोग मिले, एक को- ऑपरेटिव... ।
सारे राजनीतिज्ञ चिल्लाते हैं, लोगों को समझाते हैं, को-आपरेशन चाहिए, लेकिन उनसे पूछना चाहिए कि तुम्हारे बीच कितना को-आपरेशन है। वहां कितना तुम मिल-जुल कर काम कर सकते हो। अगर कोई बढ़िया आदमी है, और वह दूसरी तरफ से आया है, दूसरी दिशा से, तो तुम कितना उसका उपयोग कर सकते हो। भारत जैसे अविकसित देश में तो मिली-जुली सरकार बड़ी सार्थक हो सकती है। और ध्यान रहे, आपकी पार्टी की सरकारें पंद्रह साल में मुसीबत में डाल देंगी। वह तो अब तक एक पार्टी थी कांग्रेस, इसलिए मुश्किल न थी।
अब पार्टियां बढ़ती जाएंगी। दस साल में या तो डिक्टेटरशिप, या मिली- जुली सरकार के सिवाय कोई विकल्प नहीं रह जाएगा। क्या विकल्प है? आज भी क्या विकल्प है? विकल्प तो टूटना शुरू हो गया है। करिएगा क्या, पार्टी कहां ले गई आपको? वह तो एक पार्टी थी, तो ठीक था। कोई अव्यवस्था नहीं मालूम पड़ती थी। अब बराबर वजन की दस पार्टियां हो जाएंगी, तो रोज सरकार बदलेगी। और गरीब मुल्क में--भारत जैसे गरीब मुल्क में, रोज सरकार का बदलना बहुत

महंगा है। और रोज सरकार बदलें तो विकास क्या हो? गति क्या हो? आज नहीं कल, आपको मिली-जुली सरकार पर आना पड़ेगा।
पार्टियां भारत के लिए गैर व्यावहारिक हैं--इंप्रेक्टिकल हैं, वह प्रेक्टिकल हैं नहीं। लेकिन मेरी दृष्टी यह है कि फिर भी अगर पार्टी के ढंग से आपने चुनाव किया, तो अच्छे आदमी की खोज बहुत मुश्किल है। अच्छे आदमी की खोज पर चुनाव होने चाहिए, चाहे वह किसी पार्टी का हो। इससे कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए। मुल्क को पार्टी से प्रयोजन छोड़ देना चाहिए और वे अच्छे लोग ऊपर इकट्ठे हों, उनकी पार्टियां हो भी सकती हैं, दस मत हो सकते हैं उनके, लेकिन अच्छे लोग मिल कर काम कर सकते हैं, और भारत के लिए मिली-जुली सरकार के अतिरिक्त आगे विकल्प नहीं है। फिर एक ही विकल्प है, या डिक्टेटोरियल कोई व्यवस्था हो या फिर यह विकल्प है कि रोज सरकारें बदलें। तो बहुत धनी मुल्क रोज सरकार बदल सकते हैं। वह खेल बहुत लक्जूरियस है,
वह बहुत महंगा खेल है। उनका कोई नुकसान नहीं होता, हम तो मर जाएंगे। हम तो जिंदा नहीं रह सकते। हमारा तो सारा काम ठप्प हो जाएगा। ऐसे ही काम ठप्प है। रोज सरकार बदल जाए तो--छह महिने में सरकार बदल जाए तो... ।
जिन प्रांतों में सरकारें बदली हैं, वहां की हालतें देख कर बहुत घबड़ाहट हो गई है। वहां आज कोई सेक्रेट्री, किसी मिनिस्टर का कोई सुनने का सवाल ही नहीं है, क्योंकि वह कहता है कि आप हो कितनी देर? वह तब तक फाइल ही रखे रहता है, जब तक आप हो। जब आप चले जाओगे, तब देखा जाएगा। जब दूसरा आएगा, तब वह फाइल विदा कर दी जाएगी। उस फाइल से संबंध उठाने की कोई जरूरत नहीं है। और इतना साफ हो गया है, कि छह महिने में सरकार बदलनी है।
मामला बहुत अजीब हो गया है। आज नहीं कल, मिली-जुली सरकार पर हमें निर्णय लेना ही पड़ेगा। लेकिन यह मिली-जुली सरकार और अच्छी हो सकती है, अगर नीचे का चुनाव अच्छे आदमी के खयाल में हम करें। एक बहुत विभिन्न व्यवस्था हो सकती है, जो कहीं नहीं है, लेकिन कहीं नहीं होने से, यह नहीं है कि नहीं हो सकती है। हो सकती है!

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का तेईसवां प्रवचन

भारत के निर्णायक क्षण

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

एक तो आजादी के पहले भारत में कोई राजनीतिक दल नहीं था। आजादी की लड़ाई
थी और सभी उसमें सम्मिलित हुए थे--सभी विचारों के लोग। आजादी के बाद उस संस्था का विघटन जरूरी था, जो आजादी के पहले लड़ाई लड़ रही थी, क्योंकि वह "एक विचार" की संस्था न थी। आजादी के पूरे होते ही उसका काम भी पूरा हो गया था। लेकिन उस संस्था के लोगों को यह अप्रीतिकर लगा बिखर जाना, क्योंकि आजादी की जो लड़ाई लड़ी थी उसका फल भी भोगने का मजा आजादी के बाद आया। तो जबरदस्ती कांग्रेस को बचाने की और सत्ता पर हावी करने की चेष्टा की गयी। ठीक तो यह था कि कांग्रेस को बिखर जाना चाहिए था। उसके होने का अब कोई अर्थ न था, आजादी के बाद। उसका लक्ष्य पूरा हो गया था। उसका काम भी पूरा हो चुका था। इधर बीस वर्षों में किसी तरह कांग्रेस को खींच-तान कर बांध रखने की कोशिश की गई है, वह देश के लिए अहितकर है। उसका बिखरना बहुत जरुरी है। उसके बिखराव के बाद ही भारत में राजनीतिक दल जैसी संस्थाओं का अस्तित्व बन सकेगा। उसके पहले नहीं बन सकता है। क्योंकि इतना बड़ा संगठन--जो एक अर्थों में गैर राजनीतिक था--हावी है कि उसके मौजूद रहते हुए नये संगठन, विचार के आधार पर, आयडियालॉजी के आधार पर बन सकें और सत्ता के संघर्ष में सफल हो सकें, यह असंभव है। इसलिए कांग्रेस का बिखराव तो बहुत सौभाग्य सूचक है। देर से हो रहा हैं, बीस साल बाद, जो बीस साल पहले होना चाहिए था। उसके बिखर जाते ही भारत में लोकतांत्रिक संभावना बढ़ जाती। उसके बिखर जाने के बाद ही विचार के आधार पर राजनीतिक दल खड़े हो सकेंगे और उनकी रुपरेखा स्पष्ट हो सकेगी।
कांग्रेस जब तक मौजूद है ताकत में, तब किसी राजनीतिक दल की विचारधारा स्पष्ट नहीं हो सकती। क्योंकि अस्पष्ट विचारधारा का एक राजनीतिक दल हावी है। उसके प्रतिफलन विरोधी पार्टियों पर भी पड़ते हैं। एक स्पष्ट विचार कांग्रेस का अपना हो, भिन्न विचार के लोग अलग हो जायें तो दूसरी पार्टियां भी कनफ्यूज न रहें और उनको भी अपना विचार साफ करने की सुविधा मिले। और लोकतंत्र के भविष्य और विकास और कार्य के लिए जरूरी है कि बहुत दल हों और एक दल इतना शक्तिशाली न हो कि विरोधी दल में होने का कोई अर्थ ही न रह जाए। इसलिए कांग्रेस का विघटन अत्यंत हितकर है।
निश्चित ही दूसरी बात भी आपने पूछी है कि दूसरे दल भी बहुत अर्थों में विघटन के करीब हैं। जैसे ही कांग्रेस विघटित होगी, दूसरे दलों में भी विघटन पड़ेगा। क्योंकि यह सफाई पूरे मुल्क में होगी। कांग्रेस के विघटित होते ही उसमें जो दक्षिणपंथी वर्ग है, उसके अलग होते ही दक्षिणपंथियों के अलग खड़े होने का कोई अर्थ न रह जाएगा। वह दक्षिणपंथी वर्ग के साथ संयुक्त हो जाएंगे। कांग्रेस के भीतर वामपंथियों के अलग होते ही वामपंथियों का भी कोई अर्थ न रह जाएगा। वामपंथी भी इकट्ठे हो जाएंगे और पोलराइजेशन संभवा हो पाएगा। और अगर ध्रुवीकरण संभव हो जाए तो मुल्क के सामने स्पष्ट विचारधाराओं के दल होंगे जिनको हमें चुनाव करने में सुविधा होगी। अभी चुनाव करना ही मुश्किल है। क्योंकि जो लेफ्टिस्ट है, वह भी राइटिस्ट भाषा की कुछ बातें बोलता है। और जो राइटिस्ट है, वह भई लेफ्टिस्ट भाषा की कुछ बातें बोल रहा है। और मुल्क के मतदाता के सामने स्पष्ट ही नहीं हो पाता कि कौन कौन है? और यह स्पष्ट न होगा तो बहुत कठिन है। और हमारे जैसे मुल्क में जहां बहुत शिक्षा न हो, यह अत्यंत स्पष्ट हो जाना जरूरी है।
जहां हमें वोट देने के लिए नाम काफी न पडते हो और चिन्ह चुनने पडते हों। जहां चिह्नों के हिसाब से वोट करनी पड़ती हो वहां इतनी कंफ्यूज्ड पार्टियों का होना, मताधिकारी को सिवाय भ्रम में डालने के कुछ भी नहीं होता है। वह समझ ही नहीं पाता कि कौन समाजवादी है, कौन गैर-समाजवादी है। गैर-समाजवादी भी समाजवादी की भाषा बोलता है, समाजवादी भी गैर-समाजवादी की

भाषा बोलता है। और कांग्रेस का कंफ्यूजन सारे मुल्क की सब पार्टियों में, सब मताधिकारियों के मन में प्रतिध्वनित होता है। इसलिए कांग्रेस के विघटित होते ही दूसरी पार्टियों में भी विघटन अनिवार्य होगा। उसके भी वे टुकड़े अलग हो जायेंगे जो स्पष्ट न होंगे, या जिनके संबंध और तरह के होंगे औंर दूसरों से जिनके संबंध हो सकते हैं। तो आनेवाले दस वर्षों में यह विघटन साफ-साफ होकर सुनिश्चित विचार के दल खड़े हो जायेंगे, जो कि एक लोकतंत्र के लिए बहुत जरूरी हैं और मतदाता के मन को स्पष्ट हो सकेगा कि वह किसको चुन रहा है, क्यों चुन रहा है, किस कारण चुन रहा है?
दूसरा फायदा यह होगा कि कांग्रेस के विघटित होते ही कोई भी दल इतना बड़ा नहीं रह जाएगा कि नाम लोकतंत्र का हो और काम बिल्कुल तानाशाही का हो, यह असंभव हो जाएगा। कांग्रेस के पास इतनी बड़ी ताकत थी कि नाम ही लोकतंत्र का है, बीस सालोंसे, लेकिन ईतनी बडी ताकत में, लोकतंत्र सिर्फ नाम है, पीछे काम बिल्कुल अधिनायकशाही का हो सकता है। वह भी असंभव हो जाएगा। और यह हो जाना चाहिए। मैं इसको सौभाग्यसूचक मानता हूं और स्वागत योग्य मानता हूं। जिन लोगों ने कांग्रेस निर्माण की थी, उन्होंने जितना बड़ा काम किया है, उतना ही जो आज कांग्रेस को विघटित कर रहे हैं, वह भी उतना ही बड़ा काम कर रहे हैं।
जन्म लेना भी बहुत बड़ा काम है और दफनाना भी उतना ही बड़ा काम है। और हर चीज के मरने का वक्त आ जाता है, तब उसको दफनानेवालों की जरूरत पड़ती है। निजलिंगप्पा, इंदिरा जी सब कंधे मिला कर उसको दफनाने का काम कर रहे हैं जो कि बहुत ही उचित और देश के हित में है। कांग्रेस के तो अहित में है क्योंकि जो लोग इकट्ठे हैं उनकी शक्ति इसके बाद क्षीण हो जाएगी। लेकिन देश के हित में है। क्योंकि देश में कोई भी दल इतना शक्तिशाली हो, यह उचित नहीं है; और इतना कनफ्यूज्ड हो, जिसके सामने कोई स्पष्ट विचार न हों--सब विचारधारा, सब शेड के लोग जिसके भीतर हों और जिसमें तय करना ही मुश्किल होता हो, ऐसे दल का बिखर जाना जरूरी है। क्योंकि इतने बड़े दल का इतना कंफ्यूज्ड होना, छोटे दलों को भी कनफ्यूज्ड करता है, और उनको भी इसी तरह की विचारधारा पकड़ने को मजबूर करता है कि वह सब शेड के लोगों के लिए जगह बना सके।
... तो चित्त के साथ देश की चेतना के लिए स्पष्ट करने के यह लिए बहुत हितकर है। इसमें जितनी देर लगी उतना नुकसान हुआ। अभी जितनी जल्दी हो जाए उतना अच्छा है। मैं समझता हूं कि दस वर्ष में देश के पास अलग आइडियालॉजी की सब पार्टीयां होंगी इसलिए मैं इसको कुछ अशोभन नहीं मानता हूं, न अशुभ मानता हूं।

प्रश्नः गांधी शताब्दी वर्ष में क्या वे गांधी जी को भूल गए हैं, ऐसा आपको लगता है?

गांधी जी को उनहोंने कभी याद किया हो, यह ही बात गलत है। भूलना तब पड़ता है, जब याद किया हो। गांधीजी से उनका कभी कोई संबंध नहीं रहा। गांधी जी जिंदा थे, तभी वे भूल गए थे और गांधी जी को खुद ही लगना शुरू हुआ था कि उनके साथी उन्हें भूल गए। सोचते थे पहले कभी, एक सौ पच्चीस वर्ष जीना, फिर सोचा कि इतना जीना बेकार है। एक सौ पच्चीस वर्ष जीते तो जितनी तकलीफ वे भोगते, दुनिया में दूसरा आदमी शायद ही भोग। गोडसे तो एक मित्र की तरह आया और उनको विदा कर दिया।
और आजादी के पहले भी गांधी जी के पीछे चलने वाले उनसे सहमत थे, इस भूल में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। गांधी जी भी कांग्रेस के अंग्रेजों से संघर्ष की टैक्टिक्स में एक हिस्सा थे। गांधी जी के बिना वह लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती थी। इसलिए गांधी जी की बहुत सी बातों के लिए राजी होना पड़ता था, जिनसे आज वह राजी नहीं है और हमको परेशानी मालूम पड़ती है।
जैसे गांधीजी की अहिंसा से उनके पीछे चलने वाले बहुत कम लोग सहमत है
और अगर सहमत थे तो इतना सहमत थे कि एक पालिसी की तरह इसका उपयोग किया जाए, एक प्रिंसिपल की तरह नहीं। जब आजादी आ गई तो बात खत्म हो गई। पॉलिसी पूरी हो गई थी और अब अहिंसा की बात को पकड़ रखने का कोई प्रयोजन न था। गांधीजी की

सारी व्यवस्था से, उनकी चिंतना से लोग राजी थे इसलिए कि संघर्ष में यह उपयोगी हो सकती है--एक तरकीब, एक टेक्नीक की तरह। लेकिन यह कोई जिंदगी का दर्शन है, इस तरह बहुत लोग राजी नहीं हुए। खुद उनके निकटतम पंडित नेहरू भी उनसे राजी नहीं थे। न उनके ग्रामोद्योग से राजी थे, न उनके चर्खे से राजी थे। न उनकी अहिंसा को सिद्धांत की तरह राजी थे, न उनके भगवान और राम से राजी थे, न उनके धर्म से और प्रार्थना से राजी थे।
गांधीजी से बहुत कम लोग राजी थे। अठ्ठान्नबे प्रतिशत उनके पीछे चलने वाला आदमी इसलिए पीछे चल रहा था कि वह अंग्रेजों से संघर्ष में उपयोगी थे। उनके बिना संघर्ष को चलाना बहुत कठिन था। लेकिन जब संघर्ष पूरा हो गया, तो गांधीजी का काम भी पूरा हो गया। पीछे चलनेवाला आदमी अलग खड़ा हो गया। लेकिन उसके बाद भी वह नाम लेता रहा। क्योंकि एक नया संघर्ष शुरू हुआ--जनता से। एक संघर्ष था जो अंग्रेज से चलता था, उसमें गांधी को नेता बनाना जरूरी था; फिर एक संघर्ष शुरू हुआ सत्ता में आने से, जनता से। और गांधीजी की जय लगाना जरूरी था ताकि जनता उनके साथ खड़ी रहे क्योंकि गांधी जी का नाम बहुत कीमती हो गया था। उसकी बड़ी क्रेडिट थी और उस पुराने साइनबोर्ड को उखाड़ फेंकना गलत था। वह उपयोगी था इसलिए उसका शोरगुल मचाते चले गए। बल्कि उस बोर्ड को इतना बड़ा बनाया कि उस जयकार के पीछे सब पाप छिप जायें, इसलिए गांधी की जय जोर से मनाते चले गए।
सेंटिनरी में क्यों आकर यह बात गड़बड़ हो गयी? बहुत कारण इकठ्ठे हैं। एक
तो बीस साल में गांधीजी का जितना जोर से नाम चिल्लाया था, सेंटिनरी में सारी ताकत को लगा कर नाम को चिल्लाया। सेंटिनरी मनाई ही इसलिए कि दस साल कांग्रेस की ताकत और बढ़ जाए। दस साल गांधीजी के नाम का और फायदा मिल जाए, तो उसको जागतिक पैमाने पर मनाने की कोशिश की। और देश में भी इतना पैसा खराब किया उसके ऊपर, उसके पीछे राज यह था कि महात्मा गांधी की जय फिर शुरू हो जाए जोर से। तो महात्मा गांधी के पीछे खड़े जो लोग हैं, छोटी-मोटी जयकार उनकी भी हो जाती है, जब गांधीजी की बड़ी जोर की जय बोली जाती है।
लेकिन जैसे लपट मरने के पहले जोर से भभकती है, ऐसा सेंटिनरी में हो गया। उनकी जयकार भी जोर से भभकी लेकिन तेल भी चुक गया। और एक ही साथ दोनों घटनाएं घट गई, उनका विघटन भी घट गया। और एक लिहाज से अच्छा ही है। गांधीजी के सौ वर्ष पूरे होते हैं और शायद अब दुबारा इस तरह की सेंटिनरी इस दुनिया में गांधी जी की मनाना बहुत मुश्किल पड़ेगा। अब कांग्रेस का भी मृत्युचरण उठ गया। बीस वर्ष भी बहुत हैं। कांग्रेस ने जो किया है उसे देखते हुए, बीस वर्ष भी जिंदा रहना बहुत है। और उसके जिंदा रहने में कांग्रेस की शक्ति महत्वपूर्ण नहीं है। भारत की जनता का इनर्शिया- आलस्य महत्वपूर्ण है। हम सहने में समर्थ हैं। हम किसी भी... बात को सहने में लंबी देर तक संतोष रख सकते हैं।
दूसरा महायुद्ध हुआ तो चर्चिल को बुला लिया था ब्रिटेन ने, नेतृत्व करने को। और युद्ध विजय हुआ, और चर्चिल को उतनी ही सरलता से विदा कर दिया, जितनी सरलता से बुलाया था। काम पूरा हो गया था चर्चिल का, अब कोई जरूरत न थी। युद्ध का वह नेता हो सकता था, शांति में उसकी कोई जरूरत न थी। ब्रिटेन से चुपचाप विदा कर दिया जैसे कुछ लेना-देना न था। हमारी कठिनाई है, कांग्रेस को हमें पंद्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस से विदा कर देना था। उसका काम पूरा हो गया था। लेकिन हमको बीस साल लग गए विदाई समारोह आयोजन करने में। और अभी भी कांग्रेस जी सकती है दो-चार-पांच वर्ष; नये नारे देकर जी सकती है। अगर गांधी का नारा झूठा पड़ जाए, तो कुछ नये नारे खोज कर जी सकती है। लेकिन उसकी मरण प्रक्रिया करीब आ गई है। भीतर से जो उसमें दरार पड़ी है, वह उसको ले डूबेगी।
इस देश की जनता का आलस्य बहुत प्राचीन है। यानी हमारी संस्कृति का आधार ही हमारा आलस्य है। इसलिए स्टेटिक सोसायटी हम बना पाए, डायनैमिक सोसायटी नहीं बना पाए। उसका कोई और गुण न था, गुण यह था सिर्फ कि हम इतने आलसी हैं कि हम कुछ बदलने की इच्छा में ही नहीं रह गए हैं। जहां तक बिना बदले चले, हम चलाना चाहेंगे। आज भी कांग्रेस टूट रही है तो वह हमारे तोड़े

नहीं टूट रही है, वह अपने आप टूट रही है। अब हम क्या करें इसमें? हम तो उसे बचा सकते थे अभी और। वह टूट ही रही है तो हम क्या करें?
यह बीस वर्ष जो चलना हो सका है, वह हमारे आलस्य के कारण, संतोष के कारण,
वह जो चुपचाप हो रहा है उसे देखते रहने की प्रवृत्ति के कारण। विद्रोह का रुख नहीं है और चीजों का काम पूरा हो जाए तो उन्हें विदा करने की क्षमता भी हममें नहीं है। इसलिए कांग्रेस ही नहीं, और हजारों चीजें चल रही हैं जो कभी की विदा हो जानी चाहिए। यानी जिनका अब कोई अर्थ ही नहीं रह गया है, लेकिन वे चले चली जा रही है।
ऐसा लगता है कि दूसरे मुल्क तो एक सदी में जीते हैं, हम दस-पंद्रह सदियों में इकट्ठे जीते है। दसवी सदी के भी अवशेष बाकी हैं और पांचवीं सदी के अवशेष भी बाकी हैं। उनको मानने वाला भी मौजूद है, उनको चलाने वाला भी मौजूद है। तो करीब-करीब हमारा पूरा इतिहास का जो विस्तार है, उसको इकट्ठे ही करके हम जीते हैं।
जो पुराना है उसको बचा लेते हैं, उसकी लाश हम बचा लेते हैं और उसको घसीटे चले जाते हैं। लाशें इतनी ज्यादा वजनी हो जाती हैं कि जिंदा आदमी उनको खींच ही नहीं पाता। तो जिंदा खड़ा हो जाता है, लेकिन लाशों को नहीं छोड़ता है कि उनको छोड़ दे और आगे बढ़ जाए। तो वह हमारी पुरानी प्रवृत्ति है। वह प्रवृत्ति का फायदा कांग्रेस ने बीस साल उठाया। तो दो-चार-सात साल फायदा और भी उठा सकती है।
लेकिन जो काम कृपा करके कांग्रेस के भीतर के लोग ही कर रहे हैं, वह हमें बहुत पहले कर देना चाहिए था। उससे एक जिंदा देश का सबूत मिलता। करीब-करीब ऐसा ही हमने आजादी के लिए किया था। हम अभी और गुलाम रह सकते थे, अभी कुछ ऐसी कठिनाई न आ गयी होती। अंग्रेज ही छोड़ देने को राजी हो गए, तो हम क्या कर सकते थे? वही कांग्रेस के साथ हुआ। वही मरने को तैयार हो गई, तो हम क्या कर सकते हैं? हमने उसकी कोई हत्या नहीं की, वह आत्महत्या करने को तैयार हुई है।
लेकिन सच ऐसा है कि जब चीजें पक जाती हैं, तो आप न भी गिराएं तो भी गिर जाती हैं। एक फल पक जाएगा, आपने पत्थर नहीं भी मारा तो भी गिरेगा। सब चीजें पकती हैं और गिरती हैं। कांग्रेस भी पक गई है, वह गिर जाना बिल्कूल अच्छा है। और हमें जलसा मना कर उसको विदा दे देना चाहिए कि वह गिर गई हैं। उससे जो वैक्यूम पैदा होगा, वह हितकर होगा। उसमें नये विचारों को पनपने की, नये मतों को पनपने की, नये संगठनों को पनपने की सुविधा बनेगी।
वैक्यूम तो रह नहीं सकता, वह भर दिया जाएगा। और निश्चित ही अब वह नयी धारणाओं से भर जाएगा। अब नये सवाल होंगे हमारे सामने। देश की अर्थ रचना को बदलने का सवाल होगा, देश की शिक्षा को बदलने का सवाल होगा, देश के स्वास्थ्य को बदलने का सवाल होगा, देश की जनसंख्या का सवाल होगा, जिंदा मसले होंगे। अब जो नये संगठन खड़े होंगे, नये मत खड़े होंगे उनके सामने जिंदा मसले होंगे। कांग्रेस के सामने जिंदा मसले नहीं हैं। उसके सामने जिंदा मसले थे, सैंतालीस के पहले। वे मसले भी मर चुके, उनका उत्तर भी हो चुका। अब उसके पास उत्तर भी नहीं है जिंदगी के लिए। वह पुराने उत्तर के आधार पर जीने की कोशिश कर रही है, तो वह कितनी देर चल सकती है?

प्रश्नः आपने कहा, डायनेमिक सोसायटी हम नहीं बना पाए। तो आप डायनेमिक सोसायटी के विकसित होने के बारे में क्या कहते हैं?

एक तरह का समाज तो वह है, जो एक ढांचे को विकसित कर लेता है, और फिर उसी ढांचे के अंतर्गत जिए चला जाता है। समय बदल जाता है, परिस्थिति बदल जाती है, लेकिन वह अपना ढांचा नहीं बदलता। एक समाज वह है जो ढांचा निर्मित करता है--ऐसा नहीं कि निर्मित नहीं करता--ढांचा निर्मित करता है, लेकिन परिस्थिति बदलती है, समस्याएं बदलती हैं, तो वह अपने ढांचे को बदलने की तत्परता दिखाता है।
अब जैसे कि हम हैं--हमारे समाज का ढांचा पांच हजार वर्ष से करीब-करीब
एक जैसा है। उस ढांचे में बुनियादी फर्क नहीं आएं। सोचने के मुल्य भी

हमारे वहीं के वहीं हैं, उनमें भी कोइ फर्क नहीं आएं। और अगर फर्क आ रहा है, तो वह हमारे कारण नहीं आ रहा है, वह ढांचा जिसको हम सम्हालें थे वह खुद ही बिखरने लगता है, यानी वह इतना जरा-जीर्ण हो जाता है कि उसके बिखरने की पूरी स्थिति आ जाती है। वह टूट कर गिर जाता है तो मजबूरी हमारी। बाकी वैसे हम पूरी चेष्टा करते हैं आखिरी दम तक कि उसको सम्हाले रहें, सम्हाले रहें, सम्हाले रहें--उसको थेगडे लगा दें, नये प्लस्तर जोड़ दें, नये खंभों का सहारा दे दें। लेकिन जब तक हमसे बने, हम ढांचे को बचाने की कोशिश करते हैं, उसे मिटा डालने की नहीं।
अब जैसे कोई भी ढांचे की बात हो...
मै जो फर्क कर रहा हूं स्टेटिक सोसायटी और डाइनैमिक सोसायटी में, वह पहला फर्क यह कर रहा हूं कि स्टेटिक सोसायटी अपने ढांचे क परिस्थितियों के बावजूद सम्हालने की कोशिश करती है। हमारा ऐसा समाज रहा है। ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं कि डाइनैमिक सोसायटी ढांचे नहीं बनाती, लेकिन डाइनैमिक सोसायटी ढांचों के ऊपर आश्रित नहीं हो जाती, ढांचों को जीती है। और जब समय व्यर्थ हो जाता है, तो उनको फेंक देती है और उनके बाहर हो जाती है।
अब जैसे उदाहरण के लिए--एक हमारी नैतिकता का ढांचा था, वह हमने एक परिस्थिति में विकसित किया था। अब परिस्थितियां बिल्कुल बदल गई हैं, लेकिन नैतिकता का ढांचा वही है। और परिणाम में कितनी ही अनैतिकता पैदा हो जाए, हम ढांचे को बदलने को राजी नहीं हैं। अनैतिकता को हम झेल लेंगे, लेकिन हम ढांचे न बदलेंगे। जैसे, उदाहरण के लिए, जैसे हम बाल-विवाह करते थे इस देश में। निश्चित ही बाल-विवाह के साथ नैतिकता का ढांचा दूसरा होगा, होना ही चाहिए। छोटे बच्चों की शादी हो जाती थी, इसके पहले कि वह मैच्योरिटी पर आएं। प्रोढ़ हों सेक्स की दृष्टि से, वे विवाहित हो जाते थे। इसलिए कभी इस मुल्क में युवक और युवती के बीच...

प्रश्नः... लेकिन आज वह नहीं है?

न। लेकिन हमारे ढांचे का चिंतन वही है, मूल्य वही है। जैसे कि हमने आज
से पांच सौ साल पहले एक युवक और युवती को, जो अविवाहित हो...

प्रश्नः लेकिन युवक और युवती अपने पैरों पर खड़े होकर अपने आपको पसंद
कर लेते हैं। आज तो वह ढांचा नहीं है?

न। आपका मूल्यांकन वही है। आपका मूल्यांकन वही है! लड़के ढांचा तोड़ रहे हैं क्योंकि ढांचा अपने आप गिरा जा रहा है। मैं यह कह रहा हूं कि ढांचा अपने आप बिखर रहा है। आप उसको तोड़ नहीं रहे हैं सचेत होकर।

प्रश्नः ढांचा जो बिखर रहा है, वह नया ढांचा आ रहा है!

न। नया ढांचा आएगा। अगर पुराना ढांचा बिखरेगा तो नया ढांचा आएगा, लेकिन स्टेटिक सोसायटी वह है जो पुराने ढांचे को बचाने की अंतिम चेष्टा करती है। वह उस ढांचे को विदा कर देने के लिए आतुर नहीं होती है। और नये ढांचे को अगर स्वीकार भी करती है तो बड़े बेमन से स्वीकार करती है, मजबूरी में स्वीकार करती है। वह छाती पर आ ही जाता है तो स्वीकार करती है। जो मैं यह फर्क कर रहा हूं, वह फर्क कर रहा हूं, हमारी तत्परता, हमारी उत्सुकता और आतुरता नये के स्वागत की नहीं है। नया आ ही जाए और मेहमान बन ही जाए तो धीरे-धीरे हम उसके लिए भी राजी हो जाएंगे; हम तो पुराने के लिए भी राजी थे, इसके लिए भी राजी हो जाएंगे।

प्रश्नः आज की सोसायटी मे जो आप कह रहे हैं, वह परिस्थिति नहीं है।

न! यह आप एकदम गलत ही खयाल में है। गलत खयाल में इसलिए हैं, जो मैं कह रहा हूं मूल्य की... जैसे मैं उदाहरण के लिए, दो-चार कांक्रीट उदाहरण दूं तो

खयाल में आ जाए। इसलिए मैं कह रहा हूं ताकि खयाल में आ सके कि ढांचा हमारा सोचने का पुराना ही है। नया ढांचा आ रहा है, लेकिन हम ला नहीं रहे। और यह फर्क है स्टेटिक सोसायटी का। डाइनैमिक सोसायटी नये ढांचे को लाने के लिए आतुर होती है।

प्रश्नः आपके खयाल से नये ढांचे सोसायटी अपने आप ला रही है?

न! अगर यह प्रेस कांफ्रेंस है तो आपको विवाद का सवाल नहीं है। अगर विवाद करना हो तो फिर पूरी बात करनी पड़ेगी न! यानी मेरा मतलब यह है कि (अस्पष्ट)आप सवाल पूछते हैं--मैं समझा तुम्हारी बात--अगर आप पूछ रहे हैं तो मैं उत्तर दे रहा हूं। मेरा उत्तर सही है या गलत है, यह आपकी टिप्पणी अपनी होनी चाहिए, उससे मुझे कोई सवाल नहीं हैं फिर। मेरा उत्तर गलत है... नहीं- नहीं, मेरी बात नहीं समझे... और अगर उस पर डिस्कशन करना है न, तब तो लंबा वक्त लगेगा; फिर प्रेस कांफ्रेस का सवाल ही नहीं रह जाता।... नहीं होगा न! क्योंकि प्रश्न पूछ लिया है आपने! मैं कह रहा हूं, स्टेटिक सोसायटी मैं उसको कहता हूं, डायनैमिक सोसायटी इसको कहता हूं, और आपकी सोसायटी को मैं डायनैमिक नहीं कहता हूं। आपको ठीक नहीं लगता है तो उसको आप लिखो, समझे न? फिर उसमें डिस्कशन का उपाय नहीं है... !

प्रश्नः आप पोलिटिकल डिस्कशन को लाइन नहीं करना चाहते! क्या करना चाहते हैं आप? मैं जानना चाहता हूं कि क्या परप.ज है आपका?

मैं जिंदगी के सारे मसलों पर सोचता हूं। वह मुझे सुन कर आपको तय करना चाहिए। अगर आपको लगे कि डिफरेंस नहीं है... मैं जो कह रहा हूं, अगर आपको लगता हो कि उसमें दूसरे आदमी के और मेरे सोचने में कोई फर्क नहीं है, तो आप लिखिए। अगर लिखने योग्य न लगे तो मत लिखिए। लेकिन यह तो आपको तय करने की बात है।... हां-हां, बिल्कुल आपको सोचना पड़ेगा। उसमें मैं एडवाइज दूंगा तो क्या मतलब होगा आपके सोचने का? मैं अपनी बात कहे देता हूं। आपको लगे कि यह लिखने जैसी बात नहीं है, लिखने योग्य नहीं है, मत लिखिए। यह भी लिखने योग्य हो कि यह लिखने योग्य नहीं, तो यह लिखिए। वह आपकी सोचने की बात है। उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रश्नः एक दूसरा और सवाल है कि मानवीय कुदरत का एक अंश है और उसके ऊपर कुदरती तत्वों का असर गिरता है। जैसा समुद्र किनारे रहने वाला आदमी और वहां की जो आबोहवा है, वह आबोहवा में वह आदमी दूसरी तरह का होगा, पहाड़ पर रहने वाला दूसरी तरह का होगा--ऐसा ठंडी में, गर्मी में। और आप, वह जो डाइनैमिक सोसायटी की बात चल रही है, उसके ऊपर कैसे उसकी परिस्थिति को बदला जा सकता है?

यह बात महत्वपूर्ण है। क्योंकि हम जैसे भी हैं, हमारे चारों तरफ का मौसम, हवा, प्रकृति सबका परिणाम है। लेकिन इसके बावजूद भी आदमी इतना अवश नही है कि सिर्फ प्रकृति का परिणाम हो, आदमी ही प्रकृति पर परिणामकारी है। जैसे इसी गांव में रह कर एक आदमी परंपरावादी होगा, और एक आदमी क्रांतिकारी हो सकता है। और दोनों के लिए मौसम एक सा होगा, धूप भी एक सी होगी, वर्षा भी एक सी होगी, पहाड़ों पर हरियाली भी एक सी होगी। यह बात बहुत ठीक है कि प्रकृति बहुत दूर तक निर्धारित करती है कि हम कैसे होंगे, लेकिन हम भी बहुत दूर तक निर्धारित करते है कि हम प्रकृति को कैसे होने देंगे! यानी प्रकृति और हमारे बीच वन वे ट्रैफिक नहीं है।

प्रश्नः आप क्या ऐसा कहते है कि प्रकृति पर आप कंट्रोल कर सकते हैं?
एक आम का पेड़ है और उस पर जो आम का फल लगता है, क्या आप उसको आम का फल आने की हैसियत से रोक सकते हैं?

मैं आपकी बात समझता हूं। पहले तो आप जो कह रहे है उसकी पूरी मैं बात कर लूं। फिर आपकी बातें करूंगा।
यह बात बहुत ठीक है कि गर्म मुल्क का आदमी थोड़ा सा आलसी होता है, थोड़ा
सा आलसी होगा ठंडे मुल्क की बजाय, क्योंकि ठंड एक स्थिति पैदा करती है शरीर में, गर्मी दूसरी स्थिति पैदा करती है। सीमा पर रहने वाला आदमी एक तरह का होगा, देश के मध्य में रहने वाला आदमी दूसरी तरह का होगा। क्योंकि देश के मध्य में रहने वाले आदमी पर मुसीबतें मुश्किल से आयेंगी, सीमा पर रहने वाले आदमी पर मुसीबतें रोज आयेंगी। रोज उनका मुकाबला करना होगा।
एक सुखी देश का आदमी, जहां सामान्यतया जीवन सुख से चल जाता है, एक तरह
का होगा। जहां जीवन बहुत कठिनाई से भरा हुआ है वहां आदमी दूसरी तरह का होगा। ये दोनों बातें सच हैं। लेकिन ये बातें इतनी सच नहीं है कि इतनी बातें सोच कर कि जो जैसा है वैसा ही रह जाए। तब फिर ये बातें खतरनाक भी हो सकती हैं। तब गर्म मुल्क का आदमी कह सकता है, हम तो आलसी होंगे ही, क्योंकि हमारा मुल्क गर्म है। लेकिन और गर्म मुल्क भी हैं और जरूरी नहीं है कि उन मुल्कों का आदमी उतना ही आलसी हो। और हमारे मुल्क में सभी लोग आलसी हैं, ऐसा भी नहीं है। प्रकृति निर्धारित करती है, लेकिन इतना निर्धारित नहीं करती जितना हम मान लेते हैं। पचास प्रतिशत शायद वह निर्धारित करती है और पचास प्रतिशत हमारी धारणाएं निर्धारित करती हैं कि हम क्या होंगे?
और हमारी धारणाएं इतनी महत्वपूर्ण हैं कि प्रकृति को भी बहुत सीमाओं
पर छूटी हैं और बदलती हैं। जैसे आपने कहा, निश्चित ही अब कोई आम को हम इमली नहीं बना सकेंगे, लेकिन छोटा और बड़ा आम हमारे हाथ में निर्भर होगा। और यह भी कौन कह सकता है कि भविष्य में हम आम को इमली नहीं बना सकेंगे? जैसे-जैसे हमारी समझ गहरी होती जा रही है, वैसे-वैसे हम जानते हैं कि आम का जो बीज है उसमें कोडेड फार्मूला है। वह छोटे से बीज में फार्मूला है छिपा हुआ, जो उसको आम बनाता है। अब जितना हमारा अणुओं में प्रवेश हो रहा है... तो हम यह भी जान रहे हैं कि हम आम के अणु में भी प्रवेश कर सकेंगे और हम यह जान सकेंगे कि कौन सा खास तत्व इसको आम बनाता है। अगर उसको हम उसके बीज से अलग कर सकें तो हम आम को दूसरी शक्ल में ले आएंगे--आम, आम नहीं रह जाएगा।
आज रूस में ऐसे बहुत से फल हैं जो पृथ्वी पर कभी भी नहीं थे। जैसे कि रूस में उन्होंने ऐसे गेहूं की पैदावार भी की है जिसको हर वर्ष काट कर फेंक नहीं देना पड़ता, जो प्रतिवर्ष फसल भी दे सकता है। अब वह बिल्कुल ही नई आदमी की खोज है। ऐसा पौधा पृथ्वी पर कभी भी नहीं था गेहूं का, जब कि हर वर्ष ही काट देना पड़ता था फसल। लेकिन एक पौधा दस साल तक काम दे जाए और दस साल गेहूं की फसल दे दे, वह बिल्कुल ही नई खोज है। वह आदमी की ही ईजाद है।

प्रश्नः इसमें कोई फर्क तो नहीं हुआ?

हां, गेहूं में भी बहुत बुनियादी फर्क पड़ेगा। बुनियादी फर्क का मतलब
यह है...

प्रश्नः गेहूं बाजरा तो नहीं हो गया?

यह हो सकता है, यह संभावना है। यह संभावना इसलिए है कि जैसे-जैसे हमारी समझ बढ़ती है... गेहूं के, गेहूं होने का एक प्लान है, उस प्लान को अगर हम कल कभी बदल सकते हैं, तो यह भी संभव है। उसमें बहुत कठिनाई नहीं है। जैसे आज तक हमें खयाल था कि लड़की, लड़की होगी--लड़का, लड़का होगा। लेकिन आज संभावना बढ़ गई है कि हम पेट में लड़के और लड़की में रूपांतरण कर सकें। अगर लड़का लड़की हो सकती है और लड़की लड़का हो सकता है, तो बहुत कठिनाई नहीं है कि गेहूं कल आम हो सके। निश्चित ही वह और तरह का आम होगा क्योंकि वह गेहूं से आएगा। आम ही नहीं होगा, लेकिन इसकी संभावना रोज बढ़ती जाती है क्योंकि जितनी हमारी समझ बढ़ती है प्रकृति के बाबत, उतना ही बदलने की सामर्थ्य बढ़ती है।

लेकिन अगर हमने कोई ऐसी धारणा पकड़ ली हो, कि हम प्रकृति को बदल ही नहीं सकते, तो यह धारणा प्रकृति से ज्यादा मजबूत सिद्ध होगी। और इस धारणा को बदलना बहुत कठिन हो जाएगा। प्रकृति को बदलना इतना कठिन नहीं जितना इस धारणा को बदलना कठिन हो जाएगा।
जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हमे प्रकृति निर्धारित करती है, लेकिन हम भी लौट कर प्रकृति को निर्धारित करते हैं। आज जमीन पर जो डायनेमिक सोसायटी है, उन्होंने बहुत दूर तक प्रकृति को निर्धारित किया है। जो स्टेटिक सोसायटीज हैं, वे प्रकृति से निर्धारित होती चली जा रही हैं। जैसे, पानी नहीं गिरा है तो डायनेमिक सोसायटी फिकर करेगी कि बादल कैसे लाया जा सके? स्टेटिक सोसायटी सिर्फ प्रार्थना करेगी कि हे भगवान! बादल ला दे। स्टेटिक सोसायटी और कुछ नहीं कर सकती है, भगवान से प्रार्थना कर सकती है कि वह पानी ला दे। यज्ञ कर सकती है। लेकिन बादल लाए जाएं और गांव पर बादलों के ऊपर बर्फ छिड़का जाए और पानी बरसा लिया जाए... वर्षा ज्यदा हो गई, तो गांव के बादल अलग कर दिए जाएं... वह स्टेटिक सोसायटी इसकी फिकर नहीं कर पाएगी।
स्टेटिक सोसायटी अपने ढांचे में जीएगी। यज्ञ हमेशा होता रहा है, वह यज्ञ करती रहेगी। वह यह भी न पूछेगी कि यज्ञ का अब कोई रेलेवेंस भी रह गया है बादलों से पानी गिराने में, या नहीं रह गया है? इंद्र का कोई संबंध रह गया है बादलों से कि अब नहीं रह गया है? लेकिन हमारी धारणा में बना है यह संबंध। अब भी हम इंद्र की पूजा कर लेंगे और प्रार्थना कर लेंगे। स्टेटिक सोसायटी अपने पुराने ढांचे को पुनर्विचार करने के लिए राजी नहीं होती, रिकंसीडर नहीं करती। जब कि सब ढांचे रोज पुनर्विचार किए जाने चाहिए क्योंकि जिंदगी रोज बदल रही है और हमारा ज्ञान रोज बढ़ता जा रहा है। नये ज्ञान के संदर्भ में पुराने ज्ञान को रोज कसने की हिम्मत हमें दिखानी चाहिए; तो स्टेटिक सोसायटी डाइनैमिक होनी शुरु हो जाएगी।

प्रश्नः वह नया ज्ञान मानव-जाति के उत्थान के लिए आता है कि विनाश के लिए?

ज्ञान न तो उत्थान के लिए आता है, न विनाश के लिए आता है। ज्ञान का हम क्या उपयोग करते है, इस पर निर्भर करता है। हम उसका उत्थान के लिए उपयोग कर सकते हैं और विनाश के लिए भी उपयोग कर सकते हैं। ज्ञान बहुत तटस्थ है। ज्ञान की अपनी आप से कोई खबर नहीं है कि आप क्या करें? ज्ञान सिर्फ ज्ञान है और ज्ञान का उपयोग सदा आप पर निर्भर है--आपके ढांचे पर, सोचने के ढंग पर, परिभाषा पर, विचार पर, मत पर ज्ञान का उपयोग होगा। ज्ञान का उपयोग हमेशा आदमी पर निर्भर है। ज्ञान तो सिर्फ तटस्थ है।

प्रश्नः जो विचार है, वह किस पर निर्भर है?

हम पर निर्भर है।

प्रश्नः हम किस पर निर्भर हैं?

यह अगर हम इस तरह पूछते चलें जाएं तो क्या मतलब होगा? हम कहते हैं, भगवान पर निर्भर हैं। आप कहते हैं, भगवान किस पर निर्भर है? क्या करिएगा?

प्रश्नः आपने कहा कि कांग्रेसवालों ने गांधी जी को एक साधन रूप में, उनकी विचारधारा को एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया, तो मैं पूछता हूं कि गांधी जी ने जो अहिंसा की बात की, जो चर्खे की बात की, और जो भगवान राम की बात की वह भी एक पोलिटिकल लीडर की हैसियत से, अपने पोलिटिकल हेतु सिद्ध करने के लिए की; नहीं कि इसमें वे मानते थे, इसलिए की। इसके बारे में आपका क्या खयाल है?

मैं समझा, नहीं, गांधी जी के किसी विचार से मैं सहमत नहीं हूं लेकिन उनकी नियति पर कभी शक नहीं करता हूं। न गांधी जी के चर्खे से सहमत हूं, न उनके राम से सहमत हूं, न उनके रामराज्य से सहमत हूं। लेकिन उनकी नियति पर शक नहीं कर पाता हूं--सब तरह से असहमत होते हुए भी। गांधीजी ने जो भी किया, उसका परिणाम कुछ भी हुआ हो, लेकिन वे उसे पूरी अपनी आंतरिक मान्यता से कर रहे थे। जो लगत था, पूरी निष्ठा से कर रहे थे। न तो उनके लिए पोलिटिकल एंड का सवाल था--क्योंकि ऐसे बहुत से मौके आए जब कि ऐसा लगा कि वे अपनी बातों के कारण पोलिटिकल एण्ड खोए दे रहे हैं बजाय बचाने के, लेकिन वे अपनी बातों पर खड़े रहे। ऐसा मुझे नहीं लगता है कि उन्होंने कोई देश के चित्त के शोषण के लिए ये बातें की हों। देश का शोषण हुआ हो, यह बिल्कुल दूसरी बात है; लेकिन गांधीजी सचेत रूप से यह नहीं कर रहे थे। उनको जो ठीक लग रहा था, वे वही कर रहे थे।
लेकिन गांधीजी के पीछे चलने वाले लोग बहुत सचेत रूप से चेष्टा कर रहे
थे कि गांधीजी का क्या उपयोग किया जा सकता है? इसलिए गांधी जी के आजादी मिल जाने के बाद ही गांधी और गांधी के अनुयायी में इतनी बड़ी खाई पड़ गई कि उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। वह खाई भारी इसलिए पड़ गई कि काम पूरा हो गया था। गांधी तो बाद में भी अपनी बात कहे चले गए। आजादी आ जाने से कोई फर्क नहीं पड़ा उनमें। क्योंकि अगर पालिटिकल एंड था गांधी के विचार का, तो आजादी आ जाने के बाद उनको बदल जाना चाहिए था।
उनको अब बातें और ढंग से करनी चाहिए थीं। नहीं, वह आजादी के बाद भी...
और आजादी के पहले, गांधीजी की जिंदगी में कोई गॅप नहीं हैं! कोई डिस्कंटीन्यूटी नहीं है। आजादी आई या नहीं आई, गांधीजी एक कंटीन्युअस, एक सतत प्रक्रिया हैं। उसमें कहीं कोई गॅप नहीं है।
लेकिन गांधीवादी में और आजादी के पहले और पीछे में बहुत बड़ा गैप है। गांधीवादी आजादी के पहले एक तरह का आदमी था और आजादी के बाद बिल्कुल दूसरे तरह का आदमी सिद्ध हुआ। उस दोनों की शक्लों को भी मिलाना मुश्किल है। सिर्फ कपड़े मेल खाते हैं, दोनों की शक्लों में कोई मेल नहीं है। लेकिन गांधी जी की शक्ल वही की वही है। अगर पोलिटिकल एण्ड था तो गांधी जी की शक्ल में भी परिवर्तन हो जाना चाहिए था, लेकिन वह परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता है मुझे।
तो मैं मानता हूं कि उनके लिए तो वह नैतिक विचार और सिद्धांत की बात थी। आजादी उससे आ जाए तो ठीक, न आए तो भी वह अहिंसा पर लगे रहने को तैयार थें। यानी उनकी दृष्टि में स्वराज्य से भी ज्यादा मूल्य अहिंसा का था-- उनकी दृष्टि में। वह दृष्टि गलत है या सही, वह दूसरी बात है। उनकी दृष्टि में अहिंसा का मूल्य स्वराज्य से भी ज्यादा था। जिसे वे अहिंसा समझते थे, वे मानते थे, उनके लिए स्वराज्य भी खोया जाए तो हर्ज नहीं है। लेकिन हिंसा के द्वारा स्वराज्य लिया जाए, यह भी वे बरदाश्त नहीं करते।
और जब किसी आदमी की पॉलिसी होती हैं और सिद्धांत नहीं होता तो वह आदमी हमेशा बदल सकता है, क्योंकि सिद्धांत का कोई सवाल नहीं है। अगर मुझे ऐसा लगता है कि आपके कारण मेरा काम हो सकता है, तो मैं आपके साथ हूं। और आपके विरोधी के साथ होने से हो सकता है, तो आपके विरोधी के साथ हूं। मेरे लिए सवाल काम के पूरे होने का है। गांधीजी की जिंदगी में वैसा नहीं दिखाई पड़ता। वे बिल्कुल पागल की तरह जो उन्हें ठीक लगता है, उसे पकड़े हुए हैं। काम बनता हो कि मिटता हो, आता हो कि जाता हो, यह सवाल नहीं है। इसलिए गांधी जी की नीयत पर कोई सवाल नहीं उठता है, मेरी नजर में। हालांकि गांधी जी के किसी सिद्धांत से मैं सहमत नहीं हूं। न तो मैं यह मानता हूं कि गांधी जी की अहिंसा--अहिंसा है, मैं तो मानता हूं, वह हिंसा का ही रूप है।

प्रश्नः आपने यह कहा कि गांधी जी अहिंसा को स्वातंत्र्य से भी ज्यादा चाहते थे, लेकिन अहिंसा छोड़ने वाले नहीं थे, तो उन्नीस सौ सद्त्तीस में, जब कांग्रस ने पहली दफा पॉवर लिया और कन्हैयालाल मुंशी उनके होम मिनिस्टर थे तब लालबाग में बंबई में उन्होंने मजदूरों पर गोलीबार किया, लाठी चलाई और गांधी जी ने उसका बचाव किया था तो वह किस तरह आप योग्य लिख रहे हैं?

गांधीजी की जिंदगी में एक नहीं बहुत मौके हैं, बहुत मौके हैं, जहां वे हिंसा का बचाव करते हुए मालूम पड़ते हैं, लेकिन गांधीजी की अगर पूरी बात हम समझें तो गांधीजी का सदा खयाल यह है कि एक चुनाव तो हिंसा और अहिंसा के बीच है, उस चुनाव में वे हमेशा अहिंसा के साथ हैं। लेकिन जिंदगी में ऐसा सीधा चुनाव नहीं है। जिंदगी में चुनाव सदा कम हिंसा और ज्यादा हिंसा के बीच है, तो गांधी जी कम हिंसा के साथ हैं। जिंदगी में ऐसा चुनाव है ही नहीं। जिंदगी में इस तरह एब्सल्यूट नहीं होते कि यह है हिंसा और यह है अहिंसा। जिंदगी में तो सिचुएशंस होते हैं, लेकिन कम हिंसा और ज्यादा हिंसा का सवाल होता है। तो गांधीजी को जब भी ऐसा लगा कि जो हिंसा हुई है, अगर वह नहीं होती है तो उससे ज्यादा हिंसा होगी, तब वह हिंसा के साथ दिखायी पड़ते हैं। लेकिन उसमें भी जो उनकी तौल का ढंग है वह अहिंसा का ही है क्योंकि वे मानते हैं कि कम हिंसा अहिंसा के ज्यादा निकट है।
ऐसे बहुत मौके हैं... एक मौका नहीं है, बहुत मौके हैं जब वे हिंसा के साथ मालूम पड़ते हैं। लेकिन उनकी दृष्टि वही है सदा। अगर वे इंग्लैंड के लिए सैनिक भरती करवा रहे हैं तो वह हिंसा की ही बात है। लेकिन उनको ऐसा लग रहा है कि अगर इंग्लैड हारता है तो दुनिया ज्यादा बड़ी हिंसा में पड़ जाएगी-- इंग्लैंड का विरोधी अगर जीतता है। अगर इंग्लैंड जीतता है तो दुनिया कम हिंसा में पड़ेगी बजाय जर्मनी के जीतने से, तो वे इंग्लैंड के साथ खड़े हो जाएंगे। जिंदगी में तो शेड्स हैं, जिंदगी में ऐसी दो चीजें टूट कर नहीं खड़ी है कि यह हिंसा है, और यह अहिंसा है--हां और ना में जवाब हो जाए!
जहां तक सिद्धांत में बात करनी हों, वहां तो हम सीधी बात कर सकते हैं
कि अहिंसा को मैं पसंद करता हूं। लेकिन जहां जिंदगी के वास्तविक तथ्य को पकड़ना हो तो वहां सदा यह निर्णय करना पड़ेगा कि कम हिंसा या ज्यादा हिंसा। तो गांधीजी कई बार हिंसा के पक्ष में दिखाई पड़ सकते हैं। लेकिन वे वहां भी कम से कम हिंसा के ही पक्ष में हैं। और अगर उनको ऐसा लगता हो कि गोली चलाने से कम हिंसा होगी और गोली न चलाने से ज्यादा हिंसा होने की संभावना है, तो वे शायद गोली चलाने के ही पक्ष में खड़े हो सकतेहैं। लेकिन गांधी जी की निष्ठा अहिंसा पर है। पर मेरी जो अपनी दृष्टि है, मैं उनसे राजी नहीं हूं। मेरा तो अपना मानना ही यही है कि गांधी जी जिसको अहिंसा कहते हैं, वह भी अहिंसा नहीं है। पर वह दूसरी बात है, उससे गांधी जी का कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रश्नः आपने कहा, कांग्रेस को हटाने के लिए और दस वर्ष लगेंगे, बीस वर्ष। तो इस ट्रांजिटरी पीरिएड में आप सिंडीकेट और इंडीकेट ग्रुप में, दोनों दल में से कौन से दल को अच्छा मानते हैं?

कांग्रेस को जितने जल्दी मिटाना हो उतना ज्यादा सिंडीकेट को साथ देना चाहिए कांग्रेस को जितने जल्दी मिटाना हो... मोरारजी, कामराज और पाटिल और उनकी कंपनी कांग्रेस को जल्दी मरघट पहुंचा सकती है। इंदिरा जी तो तीन-चार साल देर लगायेंगी। ये ही काबिल होंगे और जल्दी पहुंचा देंगे।

प्रश्नः आपने कहा कांग्रेस को खत्म हो जाना चाहिए। और पार्टियां हैं, जनसंघ है, कम्युनिस्ट पार्टी है, स्वतंत्र है, राइटिस्ट है, तो इसमें से कोई पार्टी खत्म हो जाना चाहिए कि नहीं?

मैं समझा आपकी बात। जैसे ही कांग्रेस खत्म होती है, इसमें से बहुत सी पार्टियां खत्म हो जाएंगी--कांग्रेस के खत्म होते से इसमें से बहुत सी पार्टियां टूट जाएंगी।

प्रश्नः कम्युनिस्ट पार्टी भी खत्म होगी क्या?

कम्युनिस्ट पार्टी की ताकत और बढ़ जाएगी, खत्म नहीं होगी।

प्रश्नः मैं सोचता हूं, आपने स्पष्ट अभी कह दिया कि कांग्रेस को खत्म
हो जाना चाहिए!

बिल्कुल स्पष्ट कहा।

प्रश्नः तो दूसरी कौन सी पार्टीयां ऐसी हैं जिनको खत्म हो जाना चाहिए?

हां, हां, खत्म हो जाना चाहिए, जैसे जनसंघ को खत्म हो जाना चाहिए, लेकिन खत्म होगा नहीं। कांग्रेस के खत्म होने से ही जनसंघ की भी ताकत बढ़ेगी, कम्युनिस्ट की भी ताकत बढ़ेगी। कांग्रेस के खत्म होते से ही, कांग्रेस जब बिखराव लेगी, उस बिखराव में इनमें से कुछ पार्टियों की ताकत बढ़ेगी, और कुछ पार्टियां जो बीच में खड़ी हैं, उनके भी बिखराव होंगे और सीधी पोलरिटी हो जाएगी।
हिंदुस्तान में दो बड़ी पार्टियां हो जाएगी--एक पार्टी जो सांप्रदायिक आधार पर खड़ी होगी, एक पार्टी जो समाजवादी आधार पर खड़ी होगी और बाकी शेड्स बीच में से विदा हो जाएंगे। उन शैड्स का विदा हो जाना भी अच्छा है। क्योंकि उनकी वजह से कनफ्यूजन होता है। सीधी साफ बात दो रह जायेंगी। हिंदुस्तान में आने वाले पंद्रह वर्षो में धीरे-धीरे-धीरे, एक दल तो
वह होगा जो पुरातनपंथी है, जो प्राचीनतावादी है, सांप्रदायिक आधार पर किसी तरह खड़ा होगा, भारतीय संस्कृति की दोहाई पर खड़ा होगा और भारत को किसी तरह पुराने आदर्शों पर ढालने की कोशिश करेगा। जनसंघ जैसा एक वर्ग खड़ा हो जाएगा। वह बढ़ेगा, उसकी ताकत बढ़ जाएगी क्योंकि कांग्रेस के भीतर बहुत बड़ा हिस्सा है जो जनसंघी है, जो कांग्रेस के बिखरने से जनसंघ के करीब जाएगा। उसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं है। बहुत सा हिस्सा है जो समाजवादी है। कांग्रेस के बिखरने से वह समाजवाद की तरफ जाएगा। लेकिन समाजवादी के जो शेड्स हैं, वे भी कांग्रेस के बिखरने से विदा होंगे। वे भी विदा होंगे।

प्रश्नः अभी हाल में जो देश में पोलिटिकल पार्टी हैं क्या इनमें कोई पार्टी ऐसी है जिसको रहना चाहिए?

हिंदुस्तान में समाजवादी विचार की बचाव की, कोई भी पार्टी आज मुझे ऐसी नहीं लगती, लेकिन वह पार्टी दस वर्षों में विकसित होगी। ये सभी पार्टियां विदा होने जैसी हैं। इनमें से कोई नहीं रहना चाहिए।

प्रश्नः आपने जो कांग्रेस विसर्जन और कांग्रेस खत्म करने को कहा, यदि कांग्रेस खत्म हो जाती है और देश में एक नयी पार्टी या नया संगठन खड़ा हो जाएगा, क्या ऐसी परिस्थिती आ जाएगी कि इस देश में जो दंगे फसाद होते हैं-- कम्युनिटी-कम्युनिटी के बीच में फसादें होती हैं, वह बंद हो जाएंगी?

असल में जैसे-जैसे समाजवादी विचार लोगों के मन में गहरा जाएगा, सांप्रदायिक विचार कम होता चला जाएगा। समाजवादी हुए बिना कोई भी व्यक्ति संप्रदाय से मुक्त नहीं हो सकता।

प्रश्नः आपने समाजवाद की बात की तो इंडिकेट का समाजवाद, या सिंडिकेट
का समाजवाद, इसे भी स्पष्ट करेंगे। दोनों ही समाजवाद की बातें करते हैं!

पहली बात, तो यह है कि, जैसे ही समाजवादी विचार लोगों के प्राणों में गहरा उतरेगा, वैसे ही सांप्रदायिकता विदा होगी। उसके विदा होने का और कोई उपाय नहीं है। समाजवाद का मतलब यह है कि जब हम समाज को एक नये वर्ग में बांटते हैं, तो पुराने वर्गों का वर्गीकरण समाप्त हो जाता है। हम समाजवाद को गरीब और अमीर में बांटते हैं, शोषक और शोषित में बांटते हैं। समाजवाद

समाज को वर्गों में बांटता है; न तो वर्णों में बांटता है और न संप्रदायों में बांटता है। वह न तो यह कहता है कि हिंदू-मुस्लिम के बीच संघर्ष है। वह यह कहता है, संघर्ष गहरे में अमीर और गरीब के बीच है।
अगर समाजवाद का चिंतन ठीक से गहरा हो जाए तो हमारे पुराने सारे वर्गीकरण गिर जाते हैं। संघर्ष हिंदू और मुसलमान के बीच नहीं है, संघर्ष अमीर और गरीब के बीच है। अगर यह बात बहुत स्पष्ट हो जाए, तो मुसलमान मजदूर हिंदू मजदूर की छाती में छुरा भोंकने से, या हिंदू मजदूर मुसलमान की छाती में छुरा भोंकने को अर्थहीन मानता है। बल्कि उसे यह भी दिखाई पड़ने लगता है कि निश्चित ही वह जो अमीर और गरीब के बीच बंटवारा है, वह बंटवारा किसी तरह साफ न हो जाए, इसलिए ये सारे संप्रदाय के उपद्रव चलते हैं और चलाए जाते हैं। सिर्फ समाजवादी चित्त ही सांप्रदायिकता से मुक्त हो सकता है। क्योंकि संप्रदाय का विभाजन गिर जाता है। एक नया विभाजन हमें दिखायी पड़ने लगता है।
दूसरी बात, आप यह पूछते हैं कि कौन सा समाजवाद? यह बड़े मजे की बात है। हमारे मुल्क मे जो सवाल खड़ा हो गया है, वह--कौन सा समाजवाद? यह बड़े मजे की बात है। यह सिर्फ इस बात की सूचना देता है, सिर्फ इस बात की कि समाजवाद की धारणा हमारे सामने साफ नहीं हो पाई है, इसलिए कौन सा समाजवाद का सवाल उठता है! समाजवाद की धारणा, अस्पष्ट है। और प्रत्येक व्यक्ति समाजवाद की बातें कर रहा है। इसलिए तय करना बहुत मुश्किल हो गया है कि कौन से समाजवाद की बात हो रही है।
समाजवाद की बातें इस बात की सूचना तो है हीं, कि समाजवाद के अतिरिक्त
अब किसी के बचने की उम्मीद नहीं है। समाजवाद से विरोध मे जो खड़ा है, वह भी समाजवाद की भाषा में ही बातें करेगा। यह इस बात की तो स्पष्ट खबर है कि समाजवाद के अतिरिक्त और कोई बच नहीं सकता है। एकमात्र अपील रह गई है समजावाद की। अगर लोकमानस में किसी की भी अपील है तो वह समाजवाद की। तो समाजवाद के विरोधी को भी समाजवाद की ही बात करनी पड़ रही है, लेकिन तब पच्चीस तरह के समाजवाद खड़े हो गए हैं।
मेरी अपनी दृष्टि यह है कि पच्चीस तरह के समाजवाद जब तक है इनमें से मैं कोई चुनाव नहीं करता। जब तक यह पच्चीस तरह के समाजवाद हैं, तब तक समाजवाद की ठीक धारणा विकसित न हो पाएगी। इसलिए मैं इन पच्चीस की फिकर ही नहीं करता। समाजवाद की धारणा कैसे विकसित हो, इसकी चिंता मैं लगता हूं। और अगर वह विकसित हो जाए तो ये पच्चीस फैड आउट हो जाएंगे, ... हो जएंगे, वे विदा हो जाएंगे। एक दफा हमें समाजवाद की स्पष्ट धारणा हो जाए तो देश में समाजवाद की एक ही चिंतन पद्धति हो जाएगी। तब ये अपने आप विदा हो जाएंगे। और वे विदा न होंगे, और ये विदा होना भी न चाहेंगे, और ये कनफ्यूज करते रहेंगे। समजावाद को हजार अर्थ देते रहेंगे, हजार नाम देते रहेंगे।

प्रश्नः समाजवाद का आगे उत्तर मत दीजिए। मैं बीच में एक सवाल पूछना चाहता हूं कि दुनिया में जो समजावाद का अभी अच्छा स्वरूप है वह रशिया और चीन इन दोनों में मिलेगा। लेकिन वहां भी हिंसा चलती है। दूसरे देश से भी आक्रमण चलता है और ख्रुश्चेव जैसा आदमी जो समाजवाद की दिशा में आगे काम कर रहा था उसको भी जनता की इच्छा के कारण जाना पड़ा क्योंकि वहां भी जनता सुख और शांती नहीं मानती है। तो आपका समाजवाद क्या रशिया और चीन का जो अभी स्वरूप है उससे आगे जाता है कि उसकी दिशा बदलती है? तो यह जो आपने समाजवाद, तरह-तरह के समाजवाद की बात करते हैं, उसमें से एक विचार का जन्म हो, वैसा समाजवाद आप कह रहे हैं। तो ऐसा भी विचार का जन्म होगा, तब भी जो पोलिटिकल पार्टी.ज होंगी वे उनका अपने लाभ के लिए... करेंगे कि नहीं?

पहली बात तो यह है कि चीन में और रूस में समाजवाद नहीं है। चीन और रूस में समाजवाद के नाम पर एक मैनेजेरियल स्टेट पैदा हुई हैं। समाजवाद नहीं है, लेकिन समाजवाद के सहारे जो क्रांति हुई, वह सोशलिस्ट नहीं है, वह क्रांति मैनेजेरियल है। जहां मालिक था, वहां व्यवस्थापक बैठ गया है, और कोई फर्क नहीं पड़ा है। मालिक की जगह मैनेजर बैठ गया है। और जो स्थिति है,

उसको अगर ठीक शब्दों में कहें तो वह स्टेट कैपिटलिज्म है। वह समाजवाद नहीं है, राज्य पूंजीवाद है। पूंजीपतियों की सारी सत्ता को राज्य ने हड़प लिया है और राज्य पूंजीपति बन गया है। और जब राज्य के पास सारी शक्ति इकट्ठी हो गई हो और राज्य पूंजीपति बन गया हो तो पूंजीवादी व्यवस्था से भी बदतर व्यवस्था पैदा हो जाएगी क्योंकि पूंजीवाद में कम से कम पूंजी बिखरी हुई है, पूंजीवादी बिखरा हुआ है। उसके पास इकट्ठी ताकत नहीं है, कम से कम राज्य की पूरी ताकत उसके पास नहीं है। लेकिन रूस और चीन में जो घटना घटी है, वह घटना यह है कि राज्य के हाथ में सारी ताकत इकट्ठी हो गयी है। समाजवाद वहां भी नहीं आ पाया। वहां पूंजीवाद ने एक नया रूप लिया है,
जो राज्य पूंजीवाद का रूप है। मैं जिस समाजवाद की बात कर रहा हूं, वह समाजवाद न तो पूंजीवाद है और न रूस और चीन का साम्यवाद है। मैं समाजवादी व्यवस्था उस व्यवस्था को कह रहा हूं, जहां व्यक्तिगत पूंजीपति की जगह राज्य पूंजीपति होकर नहीं बैठ जाता है बल्कि, जहां कोई मजूदर नहीं रह जाता। बल्कि प्रत्येक व्यक्ति पूंजी का भागीदार हो जाता है।
जैसे उदाहरण के लिए, एक बैंक है, एक तो स्थिति यह है कि एक आदमी का बैंक है, एक पूंजीपति के हाथ में बैंक है, दस पूंजीपतियों के हाथ में बैंक है। यह पूंजीवादी व्यवस्था है बैंक की। बैंक को नेशनलाइज किया। यह स्टेट कैपिटलिज्म की व्यवस्था है। राज्य के हाथ मैं बैंक चला गया। मैं समाजवादी स्थिति उसको कहता हूं, जब बैंक, बैंक से संबंधित सारे लोगों की भागीदारी बन जाए। वह उसके चपरासी की भी उसमें भागीदारी हो। एक फैक्ट्री--जब मजदूर... उसमें पूंजीपति, मैनेजर, उन सबकी भागीदारी बन जाती है।
भागीदारी राज्य के हाथ में नहीं चली जाती है, मालकियत राज्य के हाथ में नहीं जाती, बल्कि उस यूनिट के भीतर काम करने वाले सारे लोगों में कोई भी मजूदर और मालिक नहीं रह जाता है, वे सभी मालिक हो जाते हैं, वे सभी भागीदार हो जाते हैं।
तो मेरी दृष्टि में, एक तरह का जिसको कहना चाहिए सिंडीकेट--एक इस तरह
का समूह, जो भीतर से सबको मालिक मानकर जीता है। और मैं राज्य के हाथ में सारी ताकत देने के पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि राज्य के हाथ में सारी ताकत जाएगी तो पूंजीवाद तो मिटेगा और समाजवाद आएगा नहीं। और एक नयी व्यवस्था आएगी जो पूंजीवाद से भी महंगी और खतरनाक सिद्ध हो सकती है। क्योंकि इस नयी व्यवस्था में स्वतंत्रता का कोई उपाय न रह जाएगा। पुरानी व्यवस्था में स्वतंत्रता का एक उपाय भी था।
ऐसी समानता का मैं कोई मूल्य नहीं मानता हूं, जो स्वतंत्रता को खोकर मिलती हो। और ऐसी समानता महंगा सौदा है, जो स्वतंत्रता की हत्या पर ही आए। क्योंकि फिर उस व्यवस्था को बदलने की कोई सुविधा न रह जाएगी। आज रूस में व्यवस्था को बदलने का कोई उपाय नहीं रह गया है। आज पृथ्वी पर पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में रूस ऐसा मुल्क है, जहां बगावत करीब-करीब असंभव है। जहां भीतर से बगावत की सब जड़ें काट दी गयी हैं। जहां विद्रोह होना ही मुश्किल हो गया है; जहां विद्रोह हो ही नहीं सकता। तो समानता तो आ जाए, लेकिन स्वतंत्रता इतनी नष्ट हो जाए कि समानता अर्थहीन हो जाती है। कोई समानता अर्थपूर्ण तभी है, जब वह स्वतंत्रता को भी अपने भीतर समाहित करती है।
तो मेरी दृष्टि में समाजवाद का अर्थ है, न तो सत्ता व्यक्ति के, पूंजीपतियों के हाथ में रह जाए, और न सत्ता राज्य के हाथ में चली जाए। एक सत्ता एक-एक यूनिट की, एक-एक इंडस्ट्री की, एक-एक गांव के खेत की, खेत पर काम करने वाले मजदूर, फैक्ट्री में काम करने वाला मजदूर, दुकान में काम करने वाला मैनेजर, मुनिम और चपरासी, ये सब भागीदार होते चले जाएं। देश की सारी व्यवस्था भागीदारी की व्यवस्था हो, उस व्यवस्था में राज्य मालिक न बन जाए।
अगर समाजवाद की यह धारणा विकसित न हो तो पूंजीवाद और साम्यवाद--ये दो विकल्प है। अगर समाजवाद की यह धारणा विकसित हो तो तीन विकल्प खड़े हो जाते हैं देश के सामने। और मेरी समझ में दस सालों में मुल्क के साफ-साफ तीन विकल्प खड़े हो जाने चाहिए। एक पूंजीवादी विकल्प है, जो पुरानी व्यवस्था

को बचाने की चेष्टा करेगा। एक साम्यवादी विकल्प है, जो पूंजीवाद की बुराइयों को दिखा कर राज्य पूंजीवाद का प्रलोभन देने की चेष्टा करेगा। और एक तीसरा समाजवादी विकल्प है--उस तीसरे को मैं समाजवादी कह रहा हूं--वह विकल्प, जो सारे देश को, किसी को शोषित नहीं रखना चाहता और सभी को इकट्ठी मालकियत बांट देना चाहता है। वह बिल्कुल तीसरा विकल्प है। और अगर हम उस तीसरे विकल्प को स्पष्ट मुल्क के सामने रख सकें, तो मेरी समझ यह है कि पोलराइजेशन साफ हो सकता है, इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। तब बहुत तरह के समाजवाद का सवाल नहीं रह जाएगा।

प्रश्नः ऐसा विकल्प तो रक्तपात से आएगा न? या लोकतांत्रिक ढंग से आएगा?

अब दुनिया में रक्तपात की बहुत जरूरत नहीं है। इसलिए नहीं है जरूरत,
दो कारणों से--अगर रक्तपात से लाना हो तो बहुत संभावना इसकी है कि स्टेट कैपिटलिज्म आप ले आएंगे।
असल में तीन ही रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि हम जबरदस्ती आदमी
की छाती पर सवार हो जाएं। और रक्तपात का सदा मतलब यह होता है कि माइनारिटी मेजारिटी को बदलना चाहती है। रक्तपात का सदा मतलब यही होता है।
अगर मेजारिटी बदलने को उत्सुक हो तो रक्तपात की कोई जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन मैं अकेला आदमी या दस आदमी पूरे गांव को बदलना चाहें तब तो बंदूक से बदलना पड़ेगा। लेकिन मैं मानता हूं कि ऐसी बदलाहट लाने की बात ही उठानी गलत है, क्योंकि पूरा गांव अभी राजी नहीं है। और हम दस को क्या हक है कि हम ऐसी बदलाहट लायें?
दूसरा रास्ता यह है कि हम परसुएड करें, हम लोगों को समझाएं-बुझाएं और
एक स्थिति बन जाए कि अधिक लोग राजी हो जाएं तो फिर रक्तपात की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। असल में रक्तपात का मतलब ही यह है कि छोटा हिस्सा बड़े हिस्से को जबरदस्ती बदलने के लिए आतुर हो रहा है। लेकिन चाहे वह बदलाहट अच्छी भी क्यों न हो, अगर बड़ा हिस्सा राजी नहीं हो तो अलोकतांत्रिक है। बड़े हिस्से को राजी करने को सारे उपाय है। परसुएशन के सिवाय कोई रास्ता नहीं है, अगर हम लोगों को राजी कर सकें! फिर मेरा मानना यह है कि अगर समाजवाद रक्तपात से ही आता हो तो ऐसा समझ में पड़ता है कि तो फिर समाजवाद पूरा-पूरा ठीक दर्शन नहीं है। लोग इसके लिए राजी नहीं हो पा रहे हैं।

प्रश्नः मैं यह पूछना चाहता हूं, जो आप बात कर रहे थे वह पास्ट की आप बात कर रहे थे?

नहीं, पास्ट की बात करने से परसुएड करने का कोई सवाल नहीं है। असल में क्रांति की दो दिशाएं हैं--एक तो अतीत से मुक्त करना और भविष्य के प्रति उन्मुख करना। ये दोनों एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं। अतीत से मुक्त करना और भविष्य की ओर उन्मुख करना, ये एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से हैं। क्योंकि जो चित अतीत से मुक्त नहीं है, वह भविष्य की तरफ उन्मुख नहीं हो सकता है। इसलिए एक तरफ अतीत से लड़ाई लडनी पड़ती है और भविष्य का चित्र देना पड़ता है। ये दोनों एक साथ चलेंगे।

प्रश्न: लेकिन वह तो स्टेटिक सोसायटी अतीत में खड़ी रहती है!

हम खड़े ही हैं। मैं यही कह रहा हूं कि हम स्टेटिक सोसायटी अभी भी हैं, इसलिए अतीत से हमें लड़ना पड़ेगा। जो सोसायटी आज है वह स्टेटिक सोसायटी है।

प्रश्नः एक बात का मुझे स्पष्टीकरण मांगना है। मेरे पास कुछ लोग आए हैं तो उन्होंने बताया कि आपके प्रवचन के वहां टेप रिकॉर्ड सुनवाए जा रहे हैं। बाद में ऐसा कहा जाता है, आपके संप्रदाय द्वारा कि अगर रजनीश जी को आप

समझ न सकें तो माओ और मार्क्स को भी पढ़ लें तब रजनीश जी समझ में आ जायेंगे।
आपका क्या कहना है?
मुझे पता नहीं, लेकिन ऐसे भी माओ और मार्क्स को पढ़ना बुरा नहीं है। मुझे समझने के लिए नहीं, अगर हिंदुस्तान को माओ और मार्क्स से बचाना हो तो भी पढ़ना बहुत जरूरी है।

प्रश्नः पोलिटिकल सिचुएशन क्या है? इंदिरा जी कब तक सत्ता सम्हाल सकती हैं?

इंदिरा जी साल भर से ज्यादा नहीं टिक सकती हैं। इसलिए नहीं टिक सकती हैं कि जिन लोगों को आज उन्होंने अपने पक्ष में खींच लिया है, वे सब आश्वासन के आधार पर हैं। कोई सैद्धांतिक आधार नहीं है। उनको प्रॉमिसेस दिए हैं। वह छह महीने में मुश्किल में पड़ जाने वाली है। सबको आश्वासन पूरे नहीं किए जा सकते हैं। आज कांग्रेस में निजलिंगप्पा या इंदिरा जी के बीच जो भी आना-जाना चल रहा है, वह सब आश्वासन के आधार पर चल रहा है। जिन-जिन को आश्वासन दे दिए हैं वे इतने ज्यादा हैं, वे पूरे नहीं हो सकते हैं। छह महीने में मुश्किल शुरू हो जाएगी। और जिनके आश्वासन पूरे नहीं होंगे, वे दूसरे कैंप में जाना शुरू हो जाएंगे। और मजा यह है, निजलिंगप्पा के पास आश्वासन देने के लिए ज्यादा पद हैं, इंदिरा जी के पास तो पद भरे हुए हैं। वह उनके पास ज्यादा पद हैं, खाली पद हैं सब। तो वे ज्यादा आश्वासन पूरे कर सकते हैं। तो छह महीने में मुश्किल शुरू होगी। जो पूरे नहीं हो पाएंगे, वे वहां जाना शुरू हो जाएंगे। और सबके पूरे नहीं हो सकते हैं। और इस वक्त पूरे देश की राजनीति आश्वासन से चल रही है, कि यह पद देंगे और यह पद देंगे और यह पद देंगे। वह कठिनाई छह महीने में मालूम होगी। साल भर से ज्यादा नहीं चल सकती हैं।

प्रश्नः लेबल लगाने से... ।

बहुत जल्दी लेबल लगाने से फायदा नहीं है। उसमें रेडिकल कुछ भी नहीं है। खोसला कमेटी में रेडिकल कुछ भी नहीं है, एकदम मानवीय है। यह स्वाभाविक है कि अगर चित्रों में चुंबन आए तो बड़ा अच्छा है, उचित है। जीवन में जो है, चित्र से क्यों बचाना?

प्रश्नः गांधीवाद और समाजवाद में आप क्या फर्क करते हैं?

गांधीवाद समाजवाद नहीं हैं। गांधीवाद पूंजीवाद को बचाने की अंतिम चेष्टा है।
खोसला एक कदम पीछे है, लेकिन फिल्म में आएगा तो पब्लिक में आने में आसानी पड़ेगी।

प्रश्नः क्या गांधीज्म फ्राड है?

हां, गांधी तो फ्राड नहीं है लेकिन गांधीज्म फ्राड है।

प्रश्नः गांधीज्म फ्राड है तो किसने फैलाए? किसने प्रचार किया उसका?

हां, गांधीवादी कर रहे हैं और पूंजीवाद का पूरा समर्थन है।

प्रश्नः गांधीज्म यदि फ्राड है तो गांधी भी फ्राड हुए?

नहीं, यह जरूरी नहीं है। यह जरूरी नहीं है। यह जरूरी इसलिए नहीं है, मैंने जो पहले बात कही, वह मैं फिर कहूंगा। गांधी जी को जो ठीक लगता है वह उसे कह रहे हैं, वे फ्राड नहीं हैं। लेकिन गांधी जी जो कह रहे हैं वह फ्राड

सिद्ध होगा सेसायटी के लिए यह मैं कह रहा हूं, इसलिए गांधी जी का सवाल नहीं है।

प्रश्नः क्या सामाजिक कोई परिवर्तन आएगा, क्या?

जरूर फर्क पड़ेगा। असल में मेरा मानना यह है कि सेक्स के संबंध में बहुत हैं ा और वह टैबूज जो समाज को रुग्ण करते है, बीमार करते हैं। वह टैबूज उठने चाहिए तो समाज ज्यादा स्वस्थ होगा। असल में सेक्स जीवन का सहज अंग है, यह समाज ने अब तक स्वीकार नहीं किया है। वह स्वीकृत होना चाहिए, और उसे छिपा-छिपा कर और चोरी-चोरी और अंधेरे-अंधेरे में डालने की जरूरत नहीं है। वह जिंदगी का हिस्सा है। और जितना उसको प्रकाश मिलना चाहिए, मिलना चाहिए! उसको अंधेरे में डालना जरूरी नहीं है। बल्कि अंधेरे में उसे डाल कर हम ही उसे गंदा और कुरूप कर देते हैं।
चुंबन का अपना सौंदर्य है। वह कुरूप हो सकता है, लेकिन उसका अपना सौंदर्य है। उसे छिपाना तो कुरूप है ही। हिंदी फिल्म पर क्या हो रहा है? हिंदी फिल्म पर यह हो रहा है, ओंठ करीब आएंगे-आएंगे और छह इंच की दूरी पर रह जाएंगे। अब वह छह इंच की दूरी पर ठहरे हुए हैं और जनता तालियां पीट रही है। यह सब बेहूदगी है। उनको करीब लाना हो तो करीब लाना ही चाहिए। छह इंच की दूरी पर नहीं रोकना चाहिए।

प्रश्नः आपके फॉलोअर... !

मेरा कोई फॉलोअर नहीं है। मेरा कोई फॉलोअर नहीं है! मेरा कोई संप्रदाय नहीं है! मेरे मित्र हैं, फॉलोअर नहीं होने दूंगा, जब तक नहीं होने दूंगा... मेरे मित्र हैं, बस इससे ज्यादा मेरा कोई संबंध नहीं है।

प्रश्नः जैसे गांधी जी के गांधीवादी फॉलोअर हो गए वैसे आपके फॉलोअर
बन जाएं, तो क्या होगा?

गांधी जी तो पूरी चेष्टा में थे कि फॉलोअर होने चाहिए। मैं पूरी चेष्टा में हूं कि नहीं होणे चाहिए। गांधी जी की पूरी व्यवस्था ऐसी थी कि उसमें पीछे चलने का पूरा मामला था।

जब ऐसा मुझे लगे कि देश की भलाई के लिए है तो जरूर आ सकता हूं। ऐसा मुझे लगे कि देश की भलाई के लिए है! लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि इस समय जिनको भी देश की भलाई सोचनी हो, उन्हें देश की चेतना को जगाने में लगना चाहिए, एक्टिव पॉलिटिक्स में नहीं। एक्टिव पॉलिटिक्स उस जगी हुई चेतना से अपने आप आएगा। हिंदुस्तान को कुछ ऐसे लोग चाहिए जिनका एक्टिव पॉलिटिक्स से कोई संबंध नहीं है। तो वे ही लोग हिंदुस्तान की चेतना को जगा सकते हैं। एक्टिव पॉलिटिक्स से मेरा कोई भी मतलब है तो फिर मेरे वेस्टेड इंटरेस्ट शुरू हो जाते हैं। फिर, मैं आपकी चेतना जगाने को उत्सुक नहीं हूं, आपको अनुयायी बनाने को उत्सुक हो जाता हूं। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि आनेवाले बीस-पच्चीस वर्षो में कुछ लोगों को देश की कांशसनेस कैसे बढ़े, और सब तरह की चेतना कैसे बढ़े, उसमें ही लग जाना चाहिए!

प्रश्नः विनोबा जी तो एक्टिव पॉलिटिक्स में नहीं हैं, लेकिन उससे भी कुछ हुआ नहीं!

विनोजा बी का मामला ऐसा है... मैं यह कह रहा हूं कि एक्टिव पॉलिटिक्स में तो मैं नहीं हूं और न होना चाहता हूं क्योंकि मुझे कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता, लेकिन पॉलिटिक्स के बाहर भी होने के पक्ष में नहीं हूं मैं। विनोबा जी उलटे हैं मुझसे। वे कहते हैं, पॉलिटिक्स से बाहर निकलना कोई नैतिक पुण्य है। और उन्होंने हिंदुस्तान की राजनीति से कुछ अच्छे लोगों

को बाहर निकालने का पाप किया है। अब वह बेचारे पाप के पश्चाताप के लिए जयप्रकाश जी जैसे लोग वापस लौटने का सोच रहें हैं। मैं विरोध में नहीं हूं कि कोई पॉलिटिक्स के बाहर निकले, मैं इस पक्ष में हूं कि कुछ लोग पालिटिक्स के बाहर भी काम करते हों। ताकि चेतना ज्यादा गहरे अर्थों में विकसित हो सके, उनका अपना कोई स्वार्थ न होगा इसलिए। मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि सारे लोग पॉलिटिक्स के बाहर हो जाएं। विनोबा एंटी-पॉलिटिकल हैं, मैं एंटी-पॉलिटिकल नहीं हूं, मैं सिर्फ पॉलिटिक्स में नहीं हूं। इन दोनों में फर्क है बहुत ज्यादा। विनोबाजी तो बहुत बुनियादी रूप से पॉलिटिक्स के विरोधी हैं।

स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का चौबीसवां प्रवचन

नया भारत

मेरे प्रिय आत्मन्!
अतीत के इतिहास में क्रांतियां होती थीं और समाप्त हो जाती थीं। लेकिन आज हम सतत क्रांति में जी रहे हैं। अब क्रांति कभी समाप्त नहीं होगी। पहले क्रांति एक घटना थी, अब क्रांति जीवन है। पहले क्रांति शुरू होती थी और समाप्त होती थी। अब क्रांति शुरू हो गई है और समाप्त नहीं होगी। अब आने वाले भविष्य में मनुष्य को सतत क्रांति और परिवर्तन में ही रहना होगा। यह एक इतना बड़ा नया तथ्य है, जिसे स्वीकार करने में समय लगना स्वाभाविक है।
यदि हम सौ वर्ष पहले की दुनिया को देखें, तो कोई दस हजार वर्षों के लंबे इतिहास में आदमी एक जैसा था, जैसा था वैसा ही था। समाज के नियम वही थे, जीवन के मूल्य वही थे, नीति और धर्म का आधार वही था। दस हजार वर्षों में मनुष्य की जिंदगी के आधारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इस सदी में आकर सारे आधार हिल गए हैं और सारी भूमि हिल गई है। जैसे एक ज्वालामुखी फूट पड़ा हो मनुष्य के नीचे और सब परिवर्तित होने के लिए तैयार हो गया हो। अब ऐसा नहीं है कि यह परिवर्तन हम समाप्त कर देंगे। यह परिवर्तन जारी रहेगा और रोज ज्यादा होता चला जाएगा।
अब तक हमने जिस मनुष्य को निर्मित किया था वह एक स्थाई, सुस्थिर समाज
का नागरिक था। अब जिस मनुष्य को हमें निर्मित करना है, वह सतत क्रांति का नागरिक हो सके, इसका ध्यान रखना जरूरी है। भविष्य के मनुष्य की रूप-रेखा, या नये मनुष्य की रूप-रेखा के संबंध में सोचते समय पहली बात यह सोच लेनी जरूरी है कि परिवर्तन के जगत में जहां रोज सब बदल जाएगा--हम कैसी नीति विकसित करें, हम कैसा आचरण विकसित करें, मनुष्य को फिर से पुनर्विचार करना जरूरी हो गया है! महावीर ने, बुद्ध ने, मनु ने, कृष्ण ने और क्राइस्ट ने हमें मनुष्य की जो रूपरेखा दी थी, वह रूप-रेखा आज आउट ऑफ डेट हो गई है; समय के बाहर हो गई है। उसी रूपरेखा को अगर लेकर हम चलते हैं तो अब जिंदगी ढंग की नहीं हो सकती।
इसलिए पहली बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह, कि अब तक के सारे आदर्श
और सारे मूल्य जिस भांति और जिस ढांचे में विकसित किए गए थे, वे भविष्य के मनुष्य के काम के नहीं रह गए हैं। अब तक हमने जिस मनुष्य को बनाने की कोशिश की थी वह भय के ऊपर खड़ा हुआ था। नरक का भय था, स्वर्ग का प्रलोभन था। और भय और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मनुष्य बुरा न करे, इसलिए नरक के भय से हमने उसे पीड़ित किया था और मनुष्य अच्छा कर सके, इसलिए स्वर्ग के प्रलोभन दिए थे। लेकिन आज अचानक इस सदी में आकर स्वर्ग और नरक दोनों ही विलीन हो गए। उनके साथ ही वह नैतिकता भी विलीन हुई जा रही है जो भय और प्रलोभन पर खड़ी थी। आज जो अनैतिकता का सारे जगत में विस्फोट हुआ है, उसका कोई और कारण नहीं है। पुरानी नीति के आधार गिर गए हैं।
मैंने सुना है, एक चर्च के स्कूल में एक पादरी बच्चों को नीति की शिक्षा देने आता था। उसने बच्चों को नैतिक साहस के संबंध में एक छोटी सी कहानी कही, मारल करेज के लिए। उसने बच्चों को समझाने के लिए कहा कि नैतिक साहस मनुष्य के जीवन में बड़ी जरूरी चीज है। वह कहानी बड़ी पुरानी थी। उसने उन बच्चों से कहा कि मैं तुम्हें एक छोटी सी कहानी से समझाऊं--तीस बच्चे किसी पर्वत पर घूमने के लिए गए। वे दिन भर में थक गए हैं। रात सोने के समय सर्द रात है, ठंड लग रही है, बिस्तर तैयार है। उनतीस बच्चे सो गए, लेकिन एक बच्चा अपनी रात्रि की अंतिम प्रार्थना करने के लिए अंधेरे कोने में ठंड से सिकुड़ा हुआ बैठा है। तो उस पादरी ने बच्चों को कहा कि वह जो एक बच्चा है, उसमें बड़ा नैतिक साहस है उनतीस के विरोध में जाने का। जबकि ठंड है, और ठंड बिस्तर में बुला रही है और दिनभर की थकान है। और जब उन्तीस लोग सो गए हैं, तब भी एक बच्चा अपनी रात्रि की अंतिम प्रार्थना पूरा किए बिना नहीं सोता है, उसमें बड़ा नैतिक साहस है। वह सात दिन बाद वापस आया। उसने बच्चों से

पूछा, मैंने नैतिक साहस की तुम्हें एक कहानी सुनाई थी। मैं तुमसे पूछना चाहता हूं, तुम समझ सके मेरी बात? क्या तुम भी मुझे कोई घटना सुनाओगे जो नैतिक साहस को बताती हो? एक बच्चा खड़ा हुआ। यह बच्चा बीसवीं सदी के पहले कभी भी खड़ा नहीं हो सकता था। एक बच्चे ने खड़े होकर कहा कि हमने भी एक कहानी सोची है और आपकी बात से उसमें नैतिक साहस ज्यादा है। उस चर्च के पादरी ने कहाः "मैं सुनना चाहूंगा।" उस बच्चे ने कहाः "आप जैसे तीस पादरी पहाड़ पर गए हुए थे घूमने, भ्रमण करने। वे दिन भर के थके-मांदे वापस लौटे। रात सर्द है, ठंडी है। बिस्तर उन्हें पुकार रहे हैं, लेकिन उन्तीस पादरी प्रार्थना करने बैठ गए हैं, और एक पादरी सोने चला गया है। और उस एक पादरी में बहुत नैतिक साहस है, उनतीस पादरियों के विरोध में जाने का।"
यह बीसवीं सदी के पहले किसी बच्चे ने न सोचा होगा। और यह बात सच है। जब उनतीस लोग प्रार्थना कर रहे हों और उनकी आंखें यह कह रही हों कि जो प्रार्थना नहीं करेगा वह नरक भेज दिया जाएगा; और उनके सारे व्यक्तित्व का सुझाव यह कह रहा हो, उनके गेस्चर, उनकी मुद्राएं यह कह रही हों कि नरक में सड़ोगे, तब एक आदमी का प्रार्थना छोड़ कर नींद के लिए बिस्तर पर चले जाना बहुत हिम्मत की बात है।
लेकिन यह हिम्मत आज की जा सकती है, क्योंकि नर्क और स्वर्ग हवाई कल्पनाओं से ज्यादा नहीं रह गए हैं। लेकिन आज से कुछ सदियों पूर्व वे बड़ी सच्चाइयां थे। और आदमी उन्हीं से भयभीत होकर जी रहा था। तो हमने आदमी को कहा था; झूठ बोलोगे तो नरक में पड़ना पड़ेगा। सत्य बोलोगे तो स्वर्ग का सुख हैं। हमने बहुत प्रलोभन दिए थे। हमने बहुत भय दिखाए थे। आदमी डरा हुआ था। तो वह नीति को मान कर जी रहा था। लेकिन आज सारे भय गिर गए हैं। और आदमी निर्भय हुआ है।
इस निर्भय आदमी पर पुरानी नीति लागू नहीं हो सकती। पुरानी नीति भी पुराने आदमी के साथ मर गई है, मर रही है, मर जाएगी।
लेकिन क्या मनुष्य को अनीति में छोड़ देना है? क्या मनुष्य के अभय और निर्भय होने का अर्थ यह होगा कि वह अनैतिक हो? अगर यह होगा तो समाज निरंतर गहरे खतरों में पड़ जाएगा। क्योंकि नैतिक होने का एक ही अर्थ है कि मैं दूसरे व्यक्ति की भी चितां करता हूं, मैं अकेला नहीं हूं! मैं इस पृथ्वी पर साथियों के साथ हूं। कोई भी अकेला नहीं है। हमारे चारों तरफ पड़ोसियों का बड़ा जाल है और मैं पड़ोसी के लिए भी दायित्वपूर्ण हूं। मैं उसके लिए भी विचार करता हूं। उसे दुख न पहुंचे, इस भांति जीता हूं। नैतिकता का आधार इतना है, लेकिन अब तक हमने भय के आधार पर इस बात को सम्हाले रखा था। कानून का भय था, पुलिसवाला खड़ा है चौराहे पर। अदालत में मजिस्ट्रेट बैठा है। ऊपर भगवान बैठा है। वह सुप्रीम कांस्टेबल का काम करता रहा अब तक। बड़े से बड़ा पुलिस का हवलदार था। वह ऊपर से बैठ कर नियंत्रण कर रहा है, लोगों को नरक भेज रहा है, स्वर्ग भेज रहा है। लेकिन वह सब विदा हो गया है।
बीसवीं सदी की खोज ने बताया कि भगवान भी हमने अपने भय से निर्मित कर लिया था और उस भगवान का तो हमें कोई भी पता नहीं है, जो है। और जिस भगवान को हमने निर्मित कर लिया था, वह हमारे भय का ही आधार था। वह भगवान भी धीरे- धीरे फेड-आउट हो गया है। वह भी विलीन हो गया है। उसके साथ उसके नरक-स्वर्ग भी विलीन हो गए हैं। उसके पुरोहित-पंडे, वे भी सब विलीन हो गए हैं।
आदमी एकदम वैक्यूम में, खाली जगह खड़ा हो गया है। अब हम उसे डरा कर नैतिक नहीं बना सकते।
तो क्या आदमी का अनैतिक होना ही भविष्य होगा? लेकिन अनैतिक होकर आदमी
एक दिन भी नहीं जी सकता है। अगर एक आदमी झूठ बोल कर भी जी लेता है तो सिर्फ इसलिए कि कुछ लोग उसके झूठ का विश्वास करते हैं। अगर हम सारे लोग झूठ बोलने की कसम खा लें तो झूठ बोल कर जीना एक क्षण भी संभव न रह जाएगा। क्योंकि तब झूठ पर विश्वास करने का कोई उपाय न रह जाएगा। झूठ बोल कर भी एक आदमी इसीलिए जी लेता है कि कुछ लोग अब भी सच बोले चले जाते हैं। बेईमानी इसलिए सफल होती है कि बेईमानी है? नहीं, बेईमानी इसलिए सफल होती है कि अब भी कुछ लोग ईमानदार हैं। झूठ के अपने पैर नहीं हैं, उसे सत्य के पैर चाहिए और बेईमानी के पास अपनी कोई आत्मा नहीं है, उसे ईमानदारी की आत्मा चाहिए।

और अनैतिकता एक इंच नहीं चल सकती है, क्योंकि चलने के लिए भी नैतिकता की श्वास चाहिए। अगर हम सब एक बारगी तय कर लें अनैतिक होने के लिए, तो अनीति भी नही चल सकेगी। हम तत्क्षण गिर जाएंगे। जीवन का सब ढांचा बिखर जाएगा। जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा। एक क्षण जीना मुश्किल है अनैतिक होकर।
और आज जीवन में कठिनाइयां शुरू हो गई हैं, क्योंकि नीति के आधार गिर
गए और नई नीति का जन्म नहीं हो सका है। पुरानी नीति मर गई है और नई नीति का कोई जन्म नहीं हो रहा है। और प्रसव का काल लंबा होता चला जाता है। वह बहुत पीड़ादायी है, वह बहुत खतरनाक है, बहुत महंगा पड़ रहा है। सारी पृथ्वी पर वैसा हुआ है। इस देश में भी वैसा हुआ है। क्या होगा? नई नीति कैसे पैदा हो सकती है? पुरानी नीति भय पर खड़ी थी, आज्ञा पर खड़ी थी, आप्तता; ऑथेरिटी पर खड़ी थी। ग्रंथ कहता था इसलिए सही था। गुरु कहता था इसलिए सही था। पिता कहते थे इसलिए सही था, बुजुर्ग कहते थे इसलिए सही था। वह कोई ऑथेरिटी पर खड़ी हुइ बात थी। हम सोचते न थे कि वह सही है या नहीं।
अब बीसवीं सदी में हमने सोचना शुरू किया है तो सब ऑथेरिटी गिर गई है।
अब कोई ऑथेरिटी नहीं है। अब कोई यह नहीं कह सकता कि मनु महाराज कहते हैं कि यह सच है। जीसस कहते हैं इसलिए सच है। कैसे हम मानें? जीसस तो यह भी कहते हैं कि जमीन चपटी है और जमीन गोल निकली, और जीसस पर शक पैदा हो गया। पुरानी किताबें कहती हैं, चांद सूरज से बड़ा है लेकिन चांद सूरज से बहुत छोटा निकला। जमीन से बहुत छोटा निकला। तो अब हम पुरानी किताबों पर कैसे भरोसा करें?
पुरानी किताबें इतने मामलों में गलत सिद्ध हो गई हैं कि नैतिक मामलों में भी सही होंगी, इसकी अनिवार्यता नहीं रह गई। वे उसमें भी गलत हो सकती हैं। इसलिए धार्मिक आदमी अपनी किताब में लिखी वैज्ञानिक गलती के लिए भी आखिरी दम तक लड़ता है। उसके लड़ने का कारण है। आज भी, जैन शास्त्रों मे लिखा है कि चांद पर कोई पहुंच नहीं सकता तो जैन साधु अभी भी लड़ाई लड़े जा रहा है। वह यह कह रहा है, कोई पहुंचा नहीं है, सब झूठी खबरें हैं। यह आर्मस्ट्रांग और ये सारी बातें सब झूठी हैं, कोई कहीं पहुंचा नहीं। पहुंच ही नहीं सकता। अभी एक जैन मुनि मुझे मिलने आए! उन्होंने कहा, कि आप भी क्या इस बात से सहमत हैं कि कोई चांद पर पहुंच गया हैं? चांद पर कोई पहुंच नहीं सकता। चांद पर देवताओं का निवास है, वहां मनुष्य पैर नहीं रख सकता। तो उन्होंने कहाः यह सब गलती हो गई है कुछ। ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे शास्त्रों में लिखा है कि चांद के चारों तरफ देवताओं के विमान ठहरे रहते हैं बड़ी दूरी पर! तो ये किसी देवता के विमान पर उतर गए हैं और भूल से वापस लौट आए हैं और समझ रहे हैं कि हम चांद पर पहुंच गए हैं।
यह आखिर क्यों लड़ाई जारी है? यह जैन मुनि मानने को तैयार क्यों नहीं होता? उसके पीछे बहुत गहरा कारण है। सवाल चांद नहीं है। चांद से जैन मुनि को क्या लेना है? हिंदू संन्यासी को क्या प्रयोजन है? ईसाई पादरी को क्या प्रयोजन है? मुसलमान पंडित को क्या प्रयोजन है? किसी को कोई चांद से प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन दूसरा है। अगर चांद पर आदमी पहुंच जाता है तो फिर महावीर के वक्तव्य का क्या होगा? और अगर महावीर का एक वक्तव्य गलत होता है तो दूसरे वक्तव्य भी गलत हो सकते हैं, इसकी संभावना शुरू हो जाती है।
अगर महावीर इतनी बड़ी भूल कर सकते हैं, या जीसस इतनी बड़ी भूल कर सकते हैं, तो फिर दूसरी भूलें भी हो सकती हैं। इसलिए वह धर्मगुरु पूरी चेष्टा करता है--आखिरी दम तक लड़ने की। लेकिन तथ्यों को झुठलाया नहीं जा सकता है। कितनी देर तक हम लड़ेंगे? तथ्य तथ्य हैं, और तथ्य सब तरह के झूठों को फाड़ कर सिद्ध हो जाते हैं। सब संदिग्ध हो गया, अब कोई आथेरिटी नहीं है जगत में। यह पहला मौका है, दुनिया में कोई आप्त प्रमाण नहीं रहा। बुद्धि और विवेक के अतिरिक्त अब कोई प्रमाण नहीं है।
क्या हम ऐसी नीति खड़ी कर सकेंगे जो बुद्धि, विवेक और अभय पर खड़ी होती है? निश्चित, ऐसी नीति खड़ी की जा सकती है। और भविष्य के मनुष्य की रूप-रेखा की बुनियाद ऐसी नीति होगी जो विवेक पर निर्भर हो; अंधविश्वास पर नहीं--अभय पर निर्भर हो, भय पर नहीं। दंड और प्रलोभन पर निर्भर न हो, बल्कि मनुष्य के

जीवन का स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि, इसकी धारणा पर निर्भर हो। यह हो सकता है। और पुरानी नीति ने हमें नुकसान भी बहुत पहुंचाए हैं। बाधाएं भी बहुत पहुंचाईं। क्योंकि एक बड़ी अदभुत बात है--जो समाज अंधविश्वास को पकड़ लेता है और विवेक का प्रयोग नहीं करता, उसकी बुद्धि विकसित नहीं हो पाती। पुराना आदमी नैतिक था बुद्धि को खोकर। और बुद्धि को खोकर नैतिक होना अनैतिक होने से भी बदतर है। पुराना आदमी नैतिक था व्यक्तित्व को खोकर। और व्यक्तित्व को खोकर नैतिक होना अनैतिक होने से भी बुरा है। पुराने आदमी के पास कोई व्यक्तित्व, कोई इंडिविजुअलिटी न थी, यह भी ध्यान में रख लेना जरूरी है। पुराना आदमी समूह का एक अंग था, व्यक्ति नहीं। गांव में एक आदमी था, वह समूह का अंग था, उसके पास कोई व्यक्तित्व न था। वह अलग से कुछ भी न था। वह भंगी था, ब्राह्मण था, चमार था, बनिया था, एक समूह का हिस्सा था और समूह के ऊपर जिंदा था। वह समूह के खिलाफ इंच भर भी चलता तो कुएं पर पानी बंद था, हुक्का बंद था, भोजन बंद था, विवाह बंद था। वह जिंदा नहीं रह सकता था।
पुरानी दुनिया में कोई व्यक्ति, व्यक्ति होकर जिंदा नहीं रह सकता था। उसे समाज का कल-पुर्जा होकर जिंदा रहना पड़ता था। और अगर वह जरा भी व्यक्ति होने की कोशिश करता, तो अपने आप आत्मघात पर उतर जाता। उसे आत्महत्या के सिवाय कोई रास्ता न रह जाता। पुरानी दुनिया में व्यक्ति का कोई अस्तित्व न था। और इसीलिए अनुशासन था। पुरानी दुनिया की जो डिसिप्लिन थी, वह डिसिप्लिन व्यक्तियों की डिसिप्लिन न थी। वह व्यक्तियों का अभाव था, इसलिए अनुशासन था। अनुशासन का मतलब था, व्यक्ति था ही नहीं। समाज का नियम और कानून चरम था और प्रत्येक व्यक्ति को उसे मानना था, अगर जिंदा रहना था। अगर मरना था तो उसकी मर्जी थी। और मरने को कोई राजी न था इसलिए सब अनुशासनबद्ध थे।
अनुशासन भी खो गया क्योंकि व्यक्तित्व का जन्म हुआ है। अब एक-एक व्यक्ति अपनी हैसियत से कुछ है। वह किसी समाज का अंग ही नहीं है। वह स्वयं भी कुछ है। पूरी स्थिति बदल गई। पहले व्यक्ति समाज का अंग था। अब समाज व्यक्तियों का जोड़ है। इन दोनों बातों में जमीन आसमान का फर्क है। अब समाज व्यक्तियों का जोड़ है, व्यक्तियों के ऊपर निर्भर है। पहले व्यक्ति समाज के ऊपर निर्भर था, इसलिए व्यक्ति की गर्दन घोंटी जा सकती थी। और उसे जो भी करवाना हो, करवाया जा सकता था। अब यह असंभव हो गया है। और अगर हम पुरानी आदत से मुक्त नहीं होते हैं और आज भी हम व्यक्ति की गर्दन को दबाने की कोशिश करते हैं तो बगावत सुनिश्चित है, विद्रोह निश्चित है। सब टूट जाएगा, सब तोड़ दिया जाएगा। लेकिन अब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को नहीं खोने को राजी है।
क्या हम ऐसी नीति, और ऐसा अनुशासन, और ऐसी डिसिप्लिन, और ऐसी शिष्ट विकसित कर सकते हैं जिसमें व्यक्ति मरता न हो, पूरी तरह होता हो और फिर भी जीवन एक नैतिक जीवन बन सके? मेरी दृष्टि में ऐसा विकास हो सकता है। बल्कि सच तो यह है कि व्यक्ति ही नैतिक हो सकता है। पुराने समाजों को मैं नैतिक नहीं मानता। वे मजबूरी में नैतिक थे। क्योंकि व्यक्ति ही न था। पुराने समाज में व्यक्ति का अभाव नीति थी। नये समाज में व्यक्ति का प्रादुर्भाव होगा, व्यक्ति पूरी तरह प्रकट होगा। और नैतिक कैसे वह व्यक्ति हो सके, यह हमें सोचना होगा। दो-तीन बातें मेरे खयाल में आती हैं जो हम सोचें तो उपयोगी हो सकती हैं।
पहली बात तो हमें यह समझना चाहिए कि नैतिकता न तो किसी स्वर्ग से संबंधित है, न किसी नरक से। नैतिकता न तो किसी पुण्य से संबंधित है, न किसी पाप से। नैतिकता न तो किसी दंड से संबंधित है, न किसी प्रलोभन से। नैतिकता ढंग से जीने की व्यवस्था का नाम है। नैतिकता जीवन को ढंग, विज्ञान और विधि देने का नाम है।
अगर किसी व्यक्ति को अधिकतम जीना हो तो वह नैतिक होकर ही जी सकता है। अगर उसे कम जीना हो तो वह अनैतिक हो सकता है। जितना ज्यादा जीना हो उतना ज्यादा लोंगों का साथ जरूरी है। जितना गहरा जीना हो उतने ज्यादा लोंगो की शुभाकांक्षाएं जरूरी हैं। जितनी परिपूर्णता से जीना हो उतने अधिक लोगों

का सहयोग और को-ऑपरेशन जरूरी है। आने वाली नैतिकता जीवन की एक विधि होगी। जो सुसाइडल हैं, वह अनैतिक हो सकते हैं, जो आत्मघाती हैं, वह नीति के विपरीत जा सकते हैं। लेकिन जीना है उन्हें तो सबके साथ जीना होगा। सबके साथ जीने का मतलब यह होता है कि मैं सबको साथ देने वाला बन सकूं, तो ही सारे लोग मुझे साथ देने वाले बन सकते हैं।
एक पुरानी व्यवस्था थी--शिक्षक था, क्लास में पढ़ा रहा है। डंडा है उसके हाथ में और बच्चे चुप हैं। वह चुप होना बड़ा बेहूदा था, अग्ली, कुरूप। क्योंकि डंडे के बल पर किसी को चुप करना अनैतिक है। वह अनुशासनबद्ध की क्लास, एक बच्चा बोल न सकता था क्योंकि बोलना खतरनाक और महंगा पड़ सकता था। वह अनुशासन व्यक्ति को खोकर था। नई कक्षा में नये बच्चों के बीच डंडा लेकर शिक्षक अनुशासन पैदा नहीं कर सकता, न करना चाहिए, न वह उचित है! अब नई कक्षा में कैसे अनुशासन हो? डंडा खो गया, शिक्षक की ताकत खो गई। नई कक्षा में विद्यार्थी है। उनके बीच अनुशासन कैसे हो?
अब नई कक्षा में तो अनुशासन का एक ही अर्थ होगा कि विद्यार्थी यह समझ पाए कि वह, वहां कुछ सीखने को उपस्थित है। और सीखना केवल सहयोग, शांति और मौन में ही संभव है। अगर इतना विवेक हम न जगा पायें तो अब भविष्य में अनुशासन कभी भी नहीं हो सकेगा। अब अनुशासन का एक ही अर्थ होगा कि विद्यार्थी को यह पता चले कि अनुशासन मेरे हित में है! अनुशासन के मार्ग से ही मैं सीख सकूंगा, अनुभव कर सकूंगा, खोज सकूंगा। क्योंकि अनुशासन मुझे दूसरों के अंतर्संबंध में प्रीतिकर बना देगा, अप्रीतिकर नहीं। मैं इन तीस लोगों के साथ मित्र होकर ही सीख सकूंगा, अमित्र होकर नहीं। शिक्षक गुरु नहीं है, अब वह मित्र है। और उसके साथ सीखना हो तो मैत्री चाहिए।
अब शिक्षक को पुराना खयाल छोड़ देना चाहिए गुरु होने का। गुरुडम की बात अब आगे नहीं चल सकती। और अगर वह गुरुडम स्थापित करने की कोशिश करेगा तो बच्चे उसके गुरुडम को तोड़ने की हर चेष्टा करेंगे। अब उसके गुरुडम को स्थापित करने की कोशिश, गुरुडम को तुड़वाने के लिए चुनौती देने की चेष्टा है। वह उसे छोड़ देनी चाहिए। अब वह मित्र होकर ही जी सकता है और उचित भी यहीं है कि शिक्षक मित्र हो। वह मित्र है जो हमसे दस साल आगे है। जिसने जिंदगी को दस साल देखा है, पढ़ा है, सुना है, समझा है और वह हमें भी उस जिंदगी के रास्ते पर ले जा रहा है, जहां वह गया है।
मेरे एक मित्र रूस गए हुए थे। और एक छोटे से कालेज को देखने गए थे। वहां वे बड़े परेशान हुए। देखा कि एक लड़का सामने की ही बैंच पर दोनों जूते उपर रखे हुए टिका हुआ बैठा है, पैर फैलाए हुए। वह मित्र मेरे शिक्षक है, उनको बरदाश्त के बाहर हो गया। वे पुराने ढंग के शिक्षक हैं। उनको बहुत क्रोध आया। उन्होंने उस कालेज के प्रोफेसर को जो पढ़ा रहा था, बाहर निकाल कर कहा कि यह क्या बेहूदगी है, यह कैसी अनुशासनहीनता है? सामने ही बैंच पर लड़का जूते टिकाए बैठा है और टिका है आराम से। यह कोई आराम की जगह है? यह कोई विश्राम स्थल है, यह कोई वेटिंग रूम है? ढंग से बैठना चाहिए। उस शिक्षक ने कहा, आप समझे नहीं। मेरे लड़के मुझे इतना प्रेम करते हैं कि मेरे साथ एट इ.ज हो सकते हैं। मेरे लड़के मुझे इतना प्रेम करते हैं, मै कोई उनका दुश्मन थोड़े ही हूं कि वे मेरे सामने डरे हुए और अकड़े हुए बैठें। मैं उनका मित्र हूं। वे आराम से बैठ सकते हैं। और फिर मुझे उनके बैठने से प्रयोजन नहीं। वे किस तरह बैठ कर ज्यादा से ज्यादा सीख सकते हैं, यह सवाल है। अगर उस लड़के को इतने आराम से बैठ कर सुनने में सुविधा हो रही है, तो बात खत्म हो गई। उसके बैठने से क्या प्रयोजन है?
यह एक दूसरा माहौल है, एक मित्रता का माहौल है। जहां हम विद्यार्थी को मित्र मान कर जी रहे हैं और तब एक नये तरह की शिस्त और एक नये तरह का अनुशासन विकसित होगा। क्योंकि शिक्षक यह कह रहा है कि वह इतना प्रेम करते हैं मुझे कि अपने घर में जैसे अपनी मां के पास पैर फैला कर बैठ सकते हैं, वह मेरे पास भी बैठे हुए हैं। मैं उनका कोई दुश्मन नहीं हूं और मेरा काम यह है कि मैं उन्हें कुछ सिखाने को यहां हूं। वे जितने आराम में, जितनी सुविधा से बैठ सकें, सीख सकें, वह मेरा फर्ज है। मैं उतनी उन्हें मुक्ति देता हूं। यह एक बुनियादी फर्क है।

रूम में पिछले तीस वर्षों से परीक्षा करीब-करीब विदा हो गई है। और सारी दुनिया से विदा होनी चाहिए, क्योंकि परीक्षा पुराने तंत्र से संबंधित है जहां हम डंडे के बल सिखा रहे थे और डंडे के बल परीक्षा भी ले रहे थे। परीक्षा भी बहुत बड़ा टार्चर है, बहुत बड़ा अत्याचार है। और परीक्षा के आधार पर सिखाना एक बहुत भयग्रस्त व्यवस्था थी, फियर पर खड़ी हुई थी क्योंकि लड़का सीख रहा था कि कहीं असफल न हो जाए। असफलता का भय उसे घेरे हुए था। सफलता का प्रलोभन घेरे हुए था। वही स्वर्ग और नरक की व्यवस्था थी। अगर वह हार जाता, असफल हो जाता तो खो जाएगा--निंदित, अपमानित, व्यर्थ! अगर जीत जाएगा, सफल हो जाएगा प्रथम हो जाएगा तो स्वर्ग का पृथ्वी पर अधिकारी हो जाएगा।
परीक्षक भी डंडे वाला शिक्षक हो गया। डंडा नहीं है उसके हाथ में। शिक्षक भीतर से अभी भी वही है। डंडा भर उसके हाथ में नहीं है। लेकिन शिक्षक का भीतर से अभी भी मस्तिष्क वही है। वह मित्र अभी भी नहीं हो पाया है। वह पुरानी आकांक्षाएं अभी भी कर रहा है। वह पूछ रहा है कि गुरु को आदर देना चाहिए, गुरु को सम्मान देना चाहिए। गुरु के चरण छूने चाहिए। गुरु के साथ यह व्यवहार करना चाहिए। वह अभी पुराने गुरुडम की व्यवस्था को, मांग किए जा रहा है। उसे पता नहीं कि सब बदल गया। अब विद्यार्थी मित्र ही हो सकता है। अब गुरु का सम्मान नहीं, मित्र का प्रेम मिल सकता है। और मित्र का प्रेम मांगना हो तो सब बदलना पड़ेगा। परीक्षा पुराने ढंग की अनुशासनबद्धता थी। परीक्षा के भय से सब चलता था।
लेकिन परीक्षा बड़ी ही जंगली, क्रूड, असभ्य व्यवस्था है। वह व्यवस्था
है जबरदस्ती गर्दन पकड़ कर व्यक्ति के परीक्षण करने की। वह अत्यंत प्रेमपूर्ण नहीं है, अत्यंत क्रोधपूर्ण है। और तब, जब कि सब बदल गया है और परीक्षा का ढांचा पुराना है तो उस परीक्षा को, ढांचे को तोड़ने के सब उपाय चल रहे हैं। चोरी चल रही है, नकल चल रही है, पेपर चोरी से निकाले जा रहे हैं, खोज की जा रही है। शिक्षकों को पैसे दिए जा रहे हैं, रिश्वत दी जा रही है, सब किया जा रहा है। अब विद्यार्थी पढ़ने में उत्सुक नहीं है, परीक्षा देने में उत्सुक है। और परीक्षा देने में जब विद्यार्थी अकेला उत्सुक रह जाए, शिक्षक तो हमेशा से परीक्षा लेने में उत्सुक था। अब पहली दफा विद्यार्थी सिर्फ परीक्षा देने में उत्सुक है। सिर्फ परीक्षा देने में उत्सुकता के मतलब खतरनाक होंगे, महंगे होंगे और तब सब अनुशासन नीचे से टूट जाएगा। परीक्षा विदा होनी चाहिए, शिक्षण पर जोर बढ़ना चाहिए।
मेरे एक मित्र राहुल सांकृत्यायन रूस में कुछ दिनों के लिए संस्कृत
के प्रोफेसर थे। जब वे पहली दफा वहां गए... पहली दफे वहां गए तो उनको खयाल तो हिंदुस्तान का था। दस विद्यार्थी थे उनकी कक्षा में, जो संस्कृत पढ़ रहे थे। उन्होंने सात को पास कर दिया और तीन को फेल कर दिया। उनके प्रधान ने, सेरवातस्की ने उनको बुला कर कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो? तीन विद्यार्थी फेल कर रहे हो, तो तुम्हारी तनख्वाह कट जाएगी। क्योंकि तुमने दो साल क्या किया? ये तीन विद्यार्थी फेल होते हैं तो तुम दो साल क्या करते हो? तो उन्होंने कहाः नहीं, फेल तो वे नहीं हो रहे थे, मैंने तो यह सोच कर कि मैं सभी को पास कर दूं तो लोग क्या कहेंगे? मैंने तीन को फेल किया है। क्योंकि हम हिंदुस्तान में सोच ही नहीं सकते कि सभी पास हो सकते हैं। कुछ तो फेल होने ही चाहिए। और अगर सभी पास हो सकते हैं तो पास होने का हमें मतलब ही नहीं रह जाता है। मतलब क्या रहा? कुछ फेल हों, उनके दुख पर ही तो पास होने वाले का सुख निर्भर है। उन्होंने कहाः मैंने तो देखा कि सभी पास होते हैं... तो मैंने तो जान कर तीन को कम अंक दिए। पास तो सब होते थे, लेकिन कोई यह न सोचे कि मैंने कहीं अपने विद्यार्थियों को... ।
और मजा यह है कि रूस में वही शिक्षक परीक्षा भी ले लेता है, जिस शिक्षक
ने साल भर पढ़ाया है। क्योंकि वह कहते हैं कि दूसरा शिक्षक कैसे परीक्षा लेगा? जिसने साल भर, दो साल बच्चों को अनुभव किया, उनके साथ जीआ, रहा, वही उन्हें पहचान सकता है। दूसरे शिक्षक कैसे? दूसरा शिक्षक पांच प्रश्न पूछ सकता है। यह भी हो सकता है कि पांच प्रश्नों के उत्तर किसी व्यक्ति को पता हों और पांच के उत्तर दे दे, पास हो जाए और बाकी उसे कुछ भी पता न हो। और यह

भी हो सकता है कि दूसरे विद्यार्थी को सब पता हो, सिर्फ पांच प्रश्न चूक गया हो, तो मर गया। उसकी जिंदगी खत्म हो गई। तो वही शिक्षक परीक्षा लेगा जिसने दो साल पढ़ाया है क्योंकि दो साल उसने जाना है कि कौन कहां है, क्या है!
और शिक्षक पर यह जोर है, कि अगर विद्यार्थी पास न हो पाए तो जिम्मेवारी विद्यार्थी की कम, शिक्षक की ज्यादा है। क्योंकि पिछली कक्षा से वह पास होकर आया है। तो दो साल में आप क्या कर रहे थे? तो ऐसे शिक्षक की तनख्वाह कट सकती है, डिमोशन हो सकता है, नीचे उतारा जा सकता है। लेकिन विद्यार्थी को असफल करने की बात खयाल से उतर गई। तो रूस की कक्षा में एक नये तरह का अनुशासन पैदा हुआ।
यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। पूरे समाज को भी इस ढांचे में सोचना जरूरी है। भय अलग करें। विवेक और बुद्धि, और मित्रता, और प्रेम लाएं और समझें कि पूरे समाज के ढांचे को भी हमें उस तरह बदलना पड़ेगा। पिता है, वह तक ऑथेरिटी था, वह अब ऑथेरिटी नहीं हो सकता। कल तक वह कहता था कि मैं तुम्हारा पिता हूं इसलिए जो मैं कहता हूं वह ठीक है। अब यह बड़ा अजीब तर्क है। किसी के पिता होने से कोई बात ठीक कैसे हो सकती है और किसी के बेटे होने से कोई बात गलत कैसे हो सकती है?
बात का गलत और सही होना, पिता और बेटे होने पर निर्भर नहीं करता। लेकिन कल तक पिता का इतना कह देना काफी था कि मैं पिता हूं और मेरी उम्र साठ साल है, औा जो मैं कहता हूं वह ठीक है। कल तक यह बात चलती थी। उम्र एक ऑथेरिटी थी, पिता होना एक बल था, वह सब खो गया। वह सब विदा हो गया। लेकिन हमारी आदत पुरानी है। वह सब विदा हो गया है, लेकिन वही कहे चले जा रहे हैं, किए चले जा रहे हैं। उसे कोई सुनता नहीं, मानता नहीं, तो दुख होता है। लेकिन दुख के लिए हम जिम्मेवार हैं। असल में हमें वह कहना ही छोड़ देना चाहिए।
पिता भी अब घर में सिर्फ पहले नंबर का सदस्य है, ऑथेरिटी नहीं रह गई उसकी। वह सिर्फ नंबर एक का सदस्य है परिवार में, ऑथेरिटी नहीं रह गई है उसकी। नंबर एक होने से उसकी बातें सब सही नहीं होंगी अब आगे भविष्य में। पिता को थोड़ा नीचे उतरना पड़ेगा। वह अपने सिंहासन से--उसे थोड़ा नीचे आना पड़ेगा। और सच तो यह है कि पिता अगर सिंहासन पर हो, बेटा सिंहासन के नीचे, तो उनके बीच कोई संबंध नहीं हो सकता।
और मैं आपसे कहता हूं, पुराने बाप और पुराने बेटे के बीच कोई संबंध नहीं रहा। अथॉरिटी के बीच संबंध हो ही नहीं सकता। अगर बाप एक अधिकार के सिंहासन पर बैठा है और मैं बेटा नीचे धूल में खड़ा हूं--अधिकारहीन, तो हमारे बीच क्या संबंध हो सकता है? आज भी मैं अनुभव करता हूं, बाप और बेटे के बीच बात नहीं होती, क्योंकि बात उनके बीच हो सकती है जो साथ खड़े हो। सिंहासन पर बैठे हों और सिंहासन से नीचे कहीं बात हो सकती है?
तो बाप और बेटे एक दूसरे से बच कर घर में गुजरते हैं। हां, कभी-कभी मिलना होता है। जब बाप को डांटना होता है और बेटे को रुपये लेने होते हैं, तब मिलना होता है। और कभी मिलना नहीं हेता। बाकी दोनों बच कर चलते हैं। दोनों निकलते हैं करीब से, लेकिन मिलना नहीं होता। क्योंकि अधिकार और निराधिकार का मिलना कैसा? नहीं, पुराने बाप और बेटे के बीच कोई संबंध न था। संबंध हो नहीं सकता था। बेटे की कोई स्थिति न थी! बाप की सब स्थिति थी। स्थितियां बदली हैं अब। अब बेटे और बाप के बीच संबंध हो सकता है। लेकिन बाप को सिंहासन से नीचे उतर आना पड़े और बेटे के साथ खड़ा हो जाना पड़े। और मैं मानता हूं, यह ज्यादा मानवीय होगा, ज्यादा ह्यूमन होगा। पुराना पिता सिर्फ नैतिक उपदेश देता था। और जो भूलें उसने खुद की थीं, उनकी कभी बात न करता था। वह कुछ ऐसी बातें करता था कि उसने कभी भूल ही नहीं की। सब बेटा भूल कर रहें हैं। वह भी कभी बेटा था, यह बाप भूल ही जाता था।
नये पिता को समझना होगा कि वह भी कभी बेटा था और उसने जो भूलें की हैं, जिंदगी में जिन गड्डों में वह गिरा, जिंदगी में जिन मुसीबतों से वह गुजरा, जिंदगी में जो कड़वे-मीठे अनुभव हुए, वह अपने बेटे को कह दे। यह प्रेम का तकाजा है। वह अपने बेटे को सिर्फ आदर्शों की बात न करे, वास्तविक जिंदगी

को भी खोल दे कि यह मेरी जिंदगी थी। और बेटे को यह भी कह दे कि मैं अपने प्रेम में अपना हृदय तुम्हें दे सकता हूं, सब खोल कर, नग्न--यह मैंने भोगा, यह मैंने जिया, यह भूलें मैंने की, ताकि हो सके तो शायद तुम मेरी भूलों से लाभ ले सको। लेकिन पुराना पिता सिर्फ आदर्श कि बाते करता था। उसने कभी कोई भूल की ही न थी। बेटे थोड़ी देर में खोज करके पता लगा लेते थे कि यह पाखंड है। आज भी पता लगा लेते हैं। लेकिन जिस दिन यह पता चलता है कि यह सब पाखंड है, उस दिन बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है। अपने ही हाथों से पिता एकदम अपदस्थ हो जाता है, मां अपदस्थ हो जाती है।
नहीं, मां और बाप को अब समझना होगा कि बेटे खोज लेंगे, बेटे बुद्धिमान हुए हैं, समझें हैं, पढ़े हैं। मां-बाप ने ही पढ़ाया-लिखाया। उन्होंने ही पढ़ने-लिखने की सारी व्यवस्था दी है। अब पढ़े-लिखे बेटे के साथ वह पुराना व्यवहार नहीं कर सकते हैं। उन्हें बदलाहट करनी पड़ेगी। पिता को बदलना होगा, गुरु को बदलना होगा, नेता को बदलना होगा और समाज का पूरा ढांचा मित्रता के आधार पर खड़ा करना होगा, ऑथेरिटी के केंद्र पर नहीं। तब एक नई नैतिकता, एक नया विकास होना शुरू होगा और एक नये मनुष्य को हम निर्मित कर पाएंगे। पुराना मनुष्य गया, उसका ढांचा भी गया। अब आज्ञा से नहीं चलेगा कि हम आज्ञा दे दें और वह मान ली जाए। असल में, आज्ञा बहुत खतरनाक बात है। और पुराना युवक आज्ञा मानता रहा इसलिए दुनिया बहुत मुसीबत में पड़ी। हिरोशिमा पर जिस आदमी ने एटम गिराया और एक लाख आदमियों का हत्यारा बना, वह जब सुबह उठा सोकर तो किसी ने उससे जाकर पूछा कि रात ठीक से सो सके या नहीं? उस आदमी ने कहाः बिल्कुल मजे से सोया! एक लाख आदमियों को आग में भून आया वह आदमी और मजे से सेया? तो जिसने पूछा उसने कहाः आश्चर्य! एक लाख लोग आग में भुन गए और तुम मजे से सो सके? उसने कहाः उसमें मेरा कोई सवाल नहीं है। मुझे आज्ञा दी गई और मैंने आज्ञा पूरी की! मैंने अपना काम पूरा किया और मैं सो गया। मुझे कोई संबंध नहीं है। उस आदमी ने उस युवक को पूछा कि तुम एटम बम फेंकते वक्त यह न सोचे कि मैं एक लाख लोंगों को मार रहा हूं, ऐसी आज्ञा मानूं या न मानूं? उस आदमी ने कहा, सैनिक को आज्ञा मानूं या न मानूं, ऐसा सोचना ही नहीं पड़ता। सैनिक को आज्ञा माननी ही पड़ती है। सैनिक का मतलब है जो आज्ञा मानता है।
और जो सिर्फ आज्ञा मानता है और सोचता नहीं, उसका मतलब अगर सैनिक है तो सैनिक का मतलब है, जिसकी बुद्धि नष्ट कर दी गई, भ्रष्ट कर दी गई; जिसमें अब कोई विचार न रहा। असल में सैनिक की बुद्धि को नष्ट करने का हम उपाय करते हैं। पूरा मनोवैज्ञानिक उपाय करते है कि सैनिक के भीतर कोई विवेक न रह जाए। क्योंकि जहां विवेक है, वहां आज्ञा का उल्लंघन संभव है। जहां विवेक है, वहां आज्ञा मानी भी जा सकती है, तोड़ी भी जा सकती है। लेकिन दोनों विकल्प मौजूद हैं क्योंकि विवेक निर्णय करेगा।
इसलिए हम एक सैनिक कि बुद्धि को नष्ट करने की व्यवस्था करते हैं। चार साल, पांच साल तक एक सैनिक को कहते हैं, लेफ्ट टर्न, राइट टर्न, आगे जाओ, पीछे आओ, बैठो, उठो। उसको यह मानना पड़ता है। पांच साल बाएं घूमो, दाएं घूमो, दाएं घूमो, बाएं घूमो--घूमता-घूमता पांच साल में उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उसकी बुद्धि का कोई विचार नहीं रह जाता क्योंकि बाएं घूमनें में क्या विचार करना है? घूमना है। दाएं घूमनें में क्या विचार करना है? घूमना है। कवायद करने में क्या विचार करना है? सिर्फ कवायत करनी है! पांच साल कवायद करने के बाद हम कहते हैं, इस आदमी को गोली मारो। वह समझता है, वही बायें और दायें घूमना है, और गोली मार देता है। उसे याद नहीं आता कि सामने जिसे वह गोली मार रहा है, उसकी मां भी होगी। यह सवाल नहीं है। उसे याद नहीं आता, उसकी पत्नी भी होगी, यह सवाल नहीं है। उसे याद नहीं आता, उसका कोई छोटा बेटा भी होगा, जो उसकी घर प्रतीक्षा करता होगा, यह सवाल नहीं है। सवाल सिर्फ एक हैं और वह है कि आज्ञा मानो--आर्डर इ.ज आर्डर। वह आज्ञा मान लेता है।
सारी दुनिया के युवक अतीत में आज्ञा मानते रहे इसलिए चंगीज पैदा हुआ, इसलिए तैमूर पैदा हुआ, इसलिए नादिर पैदा हुआ, इसलिए दुनिया में युद्ध हुए-- हिटलर, मुसोलिनी, तोजो, माओ, स्टैलिन पैदा हुए। और आगे भी अगर दुनिया का

युवक चुपचाप आज्ञा मानता है, तो युद्धों से मुक्ति नहीं हो सकती। लेकिन मुझे लगता है युवक ने आज्ञा माननी छोड़ना शुरू किया है। युद्धों से बचने की संभावना आगे पैदा होती है। एक अच्छी नैतिक दुनिया में युद्ध नहीं होंगे। क्योंकि एक नैतिक दुनिया में कोई किसी मनुष्य को ऐसे ही मारने को तैयार न हो जाएगा।
पिछले युद्ध में कोरिया में एक बहुत अदभुत घटना घटी। अमरीकी सैनिक जो कोरिया में लड़ रहे थे, उनके जनरल ने अमरीकी सीनेट को एक सीक्रेट रिपोर्ट पेश की और इस रिपोर्ट में यह मांग की है कि एक कठिनाई का सवाल खड़ा हो गया है। सौ अमरीकन जवान जब युद्ध पर जाते है तो चालीस प्रतिशत गोली का उपयोग ही नहीं करते। वह बंदूक को लौटा कर घूम-घाम कर दिन में वापस लौट आते हैं। और उन युवकों से जब पूछा गया, तो उन्होंने कहा, हमें कुछ अर्थ नहीं मालूम पड़ता कि हम क्यों किसी आदमी को गोली मारें? किसी कोरियन की छाती में गोली मारने से हमें कोई संबंध नहीं है। न हमारा कोई झगड़ा है, न कोइ दुश्मनी है। हम भी नौकरी पर चले आए हैं, वे भी नौकरी पर चल आए। उनको भी सिखाया गया है कि आज्ञा मानो, हमको भी सिखाया गया कि आज्ञा मानो, लेकिन ऐसी आज्ञा मानने की इच्छा नहीं होती। इससे अच्छा है कि हम मर जाएं, बजाय हम किसी को मारें। उनके जनरल ने अमरीकी सीनेट को लिखा है कि यह अगर ट्रेंड, यह अगर वृत्ति बढ़ती गई तो अमरीका का सैनिक कहीं भी नहीं जीत सकेगा। क्योंकि अमरीकी जवान अगर यह कहता है कि हम सोच कर गोली मारेंगे कि मारने योग्य आदमी है या नहीं, तो फिर गोली कभी नहीं मारी जा सकती, क्योंकि कोई भी आदमी मारे जाने योग्य नहीं है। कोई भी आदमी मारे जाने योग्य नहीं है; ज्यादा से ज्यादा कुछ लोग सुधारे जाने योग्य हो सकते हैं, लेकिन मारे जाने योग्य कोई भी नहीं है।
अमरीकी जनरल तो घबड़ाया। लेकिन मैं मानता हूं कि धीरे-धीरे दुनिया के
सब जनरलों को घबड़ा जाना पड़ेगा। हिंदुस्तान में भी, पाकिस्तान में भी, चीन में भी युवकों को समझना होगा कि हम आज्ञा मानें या न मानें? पुरानी दुनिया यह कहती थी, मानो ही। आज्ञा अंतिम सत्य है। उसपर कभी सेचना मत। नई नैतिकता आज्ञा पर इतना जोर नहीं दे सकती। नई नैतिकता कहेगी, सेचना, विवेक से विचारना और ठीक लगे तो करना। और अगर गलत लगे तो न करने में मर जाना... बजाय गलत करने में जिंदा रहने के।
एक नई नैतिकता और तरह से विकसित होगी। पुरानी नैतिकता लोकल थी, स्थानीय थी। नई नैतिकता जागतिक होगी, युनिवर्सल होगी। पुरानी नैतिकता एक छोटे-छोटे घेरे में बंध के जिती थी। नई नैतिकता का कोई घेरा नहीं होगा। पूरी मनुष्यता उसका विस्तार होगी। पुरानी नैतिकता कहती थी तुम्हारी यह चमड़ी है--तुम्हारी काली, तुम्हारी गोरी, तुम अलग, तुम अलग। पुरानी नैतिकता कहती थी, तुम हिंदू हो, तुम मुसलमान हो--तुम अलग, तुम अलग। नई नैतिकता कहेगी, मनुष्य सिर्फ मनुष्य है, और कोई मनुष्य किसी से अलग नहीं है, और सब मनुष्य एक हैं।
असल में मनुष्यों में जातियां नहीं हो सकतीं। जो लोग बायोलॉजी पढ़ते हैं वे जानते होंगे कि जाति का क्या मतलब होता है? जाति का सिर्फ एक मतलब होता है। जाति का पता लगाने का उपाय क्या है? हम बंदर को और शेर को दो जातियां कहते हैं। क्यों? हम कुत्ते को और बिल्ली को दो जातियां कहते है, क्यों? कारण हैं! कुत्ते और बिल्ली मिल कर बच्चे पैदा नहीं कर सकतें। शेर और बंदर मिल कर बच्चे पैदा नहीं कर सकते।
जाति का वैज्ञानिक सिर्फ एक अर्थ होता है, जो लोग मिल कर बच्चे पैदा करते हैं, वे एक जाति के हैं। जाति का और कोई अर्थ नहीं होता। अंग्रेज और हिंदू मिल कर बच्चे पैदा कर सकत हैं। मुसलमान और ईसाई बच्चे पैदा कर सकते हैं। काले और गोरे, बाह्मण और भंगी मिल कर बच्चे पैदा कर सकते हैं। मनुष्यों की जाति एक है, दो नहीं। जो मिल कर बच्चे पैदा करते हैं, उनकी जाति एक है। जाति का दो का कोई अर्थ ही नहीं होता है, दो का एक ही अर्थ होता है, कि उनके यंत्र इतने भिन्न है कि वे मिल कर बच्चे पैदा नहीं कर सकते, बस इससे ज्यादा कोई मत लब नहीं होता है।

आदमी एक है, उसकी जाति एक है। पुरानी नैतिकता आदमी को तोड़ कर चलती थी।
नई नैतिकता आदमी को तोड़ कर नहीं, जोड़ कर चलेगी। और बड़े आश्चर्य की बात हैं, पुरानी नैतिकता के कारण आदमी कमजोर हुआ, बीमार हुआ, क्षीण हुआ, दीन हुआ, सब तरह से उसका नुकसान हुआ है। अगर हम जगत को एक मान कर जीएं--जीना ही पड़ेगा, क्योंकि जगत एक होता चला जा रहा है--तो मनुष्य ज्यादा समृद्ध होगा।
आज हिंदुस्तान को गरीब होने का कोई कारण नहीं है, सिवाय इसके कि अमरीका अलग और हिंदुस्तान अलग है। आज हिंदुस्तान को रुग्ण और बीमार होने का कोई कारण नहीं है। कारण सिर्फ एक है कि रूस अलग और हिंदुस्तान अलग। आज दुनिया के पास इतने साधन हैं कि जमीन पर एक भी आदमी गरीब न हो। आज इतने साधन हैं कि एक भी आदमी को बीमारी में पड़ने की अनिवार्यता न रहे। आज इतने साधन हैं कि सभी लोग कम से कम सौ वर्ष की उम्र पा सकें। आज इतने साधन है कि सभी लोग ठीक मकानों में रह सकें, भोजन पा सकें, कपड़े पहन सकें।
लेकिन पुरानी दुनिया के खंड कायम हैं। तो उसका परिणाम यह होता है कि
एक मुल्क अति गरीब हो और एक मुल्क अति समृद्ध हो। और अति गरीबी भी मुसीबत है और अति समृद्धि भी मुसीबत है। अमरीका समृद्धि से पीड़ित और परेशान है, हम गरीबी से पीड़ित और परेशान है। और अगर ये सीमाएं बीच की गिर जायें तो मनुष्य सब बंट जाए और जिंदगी बराबर तल पर आ जाए। सारी मनुष्यता बराबर तल पर आ जाए। लेकिन यह नहीं हो पा रहा है, क्योंकि पुराने लोकल माइंड, स्थानिक माइंड अब भी हमको घेरे हुए हैं। भारत माता की जय, पाकिस्तान माता की जय, जर्मन माता की जय, अब भी जारी है।
नये मनुष्य को इन सब माताओं को विदा करना होगा। एक ही माता काफि है-- पृथ्वी-माता; अलग-अलग माता बांटने की कोई जरूरत नहीं। और पृथ्वी बंटी हुई नहीं है। पृथ्वी अखंड है।
एक अंतिम बात और कहना चाहूंगा--पुरानी नीति दुख को केंद्र मान कर चलती थी। उसने स्वीकार कर लिया था कि दुख जीवन का केंद्र है। उसके कारण थे। पुराने आदमी ने सुख बहुत कम जाना। पुराना आदमी दुख में ही जीआ। असल में सुख को पैदा करने की व्यवस्था पहली दफा विज्ञान और टेक्नालॉजी से हमें अब उपलब्ध हुई है। अब तक सुख को पैदा करने की व्यवस्था ही न थी। आज के पहले दस बच्चे पैदा होते थे तो आठ बच्चें मर जाते थे। दो बच्चे जीते थे। और जिस समाज में दस बच्चें मरते हों, उसमें दो बच्चे भी मरे-मरे ही जी सकते थे। क्योंकि उनको भी इतना अदभुत स्वास्थ्य नहीं मिल सकता था।
आज से पुरानी दुनिया में आदमी किसी भांति जी रहा था--दुख में, बीमारी में, पीड़ा में, परेशानी में। दुख जीवन का केंद्र था, इसलिए बुद्ध कह सकेकि जीवन दुख है। इसलिए पुराने विचारक कह सके कि जीवन दुख है। दुख को केंद्र मान कर चले थे हम। और हमने दुख को स्वीकार कर लिया था, दरिद्रता को स्वीकार कर लिया था। इसलिए पुरानी नैतिकता दुख को वरण करने को आदर देती थी कि जो आदमी अपनी तरफ से दुख को वरण करता है, वह बहुत नैतिक आदमी है। वह बहुत सज्जन आदमी है, संत है, साधु है, महात्मा है। पुरानी नैतिकता दुख को वरण करने वाले को तपस्वी, त्यागी और महान कहती थी। क्योंकि दुख था और दुख से बचने का कोई उपाय न था। तब फिर दुख को स्वीकार करके ही कंसोलेशन और सांत्वना उपलब्ध की जा सकती थी।
अब सब बदल गया है। अब दुख को स्वीकार करने की कोई भी जरूरत नहीं है। अगर दुख है तो हम जिम्मेवार है। अगर दुख है तो हम नहीं बदल रहे, इसलिए है। अब दुनिया में दीनता, पीड़ा, परेशानी को स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं है। अब हमें सुख को केंद्र पर रखना पड़ेगा। और जो आदमी सुखी होने को और सबको सुखी करने की कोशिश में संलग्न है, उसे साधु, सज्जन और अच्छा आदमी कहना पड़ेगा। जो आदमी लोगों के दुख बढ़ाने की कोशिश कर रहा है त्याग के, तप के नाम पर, उस आदमी को नैतिकता के दायरे के बाहर करना पड़ेगा। वह आदमी अनैतिक है। अब नैतिक वह आदमी है, जो जिंदगी में ज्यादा फूल सुख के खिलाने में संलग्न है। अब वह आदमी नैतिक है, जो जिंदगी से बीमारियां दूर करने में लगा है। पुरानी नैतिकता बड़ी अजीब थी। एक आदमी चोरी न करे, नैतिक हो जाता था। एक आदमी झूठ न बोले, नैतिक हो जाता था। एक आदमी किसी की स्त्री को न भगाए, नैतिक हो जाता है। नैतिकता निगेटिव थी। आपने कभी खयाल किया? पुरानी

नैतिकता कहती थीः डू नॉट डू--यह मत करो। बस, न करो... न करो... न करो... पुरानी सारी नैतिकता निगेटिव थी। वह कहती थी, चोरी मत करो। वह कहती थी झूठ मत बोलो। वह कहती थी, यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो।
अगर बाइबिल के टेन कमांडमेंट्स हम देखें तो वे सब यह कहेंगे कि यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। नई नैतिकता कहेगी, यह करो, यह करो, यह करो। "मत करो" अर्थहीन है। आप झूठ न बोलें, तो इतना ही है कि आपको झूठ से जो नुकसान पहुंचता है, वह नहीं पहुंच रहा है।
लेकिन इससे जिंदगी बहुत सुख को उपलब्ध न हो जाएगी। अगर जिंदगी को सुखी बनाना है तो मारेलिटी का पॉजिटिव होना पड़ेगा की यह करो। पुरानी नैतिकता कहती हैं कि चींटी को मत मारो, तो बच कर निकल जाओ। और अगर चींटी मर रही हो तो तुम्हें क्या प्रयोजन है? तुम बच कर बाहर निकलो। तुम्हें मारना नहीं है। पुरानी नैतिकता कहती है, अहिंसा। अहिंसा निगेटिव शब्द है--हिंसा मत करो। वह कहती है कि किसी की छाती में छूरा मत मारो। लेकिन वह यह नहीं कहती है कि किसी की छाती में छूरा लगा हो तो निकालो। पुरानी नैतिकता निगेटिव है। वह कहती है, चींटी मरती है, तो तुम्हें कोई मतलब नहीं हैं। तुम अपने रास्ते जाओ। तुम मत मारो। लेकिन तुम्हारे न मारने से भी चींटी मर सकती है। तो उसे बचाने का कोई उपाय पुरानी नीती में नहीं है।
पुरानी नीति का निषेधात्मक रूप दुख के कारण था। नई नीति का पॉजिटिव रूप--अगर हम सुख को केंद्र पर रखते हैं--तो सारी मनुष्य-जाति को सुखी होने का अधिकार है। स्वर्ग कहीं और नहीं है। स्वर्ग हमें कही और रखना पड़ा था। सिर्फ इसिलिए कि पृथ्वी पर बनाने में हम असमर्थ हो गए थे। पृथ्वी दुख थी तो सुख हमें स्वर्ग में रखना पड़ा था।
अब सुख को स्वर्ग में रखने की कोई जरूरत नहीं। हम उसे पृथ्वी पर ही बसा सकते हैं। इसलिए एक नई पॉजिटिव मारैलिटी, जो कहती हो, यह करो, सुख के साधन बढ़ाओ। अब जैसे समझें; हम एक आदमी को महात्मा कहेंगे, क्योंकि उसने लंगोटी लगा ली है। अब लंगोटी कोई लगा ले, इसकी मौज है। इसमें महात्मा होने की क्या बात है? आपको लंगोटी लगाने का शौक है, मजे से लगाइए। आपको सर्दी में खड़े होने का शौक है, खड़े हो जाइए। आपको धूप मे खड़े होना है, धूप में खड़े हो जाइए। इसमें नैतिक होने का क्या अर्थ है? लेकिन यह आदमी महात्मा है। लेकिन एक आदमी है दूसरा, जो रात में मरघट से मुर्दे को चुरा कर और चीर-फाड़ करके पता लगा रहा है कि आदमी का पेट कैसे काम करता है? यह आदमी महात्मा नही था पहले। यह चोर था। इसने मुर्दा चुरा लिया। यह पकड़ा जाए तो इसकी सजा हो जाती। लेकिन इस आदमी ने दुनिया के सुख बढ़ाने में बड़ा काम किया। आज अगर हमारे पेट स्वस्थ हैं, तो उन आदमियों की वजह से जिन्होंने मरघट से मुर्दे चुराए। और जिन्होंने मरघट के मुर्दे चुरा कर रात के अंधेरे में छुपके उनको चीरा और फाड़ा और पता लगाया कि आदमी का पेट कैसे काम करता है। अल्सर कैसे बन जाता है और अपेंडिसाइटिस कहां है और क्या है और क्यों है।
जिन लोगों ने रात के अंधेरे में आदमी के सुख की तलाश की... आदमी के ही विरोध के बावजूद, क्योंकि आदमी चारों तरफ कह रहा था कि यह बात गलत है, यह नहीं होनी चाहिए। आप मुर्दा कैसे चुरा सकते हैं। उन लोगों को हमने अब तक महात्मा नहीं कहा। लुई-फिशर को हम महात्मा नहीं कहेंगे। हम एक आदमी को महात्मा कह देंगे जो कि ठंड में बैठा हुआ है! बड़े मजे की बात है, ठंड़ में कोई बैठे, बड़े मजे से बैठे। कोई तकलीफ देने की जरूरत नहीं। उसको रोकने की भी कोई जरूरत नहीं क्योंकि किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचा रहा है। लेकिन ठंड में बैठना, महात्मा होने का क्या मतलब है? नैतिक होने का क्या अर्थ है? पॉजिटिव मारैलिटी होगी भविष्य की... जो आदमी मनुष्य के सुख को बनाने
के लिए कुछ कर रहा है वह आदमी नैतिक होगा। अगर हम एक विधायक नीति की धारणा दे सकें--हम कैसे मनुष्य के सुख को बढ़ायें? और मनुष्य का सुख हजार रास्तों से बढ़ाया जा सकता है। और ध्यान रहे, कोई आदमी अकेला सुखी नहीं हो सकता। हम सब मिल कर अगर चेष्टा करें तो सुख का फूल खिल सकता है। हजार रास्ते हैं। आप रास्ते पर निकलते है और अगर उदास चेहरे से निकलते हैं आप, तो मैं आपको अनैतिक कहूंगा।

अगर आप रास्ते से गुजरते हैं और जो भी आदमी मिलता है, उससे आप कहते हैं, बड़ा दुख में हूं, बड़ी परेशानी में हूं, तो आप अनैतिक आदमी हैं। क्योंकि आपका यह दुख दुसरे को दुखी करता है। मैं आपको नैतिक आदमी नहीं कहूंगा। जो आदमी अपने दुख का रोना रो रह है सुबह से शाम तक, वह बिल्कुल अनैतिक है। क्योंकि वह दूसरों को भी दुखी करने के उपाय कर रहा है लेकिन जो आदमी मुस्कुरा रहा है और जो दूसरों को मुस्कुराहट के रास्ते बना रहा है वह आदमी नैतिक है। क्योंकि वह आदमी को खुशी की तरफ ले जाने का मार्ग खोज रहा है।
लेकिन हमारे पुराने साधु-संत सब उदास और गंभीर थे। असल में संत होने
के लिए रोती हुई शक्ल लेकर पैदा होना बहुत जरूरी है। नहीं तो कोई आदमी संत नहीं हो सकता है। बिल्कुल रोती शक्ल हो कि आंसू अब टपके... अब टपके, तभी कोई संत हो सकता है। संत होने के लिए अगर हंसती हुई, स्वस्थ... तो कठिनाई की बात है। आप संत नहीं हो सकते। संत होने के लिए गंदा होना जरूरी है, इसलिए साधु- संत नहाते नहीं। जैनियों के मुनि नहाते नहीं, स्नान नहीं करते बल्कि जैन शास्त्रों में यह लिखा है कि हाथ पर मैल जम जाए तो उसे पोंछना भी पाप है। उसको जमने देना चाहिए--सब तरह की गंदगी ओढ़ कर सब तरह की उदासी, बीमारी ओढ़ कर... ।
हिंदुस्तान से एक आदमी जर्मनी लौटा--काउंट कैसरलिंग, तो उसने अपनी डायरी में लिखा कि हिंदुस्तान में जाकर मुझे पहली दफा पता चला कि स्वास्थ्य एक अनैतिकता है, बीमार होना नैतिकता है। और हिंदुस्तान में जाकर मुझे पता चला कि अस्वच्छ रहना, गंदगी से रहना अध्यात्म है। स्वच्छ रहना और ताजे रहना, साफ-सुथरे रहना भौतिकवाद है, मैटीरियलिज्म है।
नहीं, यह सब हमें बदल देना पड़ेगा। एक नई नीति--स्वस्थ सुखी आदमी को, मुस्काराते आदमी को स्वीकार करेगी। हमें बुद्ध और महावीर की नई मूर्तियां ढालनी होंगी, जिनमें वे खिलखिला कर हंस रहे हों। अब उदास महावीर और उदास बुद्ध नहीं चल सकते हैं। ईसाई तो कहते हैं कि जीसस कभी हंसे ही नहीं क्योंकि हंसने जैसी छोटी-ओछी चीज जीसस कर सकते हैं! उनकी किताबें कहती हैंः "जीसस नेवर लॉफ्ड"--हंसे ही नहीं कभी जिंदगी में। तो उन्होंने जैसा जीसस को बनाया होगा... देखा होगा सूली पर लटके हुए। अगर वे न भी लटकते तो ईसाई उनको लटका देते, क्योंकि गंभीर आदमी को सूली पर लटका होना चाहिए। लेकिन अब हम जीसस को हंसा कर रहेंगे। हमें तो जीसस की नई तस्वीरें बनानी पड़ेंगी, जिनमें वे हंस रहे हों, फूल के बगीचे में खड़े हों। नये आदमी को सुखी और स्वस्थ और आनंदित--इस पृथ्वी पर; स्वर्ग में नही;
इस पृथ्वी पर सुख और स्वास्थ्य को स्वीकार करना पड़ेगा तो हम एक विधायक नीति के आधार रख सकते हैं। और मुझे कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि ये आधार क्यों नहीं रखे जा सकते हैं। मैं आपसे इतनी प्रार्थना करूंगा, इन दिशाओं में सोचें। बड़ा सवाल है, जिंदगी के सामने बड़ी समस्या है कि हम नई नीति को कैसे जन्म दें। इन दिशाओं में सोचें। शायद हम सब सोंचे तो हम कुछ रास्ते खोज लें।
मैं कोई उपदेश देने वाला नहीं हूं कि मैं आपको उपदेश दूं और आप ग्रहण
कर लें। वह मामला छोड़ें, वह गुरु-शिष्य का संबंध गया। अब कोई उपदेश देगा, कोई ग्रहण करेगा, यह सवाल नहीं हैं। हम सब इकट्ठे होकर सोच सकें, हम सब मित्र की तरह साथ सोच सकें और नये मनुष्य की रूप-रेखा निर्मित कर सकें, इस दिशा में मैने कुछ बातें कहीं।

मेरी बातों को इतने शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।